प्राकृत-भारती पुष्प 2

राजस्थान का जैन साहित्य

सम्पादक–मण्डल

अगरचन्द नाहटा | डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल

डॉ. नरेन्द्र भानावत | डॉ. मूलचन्द सेठिया

महोपाध्याय विनयसागर

प्राकृत भारती, जयपुर

प्रकाशक
देवेन्द्रराज मेहता
सचिव, प्राकृत-भारती
जयपुर

❀

मूल्य 30.00 रुपये

❀

वीर नि. सं. 2503
विक्रम सं. 2034
ईसवी 1977
शकाब्द 1899

❀

मुद्रक :
राज्य केन्द्रीय मुद्रणालय,
जयपुर ।

आमुख

जैन धर्म का दर्शन, न्याय तथा संस्कृति—ये भारतीय परम्परा के बड़े समृद्ध और प्राचीनतम तत्व हैं। इस स्थिति का प्रमाण जैन साहित्य है जो प्राकृत, संस्कृत, राजस्थानी एवं कई स्थानीय भाषाओं में मिलता है। ये साहित्य आगम, पुराण, कथा, चरित्र, काव्य, निबन्ध आदि के रूप में उपलब्ध है। कुछ साहित्य ऐसा है जो कविताओं, कथाओं तथा गीतों के द्वारा जैन धर्म के गूढ़ सिद्धान्तों को समाजोद्धार और राष्ट्रोत्थान के स्वर को मुखरित करने में सहयोगी सिद्ध हुआ है। परन्तु इस वैज्ञानिक युग में इस साहित्य का अधिकांश भाग या तो अप्रकाशित है या अप्राप्य है। अतएव जैन धर्म और संस्कृति के संबंध में लेखन एवं अध्ययन का कार्य अनुसंधानकों के लिये एक कठिनाई का कारण बना हुआ है। कई जैन भण्डार ऐसे हैं जिनमें निहित विद्या-निधि के दर्शन का लाभ भी सुलभ नहीं है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में गणमान्य विद्वानों के लेखों ने जैन साहित्य को प्रकाश में लाने का सफल प्रयत्न किया है। इन लेखों में प्राचीन लेखकों, साधकों और ग्रन्थों की समीक्षा देकर जिज्ञासुओं की ज्ञान-पिपासा को किसी सीमा तक बुझाने में सफलता प्राप्त की है। अनुसंधानकर्त्ताओं के लिए भी यह ग्रन्थ पथ-प्रदर्शक का काम करेगा, ऐसी मेरी मान्यता है। इसमें दिये गये साहित्य और साहित्यकारों का परिचय महत्वशाली जैन साहित्य की अपार राशि का सर्वांगीण विश्लेषण तो नहीं करता परन्तु खोज की दृष्टि से समुचित उद्बोधन अवश्य करता है। मैं प्राकृत भारती एवं संचालक मंडल को बधाई देता हू कि इस प्रकाशन के कार्य का शुभारंभ कर उसने जैन साहित्य की प्रशंसनीय सेवा की है।

गोपीनाथ शर्मा,
निदेशक,
राजस्थान अध्ययन केन्द्र,
राजस्थान विश्व विद्यालय, जयपुर।

प्रकाशकीय

'प्राकृत-भारती' के द्वितीय पुष्प के रूप में 'राजस्थान का जैन साहित्य' नामक शोध-निबन्धों का संग्रह पाठकों के कर-कमलों में अर्पित करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है।

श्रमण भगवान् महावीर की 2500वीं निर्वाण शताब्दी के शुभ अवसर पर राजस्थान सरकार ने राज्य स्तर पर शताब्दी समारोह समिति की स्थापना की थी। समिति ने साहित्यिक योजना के अन्तर्गत तीन पुस्तकों के प्रकाशन का निर्णय लिया था—1. कल्पसूत्र (सचित्र), 2. राजस्थान का जैन साहित्य, और 3. राजस्थान की जैन कला और स्थापत्य।

भगवान् महावीर का दर्शन और लोक-कल्याणमयी सार्वजनीन विचारधारा से सम्बन्धित साहित्य का प्रचार-प्रसार सर्वदा प्रवर्धमान रूप से होता रहे, इस दृष्टि-बिन्दु को ध्यान में रखकर, शताब्दी समारोह के पश्चात् 'प्राकृत-भारती' की स्थापना की गई और उक्त ग्रन्थो के कार्य को पूर्ण करने का भार 'प्राकृत-भारती' को सौंप दिया गया।

राजस्थान प्रदेश के निवासियों एव इस प्रदेश में विचरण करने वाले मूर्धन्य विद्वानों-श्रमणों ने शताब्दियो से धर्म एव धर्मेतर सभी विषयों तथा समग्र विधाओं पर मौलिक एवं व्याख्यात्मक साहित्य-सर्जन कर सरस्वती की अभूतपूर्व सेवा की है। इन मनीषियो ने केवल देववाणी-संस्कृत को ही माध्यम नही बनाया, अपितु सस्कृत के साथ-साथ तत्कालीन जन-भाषाओ प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी और हिन्दी भाषा मे भी रचनाए की और इन भाषाओं को सक्षम बनाने में हाथ बटाया।

प्रत्येक साहित्यकार और साहित्य का समीक्षात्मक मूल्यांकन अनेक खण्डों में किया जा सकता है किन्तु वह समय तथा श्रमसाध्य है। इसी कारण विद्वान् लेखकों ने प्रस्तुत पुस्तक में राजस्थान के ज्ञात विद्वानों द्वारा रचित तथा प्राप्त समस्त साहित्य का दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया है।

विज्ञ लेखकगण, विद्वान् सम्पादक मण्डल आदि जिन्होंने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से इस प्रकाशन मे अपना सौहार्दपूर्ण योगदान देकर संस्थान को गौरवान्वित किया है उसके लिये मैं अपनी ओर से एवं संस्थान की ओर से इन सब का हृदय से आभारी हूं।

महोपाध्याय विनयसागरजी का इस पुस्तक के सम्पादन एवं व्यवस्था का कार्यभार सभालने मे विशेष सहयोग रहा है एतदर्थ वे धन्यवाद के पात्र हैं।

मेरा विश्वास है कि यह पुस्तक साहित्य के क्षेत्र में शोधार्थियो के लिये न केवल पथ-प्रदर्शक होगी अपितु शोध के क्षेत्र में नये आयाम भी प्रस्तुत करने में समर्थ होगी।

देवेन्द्रराज मेहता,
सचिव,
प्राकृत-भारती, जयपुर।

दिनांक 28-3-1977

सम्पादकीय

भगवान् महावीर के 2500वें परिनिर्वाण वर्ष के उपलक्ष्य में राज्यस्तर पर गठित राजस्थान राज्य भगवान् महावीर 2500वां निर्वाण महोत्सव समिति की साहित्यिक योजना के अन्तर्गत यह ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। ग्रन्थ छः खण्डो में विभक्त है। प्रथम खण्ड प्राकृत साहित्य से सम्बन्धित है। इसमें चार निबन्ध है जो प्राकृत साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियो और राजस्थान के प्राकृत साहित्यकारों से सम्बन्धित है। द्वितीय खण्ड संस्कृत साहित्य से सम्बन्धित है। इस खण्ड में पाच निबन्ध है जो संस्कृत साहित्य के विकास और प्रवृत्तियो, राजस्थान के संस्कृत साहित्यकारो तथा जैन सस्कृत महाकाव्यो से सम्बन्धित हैं। तृतीय खण्ड अपभ्रश साहित्य से सम्बन्धित है। इसमें चार निबन्ध हैं जो अपभ्रंश साहित्य की सामान्य पृष्ठभूमि, उसके विकास, प्रवृत्तियों और साहित्यकारो से सम्बन्धित है। चतुर्थ खण्ड राजस्थानी साहित्य से सम्बन्धित है। इसमें 9 निबन्ध है जो राजस्थानी साहित्य की सामान्य पृष्ठभूमि और पद्य तथा गद्य क्षेत्र के साहित्यकारों से सम्बन्धित हैं। पचम खण्ड हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित है। इसमे 9 निबन्ध हैं जो हिन्दी जैन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियो और पद्य तथा गद्य की विविध विधाओ पर प्रकाश डालते हैं। षष्ठ खण्ड परिशिष्ट खण्ड है। इस खण्ड मे लोक साहित्य, ग्रन्थ भण्डार, शिलालेख और लेखनकला मे सम्बन्धित 4 लेख दिये गये हैं। अन्त मे अनुक्रमणिका देकर ग्रन्थ को शोधार्थियो के लिए विशेष उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है।

इस ग्रन्थ द्वारा राजस्थान में रचित प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रश, राजस्थानी और हिन्दी भाषा के जैन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियो और उसमें सम्बद्ध रचनाकारो का परिचय देने का विनम्र प्रयास किया गया है। राजस्थान में रचित आधुनिक साहित्य अलग-अलग स्थानो से अलग-अलग व्यक्तियों और सस्थाओ द्वारा प्रकाशित होने से विभिन्न स्थलो पर उपलब्ध है। इस कारण अब तक प्रकाशित समग्र साहित्य का आकलन कर, उसका मूल्याकन करना किसी एक लेखक के लिए शक्य न होने से सभव है कतिपय ग्रन्थो तथा ग्रन्थकारो का नामोल्लेख होने से रह गया हो। इस प्रकाशन द्वारा राजस्थान में प्रवाहित जैन साहित्य की बहुमुखी धारा से पाठको को परिचित कराना हमारा उद्देश्य है। इसका सम्यक् मूल्याकन तो आगे की सीढी है।

ग्रन्थ के प्रस्तुतिकरण में हमारी समन्वयात्मक दृष्टि रही है। राजस्थान में प्रचलित जैन समाज की श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराओ के साहित्य और साहित्यकारों के सम्बन्ध में, परम्परा विशेष से सम्बद्ध अधिकारी विद्वानों से निवेदन कर, निबन्ध जुटाने का प्रयत्न किया गया है। निबन्धों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उसके लिए राज्य समिति या सम्पादक मण्डल उत्तरदायी नहीं है।

विद्वान् सतों और लेखको ने अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी हमारे निवेदन पर जिस अपनत्व के साथ अपने निबन्ध भिजवाकर सहयोग प्रदान किया उसके लिये कृतज्ञता ज्ञापित करना हम अपना परम कर्तव्य मानते हैं।

राज्यस्तर पर गठित समिति के अध्यक्ष माननीय श्री हरिदेवजी जोशी, मुख्य मन्त्री, राजस्थान सरकार, समिति के उपाध्यक्ष माननीय श्री चन्दनमलजी बैद, वित्त मन्त्री, राजस्थान

कार और समिति के सचिव माननीय श्री देवेन्द्रराजजी मेहता के हम विशेष आभारी हैं जिनके केय सहयोग और सम्यक् निर्देशन से इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ का प्रकाशन सम्भव हो सका।

आशा है, राजस्थान के जैन साहित्य के अध्ययन, समीक्षण और मूल्यांकन की दिशा में ग्रन्थ एक आधारभूत ग्रन्थ सिद्ध होगा और इसके माध्यम से समग्र भारतीय साहित्य आत्मा और सांस्कृतिक चेतना को समझने-परखने में मदद मिलेगी।

—सम्पादक मण्डल के सदस्य

भूमिका

धर्म, साहित्य और संस्कृति :

धर्म और साहित्य दोनों संस्कृति के प्रमुख अंग हैं। संस्कृति जन का मस्तिष्क है, धर्म जन का हृदय और धर्म की रसात्मक अनुभूति है साहित्य। जब-जब संस्कृति ने कठोर रूप धारण किया, हिंसा का पथ अपनाया, अपने रूप को भयावह व विकृत बनाने का प्रयत्न किया, तब-तब धर्म ने उसे हृदय का प्यार लुटा कर कोमल बनाया, अहिंसा और करुणा की बरसात कर उसके रक्तानुरंजित पथ को स्नेहपूरित और अमृतमय बनाया, सयम, तप और सदाचार से उसके जीवन को सौन्दर्य और शक्ति का वरदान दिया। मनुष्य की मूल समस्या है—आनन्द की खोज। यह आनन्द तब तक नहीं मिल सकता जब तक कि मनुष्य भय-मुक्त न हो, आतंक-मुक्त न हो। इस भय-मुक्ति के लिये दो शर्तें आवश्यक हैं। प्रथम तो यह कि मनुष्य अपने जीवन को इतना शीलवान, सदाचारी और निर्मल बनाए कि कोई उससे न डरे। द्वितीय यह कि वह अपने में इतना पुरुषार्थ, सामर्थ्य और बल संचित करे कि कोई उसे डरा-धमका न सके। प्रथम शर्त को धर्म पूर्ण करता है और दूसरी को संस्कृति। साहित्य इन्हें संवेदना के स्तर पर कलापूर्ण बनाता है।

जैन धर्म और मानव संस्कृति

जैन मान्यता के अनुसार सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्था में वर्तमान अवसर्पिणी के प्रथम तीनों कालों में जीवन अत्यन्त सरल एवं प्राकृतिक था। तथाकथित कल्पवृक्षों से आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाया करती थी। यह अकर्म भूमि, भोग-भूमि का काल था। पर तीसरे काल के अन्तिम पाद में काल चक्र के प्रभाव से इस अवस्था में परिवर्तन आया और मनुष्य कर्मभूमि की ओर अग्रसर हुआ। उसमें मानव सम्बन्धपरकता का भाव जगा और पारिवारिक व्यवस्था—कुल व्यवस्था-सामने आई। इसके व्यवस्थापक कुलकर या मनु कहलाये जो विकास-क्रम में चौदह हुए। कुलकर व्यवस्था का विकास आगे चलकर समाज संगठन, धर्मसंगठन के रूप में हुआ और इसके प्रमुख नेता 24 तीर्थंकर तथा गौण नेता 39 अन्य महापुरुष (12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव, 9 प्रतिवासुदेव) हुए जो सब मिलकर त्रिषष्टि शलाका पुरुष कहे जाते हैं।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में यह कहा जा सकता है कि जैन दृष्टि से धर्म केवल वैयक्तिक आचरण ही नहीं है, वह सामाजिक आवश्यकता और समाज-कल्याण व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण घटक भी है। जहां वैयक्तिक आचरण को पवित्र और मनुष्य की आंतरिक शक्ति को जागृत करने की दृष्टि से क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, सयम, तप, त्याग, ब्रह्मचर्य जैसे मनोभावाधारित धर्मों की व्यवस्था है वहां सामाजिक चेतना को विकसित और सामाजिक संगठन को सुदृढ़ तथा स्वस्थ बनाने की दृष्टि से ग्राम धर्म, नगर धर्म, राष्ट्र धर्म, कुल धर्म, गण धर्म, संघ धर्म जैसे समाजोन्मुखी धर्मों तथा ग्राम स्थविर, नगर स्थविर, प्रशास्ता स्थविर, कुल स्थविर, गण स्थविर, संघ स्थविर जैसे धर्मनायकों की भी व्यवस्था की गई है। इस बिन्दु पर आकर "जन" और "समाज" परस्पर जुड़ते हैं और धर्म में निवृत्ति-प्रवृत्ति, त्याग-सेवा और ज्ञान-क्रिया का समावेश होता है।

संस्कृति का परिष्कार और भगवान महावीर :

अन्तिम तीर्थंकर महावीर तक आते-आते इस संस्कृति में कई परिवर्तन हुए। संस्कृति के विशाल सागर में विभिन्न विचारधाराओं का संगम हुआ। पर महावीर के समय इस

सांस्कृतिक संगम का कुत्सित और वीभत्स रूप ही सामने आया। संस्कृति का जो निर्मल और लोक कल्याणकारी रूप था वह अब विकारग्रस्त होकर चन्द व्यक्तियों की ही सम्पत्ति बन गया। धर्म के नाम पर क्रियाकाण्ड का प्रचार बढ़ा। यज्ञ के नाम पर मूक पशुओं की बलि दी जाने लगी। अश्वमेध ही नहीं नरमेध भी होने लगे। वर्णाश्रम व्यवस्था में कई विकृतियां आ गईं। स्त्री और शूद्र अधम तथा निम्न समझे जाने लगे। उनको आत्म-चिन्तन और सामाजिक-प्रतिष्ठा का कोई अधिकार न रहा। त्यागी-तपस्वी समझे जाने वाले लोग अब लाखों-करोड़ों की सपत्ति के मालिक बन बैठे। भोग और ऐश्वर्य किलकारियां मारने लगा। एक प्रकार का सांस्कृतिक संकट उपस्थित हो गया। इससे मानवता को उबारना आवश्यक था।

वर्द्धमान महावीर ने संवेदनशील व्यक्ति की भांति इस गंभीर स्थिति का अनुशीलन और परीक्षण किया। बारह वर्षों की कठोर साधना के बाद वे मानवता को इस संकट से उबारने के लिये अमृत ले आये। उन्होंने घोषणा की—'सभी जीव जीना चाहते है, मरना कोई नही चाहता। यज्ञ के नाम पर की गई हिंसा अधर्म है। सच्चा यज्ञ आत्मा को पवित्र बनाने में है। इसके लिये क्रोध की बलि दीजिये, मान को मारिये, माया को काटिये और लोभ का उन्मूलन कीजिये।' महावीर ने प्राणी-मात्र की रक्षा करने का उद्‌बोधन दिया। धर्म के इस अहिंसामय रूप ने संस्कृति को अत्यन्त तरल और विस्तृत बना दिया। उसे जनरक्षा (मानव समुदाय) तक सीमित न रखकर समस्त प्राणियों की सुरक्षा का भार भी संभलवा दिया।

जैन धर्म में जनतान्त्रिक सामाजिक चेतना के तत्त्व .

यद्यपि यह सही है कि धर्म का मूल केन्द्र व्यक्ति होता है क्योंकि धर्म आचरण से प्रकट होता है पर उसका प्रभाव समूह या समाज में प्रतिफलित होता है और इसी परिप्रेक्ष्य में जनतान्त्रिक सामाजिक चेतना के तत्त्वों को पहचाना जा सकता है। कुछ लोगों की यह धारणा है कि जनतान्त्रिक सामाजिक चेतना की अवधारणा पश्चिमी जनतन्त्र—यूनान के प्राचीन नगर राज्य और कालान्तर में फ्रांस की राज्य क्रान्ति की देन है। पर सर्वथा ऐसा मानना ठीक नहीं। प्राचीन भारतीय राजतन्त्र व्यवस्था में आधुनिक इंगलैण्ड की भांति सीमित व वैधानिक राजतन्त्र से युक्त प्रजातन्त्रात्मक शासन के बीज विद्यमान थे। जन सभाओं और विशिष्ट आध्यात्मिक ऋषियों द्वारा राजतन्त्र सीमित था। स्वयं भगवान महावीर लिच्छिवीगण राज्य से संबंधित थे। यह अवश्य है कि पश्चिमी जनतन्त्र और भारतीय जनतन्त्र की विकास प्रक्रिया और उद्देश्यों में अन्तर रहा है, उसे इस प्रकार समझा जा सकता है —

1. पश्चिम में स्थानीय शासन की उत्पत्ति केन्द्रीय शक्ति से हुई है जबकि भारत में इसकी उत्पत्ति जन-समुदाय की शक्ति से हुई है।

2. पाश्चात्य जनतान्त्रिक राज्य पूंजीवाद, उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के बल पर फले-फूले हैं। वे अपनी स्वतन्त्रता के लिये तो संघर्ष करते हैं पर दूसरे देशों को राजनैतिक दासता का शिकार बना कर उन्हें स्वशासन के अधिकार से वंचित रखने की साजिश करते हैं। पर भारतीय जनतन्त्र का रास्ता इससे भिन्न है। उसने आर्थिक शोषण और राजनैतिक प्रभुत्व के उद्देश्यों से कभी बाहरी देशों पर आक्रमण नहीं किया। उसकी नीति शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व और अन्तरराष्ट्रीय सहयोग की रही है।

3. पश्चिमी देशों ने पूंजीवादी और साम्यवादी दोनों प्रकार के जनतन्त्रों को स्थापित करने में रक्तपात, हत्याकाण्ड और हिंसक क्रान्ति का सहारा लिया है पर भारतीय जनतन्त्र का विकास लोक-शक्ति और सामूहिक चेतना का फल है। अहिंसक प्रतिरोध और सत्याग्रह उसके मूल आधार रहे हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारतीय समाज-व्यवस्था में जनतन्त्र केवल राजनैतिक संदर्भ ही नहीं है। यह एक व्यापक जीवन पद्धति है, एक मानसिक दृष्टिकोण है जिसका संबंध जीवन के धार्मिक, नैतिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक सभी पक्षों से है। इस धरातल पर जब हम चिन्तन करते हैं तो मुख्यतः जैन दर्शन में और अधिकांशतः अन्य भारतीय दर्शनों में भी जनतांत्रिक सामाजिक चेतना के निम्न लिखित मुख्य तत्त्व रेखांकित किये जा सकते हैं:—

1 स्वतन्त्रता

2 समानता

3 लोककल्याण

4 सार्वजनीनता

1. स्वतन्त्रता.–स्वतन्त्रता जनतन्त्र की आत्मा है और जैन दर्शन की मूल भित्ति भी। जैन मान्यता के अनुसार जीव अथवा आत्मा स्वतन्त्र अस्तित्व वाला द्रव्य है। अपने अस्तित्व के लिये न तो यह किसी दूसरे द्रव्य पर आश्रित है और न इस पर आश्रित कोई अन्य द्रव्य है। इस दृष्टि से जीव को प्रभु कहा गया है –जिसका अभिप्राय यह है कि जीव स्वयं ही अपने उत्थान या पतन का उत्तरदायी है। सद्प्रवृत्त आत्मा ही उसका मित्र है और दुष्प्रवृत्त आत्मा ही उसका शत्रु है। स्वाधीनता और पराधीनता उसके कर्मों के अधीन है। वह अपनी साधना के द्वारा घाति-अघाति सभी प्रकार के कर्मों को नष्ट कर पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर सकता है। स्वयं परमात्मा बन सकता है। जैन दर्शन में यही जीव का लक्ष्य माना गया है। यहां स्वतन्त्रता के स्थान पर मुक्ति शब्द का प्रयोग हुआ है। इस मुक्ति प्राप्ति में जीव की साधना और उसका पुरुषार्थ ही मुख्य साधन है। मुक्ति-प्राप्ति के लिये स्वयं के आत्म को ही पुरुषार्थ में लगाना होगा। इस प्रकार जीव मात्र की गरिमा, महत्ता और इच्छा शक्ति को जैन दर्शन में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसीलिये यहां मुक्त जीव अर्थात् परमात्मा की गुणात्मक एकता के साथ-साथ मात्रात्मक अनेकता है। क्योंकि प्रत्येक जीव ईश्वर के सान्निध्य-सामीप्य-लाभ ही प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है, बल्कि स्वयं परमात्मा बनने के लिये क्षमतावान है। फलतः जैन दृष्टि में आत्मा ही परमात्मदशा प्राप्त करती है, पर कोई परमात्मा आत्मदशा प्राप्त कर पुनः अवतरित नहीं होता। इस प्रकार व्यक्ति के अस्तित्व के धरातल पर जीव को ईश्वराधीनता और कर्माधीनता दोनों से मुक्ति दिलाकर उसकी पूर्ण स्वतन्त्रता की रक्षा की गयी है।

कुछ लोगों का कहना है कि महावीर द्वारा प्रतिपादित कर्म सिद्धान्त स्वतन्त्रता का पूरी तौर से अनुभव नहीं कराता। क्योंकि वह एक प्रकार से आत्मा को कर्माधीन बना देता है। पर सच बात तो यह है कि महावीर की कर्माधीनता भाग्य द्वारा नियंत्रित न होकर पुरुषार्थ द्वारा संचालित है। महावीर स्पष्ट कहते हैं–'हे आत्मन्! तू स्वयं ही अपना निग्रह कर। ऐसा करने से तू दुखों से मुक्त हो जायेगा।' यह सही है कि आत्मा अपने कृत कर्मों को भोगने के लिये बाध्य है पर वह इतनी बाध्य नहीं कि वह उसमें परिवर्तन न ला सके। महावीर की दृष्टि में आत्मा को कर्मबन्ध में जितनी स्वतन्त्रता है, उतनी ही स्वतन्त्रता उसे कर्मफल के भोगने की भी है। आत्मा अपने पुरुषार्थ के बल पर कर्मफल में परिवर्तन ला सकती है। इस संबंध में भगवान् महावीर के कर्म-परिवर्तन के निम्नलिखित चार सिद्धान्त विशेष महत्त्वपूर्ण हैं —

(1) उदीरणा–नियत अवधि से पहले कर्म का उदय में आना।

(2) उद्वर्तन–कर्म की अवधि और फल देने की शक्ति में अभिवृद्धि होना।

(3) अपवर्तन—कर्म की अवधि और फल देने की शक्ति में कमी होना।

(4) संक्रमण—एक कर्म प्रकृति का दूसरी कर्म प्रकृति में संक्रमण होना।

उक्त सिद्धान्त के आधार पर भगवान् महावीर ने प्रतिपादित किया कि मनुष्य अपने पुरुषार्थ के बल से बन्धे हुए कर्मों की अवधि को घटा-बढ़ा सकता है और कर्मफल की शक्ति मन्द अथवा तीव्र कर सकता है। इस प्रकार नियत अवधि से पहले कर्म भोगा जा सकता है और तीव्र फल वाला कर्म मन्द फल वाले कर्म के रूप में मन्द फल वाला कर्म तीव्र फल वाले कर्म के रूप में बदला जा सकता है। यही नहीं, पुण्य कर्म के परमाणु को पाप के रूप में और पाप कर्म के परमाणु को पुण्य के रूप में संक्रान्त करने की क्षमता भी मनुष्य के स्वय के पुरुषार्थ में है। निष्कर्ष यह कि महावीर मनुष्य को इस बात की स्वतन्त्रता देते है कि यदि वह जागरूक है, अपने पुरुषार्थ के प्रति सच्चा है और विवेक पूर्वक अप्रमत्त भाव से अपने कार्य सम्पादित करता है, तो वह कर्म की अधीनता से मुक्त हो सकता है, परमात्म दशा (पूर्ण स्वतन्त्रता) को प्राप्त कर सकता है।

जैन दर्शन की यह स्वतन्त्रता निरकुश एकाधिकारवादिता की उपज नही है। इसमें दूसरो के अस्तित्व की स्वतन्त्रता की भी पूर्ण रक्षा है। इसी बिन्दु से अहिंसा का सिद्धान्त उभरता है जिसमें जन के प्रति ही नही, प्राणी मात्र के प्रति मित्रता और बन्धुत्व का भाव है। यहा जन अर्थात् मनुष्य ही प्राणी नही है और मात्र उसकी हत्या ही हिंसा नही है। जैन शास्त्रों मे प्राण अर्थात् जीवन शक्ति के दस भेद बताये गये है—सुनने की शक्ति, देखने की शक्ति, सूघने की शक्ति, स्वाद लेने की शक्ति, छूने की शक्ति, विचारने की शक्ति, बोलने की शक्ति, गमनागमन की शक्ति, श्वास लेने-छोड़ने की शक्ति और जीवित रहने की शक्ति। इनमें से प्रमत्त योग द्वारा किसी भी प्राण को क्षति पहुचाना, उस पर प्रतिबन्ध लगाना, उसकी स्वतन्त्रता में बाधा पहुचाना, हिंसा है। जब हम किसी के स्वतन्त्र चिंतन को बाधित करते है, उसके बोलने पर प्रतिबन्ध लगाते हैं और गमनागमन पर रोक लगाते है तो प्रकारान्तर मे क्रमश उसके मन, वचन और काया रूप प्राण की हिंसा करते है। इसी प्रकार किसी के देखने, सुनने, सूघने, चखने, छूने आदि पर प्रतिबंध लगाना भी विभिन्न प्राणो की हिंसा है। यह कहने की आवश्यकता नही कि स्वतन्त्रता का यह सूक्ष्म, उदात्त चिंतन ही हमारे संविधान के स्वतन्त्रता सबधी मौलिक अधिकारो का उत्स रहा है।

विचार-जगत मे स्वतन्त्रता का बड़ा महत्त्व है। आत्मनिर्णय और मताधिकार इसी के परिणाम है। कई साम्यवादी देशों मे सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता होते हुए भी इच्छा स्वातन्त्र्य का यह अधिकार नही है। पर जैन दर्शन में और हमारे संविधान में भी विचार स्वातन्त्र्य को सर्वोपरि महत्त्व दिया गया है।

जैन दर्शन की मान्यता के अनुसार जगत मे जड़ और चेतन दो पदार्थ है। सृष्टि का विकास इन्ही पर आधारित है। जीव का लक्षण चैतन्यमय कहा गया है। जीव अनन्त हैं और उनमें आत्मगत समानता होते हुए भी संस्कार, कर्म और बाह्य परिस्थिति आदि अनेक कारणों से उनके शारीरिक एव मानसिक विकास में बहुत ही अन्तर आ जाता है। इसी कारण सब की पृथक् सत्ता है और सब अपने कर्मानुसार फल भोगते हैं। अनन्त जीवो का पृथक्-पृथक् अस्तित्व होने तथा कर्मों की विविध वर्गणाओं के कारण उनके विचारों में विभिन्नता होना स्वाभाविक है। अलग-अलग जीवो की बात छोड़िये, एक ही मनुष्य में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार अलग-अलग विचार उत्पन्न होते रहते हैं। अत दार्शनिकों के समक्ष सदैव यह एक जटिल प्रश्न बना रहा कि इस विचारगत विषमता में समता कैसे स्थापित की जाये?

जैन तीर्थंकरों ने और विशेषतः भगवान् महावीर ने इस प्रश्न पर बहुत ही गंभीरतापूर्वक चिन्तन किया और निष्कर्ष रूप में कहा--प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक है। वह उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त है। द्रव्य में उत्पाद और व्यय से होने वाली अवस्थाओं को पर्याय कहा गया है। गुण कभी नष्ट नहीं होते और न अपने स्वभाव को बदलते हैं किन्तु पर्यायों के द्वारा अवस्था से अवस्थान्तर होते हुए सदैव स्थिर बने रहते हैं। जैसे स्वर्ण द्रव्य है। किसी ने उसके कड़े बनवा लिये और फिर उस कड़े से कंकण बनवा लिए तो यह पर्यायों का बदलना कहा जायेगा पर जो स्वर्णत्व गुण है वह हर अवस्था में स्थायी रूप से विद्यमान रहता है। ऐसी स्थिति में किसी वस्तु की एक अवस्था को देखकर उसे ही सत्य मान लेना और उस पर अड़े रहना हठवादिता या दुराग्रह है। एकान्त दृष्टि से किसी वस्तु विशेष का समग्र ज्ञान नहीं किया जा सकता। सापेक्ष दृष्टि से, अपेक्षा विशेष से देखने पर ही उसका सही व संपूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इस दृष्टिकोण के आधार पर भगवान् महावीर ने जीव, अजीव, लोक-द्रव्य आदि की नित्यता-अनित्यता, द्वैत-अद्वैत, अस्तित्व-नास्तित्व जैसी विकट दार्शनिक पहेलियों को सरलता पूर्वक सुलझाया और समन्वयवाद की आधारभित्ति के रूप में कथन की स्याद्वाद शैली का प्रतिपादन किया।

जब व्यक्ति में इस प्रकार की वैचारिक उदारता का जन्म होता है तब वह अहं, भय, घृणा, क्रोध, हिंसा आदि भावों से विरत होकर सरलता, प्रेम, मैत्री, अहिंसा और अभय जैसे लोक-हितवाही मांगलिक भावों में रमण करने लगता है। उसे विभिन्नता में अभिन्नता और अनेकत्व में एकत्व के दर्शन होने लगते हैं।

महावीर ने स्पष्ट कहा कि प्रत्येक जीव का स्वतन्त्र अस्तित्व है, इसलिये उसकी स्वतन्त्र विचार-चेतना भी है। अतः जैसा तुम सोचते हो एक मात्र वही सत्य नहीं है। दूसरे जो सोचते है उसमे भी सत्यांश निहित है। अतः पूर्ण सत्य का साक्षात्कार करने के लिये इतर लोगो के सोचे हुये, अनुभव किये हुए सत्यांशों को भी महत्त्व दो। उन्हें समझो, परखो और उसके आलोक मे अपने सत्य का परीक्षण करो। इसमे न केवल तुम्हे उस सत्य का साक्षात्कार होगा वरन् अपनी भूलो के प्रति सुधार करने का अवसर भी मिलेगा। प्रकारान्तर से महावीर का यह चिन्तन जनतान्त्रिक शासन-व्यवस्था में स्वस्थ विरोधी पक्ष की आवश्यकता और महत्ता प्रतिपादित करता है तथा इस बात की प्रेरणा देता है कि किसी भी तथ्य को भली प्रकार समझने के लिये अपने को विरोध पक्ष की स्थिति में रखकर उस पर चिंतन करो। तब जो सत्य निखरेगा वह निर्मल, निर्विकार और निष्पक्ष होगा। महावीर का यह वैचारिक औदार्य और सापेक्ष चिंतन स्वतन्त्रता का रक्षा कवच है। यह दृष्टिकोण अनेकांत सिद्धांत के रूप मे प्रतिपादित है।

2. समानता:—स्वतन्त्रता की अनुभूति वातावरण और अवसर की समानता पर निर्भर है। यदि समाज में जातिगत वैषम्य और आर्थिक असमानता है तो स्वतन्त्रता के प्रदत्त अधिकारो का भी कोई विशेष उपयोग नही। इसलिये महावीर ने स्वतन्त्रता पर जितना बल दिया उतना ही बल समानता पर दिया। उन्हें जो विरक्ति हुई वह केवल जीवन की नश्वरता या सांसारिक असारता को देखकर नही, वरन् मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण देखकर वे तिलमिला उठे और उस शोषण को मिटाने के लिये, जीवन के हर स्तर पर समता स्थापित करने के लिये उन्होंने क्रांति की, तीर्थ-प्रवर्तन किया। एक ओर, भक्त और भगवान के बीच पनपे धर्म दलाली को अनावश्यक बताकर, भक्त और भगवान के बीच गुणात्मक संबंध जोड़ा। जन्म के स्थान पर कर्म को प्रतिष्ठित कर गरीबों, दलितों और असहायो को उच्च आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त करने की कला सिखायी। अपने साधना काल में कठोर अभिग्रह धारण कर दासी बनी, हथकड़ी और बेड़ियों में जकड़ी, तीन दिन से भूखी, मुण्डितकेश राजकुमारी चंदना से आहार ग्रहण कर, उच्च क्षत्रिय राजकुल की महारानियों के मुकाबले समाज में निकृष्ट समझी जाने वाली नारी शक्ति की आध्यात्मिक गरिमा और महिमा प्रतिष्ठापित की। जातिवाद

और वर्णवाद के खिलाफ छेड़ी गयी यह सामाजिक क्रांति भारतीय जनतन्त्र की सामाजिक समानता का मुख्य आधार बनी है। यह तथ्य पश्चिम के सभ्य कहलाने वाले तथाकथित जनतान्त्रिक देशों की रंगभेद नीति के विरुद्ध एक चुनौती है।

महावीर दूरदृष्टा, विचारक और अनन्तज्ञानी साधक थे। उन्होंने अनुभव किया कि आर्थिक समानता के बिना सामाजिक समानता अधिक समय तक कायम नहीं रह सकती और राजनैतिक स्वाधीनता भी आर्थिक स्वाधीनता के अभाव में कल्याणकारी नहीं बनती। इसलिये महावीर का सारा बल अपरिग्रह भावना पर रहा। एक ओर उन्होंने एक ऐसी साधु संस्था खड़ी की जिसके पास रहने को अपना कोई आगार नहीं। कल के खाने की आज कोई निश्चित व्यवस्था नहीं, सुरक्षा के लिये जिसके पास कोई साधन-संग्रह नहीं, जो अनगार है, भिक्षुक है, पाद-विहारी है, निर्ग्रन्थ है, श्रमण है, अपनी श्रम-साधना पर जीता है और दूसरों के कल्याण के लिये समर्पित है उसका सारा जीवन। जिसे समाज से कुछ लेना नहीं, देना ही देना है। दूसरी ओर उन्होंने उपासक संस्था-श्रावक संस्था खड़ी की जिसके परिग्रह की मर्यादा है। जो अणुव्रती है।

श्रावक के बारह व्रतों पर जब हम चिंतन करते हैं तो लगता है कि अहिंसा के समानान्तर ही परिग्रह की मर्यादा और नियमन का विचार चला है। गृहस्थ के लिये महावीर यह नहीं कहते कि तुम संग्रह न करो। उनका बल इस बात पर है कि आवश्यकता से अधिक संग्रह मत करो। और जो संग्रह करो उस पर स्वामित्व की भावना मत रखो। पाश्चात्य जनतान्त्रिक देशों में स्वामित्व को नकारा नहीं गया है। वहां सम्पत्ति को एक स्वामी से छीन कर दूसरे को स्वामी बना देने पर बल है। इस व्यवस्था में ममता टूटती नहीं, स्वामित्व बना रहता है और जब तक स्वामित्व का भाव है—संघर्ष है, वर्ग भेद है। वर्ग-विहीन समाज रचना के लिये स्वामित्व का विसर्जन जरूरी है। महावीर ने इसलिये परिग्रह को सम्पत्ति नहीं कहा उसे मूर्च्छा या ममत्व भाव कहा है। साधु तो नितान्त अपरिग्रही होता है, गृहस्थ भी धीरे-धीरे उस ओर बढ़े, यह अपेक्षा है। इसीलिये महावीर ने श्रावक के बारह व्रतों में जो व्यवस्था दी है वह एक प्रकार से स्वैच्छिक स्वामित्व-विसर्जन और परिग्रह-मर्यादा, सीलिंग की व्यवस्था है। आर्थिक विषमता के उन्मूलन के लिये यह आवश्यक है कि व्यक्ति के अर्जन के स्रोत और उपभोग के लक्ष्य मर्यादित और निश्चित हो। बारह व्रतों में तीसरा अस्तेय व्रत इस बात पर बल देता है कि चोरी करना ही वर्जित नहीं है बल्कि चोर द्वारा चुराई हुई वस्तु को लेना, चोर को प्रेरणा करना, उसे किसी प्रकार की सहायता करना, राज्य नियमों के विरुद्ध प्रवृत्ति करना, झूठा नाप-तोल करना, झूठा दस्तावेज लिखना, झूठी साक्षी देना, वस्तुओं में मिलावट करना, अच्छी वस्तु दिखाकर घटिया दे देना आदि सब पाप हैं। आज की बढ़ती हुई चोर-बाजारी, टैक्स चोरी, खाद्य पदार्थों में मिलावट की प्रवृत्ति आदि सब महावीर की दृष्टि से व्यक्ति को पाप की ओर ले जाते हैं और समाज में आर्थिक-विषमता के कारण बनते हैं। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिये पांचवें व्रत में उन्होंने खेत, मकान, सोना-चांदी आदि जेवरात, धन-धान्य, पशु-पक्षी, जमीन-जायदाद आदि को मर्यादित, आज की शब्दावली में इनका सीलिंग करने पर जोर दिया है और इच्छाओं को उत्तरोत्तर नियन्त्रित करने की बात कही है। छठे व्रत में व्यापार करने के क्षेत्र को सीमित करने का विधान है। क्षेत्र और दिशा का परिमाण करने से न तो तस्करवृत्ति को पनपने का अवसर मिलता है और न उपनिवेशवादी वृत्ति को बढ़ावा मिलता है। सातवें व्रत में अपने उपभोग में आने वाली वस्तुओं की मर्यादा करने की व्यवस्था है। यह एक प्रकार का स्वैच्छिक राशनिंग सिस्टम है। इससे व्यक्ति अनावश्यक संग्रह से बचता है और संयमित रहने से साधना की ओर प्रवृत्ति बढ़ती है। इसी व्रत में अर्थार्जन के ऐसे स्रोतों से बचते रहने की बात कही गयी है जिनसे हिंसा बढ़ती है, कृषि-उत्पादन को हानि पहुंचती है और असामाजिक तत्त्वों को प्रोत्साहन मिलता है। भगवान् महावीर ने ऐसे व्यवसायों को कर्मादान की संज्ञा दी है और उनकी संख्या पन्द्रह

बतलायी है। आज के संदर्भ में इंगालकम्मे—जंगल में आग लगाना, असईजणपोषणया—असयति जनो का पोषण करना अर्थात् असामाजिक तत्वों को पोषण देना, आदि पर रोक का विशेष महत्त्व है।

3. लोक कल्याण.—जैसा कि कहा जा चुका है महावीर ने गृहस्थों के लिये संग्रह का निषेध नही किया है बल्कि आवश्यकता से अधिक संग्रह न करने को कहा है। इसके दो फलितार्थ है—एक तो यह कि व्यक्ति अपने लिये जितना आवश्यक हो उतना ही उत्पादन करे। दूसरा यह कि अपने लिये जितना आवश्यक हो उतना तो उत्पादन करे ही और दूसरो के लिये जो आवश्यक हो उसका भी उत्पादन करे। यह दूसरा अर्थ ही अभीष्ट है। जैन धर्म पुरुषार्थ प्रधान धर्म है अत वह व्यक्ति को निष्क्रिय व अकर्मण्य बनाने की शिक्षा नही देता। राष्ट्रीय उत्पादन मे व्यक्ति की महत्त्वपूर्ण भूमिका को जैन दर्शन स्वीकार करता है पर वह उत्पादन शोषण, जमाखोरी और आर्थिक विषमता का कारण न बने, इसका विवेक रखना आवश्यक है। सरकारी कानून-कायदे तो इस दृष्टि से समय-समय पर बनते ही रहते हैं पर जैन साधना में व्रत-नियम, तप-त्याग और दान-दया के माध्यम से इस पर नियन्त्रण रखने का विधान है। तपों में वैयावृत्य अर्थात् सेवा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसी सेवा-भाव से धर्म का सामाजिक पक्ष उभरता है। जैन धर्मावलम्बियो ने शिक्षा, चिकित्सा, छात्रवृत्ति, विधवा सहायता आदि के रूप मे अनेक ट्रस्ट खडे कर राष्ट्र की महान सेवा की है। हमारे यहा शास्त्रो में पैसा अर्थात् रुपयो के दान का विशेष महत्त्व नही है। यहां विशेष महत्व रहा है—आहारदान, ज्ञानदान, औषधदान और अभयदान का। स्वय भूखे रह कर दूसरो को भोजन कराना पुण्य का कार्य माना गया है। अनशन अर्थात् भूखा रहना, अपने प्राणो के प्रति मोह छोड़ना, प्रथम तप कहा गया है पर दूसरो को भोजन, स्थान, वस्त्र आदि देना, उनके प्रति मन से शुभ प्रवृत्ति करना, वाणी से हित-वचन बोलना और शरीर मे शुभ व्यापार करना तथा समाज-सेवियों व लोक-सेवको का आदर-सत्कार करना भी पुण्य माना गया है। इसके विपरीत किसी का भोजन-पानी से विच्छेद करना 'भत्तपाणवुच्छेए' अतिचार, पाप माना गया है।

महावीर ने स्पष्ट कहा है—जैसे जीवित रहने का हमें अधिकार है वैसे ही अन्य प्राणियो को भी। जीवन का विकास संघर्ष पर नही सहयोग पर ही आधारित है। जो प्राणी जितना अधिक उन्नत और प्रबुद्ध है, उसमें उसी अनुपात मे सहयोग और त्यागवृत्ति का विकास देखा जाता है। मनुष्य सभी प्राणियो मे श्रेष्ठ है। इस नाते दूसरो के प्रति सहयोगी बनना उसका मूल स्वभाव है। अन्त करण मे सेवा-भाव का उद्रेक तभी होता है जब "आत्मवत् सर्वभूतेषु" जैसा उदात्त विचार शेष सृष्टि के साथ आत्मीय सबध जोड पाता है। इस स्थिति में जो सेवा की जाती है वह एक प्रकार से सहज स्फूर्त सामाजिक दायित्व ही होता है। लोक-कल्याण के लिये अपनी सम्पत्ति विसर्जित कर देना एक बात है और स्वय सक्रिय घटक बन कर सेवा कार्यों मे जुट जाना दूसरी बात है। पहला सेवा का नकारात्मक रूप है जबकि दूसरी में सकारात्मक रूप। इसमे सेवाव्रती 'स्लीपिंग पार्टनर' बन कर नही रह सकता, उसे सजग प्रहरी बन कर रहना होता है।

लोक-सेवक में सरलता, सहृदयता और संवेदनशीलता का गुण होना आवश्यक है। सेवाव्रती को किसी प्रकार का अहम् न छू पाये और वह सत्तालिप्सु न बन जाये, इस बात की सतर्कता पद-पद पर बरतनी जरूरी है। विनय को, जो धर्म का मूल कहा गया है, उसकी अर्थवत्ता इस संदर्भ में बड़ी गहरी है।

लोक-सेवा के नाम पर अपना स्वार्थ साधने वालों को महावीर ने इस प्रकार चेतावनी दी है:—

असंविभागी असंगहरुई अप्पमाणभोई ।
से तारिसए नाराहए वयमिण ॥

अर्थात्—जो असंविभागी है—जीवन साधनों पर व्यक्तिगत-स्वामित्व की सत्ता स्थापित कर दूसरों के प्रकृति प्रदत्त संविभाग को नकारता है, असग्रहरुचि—जो अपने लिये ही संग्रह करके रखता है और दूसरों के लिये कुछ भी नहीं रखता, अप्रमाण भोजी—मर्यादा से अधिक भोजन एवं जीवन-साधनों का स्वयं उपभोग करता है, वह आराधक नहीं, विराधक है।

4. सार्वजनीनता.—स्वतन्त्रता, समानता और लोककल्याण का भाव सार्वजनीनता (धर्म निरपेक्षता) की भूमि में ही फल-फूल सकता है। धर्म निरपेक्षता का अर्थ धर्म-विमुखता या धर्म-रहितता न होकर असाम्प्रदायिक भावना और सार्वजनीन समभाव से है। हमारे देश मे विविध धर्म और धर्मानुयायी हैं। इन विविध धर्मों के अनुयायियो में पारस्परिक सौहार्द, सम्मान और ऐक्य की भावना बनी रहे, सब को अपने-अपने ढंग से उपासना करने और अपने-अपने धर्म का विकास करने का पूर्ण अवसर मिले तथा धर्म के आधार पर किसी के साथ भेद भाव या पक्ष-पात न हो, इसी दृष्टि से धर्म निरपेक्षता हमारे सविधान का महत्वपूर्ण अंग बना है। धर्म निर-पेक्षता की इस अर्थभूमि के अभाव में न स्वतन्त्रता टिक सकती है और न समानता और न लोक कल्याण की भावना पनप सकती है। जैन तीर्थंकरो ने सभ्यता के प्रारम्भ मे ही शायद यह तथ्य हृदयंगम कर लिया था। इसीलिये उनका सारा चिन्तन धर्म-निरपेक्षता अर्थात् सार्वजनीन समभाव के रूप मे ही चला। इस सबध में निम्नलिखित तथ्य विशेष महत्वपूर्ण हैं:—

(1) जैन तीर्थंकरो ने अपने नाम पर धर्म का नामकरण नही किया। 'जैन' शब्द, बाद का शब्द है। इसे समण (श्रमण), अर्हत् और निर्ग्रन्थ धर्म कहा गया है। 'श्रमण' शब्द समभाव, श्रमशीलता और वृत्तियो के उपशमन का परिचायक है। अर्हत् शब्द भी गुणवाचक है। जिसने पूर्ण योग्यता-पूर्णता प्राप्त करली है वह है—अर्हत्। जिसने सब प्रकार की ग्रन्थियों से छुटकारा पा लिया है वह है 'निर्ग्रन्थ'। जिन्होने राग-द्वेष रूप शत्रुओं—आन्तरिक विकारों को जीत लिया है वे 'जिन' कहे गये हैं और उनके अनुयायी जैन। इस प्रकार जैन धर्म किसी विशेष व्यक्ति, सम्प्रदाय या जाति का परिचायक न होकर उन उदात्त जीवन आदर्शों और सार्वजनीन भावों का प्रतीक है जिनमे संसार के सभी प्राणियों के प्रति आत्मौपम्य मैत्री-भाव निहित है।

(2) जैन धर्म मे जो नमस्कार मन्त्र है, उसमे किसी तीर्थंकर, आचार्य या गुरु का नाम लेकर वन्दना नही की गई है। उसमे पंच परमेष्ठियों को नमन किया गया है—णमो अरिहंताण, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाण, णमो उवज्झायाण, णमो लोए सव्वसाहूण। अर्थात् जिन्होने अपने अन्तरग शत्रुओ पर विजय प्राप्त करली है, उन अरिहन्तों को नमस्कार हो, जो संसार के जन्म-मरण के चक्र से छूटकर शुद्ध परमात्मा बन गये हैं उन सिद्धों को नमस्कार हो, जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप आदि आचारो का स्वयं पालन करते हैं और दूसरों से करवाते हैं, उन आचार्यों को नमस्कार हो, जो आगमादि ज्ञान के विशिष्ट व्याख्याता हैं और जिनके सान्निध्य में रहकर दूसरे अध्ययन करते हैं, उन उपाध्यायों को नमस्कार हो, लोक में जितने भी सत्पुरुष हैं, उन सभी साधुओ को नमस्कार हो, चाहे वे किसी जाति, धर्म, मत या तीर्थ से संबंधित हो। कहना न होगा कि नमस्कार मंत्र का यह गुणनिष्ठ आधार जैन दर्शन की उदारचेता सार्वजनीन भावना का मेरु-दण्ड है।

(3) जैन दर्शन ने आत्म-विकास अर्थात् मुक्ति को सम्प्रदाय के साथ नही बल्कि धर्म के साथ जोड़ा है। महावीर ने कहा—किसी भी परम्परा या सम्प्रदाय में दीक्षित, किसी भी लिंग मे स्त्री हो या पुरुष, किसी भी वेश में साधु हो या गृहस्थ, व्यक्ति अपना पूर्ण विकास कर सकता है। उसके लिये यह आवश्यक नही कि वह महावीर द्वारा स्थापित धर्म-संघ में ही दीक्षित हो। महावीर ने अश्रुत्वा केवली को जिसने कभी भी धर्म को सुना भी नही, परन्तु चित्त की निर्मलता के कारण, केवल ज्ञान की कक्षा तक पहुंचाया है। पन्द्रह प्रकार के सिद्धों मे अन्य लिंग और प्रत्येक बुद्ध सिद्धों को जो किसी सम्प्रदाय या धार्मिक परम्परा से प्रेरित होकर नही, बल्कि अपने ज्ञान से प्रबुद्ध होते हैं, सम्मिलित कर महावीर ने साम्प्रदायिकता की निस्सारता सिद्ध कर दी है।

वस्तुत. धर्म निरपेक्षता का अर्थ धर्म के सत्य से साक्षात्कार करने की तटस्थ वृत्ति से है। निरपेक्षता अर्थात् अपने लगाव और दूसरो के द्वेष भाव के परे रहने की स्थिति। इसी अर्थ मे जैन दर्शन मे धर्म की विवेचना करते हुए वस्तु के स्वभाव को धर्म कहा है। जब महावीर से पूछा गया कि आप जिसे नित्य, ध्रुव और शाश्वत धर्म कहते है वह कौनसा है ? तब उन्होंने कहा—किसी प्राणी को मत मारो, उपद्रव मत करो, किसी को परिताप न दो और न किसी की स्वतन्त्रता का अपहरण करो। इस दृष्टि से जैन धर्म के तत्व प्रकारान्तर से जनतान्त्रिक सामाजिक चेतना के ही तत्व है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि जैन दर्शन जनतान्त्रिक सामाजिक चेतना से प्रारम्भ से ही अपने तत्कालीन सदर्भों मे सम्पृक्त रहा है। उसकी दृष्टि जनतन्त्रात्मक परिवेश में राज-नैतिक क्षितिज तक ही सीमित नही रही है। उसने स्वतन्त्रता और समानता जैसे जनतान्त्रिक मूल्यों को लोकभूमि मे प्रतिष्ठित करने की दृष्टि से अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह जैसे मूल्यवान सूत्र दिये हैं और वैयक्तिक तथा सामाजिक धरातल पर धर्मसिद्धातों की मनोविज्ञान और समाजविज्ञान सम्मत व्यवस्था दी है। इससे निश्चय ही सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र मे सास्कृतिक स्वराज्य स्थापित करने की दिशा मिलती है।

सास्कृतिक समन्वय और भावनात्मक एकता

जैन धर्म ने सास्कृतिक समन्वय और एकता की भावना को भी बलवती बनाया। यह समन्वय विचार और आचार दोनो क्षेत्रो में देखने को मिलता है। विचार-समन्वय के लिये अनेकान्त दर्शन की देन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भगवान् महावीर ने इस दर्शन की मूल भावना का विश्लेषण करते हुए सासारिक प्राणियो को बोध दिया—किसी बात को, सिद्धान्त को एक तरफ से मत देखो, एक ही तरह उस पर विचार मत करो। तुम जो कहते हो वह सच होगा पर दूसरे जो कहते हैं वह भी सच हो सकता है। इसलिये सुनते ही भडको मत, वक्ता के दृष्टिकोण से विचार करो।

आज ससार मे जो तनाव और द्वन्द्व है वह दूसरों के दृष्टिकोण को न समझने या विपर्यय रूप से समझने के कारण है। अगर अनेकान्तवाद के आलोक मे सभी व्यक्ति और राष्ट्र चिन्तन करने लग जायें तो झगड़े की जड ही न रहे। मानव-सस्कृति के रक्षण और प्रसार में जैन धर्म की यह देन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

आचार-समन्वय की दिशा में मुनि-धर्म और गृहस्थ धर्म की व्यवस्था दी है। प्रवृति और निवृत्ति का सामजस्य किया गया है। ज्ञान और क्रिया का, स्वाध्याय और सामायिक का सन्तुलन इसीलिये आवश्यक माना गया है। मुनिधर्म के लिये महाव्रतों के परिपालन का विधान है। वहां सर्वथा-प्रकारेण हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह के त्याग की बात कही गई है।

गृहस्थ धर्म में अणुव्रतों की व्यवस्था दी गई है, जहां यथाशक्य इन आचार-नियमों का पालन अभिप्रेत है। प्रतिमाधारी श्रावक वानप्रस्थाश्रमी की तरह और साधु संन्यासाश्रमी की तरह माना जा सकता है।

सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से जैनधर्म का मूल्यांकन करते समय यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि उसने सम्प्रदायवाद, जातिवाद, प्रान्तीयतावाद, आदि सभी मतभेदों को त्याग कर राष्ट्र-देवता को बड़ी उदार और आदर की दृष्टि से देखा है। सामान्यतः धर्म के विकसित होने के कुछ विशिष्ट क्षेत्र होते हैं। उन्हीं दायरों में वह धर्म बन्धा हुआ रहता है पर जैन धर्म इस दृष्टि से किसी जनपद या प्रान्त विशेष में ही बन्धा हुआ नहीं रहा। उसने भारत के किसी एक भाग विशेष को ही अपनी श्रद्धा का, साधना का और चिन्तना का क्षेत्र नहीं बनाया। वह सम्पूर्ण राष्ट्र को अपना मानकर चला। धर्म का प्रचार करने वाले विभिन्न तीर्थंकरों की जन्मभूमि, दीक्षास्थली, तपोभूमि, निर्वाणस्थली, आदि अलग-अलग रही है। भगवान् महावीर विदेह (उत्तर बिहार) में उत्पन्न हुए तो उनका साधना क्षेत्र व निर्वाण स्थल मगध (दक्षिण बिहार) रहा। तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जन्म तो वाराणसी में हुआ पर उनका निर्वाण स्थल बना सम्मेतशिखर। प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव अयोध्या में जन्मे, पर उनकी तपोभूमि रही कैलाश पर्वत और भगवान् अरिष्टनेमि का कर्म व धर्म क्षेत्र रहा गुजरात–सौराष्ट्र। दक्षिण भारत में इसके प्रचार-प्रसार का सम्बन्ध भद्रबाहु से जुड़ा हुआ है। कहा जाता है कि 300 ई. पूर्व के लगभग जब उत्तर भारत में द्वादशवर्षीय दुष्काल पड़ा तब उसके निवारणार्थ श्रुतकेवली भद्रबाहु, चन्द्रगुप्त मौर्य व अन्य मुनियों तथा श्रावकों के साथ कर्नाटक में जाकर कल्वप्पु (वर्तमान श्रवण बेलगोल) में बसे। लगता है यहां इसके पूर्व भी जैनधर्म का विशेष प्रभाव था। इसी कारण यहां भद्रबाहु को अनुकूलता रही। यहीं से भद्रबाहु ने अपने साथी मुनि विशाख को तमिल प्रदेश भेजा। वर्ण-व्यवस्था के दुष्परिणाम से पीड़ित तमिलनाडु जैन धर्म के सर्वजाति समभाव सिद्धान्त से अत्यन्त प्रभावित हुआ और वहां उसका खूब प्रचार-प्रसार हुआ। तिरुवल्लुवर का 'तिरुकुरल' तमिलवेद के रूप में समादृत हुआ। इसमें 1330 कुरलों के माध्यम से धर्म, अर्थ और काम की सम्यक् व्याख्या की गई है। आन्ध्रप्रदेश भी जैन धर्म से प्रभावित रहा। प्रसिद्ध आचार्य कालक पैठन के राजा के गुरु थे। इस प्रकार देश की चप्पा-चप्पा भूमि इस धर्म की श्रद्धा और शक्ति का आधार बनी।

जैन धर्म की यह सांस्कृतिक एकता देशगत ही नहीं रही। भाषा और साहित्य में भी उसने समन्वय का यह औदार्य प्रकट किया। जैनाचार्यों ने संस्कृत को ही नहीं अन्य सभी प्रचलित लोक-भाषाओं को अपनाकर उन्हें समुचित सम्मान दिया। जहां-जहां भी वे गए वहां-वहां की भाषाओं को चाहे वे आर्य-परिवार की हों, चाहे द्राविड परिवार की—अपने उपदेश और साहित्य का माध्यम बनाया। इसी उदार प्रवृत्ति के कारण मध्ययुगीन विभिन्न जनपदीय भाषाओं के मूल रूप सुरक्षित रह सके हैं। आज जब भाषा के नाम पर विवाद और मतभेद हैं तब ऐसे समय में जैन धर्म की यह उदार दृष्टि अभिनन्दनीय ही नहीं, अनुकरणीय भी है।

साहित्यिक समन्वय की दृष्टि से तीर्थंकरों के अतिरिक्त राम और कृष्ण जैसे लोकप्रिय चरित्र-नायकों को जैन साहित्यकारों ने सम्मान का स्थान दिया। ये चरित्र जैनियों के अपने बन कर आए हैं। यही नहीं, जो पात्र अन्यत्र घृणित और बीभत्स दृष्टि से चित्रित किए गए हैं वे भी यहां उचित सम्मान के अधिकारी बने हैं। इसका कारण शायद यह रहा कि जैन साहित्यकार दूसरों की भावनाओं को किसी प्रकार की ठेस नहीं पहुंचाना चाहते थे। यही कारण है कि वासुदेव के शत्रुओं को भी प्रतिवासुदेव का उच्च पद दिया गया है। नाग, यक्ष आदि को भी अनार्य न मान कर तीर्थंकरों का रक्षक माना है और उन्हें देवालयों में स्थान दिया है। कथा-

प्रबन्धो में जो विभिन्न छन्द और राग-रागिनिया प्रयुक्त हुई हैं उनकी तर्जें वैष्णव साहित्य के सामंजस्य को सूचित करती हैं। कई जैनेतर संस्कृत और डिंगल ग्रथो की लोकभाषाओं में टीकायें लिख कर भी जैन विद्वानों ने इस सास्कृतिक विनिमय को प्रोत्साहन दिया है।

जैन धर्म अपनी समन्वय भावना के कारण ही सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार की भक्ति पद्धति का आदर कर सका। गोस्वामी तुलसीदास के समय इन दोनो भक्ति धाराओं में जो समन्वय दिखाई पड़ता है उसके बीज जैन भक्तिकाल में आरम्भ से मिलते है। जैन दर्शन में निराकार आत्मा और वीतराग साकार भगवान के स्वरूप में एकता के दर्शन होते हैं। पच-परमेष्ठी महामन्त्र में सगुण और निर्गुण भक्ति का सुन्दर सामजस्य है। अर्हन्त सकल परमात्मा हैं, वे सशरीर है जबकि सिद्ध निराकार हैं। एक ही मगलाचरण मे इस प्रकार का समभाव अन्यत्र दुर्लभ है।

जैन धर्म का लोक संग्राहक रूप

धर्म का आविर्भाव जब कभी हुआ विषमता मे समता, अव्यवस्था में व्यवस्था और अपूर्णता मे सम्पूर्णता स्थापित करने के लिये ही हुआ। अत यह स्पष्ट है कि इसके मूल मे वैयक्तिक अभिक्रम अवश्य रहा पर उसका लक्ष्य समष्टिमूलक हित ही रहा है, उसका चिन्तन लोकहित की भूमिका पर ही अग्रसर हुआ है।

पर सामान्यत जब कभी जैन धर्म या श्रमण धर्म के लोक-सग्राहक रूप की चर्चा चलती है तब लोग चुप्पी साध लेते है। इसका कारण मेरी समझ मे यह रहा है कि जैन दर्शन मे वैयक्तिक मोक्ष पर बल दिया गया है। पर जब हम जैन दर्शन का सम्पूर्ण सदर्भों में अध्ययन करते है तो उसके लोक-सग्राहक रूप का मूल उपादान प्राप्त हो जाता है।

लोक-सग्राहक रूप का सबसे बडा प्रमाण है लोक-नायकों के जीवन-क्रम की पवित्रता, उनके कार्य-व्यापारो की परिधि और जीवन-लक्ष्य की व्यापकता। जैन धर्म के प्राचीन ग्रन्थो मे ऐसे कई उल्लेख आते है कि राजा श्रावक धर्म अगीकार कर, अपनी सीमाओं में रहते हुए, लोक-कल्याणकारी प्रवृत्तियो का सचालन एव प्रसारण करता है। पर काल-प्रवाह के साथ उसका चिन्तन बढता चलता है और वह देश विरति श्रावक से सर्वविरति श्रमण बन जाता है। सामारिक माया-मोह, पारिवारिक प्रपच, देह-आसक्ति आदि से विरत होकर वह सच्चा साधु, तपस्वी और लोक-सेवक बन जाता है। इस रूप या स्थिति को अपनाते ही उसकी दृष्टि अत्यन्त व्यापक और उसका हृदय अत्यन्त उदार बन जाता है। लोक-कल्याण में व्यवधान पैदा करने वाले सारे तत्व अब पीछे छूट जाते है और वह जिस साधना पर बढ़ता है उसमे न किसी के प्रति राग होता है न द्वेष। वह सच्चे अर्थों मे श्रमण है।

श्रमण के लिये शमन, समण आदि शब्दो का भी प्रयोग होता है। उनके मूल मे भी लोक-सग्राहक वृत्ति काम करती रही है। लोक-सग्राहक वृत्ति का धारक सामान्य पुरुष हो ही नही सकता। उसे अपनी साधना से विशिष्ट गुणो को प्राप्त करना पड़ता है, क्रोधादि कषायो का शमन करना पडता है, पाच इन्द्रियो और मन को वशवर्ती बनाना पडता है, शत्रु-मित्र तथा स्वजन-परिजन की भेद भावना को दूर हटाकर सब में समताभाव नियोजित करना पड़ता है, समस्त प्राणियों के प्रति समभाव की धारणा करनी पडती है। तभी उसमें सच्चे श्रमण-भाव का रूप उभरने लगता है। वह विशिष्ट साधना के कारण तीर्थंकर तक बन जाता है। ये तीर्थंकर तो लोकोपदेशक ही होते हैं।

इस महान् साधना को जो साध लेता है वह श्रमण बारह उपमाओं से उपमित किया गया है:—

उरग-गिरि-जलण-सागर
णहतल-तरुगण-समो य जो होई।
भमर-मिय-धरणि-जलरुह
रवि-पवण समो य सो समणो ॥

अर्थात् जो सर्प, पर्वत, अग्नि, सागर, आकाश, वृक्षपवित, भ्रमर, मृग, पृथ्वी, कमल, सूर्य, और पवन के समान होता है, वह श्रमण कहलाता है।

ये सब उपमायें साभिप्राय दी गई हैं। सर्प की भांति ये साधु भी अपना कोई घर (बिल) नहीं बनाते। पर्वत की भांति ये परीषहों और उपसर्गों की आंधी से दोलायमान नहीं होते। अग्नि की भांति ज्ञान रूपी ईन्धन से ये तृप्त नहीं होते। समुद्र की भांति अथाह ज्ञान को प्राप्त कर भी ये तीर्थंकर की मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करते। आकाश की भांति ये स्वाश्रयी-स्वालम्बी होते हैं, किसी के अवलम्बन पर नहीं टिकते। वृक्ष की भांति समभाव पूर्वक दुःख-सुख को सहन करते हैं। भ्रमर की भांति किसी को बिना पीड़ा पहुंचाये शरीर-रक्षण के लिये आहार ग्रहण करते हैं। मृग की भांति पापकारी प्रवृत्तियों के सिंह से दूर रहते हैं। पृथ्वी की भांति, शीत, ताप, छेदन, भेदन आदि कष्टों को समभाव पूर्वक सहन करते हैं। कमल की भांति वासना के कीचड़ और वैभव के जल से अलिप्त रहते हैं। सूर्य की भांति स्वसाधना एव लोकोपदेशना के द्वारा अज्ञानान्धकार को नष्ट करते है। पवन की भांति सर्वत्र अप्रतिबद्ध रूप से विचरण करते हैं। ऐसे श्रमणों का वैयक्तिक स्वार्थ हो ही क्या सकता है?

ये श्रमण पूर्ण अहिंसक होते है। षट्काय। (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय) जीवों की रक्षा करते हैं। न किसी को मारते हैं, न किसी को मारने की प्रेरणा देते हैं और न जो प्राणियों का वध करते हैं, न उनकी अनुमोदना करते है। इनका यह अहिंसा प्रेम अत्यन्त सूक्ष्म और गंभीर होता है।

ये अहिंसा के साथ-साथ सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के भी उपासक होते हैं। किसी की वस्तु बिना पूछे नहीं उठाते। कामिनी और कंचन के सर्वथा त्यागी होते हैं। आवश्यकता से भी कम वस्तुओं का सेवन करते है। संग्रह करना तो इन्होंने सीखा ही नही। ये मनसा, वाचा, कर्मणा किसी का वध नहीं करते। हथियार उठाकर किसी अत्याचारी, अन्यायी राजा का नाश नही करते, लेकिन इससे उनके लोक संग्रही रूप में कोई कमी नही आती। भावना की दृष्टि से तो उसमे और वैशिष्ट्य आता है। ये श्रमण पापियो को नष्ट कर उनको मौत के घाट नहीं उतारते वरन् उन्हे आत्मबोध और उपदेश देकर सही मार्ग पर लाते है। ये पापी को मारने मे नही, उसे सुधारने में विश्वास करते हैं। यही कारण है कि महावीर ने विषदृष्टि सर्प चण्डकौशिक को मारा नही वरन् अपने प्राणों को खतरे में डाल कर, उसे उसके आत्मस्वरूप से परिचित कराया। बस फिर क्या था? वह विष से अमृत बन गया। लोक-कल्याण की यह प्रक्रिया अत्यन्त सूक्ष्म और गहरी है।

इनका लोक-सग्राहक रूप मानव सम्प्रदाय तक ही सीमित नही है। ये मानव के तनिक हित के लिये अन्य प्राणियों का बलिदान करना व्यर्थ ही नहीं धर्म के विरुद्ध समझते है। इनकी यह लोकसंग्रह की भावना इसलिये जनतन्त्र से आगे बढ़कर प्राणतन्त्र तक पहुंची है। यदि अयतना से किसी जीव का वध हो जाता है या प्रमादवश किसी को कष्ट पहुंचता है तो ये उन

सब पापों से दूर हटने के लिये प्रातः-सायं प्रतिक्रमण (प्रायश्चित) करते हैं। ये नंगे पैर पैदल चलते हैं। गांव-गांव और नगर-नगर में विचरण कर नैतिक चेतना और सुषुप्त पुरुषार्थ को जागृत करते हैं। चातुर्मास के अलावा किसी भी स्थान पर नियत-वास नहीं करते। अपने पास केवल इतनी वस्तुयें रखते हैं जिन्हें ये अपने आप उठाकर विचरण कर सकें। भोजन के लिये गृहस्थों के यहां से भिक्षा लाते हैं। भिक्षा भी जितनी आवश्यकता होती है उतनी ही। दूसरे समय के लिये भोजन का संचय ये नहीं करते। रात्रि मे न पानी पीते हैं न कुछ खाते है।

इनकी दैनिक चर्या भी बडी पवित्र होती है। दिन-रात ये स्वाध्याय, मनन-चिन्तन, लेखन और प्रवचन आदि मे लगे रहते हैं। सामान्यतः ये प्रतिदिन संसार के प्राणियो को धर्म-बोध देकर कल्याण के मार्ग पर अग्रसर करते हैं। इनका समूचा जीवन लोक-कल्याण मे ही लगा रहता है। इस लोकसेवा के लिये ये किसी से कुछ नही लेते।

श्रमण धर्म की यह आचारनिष्ठ दैनन्दिनचर्या इस बात का प्रबल प्रमाण है कि ये श्रमण सच्चे अर्थों में लोक-रक्षक और लोकसेवी हैं। यदि आपत्काल में अपनी मर्यादाओं से तनिक भी इधर-उधर होना पडता है तो उसके लिये भी ये दण्ड लेते है, व्रत-प्रत्याख्यान करते है। इतना ही नहीं जब कभी अपनी साधना मे कोई बाधा आती है तो उसकी निवृत्ति के लिये परीषह और उपसर्ग आदि की सेवना करते हैं। मै नहीं कह सकता, इससे अधिक आचरण की पवित्रता, जीवन की निर्मलता और लक्ष्य की सार्वजनीनता और किस लोक-संग्राहक की होगी?

सामान्यतः यह कहा जाता है कि जैनधर्म ने संसार को दुःखमूलक बताकर निराशा की भावना फैलाई है, जीवन मे सयम और विराग की अधिकता पर बल देकर उसकी अनुराग भावना और कला प्रेम को कुंठित किया है। पर यह कथन साधार नही है, भ्रांतिमूलक है। यह ठीक है कि जैन धर्म ने संसार को दुःखमूलक माना, पर किसलिये? अखण्ड आनन्द की प्राप्ति के लिये, शाश्वत सुख की उपलब्धि के लिये। यदि जैन धर्म संसार को दुःखपूर्ण मान कर ही रुक जाता, सुख प्राप्ति की खोज नही करता, उसके लिये साधना-मार्ग की व्यवस्था नही देता तो हम उसे निराशावादी कह सकते थे, पर उसमे तो मानव को महात्मा बनाने की, आत्मा को परमात्मा बनाने की आस्था का बीज छिपा हुआ है। देववाद के नाम पर अपने को असहाय और निर्बल समझी जाने वाली जनता को किसने आत्म-जागृति का सन्देश दिया? किसने उसके हृदय मे छिपे हुये पुरुषार्थ को जगाया? किसने उसे अपने भाग्य का विधाता बनाया? जैन धर्म की यह विचारधारा युगों बाद आज भी बुद्धिजीवियो की धरोहर बन रही है, संस्कृति को वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान कर रही है।

यह कहना भी कि जैन धर्म निरा निवृत्तिमूलक है, ठीक नहीं है। जीवन के विधान पक्ष को भी उसने महत्व दिया है। इस धर्म के उपदेशक तीर्थंकर लौकिक-अलौकिक वैभव के प्रतीक हैं। दैहिक दृष्टि से वे अनन्त बल, अनन्त सौन्दर्य और अनन्त पराक्रम के धनी होते है। इन्द्रादि मिलकर उनके पंच कल्याणक महोत्सवो का आयोजन करते हैं। उपदेश देने का उनका स्थान (समवसरण) कलाकृतियो से अलंकृत होता है। जैन धर्म ने जो निवृत्ति-मूलक बातें कहीं हैं, वे केवल उच्छृंखलता और असंयम को रोकने के लिये ही है।

जैन धर्म की कलात्मक देन अपने आप में महत्वपूर्ण और अलग से अध्ययन की अपेक्षा रखती है। वास्तुकला के क्षेत्र में विशालकाय कलात्मक मन्दिर, मेरुपर्वत की रचना, नंदीश्वर द्वीप व समवसरण की रचना, मानस्तम्भ, चैत्य, स्तूप आदि उल्लेखनीय है। मूर्तिकला मे विभिन्न तीर्थंकरों की मूर्तियों को देखा जा सकता है। चित्रकला में भित्तिचित्र, ताड़पत्रीय चित्र, काष्ठ चित्र, लिपिचित्र, वस्त्र चित्र आश्चर्य में डालने वाले है। इस प्रकार निवृत्ति और

प्रवृत्ति का समन्वय कर जैन धर्म ने संस्कृति को लचीला बनाया है। उसकी कठोरता को कला की आंख दी है तो उसकी कोमलता को संयम की दृढ़ता।

साहित्य-निर्माण के प्रेरक तत्त्व:

जैन साहित्य निर्माण लौकिक यश और सम्पदा प्राप्ति के लिए न किया जाकर आत्मशुद्धि, सामाजिक जागरण और लोक-मंगल की भावना से प्रेरित होकर किया जाता रहा है। यों तो साहित्य निर्माण में सन्तों और गृहस्थों दोनों का योग रहा है पर साहित्य का अधिकांश भाग सन्तों द्वारा ही निर्मित रहा है। सन्तों की आत्मानुभूति और लोक सम्पर्क का व्यापक अनुभव इस साहित्य को जीवन्त, प्राणवान और लोकभोग्य बनाये हुए है। तटस्थ वृत्ति और उदार दृष्टिकोण के कारण जीवन के नानाविध पक्षों को स्पर्श करने वाला यह साहित्य केवल भावना के स्तर पर ही निर्मित नहीं हुआ है, ज्ञान-चेतना के स्तर पर धर्मेतर विषयों से सम्बद्ध, यथा-गणित, वैद्यक, ज्योतिष, स्थापत्य पर भी विपुल परिमाण में साहित्य रचा गया है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। उसमें युग विशेष की घटनायें और प्रवृत्तियां प्रतिबिम्बित होती है। जैन साहित्य भी अपने युग के घटना-चक्रों से प्रेरित-प्रभावित रहा है और चूंकि सन्तों का सम्बन्ध उच्च-वर्ग से लेकर सामान्य-वर्ग तक बराबर बना रहता है, इस कारण यह साहित्य केवल अभिजात्य वर्ग की मनोवृत्ति का चितेरा बन कर नहीं रह गया है, इसमें सामान्य जन की आशा-आकांक्षा और लोक-जीवन की चित्त-वृत्तियां यथार्थ-रूप में चित्रित हुई हैं।

प्रतिदिन प्रवचन देना जैन सन्तों का मुख्य कर्तव्य-कर्म है। प्रवचन रोचक और सरस होने के साथ-साथ श्रोताओं में औत्सुक्यवृत्ति जगाये रख, तथा गूढ़ दार्शनिक-तात्विक सिद्धान्त सहज हृदयगम हो जावे, इस भावना से जैन सन्त प्रायः कथा-काव्य या चरित-काव्य की सृष्टि बराबर करते रहे हैं। अपने शिष्यों और श्रावकों में नियमित रूप से अध्ययन और स्वाध्याय का क्रम चलता रहे, इस भावना से प्रेरित होकर भी समय-समय पर नये ग्रन्थों की रचनायें होती रही है तथा प्राचीन शास्त्रीय ग्रन्थों पर टीकायें, व्याख्यायें और वचनिकायें लिखी जाती रही हैं। विभिन्न पर्व तिथियों, धार्मिक उत्सवों, जयन्तियों और विशेष समारोहों पर भी सामयिक साहित्य रचा जाता रहा है। श्रद्धेय महापुरुषों, प्रभावशाली मुनि-आचार्यों और विशिष्ट श्रावकों तथा प्रेरणादायी चरितों पर भी इतिहास की संवेदना के धरातल से जीवनी परक साहित्य लिखा जाता रहा है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्राचीन गौरव-गान, आराध्य के प्रति भक्ति-भाव, सिद्धान्त-निरूपण, व्यावहारिक ज्ञान, चरित्र-गठन, समाज-सुधार, राष्ट्रीय-जागरण, लोक-मंगल और विश्वजनीन भावों की स्फुरणा पैदा करने की भावना जैन साहित्य निर्माण में मूल प्रेरणा और कारक रही है।

साहित्य-रक्षण के प्रयत्न :

जैन साहित्य के मूल ग्रन्थ आगम है जो 'द्वादशांगी' कहे जाते हैं। जैन मान्यतानुसार तीर्थंकर अपनी देशना में जो अभिव्यक्त करते हैं, उनके प्रमुख शिष्य गणधर शासन के हितार्थ अपनी शैली में उन्हें सूत्रबद्ध करते हैं। वे ही बारह अंग प्रत्येक तीर्थंकर के शासन-काल में 'द्वादशांगी' सूत्र के रूप में प्रचलित एवं मान्य होते हैं। 'द्वादशांगी' का 'गणिपिटक' के नाम से भी उल्लेख किया गया है। इस मान्यता के अनुसार वर्तमान अवसर्पिणी काल के अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर द्वारा चतुर्विध तीर्थ की स्थापना के दिन जो प्रथम उपदेश इन्द्रभूति आदि

ग्यारह गणधरों को दिया गया, वह "द्वादशांगी" के रूप में सूत्रबद्ध किया गया। बारहवें अंग दृष्टिवाद का तो आज से बहुत समय पहले विच्छेद हो गया। आज जो एकादशांगी उपलब्ध है वह आर्य सुधर्मा की वाचना का ही परिणाम है।

समय-समय पर दीर्घकाल के दुर्भिक्ष आदि दैवी-प्रकोप के कारण श्रमण वर्ग एकादशांगी के पाठो का स्मरण, चिन्तन, मनन आदि नहीं कर सका, परिणाम स्वरूप सूत्रों के अनेक पाठ विस्मृत होने लगे। अतः अग शास्त्रों की रक्षा हेतु वीर निर्वाण सवत् 160 में स्थूलभद्र के तत्वावधान में पाटलिपुत्र में प्रथम आगम वाचना हुई। फलस्वरूप विस्मृत पाठों को यथातथ्यरूपेण सकलित कर विनष्ट होने से बचा लिया गया।

वीर निर्वाण सवत् 830 से 840 के बीच विषम स्थिति होने से फिर आगम-विच्छेद की स्थिति उत्पन्न हो गई अत. स्कन्दिलाचार्य के तत्वावधान में मथुरा में उत्तर भारत के श्रमणो की दूसरी वाचना हुई, जिसमे जिस-जिस स्थविर को जो-जो श्रुत पाठ स्मरण था, उसे सुन-सुनकर आगमों के पाठ को सुनिश्चित किया गया। मथुरा मे होने के कारण यह वाचना माथुरी वाचना के नाम से भी प्रसिद्ध है। ठीक इसी समय नागार्जुन ने दक्षिणापथ के श्रमणों को एकत्र कर वल्लभी मे वाचना की। इसके 150 वर्ष बाद वीर निर्वाण सवत् 980 मे देवर्द्धि क्षमा श्रमण के तत्वावधान मे वल्लभी में तीसरी वाचना हुई जिसमे शास्त्र लिपिबद्ध किये गये। कहा जाता है कि समय की विषमता, मानसिक दुर्बलता और मेधा की मन्दता आदि कारणो से जब सूत्रार्थ का ग्रहण एव परावर्तन कम हो गया, तो देवर्द्धि ने शास्त्रो को लिपिबद्ध करने का निर्णय किया। इसके पूर्व सामान्यत शास्त्र श्रुति परम्परा से ही सुरक्षित थे। देवर्द्धि क्षमाश्रमण के प्रत्यनों से ही शास्त्र पहली बार व्यवस्थित रूप में लिपिबद्ध किये गये। दिगम्बर परम्परा की मान्यता के अनुसार वीर निर्वाण सवत् 683 मे ही सम्पूर्ण द्वादशांगी विलुप्त हो गई।

जैन धर्म मे स्वाध्याय को आभ्यन्तर तप का अग माना गया है। स्वाध्याय के लिए ग्रन्थो का होना आवश्यक है। अत. नये-नये ग्रन्थो की रचना के साथ-साथ उनकी सुरक्षा करना भी धर्म का महत्त्वपूर्ण अग बन गया। मुद्रण के आविष्कार से पूर्व ग्रन्थ पाडुलिपियो के रूप में ही सुरक्षित रहते थे। उनकी सुरक्षा के लिए सन्तो की प्रेरणा से विभिन्न स्थानो पर ज्ञान भण्डार स्थापित किये जाते रहे। आज जो कुछ प्राचीन और मध्ययुगीन साहित्य उपलब्ध है, वह इन्हीं ज्ञान भण्डारों की देन है। महत्वपूर्ण ग्रन्थो की एक से अधिक प्रतिलिपियां करायी जाती थी। ग्रन्थो का यह प्रतिलिपिकरण कार्य श्रुत-सेवा का अग बन गया था। विशेष धार्मिक अवसरों पर यथा श्रुत-पचमी, ज्ञान-पचमी पर महत्वपूर्ण ग्रन्थों की प्रतिलिपिया पूर्ण कर आचार्यों और ज्ञान भण्डारों को समर्पित की जाती थी। प्रतिलिपिकरण का यह कार्य सन्तों और सतियों द्वारा भी सम्पन्न होता रहा।

साहित्य-रक्षण मे जैन समाज की बड़ी उदार दृष्टि रही है। गुणग्राहक होने से जहा भी जीवन-उन्नायक सामग्री मिलती, जैन संत उन्हे लिख लेते। इस प्रकार एक ही गुटके में विभिन्न लेखकों और विविध विषयो की ज्ञान वर्धक, आत्मोत्कर्षक, जीवनोपयोगी सामग्री संचित हो जाती। ऐसे अनेक गुटके आज भी विभिन्न ज्ञान भण्डारों में संगृहीत हैं।

जैन सन्त अपने प्रवचनो से सामान्यत: नैतिक शिक्षण के माध्यम से, सही ढंग से जीने की कला सिखाते हैं। यही कारण है कि उनके प्रवचनों में जैन कथाओं के साथ-साथ अन्य धर्मों तथा लोक-जीवन की विविध कथायें, दृष्टान्त और उदाहरण यथाप्रसंग आते रहते हैं। ठीक यही उदार भावना ग्रन्थों के संरक्षण और प्रतिलिपिकरण में रही है। इसका सुखद परिणाम यह

हुआ कि जैन ज्ञान भण्डारों में धर्म तथा धर्मेत्तर विषयों के भी कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ बडी संख्या में सुरक्षित मिलते हैं। राजस्थान इस दृष्टि से सर्वाधिक मूल्यवान प्रदेश है। हिन्दी के आदिकाल की अधिकाश सामग्री यहा के जैन ज्ञान भण्डारों से ही प्राप्त हुई है।

जैन साहित्य का महत्त्व :

जैन साहित्य का निर्माण यद्यपि आध्यात्मिक भावना से प्रेरित होकर किया गया है पर वह वर्तमान सामाजिक जीवन से कटा हुआ नही है। जैन साहित्य के निर्माता जन सामान्य के अधिक निकट होने के कारण समसामयिक घटनाओ, धारणाओ और विचारणाओं को यथार्थ अभिव्यक्ति दे पाये हैं। इस दृष्टि से जैन साहित्य का महत्व केवल व्यक्ति के नैतिक सम्बन्धो की दृष्टि से ही नही है वरन सामाजिक–सास्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से भी है।

आज हमे अपने देश का जो इतिहास पढने को मिलता है वह मुख्यत राजा-महाराजाओ और सम्राटों के वशानुक्रम का इतिहास है। उसमे राजनैतिक घटना-चक्रो, युद्धों और सधियों की प्रमुखता है। उसके समानान्तर चलने वाले धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनो को विशेष महत्व नही दिया गया है और उससे सम्बद्ध स्रोतो का इतिहास लेखन मे सावधानीपूर्वक बहुत कम उपयोग किया गया है। जैन साहित्य इस दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। जैन सन्त ग्रामानुग्राम पादविहारी होने के कारण क्षेत्र-विशेष मे घटित होने वाली छोटी सी छोटी घटना को भी सत्य रूप मे लिखने के अभ्यासी रहे है। समाज के विभिन्न वर्गों से निकटता का सम्पर्क होने के कारण वे तत्कालीन जन-जीवन की चिन्ताधारा को सही परिप्रेक्ष्य मे समझने और पकडने मे सफल रहे है। इस प्रक्रिया से गुजरने के कारण उनके साहित्य मे देश के सामाजिक और सास्कृतिक इतिहास-लेखन की प्रचुर सामग्री बिखरी पडी है।

इतिहास-लेखन मे जिस तटस्थ वृत्ति, व्यापक जीवनानुभूति और प्रामाणिकता की अपेक्षा होती है, वह जैन सन्तो मे सहज रूप से प्राप्य है। वे सच्चे अर्थों मे लोक-प्रतिनिधि है। न उन्हे किसी के प्रति लगाव है न दुराव। निन्दा और स्तुति से परे जीवन की जो सहज प्रकृति और सस्कृति है, उसे अभिव्यजित करने मे ही ये लगे रहे। इनका साहित्य एक ऐसा निर्मल दर्पण है जिसमे हमारे विविध आचार-व्यवहार, सिद्धान्त-सस्कार रीति-नीति, वाणिज्य-व्यवसाय, धर्म-कर्म, शिल्प-कला, पर्व-उत्सव, तौर-तरीके, नियम-कानून आदि यथारूप प्रतिबिम्बित है।

जहा तत्कालीन सामाजिक, सास्कृतिक जीवन को जानने और समझने का जैन साहित्य सच्चा बेरोमीटर है, वहा जीवन की पवित्रता, नैतिक-मर्यादा और उदात्त जीवन-आदर्शो का व्याख्याता होने के कारण यह साहित्य समाज के लिए सच्चा पथप्रणेता और दीपक भी है। इसका अध्येता निराशा मे आशा का सम्बल पाकर, अन्धकार से प्रकाश की ओर चरण बढाता है। काल को कला मे, मृत्यु को मगल मे और उष्मा को प्रकाश मे परिणत करने की क्षमता है– इस साहित्य मे।

जैन साहित्य का भाषा शास्त्र के विकासात्मक अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। भाषा की सहजता और लोक भूमि की पकड के कारण इस साहित्य मे जनपदीय भाषाओं के मूल रूप सुरक्षित है। इनके आधार पर भारतीय भाषाओं के ऐतिहासिक विकास और पारस्परिक सांस्कृतिक एकता के सूत्र आसानी से पकडे जा सकते हैं।

जैन साहित्यकार मुख्यत. आत्मधर्मिता के उद्गाता होकर भी प्रयोगधर्मी रहे हैं। अपने प्रयोग मे क्रान्तिवाही होकर भी वे अपनी मिट्टी और जलवायु से जुड़े हुए हैं। अत उनके साहित्य

में भारतीय अध्यात्म-धारा की प्रवहमानता देखी जा सकती है। इस दृष्टि से भारतीय साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों और धाराओं को इससे पुष्टता और गति मिली है। विभिन्न भाषाओं के साहित्य के इतिहासों को भी जैन साहित्य के कथ्य और शिल्प ने काफी दूर तक प्रभावित किया है। हिन्दी साहित्य की आध्यात्मिक चेतना को आज तक जागृत और क्रमबद्ध रखने में जैन साहित्य की दार्शनिक संवेदना की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

जैन साहित्य की विशेषताएं :

ऊपर हमने जैनदर्शन के जिन सामाजिक-चेतना, सांस्कृतिक-समन्वय और लोक-संग्राहक रूप के तत्त्वो की चर्चा की है, वे ही प्रकारान्तर से जैन साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करते हैं अतः यहा जैन साहित्य की विचार भूमि पर विचार न करते हुए उसकी प्रमुख विशेषताओं का संक्षेप मे उल्लेख किया जाता है—

जैन साहित्य विविध और विशाल है। सामान्यतः यह माना जाता है कि जैन साहित्य में निर्वेद भाव को ही अनेक रूपों और प्रकारो मे चित्रित किया गया है। यह सच है कि जैन साहित्य का मूल स्वर शान्त रसात्मक है पर जीवन के अन्य पक्षों और सार्वजनीन विषयो की ओर से उसने कभी मुख नही मोड़ा है। यही कारण है कि आपको जितना वैविध्य यहा मिलेगा, कदाचित् अन्यत्र नही। एक ही कवि ने शृंगार की पिचकारी भी छोड़ी है और भक्ति का राग भी अलापा है। वीरता का ओजपूर्ण वर्णन भी किया है और हृदय को विगलित कर देने वाली करुणा की बरसात भी की है। साहित्य के रचनात्मक पक्ष से आगे बढ़कर उसने उसके बोधात्मक पक्ष को भी सम्पन्न बनाया है। व्याकरण, ज्योतिष, वैद्यक, मन्त्र-तन्त्र, इतिहास, भूगोल, दर्शन, राजनीति आदि वाङ्मय के विविध अंग उसकी प्रतिभा का स्पर्श पा कर चमक उठे हैं।

विषय की दृष्टि से सम्पूर्ण जैन साहित्य दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है (1) आगम साहित्य और (2) आगमेतर साहित्य। आगम साहित्य के दो प्रकार हैं—अर्थ आगम और सूत्र आगम। तीर्थंकर भगवान् द्वारा उपदिष्ट वाणी अर्थागम है। तीर्थंकरो के प्रवचन के आधार पर गणधरो द्वारा रचित साहित्य सूत्रागम है। ये आगम आचार्यों के लिये अक्षय ज्ञानभण्डार होने से गणिपिटक तथा संख्या में बारह होने से 'द्वादशांगी' नाम से भी अभिहित किये गये हैं। प्रेरणा की अपेक्षा से ये अग-प्रविष्ट कहलाते हैं। द्वादशांगी के अतिरिक्त जो अन्य उपांग छेद, मूल और आवश्यक है, वे पूर्वधर स्थविरों द्वारा रचे गये है और अनग-प्रविष्ट कहलाते हैं।

आगमेतर साहित्य के रचयिता जैन आचार्य, विद्वान्, सन्त आदि हैं। इसमे गद्य और पद्य के माध्यम से जीवनोपयोगी सभी विषयों पर प्रकाश डाला गया है। यह वैविध्यपूर्ण जैन साहित्य अत्यन्त विशाल है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल का अधिकांश भाग तो इसी से सम्पन्न बना है। साहित्य निर्माण की यह प्रक्रिया आज तक प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषाओ मे अनवरत रूप से जारी है।

जैन साहित्य की यह विविधता विषय तक ही सीमित न रही। उसने रूप और शैली मे भी अपना कौशल प्रकट किया।

काव्य रूपों के सम्बन्ध मे जैन कवियों की दृष्टि बड़ी उदार रही है। उन्होंने प्रचलित शास्त्रीय रूपो को स्वीकार करते हुए भी लोकभाषा के काव्यरूपों में व्यापकता और सहजता का रंग भरा।

जैन धर्म जन्म से ही रूढ़िबद्धता के खिलाफ लड़ता रहा। उसे न विचार में रूढ़ परम्परायें मान्य हो सकीं और न आचार में। साहित्य और कला के क्षेत्र में भी जो बंधी-बंधायी परिपाटी चल रही थी, वह उसके प्रतिरोध के आगे न टिक सकी। उसने उसके शास्त्रीय बन्धन काट दिये। इसी का एक परिणाम यह हुआ कि जैन तीर्थंकरो ने अपनी देशना तत्कालीन जन भाषा प्राकृत मे दी और जब प्राकृत भी शास्त्रीयता के कटघरे में कैद हो गयी तो जैन आचार्यों ने अपभ्रंश में अपनी रचनायें लिखीं। आज विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के जो मूल रूप सुरक्षित रह सकें हैं, उनके मूल में जैन साहित्यकारो की यह दृष्टि ही मुख्य रही कि वे हमेशा जनपदीय भाषाओं को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाते रहे।

भाषा के क्षेत्र में ही नही, छन्द और सगीत के क्षेत्र में भी यह सहजता देखने को मिलती है। शास्त्रीय छन्दो के अतिरिक्त जैन कवियो ने लोकरुचि को ध्यान मे रखकर कई नये छन्द निर्मित किये और उनमे अपनी रचनाए लिखीं। इनके ये छन्द प्रधानतः गेय रहे हैं। सगीत को शास्त्रीयता से मुक्त करने के लिए इन कवियो ने विभिन्न लोक-देशियो को अपनाया। प्रयुक्त ढालो मे जो तर्जें दी गयी हैं, वे एक प्रकार की लोक-देशिया है। इनके प्रयोग से भारत का पुरातन लोक सगीत सुरक्षित रह सका।

जैन कवियों ने काव्य-रूपो की परम्परा को संकीर्ण परिधि से बाहर निकाल कर व्यापकता का मुक्त क्षेत्र प्रदान किया। आचार्यों द्वारा प्रतिपादित प्रबन्ध-मुक्तक की चलती आई परम्परा को इन कवियों ने विभिन्न रूपों में विकसित कर, काव्यशास्त्रीय जगत में एक क्रान्ति सी मचा दी। दूसरे शब्दों मे यह कहा जा सकता है कि इन कवियो ने प्रबन्ध और मुक्तक के बीच काव्य-रूपों के कई नये स्तर निर्मित किये।

जैन कवियो ने नवीन काव्य-रूपो के निर्माण के साथ-साथ प्रचलित काव्य रूपो को नयी भावभूमि और मौलिक अर्थवत्ता भी दी। इन सब में उनकी व्यापक उदार दृष्टि ही काम करती रही है। उदाहरण के लिए, वेलि, बारहमासा, विवाहलो, रासो, चौपाई, सन्धि आदि काव्यरूपो के स्वरूप का अध्ययन किया जा सकता है। 'वेलि' सज्ञक काव्य डिंगल-शैली में सामान्यत वेलियो छन्द में ही लिखा गया है, पर जैन कवियो ने वेलि काव्य को छन्द विशेष की इस सीमा से बाहर निकाल कर वस्तु और शिल्प दोनो दृष्टि से व्यापकता प्रदान की। 'बारहमासा' काव्य ऋतुकाव्य रहा है, जिसमें नायिका एक 2 माह के क्रम से अपना विरह, प्रकृति के विभिन्न उपादानों के माध्यम से व्यक्त करती है। जैन कवियो ने 'बारहमासा' की इस विरह-निवेदन-प्रणाली को आध्यात्मिक रूप देकर इसे शृंगार क्षेत्र से बाहर निकाल कर, भक्ति और वैराग्य के क्षेत्र तक आगे बढ़ाया। 'विवाहलो' सज्ञक काव्य मे सामान्यत नायक-नायिका के विवाह का वर्णन रहता है जिसे 'व्याहलो' भी कहा जाता है। जैन कवियो ने इस 'विवाहलो' सज्ञक काव्य को भी आध्यात्मिक रूप दिया है। इसमे नायक का किसी स्त्री से परिणय न दिखाकर सयमश्री और दीक्षाकुमारी जैसी अमूर्त भावनाओ को परिणय के बन्धन मे बांधा गया है। 'रासो' 'सन्धि' और 'चौपाई' जैसे काव्य-रूपों को भी इस प्रकार का भाव-बोध दिया। 'रासो' यहा केवल युद्धपरक वीर काव्य का व्यंजक न रहकर प्रेमपरक गेय काव्य का प्रतीक बन गया। 'सन्धि' शब्द अपभ्रश महाकाव्य के सर्ग का वाचक न रहकर विशिष्ट काव्य-विधा का ही प्रतीक बन गया। 'चौपाई' सज्ञक काव्य चौपाई छन्द में ही बधा न रहकर वह जीवन की व्यापक चित्रण क्षमता का प्रतीक बन कर छन्द की रूढ कारा से मुक्त हो गया।

उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि जैन कवियो ने एक ओर काव्यरूपों की परम्परा के धरातल को व्यापकता दी तो दूसरी ओर उनको बहिरंग से अंतरंग की ओर तथा स्थूल से सूक्ष्म की ओर खीचा।

यहां यह भी स्मरणीय है कि जैन कवियों ने केवल पद्य के क्षेत्र में ही नवीन काव्यरूप खड़े नहीं किये वरन् गद्य-क्षेत्र में भी कई नवीन काव्य-रूपों की सृष्टि की। यह सृष्टि इसलिए और भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उसके द्वारा हिन्दी गद्य का प्राचीन इतिहास प्रकट होता है। हिन्दी के प्राचीन ऐतिहासिक और कलात्मक गद्य के विकास में इन काव्य-रूपों की देन बड़ी महत्त्वपूर्ण है।

जैन कवि सामान्यतः सन्त रहे है। व्याख्यान और प्रवचन देना उनके दैनिक आचार का प्रमुख अंग है। दर्शन जैसे जटिल और गूढ़ विषयों को समझाने के लिए वे कवि सन्त से साहित्यकार बने। धर्म प्रचार की दृष्टि से इन्होंने अपनी बात को लोकमानस तक पहुंचाने के लिए काव्य और संगीत का सहारा लिया तथा अपनी परम्परा को सुरक्षित रखने व शास्त्र-विवेचन के लिए प्रमुखत. ऐतिहासिक और टीका ग्रन्थो का सहारा लिया। एक का मुख्यतः माध्यम बना पद्य और दूसरे का गद्य। फलत दोनो क्षेत्रों में कई काव्य-रूपों का सृजन और विकास हुआ।

पद्य के सौ से अधिक काव्यरूप देखने को मिलते हैं। सुविधा की दृष्टि से इनके चार वर्ग किये जा सकते हैं—चरित काव्य, उत्सव काव्य, नीतिकाव्य, और स्तुति काव्य। चरित-काव्य मे सामान्यत. किसी धार्मिक पुरुष, तीर्थंकर आदि की कथा कही गई है। ये काव्य, रास, चौपाई, ढाल, पवाडा, संधि, चर्चरी, प्रबन्ध, चरित, सम्बन्ध, आख्यानक, कथा आदि रूपों में लिखे गये हैं। उत्सव काव्य विभिन्न पर्वों और ऋतु विशेष के बदलने हुए वातावरण के उल्लास और विनोद को चित्रित करते है। फागु, धमाल, बारहमासा, विवाहलो, धवल, मगल आदि काव्यरूप इसी प्रकार के हैं। इनमे सामान्यत लौकिक रीति-नीति को माध्यम बनाकर उनके लोकोत्तर रूप को ध्वनित किया गया है। नीति-काव्य जीवनोपयोगी उपदेशो से सम्बन्धित है। इनमें सदाचार-पालन, कषाय-त्याग, व्यसन-त्याग, ब्रह्मचर्य, व्रत, पच्चक्खाण, भावना, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, दान, दया, संयम आदि का माहात्म्य तथा प्रभाव वर्णित है। सवाद, कक्का, मातृका, बावनी, छत्तीसी, कुलक, हीयाली आदि काव्यरूप इसी प्रकार के हैं। स्तुतिकाव्य महापुरुषों और तीर्थंकरो की स्तुति से सम्बन्धित हैं। स्तुति, स्तवन, स्तोत्र, सज्झाय, विनति, नमस्कार, चौबीसी, बीसी आदि काव्यरूप स्तवनात्मक ही है।

गद्य साहित्य के भी स्थूल रूप से दो भाग किये जा सकते है। मौलिक गद्य-सृजन और टीका अनुवाद आदि। मौलिक गद्य सृजन धार्मिक, ऐतिहासिक, कलात्मक आदि विविध रूपो मे मिलता है। धार्मिक गद्य मे सामान्यतः कथात्मक और तात्त्विक गद्य के ही दर्शन होते हैं। ऐतिहासिक गद्य गुर्वावली, पट्टावली, वशावली, उत्पत्तिग्रन्थ, दफ्तर बही, टिप्पण आदि रूपो में लिखा गया। इन रूपों में इतिहास-धर्म की पूरी-पूरी रक्षा करने का प्रयत्न किया गया है। आचार्यों आदि की प्रशस्ति यहा अवश्य है पर वह ऐतिहासिक तथ्यों की अवहेलना नही करती। कलात्मक गद्य वचनिका, दवावैत, वात, सिलोका, वर्णक, संस्मरण आदि रूपों में लिखा गया। अनुप्रासात्मक झंकारमयी शैली और अन्तर्तुकात्मकता इस गद्य की अपनी विशेषता है। आगमों में निहित दर्शन और तत्व को जनोपयोगी बनाने की दृष्टि से प्रारम्भ में निर्युक्तियां और भाष्य लिखे गये। पर ये पद्य में थे। बाद में चलकर इन्हीं पर चूर्णियां लिखी गईं। ये गद्य में थीं। निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णि साहित्य प्राकृत अथवा प्राकृत-संस्कृत मिश्रित में ही मिलता है। आगे चलकर टीकायुग आता है। ये टीकाएं आगमों पर ही नहीं लिखी गईं वरन् निर्युक्तियों और भाष्यो पर भी लिखी गईं। ये टीकाएं प्रारम्भ में संस्कृत में और बाद में लोक-कल्याण की भावना से सामान्यतः पुरानी हिन्दी में लिखी मिलती है। इनके दो रूप विशेष प्रचलित हैं। टब्बा और बालावबोध। टब्बा संक्षिप्त रूप है जिसमें शब्दों के अर्थ ऊपर, नीचे या पार्श्व में लिख दिये जाते है पर बालावबोध में व्याख्यात्मक समीक्षा के दर्शन होते हैं। यहां निहित सिद्धान्त को कथा और दृष्टान्त दे-देकर इस प्रकार समझाया जाता है कि बालक जैसा मन्द बुद्धि वाला भी उसके सार को ग्रहण कर सके। पद्य और गद्य के ये विभिन्न साहित्य रूप जैन साहित्य की विशिष्ट देन हैं।

जैन साहित्यकार सामान्यतः साधक और सन्त रहे हैं। साहित्य उनके लिए विशुद्ध कला की वस्तु कभी नहीं रहा, वह धार्मिक आचार की पवित्रता और साधना का एक अंग बन कर आया है। यही कारण है कि अभिव्यक्ति में सरलता, सुबोधता और सहजता का सदा आग्रह रहा है। जब अपभ्रंश से हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाएं विकसित हुईं तो जैन साहित्यकार अपनी बात इन जनपदीय भाषाओं में सहज भाव से कहने लगे। यह भाषागत उदारता उनकी प्रतिभा पर आवरण नहीं डालती वरन् भाषाओं के ऐतिहासिक विकासक्रम को सुरक्षित रखे हुए है।

जैन साहित्यकार साहित्य को कलाबाजी नहीं समझते। वे उसे अकृत्रिम रूप से हृदय को प्रभावित करने वाली आनन्दमयी कला के रूप मे देखते हैं। जहा उन्होंने लोक भाषा का प्रयोग किया वहां भाषा को सशक्त बनाने वाले अधिकांश उपकरण भी लोक-जीवन से ही चुने हैं। छन्दों में तो इतना वैविध्य है कि सभी धर्मों, परम्पराओं और रीति-रिवाजो से वे सीधे सीधे चले आ रहे हैं। ढालों के रूप मे, जो देशियां अपनाई गई हैं, वे इसकी प्रतीक है। पर इससे यह न समझा जाये कि उनका काव्य-शास्त्रीय ज्ञान अपूर्ण था या बिल्कुल ही नहीं था। ऐसे कवि भी जैन-जगत् में कई हो गये हैं जो शास्त्रीय परम्परा मे सर्वोच्च ठहरते है, आलंकारिक चमत्कारिता, शब्दक्रीडा और छन्दशास्त्रीय मर्यादा-पालन मे जो होड लेते प्रतीत-होते हैं, पर यह प्रवृत्ति जैन-साहित्य की सामान्य प्रवृत्ति नही है।

जैन साहित्य में जो नायक आये है, उनके दो रूप हैं—मूर्त और अमूर्त। मूर्त नायक मानव हैं, अमूर्त नायक मनोवृत्ति विशेष। मूर्त नायक साधारण मानव कम, असाधारण मानव अधिक हैं। यह असाधारणता आरोपित नहीं, अर्जित है। अपने पुरुषार्थ, शक्ति और साधना के बल पर ही ये साधारण मानव विशिष्ट श्रेणी में पहुंच गये हैं। ये पात्र सामान्यत संस्कारवश या किसी निमित्त कारण से विरक्त हो जाते हैं और प्रव्रज्या अंगीकार कर लेते है। दीक्षित होने के बाद पूर्व जन्म के कर्म उदित होकर कभी उपसर्ग बनकर, कभी परीषह बनकर सामने आते हैं पर ये अपनी साधना मे विचलित नहीं होते। परीक्षा के कठोर आघात इनकी आत्मा को और अधिक मजबूत तथा इनकी साधना को और अधिक तेजस्वी बना देते हैं। प्रतिनायक परास्त होते हैं, पर अन्त तक दुष्ट बनकर नही रहते। उनके जीवन मे भी परिवर्तन आता है और वे नायक के व्यक्तित्व की प्रेरक किरण का स्पर्श पाकर साधना पथ पर चल पड़ते हैं।

जैन साहित्य के मूल में आदर्शवादिता है। वह संघर्ष में नहीं मंगल में विश्वास करता है। यहां नायक का अन्त दुखद मृत्यु मे नही होता। उसे कथा के अन्त में आध्यात्मिक वैभव से सम्पन्न अनन्तबल, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्त सौन्दर्य का धारक बताया गया है।

जैन साहित्य में यो तो सभी रस यथावसर अभिव्यजित हुए हैं पर अंगीरस शान्त रस ही है। प्राय: प्रत्येक कथा-काव्य का अन्त शान्त रसात्मक ही है। इतना सब कुछ होते हुये भी जैन साहित्य में शृंगार रस के बड़े भावपूर्ण स्थल और मार्मिक प्रसंग भी देखने को मिलते हैं। विशेषकर विप्रलंभ शृंगार के जो चित्र हैं वे बड़े मर्मस्पर्शी और हृदय को गद्‌गद् करने वाले है। मिलन के राशि-राशि चित्र वहां देखने को मिलते हैं जहां कवि 'संयमश्री' के विवाह की रचना करता है। यहां जो शृंगार है वह रीतिकालीन कवियों के भाव सौंदर्य से तुलना में किसी प्रकार कम नहीं है, पर उसमें मन को सुलाने वाली मादकता नहीं वरन् आत्मा को जागृत करने वाली मनुहार है। शृंगार की यह धारा आवेगमयी बनकर, नायक को शान्त रस के समुद्र की गहराई में बहुत दूर तक पैठा देती है।

राजस्थान की धार्मिक पृष्ठभूमि :

राजस्थान वीर-भूमि होने के साथ-साथ धर्म-भूमि भी है। शक्ति और भक्ति का सामंजस्य इस प्रदेश की मूल सांस्कृतिक विशेषता है। यहां के वीर भक्तिभावना से प्रेरित होकर अपनी अद्भुत शौर्यवृत्ति का परिचय देते हुये आत्मोत्सर्ग की ओर बढ़ते रहे, तो यहां के भक्त अपने पुरुषार्थ, साधना और सामर्थ्य के बल पर धर्म को सतेज करते रहे।

राजस्थान में उदार मानववाद के धरातल पर वैदिक, वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन, इस्लाम, आदि सभी धर्म अपनी-अपनी रंगत के साथ सौहार्दपूर्ण वातावरण में फलते-फूलते रहे। यहां की प्राकृतिक स्थिति और जलवायु ने जीवन के प्रति निस्पृहता और अनुरक्ति, कठोरता और कोमलता, संयमशीलता और सरसता का समानान्तर पाठ पढ़ाया। यह जीवन-दृष्टि यहां के धर्म, साहित्य, संगीत और कला में स्पष्ट प्रतिबिम्बित है।

प्रारम्भ से ही राजस्थान के जन-जीवन पर धर्म का व्यापक प्रभाव रहा है। प्राचीनकाल से ही यहां यज्ञ की वैदिक परम्परा विद्यमान रही है। दूसरी शताब्दी ईसा के घोसुण्डी शिला-लेख में अश्वमेध यज्ञ के सम्पादन का उल्लेख मिलता है। पौराणिक धर्म के अन्तर्गत विष्णु, शिव, दुर्गा, ब्रह्मा, गणेश, सूर्य आदि देवी-देवताओ को आराधना के लिये चित्तौड़, ओसियां, पुष्कर, आहड़, भीनमाल आदि नगरों में समय-समय पर अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ। ध्यान देने की बात यह है कि यद्यपि यहा विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना प्रचलित रही तथापि धार्मिक सहिष्णुता की भावना को इससे कोई ठेस नहीं पहुंची। धार्मिक सहिष्णुता की यह भावना प्रतिहार काल में हिन्दू देवताओ की मूर्तियो के निर्माण में अभिव्यक्त हुई है। बघेरा तथा बेदला से प्राप्त हरिहर की मूर्ति, हर्ष से प्राप्त तीन मुख वाले सूर्य की मूर्ति, झालावाड से प्राप्त सूर्य-नारायण की मूर्ति, आम्बानेरी से प्राप्त अर्द्धनारीश्वर की मूर्ति और अजमेर म्यूजियम में उपलब्ध विष्णु तथा त्रिपुरुष की त्रिमूर्ति धर्म की समन्वयात्मक प्रवृत्ति की सुन्दर प्रतीक है।

राजस्थान मे प्राचीन काल से शैव मत का व्यापक प्रसार रहा है। पाशुपत, कापालिक, लकुलीश आदि अनेक शैव सम्प्रदाय राजस्थान मे प्रचलित रहे हैं। राजस्थान में शिव की उपासना अनेक नामों से की जाती रही है, यथा एकलिंग, समिधेश्वर, अचलेश्वर, शम्भु, भवानीपति, पिनाकिन, चन्द्रचूडामणि आदि। मेवाड के महाराणाओ ने श्री एकलिंगजी को ही राज्य का स्वामी माना और स्वयं उनके दीवान बनकर रहे। नाथ सम्प्रदाय का जोधपुर क्षेत्र में विशेष प्रभाव और सम्मान रहा है। राजस्थान मे कई स्थलो पर उनके अखाडे हैं।

राजस्थान मे वैष्णव धर्म का प्राचीनतम उल्लेख दूसरी शताब्दी ई. पूर्व के घोसुण्डी अभि-लेख में मिलता है। इस मत के अन्तर्गत कृष्णलीला से संबंधित दृश्य उत्कीर्ण मिलते हैं। कृष्ण लीला में कृष्ण चरित से संबंधित कई आख्यान तक्षण-कला के माध्यम से भी व्यक्त हुये हैं। कृष्ण भक्ति के साथ राम भक्ति भी राजस्थान में समादृत हुई है। मेवाड़ के महाराणा तो राम से अपना वंशक्रम निर्धारित करते हैं।

राजस्थान में शक्ति के रूप में देवी की उपासना का भी प्रचलन रहा है। शक्ति की आराधना, शौर्य, क्रोध और करुणा की भावना से जुड़ी हुई है। अतएव शक्ति की मातृदेवी, लक्ष्मी, सरस्वती, महिषासुरमर्दिनी, दुर्गा, पार्वती, अम्बिका, काली, सच्चिका आदि रूप में स्तुति की गई है। राजस्थान के कई राजवंश शक्ति को कुलदेवी के रूप में पूजते रहे हैं। बीकानेर के राज परिवार ने करणी माता को, जोधपुर राज परिवार ने नागणेचीजी को, सीसोदिया नरेश ने बाणमाता को और कछवाहों ने अन्नपूर्णा को कुलदेवी स्वीकृत किया है।

राजस्थान इस्लाम धर्म के प्रभाव से भी अछूता नहीं रहा। यहां 12वीं शती से इसका विशेष प्रसार हुआ। अजमेर इसका मुख्य केन्द्र बना और यहीं से जालौर, नागौर, मांडल, चित्तौड़ आदि स्थानों में यह फैला। राजस्थान में इसके प्रचारक संतों में मुइनुद्दीन चिश्ती प्रमुख थे।

सम्पूर्ण भारत मे मध्ययुग में धर्मसुधार आन्दोलन की जो लहर फैली, उससे राजस्थान भी प्रभावित हुआ और रूढ़िवाद, बाह्य आडम्बर तथा जड पूजा के खिलाफ क्रांति चेतना मुखरित हो उठी। इस नई धार्मिक चेतना ने एक ओर गोगाजी, पाबूजी, तेजाजी जैसे लोकदेवो को अपने प्रतिज्ञापालन, आत्मबलिदान तथा सदाचारनिष्ठ सादगीमय जीवन के कारण सम्मान प्रदान किया तो दूसरी ओर जाम्भोजी, जसनाथजी, दादूजी जैसे विशिष्ट सत पुरुषों को प्रकट किया जिन्होंने धर्म को बाह्याचार से आत्मशुद्धि और आन्तरिक पवित्रता की ओर मोड़ा। इन संतों ने आत्म-साधना और आत्म-कल्याण के सिद्धांतो की व्याख्या बोल-चाल की भाषा मे की। राजस्थान में पनपने वाले ऐसे मुख्य जैनेतर सत मम्प्रदायों की तालिका इम प्रकार है —

	नाम	प्रवर्तक	समय	प्रधान स्थल
			विक्रम सवत्	
1	विश्नोई सम्प्रदाय	जाभोजी	1508–93	मुकाम (बीकानेर)
2.	जसनाथी सम्प्रदाय	जसनाथजी	1539–63	कतरियासर (बीकानेर)
3.	निरजनी सम्प्रदाय	हरिदासजी	1512–95	डीडवाना (नागौर)
4.	लाल पथ	लालदासजी	1597–1705	नगला (अलवर)
5.	दादू पथ या ब्रह्म सम्प्रदाय	दादू	1601–60	नराणा (जयपुर)
6	रामस्नेही : रैणशाखा	दरियावजी	1733–1815	रैण (नागौर)
7.	रामस्नेही सीथल शाखा	हरिरामदासजी	1754–1835	सीथल (बीकानेर)
8	रामस्नेही . खैड़ापा शाखा	रामदासजी	1783–1855	खैड़ापा (जोधपुर)
9	रामस्नेही . शाहपुरा शाखा	रामचरणदासजी	1776–1855	शाहपुरा (भीलवाडा)
10	चरणदासजी सम्प्रदाय	चरणदासजी	1760–1839	डेहरा (अलवर)
11.	जैहरि सम्प्रदाय	तारणदासजी	1822–1932	रतनगढ़
12.	अलखिया सम्प्रदाय	लालगिरि	1860–1925	बीकानेर
13.	गूदड़ पथ	सतदासजी	–1822	दातड़ा (मेवाड़)
14.	भाव पंथ	भावजी	1771–1801	साबला (डूगरपुर)
15.	आई पथ	आईमाता	1472–1561	बिलाड़ा (जोधपुर)
16.	नवल पंथ	नवलनाथजी	1840–1965	जोधपुर

राजस्थान में जैन धर्म :

उपर्युक्त धार्मिक पृष्ठभूमि के समानान्तर ही प्रारम्भ से राजस्थान में जैन धर्म प्रभावी रहा है। भगवान् महावीर के जीवनकाल में ही राजस्थान के कुछ भागों में जैन धर्म के प्रचार एवं प्रसार का ज्ञान परवर्ती जैन साहित्य से होता है। महावीर के मामा एवं लिच्छवी गणतन्त्र के प्रमुख चेटक की ज्येष्ठ पुत्री प्रभावती सिन्धु सौवीर के शासक उदायन को ब्याई गई थी। उदायन जैनमतावलम्बी हो गया था। 'भगवती सूत्र' के अनुसार उसने अपने भाणेज केशी को राज्य देकर अन्तिम समय में श्रमण दीक्षा ग्रहण कर ली थी। सामान्यत. सौवीर प्रदेश के अन्तर्गत जैसलमेर और कच्छ के हिस्से भी माने जाते हैं। भीनमाल के 1276 ई के एक अभिलेख मे विदित होता है कि महावीर स्वामी स्वयं श्रीमाल नगर पधारे थे। आबूरोड़ से 8 किलोमीटर पश्चिम मे मुंगस्थल से प्राप्त 1369 ईस्वी के शिलालेख मे पता चलता है कि भगवान् महावीर स्वामी स्वयं अर्बुद भूमि पधारे थे, पर ये विवरण बहुत बाद के हैं, अतः इनकी सत्यता संदिग्ध है।

राजस्थान मे जैनधर्म के प्रसार का सर्वाधिक ठोस प्रमाण ईसा से पूर्व 5वी शताब्दी का बड़ली शिलालेख माना जाता है जिसमे वीर निर्वाण संवत् के 84वें वर्ष का तथा चित्तौड़ के समीप स्थित माझमिका (माध्यमिका) का उल्लेख है। माझमिका जैन धर्म का प्राचीन केन्द्र रही है जहा जैन श्रमण सघ की माध्यमिका शाखा की स्थापना सुहस्ती के द्वितीय शिष्य प्रियग्रन्थ ने की थी। मौर्य युग मे चन्द्रगुप्त ने जैन धर्म के प्रसार के लिये कई प्रयत्न किये। अशोक के पौत्र राजा सम्प्रति ने जैन धर्म के उन्नयन एव विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया। कहा जाता है कि उसने राजस्थान मे कई जैन मन्दिर बनवाये और वीर निर्वाण सवत् 203 मे आर्य सुहस्ती के द्वारा घघाणी में पद्मप्रभु की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करायी थी।

विक्रम की दूसरी शती मे बने मथुरा के ककाली टीले की खुदाई से अति प्राचीन स्तूप और जैन मन्दिरों के ध्वंसावशेष मिले हैं जिनसे ज्ञात होता है कि राजस्थान में उस समय जैन धर्म का अस्तित्व था। केशोरायपाटन मे गुप्तकालीन एक जैन मन्दिर के अवशेष से, सिरोही क्षेत्र के वसन्तगढ में प्राप्त भगवान् ऋषभदेव की खड्गासन प्रतिमा से, जोधपुर क्षेत्र के ओसियां के महावीर मन्दिर के शिलालेख से, कोटा की समीपवर्ती जैन गुफाओ से, उदयपुर के पास स्थित आयड़ के पार्श्वनाथ मन्दिर और जैसलमेर के लोदरवा स्थित जिनेश्वरसूरि की प्रेरणा से निर्मित पार्श्वनाथ के मन्दिर से यह स्पष्ट होता है कि राजस्थान मे जैन धर्म का प्रचार ही नही था, वरन् सभी क्षेत्रों में उसका अच्छा प्रभाव भी था।

अजमेर क्षेत्र में भी जैन धर्म का व्यापक प्रभाव रहा। पृथ्वीराज चौहान प्रथम ने बारहवी शताब्दी के प्रारम्भ मे रणथम्भौर के जैन मन्दिर पर स्वर्ण कलश चढाये थे। यहां के राजा अर्णोराज के मन मे श्री जिनदत्तसूरि के प्रति विशेष सम्मान का भाव था। जिनदत्त-सूरि मरुधरा के कल्पवृक्ष माने गये है। इनका स्वर्गवास अजमेर मे हुआ। इनके निधन के उपरान्त इनकी पुण्य स्मृति मे राजस्थान में स्थान-स्थान पर दादाबाडियों का निर्माण हुआ।

कुमारपाल के समय मे हेमचन्द्र की प्रेरणा से जैन धर्म का विशेष प्रचार हुआ। आबू के जैन मन्दिर, जो अपनी स्थापत्यकला के लिये विश्व विख्यात हैं, इसी काल में बने। पन्द्रहवी शती में निर्मित राणकपुर का जैन मन्दिर भी भव्य और दर्शनीय है। जयपुर क्षेत्रीय श्री महावीरजी और उदयपुर क्षेत्रीय श्री केसरियानाथजी के मन्दिरों ने जैन धर्म की प्रभावना में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। ये तीर्थस्थल सभी धर्मों व वर्गों के लिये श्रद्धा केन्द्र बने हुये हैं। इस क्षेत्र के मीणा और गूजर लोग भगवान महावीर और ऋषभदेव को अपना परम आराध्य मानते हैं।

यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि महावीर के निर्वाण के लगभग 600 वर्ष बाद जैन धर्म दो मतों में विभक्त हो गया–दिगम्बर और श्वेताम्बर। जो मत साधुओं की नग्नता का पक्षधर था और उसे ही महावीर का मूल आचार मानता था, वह दिगम्बर कहलाया। यह मूल संघ नाम से भी जाना जाता है और जो मत साधुओं के वस्त्र-पात्र का समर्थन करता था वह श्वेताम्बर कहलाया। आगे चलकर दिगम्बर सम्प्रदाय कई संघो में विभक्त हो गया। जिनमें मुख्य हैं:—द्राविड़ संघ, काष्ठ संघ और माथुर संघ। कालान्तर में शुद्धाचारी, तपस्वी दिगम्बर मुनियों की संख्या कम हो गई और एक नये भट्टारक वर्ग का उदय हुआ जिसकी साहित्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण सेवायें रही हैं। जब भट्टारको में शिथिलाचार पनपा तो उसके विरुद्ध सत्रहवी शती में एक नये पथ का उदय हुआ जो तेरहपंथ कहलाया। इस पंथ में टोडरमल जैसे दार्शनिक विद्वान् हुए। श्वेताम्बर सम्प्रदाय भी आगे चल कर दो भागों में बंट गया—चैत्यवासी और वनवासी। चैत्यवासी उग्रविहार छोडकर मन्दिरो में रहने लगे। कालान्तर मे श्वेताम्बर सम्प्रदाय कई गच्छों में विभक्त हो गया। इनकी सख्या 84 कही जाती है। इनमे खरतरगच्छ और तपागच्छ प्रमुख हैं। कहा जाता है कि वर्धमानसूरि के शिष्य जिनेश्वरसूरि ने गुजरात के अणहिलपुर पट्टण के राजा दुर्लभराज की सभा मे सन् 1017 ई. मे जब चैत्यवासियो को परास्त किया तो राजा ने उन्हें 'खरतर' नाम दिया और इस प्रकार 'खरतरगच्छ' नाम चल पड़ा। तपागच्छ के संस्थापक श्री जगतचन्द्र सूरि माने जाते है। सन् 1228 ई. मे इन्होंने उग्रतप किया। इस उपलक्ष्य में मेवाड़ के महाराणा जैत्रसिंह ने इन्हें 'तपा' उपाधि से विभूषित किया। तब से यह गच्छ 'तपागच्छ' नाम से प्रसिद्ध हुआ। खरतरगच्छ और तपागच्छ दोनों ही मूर्ति पूजा में विश्वास करते हैं।

चौदहवी - पन्द्रहवीं शती में संतो ने धर्म के नाम पर पनपने वाले बाह्य आडम्बर का विरोध किया, इससे भगवान् की निराकार उपासना को बल मिला। श्वेताम्बर परम्परा मे स्थानकवासी और तेरापथी अमूर्तिपूजक हैं। ये मूर्तिपूजा में विश्वास नही करते। स्थानकवासियों का संबंध गुजरात की लोकागच्छ परम्परा से रहा है। राजस्थान मे यह परम्परा शीघ्र ही फैल गयी और जालौर, सिरोही, जैतारण, नागौर, बीकानेर आदि स्थानो पर इसकी गद्दिया प्रतिष्ठापित हो गयी। इस परम्परा में जब आडम्बर बढ़ा तब जीवराजजी, हरजी, धन्नाजी, पृथ्वीचन्द्र जी, मनोहरजी आदि पूज्य मुनियो ने तपत्यागमूलक सद्धर्म का प्रचार किया। स्थानकवासी परम्परा बाईस सम्प्रदाय के नाम से भी प्रसिद्ध है।

श्वेताम्बर तेरापथ के मूल सस्थापक आचार्य भिक्षु है। यह पथ सैद्धातिक मतभेद के कारण सवत् 1817 मे स्थानकवासी परम्परा से अलग हुआ। इस पथ के चौथे आचार्य, जो जयाचार्य के नाम से प्रसिद्ध है, राजस्थानी के महान् साहित्यकार थे। इन्होने तेरापंथ के लिये कुछ मर्यादायें निश्चित कर मर्यादा महोत्सव का सूत्रपात किया। इस पथ के वर्तमान नवम् आचार्य श्री तुलसीगणी हैं जिन्होंने अणुव्रत आदोलन के माध्यम से नैतिक जागरण की दिशा में विशेष पहल की है।

राजस्थान में जैन धर्म के विकास और प्रसार मे इन सभी जैन मतो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जैन धर्म के विभिन्न आचार्यों, संतों और श्रावको का जन साधारण के साथ ही नही वरन् यहां के राजा-महाराजाओ के साथ भी घनिष्ठ संबंध रहा है। प्रभावशाली जैन श्रावक यहा प्रधान, दीवान, सेनापति, सलाहकार और किलेदार जैसे विशिष्ट उच्च पदों पर सैकड़ो की संख्या में रहे हैं।[1] उदयपुर क्षेत्र के नवलखा रामदेव, नवलखा महणपाल, कर्माशाह, भामा-

1. इस संबंध में डा. देव कोठारी का 'देशी रियासतो के शासन प्रबन्ध में जैनियों का सैनिक व राजनीतिक योगदान' लेख विशेष रूप से पठनीय है। 'जिनवाणी' का 'जैन संस्कृति और राजस्थान' विशेषांक, पृ. 307 से 331।

शाह क्रमशः महाराणा लाखा, महाराणा कुम्भा, महाराणा सांगा और महाराणा प्रताप के समय में प्रधान एवं दीवान थे। कुम्भलगढ़ के किलेदार आशाशाह ने बालक राजकुमार उदयसिंह का गुप्त रूप से पालन-पोषण कर अपने अदम्य साहस और स्वामिभक्ति का परिचय दिया था। बीकानेर के बच्छराज, कर्मचन्द्र बच्छावत, महाराव हिन्दूमल क्रमशः राव बीका, महाराजा रायसिंह एवं महाराजा रत्नसिंह के समय में दीवान थे। बीकानेर के महाराजा रायसिंह, कर्णसिंह, और सूरतसिंह ने क्रमशः जैनाचार्य जिनचन्द्रसूरि, धर्मवर्धन व ज्ञानसारजी को बड़ा सम्मान दिया। जोधपुर राज्य के प्रधान व दीवानों में भण्डारी नराजी, भण्डारी मानाजी, मुणोत नैणसी की सेवायें क्रमशः राव जोधा, मोटाराजा उदयसिंह व महाराजा जसवंतसिंह के शासनकाल में विशेष महत्त्वपूर्ण रहीं। जयपुर राज्य के जैन दीवानों की लम्बी परम्परा रही है।[1] इनमें मुख्य हैं—संघी मोहनदास, रामचन्द्र छाबड़ा, संघी हुक्मचन्द, संघी झूंथाराम, श्योजीराम, अमरचन्द, राव कृपाराम पांड्या, बालचन्द्र छाबड़ा, रायचन्द छाबड़ा, विजैराम तोतूका, नथमल गोलेछा आदि। इन सभी वीर मन्त्रियों ने अपने प्रभाव से न केवल जैन मन्दिरों का निर्माण या जीर्णोद्धार ही करवाया वरन् जनकल्याणकारी विभिन्न प्रवृत्तियों के विकास एवं संचालन में योग दिया और देश की रक्षा व प्रगति के लिये संघर्ष किया।

स्वतन्त्रता के बाद राजस्थान के नव निर्माण की सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक, राजनैतिक और आर्थिक प्रवृत्तियों में जैन धर्मावलम्बियो की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। विभिन्न लोकोपकारी सस्थाओं और ट्रस्टो द्वारा लोगों को यथाशक्य सहायता दी जाती है। मानव समाज में प्रचलित कुव्यसनों को मिटाकर सात्विक जीवन जीने की प्रेरणा देने वाली वीरवाल-धर्मपाल प्रवृत्ति का रचनात्मक कार्यक्रम अहिंसक समाज रचना की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। व्यावहारिक शिक्षण के साथ-साथ नैतिक शिक्षण के लिये कई जैन शिक्षण सस्थायें, स्वाध्याय मडल और छात्रावास कार्यरत हैं। जन स्वास्थ्य के सुधार की दिशा में विभिन्न क्षेत्रों मे कई अस्पताल और औषधालय खोले गये हैं जहा रोगियो को नि.शुल्क तथा रियायती दरों पर चिकित्सा सुविधा प्रदान की जाती है। जैन साधु और साध्वियाँ वर्षा ऋतु के चार महिनों में पद-यात्रा नही करते है। इस काल मे विशेषतः तप, त्याग, प्रत्याख्यान, सघ-यात्रा, तीर्थ-यात्रा, मुनि-दर्शन, उपवास, आयम्बिल, मासखमण, सवत्सरी, क्षमापर्व जैसे विविध उपासना प्रकारों द्वारा आध्यात्मिक जागृति के विविध कार्यक्रम बनाये जाते है। इससे व्यक्तिगत जीवन निर्मल, स्वस्थ और उदार बनता है तथा सामाजिक जीवन में बंधुत्व, मैत्री, वात्सल्य जैसे भावों की वृद्धि होती है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जैन धर्म की दृष्टि राजस्थान के सर्वांगीण विकास पर रही है। उसने मानव जीवन की भौतिक सफलता को ही मुख्य नहीं माना, उसका बल रहा मानव जीवन की सार्थकता और आत्मशुद्धि पर।

राजस्थान का जैन साहित्य :—

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि धार्मिक भावना ने राजस्थान के साहित्य, संस्कृति और कला को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। वस्तुतः धार्मिक अनुभूति कोई संकीर्ण मनोवृत्ति नही है। वह एक नैतिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक वृत्ति है जो मानवता के अस्तित्व के साथ जुड़ी हुई है। जब यह वृत्ति सर्जनात्मक स्तर पर रसमय बनकर मानवमन के रंगों को

1. इस संबंध में पं. भंवरलाल जैन का 'जयपुर के जैन दीवान' लेख पठनीय है। 'जिनवाणी' का 'जैन संस्कृति और राजस्थान' विशेषांक, पृष्ठ 332 से 339।

छूती है, तब साहित्य और कला की सृष्टि होती है। इस बिन्दु पर आकर धार्मिक मूल्य और कलात्मक मूल्यों में विशेष अन्तर नहीं रहता।

साहित्यकार कल्पना का आश्रय अवश्य लेता है पर वह मात्र कल्पनाजीवी बनकर जीवित नहीं रह सकता। चूंकि सामान्य लोगों से वह अधिक संवेदनशील और क्रांतिद्रष्टा होता है अतः उसकी विवेक शक्ति संक्रमण काल में जनता के मनोबल को थामे रखने मे विशेष सहायक बनती है और सकटकाल में सांस्कृतिक तत्वों को नष्ट होने से बचाती है। जब राष्ट्रीयता राजनीति के स्तर पर सीमित हो जाती है और उसकी सांस्कृतिक चेतना मन्द पड़ जाती है तब राष्ट्रीयता को सार्वजनीन नैतिक उत्कर्ष का दार्शनिक आधार सत साहित्यकार ही दे पाते हैं। वे ही राष्ट्र की आत्मा को, उसकी जीवनशक्ति को, ऊर्जा को सतेज बनाये रखने में समर्थ होते हैं। भगवान् महावीर और उनके बाद के प्रभावक आचार्यों ने यह भूमिका निभायी। मध्ययुग में जब विदेशी आक्रमणकारियों से हम राजनैतिक दृष्टि से परास्त हो गये तब भी इन सतों और आचार्यों ने भक्ति, धर्म और साहित्य के धरातल से सास्कृतिक आन्दोलन की प्रक्रिया जारी रखी। आधुनिक युग में जब अंग्रेजी शासन का दमन चक्र चला तब भी राष्ट्र के स्वतन्त्र्य-भाव को इन संतो ने धार्मिक व सांस्कृतिक स्तर पर बुलंद रखा। अहिंसा, सत्याग्रह, स्वदेशीपन, लोकसेवा, सहअस्तित्व जैसे मूल्यों और आदर्शों के समाजीकरण में इन संतों का विशेष योगदान रहा है।

राजस्थान में जो जैन साहित्य रचा गया है, वह कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से बहुरंगी व बहुआयामी है। अब तक जो कुछ प्रकाश मे आ पाया है उससे अधिक भाग अब भी पाण्डुलिपियों के रूप मे विभिन्न ज्ञान भण्डारों मे बन्द है। विभिन्न मतों के आचार्यों व संतों ने अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्र के लोगों के स्वभाव व देशकाल को ध्यान में रखकर वैविध्यपूर्ण साहित्य की रचना की है। प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी और हिन्दी सभी भाषाओ मे विपुल परिमाण में वह साहित्य रचा गया है। रूप और शैली की दृष्टि से विविधता होने पर भी इसकी अपील में एकोद्देश्यता है। वह प्राणिमात्र को मैत्री के सूत्र में पिरोती है, समता और सहिष्णुता का संदेश देती है।

स्वतन्त्रता के बाद राजस्थान के जैन साहित्य के लेखन और प्रकाशन मे विशेष मोड आया। रूपात्मक दृष्टि से प्राचीन व मध्ययुगीन काव्य रूपों के स्थान पर उपन्यास, कहानी जैसे नवीन रूप अपनाये गये। इस युग की एक प्रमुख प्रवृत्ति शोध एवं समीक्षात्मक ग्रंथों की उभरी। विश्व-विद्यालयों में साहित्य, इतिहास, दर्शन विषयो से संबद्ध कई जैन शोध ग्रन्थ लिखे गये, तो स्वतन्त्र रूप से पाण्डुलिपियों के सूचीकरण, प्राचीन साहित्यक और दार्शनिक ग्रन्थों के सम्पादन, समीक्षण और विवेचन के रूप में शोध प्रवृत्ति का क्षेत्र विस्तृत हुआ। भगवान् महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य मे कई सस्थाओं और व्यक्तियों द्वारा भगवान् महावीर के जीवन-दर्शन और जैन धर्म-दर्शन से संबद्ध कई स्तरीय और सुगम-सुबोध पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांक और स्मारिकायें प्रकाशित हुई हैं। स्थानाभाव से उन सबकी चर्चा करना यहां सभव नही है। राज्य सरकार के सहयोग से राजस्थान विश्वविद्यालय में और अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ तथा राज्य सरकार के विशेष अनुदान से उदयपुर विश्वविद्यालय में प्राकृत एवं जैन विद्या विभाग की स्थापना से जैन साहित्य के अध्ययन, अध्यापन एवं अनुसंधान को विशेष गति मिलेगी और विभिन्न धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन से राष्ट्र की भावात्मक एकता पुष्ट होगी।

यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि भगवान् महावीर के 2500 वें निर्वाण वर्ष के अवसर पर राज्य स्तर पर गठित समिति की साहित्यिक योजना के अन्तर्गत यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित

किया जा रहा है। इस ग्रन्थ में राजस्थान के प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी व हिन्दी भाषा के जैन साहित्य की प्रवृत्तियों और साहित्यकारों का, विद्वान् मुनियों और लेखकों द्वारा जो परिचय, समीक्षण और मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है उससे प्राचीन काल से अद्यावधि तक अनवरत रूप से प्रवहमान साहित्य-साधना की विभिन्न धाराओं और विच्छित्तियों से साक्षात्कार ही नहीं होता वरन् राजस्थान की धार्मिक, सांस्कृतिक चेतना को समझने में भी मदद मिलती है।

डॉ. नरेन्द्र भानावत
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

सी-235-ए, तिलकनगर, जयपुर-4

विषय-दर्शन

*

प्राकृत जैन साहित्य

संस्कृत जैन साहित्य

अपभ्रंश जैन साहित्य

राजस्थानी जैन साहित्य

हिन्दी जैन साहित्य

प्रथम परिशिष्ट

द्वितीय परिशिष्ट

निबन्धों के मनीषी लेखक

1. मुनि श्री नथमल–
   शोधपूर्ण अनेकों ग्रन्थों के लेखक, अनुवादक, सम्पादक, आशुकवि तथा तेरापंथी सम्प्रदाय के प्रमुख विद्वान्

2. श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री–
   शोधपूर्ण विविध ग्रन्थों के लेखक, अनुवादक, सम्पादक तथा स्थानकवासी सम्प्रदाय के प्रख्यात विद्वान्

3. मुनि श्री गुलाबचन्द 'निर्मोही'–
   तेरापन्थ सम्प्रदाय के विद्वान मुनि

4. मुनि श्री चन्द 'कमल'–
   तेरापन्थ सम्प्रदाय के विद्वान् मुनि

5. साध्वी कनकश्री–
   तेरापन्थ सम्प्रदाय की विदुषी साध्वी

6. डॉ भागचन्द्र जैन भास्कर
   अध्यक्ष, पाली-प्राकृत विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर (महाराष्ट्र)

7. डॉ. प्रेम सुमन जैन
   प्राध्यापक, प्राकृत (सस्कृत-विभाग), उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

8. डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल
   अध्यक्ष, साहित्य शोध विभाग, महावीर भवन, चौडा रास्ता जयपुर (राजस्थान)

9. म विनय सागर साहित्यमहोपाध्याय
   प्रकाशन एव शोध अधिकारी, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, रामचन्द्रजी का मन्दिर, एस. डी. बाजार, जयपुर–2 (राजस्थान)

10. डॉ. सत्यव्रत
    अध्यक्ष, सस्कृत विभाग, गवर्नमेन्ट कालेज, श्री गंगानगर (राजस्थान)

11. डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन
    प्रोफेसर, हिन्दी मध्य प्रदेश शासन शिक्षा सेवा, 44. उषानगर, इन्दौर (मध्य प्रदेश)

12. डॉ. राजाराम जैन
    महाजन टोली नं. 2, आरा (बिहार)

13. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री
    प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (मध्य प्रदेश)

14. डॉ. हीरालाल माहेश्वरी
प्राध्यापक, हिन्दी साहित्य विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

15. श्री अगरचन्द नाहटा
अध्यक्ष, अभय जैन ग्रन्थालय, नाहटों की गवाड़, बीकानेर (राजस्थान)

16. डॉ नरेन्द्र भानावत
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

17. डॉ. श्रीमती शान्ता भानावत
प्राध्यापिका, वीर बालिका महाविद्यालय, कुंदीगर भैरों का रास्ता,
जयपुर (राजस्थान)

18. डॉ. गंगाराम गर्ग
प्रवक्ता, हिन्दी राजकीय महाविद्यालय, करौली (राजस्थान)

19. डॉ. देव कोठारी
उपनिदेशक, साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर (राजस्थान)

20. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
संयुक्त मन्त्री, पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-4 बापूनगर, जयपुर (राज.)

21. डॉ. इन्दरराज बैद
कार्यक्रम अधिकारी, आकाशवाणी, मद्रास (तमिलनाड)

22 डॉ. मूलचन्द सेठिया
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

23 प. भवरलाल न्यायतीर्थ
सम्पादक, वीरवाणी, मणिहारों का रास्ता, जयपुर (राजस्थान)

24 प अनूपचन्द न्यायतीर्थ
साहित्य शोध विभाग, महावीर भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर (राजस्थान)

25. श्री महावीर कोटिया
स्नातकोत्तर हिन्दी अध्यापक, केन्द्रीय विद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

26. डॉ महेन्द्र भानावत
उपनिदेशक, भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर (राजस्थान)

27 श्री रामवल्लभ सोमाणी,
दीवानजी की गली, कल्याण जी का रास्ता, चांदपोल, जयपुर ।

28. श्री भवरलाल नाहटा
संपादक, कुशलनिर्देश, 4-जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता-7

प्राकृत जैन साहित्य

प्राकृत साहित्य : एक सर्वेक्षण : 1

डॉ. भागचन्द्र जैन भास्कर

प्रत्येक भाषा और साहित्य संस्कृति की निर्माण-प्रक्रिया के विविध रूप संनिहित रहते हैं। ये रूप कुछ तो परम्परागत होते हैं और कुछ समय के साथ परिवर्तित होते चले आते हैं। प्राकृत भाषा और साहित्य भी इस तथ्य से बाहर नहीं गया। वह भी समय की सूक्ष्म गति के साथ प्रवाहित होता रहा और जनसाहित्य तथा जनमानस को प्रभावित करता रहा। संकीर्णता के दायरे से हटकर व्यापक और निर्मुक्त क्षेत्र में ही वह सदैव कार्यरत रहा है।

यह लिखना यहां अप्रासंगिक नहीं होगा कि प्राकृत मूलतः जनभाषा रही है और भ. महावीर ने उसी को अपने सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार का माध्यम बनाया था। वे सिद्धान्त जब लिपिबद्ध होने लगे तब तक स्वभावतः भाषा के प्रवाह में कुछ मोड़ आये और संकलित साहित्य उससे अप्रभावित नहीं रह सका। समकालीन अथवा उत्तरकालीन घटनाओं के समावेश में भी कोई एकमत नहीं हो सका। किसी ने सहमति दी और कोई उसकी स्थिति से सहमत नहीं हो सका। फलतः पाठान्तरों और मतमतान्तरों का जन्म हुआ। भाषा और सिद्धान्तों के विकास की यही अमिट कहानी है। समूचे प्राकृत साहित्य का सर्वेक्षण करने पर यह तथ्य और कथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है।

प्राकृत भाषा के कतिपय तत्व यद्यपि वैदिक और वैदिकोत्तर साहित्य में उपलब्ध होते हैं पर उसका साहित्य लगभग 2500 वर्ष प्राचीन ही माना जा सकता है। भगवान् पार्श्वनाथ और महावीर के पहले विद्यमान आगमिक साहित्य-परम्परा का उल्लेख 'पूर्व' शब्द से अवश्य हुआ है पर आज वह साहित्य-परम्परा उपलब्ध नहीं है। फिर भी इसी परम्परा से वर्तमान में उपलब्ध प्राकृत साहित्य की उत्पत्ति मानी जा सकती है।

प्राकृत भाषा का अधिकांश साहित्य जैन धर्म और संस्कृति से संबद्ध है। उसकी मूल परम्परा श्रुत अथवा आगम के नाम से व्यवहृत हुई है और एक लम्बे समय तक श्रुति-परम्परा के माध्यम से सुरक्षित रही। संगीतियों अथवा वाचनाओं के माध्यम से यद्यपि इस आगम-परम्परा का संकलन किया जाता रहा है पर समय और आवश्यकता के अनुसार चिन्तन के प्रवाह को रोका नहीं जा सका। फलतः उसमें हीनाधिकता होती रही।

प्राकृत जैन साहित्य के सन्दर्भ में जब हम विचार करते हैं तो हमारा ध्यान जैन धर्म के प्राचीन इतिहास की ओर चला जाता है जो वैदिक काल किंवा उससे भी प्राचीनतर माना जा सकता है। उस काल के प्राकृत जैन साहित्य को "पूर्व" संज्ञा से अभिहित किया गया है जिसकी संख्या चौदह है--उत्पादपूर्व, अग्रायणी, वीर्यानुवाद, अस्तिनास्तिप्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यान, विद्यानुवाद, कल्याणवाद, प्राणावाय, क्रियाविशाल और लोकबिन्दुसार। आज जो साहित्य उपलब्ध है वह भगवान् महावीर रूपी हिमाचल से निकली वाग्गंगा है जिसमें अवगाहनकर गणधरों और आचार्यों ने विविध प्रकार के साहित्य की रचना की।

उत्तरकाल में यह साहित्य दो परम्पराओं में विभक्त हो गया—दिगम्बर परम्परा और श्वेताम्बर परम्परा। दिगम्बर परम्परा के अनुसार आगम साहित्य दो प्रकार का है—अंगप्रविष्ट और अगबाह्य। अग-प्रविष्ट में बारह ग्रन्थों का समावेश है—आचारांग, सूत्रकृताग, स्थानाग, समवायाग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृधर्मकथा, उपासकाध्ययन, अन्तःकृद्दशाग, अनुत्तरोपपातिक दशाग, प्रश्नव्याकरण और दृष्टिवाद। दृष्टिवाद के पाच भेद किये गये हैं—परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका। पूर्वगत के ही उत्पाद आदि पूर्वोक्त चौदह भेद हैं। इन अंगों के आधार पर रचित ग्रन्थ अगबाह्य कहलाते हैं जिनकी सख्या चौदह है—सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुण्डरीक, महापुण्डरीक और निषिद्धिका। दिगम्बर परम्परा इन अगप्रविष्ट और अंगबाह्य ग्रन्थों को विलुप्त हुआ मानती है। उसके अनुसार भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के 162 वर्ष पश्चात् अग ग्रन्थ क्रमश. विच्छिन्न होने लगे। मात्र दृष्टिवाद के अन्तर्गत आये द्वितीय पूर्व अग्रायणी के कुछ अधिकारों का ज्ञान आचार्य धरसेन के पास शेष था जिसे उन्होंने आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि को दिया। उसी के आधार पर उन्होंने षट्खण्डागम जैसे विशालकाय ग्रन्थ का निर्माण किया। श्वेताम्बर परम्परा में ये अगप्रविष्ट और अग बाह्य ग्रन्थ अभी भी उपलब्ध हैं। अगबाह्य ग्रन्थों के सामायिक आदि प्रथम छह ग्रन्थों का अन्तर्भाव आवश्यक सूत्र में एवं कल्प, व्यवहार और निशीथ आदि सूत्रों में हो गया।

अगप्रविष्ट और अगबाह्य ग्रन्थों के आधार पर जो ग्रन्थ लिखे गये उन्हें चार विभागों में विभाजित किया गया है—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग। प्रथमानुयोग में ऐसे ग्रन्थों का समावेश होता है जिसमें पुराणों, चरितों और आख्यायिकाओं के माध्यम से सैद्धान्तिक तत्व प्रस्तुत किये जाते हैं। करणानुयोग में ज्योतिष और गणित के साथ ही लोकों, सागरों, द्वीपों, पर्वतों, नदियों आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थ इस विभाग के अन्तर्गत आते हैं। जिन ग्रन्थों में जीव, कर्म, नय, स्याद्वाद आदि दार्शनिक सिद्धान्तों पर विचार किया जाता है वे द्रव्यानुयोग की सीमा में आते हैं। ऐसे ग्रन्थों में षट्खण्डागम, प्रवचनसार, पचास्तिकाय आदि ग्रन्थों का समावेश होता है। चरणानुयोग में मुनियों और गृहस्थों के नियमोपनियमों का विधान रहता है। कुन्दकुन्दाचार्य के नियमसार, रयणसार, वट्टकेर का मूलाचार, शिवार्य की भगवती आराधना आदि ग्रन्थ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

सम्पूर्ण श्रुत के ज्ञाता निर्युक्तिकार भद्रबाहु से भिन्न आचार्य भद्रबाहु थे जिन्हें श्रुत केवली कहा गया है। भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के लगभग 150 वर्ष बाद तित्थोगालीपइन्ना के अनुसार उत्तर भारत में एक द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष पडा जिसके परिणाम स्वरूप सघ भेद का सूत्रपात हुआ। दुर्भिक्षकाल में अस्तव्यस्त हुए श्रुतज्ञान को व्यवस्थित करने के लिए थोड़े समय बाद ही पाटलीपुत्र में एक सगीति अथवा वाचना हुई जिसमें ग्यारह अगों को व्यवस्थित किया जा सका। बारहवें अंग दृष्टिवाद के ज्ञाता मात्र भद्रबाहु थे जो बारह वर्ष की महाप्राण नामक योगसाधना के लिये नेपाल चले गये थे। संघ की ओर से उनके अध्ययन के लिये कुछ साधुओं को उनके पास भेजा गया जिनमें स्थूलभद्र ही सक्षम ग्राहक सिद्ध हो सके। वे मात्र दश पूर्वों का साथ अध्ययन कर सके और शेष चार पूर्व मूलमात्र उन्हें (वाचनाभद से) मिल सके, अर्थात् नहीं। धीरे-धीरे काल-प्रभाव से दशपूर्वों का भी लोप होता गया। अन्त में भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के लगभग 1000 (980) वर्ष बाद बलभी में आचार्य देवर्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व में परिषद् की सयोजना हुई जिसमें उपलब्ध-आगमों को लिपिबद्ध कर स्थिर किया गया। आज जो प्राकृत आगम उपलब्ध हैं वे इसी वाचना के परिणाम हैं।

इतनी लम्बी अवधि में आगमों के स्वरूप मे परिवतन होना स्वाभाविक है। दिगम्बर सम्प्रदाय ने इस परिवर्तन को देखकर ही सम्भवतः इन आगमों को "लुप्त" कह दिया पर श्वेताम्बर परम्परा में वे अब भी सुरक्षित हैं।

यहाँ हम सुविधा की दृष्टि से प्राकृत जैन साहित्य को निम्न भागों में विभक्त कर सकते हैं :—

1. आगम साहित्य
2. आगमिक व्याख्या साहित्य
3. कर्म साहित्य
4. सिद्धान्त साहित्य
5. आचार साहित्य
6. विधिविधान और भक्ति साहित्य
7. पौराणिक और ऐतिहासिक साहित्य
8 कथा साहित्य
9. लाक्षणिक साहित्य

1. आगम साहित्य

प्राकृत जैनागम साहित्य की दो परम्पराओं से हम परिचित ही हैं। दिगम्बर [illegible] तो उसे लुप्त मानती है परन्तु श्वेताम्बर परम्परा में उसे अंग, उपांग, मूलसूत्र, छेदसूत्र और प्रकीर्णक के रूप में विभक्त किया गया है। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

क. अंग साहित्य :—अंग साहित्य के पूर्वोक्त बारह भेद हैं :—

1. आचारांग —यह दो श्रुतस्कन्धों मे विभक्त है। प्रथम श्रुतस्कन्ध में 'सत्थ परिण्णा' आदि नव अध्ययन है और द्वितीय स्कन्ध में पांच। द्वितीय श्रुतस्कन्ध चूलिका के रूप में लिखा गया है जिनको सख्या पाच है। चार चूलिकायें आचारांग में और पचम चूलिका विस्तृत होने क कारण पृथक् रूप में निशीथ सूत्र के नाम से निबद्ध है। यह भाग प्रथम श्रुतस्कन्ध के उत्तरकाल का है। इस ग्रन्थ में गद्य और पद्य दोनों का प्रयोग हुआ है। इसमें मुनियों के आचार-विचार का विशेष वर्णन है। महावीर की चर्या का भी विस्तृत उल्लेख हुआ है।

2. सूयगडांग :—इसमें स्वसमय और परसमय का विवेचन है। इसे दो श्रुतस्कन्धो मे विभक्त किया गया है। प्रथम श्रुतस्कन्ध में 16 अध्ययन हैं—समय, वैतालिय,

उपसर्ग, स्त्रीपरिज्ञा, नरक विभक्ति, वीरस्तव, कुशील, वीर्य, धर्म, समाधि, मार्ग, समवसरण, याथातथ्य, ग्रन्थ आदान, गाथा और ब्राह्मण श्रमण निर्ग्रन्थ। द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे सात अध्ययन हैं—पुण्डरीक, क्रियास्थान, आहारपरिज्ञा, प्रत्याख्यान क्रिया, आचारश्रुत, अर्द्धकीय तथा नालन्दीय। प्रथम श्रुतस्कन्ध के विषय को ही यहां विस्तार से कहा गया है। अतः नियुक्तिकार ने इसे "महा अध्ययन" की संज्ञा दी है। इस अंग में मूलतः क्रियावाद, अक्रियावाद, नियतिवाद, अज्ञानवाद आदि मतों का प्रस्थापन और उसका खण्डन किया गया है।

3. ठाणांग :—इसमें दस अध्ययन हैं और 783 सूत्र हैं जिनमें अंगुत्तरनिकाय के समान एक से लेकर दस संख्या तक संख्याक्रम के अनुसार जैन सिद्धान्त पर आधारित वस्तु संख्याओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है। यहां भगवान् महावीर की उत्तरकालीन परम्पराओ को भी स्थान मिला है। जैसे नवें अध्ययन के तृतीय उद्देशक में महावीर के 9 गणो का उल्लेख है। सात निन्हवो का भी उल्लेख है—जमालि, तिष्यगुप्त, आषाढ, अश्वमित्र, गंग, रोहगुप्त और गोष्ठमाहिल। इनमें प्रथम दो के अतिरिक्त सभी निन्हवो की उत्पत्ति महावीर के बाद ही हुई। प्रव्रज्या, स्थविर, लेखन-पद्धति आदि से संबद्ध सामग्री की दृष्टि से यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है।

4. समवायांग:—इसमें कुल 275 सूत्र हैं जिनमें ठाणांग के समान संख्या-क्रम से निश्चित वस्तुओं का निरूपण किया गया है। यद्यपि कोई क्रम तो नहीं पर उसी का आधार लेकर संख्या-क्रम सहस्र, दश सहस्र और कोटा-कोटि तक पहुंचा है। ठाणांग के समान यहां भी महावीर के बाद की घटनाओं का उल्लेख मिलता है। उदाहरणतः 100 वे सूत्र मे गणधर इन्द्रभूति और सुधर्मा के निर्वाण से संबद्ध घटना। ठाणांग और समवायांग की एक विशिष्ट शैली है जिसके कारण इनके प्रकरणो में एक सत्ता के स्थान पर विषय-वैविध्य अधिक दिखाई देता है। इसमें भौगोलिक और सांस्कृतिक सामग्री भरी हुई है।

5. विवाहपण्णत्ति:—ग्रन्थ की विशालता और उपयोगिता के कारण इसे भगवतीसूत्र भी कहा जाता है। इसमें गणधर गौतम के प्रश्न और महावीर के उत्तर निबद्ध हैं। अधिकांश प्रश्न स्वर्ग, नरक, चन्द्र, सूर्य, आदि से सम्बद्ध हैं। इसमें 41 शतक है जिनमें 837 सूत्र हैं। प्रथम शतक अधिक महत्वपूर्ण है। आगे के शतक इसी की व्याख्या करते हुए दिखाई देते हैं। यहां मक्खली गोसाल का विस्तृत चरित्र भी मिलता है। बुद्ध को छोडकर पार्श्वनाथ और महावीर के समकालीन आचार्य और परिव्राजक, पार्श्वनाथ और महावीर का परम्पराभेद, स्वप्नप्रकार, जवणिज (यापनीय) संघ और वैशाली में हुए दो महायुद्ध, वनस्पतिशास्त्र, जीव प्रकार आदि के विषय में यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण जानकारी देता है। इसमें देवर्धिगणि क्षमाश्रमण द्वारा रचित नन्दिसूत्र का भी उल्लेख है जिससे स्पष्ट है कि इस महाग्रन्थ मे महावीर के बाद की लगभग एक हजार वर्ष की प्राचीन परम्पराओ का संकलन है।

6. नायाधम्मकहाओ —इसमें भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट लोकप्रचलित धर्मकथाओ का निबन्धन है जिसमें संयम, तप, त्याग आदि का महत्व बताया गया है। इस ग्रन्थ में दो श्रुतस्कन्ध हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध में नीति-कथाओं से संबद्ध उन्नीस अध्ययन हैं और द्वितीय श्रुतस्कन्ध के दस वर्गों में धर्मकथायें संकलित हैं। शैली रोचक और आकर्षक है। इसमें मेघकुमार, धन्ना और विजय चोर, सागरदत्त और जिनदत्त, कच्छप और श्रृगाल, शैलक मुनि और शुक परिव्राजक, तुंब रोहिणी, मल्ली, माकंदी, दुर्दुर, अमात्य तेतलि, द्रोपदी, पुण्डरीक कुण्डरीक, गजसुकुमाल, नदमणियार आदि की कथायें संकलित हैं। ये कथायें घटना प्रधान तथा नाटकीय तत्वों से भरपूर हैं। सांस्कृतिक महत्व की सामग्री भी इसमें सन्निहित है।

7. उवासगदसाओ :—इसमें दस अध्ययन हैं जिसमें क्रमशः आनन्द, कामदेव, चुलिनीप्रिय, सुरादेव, चुल्लशतक, कुण्डकौलिक, सद्दालपुत्र, महाशतक, नंदिनीपिता और सालतियापिता इन दस उपासकों का चरित्र-चित्रण है। इन श्रावको को पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन बारह अणुव्रतो का निरतिचार पूर्वक पालन करते हुए धर्मार्थसाधना मे तत्पर बताया है। इसे आचारांग का परिपूरक ग्रन्थ कहा जा सकता है।

8. अंतगडदसाओ :—इस अंग में ऐसे स्त्री-पुरुषों का वर्णन है जिन्होंने संसार का अन्त कर निर्वाण प्राप्त किया है। इसमें आठ वर्ग हैं। हर वर्ग किसी न किसी मुमुक्षु से संबद्ध है। यहां गौतम, समुद्र, सागर, गम्भीर, गजसुकुमाल, कृष्ण, पद्मावती, अर्जुनमाली, अतिमुक्त आदि महानुभावों का चरित्र-चित्रण उपलब्ध है। पौराणिक और चरितकाव्यों के लिये ये कथानक बीजभूत माने जा सकते हैं।

9. अणुत्तरोववाइयदसाओ :—इस ग्रन्थ मे ऐसे महापुरुषों का वर्णन है जो अपने तप और संयम से अनुत्तर विमानो में उत्पन्न हुए। उसके बाद वे मुक्तिगामी होते हैं। यह अग तीन वर्गों में विभक्त हैं। प्रथम वर्ग मे 10, द्वितीय वर्ग में 13 और तृतीय वर्ग में 10 अध्ययन हैं। जालि महाजालि, अभयकुमार आदि दस राजकुमारो का प्रथम वर्ग में, दीर्घसेन, महासेन, सिहसेन आदि तेरह राजकुमारो का द्वितीय वर्ग में और धन्य कुमार, रामपुत्र, बेहल्ल आदि दस राजकुमारों का भोगमय और तपोमय जीवन का चित्रण मिलता है।

10 पण्हवागरण :—इसमे प्रश्नोत्तर के माध्यम से परसमय (जैनेतरमत) का खण्डन कर स्वसमय की स्थापना की है। इसके दो भाग है। प्रथम भाग में हिंसादिक पाप रूप आश्रवो का और द्वितीय भाग मे अहिंसादि पांच व्रत-रूप संवर-द्वारों का वर्णन किया गया है। इसी सन्दर्भ मे मन्त्र-तन्त्र और चमत्कारिक विद्याओं का भी वणन किया गया है। संभवतः यह ग्रन्थ उत्तरकालीन है।

11 विवागसुयं :—इस ग्रन्थ में शुभाशुभ कर्मों का फल दिखाने के लिये बीस कथाओं का आलेखन किया गया है। इन कथाओ मे मृगापुत्र, नन्दिषेण आदि की जीवन गाथायें अशुभ कर्म के फल को और सुबाहु, भद्रनन्दी आदि की जीवन गाथायें शुभकर्म के फल को व्यक्त करती हैं। प्रसगवशात् यहा हम विभिन्न घातक रोगो के वर्णन भी पाते हैं। वर्णनक्रम से पता चलता है कि यह ग्रन्थ भी उत्तरकालीन होना चाहिये।

12. दिट्ठिवाय :—श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार यह ग्रन्थ लुप्त हो गया है जब कि दिगम्बर परम्परा के षट्खण्डागम आदि आगमिक ग्रन्थ इसी के भेद प्रभेद पर आधारित रहे हैं। समवायाग में इसके पांच विभाग किये गये हैं – परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, अनुयोग और चूलिका। इसमें विभिन्न दर्शनों की चर्चा रही होगी। पूर्वगत विभाग के उत्पादपूर्व आदि चौदह भेद हैं। अनुयोग भी दो प्रकार के हैं। प्रथमानुयोग और गंडिकानुयोग। चूलिकायें कही बत्तीस और कही पांच बताई गई हैं। उनका सम्बन्ध मन्त्र-तन्त्रादि से रहा होगा।

ख. उपांग साहित्य :—वैदिक अंगोपांगो के समान जैनागम के भी उपयुक्त बारह अंगों के बारह उपांग माने जाते हैं। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो उपांगों के क्रम का अगो के क्रम से कोई सम्बन्ध नहीं बैठता है। लगभग 12वीं शती से पूर्व के ग्रन्थो में अंगों के साथ उपांगों का वर्णन भी नहीं आता। इसलिये इन्हें उत्तरकालीन माना जाना चाहिये। ये उपांग इस प्रकार हैं :—

1. उववाइय में 43 सूत्र हैं और उनमें साधकों का पुनर्जन्म कहाँ-कहाँ होता है इसका वर्णन किया गया है। इसमें 72 कलाओं और विभिन्न परिव्राजकों का वर्णन मिलता है।

2. रायपसेणिय में 217 सूत्र हैं। प्रथम भाग में सूर्याभदेव का वर्णन है। और द्वितीय भाग में केशी और प्रदेशी के बीच जीव-अजीव विषयक संवाद का वर्णन है। इसमें दर्शन, स्थापत्य, संगीत और नाट्यकला की विशिष्ट सामग्री सन्निहित है।

3. जीवाभिगम में 9 प्रकरण और 272 सूत्र हैं जिनमें जीव और अजीव के भेद-प्रभेदों का विस्तृत वर्णन किया गया है। टीकाकार मलयगिरि ने इसे ठाणांग का उपांग माना है। इसमें अस्त्र, वस्त्र, धातु, भवन आदि के प्रकार दिये गये हैं।

4. पण्णवणा में 349 सूत्र हैं और उनमें जीव से संबंध रखने वाले 36 पदों का प्रतिपादन है—प्रज्ञापना, स्थान, योनि, भाषा, कषाय, इन्द्रिय, लेश्या आदि। इसके कर्ता आर्य श्यामाचार्य हैं जो महावीर परिनिर्वाण के 376 वर्ष बाद अवस्थित थे। इसे समवायांग सूत्र का उपांग माना गया है। वृक्ष, तृण, औषधियाँ, पंचेन्द्रियजीव, मनुष्य, साढ़े पच्चीस आर्यदेशों आदि का वर्णन मिलता है।

5. सूरपण्णत्ति में 20 पाहुड, और 108 सूत्र हैं जिनमें सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों की गति आदि का वर्णन मिलता है। इस पर भद्रबाहु ने निर्युक्ति और मलयगिरि ने टीका लिखी है।

6. जम्बूदीवपण्णत्ति दो भागों में विभाजित है—पूर्वार्ध और उत्तरार्ध। पूर्वार्ध में चार और उत्तरार्ध में तीन वक्षस्कार (परिच्छेद) हैं तथा कुल 176 सूत्र हैं, जिनमें जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र, नदी, पर्वत, कुलकर आदि का वर्णन है। यह नायाधम्मकहाओ का उपांग माना जाता है।

7. चन्दपण्णत्ति में बीस प्राभृत हैं और उनमें चन्द्र की गति आदि का विस्तृत विवेचन मिलता है। इसे उवासगदसाओ का उपांग माना जाता है।

8. निरयावलिया अथवा कप्पिया में दस अध्ययन हैं जिनमें काल, सुकाल, महाकाल, कण्ह, सुकण्ह, महाकण्ह, वीरकण्ह, रामकण्ह, पिउसेणकण्ह और महासेणकण्ह का वर्णन है।

9. कप्पावडिसिया में दस अध्ययन हैं जिनमें पउम, महापउम, भद्द, सुभद्द, पउमभद्द, पउमसेण, पउमगुम्म, नलिणिगुम्म, आणद व नन्दण का वर्णन है।

10. पुप्फिया में भी दस अध्ययन हैं जिनमें चन्द, सूर, सुक्क, बहुपुत्तिया, पुन्नभद्द, माणिभद्द, दत्त, सिव, बल और अणाढिय का वर्णन है।

11. पुप्फचूला में भी दस अध्ययन हैं—सिरि, हिरि, धिति, कित्ति, बुद्धि, लच्छी इलादेवी, सुरादेवी, रसदेवी और गन्ध देवी।

12. वण्हिदसाओ में बारह अध्ययन हैं—निसढ, मायनि, वह, वण्ह, पगता, जुत्ती, दसरह, दढरह, महाधणु, सत्तधणु, दसधणु और सयधणु।

ये उपांग सांस्कृतिक दृष्टि से विशेष महत्व के हैं। आठवें उपांग से लेकर बारहवें उपांग तक को समग्र रूप में निरयावलियाओ भी कहा गया है।

ग. मूलसूत्र:—

डा. शुब्रिंग के अनुसार इनमे साधु जीवन के मूलभूत नियमों का उपदेश गर्भित है इसलिये इन्हें मूलसूत्र कहा जाता है। उपांगो के समान मूलसूत्रों का भी इस नाम से उल्लेख प्राचीन आगमों में नहीं मिलता। इनकी मूलसूत्रों की सख्या में भी मतभेद है। कोई इनकी संख्या तीन मानता है—उत्तराध्ययन, आवश्यक और दसवैकालिक, और कुछ विद्वानो ने पिण्डनिर्युक्ति और ओघनिर्युक्ति दोनो में से एक को सम्मिलित कर उनकी सख्या चार कर दी है।

1. उत्तरज्झयण—भाषा और विषय की दृष्टि से प्राचीन माना जाता है। इसकी तुलना पालि त्रिपिटक के सुत्तनिपात, धम्मपद आदि ग्रन्थो से की गई है। इसका अध्ययन आचारांगादि के अध्ययन के बाद किया जाता था। यह भी सभव है कि इसकी रचना उत्तरकाल में हुई हो। उत्तराध्ययन में 36 अध्ययन हैं जिनमें नैतिक, सैद्धान्तिक और कथात्मक विषयो का समावेश किया गया है। इनमें कुछ जिनभाषित हैं, कुछ प्रत्येक बुद्धों द्वारा प्ररूपित हैं और कुछ सवाद रूप में कहे गये हैं।

2. आवस्सय में छ: नित्य क्रियाओं का छ: अध्यायों में वर्णन है—सामायिक, चतुर्विशतिस्तव, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान।

3 दसवेयालिय के रचयिता आर्य शय्यभव हैं। उन्होने इसकी रचना अपने पुत्र के लिये की थी। विकाल अर्थात् सन्ध्या मे पढे जाने के कारण इसे दसवेयालिय कहा जाता है। यह दस अध्यायों में विभक्त है जिनमें मुनि-आचार का वर्णन किया गया है।

4 पिण्डनिर्युक्ति में आठ अधिकार और 671 गाथायें है जिनमें उद्गम, उत्पादन, एषणा आदि दोषों का प्ररूपण किया गया है। इसके रचयिता भद्रबाहु माने जाते हैं।

5. ओघनिर्युक्ति में 811 गाथायें है जिनमें प्रतिलेखन, पिण्ड, उपाधिनिरूपण अनायतनवर्णन, प्रतिसेवना, आलोचना और विशुद्धि का निरूपण है।

घ. छेदसूत्र:—

श्रमण धर्म के आचार-विचार को समझने की दृष्टि से छेदसूत्रों का विशिष्ट महत्व है। इनमें उत्सर्ग (सामान्य विधान), अपवाद, दोष और प्रायश्चित्त विधानो का वर्णन किया गया है। छेदसूत्रों की सख्या 6 है—दसासुयक्खध, बृहत्कल्प, ववहार, निसीह, महानिसीह, और पचकप्प अथवा जीतकप्प।

1. दसासुयक्खध अथवा आचारदसा में दस अध्ययन हैं। उनम क्रमश: असमाधि के कारण, शबलदोष (हस्तकर्म मैथुन आदि), आशातना (अवज्ञा), गणिसम्पदा, चित्तसमाधि, उपासक प्रतिमा, भिक्षु प्रतिमा, पर्यूषणा कल्प, मोहनीयस्थान और आयातिस्थान (निदान) का वर्णन मिलता है। महावीर के जीवन-चरित की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है। इसके रचयिता निर्युक्तिकार से भिन्न आचार्य भद्रबाहु माने जाते हैं।

2. बृहत्कल्प में छ: उद्देश्य हैं जिनमें भिक्षु-भिक्षुणियों के निवास, विहार, आहार, आसन आदि से सम्बद्ध विविध नियमो का विधान किया गया है। इसके भी रचयिता भद्रबाहु माने गये हैं। यह ग्रन्थ गद्य में लिखा गया है।

3. व्यवहार में दस उद्देश और 300 सूत्र हैं। उनमे आहार, विहार, वैश्यावृत्ति, साधु-साध्वी का पारस्परिक व्यवहार, गृहगमन, दीक्षाविधान आदि विषयो पर सागोपाग चर्चा की गई है। इस ग्रन्थ के भी कर्ता भद्रबाहु मान गये हैं।

4. निसीह मे बीस उद्देश और लगभग 1500 सूत्र है। इनमें गुरुमासिक, लघुमासिक, गुरुचातुर्मासिक, लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त से संबद्ध क्रियाओ का वर्णन है।

5 महानिसीह में छ अध्ययन और दो चूलाएं हैं जिनका परिमाण लगभग 4554 श्लोक हैं। भाषा और विषय की दृष्टि से यह ग्रन्थ अधिक प्राचीन नही जान पडता। विनष्ट महानिसीथ हरिभद्रसूरि ने सशोधित किया और सिद्धसेन तथा जिनदास गणि ने उसे मान्य किया। कर्मविपाक, तान्त्रिक-प्रयोग, सघस्वरूप आदि पर विस्तार से यहा चर्चा की गई है।

6. जीतकप्प की रचना जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने 103 गाथाओ में की। इसमे आत्मा की विशुद्धि के लिए जीत अर्थात् प्रायश्चित्त का विधान है। इसमे आलोचना, प्रतिक्रमण उभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल अनवस्थाप्य और पाराचिक भेदो का वर्णन किया गया है।

च. चूलिका सूत्र.—चूलिकायें ग्रन्थ के परिशिष्ट के रूप मे मानी गई हैं। इनमें ऐसे विषयों का समावेश किया गया है जिन्हे आचार्य अन्य किसी ग्रन्थ प्रकार मे सम्मिलित नही कर सके। नन्दी और अनुयोगद्वार की गणना चूलिका सूत्रो मे की जाती है। ये सूत्र अपेक्षाकृत अर्वाचीन हैं। नन्दीसूत्र गद्य-पद्य में लिखा गया है। इसमे 90 गाथायें और 59 गद्यसूत्र हैं। इसका कुल परिमाण लगभग 700 श्लोक होगा। इसके रचयिता दूष्यगणि के शिष्य देववाचक माने जाते हैं जो देवर्धिगणि क्षमाश्रमण से भिन्न हैं। इसमे पाच ज्ञानो का वर्णन विस्तार से किया गया है। स्थविरावली और श्रुतज्ञान के भेद-प्रभेद की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है। अनुयोगद्वार में निक्षेप पद्धति से जैनधर्म के मूलभूत विषयो का आख्यान किया गया है। इसके रचयिता आर्यरक्षित माने जाते हैं। इसमें नय, निक्षेप, प्रमाण, अनुगम आदि का विस्तृत वर्णन है। ग्रन्थमान लगभग 2000 श्लोक प्रमाण है। इसमें अधिकांशत गद्य भाग है।

छ. प्रकीर्णक—इस विभाग में ऐसे ग्रन्थ सम्मिलित किये गये हैं जिनकी रचना तीर्थंकरो द्वारा प्रवदित उपदेश के आधार पर आचार्यो ने की है। ऐसे आगमिक ग्रन्थो की सख्या लगभग 14000 मानी गई है परन्तु वलभी वाचना के समय निम्नलिखित दस ग्रन्थों का ही समावेश किया गया है—चउसरण, आउरपच्चक्खाण, महापच्चक्खाण, भत्तपइण्णा, तदुलवेयालिय, संथारक, गच्छायार, गणिविज्जा, देविदथय, और मरणसमाहि (चउसरण मे 63 गाथायें हैं) जिनमे अरिहन्त, सिद्ध, साधु, एव केवली कथित धर्म का शरण माना गया है। इसे वीरभद्र कृत माना जाता है। आउरपच्चक्खाण में वीरभद्र ने 70 गाथाओ मे बालमरण और पण्डितमरण का व्याख्यान किया है। महापच्चक्खाण में 142 गाथायें हैं जिनमें व्रतो और आराधनाओ पर प्रकाश डाला गया है। भत्तपइण्णा मे 17 गाथायें है जिनमें वीरभद्र ने भक्तपरिज्ञा, इंगिनी और पादोपगमन रूप मरण-भेदो के स्वरूप का विवेचन किया है। तदुलवेयालिय मे 139 गाथायें हैं और उनमें गर्भावस्था, स्त्रीस्वभाव तथा ससार का चित्रण किया गया है। सथारक में 123 गाथायें हैं जिनमे मृत्युशय्या का वर्णन है। गच्छायार में 130 गाथायें है जिनमे गच्छ में रहने वाले साधु-साध्वियों के आचार का वर्णन है। गणिविज्जा मे 80 गाथायें हैं जिनमे दिवस, तिथि, नक्षत्र, करण, मुहूर्त आदि का वर्णन है। देविदथय (307 गा.) में देवेन्द्र की स्तुति है। मरणसमाहि (663 गा.) में आराधना, आराधक, आलोचना, सलेखन, क्षमायापन आदि पर विवेचन किया गया है।

इन प्रकीर्णकों के अतिरिक्त तित्थुगालिय, अजीवकप्प, सिद्धपाहुड, आराहण पगास, दीवसायरपण्णत्ति, जोइसकरंडक, अंगविज्जा, पिंडविसोहि, तिहिपइण्णग, सारावलि, पज्जंताराहुणा, जीवविभत्ति, कवच-पकरण और जोगिपाहुड ग्रन्थों को भी प्रकीर्णक श्रेणी में सम्मिलित किया जाता है ।

2. आगमिक व्याख्या साहित्य

उपर्युक्त अर्धमागधी आगम साहित्य पर यथासमय निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका, विवरण, वृत्ति, अवचूर्णि, पंजिका एवं व्याख्या रूप में विपुल साहित्य की रचना हुई है । इनमें आचार्यों ने आगमगत दुर्बोध स्थलों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है । इस विधा में निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीका साहित्य विशेष उल्लेखनीय है ।

क. निर्युक्ति साहित्यः—जिस प्रकार यास्क ने वैदिक पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या के लिये निरुक्त की रचना की उसी प्रकार आचार्य भद्रबाहु (द्वितीय) ने आगमिक शब्दो की व्याख्या के लिये निर्युक्तियों का निर्माण किया है। ये निर्युक्तिया निम्नलिखित दस ग्रन्थो पर लिखी गई हैं—आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचाराग, सूत्रकृताग, दशाश्रुतस्कन्ध बृहत्कल्प, व्यवहार, सूर्यप्रज्ञप्ति और ऋषिभाषित । इनमें अन्तिम दो निर्युक्तिया उपलब्ध नहीं हैं। इन निर्युक्तियो की रचना प्राकृत पद्यो में हुई है। बीच-बीच में कथाओ और दृष्टान्तो को भी नियोजित किया गया है । सभी निर्युक्तियो की रचना निक्षेप पद्धति म हुई है । इस पद्धति में शब्दों के अप्रासंगिक अर्थों को छोड कर प्रासंगिक अर्थों का निश्चय किया गया है ।

आवश्यकनिर्युक्ति में छः अध्ययन हैं :—सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान । इसमें सप्त निन्हव तथा भगवान् ऋषभदेव और महावीर के चरित्र का आलेखन हुआ है । इस निर्युक्ति पर जिनभद्र, जिनदासगणि, हरिभद्र, कोट्याचार्य, मलयगिरि, मलधारी हेमचन्द्र, माणिक्यशेखर आदि आचार्यों ने व्याख्या ग्रन्थ लिखे । इसमें लगभग 1650 गाथायें हैं । दशवैकालिक निर्युक्ति (341 गा.) मे दश, काल आदि शब्दो का निक्षेप पद्धति से विचार हुआ है। उत्तराध्ययन निर्युक्ति (607 गा.) में विविध धार्मिक और लौकिक कथाओ द्वारा सूत्रार्थ को स्पष्ट किया गया है। आचाराग निर्युक्ति (347 गा.) में आचार, अग ब्रह्मचरण आदि शब्दो का अर्थ निर्धारण किया गया है । सूत्रकृताग निर्युक्ति (205 गा.) में मत मतान्तरों का वर्णन है । दशाश्रुतस्कन्ध निर्युक्ति में समाधि, स्थान, दक्ष, श्रुत आदि का वर्णन है । बृहत्कल्प निर्युक्ति (559 गा.) और व्यवहार निर्युक्ति भाष्य मिश्रित अवस्था में उपलब्ध होती है। इनके अतिरिक्त पिण्डनिर्युक्ति, ओघनिर्युक्ति, पंचकल्प-निर्युक्ति, निशीथ-निर्युक्ति, और संसक्तनिर्युक्ति भी मिलती है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से इन निर्युक्तियों का विशेष महत्व है।

ख. भाष्य साहित्यः—निर्युक्तियो में प्रच्छन्न गूढ विषय को स्पष्ट करने के लिए भाष्य लिखे गये । जिन आगम ग्रन्थो पर भाष्य मिलते है वे हैं—आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, बृहत्कल्प, पंचकल्प, व्यवहार, निशीथ, जीतकल्प, ओघनिर्युक्ति और पिण्डनिर्युक्ति । ये सभी भाष्य पद्यबद्ध प्राकृत में हैं । आवश्यक सूत्र पर तीन भाष्य मिलते हैं—मूलभाष्य, भाष्य और विशेषावश्यकभाष्य । विशेषावश्यकभाष्य आवश्यकसूत्र के मात्र प्रथम अध्ययन सामायिक पर लिखा गया है फिर भी उसमें 3603 गाथायें हैं। इसमें आचार्य जिनभद्र (लगभग विक्रम संवत् 650-660) ने जैन ज्ञान और तत्वमीमांसा की दृष्टि से सामग्री को संकलित किया है । योग, मंगल, पंचज्ञान, सामायिक, निक्षेप, अनुयोग, गणधरवाद, आत्मा और कर्म, अष्ट निन्हव, प्रायश्चित्त विधान आदि का विस्तृत विवेचन मिलता है। जिनभद्र का ही दूसरा भाष्य जीतकल्प (103 गा.)

पर है जिसमें प्रायश्चितों का वर्णन है। इसी पर एक स्वोपज्ञभाष्य (2606 गाथायें) भी मिलता है जिसमें बृहत्कल्प, लघुभाष्य, व्यवहारभाष्य, पंचकल्प महाभाष्य, पिण्डनिर्युक्ति आदि की गाथायें शब्दशः उद्धृत हैं।

बृहत्कल्प लघुभाष्य के रचयिता संघदासगणि क्षमाश्रमण जिनभद्र के पूर्ववर्ती हैं जिन्होंने इसे छ. उद्देश्यों और 6490 गाथाओं में पूरा किया है। इसमें जिनकल्पिक और स्थविर कल्पिक साधु-साध्वियों के आहार, विहार, निवास आदि का सूक्ष्म वर्णन किया गया है। सांस्कृतिक सामग्री से यह ग्रन्थ भरा हुआ है। इन्हीं आचार्य का पंचकल्प महाभाष्य (2665 गाथायें) भी मिलता है। बृहत्कल्प लघु-भाष्य के समान बृहत्कल्प बृहद्भाष्य भी लिखा गया है पर दुर्भाग्य से अभी तक वह अपूर्ण ही उपलब्ध है। इस संदर्भ में व्यवहारभाष्य (दस उद्देश), ओघनिर्युक्ति लघुभाष्य (322 गा.), ओघनिर्युक्त बृहद्भाष्य (2517 गा.) और पिण्डनिर्युक्ति भाष्य (46 गा) भी उल्लेखनीय हैं।

ग. चूर्णि साहित्य—आगम साहित्य पर निर्युक्तियों और भाष्यों के अतिरिक्त चूर्णियां भी रचना हुई हैं। पर वे पद्य में न होकर गद्य में हैं और शुद्ध प्राकृत भाषा में न होकर प्राकृत संस्कृत मिश्रित हैं। सामान्यतः यहां संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत का प्रयोग अधिक हुआ है। चूर्णिकारों में जिनदासगणि महत्तर और सिद्धसेनसूरि अग्रगण्य हैं। जिनदासगणि महत्तर (लगभग स 650-750) ने नन्दी, अनुयोगद्वार, आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूत्रकृतांग, बृहत्कल्प, व्याख्याप्रज्ञप्ति, निशीथ और दशाश्रुतस्कन्ध पर चूर्णियां लिखी हैं तथा जीतकल्प चूर्णि के कर्ता सिद्धसेनसूरि (वि. स. 1227) हैं। इनके अतिरिक्त जीवाभिगम, महानिशीथ, व्यवहार, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थों पर भी चूर्णियां लिखी गई हैं। इन चूर्णियों में सांस्कृतिक तथा कथात्मक सामग्री भरी हुई है।

घ. टीका साहित्य:—आगम को और भी स्पष्ट करने के लिये टीकायें लिखी गई हैं। इनकी भाषा प्रधानतः संस्कृत है पर कथाभाग अधिकांशतः प्राकृत में मिलता है। आवश्यक, दशवैकालिक, नन्दी और अनुयोगद्वार पर हरिभद्रसूरि (लगभग 700-770 ई.) की, आचारांग और सूत्रकृतांग पर शीलाचार्य (वि. स. लगभग 900-1000) की, 9 अंग सूत्रों पर अभय-देवसूरि की, अनेक आगमों पर मलयगिरि की, उत्तराध्ययन पर शिष्यहिता टीका शान्तिसूरि (11वीं शती) की तथा सुखबोधा टीका देवेन्द्रगणि नेमिचन्द्र की विशेष उल्लेखनीय है। संस्कृत टीकाओं में विवरणों और वृत्तियों की तो एक लम्बी संख्या है जिसका उल्लेख करना यहां अप्रासंगिक होगा।

3. कर्म साहित्य

पूर्वोक्त आगम साहित्य अर्धमागधी प्राकृत में लिखा गया है। इसे परम्परानुसार श्वेताम्बर सम्प्रदाय स्वीकार करता है परन्तु दिगम्बर सम्प्रदाय किन्हीं कारणों-वश उसे लुप्त हुआ मानता है। उसके अनुसार आंशिक ज्ञान मुनि-परम्परा में सुरक्षित रहा। उसी के आधार पर आचार्य धरसेन के सान्निध्य में षट्खण्डागम की रचना हुई।

षट्खण्डागम दृष्टिवाद नामक बारहवें अंग के अन्तर्गत अग्रायणी नामक द्वितीय पूर्व के चयन-लब्धि नामक पांचवें अधिकार के चतुर्थ पाहुड (प्राभृत) कर्मप्रकृति पर आधारित है। इसलिये इसे कर्मप्राभृत भी कहा जाता है। इसके प्रारम्भिक भाग सत्प्ररूपणा के रचयिता पुष्पदन्त हैं और शेष भाग को आचार्य भूतबलि ने लिखा है। इनका समय महावीर निर्वाण के 600-700 वर्ष बाद माना जाता है।[1] सत्प्ररूपणा में 177 सूत्र हैं। शेष ग्रन्थ 6000 सूत्रों में रचित है। कर्मप्राभृत के छः खण्ड हैं—जीवट्ठाण (2375 सूत्र), खुद्दाबन्ध (1582 सूत्र), बन्धसामित्तविचय (324 सूत्र), वेदना (144 सूत्र), वग्गणा (962 सूत्र) और

टिप्पणी:—1. षट्खण्डागम, पुस्तक 1, प्रस्तावना पृ. 21-31.

महाबन्ध (सात अधिकार)। इनमें कर्म और उनकी विविध प्रकृतियों का विस्तृत विवेचन मिलता है। इस पर निम्नलिखित टीकायें लिखी गई हैं। इन टीकाओं में धवला टीका को छोड़कर शेष सभी अनुपलब्ध हैं। इनकी भाषा शौरसेनी प्राकृत है :—

(1) प्रथम तीन खण्डों पर कुन्दकुन्दाचार्य की प्राकृत टीका (12000 श्लोक)

(2) प्रथम पांच खण्डों पर शामकुण्डकृत पद्धति नामक प्राकृत-संस्कृत कन्नड मिश्रित टीका (12000 श्लोक परिमाण)

(3) छठे खण्ड पर तुम्बुलाचार्यकृत प्राकृत पंजिका (6000 श्लोक)

(4) वीरसेन (816 ई.) की प्राकृत संस्कृत मिश्रित टीका (72000 श्लोक)

दृष्टिवाद के ही ज्ञानप्रवाद नामक पांचवें पूर्व की दसवीं वस्तु के पेज्जदोस नामक तृतीय प्राभृत से कषायप्राभृत (कसाय पाहुड) की उत्पत्ति हुई। इसे पेज्जदोसपाहुड भी कहा गया है। आचार्य गुणधर ने इसकी रचना भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के 683 वर्ष बाद की। इसमें 1600 पद, 180 किंवा 233 गाथायें और 15 अर्थाधिकार हैं। इस पर यति वृषभ ने विक्रम की छठी शती में छः हजार श्लोक प्रमाण चूर्णिसूत्र लिखा। उस पर वीरसेन ने सन् 874 में बीस हजार श्लोक प्रमाण जयधवला टीका लिखी। इस अधूरी टीका को उनके शिष्य जयसेन (जिनसेन) ने चालीस हजार श्लोक प्रमाण टीका और लिखकर ग्रन्थ समाप्त किया। इनके अतिरिक्त उच्चारणाचार्यकृत उच्चारणवृत्ति, शामकुण्डकृत पद्धति टीका, तुम्बुलाचार्यकृत चूडामणिव्याख्या तथा बप्पदेवगुरुकृत व्याख्याप्रज्ञप्ति वृत्ति नामक टीकाओं का उल्लख मिलता है पर आज वे उपलब्ध नहीं हैं। इन सभी टीका ग्रन्थो में कर्म की विविध व्याख्या की गई है।

इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने विक्रम की 11वीं शती में गोमट्टसार की रचना की। वे चामुण्डराय के गुरु थे जिन्हें गोमट्टराय भी कहा जाता था। गोमट्टसार के दो भाग हैं—जीवकाण्ड 733 गाथायें और कर्मकाण्ड (972 गा.)। जीवकाण्ड में जीव, स्थान, क्षुद्रबन्ध, बन्धस्वामी और वेदना इन पांच विषयों का विवेचन है। कर्मकाण्ड में कर्म के भेद-प्रभेदों की व्याख्या की गई है। इसी लेखक की लब्धिसार (261 गा.) नामक एक और रचना मिलती है। लगभग आठवीं शती मे लिखी किसी अज्ञात विद्वान् की पञ्चसग्रह (1304 गा.) नामक कृति भी उपलब्ध है। इसमें कर्मस्तव आदि पांच प्रकरण हैं। प्रायः ये सभी ग्रन्थ शौरसैनी प्राकृत में लिखे गये हैं। आचार्य कुन्दकुन्द, वट्टकेर और शिवार्य के साहित्य को इसमें और जोड दिया जाय तो यह समूचा साहित्य दिगम्बर सम्प्रदाय का आगम साहित्य कहा जा सकता है।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त शिवशर्मसूरि (वि. की पांचवी शती) की कर्मप्रकृति (475 गा.); उस पर किसी अज्ञात विद्वान् की सात हजार श्लोक प्रमाण चूर्णि, वीरशेखरविजय का ठिइबन्ध (876 गा.) तथा खवग सेढी और चन्द्रर्षिमहत्तर का पचसंग्रह (1000 गा.) विशिष्ट कर्म-ग्रन्थ हैं। गर्गर्षि (वि. की 1 वीं शती) का कर्मविपाक, अज्ञात कवि का कर्मस्तव और बन्धस्वामित्व, जिनवल्लभ गणि की षडशीति, शिवशर्मसूरि का शतक और अज्ञात कवि की सप्ततिका ये प्राचीन षट् कर्म ग्रन्थ कहे जाते हैं। जिनवल्लभगणि (वि. की 12वीं शती) का सार्धशतक (155 गा.) भी स्मरणीय है। देवेन्द्रसूरि (13वी शती) के कर्मविपाक 60 गा.), कर्मस्तव (34 गा.), बन्धस्वामित्व (24 गा.), षडशीति (86 गा.) और शतक 100 गा.), इन पांच ग्रन्थों को नव्यकर्मग्रन्थ कहा जाता है। जिनभद्रगणि की विशेषणवति,

विजयविमलगणि (वि. सं. 1623) का भावप्रकरण (30 गा.), हर्षकुल गणि (16वीं शती) का बन्धोदयसत्ता प्रकरण (24 गा.) ग्रन्थ भी यहां उल्लेखनीय हैं ।

4. सिद्धान्त साहित्य

कर्मसाहित्य के अतिरिक्त कुछ और ग्रन्थ हैं जिन्हें हम आगम के अन्तर्गत रख सकते हैं । इन ग्रन्थों में आचार्य कुन्दकुन्द (प्रथम शती) के पवयणसार (275 गा.), समयसार (415 गा.), नियमसार (187 गा.), पंचत्थिकाय-संगहसुत्त (173 गा.), दंसणपाहुड (36 गा.), चारित्तपाहुड (44 गा.), सुत्तपाहुड (27 गा.), बोधपाहुड (62 गा.), भावपाहुड (166 गा.), मोक्खपाहुड (106 गा.), लिंगपाहुड (22 गा.) और सीलपाहुड (40 गा.) प्रधान ग्रन्थ हैं । इनमें निश्चय नय की दृष्टि से आत्मा की विशुद्धावस्था को प्राप्त करने का मार्ग बताया गया है । इनकी भाषा शौरसेनी है ।

अनेकान्त का सम्यक् विवेचन करने वालों में आचार्य सिद्धसेन (5-6वीं शती) शीर्षस्थ हैं । जिन्होंने सम्मइसुत्त (167 गा.) लिखकर प्राकृत में दार्शनिक ग्रन्थ लिखने का मार्ग प्रशस्त किया । यह ग्रन्थ तीन खण्डों में विभक्त है—नय, उपयोग और अनेकान्तवाद । अभयदेव ने इस पर 25000 श्लोक प्रमाण तत्वबोध-विधायिनी नामक टीका लिखी । इसकी भाषा महाराष्ट्री प्राकृत है । इसी प्रकार आचार्य देवसेन का लघुनयचक्र (87 गा.) और माइल धवल का वृहन्नयचक्र (423 गा.) भी इस सदर्भ में उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं ।

किसी अज्ञात कवि का जीवसमास (286 गा.); शान्तिसूरि (11वीं शती) का जीवविचार (51 गा.), अभयदेवसूरि की पण्णवणा-तइयपयसंगहणी (133 गा.), अज्ञातकवि की जीवाजीवाभिगमसंगहणी (223 गा.), जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण का समयखित्तसमास (637 गा.), रत्नशेखरसूरि की क्षेत्रविचारणा (377 गा.), नेमिचन्द्रसूरि का पवयणसारुद्धार (1599 गा.), सोमतिलकसूरि (वि. सं. 1373) का सत्तरिसयठाण पयरण (359 गा.); देवसूरि का जीवाणुसासण (323 गा.) आदि रचनाओं में सप्त तत्वों का सांगोपाग विवेचन मिलता है ।

धर्मोपदेशात्मक साहित्य भी प्राकृत में प्रचुर मात्रा में मिलता है । जीवन-साधना की दृष्टि से यह साहित्य लिखा गया है । धर्मदास गणि (लगभग 8 वी शती) की उवएसमाला-(542 गा), हरिभद्रसूरि का उवएसपद (1039 गा.) एवं संबोहपयरण (150 गा.), हेमचन्द्र सूरि की पुष्पमाला (505 गा.) व भवभावणा (531 गा.), महेन्द्रप्रभसूरि (सं. 1436) की उवएस चिंतामणि (415 गा.), जिनदत्तसूरि (1231) का विवेकविलास (1323 गा.); शुभवर्धनगणि (सं. 1552) की वद्धमाणदेसना (3163 गा.), लक्ष्मीवल्लभगणि का वैराग्य-रसायनप्रकरण (102 गा.); पद्मनन्दमुनि का धम्मरसायण (193 गा.) तथा जयवल्लभ का वज्जालग्ग (1330 गा.) आदि ग्रन्थ मुख्य हैं । इन कृतियों में जैनधर्म, सिद्धात और तत्वों का उपदेश दिया गया है और आध्यात्मिक उन्नति की दृष्टि से व्रतादि का महत्व बताया गया है । ये सभी कृतियां जैन महाराष्ट्री प्राकृत में लिखी गई हैं और पश्चिम के जैन साहित्यकारों ने अर्धमागधी के बाद इसी भाषा को माध्यम बनाया । 'यश्रुति' इसकी विशषता है ।

आचार्यों ने योग और बारह भावनाओं सम्बन्धी साहित्य भी प्राकृत में लिखा है । इसका अधिकांश साहित्य यद्यपि संस्कृत में मिलता है पर प्राकृत भी उससे अछूता नही रहा । हरिभद्र सूरि का झाणज्झयण (106 गा.), कुमार कार्तिकेय का बारसानुवेक्खा (489 गा.), व देवचन्द्र का गुणट्ठाणसय (107 गा.) उल्लेखनीय हैं । इन ग्रन्थों में यम, नियम आदि के माध्यम से मुक्तिमार्ग-प्राप्ति को निर्दिष्ट किया गया है । प्राचीन भारतीय योगसाधना को किस प्रकार विशुद्ध आध्यात्मिक साधना का माध्यम बनाया जा सकता है इसका निदर्शन इन आचार्यों ने इन कृतियों में बड़ी सफलतापूर्वक किया है ।

5. आचार साहित्य

आचार साहित्य में सागार और अनगार के व्रतों और नियमों का विधान रहता है। वट्टकेर (लगभग 3री शती) का मूलाचार (1552 गा.), शिवार्य (लगभग तृतीय शती) का भगवई आराहणा (2166 गा.) और वसुनन्दी (13वीं शती) का उवासयाज्झयण (546 गा.) शौरसेनी प्राकृत में लिखे कुछ विशिष्ट ग्रन्थ हैं जिनमें मुनियों और श्रावकों के आचार-विचार का विस्तृत वर्णन है।

इसी तरह हरिभद्रसूरि के पंचवत्थुग (1714 गा.), पंचासग (950 गा.), सावयपण्णत्ति (405 गा.) और सावयधम्मविहि (120 गा.), प्रद्युम्नसूरि की मूलसिद्धि (252 गा.), वीरभद्र (स. 1078) की आराहणापडाया (990 गा.), देवेन्द्रसूरि की सड्दविण किच्च (344 गा.)' आदि जैन महाराष्ट्री में लिखे प्रमुख ग्रन्थ हैं। इनमें मुनि और श्रावकों की दिनचर्या, नियम, उपनियम, दर्शन, प्रायश्चित आदि की व्यवस्था विधि बताई गई है। इन ग्रन्थों पर अनेक टीकायें भी मिलती हैं।

6. विधि-विधान और भक्तिमूलक साहित्य

प्राकृत में ऐसा साहित्य भी उपलब्ध होता है जिसमें आचार्यों ने भक्ति, पूजा प्रतिष्ठा, यज्ञ, मन्त्र, तन्त्र, पर्व, तीर्थ आदि का वर्णन किया है। कुन्दकुन्द की सिद्ध भक्ति (12 गा.), सुदभत्ति, चरित्तभत्ति, (10 गा.) अणगारभत्ति, (23 गा.), आयरियभत्ति, (10 गा.), पंचगुरुभत्ति, (7 गा.), तित्थयरभत्ति, (8 गा.) और निव्वाणभत्ति, (26 गा.) विशेष महत्वपूर्ण हैं। यशोदेवसूरि का पच्चक्खाणसरुव (329 गा.); श्रीचन्द्रसूरि की अणुट्ठाणविहि, जिनवल्लभगणि की पडिक्कमणसमायारी (40 गा.), पोसहविहिपयरण (118 गा.) और जिनप्रभसूरि (वि. स. 1363) की विहिमग्गप्पवा (3575 गा.) इस संदर्भ में उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। धनपाल की ऋषभपंचासिका (50 गा.), भद्रबाहु का उपसग्गहरस्तोत्र (20 गा.), नन्दिषेण का अजियसंतिथय, देवेन्द्रसूरि का शास्वतचैत्यस्तव, धर्मघोषसूरि (14वीं शती) का भवस्तोत्र, किसी अज्ञात कवि का निर्वाणकाण्ड (21 गा.) तथा योगीन्द्रदेव (छठी शती) का निजात्माष्टक प्रसिद्ध स्तोत्र हैं इन स्तोत्रों में दार्शनिक सिद्धान्तों के साथ ही काव्यात्मक तत्वों का विशेष ध्यान रखा गया है।

7. पौराणिक और ऐतिहासिक काव्य साहित्य

जैन धर्म में 63 शलाका महापुरुष हुए हैं जिनका जीवन-चरित्र कवियों ने अपनी लेखनी में उतारा है। इन काव्यों का स्रोत आगम साहित्य है। इन्हें प्रबन्ध काव्य की कोटि में रखा जा सकता है। इनमें कवियों ने धर्मोपदेश, कर्मफल, अवान्तरकथायें, स्तुति दर्शन, काव्य और सस्कृति को समाहित किया है। साधारणतया सभी काव्य शान्तरसानवर्ती हैं। इनमें महाकाव्य के प्राय. सभी लक्षण घटित होते हैं। लोकतत्वों का भी समावेश यहां हुआ है।

पउमचरिय (8351 गा.) पौराणिक महाकाव्यों में प्राचीनतम कृति है। जिसकी रचना विमलसूरि ने वि. सं. 530 में की। कवि ने यहां रामचरित को यथार्थवादिता की भूमिका पर खड़े होकर लिखा है। उसमें उन्होंने अतार्किक और बेसिर-पैर की बातों को स्थान नहीं दिया है। सभी प्रकार के गुण, अलंकार, रस और छन्दों का भी उपयोग किया गया है। गप्त वाकाटक युग की संस्कृति भी इसमें पर्याप्त मिलती है। महाराष्ट्री प्राकृत का परिमार्जित रूप यहां विद्यमान है। कहीं-कहीं अपभ्रंश का भी प्रभाव दिखाई देता है। इसी तरह भुवनतगसूरि का सीताचरित्र (465 गा.) भी है।

सम्भवतः शीलांकाचार्य से भिन्न शीलाचार्य (वि. सं. 925) का चउपन्नमहापुरिसचरिय (10800 श्लोक प्रमाण), भद्रेश्वरसूरि (12 वीं शती) रचित कहावली तथा,

शीलांकवि (10वीं शती) का चउप्पन्न महापुरिस चरिय (103 अधिकार), सोमप्रभाचार्य, (सं 1199) का सुमईनाहचरिय (9621 श्लोक परिमाण), लक्ष्मणगणि (सं. 1199) का सुपासनाहचरिय (8000 गा.), नेमिचन्द्रसूरि (सं. 1216) का अनंतनाहचरिय (1200 गा.), श्रीचन्द्र सूरि (सं. 1199) का मुनिसुव्वयसामिचरिय (10994 गा.) तथा गुणचन्द्रसूरि (सं. 1139) और नेमिचन्द्रसूरि (12वीं शती) के महावीर चरित्र (क्रमशः 12025 और 2385 श्लोक प्रमाण) काव्य विशेष उल्लेखनीय हैं। ये ग्रन्थ प्रायः पद्यबद्ध हैं। कथावस्तु की सजीवता व चरित्र-चित्रण की मार्मिकता यहां स्पष्टतः दिखाई देती है।

द्वादश चक्रवर्तियों तथा अन्य शलाका पुरुषों पर भी प्राकृत रचनायें उपलब्ध हैं। श्रीचन्द्रसूरि (सं. 1214) का सणंकुमार चरिय (8127 श्लोक प्रमाण), संघदासगणि और धर्मदासगणि (लगभग 5वीं शती) का वसुदेवहिण्डी (दो खण्ड) तथा गुणपालमनि का जम्बूचरिय (15 उद्देश्य) इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। इन काव्यों में जैन धर्म, इतिहास और संस्कृति पर प्रकाश डालने वाले अनेक स्थल हैं।

भगवान् महावीर के बाद होने वाले अन्य आचार्यों और साधकों पर भी प्राकृत काव्य लिखे गये हैं। तिलकसूरि (सं 1261) का प्रत्येकबुद्धचरित (6050 श्लोक प्रमाण) उनमें प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त कुछ और पौराणिक काव्य मिलते हैं जो आचार्यों के चरित्र पर आधारित हैं जैसे कालकाचार्य कथा आदि।

जैनाचार्यों ने ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर कतिपय प्राकृत काव्य लिखे हैं। कहीं राजा, मन्त्री अथवा श्रेष्ठी नायक है तो कहीं सन्त, महात्मा के जीवन को काव्य के लिये चुना गया है। उनकी दिग्विजय, संघयात्रायें तथा अन्य प्रासंगिक वर्णनों में अतिशयोक्तिया भी झलकती हैं। वहां काल्पनिक चित्रण भी उभरकर सामने आये हैं। ऐसे स्थलो पर इतिहासवेत्ता को पूरी सावधानी के साथ सामग्री का चयन करना अपेक्षित है। हेमचन्द्रसूरि का द्वयाश्रय महाकाव्य चालुक्यवंशीय कुमारपाल महाराजा के चरित का ऐसा ही चित्रण करता है। इस ग्रन्थ को पढ़कर भट्टिकाव्य, राजतरंगिणी तथा विक्रमांकदेव चरित्र जैसे ग्रन्थ स्मृति पथ में आने लगते हैं।

इतिहास के निर्माण में प्रशस्तियो और अभिलेखो का भी महत्व होता है। श्रीचन्द्रसूरि के मुनिसुव्वयसामिचरिय (सं. 1193) की 100 गाथाओं की प्रशस्ति मे संघ शाकम्भरी नरेश पृथ्वीराज, सौराष्ट्र नरेश खेंगार आदि का वर्णन है। साहित्य जहां मौन हो जाता है वहां अभिलेख बात करने लगते हैं। प्राकृत में लिखे प्राचीनतम अभिलेख के रूप में बारली (अजमेर से 38 मील दूर) में प्राप्त पाषाण खण्ड पर खुदी चार पंक्तियां हैं जिनमें वीर निर्वाण संवत् 84 उत्कीर्ण है। अशोक के लेख इसके बाद के हैं। उनमें भी प्राकृत रूप दिखाई देते है। सम्राट् खारवेल का हाथी गुफा शिलालेख, मथुरा और धमोसा से प्राप्त शिलालेख तथा घटियाल (जोधपुर) का शिलालेख (सं. 918) इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं। कई मूर्ति लेख भी प्राकृत मे मिलते हैं।

नाटकों का समावेश दृश्यकाव्य के रूप मे होता है। इसमे संवाद, संगीत, नृत्य और अभिनय संम्मिहित होता है। संस्कृत नाटकों में साधारणतः स्त्रिया, विदूषक तथा निम्नवर्ग के किंकर, धूर्त, विट, भूत, पिशाच आदि अधिकांश पात्र प्राकृत ही बोलते हैं। पूर्णतया प्राकृत में लिखा नाटक अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। नयचन्द्रसूरि की सट्टक कृति नयमंजरी अवश्य मिली है जो कर्पूरमंजरी के अनुकरण पर लिखी गई है। इसमें प्राकृत के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं।

8. कथा साहित्य

जैनाचार्यों ने प्राकृत भाषा में विपुल कथा साहित्य का निर्माण किया है। उनका मुख्य उद्देश्य कर्म, दर्शन, संयम, तप, चरित्र, दान आदि के महत्व को स्पष्ट करना रहा है। आगम साहित्य इन कथाओं का मूल स्रोत है। आधुनिक कथाओं के समान यहां वस्तु, पात्र, संवाद, देशकाल, शैली और उद्देश्य के रूप में कथा के अंग भी मिलते हैं। निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका आदि ग्रन्थों में उपलब्ध कथायें उत्तर कालीन विकास को इंगित करती हैं। यहां अपेक्षा कृत सरसता और स्पष्टता अधिक दिखाई देती है।

समूचे प्राकृत साहित्य को अनेक प्रकार से विभाजित किया गया है। आगमों मे अकथा, विकथा और कथा ये तीन भेद किये गये हैं।[1] कथा में लोककल्याण का हेतु गर्भित होता है। शेष त्याज्य है। विषय की दृष्टि से चार भेद हैं–अर्थकथा, धर्म, काम और मिश्रकथा। धर्मकथा के भी चार भेद हैं–आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनी और निर्वेदनी। जैनाचार्यों ने इसी प्रकार को अधिक अपनाया है। पात्रों के आधार पर उन्हें दिव्य, मानुष और मिश्रकथाओं के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।[2] तीसरा वर्गीकरण भाषा की दृष्टि से हुआ है —संस्कृत, प्राकृत, और मिश्र।[3] उद्योतनसूरि ने शैली की दृष्टि से इसके पांच भेद किये हैं— सकल कथा, खण्ड कथा, उल्लाप कथा, परिहास कथा और संकीर्ण कथा।[4] प्राकृत साहित्य में मे मिश्रकथाये अधिक मिलती हैं। इन सभी कथा-ग्रन्थो का परिचय देना यहां सरल नही। इसलिए विशिष्ट ग्रन्थो का ही उल्लेख किया जा रहा है।

कथा संग्रह.–जैनाचार्यों ने कुछ ऐसी धर्मकथाओं का संग्रह किया है जो साहित्यकार के लिये सदैव उपजीव्य रहा है। धर्मदासगणि (10वी शती) के उपदेशमाला प्रकरण (542 गा.) में 310 कथानको का नामोल्लेख है और टीकाओ में उनका चरित्र समग्र है। जयसिंहसूरि (वि स. 915) का धर्मोपदेशमाला विवरण (159 कथायें), देवभद्रसूरि (सं. 1108) का कहारयणकोस (12300 श्लोकप्रमाण और 50 कथायें), देवेन्द्रगणि (सं. 1129) का अक्खाणयमणिकोस (127 कथानक) आदि महत्वपूर्ण कथा संग्रह हैं जिनमे धर्म के विभिन्न आयामो पर कथानको के माध्यम से दृष्टांत प्रस्तुत किये गये हैं। ये सर्वसाधारण के लिए बहुत उपयोगी हैं।

उपर्युक्त कथानकों अथवा लोककथाओं का आश्रय लेकर कुछ स्वतन्त्र कथा साहित्य का भी निर्माण किया गया है जिनमें धर्माराधना के विविध पक्षो की प्रस्तुति मिलती है। उदाहरणतः हरिभद्रसूरि (स. 717-827) की समराइच्चकहा ऐसा ही ग्रन्थ है जिसमें महाराष्ट्रीय प्राकृत गद्य में 9 प्रकरण हैं और उनमें समरादित्य और गिरिसेन के 9 भवों का सुन्दर वर्णन है। इसी कवि का धूर्ताख्यान (480 गा.) भी अपने ढंग की एक निराली कृति है जिसमें हास्य और व्यंग्यपूर्ण मनोरंजक कथायें निबद्ध हैं। जयराम की प्राकृत धम्मपरिक्खा भी इसी शैली में रची गई उत्तम कृति है।

यशोधर और श्रीपाल के कथानक आचार्यों को बड़े रुचिकर प्रतीत हुए। सिरिवालकहा (1342 गा.) को रत्नशेखरसूरि ने संकलित किया और हेमचन्द्र साधु (स. 1428)

---

1. दशवैकालिक गा. 188; समराइच्च कहा- पृ. 2
2. समराइच्चकहा-पृ. 2
3. लीलावईकहा–36
4. कुवलयमाला-पृ. 4

ने उसे लिपिबद्ध किया। सुकौशल, सुकुमाल और जिनदत्त के चरित भी लेखकों के लिए उपजीव्य कथानक रहे हैं।

कतिपय रचनायें नारीपात्र प्रधान हैं। पादलिप्तसूरि रचित तरंगवईकहा इसी प्रकार की रचना है। यह अपने मलरूप में उपलब्ध नहीं पर नेमिचन्द्रगणि ने इसी को तरंगलोला के नाम से संक्षिप्त रूपान्तरितं-कथाओं (1642 गा.) में प्रस्तुत किया है। उद्योतन-सूरि (सं. 835) की कुवलयमाला (13000 श्लोक प्रमाण) महाराष्ट्री प्राकृत में गद्य-पद्य मय चम्पूशैली में लिखी इसी प्रकार की अनुपम कृति है जिसे हम महाकाव्य कह सकते हैं। गुण-पाल मुनि (सं. 1264) का इसिदत्ताचरिय (1550 ग्रन्थाग्र प्रमाण), धनेश्वरसूरि (सं. 1095) का सुरसुन्दरी चरिय (4001 गा.), देवेन्द्रसूरि (स. 1323) का सुदंसणाचरिय (4002 गा.) आदि रचनायें भी यहा उल्लेखनीय हैं। इनमें नारी में प्राप्त भावनाओं का सुन्दर विश्लेषण मिलता है।

कुछ कथाग्रन्थ ऐसे भी रचे गये है जिनका विशेष सम्बन्ध किसी पर्व, पूजा अथवा स्तोत्र से रहा है। ऐसे ग्रन्थों में श्रतपञ्चमी के माहात्म्य को प्रदर्शित करने वाला "नाणपंचमी कहाओ" ग्रन्थ सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। इसमें 10 कथायें और 2804 गाथायें है। इन कथाओं मे भविस्सयत्तकहाने उत्तरकालीन आचार्यों को विशेष प्रभावित किया है। इसके अतिरिक्त एकादशीव्रतकथा (137 गा.) आदि ग्रन्थ भी उपलब्ध होते है।

9. लाक्षणिक साहित्य

लाक्षणिक साहित्य से हमारा तात्पर्य है—व्याकरण, कोश, छन्द, ज्योतिष-निमित्त, शिल्पादि विद्यायें। इन सभी विद्याओं पर प्राकृत रचनायें मिलती हैं। अणुयोगदारसुत्त आदि प्राकृत आगम साहित्य में व्याकरण के कुछ सिद्धान्त परिलक्षित होते हैं पर आश्चर्य की बात है कि अभी तक प्राकृत भाषा में लिखा कोई भी प्राकृत व्याकरण उपलब्ध नही हुआ। समन्तभद्र, वीरसेन और देवेन्द्रसूरि के प्राकृत व्याकरणों का उल्लेख अवश्य मिलता है पर अभी तक वे प्रकाश में नही आ पाये। सभव है, वे ग्रन्थ प्राकृत मे लिखे गये हो। सस्कृत भाषा में लिखे गये प्राकृत व्याकरणो में चण्ड का स्ववृत्तिसहित प्राकृत व्याकरण (99 अथवा 103 सूत्र), हेमचन्द्रसूरि का सिद्धहेमचन्द्र शब्दानुशासन (1119 सूत्र), त्रिविक्रम (13वीं शती) का प्राकृत शब्दानुशासन (1036 सूत्र) आदि ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय है। इन ग्रन्थों में प्राकृत और अपभ्रंश के व्याकरण विषयक नियमोपनियमो का सुन्दर वर्णन मिलता है।

भाषा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कोश की भी आवश्यकता होती है। कोश की दृष्टि से नियुक्तियों का विशेष महत्व है। उसमे एक-एक शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थों को प्रस्तुत किया गया है। प्राकृतकोशकला के उद्भव और विकास की दृष्टि से उनका समझना आवश्यक है। हेमचन्द्र की देशी नाममाला (783 गा.) में 397 देशज शब्दो का सकलन किया गया है जो भाषा-विज्ञान की दृष्टि से विशेष उपयोगी है। इसके अतिरिक्त धनपाल (स. 1029) का पाइय लच्छीनाममाला (279 गा), विजयराजेन्द्रसूरि (सं.1960) का अभिधान राजेन्द्रकोश (चार लाख श्लोक प्रमाण) और हरगोविन्ददास त्रिक्रमचन्द सेठ का पाइय सद्दमहण्णवो (प्राकृत हिन्दी) कोश भी यहा उल्लेखनीय है।

सवेदनशीलता जाग्रत करने कराने के लिए छन्द का प्रयोग हुआ है। नदिताढ्य (लगभग 10वी शती) का गाहालक्खण (96 गा.) और रत्नशेखरसूरि (15 वीं शती) का छन्दः कोश (74 गा.) उल्लेखनीय प्राकृत छन्द ग्रन्थ है।

गणित के क्षेत्र में महावीराचार्य का गणितसार संग्रह और भास्कराचार्य की लीलावती प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इन दोनों का आधार लेकर इनमें आलेखित विषयों का ठक्कर फेरु (13वीं

शती) ने गणितसार कौमुदी नामक ग्रन्थ लिखा। उनके अन्य ग्रन्थ हैं—रत्न-परीक्षा (132 गा.), द्रव्यपरीक्षा (149 गा.), धातूत्पत्ति (57 गा.), भूगर्भप्रकाश आदि। यहां यतिवृषभ (छठी शती) की तिलोयपण्णत्ति का भी उल्लेख किया जा सकता है जिसमें लेखक ने जैन मान्यतानुसार त्रिलोक सम्बन्धी विषय को उपस्थित किया है। यह अठारह हजार श्लोक प्रमाण ग्रन्थ है।

ज्योतिष विषयक ग्रन्थों में सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि अंगबाह्य ग्रन्थों के अतिरिक्त ठक्कर फेरु का ज्योतिषसार (98. गा), हरिभद्रसूरि की लग्नशुद्धि (133 गा.), रत्नशेखर सूरि (15वीं शता) की दिनशुद्धि (144 गा.), हीरकलश (सं. 1621) का ज्योतिस्सार आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। निमित्तशास्त्र में भौम, उत्पात, स्वप्न अग अन्तरिक्ष, स्वर, लक्षण, व्यञ्जन आदि निमित्तों का अध्ययन किया गया है। किसी अज्ञात कवि का जयपाहुड (378 गा.), धरसेन का जोणिपाहुड, ऋषिपुत्र का निमित्तशास्त्र (187 गा.), दुर्गदेव (सं. 1089) का रिट्ठसमुच्चय (261 गा.) आदि रचनाएं प्रमुख हैं। अंगविज्जा एक अज्ञात कर्तृक रचना है जिसमें 60 अध्यायों में शुभाशुभ निमित्तों का वर्णन किया गया है। कुषाणकालीन यह ग्रन्थ सांस्कृतिक सामग्री से भरा हुआ है। करलक्खण (61 गा.) भी किसी अज्ञात कवि की रचना है। जिसमें हाथ के लक्षण, रेखाओं आदि का वर्णन है।

वास्तु-शिल्प शास्त्र के रूप में ठक्कर फेरु का वास्तुसार (280 गा.) प्रतिष्ठित ग्रन्थ है जिसमें भूमिपरीक्षा, भूमिशोधन आदि पर विवेचन किया गया है। इसी कवि की एक अन्य कृति रत्नपरीक्षा (132 गा.) पद्मराग, मुक्ता, विद्रुम आदि 16 प्रकार के रत्नों की उत्पत्ति स्थान, आकार, वर्ण, गुण, दोष आदि पर विचार किया गया है। उन्हीं की द्रव्यपरीक्षा (149 गा.) में सिक्कों के मूल्य, तौल, नाम आदि पर तथा धातूत्पत्ति (57 गा.) में पीतल, तांबा आदि धातुओं पर तथा भूगर्भप्रकाश में ताम्र, स्वर्ण आदि द्रव्य वाली पृथ्वी की विशेषताओं पर विशद प्रकाश डाला गया है। ये सभी ग्रन्थ वि. स. 1372-75 के बीच लिखे गये हैं।

इस प्रकार प्राकृत साहित्य के सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनाचार्यों ने उसकी हर विधा को समृद्ध किया है। प्रस्तुत निबन्ध में स्थानाभाव के कारण सभी का उल्लेख करना तो सम्भव नहीं हो सका, परन्तु इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि प्राकृत जैन साहित्य लगभग पच्चीस सौ वर्षों से साहित्य के हर क्षेत्र को अपने योगदान से हरा भरा करता आ रहा है। प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति का हर प्रांगण प्राकृत साहित्य का ऋणी है। उसने लोकभाषा और लोक-जीवन को अंगीकार कर उनकी समस्याओं के समाधान की दिशा में आध्यात्मिक चेतना को जाग्रत किया। इतना ही नहीं, आधुनिक साहित्य के लिए भी वह उपजीव्य बना। प्रेमाख्यानक काव्यों के विकास में प्राकृत जैन कथा साहित्य को भुलाया नहीं जा सकता। संस्कृत चम्पू और चरित काव्य के प्रेरक प्राकृत ग्रन्थ ही हैं। काव्य-शास्त्रीय सिद्धान्तों का सरस प्रतिपादन भी यहां हुआ है। दर्शन और सिद्धान्तों से लेकर भाषाविज्ञान, व्याकरण और इतिहास तक सब कुछ प्राकृत जैन साहित्य में निबद्ध है। उसके समूचे योगदान का मूल्यांकन अभी शेष है।

राजस्थान का प्राकृत-साहित्य : 2

—डॉ. प्रेमसुमन जैन

राजस्थान की साहित्यिक समृद्धि में प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत भाषा की रचनाओं का महत्वपूर्ण योग है।[1] प्राचीन ग्रन्थों की प्रशस्तियां, लेख, पट्टावलियां आदि के उल्लेख एवं राजस्थान के ग्रन्थ भण्डारों में उपलब्ध इन भाषाओं के ग्रन्थ इस बात के साक्षी हैं कि जैनाचार्यों ने अपना अधिकांश समय राजस्थान के सांस्कृतिक विकास में व्यतीत किया है।[2] प्राकृत भाषा में लिखे गये ग्रन्थों का सर्वेक्षण व मूल्यांकन राजस्थान के जैनाचार्यों की इस थाती को और स्पष्ट करता है।[3] राजस्थान की इस साहित्यिक सम्पदा का एक प्रामाणिक इतिहास आधुनिक शैली में लिखा जाना नितान्त अपेक्षित है।

प्राकृत साहित्य के साहित्यकारों एवं उनकी रचनाओं को राजस्थान से सम्बन्धित बतलाने में जिस आधारभूत सामग्री का उपयोग किया जा सकता है वह है–(1) ग्रन्थों की प्रशस्तियां व वृत्तियों में राजस्थान के नगरों व मन्दिरों का उल्लेख, (2) रचनाकारों के गच्छ व गुरु परम्परा का राजस्थान से संबंध, (3) प्रतिमालेखों, अभिलेखों व पट्टावलियों में ग्रन्थ व ग्रन्थकार से संबंधित उल्लेख तथा (4) राजस्थान की प्रसिद्ध जातियों व राजवंशों से ग्रन्थकारों का संबंध आदि। इन तथ्यों के अतिरिक्त गुजरात, मालवा एवं दिल्ली के प्राचीन इतिहास आदि में भी राजस्थान के रचनाकारों व आचार्यों का परिचय यत्र-तत्र उपलब्ध हो जाता है। दूसरी बात यह है कि जैन आचार्यों के भ्रमणशील होने के कारण बहुत से गुजरात आदि के ग्रन्थकारों ने भी राजस्थान में रचनायें की हैं तथा उन्हें सुरक्षित रखा है।[4] इस तरह के सभी प्रमाणों के आधार पर राजस्थान के प्राकृत-साहित्य का मूल्यांकन किया जा सकता है।

राजस्थान की साहित्यिक परम्परा

यह कह पाना कठिन है कि राजस्थान में सर्व प्रथम किस भाषा में और कौन-सा ग्रन्थ लिखा गया ? इसके उत्तर के लिये अनुश्रुति और उपलब्ध प्रमाणों को जांचना होगा। राजस्थान में ऐसी अनुश्रुति है कि प्राचीन समय में इस प्रदेश में सरस्वती नदी बहती थी, जिसके किनारे बैठकर कभी मुनियों ने वेद की रचनायें एवं अन्य ग्रन्थ लिखे थे।[5] इस मिथ को प्रमाणित करना

---

1. द्रष्टव्य—लेखक का निबन्ध—"राजस्थान में अपभ्रंश और जैन संस्कृत साहित्य" —जैन संस्कृति और राजस्थान।
2. जैन, कैलाशचन्द्र,—"जैनिज्म इन राजस्थान"।
3. शर्मा, दशरथ, "राजस्थान थ्रू द एजेज", बीकानेर, 1971।
4. द्रष्टव्य—देसाई मोहनलाल दलीचन्द—"जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास" 1933।
5. नाहटा अगरचन्द—"राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा" 1967।

कठिन है। पुनरपि सरस्वती नदी का उल्लेख राजस्थान में प्रारम्भ से ही साहित्य रचे जाने का प्रतीक है। यही बात राजस्थान में उपलब्ध प्रारम्भिक साहित्य से फलित होती है।

संस्कृत व प्राकृत की रचनाओं में महाकवि माघ का "शिशुपालवध", आचार्य हरिभद्र-सूरि का "धूर्ताख्यान" व उद्योतनसूरि की "कुवलयमालाकहा" ऐसी प्रारम्भिक रचनाएं हैं जिनमें उनके कर्त्ता के साथ-साथ उनके रचना-स्थलों और समय का भी उल्लेख है। ये सभी रचनाएं आठवीं शताब्दी की हैं और काव्य तथा शैली की दृष्टि से पर्याप्त प्रौढ हैं। अतः इनके सृजन के पीछे राजस्थान में साहित्यिक विकास की एक सुदृढ पृष्ठभूमि होनी चाहिये। यह अनुमान किया जा सकता है कि राजस्थान में 4-5वीं शताब्दी में ग्रन्थ लिखना प्रारम्भ हो गया होगा। क्योंकि इस युग में देश में विपुल साहित्य रचा जा रहा था। राजस्थान के तत्कालीन नगरों में रहने वाले साहित्यकार इसमें पीछे नहीं रहे होंगे।

जैन-साहित्य की दृष्टि से यह युग आगमों पर भाष्य आदि लिखे जाने का था। जैनाचार्य अपनी टीकाओं में प्राकृत का प्रयोग अधिक कर रहे थे।[1] प्राकृत में लौकिक काव्य आदि भी लिखे जा रहे थे। अतः सम्भव है कि किसी जैनाचार्य ने राजस्थान में विचरण करते हुये प्राकृत में ग्रन्थ रचना की हो। जैनागम के प्रसिद्ध टीकाकारों का प्रामाणिक परिचय उपलब्ध होने पर भी संभव है कि गुप्तयुग में राजस्थान में रचित किसी प्राकृत ग्रन्थ का पता चल सके। गुप्त युग में रचित ऐसी कुछ प्राकृत रचनाओं ने ही आठवीं शताब्दी की प्राकृत रचनाओं के निर्माण में भूमिका प्रदान की होगी।

राजस्थान में गुप्तयुग के जैनाचार्यों में आचार्य सिद्धसेन दिवाकर एवं एलाचार्य का चित्तौडगढ से संबंध बतलाया जाता है। सिद्धसेन दिवाकर 5वीं शताब्दी के बहुप्रज्ञ विद्वान् थे। प्रभावकचरित और प्रबन्धकोश में सिद्धसेन की चित्तौडगढ यात्रा के उल्लेख प्राप्त हैं। दिवाकर की पदवी उन्हें चित्तौडगढ में ही प्राप्त हुई थी।[2] अतः बहुत संभव है कि सिद्धसेन की साहित्य-रचना का क्षेत्र मेवाड का प्रदेश रहा हो। प्राकृत में लिखा हुआ उनका 'सन्मतितर्क' नामक ग्रन्थ राजस्थान के साहित्यकार की प्रथम प्राकृत रचना मानी जा सकती है।

दिगम्बर आचार्यों की परम्परा में एलाचार्य को 7वीं शताब्दी का विद्वान माना जाता है। कुछ विद्वान एलाचार्य को कुन्दकुन्द से अभिन्न मानते हैं। किन्तु एक एलाचार्य कुन्दकुन्द के बाद में भी हुये हैं।[3] इन्द्रनंदिकृत "श्रुतावतार" से ज्ञात होता है कि एलाचार्य चित्रकूट (चित्तौडगढ) में निवास करते थे। वे जैन शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान् थे।[4] उनके पास प्रसिद्ध

---

1. मेहता, मोहनलाल—आगमिक व्याख्याएं, "जैन साहित्य" का बृहद् इतिहास भाग, 3, 1967।

2. संघवी, सुखलाल—"सन्मतिप्रकरण", प्रस्तावना, 1963।

3. मुख्तार, जुगलकिशोर, "पुरातन जैन वाक्य-सूचि", प्रस्तावना।

4. काले गते कियत्यपि ततः पुनश्चित्रकूटपुरवासी।
   श्रीमानेलाचार्यो बभूव सिद्धान्ततत्त्वज्ञः ॥176॥
   तस्य समीपे सकलं सिद्धान्तमधीत्य वीरसेनगुरुः।
   उपरितमनिबन्धानधिकाराष्टकं लिलेख ॥177॥ —श्रुतावतार

विद्वान् वीरसेन ने शास्त्रों का अध्ययन किया था। अतः एलाचार्य की उपस्थिति में चित्तौड़ गुप्त-युग में साहित्य - साधना और विद्या का केन्द्र बन गया था। राजस्थान के प्राकृत के प्रारम्भिक साहित्यकारों व विद्वानों में सिद्धसेन के बाद एलाचार्य को स्मरण किया जा सकता है, जिनके शिष्य वीरसेन ने आठवीं शताब्दी में प्राकृत की महत्वपूर्ण रचना 'धवला' टीका के रूप में की है।

प्राकृत साहित्य का क्रमिक विकास

राजस्थान में प्राकृत-साहित्य आठवीं शताब्दी में पर्याप्त समृद्ध हो चुका था। इस शताब्दी के प्रसिद्ध विद्वान आचार्य हरिभद्रसूरि, उद्योतनसूरि; पद्मनन्दि तथा आचार्य वीरसेन हैं। आचार्य हरिभद्र का जन्म चित्तौड़ में हुआ था।[1] ये जन्म से ब्राह्मण थे तथा राजा जितारि के पुरोहित। जैन दीक्षा ग्रहण करने के बाद हरिभद्रसूरि ने जैन वाङ्मय की अपूर्व सेवा की है। इन्होंने प्राचीन आगमों पर टीकाएं एवं स्वतन्त्र मौलिक ग्रन्थ भी लिखे हैं।[2] दर्शन व साहित्य विषय पर आपकी विभिन्न रचनाओं में प्राकृत के निम्न ग्रन्थ अधिक प्रसिद्ध हैं—समराइच्चकहा, धूर्ताख्यान, उपदेशपद, धम्मसंगहणी, योगशतक, संबोहपगरण आदि। हरिभद्रसूरि ने न केवल अपने मौलिक प्राकृत ग्रन्थों द्वारा अपितु टीकाग्रन्थों में प्राकृत के प्रयोग द्वारा भी राजस्थान में प्राकृत के प्रचार-प्रसार में अपना योगदान दिया है। हरिभद्रसूरि का समय ई. सन् 700-770 माना जाता है।

उद्योतनसूरि, हरिभद्रसूरि के शिष्य थे। उन्होंने सिद्धान्त ग्रन्थों का अध्ययन हरिभद्र-सूरि से किया था। उद्योतनसूरि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कुवलयमालाकहा' द्वारा राजस्थान में प्राकृत-कथा साहित्य को एक नया मोड़ दिया। उनकी यह कृति भारतीय साहित्य में चम्पू विधा का प्रथम निदर्शन है।[3] ई सन 779 में जालौर में कुवलयमाला की रचना हुई थी। उद्द्योतनसूरि ने इस ग्रन्थ द्वारा प्राकृत कथा साहित्य का प्रतिनिधित्व किया है।

इसी शताब्दी में आचार्य वीरसेन हुए हैं। इनके जन्म स्थान के सबंध में मतभेद है। किन्तु इनका अध्ययन केन्द्र चित्तौड़ था।[5] प्राकृत के ये प्रकाण्ड पण्डित थे। प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ षट्खण्डागम पर इन्होंने 'धवला' नाम की टीका लिखी है, जो 72 हजार श्लोक प्रमाण प्राकृत व संस्कृत में हैं। वीरसेन की विद्वत्ता व पाण्डित्य की प्रशंसा उत्तरवर्ती अनेक कवियों ने की है।

इस शताब्दी के प्राकृत रचनाकारों में पद्मनन्दि का महत्वपूर्ण स्थान है। ये वीरनन्दि की शाखा में बालनन्दि के शिष्य थे। वि. स 805 में मेवाड़ राज्य के बारांनगर में आपका जन्म हुआ था। पद्मनन्दि की 'पंचविंशति', 'जम्बूद्वीपपण्णत्ति' तथा 'धम्मरसायण' प्राकृत

---

1. जीवनी के लिये द्रष्टव्य—संघवी 'समदर्शी आचार्य हरिभद्र' 1963।

2. द्रष्टव्य—शास्त्री, नेमिचन्द्र, 'हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परि-शीलन'।

3. उपाध्ये, ए. एन.—'कुवलयमालाकहा'—भूमिका।

4. लेखक का प्रबंध—'कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन' 1975।

5. जैन, ज्योतिप्रसाद, 'राजस्थान के सबसे प्राचीन साहित्यकार'—वीरवाणी, अप्रेल, 1966।

की महत्वपूर्ण रचनायें हैं। इन रचनाओं का धर्म-दर्शन के क्षेत्र में काफी प्रभाव रहा है। इस प्रकार आठवीं शताब्दी के इन चारों प्राकृत साहित्यकारों ने राजस्थान में प्राकृत-साहित्य को पर्याप्त समृद्ध किया है।[1]

पूर्व मध्य युग

राजस्थान में 9-10वीं शताब्दी में प्राकृत के अधिक साहित्यकार नहीं हुये। यह संस्कृत भाषा में पाण्डित्य-प्रदर्शन का युग था। सिद्धर्षि की 'उपमितिभवप्रपंचकथा' इसका प्रमुख उदाहरण है। यद्यपि इस युग के टीकाकारों ने प्राकृत का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। 9वीं शताब्दी के प्राकृत रचनाकारों में जयसिंहसूरि प्रमुख हैं। इन्होंने 'धर्मोपदेशमाला' पर 5778 श्लोक प्रमाण एक विवरण लिखा है, जो वि. सं. 915 में नागौर में पूर्ण हुआ था। इसमें 156 कथायें प्राकृत में दी गयी हैं।[2]

ग्यारहवी शताब्दी में राजस्थान में प्राकृत-साहित्य की पर्याप्त समृद्धि हुई है। जिनेश्वर-सूरि इस समय के प्रभावशाली आचार्य थे। इनका कार्य-क्षेत्र गुजरात, मालवा, मेवाड़ और मारवाड़ रहा है। इन्होंने मारवाड़ के डिण्डवानक गाव में प्राकृत में 'कथाकोष-प्रकरण' की रचना की थी। वि. स. 1086 में जालौर में 'चैत्यवन्दन विवरण' इन्होंने लिखा था। इनके अतिरिक्त भी 2-3 रचनाएं और इनकी प्राकृत में है।[3]

इसी शताब्दी में धनेश्वरसूरि ने चन्द्रावती (आबू) में 'सुरसुन्दरीचरियं' प्राकृत में लिखा। दुर्गदेव ने कुम्भनगर (भरतपुर) में 'रिट्ठसमुच्चय' ग्रन्थ की रचना प्राकृत मे की।[4] बुद्धिसागर ने जालौर में 'पंचग्रन्थी' ग्रन्थ प्राकृत मे रचा। महेश्वरसूरि की ज्ञानपंचमीकहा भी इसी शताब्दी की रचना है। इस शताब्दी के प्रसिद्ध कवि धनपाल का भी राजस्थान (साचौर) से संबंध रहा है, जिन्होंने प्राकृत मे 'पाइयलच्छीनाममाला' ग्रन्थ की रचना की है।[5]

ग्यारहवी शताब्दी के पूर्वार्ध मे प्राकृत साहित्य को समृद्ध करने वालों में नेमिचन्द्रसूरि का प्रमुख स्थान है। आचार्य पद प्राप्त करने के पूर्व इनका नाम देवेन्द्रगणि था। इन्होंने कई प्राकृत ग्रन्थ लिखे हैं। वि सं. 1129 में इन्होंने उत्तराध्ययन की सुखबोध टीका लिखी, जिसमें कई प्राकृत कथायें हैं। वि. सं. 1140 मे इन्होंने प्राकृत में 'महावीर चरियं' लिखा। तथा

---

1. शास्त्री नेमिचन्द — 'प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 239।
2. मेहता, मोहनलाल, 'जैन साहित्य का वृहद् इतिहास,' भाग 4, पृ. 196।
3. मुनि जिनविजय, 'कथाकोष प्रकरण', भूमिका।
4. शाह, अम्बालाल प्रे. 'जैन साहित्य का बृहद् इतिहास' भाग 5 (लाक्षणिक साहित्य) पृ. 202।
5. 'सत्यपुरीयमंडन—महावीरोत्साह' में उल्लेख।

लगभग वि. सं. 1122-1140 के बीच में इन्होंने 'रयणचूडरायचरियं' की रचना की। यह ग्रन्थ डिंडिल व सन्निवेश में प्रारम्भ कर उन्होंने चड्डावलिपुरी में इसे पूरा किया था।[1] प्रतीत होता है कि नेमिचन्द्रसूरि का कार्यक्षेत्र गुजरात एवं राजस्थान दोनों था।[2]

आचार्य हेमचन्द्र 11-12 वीं शताब्दी के बहुश्रुत विद्वान् थे। प्राकृत-साहित्य के क्षेत्र में भी उनका अपूर्व योगदान है। किन्तु उनका कार्यक्षेत्र गुजरात ही रहा है। राजस्थान में भ्रमण कर उन्होंने प्राकृत में किसी ग्रन्थ की रचना की हो ऐसा उल्लेख प्राप्त नहीं है।[3] अतः हेम-चन्द्राचार्य की प्राकृत रचनाओं को यहां सम्मिलित नहीं किया है।

मध्य युग

राजस्थान में बारहवी शताब्दी में भी अनेक प्राकृत ग्रन्थ लिखे गये हैं। खरतरगच्छ के आचार्यों ने जैन साहित्य की अपूर्व सेवा की है। अभयदेवसूरि नवांगीवृत्तिकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनकी 30 रचनाओं में से 19 रचनायें प्राकृत की हैं। आपका राजस्थान व गुजरात म विचरण होता रहता था। जिनवल्लभसूरि की 17 रचनाएं प्राकृत में उपलब्ध हैं। वि. सं. 1167 में इन्हें चित्तौड में आचार्यपद मिला था। नागौर, मरुकोट, विक्रमपुर आदि में आपने साहित्य-सृजन किया है।[4] जिनदत्तसूरि का कार्यक्षेत्र राजस्थान भी था। इनकी 10-12 रचनायें प्राकृत में उपलब्ध हैं।[5] जिनचन्द्रसूरि ने जालौर में 'संवेगरंगशाला' प्राकृत-ग्रन्थ लिखा था। लक्ष्मणगणि ने ई. सन् 1142 में माण्डलगढ में 'सुपासनाहचरियं' की रचना की थी।[6] वर्द्धमानसूरि का 'आदिनाथचरित' इस शताब्दी की प्रमुख रचना है। मेडता में मलधारी हेमचन्द्रसूरि ने भवभावना (उपदेशमाला) की रचना की थी। यह इनकी प्रसिद्ध प्राकृत रचना है।[7] गुणचन्द्रगणि इस शताब्दी के प्रमुख रचनाकार हैं। 'कहारयणकोस' और 'पासनाहचरियं' इनकी प्रसिद्ध प्राकृत रचनायें हैं।

तेरहवीं शताब्दी के बाद राजस्थान और गुजरात में राजस्थानी व गुजराती भाषा का विकास प्रारम्भ हो गया था। अतः प्राकृत-अपभ्रंश की अपेक्षा प्रादेशिक भाषाओं में साहित्य लिखा जाने लगा था। फिर भी प्राकृत की रचनायें राजस्थान में लिखी जाती रहीं। भिन्नमाल कुल में उत्पन्न आसड कवि ने वि. सं. 1248 में 'विवेगमंजरी' नामक प्राकृत ग्रन्थ लिखा। देवेन्द्रसूरि ने आबू क्षेत्र में विचरण करते हुये 'सुदसणाचरियं' एवं 'कण्हचरियं' नामक

---

1. डिडिलवइनिवेसे पारद्धा सटिठएण सम्मत्ता।
   चड्डावल्लिपुरीए एसा फग्गणचउम्मासे ॥22॥
2. देसाई—जै. सा. सं. इ.।
3. बांठिया, कस्तूरमल, 'हेमचन्द्राचार्य जीवन चरित्र' 1967।
4. 'मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि स्मृति ग्रन्थ', पृ. 20।
5. नाहटाः 'दादा जिनदत्तसूरि'।
6. देसाई—जै. सा. सं इ., पृ. 275।
7. जैन, जगदीशचन्द्र,—'प्राकृत साहित्य का इतिहास' पृ. 505।

प्राकृत ग्रन्थों की रचना की ।[1] मरुकोट के निवासी नेमिचन्द्र भण्डारी ने इस शताब्दी में 'षष्टिशतक' नामक प्राकृत ग्रन्थ लिखा ।[2] ये भण्डारी गृहस्थ लेखक थे। खरतरगच्छ के जैनाचार्यों से प्रभावित थे।

चौदहवीं शताब्दी के प्राकृत ग्रन्थकारों में ठक्कर फेरु का महत्वपूर्ण स्थान है। ठक्कर फेरु कलश श्रेष्ठी के पौत्र और चन्द्र श्रावक के पुत्र थे। वे धंधकुल में हुये थे और कन्नाणपुर में रहते थे। दिल्ली में बादशाह अलाउद्दीन के यहां ये खजांची रहे हैं ।[3] इनके वंश आदि के आधार पर इन्हें राजस्थान का स्वीकार किया जा सकता है। ठक्कर फेरु ने अनेक लाक्षणिक ग्रन्थों की रचना की है। इनके 'वास्तुसार', 'गणितसार कौमुदी', 'ज्योतिस्सार' आदि ग्रन्थ प्राकृत में हैं।

15-16वीं शताब्दी में भी राजस्थान में प्राकृत की रचनायें लिखी जाती रही हैं। जिनभद्रसूरि, (कुम्भमेर), नयरंग (वीरमपुर), मुनिसुन्दर (सिरोही), जिनहर्षगणि (चित्तौड़), राजमल्ल (नागौर), जयसोम (जोधपुर) आदि अनेक जैनाचार्यों ने इस शताब्दी में महत्वपूर्ण रचनायें लिखी हैं। जिनसत्तरि, विधिकन्दली, अनलसत्तरी, रयणसेहर कहा, छदाविका आदि प्राकृत रचनायें उनमें प्रमुख हैं। दिवाकरदास की 'गाथाकोष सप्तशती', हीरकलश का 'ज्योतिषसार', शुभचन्द्रसूरि का 'चिन्तामणिव्याकरण', साधुरंग की 'कर्मविचारसार प्रकरण' आदि 17वीं शताब्दी की प्राकृत रचनायें हैं ।[4] मेघविजय उपाध्याय एवं उपाध्याय यशोविजय आदि ने 18वीं शताब्दी में भी प्राकृत के ग्रन्थ लिखे हैं। किन्तु 15वीं शताब्दी के बाद राजस्थान में प्राकृत-साहित्य की वह समृद्धि नहीं रही जो मध्ययुग के पूर्व में थी।

प्राकृत रचनाओं के विषय

राजस्थान की इन प्राकृत रचनाओं में विषय की विविधता है। भारतीय साहित्य की शायद ही ऐसी कोई विधा हो जो राजस्थान के इन प्राकृत साहित्यकारों की लेखनी से अछूती रही हो। काव्य, कथा, चरित, चम्पू, कोश, व्याकरण, छंद, अलंकार आदि अनेक विषयों की प्राकृत रचनाएं यहां उपलब्ध हैं। धर्म व दर्शन को प्रतिपादित करने वाली भी सैंकड़ो रचनाएं प्राकृत में लिखी गई हैं। व्यंग्य-हास्य एवं नैतिक आदर्शों को प्रतिपादित करने वाले प्राकृत ग्रन्थों की कमी नहीं है। राजस्थान में विकसित प्राकृत की शताधिक रचनाओं में से कुछ प्रतिनिधि ग्रन्थों का संक्षिप्त मूल्यांकन यहां प्रस्तुत है।

1. कथा-ग्रन्थ:—

प्राकृत में कथा-साहित्य सबसे अधिक समृद्ध है। पहली शताब्दी से प्राकृत कथाओं की रचना प्रारम्भ हो गयी थी। राजस्थान में आचार्य हरिभद्र का प्राकृत कथा साहित्य पर्याप्त

---

1. जैन, प्रा. सा. इ., पृ. 561।
2. मेहता, जै. सा. बृ. इ., भाग 4, पृ. 211।
3. शाह, जै. सा. बृ. इ., भाग 5, पृ. 242।
4. द्रष्टव्य—शाह, जै. सा. बृ. इ., भाग 5।

समृद्ध है। 'समराइच्चकहा' एवं 'धूर्ताख्यान' के अतिरिक्त उन्होंने अपने टीका ग्रन्थों में भी अनेक प्राकृत कथाओं का प्रणयन किया है।

समराइच्चकहा

यह ग्रन्थ प्राकृत कथाओं की अनेक विशेषताओं से युक्त है। इसमें उज्जैन के राजकुमार समरादित्य के नौ भवों की कथा वर्णित है। पूर्व जन्म में समरादित्य गुणसेन था और उसका मित्र था-अग्निशर्मा। किन्हीं कारणों से अग्नि शर्मा ने गुण शर्मा को अपना अपमान करने वाला मान लिया। अतः वह उससे निरन्तर बदला लेने की योजना बनाता रहा। यह प्रतिशोध की भावना इन दोनों व्यक्तियों के नौ जन्मों तक चलती रही। हरिभद्र ने कथा में इतना कौतूहल बनाये रखा है कि पाठक कथा पढ़ते समय आत्मविभोर हो उठता है। प्रमुख कथा की अनेक अवान्तर कथाएं विभिन्न विषयों पर प्रकाश डालती हैं।[1]

वस्तुतः यह कथा सदाचारी एवं दुराचारी व्यक्तियों के जीवन-संघर्ष की कथा है। देश, काल और वातावरण के अनुसार जन-जीवन से अनेक पात्र इस कथा में उभरकर सामने आते हैं। उनके चरित्र विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कथाकार ने इसमें अनेक प्रतीकों का प्रयोग किया है। काव्यात्मक दृष्टि से इस कथा में अनेक मनोरम चित्र हैं। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' ने जो स्थान संस्कृत में पाया है 'समराइच्चकहा' का साहित्यिक दृष्टि से वही स्थान प्राकृत-साहित्य में है।

'समराइच्चकहा' प्राचीन भारत के सांस्कृतिक जीवन का जीता-जागता उदाहरण है। समाज, धर्म, शिक्षा, कला आदि अनेक विषयों की प्रभूत सामग्री इसमें उपलब्ध है। विदेशों से समुद्रयात्रा के कई प्रसंग इसमें वर्णित हैं। प्राकृत में गद्य एवं पद्य में लिखी हुई यह कथा मानव-जीवन के उस चरम लक्ष्य का भी निरूपण करती है, जो व्यक्ति को इस संसार के पुनरागमन से मुक्ति दिलाता है। इस संबंध में मधुबिन्दु का दृष्टांत बड़े सुन्दर ढंग से इस कथा में प्रस्तुत किया गया है।

लघुकथायें

हरिभद्र ने अपनी दशवैकालिक टीका में तीस एवं उपदेशपद में लगभग 70 प्राकृत कथायें दी हैं। इनमें से कुछ कथायें घटना-प्रधान तथा कुछ चरित्र-प्रधान हैं। कुछ कथाओं में बुद्धि का चमत्कार है तो कुछ कथायें पाठकों का स्वस्थ मनोरंजन करती हैं। नीति एवं उपदेश-प्रधान कथायें भी हरिभद्र ने लिखी हैं।[2] बुद्धि चमत्कार की एक लघु कथा द्रष्टव्य है—

कोई एक गाड़ीवान अपनी गाड़ी में अनाज भरकर एवं गाड़ी में तीतर का पिंजड़ा बांधकर शहर में अनाज बेचने आया। शहर के ठग ने उससे तीतर के दाम पूछे। गाड़ीवान ने सहजभाव से कहा—'दो कर्षापण'। ठग ने इस सौदे का गवाह बनाकर वह तीतर का पिंजड़ा अनाज से भरी गाड़ी समेत दो कर्षापण में खरीद लिया। गाड़ीवान बैलों को लेकर गांव लौटने लगा। तभी शहर के एक सज्जन व्यक्ति ने उसे एक उपाय बताया। तदनुसार वह गाड़ीवान अपने

1. शास्त्री, हरिभद्र की प्राकृत कथाओं का आलोचनात्मक परिशीलन, वैशाली।

2. शास्त्री, प्रा, भा, सा, इ., पृ. 476।

बैलों को लेकर फिर उस ठग के पास गया और बोला—'आप इन बैलों को खरीद लो। इनके बदले मुझे दो पाली सत्तू दे दो। किन्तु वह सत्तू आपकी भार्या के द्वारा ही लूंगा।'

ठग ने इस सौदे का भी गवाह बनाकर गाड़ीवान की बात इसलिये मान ली कि दो पाली सत्तू में बैल मिल जायेंगे। किन्तु जब उसकी भार्या गाड़ीवान को सत्तू देने आयी तो गाड़ीवान उसका सत्तू वाला हाथ पकड़कर अपने घर ले जाने लगा। ठग के द्वारा विरोध करने पर गाड़ीवान ने कहा कि तुम पिंजड़े की कीमत देकर जब मेरी पूरी गाड़ी ले सकते हो तो मैं भी जो सत्तू को लिये हुये है ऐसी तुम्हारी पत्नी को ले जाता हूं।

इस तरह के अनेक कथानक हरिभद्र के प्राकृत साहित्य में उपलब्ध हैं। उन्होंने न केवल लोकभाषा को आगे बढ़ाया है, अपितु लोक-जीवन का भी अपने ग्रन्थों में प्रतिपादित किया है। हरिभद्र की प्राकृत कथाओं की ये प्रवृत्तियां उत्तरवर्ती प्राकृत कथा-ग्रन्थों में भी परिलक्षित होती हैं।

ज्ञानपंचमीकहा

महेश्वरसूरि सज्जन उपाध्याय के शिष्य थे। इनका राजस्थान से क्या संबंध था वह इनकी कृतियों से स्पष्ट नहीं होता। इस नाम के आठ आचार्य हुये हैं।[1] इनकी गुरु-परम्परा राजस्थान में विकसित हुई है। इनका यह 'ज्ञानपंचमीकहा' ग्रन्थ भी राजस्थान में पर्याप्त प्रसिद्ध रहा है। सम्भवतः वि. सं. 1109 के पूर्व इस ग्रन्थ की रचना हो चुकी थी।[2]

ज्ञानपंचमीकहा में श्रुतपंचमीव्रत का माहात्म्य प्रतिपादित किया गया है। यह व्रत सुख-समृद्धि का देने वाला है यह बात कथा में कही गयी है। कथा के नायक भविष्यदत्त के विदेश चले जाने पर उसकी मां कमलश्री श्रुतपंचमी व्रत करती है। फलस्वरूप भविष्यदत्त सकुशल अपार सम्पत्ति के साथ घर लौटता है। इस मुख्य कथा के साथ इस ग्रन्थ में अन्य नौ अवान्तर कथायें और हैं। इनमें सत् और असत् प्रवृत्तियों वाले व्यक्तियों के चारित्रिक संघर्ष का सुन्दर ढंग से निरूपित किया गया है। कथाओं में पौराणिक पुट स्पष्ट नजर आता है। लोकोक्तियों का अच्छा प्रयोग हुआ है। यथा—

"मरइ गुडेण चिय तस्स विसं दिज्जए किं व।"
(जो गुड़ देने से मरता है उसे विष देने से क्या?)

निर्वाण लीलावतीकथा

इस कथा ग्रन्थ के रचयिता जिनेश्वरसूरि राजस्थान के प्रसिद्ध साहित्यकार थे। गुजरात में भी आपने ग्रन्थ लिखे हैं। इस ग्रन्थ की रचना वि. सं. 1090 के लगभग आशापल्ली नामक स्थान में हुई थी। यह पूरी कथा प्राकृत पद्यों में लिखी गयी थी जो इस समय उपलब्ध नहीं है। इस प्राकृत ग्रन्थ का संस्कृत भाषान्तर उपलब्ध है।[3] इससे पता चलता है कि मूल प्राकृत ग्रन्थ में

---

1. देसाई—जै. सा. सं. इ. अनुक्रमणिका, पृ. 861।

2. जैन, प्रा. सा. इ., पृ. 440।

3. मुनि जिनविजय 'कथाकोषप्रकरण' की भूमिका।

क्रोध, मान, माया, लोभ, हिंसा आदि विकारों के जन्म-जन्मान्तरों में प्राप्त होने वाले फलों का वर्णन है। इस ग्रन्थ में काव्य तथा कथा तत्व की अपेक्षा उपदेश तत्व की प्रधानता है।

इस समय तक प्राकृत कथाओं का इतना अधिक प्रचार हो चुका था कि स्वतन्त्र कथा ग्रन्थों के साथ-साथ प्राकृत की कथाओं के कोष-ग्रन्थ भी राजस्थान में लिखे जाने लगे थे। निर्वाण-लीलावतीकथा के लेखक का ही 'कथाकोष-प्रकरण' नामक ग्रन्थ प्राकृत में उपलब्ध है।

कथाकोष-प्रकरण

यह ग्रन्थ 'कहारयणकोस' नाम से भी प्रसिद्ध है। इसके मूल में 30 गाथाए है, जिनकी व्याख्या करते में जिनेश्वरसूरि ने 36 मुख्य एवं 4-5 अवान्तर कथाए प्राकृत में निबद्ध की हैं। यह ग्रन्थ वि. स. 1108 में मारवाड़ के डिण्डिवानक नामक गाव के श्रावकों के अनुरोध पर लिखा गया है।[1] लेखक ने सरस कथाओं का सुबोध प्राकृत गद्य मे प्रस्तुत किया है। यत्र-तत्र संस्कृत-अपभ्रंश के पद्य भी उपलब्ध है। इस ग्रन्थ में सग्रहीत कथाओं मे तत्कालीन सामाजिक स्थिति, जन-स्वाभाव, राजतन्त्र एव धार्मिक सगठनो का सुन्दर चित्रण हुआ है। नीतिकथाओं का ये कथाए प्रतिनिधित्व करती हैं। सगीतकला आदि के महत्वपूर्ण सन्दर्भ इस ग्रन्थ मे हैं।

कहारयणकोस

इस कथा-कोष के रचयिता गुणचन्द्रगणि हैं, जो जिनेश्वरसूरि की शिष्य-परम्परा मे सुमतिवाचक के शिष्य थे। खरतरगच्छ के इन आचार्यों का कार्य-क्षेत्र राजस्थान रहा है। अत. गुणचन्द्रगणि (देवभद्रसूरि) का भी राजस्थान से सम्बन्ध माना जा सकता है। यद्यपि इनकी रचनाए गुजरात में अधिक लिखी गया है।

कहारयणकोस की रचना वि. स. 1158 मे भरुकच्छ नगर के मुनिसुव्रत चैत्यालय में की गयी थी।[2] इस ग्रन्थ मे कुल 50 कथाए हैं। सभी कथाए जीवन एव जीवन के आदर्श को उपस्थित करने वाली है। इनमें विभिन्न प्रकार के चरित्र है, जो लेखक की सृजनात्मक प्रतिभा के द्योतक है। यह ग्रन्थ तत्कालीन संस्कृति का भी परिचायक है। प्राकृत गद्य-पद्य मे इसे लिखा गया है। अपभ्रंश एव संस्कृत का प्रयोग भी यत्र-तत्र हुआ है।

आख्यानमणिकोश

इसके रचयिता नेमिचन्द्रसूरि हैं। इनके अन्य ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि ये राजस्थान व गुजरात में विचरण करते थे। आबू के निकट चन्द्रावती में भी इन्होंने ग्रन्थ लिखे हैं। इस आख्यानमणिकोश में धर्म के विभिन्न अंगों का हृदयगम कराने वाली उपदेशप्रद 146 लघु कथाएं सकलित है। आम्रदेवसूरि ने ई. स. 1134 मे इस ग्रन्थ पर टीका लिखी है। मूल ग्रन्थ एव टीका दोनों प्राकृत में है।

इस ग्रन्थ की कथाए मानव-स्वभाव के विभिन्न रूपो को उपस्थित करती हैं। उपकोश और तपस्वी का आख्यान व्यक्ति के मानसिक द्वन्द्व का अच्छा चित्र उपस्थित करता है। कई

---

1. मुनि जिनविजय, क. प्र. भूमिका।

2. जैन, प्रा. सा. इ., पृ. 448।

आख्यान परीकथा के तत्वों से समाहित हैं ।[1] सुभाषितों का ग्रन्थ में अच्छा प्रयोग हुआ है। यथा—

उप्पयउ गयणमग्गे हंजउ कसिणत्तणं पयासेउ ।
तह वि हु गोव्वर ईडो न पायए भमरचनियाइं ।।

रयणसेहरीकहा

यह कथा ग्रन्थ 15 वीं शताब्दी में जिनहर्षसूरि द्वारा चित्तौड में लिखा गया था ।[2] जिनहर्ष संस्कृत और प्राकृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनकी यह कथा प्राकृत कथा साहित्य की सुन्दर प्रेम कथा है। जायसीकृत पद्मावत का इसे पूर्व रूप कह सकते हैं।

कथा का नायक रत्नशेखर रत्नपुर का रहने वाला है । उसके मन्त्री का नाम मतिसागर है। एक बार राजा किन्नर-दम्पति के वार्तालाप मे सिंहलद्वीप की राजकुमारी रत्नावली की प्रशंसा सुनता है । उसे पाने के लिए व्याकुल हो उठता है। उसका मन्त्री मतिसागर जोगिनी का रूप धारणकर रत्नावली के पास जाता है। उसे वर-प्राप्ति का उपाय बतलाते हुए कहता है कि तुम्हारे यहा के कामदेव के मन्दिर में जो तुम्हारे मार्ग का रोकेगा वही तुम्हारा पति होगा। मन्त्री लौटकर रत्नशेखर को रत्नावलि के पास ले जाता है। उनका कामदेव मन्दिर में मिलन होने के बाद विवाह हो जाता है। राजा रत्नशेखर अपने नगर में लौटकर पर्व के दिनो में ब्रह्मचर्य का पालन करता है। इससे उसके लोक-परलोक दोनों सुधर जाते हैं ।

इस तरह यह कथा मानव प्रेम के सात्विक स्वरूप को उपस्थित करती है। इसमें काम के स्थान पर प्रेम को प्रधानता दी गयी है, जो जीवन में अपूर्व आनन्द का संचार करता है। इस कथा में एक उपन्यास के समस्त तत्व और गुण विद्यमान है। कथा में गद्य व पद्य दोनो का प्रयोग सरस शैली में हुआ है। ग्रन्थ में कई सूक्तिया प्रयुक्त हुई हैं । यथा—

वर-कन्या का उचित संयोग मिलना लोक में दुर्लभ है—

"वरकन्ना सजोगी अणुसरिसो दुल्लहो लोए"

जिसके घर मे युवा कन्या हो उसे सैकड़ों चिन्ताएं रहती हैं—

"चिंता सहस्स भरिओ पुरिसो सव्वोवि होइ अणुवरयं ।

जुव्वण-भर-भरिअंगी जस्स घरे वहए कन्ना ।"

विरह का दुख बड़ा कठिन है—

"दिण जायइ जणवत्तणी पुण रत्तडी न जाई" ।

---

1. शास्त्री, प्रा. सा. आ. इ. पृ. 503 ।

2. वही पृ. 510 ।

इस तरह राजस्थान के प्राकृत-ग्रन्थों में कथाग्रन्थों की अधिकता है । भारतीय कथा-साहित्य प्राकृत की इन कथाओं से प्रभावित हुआ है। इन कथाओं के अनेक अभिप्राय अन्य भाषाओं की कथाओं में उपलब्ध होते हैं ।[1] प्राकृत की ये कथाएं धर्म और नैतिक आदर्शों से जुड़ी हुई हैं । यद्यपि इनमें काव्य तत्वों की कमी नहीं है।

2. प्राकृत चम्पू-काव्य —

प्राकृत साहित्य मे पद्य एवं गद्य की स्वतन्त्र रचनाएं उपलब्ध हैं । कथा एवं चरित ग्रन्थों में पद्य एवं गद्य की मिश्रित शैली भी प्रयुक्त हुई है। किन्तु भारतीय साहित्य में जिसे चम्पू विधा के नाम से जाना गया है, उसका प्रतिनिधित्व प्राकृत में उद्योतनसूरि की कुवलयमाला कहा ही करती है। संस्कृत एवं प्राकृत के अन्य चम्पू काव्य कुवलयमाला के बाद ही लिखे गये हैं ।

कुवलयमालाकहा

आचार्य उद्योतनसूरि 8वीं शताब्दी के बहुश्रुत विद्वान् थे । उनकी एक मात्र कृति कुवलयमालाकहा उनके पाण्डित्य एवं सर्वतोमुखी प्रतिभा का निष्कर्ष है । उद्योतनसूरि ने न केवल सिद्धान्त-ग्रन्थों का गहन अध्ययन और मनन किया था, अपितु भारतीय साहित्य की परम्परा और विधाओं के भी वे ज्ञाता थे । सिद्धान्त, साहित्य और लोक-संस्कृति के सुन्दर-सामंजस्य का प्रतिफल है—उनकी कुवलयमालाकहा ।

कुवलयमाला की रचना जाबालिपुर (जालौर) में वि. स. 835 ई. सन् 779 में हुई थी। उद्योतनसूरि ने वहां के ऋषभ जिनेश्वर के मन्दिर के उपासरे में बैठकर इस ग्रन्थ को लिखा था ।[2] उस समय रणहस्तिन् वत्सराज का वहां राज्य था। इस तरह इतनी प्रामाणिक सूचनाएं इस ग्रन्थ में होने से इसकी सांस्कृतिक सामग्री भी महत्वपूर्ण हो गयी है।

उद्योतनसूरि ने इस ग्रन्थ में क्रोध, मान, माया, लोभ एवं मोह जैसे विकारों का पात्रों के रूप में उपस्थित किया है। इन पांचों की प्रमुख कथाओं के साथ कुवलयचन्द्र और कुवलयमाला के परिणय, दीक्षा आदि की कथा भी इसमें वर्णित है। कुल 27 अवान्तर प्राकृत कथाएं इसमें हैं । भारतीय लोक-कथाओं का प्रतिनिधित्व कुवलयमाला की कथाओं द्वारा होता है।

कुवलयमालाकहा राजस्थान की प्राकृत रचनाओं में कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इसमें प्रथम बार कथा के भेद-प्रभेदों में संकीर्ण कथा के स्वरूप का परिचय दिया गया है, जिसका उदाहरण यह कृति स्वयं है। क्रोध आदि अमूर्त भावों को प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करने से कुवलयमाला को भारतीय रूपकात्मक काव्य-परम्परा की जननी कहा जा सकता है।

---

1. लेखक का निबन्ध—'पालि-प्राकृत कथाओं के अभिप्राय-"एक अध्ययन"

—राजस्थान भारती, भाग 11, अंक 1-3

2. जावालिउरं अट्ठावय व अह विरइया तेण ।
—णिम्मविया बोहिकरी भव्वाण होउ सव्वाणं ।।।

—कुव. 282, 21-23

इसकी कथावस्तु कर्मफल, पुनर्जन्म एवं मूल वृत्तियों के परिशोधन जैसी सांस्कृतिक विचारधाराओं पर आधारित है। आठवीं शताब्दी के सामाजिक-जीवन का यथार्थ चित्र इस कृति में समाहित है। समाज की समृद्धि तत्कालीन व्यापार एवं वाणिज्य के विस्तार पर आधारित थी, जिसका सूक्ष्म विवेचन इसमें हुआ है।[1]

इस कृति की अप्रतिम उपयोगिता इसकी भाषागत समृद्धि के कारण है।[2] संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं पैशाची के स्वरूप को सोदाहरण इसमें प्रस्तुत किया गया है। 18 देशों (प्रान्तों) की भाषा के नमूने पहली बार इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किये गये हैं। न केवल भाषा अपितु प्रत्येक प्रान्त के लोगों की पहिचान एवं उनके स्वभाव आदि का वर्णन भी कुव. में अपना महत्व रखता है। मारवाड़ के व्यापारियों का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि मारुक लोग बांके, सुस्त, जड़ बुद्धिवाले, अधिक भोजन करने वाले तथा कठोर एवं मोटे अंगों वाले थे। वे "अप्पां-तुप्पां' (हम तुम) जैसे शब्दों का उच्चारण कर रहे थे। यथा—

> वंके जडे या जड्डे बहु-भोइ कठिण-पीण-थूणंगे।
> "अप्पा तुप्पा" भणिरे अह पेच्छइ मारुए तत्तो ॥
>
> (कुव. 153-3)

आठवी शताब्दी के धार्मिक-जगत् का वैविध्यपूर्ण चित्र कुव. में उपस्थित किया गया है। उस समय के 32 मत-मतान्तरों की व्याख्या उद्योतनसूरि ने जैन धर्म के परिप्रेक्ष्य में की है। शिक्षा एवं कला के क्षेत्र में उस समय के शिक्षण-संस्थान कितने महत्वपूर्ण थे, इसकी जानकारी भी इस ग्रन्थ में मिलती है।[3] कुवलयमाला न केवल सांस्कृतिक अपितु काव्यात्मक दृष्टि से भी एक उत्कृष्ट कृति है। गद्य एवं पद्य में निबद्ध कई वर्णन बड़े मनोहारी हैं। संध्यावर्णन एवं लक्ष्मी वर्णन इसके प्रसिद्ध हैं। लक्ष्मी और नारी के स्वभावों का सुन्दर चित्रण निम्न गाथा में द्रष्टव्य है—

> आलिंगियं पि मुंचइ लच्छी पुरिसं ति साहस-विहूणं।
> गोत्त-क्खलण-विलक्खा पियव्व दइया ण संदेहो ॥
>
> (कुव 66-19)

कुव. में अनेक नीति-वाक्यों का प्रयोग हुआ है। कुछ सूक्तियां बड़ी सटीक हैं। यथा—

"मा अप्पयं पसंसह जइ वि जसं इच्छसे विमलं।" (43-32)

(यदि विमल यश की आकांक्षा है तो अपनी प्रशंसा मत करो)

"जं कुंभारी सूया लोहारी किं घयं पियउ"

(कुम्हारी (स्त्री) के प्रसूता होने पर लुहारिन (स्त्री) को घी पिलाने से क्या)

---

1. जैन, प्रेम सुमन—"कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन" वैशाली 1975
2. उपाध्ये, ए. एन., कुवलयमाला, इण्ट्रोडक्शन
3. जामखेडकर, कुवलयमालाकहा : ए कल्चरल स्टडी, नागपुर, 1974

चम्पूविधा में कुवलयमालाकहा के अतिरिक्त कोई अन्य स्वतन्त्र रचना प्राकृत में नहीं है। यद्यपि गद्य-पद्य में कई प्राकृत चरित ग्रन्थ लिखे गये हैं। [1]

3. व्यंग्य कथा–धूर्ताख्यान —

राजस्थान में रचित प्राकृत साहित्य में 'धूर्ताख्यान' व्यंगोपहास शैली में लिखी गयी अनूठी रचना है। आचार्य हरिभद्र ने इसे चित्तौड में लिखा था। [2] समराइच्चकहा में हरिभद्र ने काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन किया है तो धूर्ताख्यान में वे एक कुशल उपदेशक के रूप में प्रगट हुए हैं। इस कथा में हरिभद्र ने पुराणों और रामायण, महाभारत जैसे महाकाव्यों में पायी जाने वाली कथाओं की अप्राकृतिक, अवैज्ञानिक और अबौद्धिक मान्यताओं तथा प्रवृत्तियों का कथा के माध्यम से निराकरण किया है। [3]

धूर्ताख्यान का कथानक सरल है। यह पांच धूर्तशिरोमणि मूलश्री, कडरीक, एलाषाढ, शश और खंडयाणा की कथा है। चार पुरुष और एक नारी खंडयाणा इस कथा के मूल सवाहक हैं। इनमें से प्रत्येक धूर्त असभव और काल्पनिक अपनी कथा कहता है। दूसरे धूर्त उसकी कथा को प्राचीन ग्रन्थों के उदाहरण देकर सही सिद्ध कर देते हैं। अन्त में खंडयाणा अपना अनुभव सुनाती है—

तरुण अवस्था में मैं अत्यन्त रूपवती थी। एक बार मैं ऋतु-स्नान करके मंडप में सो रही थी। तभी मेरे लावण्य से विस्मित होकर पवन ने मेरा उपभोग किया। उससे तुरन्त ही मुझे एक पुत्र उत्पन्न हुआ और वह मुझसे पूछकर कहीं चला गया।

यदि मेरा उक्त कथन असत्य है तो आप चारों लोग हमारे भोजन का प्रबन्ध करें और यदि मेरा अनुभव सत्य है तो इस संसार में कोई भी स्त्री अपुत्रवती न होनी चाहिये। क्योंकि पवन (हवा) के समागम से सबको पुत्र हो सकता है।

मूल श्री नामक धूर्त ने खंडयाणा के इस कथन का समर्थन महाभारत आदि के उद्धरण देकर किया।

हरिभद्र जैन परम्परा को मानने वाले थे। अतः उन्होंने वैदिक परम्परा में प्रचलित काल्पनिक कथाओं एवं अबौद्धिक धारणाओं का निरसन करना चाहा है। कथाकार ने स्वयं इन मान्यताओं पर सीधा प्रहार न कर कथा के पात्रों द्वारा व्यंग शैली में उनकी निस्सारता उपस्थित की है। सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय, ब्रह्मा-विष्णु-महेश की अस्वाभाविक कल्पना, अग्नि आदि का वीर्यपान, ऋषियों की काल्पनिक कार्य-प्रणाली, अन्धविश्वास आदि अनेक मान्यताओं का खण्डन इस ग्रन्थ द्वारा हुआ है। किन्तु शैली इस प्रकार की है कि पाठक ग्रन्थ को उपन्यास जैसी रुचि से पढ़ सकता है। सर्वत्र कौतूहल बना रहता है। हास्य-व्यंग की इस अनुपम कृति से आचार्य हरिभद्र की मौलिक कथा-शैली परिलक्षित होती है। धूर्ताख्यान की इस शैली ने आगे चलकर धर्मपरीक्षा जैसी महत्वपूर्ण विधा को विकसित किया है। [4]

---

1. शास्त्री, प्रा. सा. आ. इ., पृ. 337।
2. चित्तउडदुग्ग सिरीसंठिएहिं सम्मत्तराय रत्तेहि ।
   सुचरिअ समूह सहिया कहिआ एसा कहा सुवरा।।
3. उपाध्ये, 'धूर्ताख्यान' भूमिका।
4. द्रष्टव्य लेखक का निबन्ध—'कुवलयमाला में धम्मपरीक्खा अभिप्राय'
   —जैन सिद्धान्त भास्कर, 1975

4. चरित-काव्य:—

प्राकृत काव्यों में कथा-ग्रन्थो के अतिरिक्त चरित्र ग्रन्थ भी लिखे गये हैं। चरित्र काव्यों के मूल स्रोत जैन आगम ग्रन्थ हैं। उनके प्रमुख महापुरुषों के चरित्रों को लेकर इन काव्य-ग्रन्थों की रचना की है।[1] प्राकृत के चरित-काव्यों में कथा एवं नीति दोनो साथ-साथ चलती है। प्रमुख चरित्रों के अतिरिक्त जन-जीवन के व्यक्तियों के भी चरित्र इन ग्रथों में सम्मिलित है। राजस्थान के प्राकृत साहित्यकारों ने 10-15 चरित्र ग्रन्थो की रचना विभिन्न स्थानों में की है। कुछ प्रमुख चरितकाव्यों का परिचय द्रष्टव्य है।

सिरिविजयचद केवलिचरिय

श्री अभयदेवसूरि के शिष्य चन्द्रप्रभ महत्तर ने वि. स. 1127 मे देवावड नगर में वीरदेव के अनरोध पर इस चरित की रचना की थी।[2] विजयचन्द्र के केवलज्ञान की प्राप्ति तक की कथा लेखक की अपनी कल्पना-शक्ति से प्रसूत हुई है तथा बाद मे जिनपूजा के महात्म्य का प्रतिपादन किया गया है। जिनेन्द्र देव की पूजा जिन द्रव्यों से करनी चाहिए उन सबके सम्बन्ध मे एक-एक कथा इस चरित काव्य मे है। कथाओं का स्वतन्त्र महत्व भी है। वस्तुतः भक्ति-मार्ग का प्रतिपादन आलकारिक भाषा मे कथाओं के माध्यम से इस चरित ग्रन्थ में किया गया है।

सुरसुन्दरीचरिय

जिनेश्वरसूरि के शिष्य साधु धनेश्वर ने वि. स. 1095 मे चड्डावलि (आबू) नामक स्थान में इस ग्रन्थ की रचना की थी।[3] यह एक प्रेमकथा है। सुरसुन्दरी और मकरकेतु की इस प्रणय-कथा का कवि ने इतने सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया है कि धार्मिक वर्णनों का बोझ ही प्रतीत नही होता। सारी कथा, नायिका के चारो ओर घूमती है। चरित्रो के मनोवैज्ञानिक विकास का प्रस्तुत करने मे तथा काव्यात्मक वर्णनो की छटा दिखाने मे धनेश्वरसूरि को पूर्ण सफलता मिली है। विरह से सतप्त हुए पुरुष की उपमा कवि ने भाड में भूजे जाते हुए चने के साथ दी है—

'भट्ठियचणगो वि य सयणीये कीस तडफडसि'

एक स्थान मे कहा गया है कि राग के न होने से सुख एव रागयुक्त होने से दुःख प्राप्त होता है—

---

1. शास्त्री, प्रा सा. इ., पृ. 308-10।

2. देयावडवरनयरे रिसहजिणदस्स मदिरे रइय।
   नियवीरदेव सीसस्स साहुणा तस्स वयणेण।

   —प्रशस्ति, 151

3. चड्डावलिपुरिट्ठियो स गुरुणो आणाए पाढतरा।
   कासी विक्कम-वच्छरम्मि य गए बाणंक सुन्नोडुये॥
   मासे भद्द गुरुम्मि कसिणो बीया-धणिट्ठादिने॥

   सु. च. 16-250-51

तावच्चिय परमसुहं जाव न रागो मणम्मि उच्छरइ ।
हंदि! सरागम्मि मणे दुक्खसहस्साइं पविसति ।।

इस चरित-काव्य की भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव है। समस्त काव्य प्रौढ एव उदारस शैली में लिखा गया है।

रयणचूडारायचरिय

इसके रचियता आचार्य नेमिचन्द्र हैं । इन्होंने इस काव्य को गुजरात एव राजस्थान दोनों प्रदेशों में भ्रमण करते हुये पूरा किया था ।[1] प्राकृत गद्य में रचित यह धर्मप्रधान कथा है । इस चरित-काव्य में नायक रत्नचूड का सम्पूर्ण चरित वर्णित है । उसके चरित का विकास किस क्रम से हुआ है, इसका काव्यात्मक वर्णन इस ग्रन्थ में है । मनोभावों का यहां सुन्दर चित्रण किया गया है। घटनाक्रम में पूर्वजन्म की घटनाए वर्तमान जीवन के चरित का स्फाटन करती है। अवान्तर कथाओं का संयोजन भी सुन्दर ढग से हुआ है। इस कथा में नायक ने जा नायिका को पत्र लिखा है, वह बहुत मार्मिक है ।[2] काव्य के वस्तु वर्णन प्रशसनीय हैं ।

सुदंसणाचरियं

यह चरितकाव्य देवेन्द्रसूरि का लिखा हुआ है। इन्होंने अर्बुदगिरि पर सूरिपद प्राप्त किया था ।[3] अत. राजस्थान आपका कार्यक्षेत्र रहा होगा । इस ग्रन्थ में सुदर्शना राजकुमारी के जीवन की कथा है। वह अनेक विधाओं व कलाओं में पारंगत होकर श्रमणधर्म में दीक्षित होती है । अवान्तर कथाओं द्वारा उसके जीवन के विकास को उठाया गया है। शील की काव्य में प्रतिष्ठा है। कवि जीवन की तीन विडम्बनाओं को गिनाता है—

तक्क विहूणा विज्जो, लक्खणहीणा य पंडिआ लोए ।
भावविहूणा धम्मा तिण्णिवि गरुइ विडम्बणया ।।

अजनासुन्दरी चरित

राजस्थान में केवल पुरुष कवियों ने ही नहीं, अपितु साध्वियों ने भी प्राकृत में रचनाएं लिखी हैं । जिनेश्वरसूरि की शिष्या गुणसमृद्धि महत्तरा ने प्राकृत में अजनासुन्दरी चरित की रचना की थी । इस ग्रन्थ की रचना जैसलमेर में हुई थी ।[4] 504 श्लोक प्रमाण इस ग्रन्थ में महसती अजना का जीवन-चरित सरस शैली में वर्णित है ।

---

1. डिडिलवद्दनिवेसे पारद्धा सहिएण सम्पत्ता ।
   चड्डावल्लिपुरीए एसा फग्गुणचउम्मासे ।।
   र. च., प्रशस्ति, 22
2. शास्त्री, प्रा. सा. आ. इ., पृ. 348
3. जैन, प्रा. सा. इ., पृ. 561
4. देसाई, जै. सा. सं. इ., पृ. 438

गणधरसार्द्धशतक

इसके रचयिता जिनदत्तसूरि राजस्थान के प्रभावशाली साहित्यकार हैं। इनको चित्तौड़ में वि. सं. 1169 में आचार्यपद मिला तथा अजमेर में वि. सं. 1211 में इनका अवसान हुआ। इनकी 9-10 रचनाएं प्राकृत में हैं। गणधरसार्द्धशतक उनमे से एक है। भगवान् महावीर से लेकर जिनवल्लभसूरि तक के आचार्यों का गुणानुवाद इस कृति में है।[1] यद्यपि चरित एव काव्य की दृष्टि से यह कृति प्रौढ़ नही है, किन्तु इसकी ऐतिहासिक उपयोगिता है।

इन चरितग्रन्थों के अतिरिक्त प्राकृत में और भी चरितकाव्य पाये जाते है जिनकी रचना गुजरात एव राजस्थान के जैनाचार्यों ने की है। देवेन्द्रसूरि का कण्हचरियं, नेमिचन्द्र कृत महावीरचरियं, शातिसूरिकृत पृथ्वीचन्द्र चरित, जिनमाणिक्यकृत कूर्मापुत्रचरित आदि उनमें प्रमुख है।

5. धार्मिक व दार्शनिक ग्रन्थ:—

वैसे तो जैनाचार्यों द्वारा रचित सभी ग्रन्थों मे धर्म व दर्शन का समावेश होता है। काव्य, चरित, कथा आदि ग्रन्थो मे अध्यात्म की बात कही जाती है। किन्तु प्राकृत के इन ग्रन्थकारों ने कुछ ग्रन्थ धर्म व दर्शन के लिए प्रतिपादन के लिए ही लिखे हैं। आगमिक टीका आदि ग्रन्थों के अतिरिक्त इस क्षेत्र के निम्न ग्रन्थ प्राकृत की महत्वपूर्ण उपलब्धि कहे जा सकते हैं।

सम्मइसुत्त

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर का 'सम्मइसुत्त' प्राकृत भाषा में लिखा गया दर्शन का पहला ग्रन्थ है।[2] इसमे नय, ज्ञान, दर्शन आदि का सक्षिप्त विवेचन है। अर्थ की जानकारी नय ज्ञान से ही हो सकती है, इस बात का आचार्य ने जोर देकर कहा है। यह ग्रन्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्परा मे मान्य है। 5-6 वीं शताब्दी में लिखा गया यह ग्रन्थ हो सकता है, राजस्थान का प्रथम प्राकृत ग्रन्थ हो।

योगशतक

आठवीं शताब्दी मे आचार्य हरिभद्र ने राजस्थान मे धर्म व दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थो का प्राकृत में प्रणयन किया है। उनमे योगशतक (जोगसयग) प्रमुख है। इस ग्रन्थ में योग का लक्षण, योगी का स्वरूप, आत्मा-कर्म का सम्बन्ध, योग की सिद्धि आदि अनेक दार्शनिक तथ्यों का निरूपण है।[3]

---

1. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि स्मृतिग्रन्थ, पृ. 23
2. संघवी, सुखलाल द्वारा सम्पादित एव ज्ञानोदय ट्रस्ट अहमदाबाद से 1963 में प्रकाशित।
3. देहता, जै. सा. बृ. इ., भाग 4, पृ. 234

धर्मोपदेशमाला-विवरण

इसकी रचना जयसिंहसूरि ने वि. स. 915 में नागौर में की थी ।[1] गद्य-पद्य मिश्रित इस ग्रन्थ में कवि ने धार्मिक तत्वज्ञान को प्रस्तुत करने के लिए कथाए प्रस्तुत की हैं । दान, शील, तप की प्रतिष्ठा इन कथाओं के द्वारा होती है ।

भव-भावना

मलधारी हेमचन्द्रसूरि ने वि. स. 1170 मे मेड़ता और छत्रपल्ली मे रहकर भवभावना (उपदेशमाला) और उस पर स्वोपज्ञवृत्ति की रचना की थी ।[2] ग्रन्थ में 531 गाथाओं में 12 भावनाओं का वर्णन है । वृत्ति में अनेक प्राकृत कथाए गुंफित हैं । सांस्कृतिक दृष्टि से उनका बड़ा महत्व है । अनेक सुभाषित इस ग्रन्थ में उपलब्ध हैं । विपत्ति के आने के पहिले ही उसका उपाय सोचना चाहिये । घर मे आग लगने पर कोई कुआ नही खोद सकता । यथा—

पढमं पि आवयाण चिंतेयव्वो नरेण पडियारो ।
नहि गेहम्मि पलित्ते अवड खणिउ तरइ कोई ।।

हेमचन्द्रसूरि की दूसरी महत्वपूर्ण रचना उपदेशमाला या पुष्पमाला है । इसमें शास्त्रों के अनुसार विविध दृष्टान्तों द्वारा कर्मों के क्षय का उपाय प्रतिपादित किया गया है । तप आदि के स्वरूप एव इन्द्रिय-निग्रह सम्बन्धी विशेष जानकारी इसमें दी गयी है ।[3]

संवेगरंगशाला

इसके रचयिता जिनचन्द्रसूरि राजस्थान के प्रसिद्ध विद्वान् थे । उन्होंने शान्तरस से भरपूर इस सवेगरगशाला की रचना वि. स. 1125 में की थी । इसमें दस हजार तिरेपन गाथाओं में संवेगभाव की महत्ता प्रगट की गयी है ।[4] कहा गया है कि जिसके सवेगभाव नहीं है उसकी बाकी सब तपस्या आदि भूसे के समान निस्सार है—

'जइनो सवेगरसा ता त तुसखडण सव्व ।'

विवेकमंजरी

महाकवि श्रावक आसड ने वि. स. 1248 में विवेकमजरी की रचना की थी । इस ग्रन्थ में विवेक की महिमा बतलायी गयी है तथा मन की शुद्धि की प्रेरणा दी गयी है ।[5] इसमें 12 भावनाओं का भी वर्णन है । इस ग्रन्थ की रचना कवि ने अपने पुत्र शोक में अभयदेवसूरि के उपदेश से की थी ।[6]

---

1. नाहटा, रा. सा. गो. प. पृ., 17
2. जैन, प्रा. सा. इ., पृ. 505
3. जैन, प्रा. सा. इ., पृ. 514-15
4. गांधी, लालचन्द भगवान,—'सवेगरगशाला आराधना' —म. जिन. स्मृतिग्रन्थ, पृ. 14-15
5. मेहता—जै. सा. बृ. इ., भाग 4, पृ. 216
6. देसाई—जै. सा. स. इ, पृ. 338-9

[illegible]

इसके रचयिता नेमिचन्द्र भण्डारी मारवाड के मरोट गांव के निवासी थे।[1] उन्होंने 161 गाथाओं में इस ग्रन्थ की रचना की है। इस रचना में जैन गृहस्थ व साधु के शिथिल आचार की कठोर आलोचना की गयी है। इसमें सद्गुरु एवं सदाचार के स्वरूप का भी प्रतिपादन है।

विवेकविलास

इस कृति के रचयिता जिनदत्तसूरि है। इन्होंने जाबालिपुर के राजा उदयसिंह के मन्त्री के पुत्र धनपाल के संतोष के लिए इस ग्रन्थ को लिखा था।[2] इस ग्रन्थ के 12 उल्लासों में मानव जीवन को नैतिक और धार्मिक बनाने के लिए सामान्य नियमों का प्रतिपादन है।

जंबुद्दीपपण्णत्ति संग्रह

आचार्य वीरनंदि के शिष्य पद्मनंदि ने इस ग्रन्थ की रचना वारांनगर (कोटा) में की थी। इसका रचनाकाल 11वीं शताब्दी होना चाहिए। इस ग्रन्थ में 2389 गाथाएं हैं, जिनमें जैन भूगोल के परिचय के साथ ही भगवान् महावीर के बाद की आचार्य-परम्परा दी गयी है।[3] पद्मनंदि का 'धम्मरसायण' नाम का एक और प्राकृत ग्रन्थ उपलब्ध है। इसमें 193 गाथाओं में धर्म का प्रतिपादन किया गया है।[4]

इनके अतिरिक्त अन्य धार्मिक ग्रन्थ भी प्राकृत में राजस्थान में लिखे गये हैं। ये परिमाण में छोटे और किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही लिखे जाते थे। जीवसत्तरी, अंगुलसत्तरि, प्रवचनपरीक्षा, द्वादशकुलक, कर्मविचार-प्रकरण, चैत्यवन्दनकुलक, विंशिका, संदेहदोलावलि, अवस्थाकुलक आदि इसी प्रकार की धार्मिक रचनाएं हैं। भाषा एवं विषय की दृष्टि से इनका अपना महत्व है।

6. लाक्षणिक ग्रन्थ:—

राजस्थान के प्राकृत साहित्यकारों ने काव्य एवं धार्मिक ग्रन्थों के अतिरिक्त कोश, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष आदि पर भी प्राकृत में ग्रन्थ लिखे हैं। इससे प्रतीत होता है कि जैनाचार्य जीवनोपयोगी प्रत्येक-विषय पर प्राकृत में ग्रन्थ लिखते थे। लोकभाषा के विकास में उनका यह अपूर्व योगदान है।

पाइयलच्छी नाममाला

धनपाल ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश इन तीनों भाषाओं में रचनाएं लिखी हैं। उनकी 'पाइयलच्छी नाममाला' प्राकृत का प्रसिद्ध कोश ग्रन्थ है। इसकी रचना उन्होंने अपनी छोटी

1. मेहता, जै. सा. बृ. इ., भाग 4, पृ. 211
2. वही, पृ. 217
3. प्रेमी, नाथूराम, जैन साहित्य और इतिहास, पृ. 259
4. जैन प्रा.सा.इ., पृ. 315-16

मोहिनी सुन्दरी के लिए वि. सं. 1059 में की थी। इस ग्रन्थ में 279 गाथाएं हैं जिनमें 998 प्राकृत शब्दों के पर्याय दिये गये हैं। इस कोश में प्राकृत शब्द तथा देशी शब्द भी संग्रहीत हैं। भ्रमर के लिए भसल, इंदिदर, धुग्गगाय जैसे देशी शब्दों का इसमें प्रयोग है। सुन्दर के लिए 'छट्ठं' तथा आलसी के लिए 'मट्ठ' शब्द प्रयुक्त हुए हैं।[1]

रिट्ठसमुच्चय

'रिट्ठसमुच्चय' के कर्ता आचार्य दुर्गदेव दिगम्बर सम्प्रदाय के विद्वान् थे। इन्होंने वि. सं. 1089 में कुम्भनगर (कुम्भेरगढ़, भरतपुर) में इस ग्रन्थ को समाप्त किया था। यह ग्रन्थ इन्होंने 'मरणकरंडिया' नामक ग्रन्थ के आधार पर लिखा है, जिसमें मरण-सूचक अनिष्ट चिन्हों (रिष्टों) का विवेचन है। ग्रन्थ में कुल 261 प्राकृत गाथाएं हैं। पिंडस्थ, पदस्थ और रूपस्थ ये तीन प्रकार के रिष्ट इस ग्रन्थ में बताये गये हैं। ग्रन्थ में स्वप्न विषयक जानकारी भी दी गयी है तथा विभिन्न प्रश्नों द्वारा भी व्यक्ति के मरण की सूचना प्राप्त करने का इसमें विधान है।[2]

अर्घकाण्ड

दुर्गदेव ने 'अग्घकंड' नाम का एक ग्रन्थ प्राकृत में लिखा है। इस ग्रन्थ से यह पता लगाया जा सकता है कि कौन-सी वस्तु खरीदने से और कौन-सी वस्तु बेचने से लाभ हो सकता है।[3] इस ग्रन्थ का सम्बन्ध ज्योतिष से है।

ज्योतिषसार

हीरकलश 16वीं शताब्दी के विद्वान् थे। बीकानेर एवं जोधपुर राज्य में इनका विचरण अधिक हुआ है। नागौर के डेह नामक स्थान में इनका देहान्त हुआ था।[4] इन्होंने वि. सं. 1621 में 'ज्योतिस्सार' की रचना प्राकृत में की थी। इसमें दो प्रकरण हैं। इस ग्रन्थ की प्रति बम्बई के माणिकचन्द्र भण्डार में है।[5] इस प्राकृत ग्रन्थ का सार हीरकलश ने राजस्थानी भाषा के 'ज्योतिषहीर' नामक ग्रन्थ में दिया है।[6]

औदार्यचिन्तामणि व्याकरण

इसके रचयिता मुनि श्रुतसागर हैं। ये उभय भाषा चक्रवर्ती आदि उपाधियों से विभूषित एवं विद्यानंदि के शिष्य थे।[7] वि. सं. 1575 में इन्होंने 'औदार्यचिन्तामणि व्याकरण'

---

1. शास्त्री, प्रा. सा. आ. इ., पृ. 537-38
2. शाह, जै. सा. बृ. इ. भाग 5, पृ. 202-203
3. वही, पृ. 222
4. नाहटा, 'राजस्थानी भाषा के एक बड़े कवि हीरकलश' —शोधपत्रिका वर्ष 7 अंक 4
5. शाह, जै. सा. बृ. इ. भाग 5, पृ. 186
6. साराभाई नवाब, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित।
7. शाह, जै. सा. बृ. इ., भाग 5, पृ. 74

की रचना की थी। इसकी अपूर्ण पाण्डुलिपि प्राप्त है।[1] इसमें प्राकृत भाषा विषयक छह अध्याय हैं। प्रायः हेमचन्द्र और त्रिविक्रम के प्राकृत व्याकरणों का इसमें अनुसरण किया गया है।

चिन्तामणि व्याकरण

भट्टारक शुभचन्द्रसूरि ने वि. सं. 1605 में इस ग्रन्थ की रचना की थी। इसमें कुल 1224 सूत्र हैं। हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण का इसमें अनुसरण किया गया है।[2] इस ग्रन्थ पर लेखक की स्वोपज्ञवृत्ति भी है।[3]

छंदोविद्या

कवि राजमल्ल ने 16वीं शताब्दी में 'छंदोविद्या' की रचना राजा भारमल्ल के लिये की थी। भारमल्ल श्रीमालवंश का एवं नागौर का सघाधिपति था। अतः राजमल्ल भी राजस्थान से सम्बन्धित रहे होंगे।

राजमल्ल का छंदोविद्या नामक ग्रन्थ संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी में निबद्ध है। प्राकृत-अपभ्रंश का इसमें अधिक प्रयोग हुआ है। यह ग्रन्थ छन्दशास्त्र के साथ ही ऐतिहासिक घटनाओं की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।[4]

छंदकोश

छंदकोश के रचयिता रत्नशेखरसूरि 15 वीं शताब्दी के विद्वान् थे। इनका सम्बन्ध नागपुरीयतपागच्छ से था। अतः इनका कार्यक्षेत्र भी राजस्थान हो सकता है। छंदकोश में कुल 74 पद्य हैं। 46 पद्य अपभ्रंश में एवं शेष प्राकृत में हैं। कई प्राकृत छंदों का लक्षण इस ग्रन्थ में दिया गया है।[5]

7. प्राकृत के शिलालेख:—

राजस्थान में प्राकृत भाषा का प्रचार धर्म-प्रभावना एवं साहित्य तक ही सीमित नहीं था अपितु प्राकृत में शिलालेख आदि भी यहां लिखे जाते थे। जोधपुर से 20 मील उत्तर की ओर घटयाल नाम के गांव में कक्कुक का एक प्राकृत शिलालेख उत्कीर्ण है। यह शिलालेख वि. स. 918 में लिखाया गया था। इसमें जैन मंदिर आदि बनवाने का उल्लेख है। 23 गाथाओं में यह शिलालेख है।[6] इससे ज्ञात होता है कि कक्कुक प्रतिहार राजा ने अपने सदाचरण से मारवाड, माडवल्ल तमणी एवं गुजरात आदि के लोगों को अनुरक्त कर रखा था। यथा—

> मरु माडवल्ल-तमणी-परिअंका-मज्जगुज्जरत्तासु।
> जणिओ जेन जणाणं सच्चरिअगुणेहि अणुराहो ॥ 16 ॥

---

1. एनलस् आफ भंडारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट भाग 13, पृ. 52-53।
2. शाह, वही, पृ. 74।
3. उपाध्ये, ए. एन. ए. भ. ओ रि. इ., वही, पृ. 46-52।
4. शाह, वही, पृ. 138।
5. शाह, वही, पृ. 149।
6. मूल प्राकृत एवं हिन्दी अनुवाद के लिए द्रष्टव्य—शास्त्री, प्रा. सा. आ. इ., पृ. 255-57।

8. आधुनिक प्राकृत-साहित्य:—

राजस्थान में प्राकृत ग्रन्थों के लेखन का कार्य वर्तमान युग में भी चल रहा है। प्राचीन प्राकृत ग्रन्थों का सम्पादन, अनुवाद, प्रकाशन आदि कार्यों के अतिरिक्त जैन मुनि स्वतन्त्र प्राकृत रचनाएं भी लिखते हैं। गुजरात में विहार करते हुए मूर्तिपूजक आचार्य विजयकस्तूरसूरि ने वि. सं. 2027 में 'पाइयविन्नाणकहा' नामक पुस्तक प्राकृत में लिखी है। [1] इसके दो भागों में प्राकृत की 108 कथाएं लिखी गयी है। आधुनिक शैली में लिखी गई ये कथाएं सरल और सुबोध हैं।

तेरापन्थ सम्प्रदाय के मुनियो ने भी प्राकृत में रचनाए लिखी हैं। श्री चन्दनमुनि ने बीदासर, चूरू आदि स्थानों में भ्रमण करते हुए प्राकृत मे 'रयणवालकहा' 'जयचरिअं' एवं 'णीई-धम्म-सुत्तीओ' ग्रन्थो की रचना की हैं। [2] इनमें रयणवालकहा बहुत सुन्दर और आधुनिक कथा ग्रन्थ है। वर्षाकाल का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

समत्थ-जीवलोअ-तत्तिणिवारयो, णाणाविह तरु-लया-पुप्फ-फल-गुम्म-विचित्त-तणोसहि-उप्पायगो, णिउजल-पएसेगजीवणाहारो, हालिएहिं अणिमिसदिट्ठीए दिट्ठिओ चिरं विहीरिओ समागओ पाउसिओ कालो (र. क. पृ 68)

मुनि श्री नथमल जी ने 'तुलसीमंजरी' के नाम से प्राकृत व्याकरण प्रक्रिया की भी रचना की है जो कि अभी तक अप्रकाशित है।

9. राजस्थान के ग्रन्थ-भण्डारों मे प्राकृत ग्रन्थ:—

राजस्थान के प्राकृत साहित्य का सम्पूर्ण परिचय तब तक पूरा नहीं हो सकता जब तक यहां के ग्रन्थ भण्डारो मे उपलब्ध प्राकृत ग्रन्थो का विवेचनात्मक विवरण प्रस्तुत न किया जाय। ग्रन्थ-भण्डारो की जो सूचियां प्रकाशित हैं उनसे तथा ग्रन्थ-भण्डारो के अवलोकन से इस प्रदेश के प्राकृत ग्रन्थो का परिचय तैयार किया जा सकता है। तभी ज्ञात होगा कि राजस्थान के मुनियो,श्रावको, राजाओ आदि ने प्राकृत साहित्य के विकास में कितना योगदान किया है।

1. नेमिविज्ञान कस्तूरसूरि ज्ञान मंदिर, गोपीपुरा, सूरत से प्रकाशित।

2. भगवत प्रसाद रणछोड़दास, पटेल सोसायटी (शाहीबाग) अहमदाबाद से प्रकाशित।

राजस्थान के प्राकृत साहित्यकार : ३

—देवेन्द्र मुनि शास्त्री

आचार्य हरिभद्र

हरिभद्रसूरि राजस्थान के एक ज्योतिर्धर नक्षत्र थे। उनकी प्रबल प्रतिभा से भारतीय साहित्य जगमगा रहा है। उनके जीवन के सम्बन्ध मे सर्वप्रथम उल्लेख "कहावली" में प्राप्त होता है। इतिहासविज्ञ उसे विक्रम की बारहवीं शती के आसपास की रचना मानते हैं। उसमें हरिभद्र की जन्म-स्थली के सम्बन्ध में "पिवगुई बंभपुणी" ऐसा वाक्य मिलता है,[1] जबकि अन्य अनेक स्थलो पर चित्तौड़-चित्रकूट का स्पष्ट उल्लेख है।[2] पण्डित प्रवर श्री सुखलालजी[3] का अभिमत है कि बम्भपुणी-ब्रह्मपुरी चित्तौड का ही एक विभाग रहा होगा, अथवा चित्तौड़ के सन्निकट का कोई कस्बा होगा। उनके माता का नाम गंगा और पिता का नाम शंकर-भट्ट था।[4] सुमतिगणी ने "गणधरसार्धशतक" मे हरिभद्र की जाति ब्राह्मण बताई है।[5] प्रभावक चरित्र में उन्हें पुरोहित कहा गया है।[6]

आचार्य हरिभद्र के समय के सम्बन्ध में विद्वानों में विभिन्न मत थे। किन्तु पुरातत्ववेत्ता मुनि श्री जिनविजय जी ने प्रबल प्रमाणो से यह सिद्ध कर दिया कि वीर स. 757 से 827 तक उनका जीवन काल है।[7] अब इस सम्बन्ध मे किसी भी प्रकार का मतभेद नही रहा है। उन्होंने व्याकरण, न्याय, दर्शन और धर्मशास्त्र का गम्भीर अध्ययन कहां पर किया था इसका उल्लेख

---

1. पाटण संघवी के पाड़े के जैन भण्डार की वि स. 1497 की लिखित ताडपत्रीय पोथी खण्ड 2, पत्र 300।

2. (क) उपदेश पद, श्री मुनिचन्द्रसूरि की टीका वि. स. 1174।

   (ख) गणधर सार्धशतक श्री सुमतिगणि कृत वृत्ति।

   (ग) प्रभावक चरित्र 9 शृंग (वि. सं. 1334)।

   (घ) राजशेखर कृत प्रबन्धकोष वि. स. 1405, पृ. 60।

3. समदर्शी आचार्य हरिभद्र, पृ. 6।

4. संकरो नाम भटो, तस्स गगा नाम भट्टिणी। तीसे हरिभद्दो नाम पडिओ पुत्तो।
   कहावली पत्र 300।

5. एवं सो पंडित्तगव्व मुव्वहमाणो हरिभद्दो नाम माहणो।

6. प्रभावक चरित्र शृंग 9, श्लोक 8।

7. जैन साहित्य संशोधक वर्ष 1 अंक 1।

नहीं मिलता है। वे एक बार चित्तौड़ के मार्ग से जा रहे थे उनके कर्ण-कुहरों में एक गाथा गिरी [1], गाथा प्राकृत-भाषा की थी, संक्षिप्त और संकेत-पूर्ण अर्थ लिए हुए थी अतः उसका मर्म उनकी समझ में नहीं आया। उनने गाथा का पाठ करने वाली साध्वी से उस गाथा के अर्थ को जानने की जिज्ञासा व्यक्त की। साध्वी ने अपने गुरु जिनदत्त का परिचय कराया। प्राकृत साहित्य का और जैन-परम्परा का प्रामाणिक व गम्भीर अभ्यास करने के लिये उन्होंने आचार्य के पास जैनेन्द्री-दीक्षा ग्रहण की और उस साध्वी के प्रति अपने हृदय की अनन्त श्रद्धा को उसका धर्मपुत्र अपने-आपको बताकर व्यक्त की है।[2] वे गृहस्थाश्रम में संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित थे। श्रमण बनने पर प्राकृत भाषा का भी गहराई से अध्ययन किया। उन्होंने दशवैकालिक, आवश्यक, नन्दी, अनुयोगद्वार, पन्नवणा, ओघनिर्युक्ति, चैत्यवन्दन, जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति, जीवाभिगम और पिण्ड-निर्युक्ति आदि आगमों पर संस्कृत भाषा में टीकाएं लिखीं। आगम साहित्य के वे प्रथम टीकाकार हैं।

उन्होंने प्राकृत भाषा में विपुल साहित्य का सृजन किया है। संस्कृत भाषा के समान उनका प्राकृत भाषा पर भी पूर्ण अधिकार था। उन्होंने धर्म, दर्शन, योग तथा ज्योतिष और स्तुति प्रभृति सभी विषयों में प्राकृत भाषा में ग्रन्थ लिखे हैं। जैसे उपदेश पद, पंचवस्तु, पंचाशक, बीस विंशिकाएं, श्रावक-धर्म-विधि प्रकरण, सम्बोध प्रकरण, धर्मसंग्रहणी, योग विंशिका, योगशतक, धूर्ताख्यान, समराइच्च कहा, लग्नशुद्धि, लग्न कुण्डलिया आदि।

समराइच्चकहा, प्राकृत भाषा की एक सर्वश्रेष्ठ कृति है। जो स्थान संस्कृत साहित्य में कादम्बरी का है वही स्थान प्राकृत साहित्य में समराइच्च कहा का है। यह जैन महाराष्ट्री प्राकृत में लिखी गई है, अनेक स्थलों पर शौरसेनी भाषा का भी प्रभाव है।

धुत्तक्खाण' हरिभद्र की दूसरी उल्लेखनीय रचना है। निशीथ चूर्णि की पीठिका में धूर्ताख्यान की कथाएं संक्षेप में मिलती हैं। जिनदासगणि महत्तर ने वहां यह सूचित किया है कि विशेष जिज्ञासु धुत्ताक्खान देखें। इससे यह स्पष्ट है कि जिनदासगणि के सामने धुत्ताक्खाण की कोई प्राचीन रचना रही होगी जो आज अनुपलब्ध है। आचार्य हरिभद्र ने निशीथचूर्णि के आधार से प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की है। ग्रन्थ में पुराणों में वर्णित अतिरंजित कथाओं पर करारे व्यंग करते हुए उनकी असार्थकता सिद्ध की है। भारतीय कथा-साहित्य में शैली की दृष्टि से प्रस्तुत कथा का मूर्धन्य स्थान है। लाक्षणिक शैली में इस प्रकार की अन्य कोई भी रचना उपलब्ध नहीं होती। यह साधिकार कहा जा सकता है, व्यंगोपहास की इतनी श्रेष्ठ रचना अन्य किसी भी भाषा में नहीं है। धूर्तों का व्यंग प्रहार ध्वंसात्मक नहीं अपितु निर्माणात्मक है।

कहा जाता है कि आचार्य हरिभद्र ने 1444 ग्रन्थों की रचना की थी किन्तु वे सभी ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं हैं। डा. हर्मन जैकोबी, लायमान विन्तरनित्स, प्रा. सुवाली और शुब्रिंग प्रभृति अनेक पाश्चात्य विचारकों ने हरिभद्र के ग्रन्थों का सम्पादन और अनुवाद भी किया है[4] और उनके सम्बन्ध में प्रकाश भी डाला है जिससे भी उनकी महानता का सहज ही पता लग सकता है।

---

1. चक्किदुग हरि-पणगं, पणग चक्कीण केसवो चक्की। केसव चक्की, केसव दुचक्की केसी अ चक्की अ ॥ आवश्यक निर्युक्ति गाथा 421।
2. धमतो याकिनीमहत्तरासूनुः।
3. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्या भवन बम्बई से प्रकाशित।
4. देखिये, डा. हर्मन जैकोबी ने समराइच्च कहा का सम्पादन किया। सुवाली ने योगदृष्टि समुच्चय, योग बिन्दु, लोकतत्वनिर्णय एवं षड्दर्शन समुच्चय का सम्पादन किया और लोकतत्व निर्णय का इटालियन में अनुवाद भी।

उद्योतनसूरि

उद्योतनसूरि श्वेताम्बर परम्परा के एक विशिष्ट मेधावी सन्त थे। उनका जीवन-वृत्त विस्तार से नहीं मिलता। उन्होंने वीरभद्रसूरि से सिद्धान्त की शिक्षा प्राप्त की थी और हरिभद्र-सूरि से युक्तिशास्त्र की। कुवलयमाला प्राकृत साहित्य का उनका एक अनुपम ग्रन्थ है। गद्य-पद्य मिश्रित महाराष्ट्री प्राकृत की यह प्रसाद-पूर्ण रचना चम्पू शैली में लिखी गई है।[1] महाराष्ट्री प्राकृत के साथ इसमें पैशाची, अपभ्रंश व देशी भाषाओं के साथ कहीं-कहीं पर संस्कृत भाषा का भी प्रयोग हुआ है। प्रेम और श्रृंगार के साथ वैराग्य का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। सुभाषित, मार्मिक प्रश्नोत्तर, प्रहेलिका आदि भी यत्र-तत्र दिखलाई देती हैं जिससे लेखक के विशाल अध्ययन व सूक्ष्म दृष्टि का पता लगता है। ग्रन्थ पर बाण की कादम्बरी, त्रिविक्रम की दमयन्ती कथा, और हरिभद्रसूरि के समराइच्च कहा का स्पष्ट प्रभाव है। प्रस्तुत ग्रन्थ ईस्वी सन् 779 में जाबालि-पुर जिसका वर्तमान में नाम जालौर है, में पूर्ण किया गया था।[2]

जिनेश्वरसूरि

जिनेश्वरसूरि के नाम से जैन-सम्प्रदाय में अनेक आचार्य हुए हैं। प्रस्तुत आचार्य का उल्लेख धनेश्वरसूरि[3], अभयदेव[4] और गुणचन्द्र[5] ने युगप्रधान के रूप में किया है। जिनेश्वर-सूरि का मुख्य रूप से विहार स्थल राजस्थान, मालवा और गजरात रहा है। इन्होंने संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं में रचना की। उसमें हरिभद्र कृत अष्टक पर वृत्ति, पंचलिंगी प्रकरण, वीर-चरित्र, निर्वाण-लीलावती कथा, षट्-स्थानक प्रकरण, और कहाणय-कोस मुख्य हैं। कहाणय कोस में तीस गाथायें हैं और प्राकृत में टीका है, जिसमें छत्तीस प्रमुख कथाएं हैं। कथाओं में उस युग की समाज, राजनीति और आचार-विचार का सरस चित्रण किया गया है। समास युक्त पदावली, अनावश्यक शब्दाडम्बर और अलंकारों की भरमार नहीं है। कहीं-कहीं पर अपभ्रंश भाषा का भी प्रयोग हुआ है।

उनकी निर्वाण लीलावती कथा भी प्राकृत भाषा की श्रेष्ठ रचना है। उन्होंने यह कथा सं. 1082 और सं. 1095 के मध्य में बनाई है। पदलालित्य, श्लेष और अलकारों से यह विभूषित है। प्रस्तुत ग्रन्थ का जिनरत्नसूरि रचित संस्कृत श्लोकबद्ध भाषान्तर जैसलमेर के भण्डार में उपलब्ध हुआ है। मूल कृति अभी तक अनुपलब्ध है। प्राकृत भाषा में उनकी एक अन्य रचना 'गाथा कोस' भी मिलती है।

---

1. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्या भवन, बम्बई वि. सं. 2005 सं. मुनि विजय जी।

2. तुगमलघं जिण-भवण-महाहर सावयाउल विसम।

   जावालिउर अट्ठावयं व अह अत्थि पुहईए।।
   कुवलयमाला प्रशस्ति पृष्ठ 282
   प्रकाशक-सिंघी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्याभवन, बम्बई वि. स. 2005 सं. मुनि जिनविजय जी।

3. सुरसुन्दरी चरित्र की अंतिम प्रशस्ति गा. 240 से 248

4. भगवती, ज्ञाता, समवायाग, स्थानांग औपपातिक की वृत्तियों में प्रशस्तिया

5. महावीर चरित्र प्रशस्ति।

महेश्वरसूरि

महेश्वरसूरि प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। वे संस्कृत-प्राकृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित थे। इनका समय ई. सन् 1052 से पूर्व माना गया है। "णाण पंचमी कहा"[1] इनकी एक महत्वपूर्ण रचना है। इसमें देशी शब्दों का अभाव है। भाषा में लालित्य है। यह प्राकृत भाषा का श्रेष्ठ काव्य है। महेश्वरसूरि सज्जन उपाध्याय के शिष्य थे।[2]

जिनचन्द्रसूरि

जिनचन्द्र जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। अपने लघु गुरुबन्धु अभयदेव की अभ्यर्थना को सम्मान देकर 'संवेगरंगशाला' नामक ग्रन्थ की रचना की। रचना का समय वि. सं. 1125 है। नवागी टीकाकार अभयदेव के शिष्य जिन-वल्लभसूरि ने प्रस्तुत ग्रन्थ का संशोधन किया। संवेग-भाव का प्रतिपादन करना ही ग्रन्थ का उद्देश्य रहा है। ग्रन्थ में सर्वत्र शान्त रस छलक रहा है।

जिनप्रभसूरि

जिनप्रभसूरि विलक्षण प्रतिभा के धनी आचार्य थे। उन्होंने 1326 में जैन दीक्षा ग्रहण की और आचार्य जिनसिंह ने उन्हें योग्य समझ कर 1341 में आचार्य पद प्रदान किया। दिल्ली का सुल्तान माहम्मद तुगलक बादशाह इनकी विद्वत्ता और इनके चमत्कारपूर्ण कृत्यों से अत्यधिक प्रभावित था। इनके जीवन की अनेक चमत्कारपूर्ण घटनायें प्रसिद्ध हैं।

कातन्त्र विभ्रमवृत्ति, श्रेणिक चरित्र-द्वयाश्रय काव्य, विधिमार्गप्रपा आदि अनेक ग्रन्थ बनाये। विविधतीर्थकल्प[3] प्राकृत साहित्य का एक सुन्दर ग्रन्थ है। श्रीयुत अगरचन्द नाहटा का अभिमत है कि 700 स्तोत्र भी इन्होंने बनाये। वे स्तोत्र संस्कृत, प्राकृत, देश्य भाषा के अतिरिक्त फारसी भाषा में भी लिखे हैं। वर्तमान में इनके 75 स्तोत्र उपलब्ध होते हैं।

नेमिचन्द्रसूरि:

नेमिचन्द्रसूरि बृहद्गच्छीय उद्योतनसूरि के प्रशिष्य थे और आम्रदेवसूरि के शिष्य थे। आचार्य पद प्राप्त करने के पूर्व इनका नाम देवेन्द्रगणि था। महावीर चरियं उनकी पद्यबद्ध रचना है। वि. स. 1141 में उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की। इसके अतिरिक्त "अक्खाण मणिकोस" (मूल), उत्तराध्ययन की संस्कृत टीका, आत्मबोध कुलक प्रभृति इनकी रचनाएं प्राप्त होती हैं।

---

1. सम्पादक डा. अमृतलाल सबचन्द गोपाणी, प्रकाशक-सिंघी जैन ग्रन्थमाला बम्बई सन् 1949।

2. दोपक्खुज्जोयकरा दोसासंगेण वज्जिआ अमओ।
   सिरि सज्जण उज्जाआ अउव्वचंदुव्व अक्खत्था॥
   सीसेण तस्स कहिया दस वि कहाणा इमे उ पंचमिए।
   सूरि महेसरएण भवियाण बोहणट्ठाए॥ णाण. 10।496-497

3. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई से प्रकाशित।

गुणपाल मुनि

गुणपाल मुनि ये श्वेताम्बर परम्परा के नाइलगच्छीय वीरभद्रसूरि के शिष्य अथवा प्रशिष्य थे। जंबुचरिय-1 उनकी श्रेष्ठ रचना है। ग्रन्थ की रचना कब की इसका संकेत ग्रन्थकार ने नहीं किया है, पर ग्रन्थ के सम्पादक मुनि श्री जिनविजयजी का यह अभिमत है कि ग्रन्थ ग्यारहवीं शताब्दी में या उससे पूर्व लिखा गया है। जैसलमेर के भण्डार से जो प्रति उपलब्ध हुई है वह प्रति 14 वी शताब्दी के आसपास की लिखी हुई है।

जम्बुचरियं की भाषा सरल और सुबोध है। सम्पूर्ण ग्रथ गद्य-पद्य मिश्रित है। इस पर 'कुवलयमाला' ग्रन्थ का स्पष्ट प्रभाव है। यह एक ऐतिहासिक सत्य तथ्य है कि कुवलय-माला के रचयिता उद्द्योतनसूरि ने सिद्धान्तों का अध्ययन वीरभद्र नाम के आचार्य के पास किया था। उन्होंने वीरभद्र के लिए लिखा दिन्न जहिच्छ-फलओ अवरो कप्परुक्खोव्व'। गुण-पाल ने अपने गुरु प्रद्युम्नसूरि को वीरभद्र का शिष्य बतलाया है। गुणपाल ने भी 'परिचिंतिय दिन्न फलो आसी सो कप्परुक्खो' ऐसा लिखा है। जो उद्द्योतनसूरि के वाक्य-प्रयोग के साथ मेल खाता है। इससे यह स्पष्ट है कि उद्द्योतनसूरि के सिद्धान्त-गुरु वीरभद्राचार्य और गुणपाल मुनि के प्रगुरु वीरभद्रसूरि ये दोनों एक ही व्यक्ति होंगे। यदि ऐसा ही है तो गुणपाल मुनि का अस्तित्व विक्रम की 9 वीं शताब्दी के आस-पास है।

गुणपाल मुनि की दूसरी रचना 'रिसिदत्ता चरिय' है। जिसकी अपूर्ण प्रति भाण्डारकर प्राच्यविद्या सशोधन मन्दिर, पूना में है।

समयसुन्दर गणि:

समयसुन्दर गणि ये एक वरिष्ठ मेधावी सन्त थे। तर्क, व्याकरण, साहित्य के ये गंभीर विद्वान् थे उनकी अद्भुत प्रतिभा को देखकर बड़े-बड़े विद्वानों की अंगुली भी दांतो तले लग जाती थी। स. 1649 की एक घटना है। बादशाह अकबर ने काशमीर पर विजय वैजयन्ती फहराने के लिए प्रस्थान किया। प्रस्थान के पूर्व विशिष्ट विद्वानों की एक सभा हुई। समयसुन्दर जी ने उस समय विद्वानों के समक्ष एक अद्भुत ग्रन्थ उपस्थित किया। उस ग्रन्थ के सामने आज-दिन तक कोई भी ग्रन्थ ठहर नही सका है। 'राजानो ददते सौख्यम्' इस संस्कृत वाक्य के आठ अक्षर हैं और एक-एक अक्षर के एक-एक लाख अर्थ किये गये हैं। बादशाह अकबर और सभी विद्वान् प्रतिभा के इस अनूठे चमत्कार को देखकर नतमस्तक हो गये। अकबर काश्मीर विजय कर लौटा तो अनेक आचार्यों एवं साधुओं का उसने सन्मान किया। उनमें एक समयसुन्दर जी भी थे, उन्हें वाचक पद प्रदान किया गया। उन्होंने विक्रम सं. 1686 (ई. सन् 1629) में गाथा सहस्री ग्रन्थ का संग्रह किया। इस ग्रन्थ पर एक टिप्पण भी है पर उसके कर्ता का नाम ज्ञात नहीं हो सका है। इसमें आचार्य के छतीस गुण, साधुओं के गुण, जिनकल्पिक के उपकरण, यति-दिनचर्या, साढ़ पच्चीस आर्यदेश, ध्याता का स्वरूप, प्राणायाम, बत्तीस प्रकार के नाटक, सोलह श्रृंगार, शकुन और ज्योतिष आदि विषयों का सुन्दर संग्रह है। महानिशीथ, व्यवहारभाष्य, पुष्पमाला-वृत्ति आदि के साथ ही महाभारत, मनुस्मृति आदि संस्कृत के ग्रन्थों से भी यहां उद्धरण उद्धृत किये गये हैं।

---

1. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई से प्रकाशित।

ठक्कुर फेरु

ठक्कुर फेरु भी राजस्थान के कन्नाणा के निवासी श्वेताम्बर श्रावक थे। ये श्रीमालवंश के धांधिया (धन्धकुल) गोत्रीय श्रेष्ठि कालिय या कलश के पुत्र थे। इनकी सर्वप्रथम रचना युगप्रधान चतुष्पदिका है, जो स. 1347 में वाचनाचार्य राजशेखर के समीप अपने निवास स्थान कन्नाणा में बनाई थी। इन्होंने अपनी कृतियों के अंत में अपने आपको "परमजैन" और जिणंद-पय-भत्तो, लिख कर अपना कट्टर जैनत्व बताने का प्रयास किया है। "रत्न-परीक्षा" में अपने पुत्र का नाम 'हेमपाल' लिखा है जिसके लिए प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की गई है। इनके भाई का नाम ज्ञात नहीं हो सका है।

दिल्लीपति सुरत्राण अलाउद्दीन खिलजी के राज्याधिकारी या मन्त्रि-मण्डल में होने से इनको बाद में अधिक समय दिल्ली में रहना पडा। इन्होंने 'द्रव्य परीक्षा' दिल्ली की टकसाल के अनुभव के आधार पर लिखी 'गणित-सार' में उस युग की राजनीति पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। गणित प्रश्नावली से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये शाही दरबार में उच्च पदासीन व्यक्ति थे।

इनकी सात रचनायें प्राप्त होती हैं जो बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। जिनका सम्पादन मुनि श्री जिनविजयजी ने "रत्न परीक्षा दिसप्त ग्रन्थ संग्रह' के नाम से किया है। 'युग प्रधान चतुष्पदिक' तत्कालीन लोक भाषा चौपाई व छप्पय में रची गई है और शेष सभी रचनाएं प्राकृत में हैं। भाषा सरल व सरस है। उस पर अपभ्रंश का प्रभाव है।

जयसिंहसूरि

'धर्मोपदेशमाला विवरण' [2] यह जयसिंहसूरि की एक महत्वपूर्ण कृति है जो गद्य-पद्य मिश्रित है। यह ग्रन्थ नागौर में बनाया गया था। [3]

वाचक कल्याणतिलक

वाचक कल्याणतिलक ने छप्पन गाथाओं में कालकाचार्य की कथा लिखी है। [4]

हीरकलश मुनि

हीरकलश मुनि ने स. 1621 में 'जोइसहीर' ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रन्थ ज्योतिष की गहराई को प्रकट करता है। [5]

---

1. प्रकाशक राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
2. प्रकाशक सिंघी जैन ग्रन्थ माला, बम्बई
3. नागउर-जिणायतणे समाणिय विवरण एव। धर्मोपदेशमाला प्रशस्ति 29 पृष्ठ 230
4. तीर्थंकर वर्ष 4, अंक 1 मई, 1974।
5. मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृति ग्रन्थ 'जोईसहीर' महत्वपूर्ण खरतरगच्छीय ज्योतिष ग्रन्थ। लेख, पृष्ठ 95।

मानदेवसूरि

मानदेवसूरि का जन्म नाडोल में हुआ। उनके पिता का नाम धनेश्वर और माता का नाम धारणी था। इन्होंने 'तिजयपहुत' नामक स्तोत्र की रचना की।[1]

नेमिचन्द्र भण्डारी

नेमिचन्द्र भण्डारी ने प्राकृत भाषा में 'षष्टिशतक प्रकरण' जिनवल्लभसूरि गुणवर्णन एवं पार्श्वनाथ स्तोत्र आदि रचनाएं बनाई हैं।[2]

राजेन्द्रसूरि

श्री राजेन्द्रसूरि ने 'अभिधान राजेन्द्र कोष' और अन्य अनेक ग्रन्थों का सम्पादन-लेखन किया है।

स्थानकवासी मुनि

राजस्थान के स्थानकवासी जैन श्रमणों ने भी प्राकृत भाषा में अनेक ग्रन्थों की रचनाएं की हैं किन्तु साधनाभाव से उन सभी ग्रन्थकारों का परिचय देना सम्भव नहीं है।

श्रमण हजारीमल जिनकी जन्मस्थली मेवाड़ थी उन्होंने 'साहुगुणमाला' ग्रन्थ की रचना की थी। जयमल सम्प्रदाय के मुनि श्री चैनमल जी ने श्रीमद्गीता का प्राकृत में अनुवाद किया था। पं. मुनि लालचन्द जी 'श्रमण लाल" ने भी प्राकृत में अनेक स्तोत्र आदि बनाए हैं। प. फूलचन्द जी. म. पुष्फभिक्खु ने सुत्तागम का सम्पादन किया और अनेक लेख आदि प्राकृत में लिखे हैं। राजस्थान केसरी पुष्कर मुनिजी ने भी प्राकृत भाषा में निबन्ध और स्तोत्र लिखे हैं।

आचार्य घासीलाल जी म. एक प्रतिभा सम्पन्न सन्त-रत्न थे। उनका जन्म सं. 1941 में जसवन्तगढ़ मेवाड़ में हुआ। उनकी मां का नाम विमला बाई और पिता का नाम प्रभुदत्त था। जवाहराचार्य के पास आर्हती दीक्षा ग्रहण की। आपने आगमों पर संस्कृत भाषा में टीकाएं लिखी और शिवकोश, नानार्थ उदयसागर कोश, श्रीलालनाममाला कोश, आर्हत व्याकरण, आर्हत लघु व्याकरण, आर्हत सिद्धान्त व्याकरण, शांति-सिन्धु महाकाव्य, लोंकाशाह महाकाव्य, जैनागमतत्वदीपिका, वृत्तबोध, तत्वप्रदीप, सूक्तिसंग्रह, गृहस्थकल्पतरु, पूज्य श्रीलाल-काव्य, नागाम्बरमञ्जरी, लवजी-मुनि काव्य, नव स्मरण, कल्याणमंगल स्तोत्र, वर्धमान स्तोत्र आदि संस्कृत भाषा में मौलिक ग्रन्थों का निर्माण किया और तत्वार्थसूत्र, कल्पसूत्र और प्राकृत व्याकरण आदि अनेक ग्रन्थ प्राकृत भाषा में भी लिखे हैं।

---

26. प्रभावक चरित्र भाषान्तर पृष्ठ 187, प्र. आत्मानन्द जैनसभा, भावनगर वि. सं. 1987 में प्रकाशित।

(ख) जैन परम्परा नो इतिहास, भाग 1 पृष्ठ 359 से 361।

27. मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दि स्मृति ग्रन्थ।

तेरापंथी मुनि

तेरापंथ सम्प्रदाय के अनेक आधुनिक मुनियों ने भी प्राकृत भाषा में लिखा है। 'रयणवाल-कहा' प. चन्दन मुनि जी की एक श्रेष्ठ रचना है।

राजस्थानी जैन श्वेताम्बर परम्परा के श्रमणों ने जितना साहित्य लिखा है उतना आज उपलब्ध नहीं है। कुछ तो मुस्लिमयुग के धर्मान्ध शासकों ने जन शास्त्र-भण्डारों को नष्ट कर दिया और कुछ हमारी लापरवाही से हजारों ग्रन्थ चूहों, दीमक एवं शीलन से नष्ट हो गये। तथापि जो कुछ अवशिष्ट हैं उन ग्रन्थों को आधुनिक दृष्टि से सम्पादन कर प्रकाशित किये जायें और ग्रन्थ-भण्डारो की सूचिया भी प्रकाशित की जाये तो अनेक अज्ञात महान् साहित्यकारों का सहज रूप से पता लग सकता है।

राजस्थान के प्राकृत साहित्यकार : 4

—डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल

आचार्य धरसेन

आचार्य धरसेन प्राकृत भाषा के महान् ज्ञाता थे। प्राकृत के प्रसिद्ध ग्रंथ 'धवला' में इनको अष्टांग महानिमित्त के पारगामी, प्रवचनवत्सल तथा अंगश्रुत के रक्षक के रूप में स्मरण किया है। सौराष्ट्र देश की गिरनगर की चन्द्रगुफा मे निवास करते थे और वहीं से राजस्थान के प्रदेशों में भी विहार करते थे। नारायणा (जयपुर) के जैन मन्दिर में आचार्य धरसेन के संवत् 1083 (सन् 1029) के चरण-चिन्ह आज भी सुरक्षित रूप से विराजमान हैं। इसलिये राजस्थान ऐसे महान आचार्य पर गौरवान्वित है।

आचार्य धरसेन के चरणों में बैठकर ही आचार्य पुष्पदन्त एवं भूतबलि ने प्राकृत भाषा का एव सिद्धान्त का अध्ययन किया। वास्तव में वे सफल शिक्षक एवं आचार्य थे। दिगम्बर परम्परा में आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि ने भगवान् महावीर क पश्चात् सर्व प्रथम षट्खण्डागम की रचना की और ज्ञान को विलुप्त होने से बचाया। इस महान् कार्य में आचार्य धरसेन का सर्वाधिक योगदान रहा।

धरसेन की प्राकृत-कृति 'योनि-पाहुड' की एक मात्र पाण्डुलिपि रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना के शास्त्र भण्डार में बतलाई जाती है। आचार्य धरसेन का समय ईसा की प्रथम शताब्दी माना जाता है।

आचार्य वीरसेन

आचार्य वीरसेन जैन-सिद्धान्त के पारंगत विद्वान् थे, इसक साथ ही गणित, न्याय, ज्योतिष एव व्याकरण आदि विषयों का भी उन्हें तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त था। आदिपुराण के कर्ता आचार्य जिनसेन जैसे उच्चस्तरीय विद्वान् इनके शिष्य थे। आचार्य जिनसेन ने अपने आदिपुराण एव धवला प्रशस्ति में इनका 'कवि-वृन्दारक' उपाधि के साथ स्तवन किया है।

आचार्य वीरसेन एलाचार्य के शिष्य थे। डा. हीरालाल जैन का अनुमान है कि एलाचार्य इनके विद्यागुरु थे। इन्द्रनन्दि के श्रुतावतार से ज्ञात होता है कि एलाचार्य चित्रकूट (चित्तौड़) में निवास करते थे और चित्तौड़ में रहकर ही आचार्य वीरसेन ने एलाचार्य से सिद्धान्त-ग्रन्थों का अध्ययन किया था। इसी कारण वीरसेन जैसे आचार्य पर राजस्थान को गर्व है।

शिक्षा-समाप्ति के पश्चात् आचार्य वीरसेन चित्तौड़ से वाटग्राम (बडौदा) चले गये और वहां के मानतुन्ग द्वारा बनवाये हुये जिनालय में रहने लगे। इसी मन्दिर में इन्होंने 72000 श्लोक प्रमाण षट्खण्डागम, की धवला टीका लिखी। धवला टीका समाप्ति के पश्चात् आचार्य वीरसेन ने कषाय प्राभृत पर 'जयधवला' टीका आरम्भ की और 20000 श्लोक प्रमाण टीका लिखे जाने के उपरान्त आचार्य वीरसेन का स्वर्गवास हो गया। पश्चात् उनके शिष्य आचार्य जिनसेन ने अवशिष्ट जयधवला टीका 40000 श्लोक प्रमाण लिखकर पूर्ण की।

आचार्य वीरसेन के समय के संबंध में कोई विवाद नहीं है क्योंकि उनके शिष्य आचार्य जिनसेन ने जयधवला टीका को शक संवत् 756 की फाल्गुन शुक्ला दशमी के दिन पूर्ण किया था। इसलिये वीरसेन का समय इस संवत् के पूर्व ही होना चाहिये। डा. हीरालाल जैन ने धवला टीका का समाप्तिकाल शक संवत् 738 सिद्ध किया है। इसलिये वीरसेन 9वीं शताब्दी (ईस्वी सन् 816) के विद्वान् थे।

धवला टीका :—"षट्खण्डागम" पर 72000 श्लोक प्रमाण प्राकृत-संस्कृत मिश्रित भाषा में मणि-प्रवाल न्याय से धवला टीका लिखी गई है। यह षट्खण्डागम के प्रथम पांच खण्डों की सबसे महत्वपूर्ण टीका है। टीका प्रमेय बहुल है तथा टीका होने पर भी यह एक स्वतंत्र सिद्धान्त ग्रंथ है। टीका की प्राकृत भाषा प्रौढ मुहावरेदार एवं विषय के अनुसार संस्कृत की तर्क शैली से प्रभावित है। प. परमानन्द शास्त्री के शब्दों में इसमें प्राकृत गद्य का निखरा हुआ स्वच्छ रूप वर्तमान है। सन्धि और समास का यथास्थान प्रयोग हुआ है और दार्शनिक शैली में गम्भीर विषयों को प्रस्तुत किया गया है। टीका में केवल षट्खण्डागम के सूत्रों का ही मर्म उद्घाटित नहीं किया गया किन्तु कर्म-सिद्धान्त का भी विस्तृत विवेचन किया गया है। आचार्य वीरसेन गणित-शास्त्र के महान् विद्वान् थे इसलिये इन्होंने वृत्त, व्यास, परिधि, सूची व्यास, घन, अर्द्धच्छेद घातांक, वलय व्यास और चाप आदि गणित की अनेक प्रक्रियाओं का महत्वपूर्ण विवेचन किया है। गणित के अतिरिक्त टीकाकार ने ज्योतिष और निमित्त संबंधी प्राचीन मान्यताओं का भी स्पष्ट वर्णन किया है। षट्खण्डागम का वर्ण्य विषय 'जीवट्ठाण' खुद्दाबंध, बंध-सामित्तविचय, वेयणा, वग्गणा और महाबंध है। इन्हीं का आचार्य वीरसेन ने अपनी धवलाटीका में विस्तृत वर्णन किया है।

आचार्य देवसेन

देवसेन नाम के अनेक विद्वान् हो गये हैं जिनकी गुरु परम्परा एवं समय भिन्न-भिन्न हैं। प्रस्तुत आचार्य देवसेन प्राकृत भाषा के उद्भट विद्वान् थे। मालवा की धारा नगरी इनका प्रमुख साहित्यिक केन्द्र था लेकिन राजस्थान में भी ये प्राय. विहार करते रहते थे और जन-जन में सद्साहित्य और सद्धर्म का प्रचार किया करते थे। ये 10वीं शताब्दी के अन्तिम चरण के विद्वान् थे।

देवसेन क्रान्तिकारी विद्वान् थे। ये दर्शन एवं सिद्धान्त के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इतिहास से उन्हें रुचि थी तथा देश एवं समाज में व्याप्त बुराइयों की निन्दा करने में यह कभी पीछे नहीं रहते थे। प. नाथूराम प्रेमी ने इनकी चार कृतियां स्वीकार की है जिनके नाम हैं—दर्शनसार भावसंग्रह, तत्वसार, और नयचक्र। डा. नेमीचन्द शास्त्री ने उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त, आराधनासार एवं आलापपद्धति इनकी और रचना स्वीकार की हैं। इन रचनाओं का सामान्य परिचय निम्नप्रकार है—

1. दर्शनसार:—यह कवि की एक मात्र कृति है जिसमें कृति का रचनाकाल दिया हुआ है। कवि ने इसे संवत् 997 माघ शुक्ला दशमी के दिन समाप्त की थी। यह एक समीक्षात्मक कृति है जिसमें विभिन्न दार्शनिक मतों के प्रवर्तक के रूप में ऋषभदेव के पौत्र मारीचि को माना है। इसके पश्चात् द्रविड संघ, यापनीय संघ, काष्ठा संघ, माथुर संघ तथा भिल्लक संघ की उत्पत्ति एवं उनकी समीक्षा की गई है। दर्शनसार से देवसेन के अक्खड स्वभाव का पता चलता है। इन्होंने अन्तिम गाथा में अपनी स्पष्टता व्यक्त करते हुये लिखा है—

रूसउ तूसउ लोओ सच्चं अक्खंतयस्स साहुस्स।
किंजूय-भए साडी विवज्जियव्वा णरिंदेण।

सत्य कहने वाले साधु से कोई रुष्ट हो, चाहे सन्तुष्ट हो, उसकी चिन्ता नहीं। क्या राजा को यूका (जुंओं) के भय से वस्त्र पहिनना छोड़ देना चाहिए ? कभी नहीं।

दर्शनसार में गाथाओं की संख्या 51 है।

2. भावसंग्रह:—यह प्राकृत भाषा का विशाल ग्रंथ है जिसमें 701 गाथायें हैं। इसमें चौदह गुणस्थानों को आधार बनाकर विविध विषयों का प्रतिपादन किया गया है। देवसेन ने अपने समय में फैले हुए अंधविश्वास, रूढ़िवाद पर काफी प्रकाश डाला है। वह लिखता है कि यदि जल स्नान से समस्त पापों का क्षालन सम्भव हो तो नदी, समुद्र और तालाबों में रहने वाले जलचर जीवों को कभी का स्वर्ग मिल गया होता। इसी तरह जो श्राद्ध द्वारा पितरों की तृप्ति मानता है वह भ्रम में है। किसी के भोजन से किसी की तृप्ति नहीं हो सकती। इसी प्रकार अन्य दर्शनों की आचार्य देवसेन ने अच्छी समीक्षा की है। गाथाओं की भाषा अत्यधिक मधुर है।

3. आराधनासार:—प्रस्तुत कृति में प्राकृत गाथाओं की संख्या 115 है। इनमें सम्यक् दर्शन, सम्यक्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र तथा तप इन चारों आराधनाओं का अच्छा वर्णन दिया गया है। विषय विवेचन की अच्छी शैली है। यह एक उद्बोधनात्मक कृति है जिसमें इस आत्मा से अपने स्वभाव में निरत रहने को कहा है। जब तक वृद्धावस्था नहीं आती है, इन्द्रियों की शक्ति क्षीण नहीं होती है आयुरूपी जल समाप्त नहीं होता है तब तक आत्म कल्याण के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये। जो व्यक्ति यह सोचता रहता है कि अभी तो युवावस्था है, विषय सुख भोगने के दिन हैं वह वृद्धावस्था आने पर कुछ नहीं कर सकता है :—

जर वग्घिणी ण चपइ, जाम ण वियलाइ हुंति अक्खाइ।
बुद्धि जाम ण णासइ, आउजलं जाम ण परिगलई।
जा उज्जमो ण वियलइ, सजम-तव-णाण-झाण जोएसु।
तावरिहो सो पुरिसो, उत्तम ठाणस्स सभवई।

आचार्य देवसेन ने आगे कहा है कि मन को वश में करने की शिक्षा देनी चाहिये। जिसका मन वशीभूत है वही रागद्वेष को नाश कर सकता है और राग-द्वेष के नाश करने से परमपद की प्राप्ति होती है।

सिक्खह मणवसियरणं सवसीहूएण जेण मणुआणं।
णासंति रायदोसे तेसिं णासे समो परमो ॥64॥

4. तत्वसार:—यह आचार्य देवसेन की चतुर्थ-कृति है। यह एक लघु आध्यात्मिक रचना है जिसकी गाथा संख्या 74 है। कवि ने बतलाया है कि जिसके न क्रोध है, न मान है, न माया है और न लोभ है, न शल्य है और न लेश्या है, जो जन्म-मृत्यु से रहित है वही निरंजन आत्मा है :—

जस्स ण कोहो माणो माया लोहो ण सल्ल लेस्साओ।
जाइ जरा मरण चिय णिरंजणो सो अहं भणिओ।

5. नयचक्र:—यह कवि की पांचवी कृति है जिसमें उसने प्राकृत गाथाओं में नयों का मूल रूप में बहुत सुन्दर वर्णन किया है। नयों के मूल रूप से दो भेद हैं:—एक द्रव्यार्थिक और दूसरा पर्यायार्थिक। सर्वप्रथम आचार्य श्री ने लिखा है कि जो नय-दृष्टि से विहीन हैं उन्हें वस्तु स्वरूप की उपलब्धि नहीं होती:—

जो णयदिट्ठि-विहीणा ताण ण वत्थु सरूव उपलद्धि ।
वत्थु-सहाव-विहूणा सम्मादिट्ठी कहं हुंति ।।

आचार्य देवसेन की एक और कृति आलाप-पद्धति है जो संस्कृत भाषा की कृति है और जिसमें गुण, पर्याय, स्वभाव, प्रमाण, तप, गुणव्युत्पत्ति, प्रमाण का कथन, निक्षेप की व्युत्पत्ति तथा तप के भेदों की व्युत्पत्ति का वर्णन मिलता है।

इस प्रकार यद्यपि देवसेन की भावसंग्रह को छोड़कर सभी लघु रचनायें हैं किन्तु भाषा, विषय एवं शैली की दृष्टि से वे सभी उत्कृष्ट रचनायें हैं। कवि ने थोड़े से शब्दों में अधिक से अधिक विषय-प्रतिपादन का प्रयास किया है और इसमें वह पूर्ण सफल भी हुआ है।

मुनि नेमिचन्द्र

'नेमिचन्द्र' नाम वाले अनेक आचार्य हो गये हैं। अब तक विद्वानों की यह धारणा थी कि गोम्मटसार, त्रिलोकसार, लब्धिसार तथा क्षपणासार के कर्ता आचार्य नेमिचन्द्र और द्रव्यसंग्रह के कर्ता नेमिचन्द्र एक ही आचार्य है जो सिद्धान्ताचार्य की उपाधि से प्रसिद्ध हैं। किन्तु गत कुछ वर्षों में विद्वानों द्वारा की गयी खोज के आधार पर यह मान लिया गया है कि द्रव्य-संग्रह एवं बृहद्-द्रव्यसंग्रह के कर्ता दूसरे नेमिचन्द्र हैं जिन्हें सिद्धान्तिदेव या नेमिचन्द्र मुनि कहा गया है। इसी तरह का उल्लेख बृहद् द्रव्यसंग्रह के टीकाकार ब्रह्मदेव ने ग्रंथ के परिचय में लिखा है। जिसके अनुसार द्रव्य-संग्रह धारा नगरी के स्वामी मण्डलेश्वर श्रीपाल के आश्रम नामक नगर में 20वें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ के चैत्यालय में भाण्डागार आदि अनेक नियोगों के अधिकारी सोमा नामक राजश्रेष्ठि के पठनार्थ लिखा गया था। यह आश्रम नगर 'आशारम्भ पट्टण' आश्रम पत्तन 'पट्टण' और पुटभेदन के नाम से उल्लिखित है। राजस्थान में बूंदी नगर से लगभग नौ मील की दूरी पर चम्बल नदी के तट पर केशोरायपाटन नाम का प्राचीन नगर है। इसे केशवराय पाटन, पाटन केशवराय भी कहते हैं। अपनी प्राकृतिक रम्यता के कारण यह स्थान आश्रमभूमि (तपोवन) के उपयुक्त होने के कारण आश्रम कहलाने का अधिकारी है। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डॉ. दशरथ शर्मा भी इस मत से सहमत हैं कि केशवराय पाटन ही पहिले आश्रम नगर के नाम से प्रसिद्ध था। प्राचीन काल में यह नगर राजा भोजदेव के परमार साम्राज्य के अन्तर्गत रहा था।

केशवराय पाटन में एक प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर है जिसमें 12वीं शताब्दी की प्राचीन एवं कलापूर्ण मूर्तियां हैं। मन्दिर में जो भूमिगत चैत्यालय हैं उससे पता चलता है कि यह स्थान प्राचीन काल में जैनाचार्यों के लिये साधना-स्थल रहा था। प्रस्तुत नेमिचन्द्र मुनि की भी यही भूमि साधना-स्थल रही थी और यहीं पर उन्होंने लघु द्रव्य-संग्रह एवं बृहद द्रव्य-संग्रह की रचना की थी, इसमें सन्देह का कोई स्थान नहीं है।

उक्त दोनों रचनायें ही जैन समाज में अत्यधिक लोकप्रिय रही हैं। बृहद् द्रव्य-संग्रह के पठन-पाठन का सर्वाधिक प्रचार है। लघु द्रव्य-संग्रह में कुल 25 गाथायें हैं। ग्यारह गाथाओं में द्रव्यों का, पांच गाथाओं में तत्वों और पदार्थों का तथा दो गाथाओं में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का कथन किया गया है।

बृहद् द्रव्य-संग्रह में 58 गाथाएं हैं। इसमें तीन अधिकार हैं। इनमें जीवद्रव्य, अजीवद्रव्य, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वों का सुन्दर वर्णन किया गया है। जीव द्रव्य को जीव, उपयोगमय, अमूर्तिक, कर्ता, स्वदेहपरिमाण, भोक्ता, संसारी और स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला बतलाया है। द्विविध मोक्षमार्ग का कथन करते हुए सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का लक्षण बतलाते हुए ध्यान का अभ्यास करने पर जोर दिया

गया है क्योंकि ध्यान ही मोक्ष प्राप्ति का मुख्य साधन है। ग्रन्थकार ने यह भी बतलाया है कि तप, श्रुत एवं व्रतों का धारी आत्मा ही ध्यान करने में समर्थ है। इसलिये जीवन में तप की आराधना करनी चाहिये, श्रुत का अभ्यास करना चाहिये तथा व्रतों को धारण करना चाहिये। इस प्रकार नेमिचन्द्र मुनि ने अपनी इस कृति में जैन-दर्शन के सभी प्रमुख तत्वों का कथन कर दिया है।

आचार्य पद्मनन्दि

पद्मनन्दि नाम के 9 से भी अधिक आचार्य एवं भट्टारक हो गये हैं जिनका उल्लेख विभिन्न ग्रन्थों, शिलालेखों एवं मूर्तिलेखों में मिलता है। लेकिन वीरनन्दि के प्रशिष्य एवं बालनन्दि के शिष्य आचार्य पद्मनन्दि उन सबसे भिन्न हैं। ये राजस्थानी विद्वान् थे और बारां नगर इनका प्रमुख साहित्यिक केन्द्र था। पद्मनन्दि ने अपने प्रमुख ग्रंथ जम्बूद्वीपपण्णत्ती में बारां नगर का विस्तृत वर्णन किया है। वह नगर उस समय पुष्करणी बावड़ी, सुन्दर भवनों, नानाजनों से सकीर्ण और धन्यधान्य से समाकुल, जिन मन्दिरों से विभूषित तथा सम्यग्दृष्टिजनों और मुनि-गणों के समूहों से मंडित था। पद्मनन्दि के समय बारां नगर का शक्तिभूपाल शासक था। वह राजा शील-सम्पन्न, अनवरत दानशील, शासन वत्सल, धीर, नानागुण कलित, नरपति संपूजित तथा कलाकुशल एवं नरोत्तम था। राजपूताने के इतिहास में गुहिलोत वंशी राजा नरवाहन के पुत्र शालिवाहन के उत्तराधिकारी शक्तिकुमार का उल्लेख मिलता है। पं. नाथूराम प्रेमी ने बारां की भट्टारक गादी के आधार पर पद्मनन्दि का समय विक्रम संवत् 1100 के लगभग माना है।

पद्मनन्दि प्राकृत भाषा के उद्भट विद्वान् थे। जैन-दर्शन तथा तीनों लोकों की स्थिति का उन्हें अच्छा ज्ञान प्राप्त था। अपने समय के वे प्रभावशाली आचार्य एवं भट्टारक थे तथा अनेक शिष्य-प्रशिष्यों के स्वामी थे। उस समय प्राकृत के पठन-पाठन का अच्छा प्रचार था। राजस्थान एवं मालवा उनकी गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र था। पद्मनन्दि की प्राकृत भाषा की दो कृतियां उपलब्ध होती हैं जिनमें एक, जम्बूदीवपण्णत्ती, तथा दूसरी धम्मरसायण है।

जम्बूदीवपण्णत्ती, एक विशालकाय कृति है जिसमें 2427 गाथाएं हैं जो 93 अधिकारों में विभक्त हैं। ग्रंथ का विषय मध्यलोक के मध्यवर्ती जम्बूद्वीप का विस्तृत वर्णन है और वह वर्णन जम्बूद्वीप के भरत, ऐरावत, महाविदेह क्षेत्रों, हिमवान आदि पर्वतों, गंगा सिन्ध्वादि नदियों, पद्म महापद्म आदि सरोवरों, लवणादि समुद्रों, काल के उत्सर्पिणी अवसर्पिणी आदि भेद प्रभेदों तथा उनसे होने वाले काल परिवर्तनों तथा ज्योतिष पटलों से संबंधित है। वास्तव में यह ग्रंथ प्राचीन भूगोल खगोल का अच्छा वर्णन प्रस्तुत करता है।

आचार्य पद्मनन्दि की दूसरी रचना धम्मरसायण है जिसमें 193 गाथायें हैं। भाषा एवं शैली की दृष्टि से यह ग्रंथ अत्यधिक सरल एवं सरस है। इसमें धर्म को ही परम रसायण माना गया है। यही वह औषधि है जिसके सेवन से जन्म-मरण एवं दुःख का नाश होता है। धर्म की महिमा बतलाते हुए ग्रंथ में कहा है कि धर्म ही त्रिलोकबन्धु है तथा तीन लोकों में धर्म ही एक मात्र शरण है। धर्म के पालन से यह मनुष्य तीनों लोकों को पार कर सकता है।

धम्मो तिलोयबन्धू धम्मो सरणं हवे तिहुयणस्स ।
धम्मेण पूयणीओ, होइ णरो सव्वलोयस्स ।।

भट्टारक जिनचन्द्र

भट्टारक शुभचन्द्र के शिष्य भट्टारक जिनचन्द्र 16 वीं शताब्दी के प्रसिद्ध दि. जैन सन्त थे। इन्होंने सारे राजस्थान में विहार करके जैन-साहित्य एवं संस्कृति के

प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। मूलाचार की एक प्रशस्ति में भट्टारक जिनचन्द्र की निम्न शब्दों में प्रशंसा की गई है :—

तदीयपटाम्बरभानुमाली क्षमादिनानागुणरत्नशाली ।
भट्टारक—श्रीजिनचन्द्रनामा सैद्धान्तिकानां भुवि योऽस्ति सीमा ।

जिनचन्द्र की साहित्य के प्रति अपूर्व श्रद्धा थी। वे प्राचीन ग्रन्थों की नयी-नयी प्रतियां लिखवा कर शास्त्र-भण्डारों में विराजमान करवाते थे तथा जनता को प्राचीन ग्रन्थों के संरक्षण की प्रेरणा देते थे। पं. मेधावी उनका एक प्रमुख शिष्य था जो संस्कृत का प्रकाण्ड विद्वान् था। उसने अपने गुरु की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि जिनचन्द्र का जन्म समुद्र में से चन्द्रमा के जन्म के समान हुआ था। वे अपने समय के सभी जैन सन्तों के अग्रणी थे। वे स्याद्वाद रूपी आकाश के हार थे तथा अपने प्रवचनों से सब श्रोताओं के हृदयों को प्रसन्न करने वाले थे। वे षट्दर्शनों के निष्णात विद्वान् थे।

भ. जिनचन्द्र की अब तक जो दो कृतियां उपलब्ध हुई हैं उनमें एक संस्कृत एवं एक प्राकृत की रचना है। जिन चतुर्विंशति स्तोत्र संस्कृत की रचना है तथा सिद्धान्तसार प्राकृत भाषा में निबद्ध है। सिद्धान्तसार में 79 गाथाएं हैं। इनमें जीव समास, गुणस्थान, संज्ञा, पर्याप्ति, मरण एवं मार्गणाओं का वर्णन किया गया है। इसकी 78 वीं गाथा में भट्टारक जिनचन्द्र ने अपने नाम का उल्लेख किया है।

पं. चैनसुखदास न्यायतीर्थ

20 वीं शदी के विद्वानों में पं. चैनसुखदास न्यायतीर्थ का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। इनका जन्म 22 जनवरी सन् 1899 में भादवा ग्राम में हुआ तथा मृत्यु जयपुर नगर में 26 जनवरी सन् 1969 में हुई। पंडित जी प्राकृत, संस्कृत एवं हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान् थे। वे कवि थे, लेखक थे तथा जैन-दर्शन के प्रकाण्ड व्याख्याता थे। इनकी प्रमुख रचनाओं में जैन दर्शनसार, भावना-विवेक, पावन-प्रवाह के नाम उल्लेखनीय हैं। अर्हत् प्रवचन इनकी सम्पादित कृति है जिसमें विभिन्न प्राकृत-ग्रन्थों में से जीवन को स्पर्श करने वाली एवं जनोपयोगी 500 से भी अधिक गाथाओं का संकलन किया गया है। इसमें जीव और आत्मा, कर्म, गुणस्थान, सम्यक्दर्शन, भाव, मन-इन्द्रियों कषाय विजय, श्रावक, आत्म-प्रशंसा, परनिन्दा, शान्ति, भक्ति, धर्म, वैराग्य, श्रमण, तप, शुद्धोपयोगी आत्मा आदि विभिन्न विषयों का अच्छा वर्णन हुआ है। पंडित जी का यह संकलन आत्मोदय ग्रन्थमाला जयपुर से सन् 1962 में प्रकाशित हो चुका है।

डा. नेमिचन्द्र शास्त्री

डा. नेमिचन्द्र शास्त्री का अभी डेढ़ वर्ष पूर्व ही 10 जनवरी, 1974 को स्वर्गवास हुआ तथा वे अपने जीवन के यशस्वी 59 वर्ष पूर्ण करके चिरनिन्द्रा में समा गये। वे राजस्थानी विद्वान् थे और धौलपुर में पौष कृष्णा 12 को संवत् 1972 को इनका जन्म हुआ था। वे प्राच्य विद्याओं के प्रकाण्ड विद्वान् थे तथा प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत एवं हिन्दी भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। इनकी अब तक 37 से भी अधिक रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं।

शास्त्री जी प्राकृत भाषा के विशेष प्रेमी थे। इन्होंने अपनी पी.एच. डी. की उपाधि "हरिभद्र के प्राकृत कथा-साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन" विषय पर प्राप्त की थी। इसके पश्चात् वे प्राकृत के प्रचार-प्रसार में लग गये और आरा जैन कॉलेज में शिक्षण कार्य करते

हुए उन्होंने हजारों छात्रों को प्राकृत भाषा का बोध ही नहीं कराया किन्तु पचासों विद्यार्थियों को प्राकृत में निष्णात भी बना दिया। शास्त्रीजी ने प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास लिखकर प्राकृत-जगत् में एक महान् कार्य किया। यही नहीं 'अभिनव प्राकृत व्याकरण' लिख कर प्राकृत प्रेमियों के लिये उसके पठन-पाठन को सरल बना दिया। शास्त्री जी न 'प्राकृत-प्रबोध' के माध्यम से प्राकृत-पाठों का सुन्दर संकलन उपस्थित किया डा. शास्त्री जी ने अपने विद्यार्थियो की सुविधा के लिये 'पाइय-पज्ज-संग्रहों' एवं 'पाइय-गज्ज- संग्रहों इस प्रकार प्राकृत गद्य और पद्य क अलग-अलग सकलन निकाले जिससे बिहार में प्राकृतभाषा के पठन-पाठन का अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई।

जीवन के अन्तिम वर्ष में 'तीर्थंकर महावीर एव उनकी आचार्य-परम्परा' के चार भागो में जैनाचार्यों द्वारा निबद्ध साहित्य की अत्यधिक सुन्दर रूपरेखा प्रस्तुत की। इस महान् कृति मे प्राकृत भाषा के आचार्यों एव उनकी कृतियों का विशद विवेचन किया गया है। वास्तव मे गत सैकडो वर्षों मे राजस्थान मे प्राकृत भाषा का इतना प्रकाण्ड विद्वान् तथा प्राकृत साहित्य का अनन्य भक्त नही हुआ। एसे विद्वान् से सारा साहित्य-जगत गौरवान्वित है

उक्त आचार्यों, मुनियो एव विद्वानों के अतिरिक्त राजस्थान मे और भी पचासों साहित्य-सेवी हो गये हैं। जिन्होने जन्मभर प्राकृत-साहित्य की सेवा ही नहीं की किंतु उस भाषा क ग्रथों का हिन्दी एव सस्कृत मे टीकायें करक जन साधारण को उनक पठन-पाठन एवं स्वाध्याय की पूर्ण सुविधा प्रदान की। ऐसे विद्वानो में आचार्य अमृतचन्द्र, प. राजमल्ल, महा पडित टोडरमल, प जयचन्द छाबड़ा जसे विद्वानो के नाम उल्लेखनीय हैं।

संस्कृत जैन साहित्य

संस्कृत साहित्य : विकास एवं प्रवृत्तियां 1.

—मुनि श्री नथमल

भगवान् महावीर के युग में सम्कृत पंडितों की भाषा बन गई था। भाषा के आधार पर दो वर्ग स्थापित हो गये थे—एक वर्ग उन पंडितो का था, जो संस्कृतविदों को ही तत्वद्रष्टा मानते थ और संस्कृत नही जानने वालों की बुद्धि पर अपना अधिकार किये हुए थे। दूसरा वर्ग उन लोगो का था, जो यह मानते थे कि सस्कृतविद् ही तत्व की व्याख्या कर सकते हैं।

भगवान् महावीर ने अनुभव किया कि सत्य को खोजने की क्षमता हर व्यक्ति में है। उस पर भाषा का प्रतिबन्ध नही हो सकता। जिसका चित्त राग-द्वेष शून्य है, वह सस्कृतविद् न होने पर भी सत्य को उपलब्ध हो जाता है और जिसका चित्त राग-द्वेष शून्य नही होता है, वह संस्कृतविद् होने पर भी सत्य को उपलब्ध नहीं होता। सत्य और भाषा का गठबन्धन नहीं है—इस सिद्धात के प्रतिपादन के लिये भगवान् महावीर ने जनभाषा प्राकृत को सत्य-निरूपण का माध्यम बनाया।

भगवान् महावीर ने प्राकृत में उपदेश किया। उनके प्रमुख शिष्य गौतम आदि गणधरो ने उसका प्राकृत में ही गुफन किया। उनके निर्वाण की पंचम शताब्दी तक धर्मोपदेश तथा ग्रथ-रचना मे प्राकृत का ही उपयोग होता रहा। निर्वाण की छठी शताब्दी में फिर सस्कृत का स्वर गुजित हुआ। आर्य रक्षित[1] ने सस्कृत और प्राकृत दोनों को ऋषि भाषा कहा[2]। उनकी यह ध्वनि स्थानाग के स्वरमण्डल में भी प्रतिध्वनित हुई। उमास्वाति (स्वामी) ने मोक्ष-शास्त्र (तत्वार्थसूत्र) का सस्कृत में प्रणयन किया। उनका अस्तित्वकाल विक्रम की तीसरी से पाचवी शताब्दी के मध्य माना जाता है। जैन परम्परा मे इसी कालावधि में सस्कृत युग प्रारम्भ हुआ। जैन आचार्यों ने प्राकृत को तिलाञ्जलि नही दी। प्राकृत में ग्रंथ-रचना का कार्य अनवरत चलता रहा। भगवन् महावीर ने लोक-भाषा के प्रति जो दृष्टिकोण निर्मित किया था, उसे विस्मृत नही किया गया और संस्कृत के अध्येताओं में जो पाडित्य-प्रदर्शन की भावना थी, उसे भी स्मृति में रखा गया। फिर भी दर्शन-युग की स्थापना के काल मे जैन दर्शन को प्रतिष्ठित करने की दृष्टि से संस्कृत की अनिवार्यता अनुभव की। सिद्धर्षि ने जैन लेखको की इस अनुभूति को स्पष्ट अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने लिखा है :—

> सस्कृता प्राकृता चेति, भाषे प्राधान्यमर्हतः।
> तत्रापि संस्कृता तावद्, दुर्विदग्ध हृदि स्थिता ॥
> बालानामपि सद्बोध-कारिणी कर्णपेशला।
> तथापि प्राकृता भाषा, न तेषामभिभाषते ॥
> उपाये सति कर्त्तव्य, सर्वेषा चित्तरञ्जनम्।
> अतस्तदनुरोधेन, सस्कृतेय करिष्यते ॥

---

1. आर्यरक्षित का जन्म काल: ईसवी पूर्व 4 (वि. सं. 52), दीक्षा ई. स. 18 (वि. सं. 74), युगप्रधान ई. स. 58 (वि. सं. 114), स्वर्गवास ई. स. 71 (वि. सं. 127)।

2. अणुओग द्वाराइं, स्वरमण्डल:
   सक्कयं पागयं चेव, पसत्थं इसिभासियं।

"संस्कृत और प्राकृत—ये दो प्रधान भाषाएं हैं । संस्कृत दुर्विदग्ध-पंडितमानी जनों के हृदय में बसी हुई है । प्राकृत भाषा जन साधारण को प्रकाश देने वाली और श्रुति-मधुर है, फिर भी उन्हें वह अच्छी नही लगती । मेरे सामने संस्कृतप्रिय जनों के चित्तरंजन का उपाय है । इसलिये उनके अनुरोध मे मैं प्रस्तुत कथा को संस्कृत भाषा में लिख रहा हूं । "

गुप्त साम्राज्य-काल में संस्कृत का प्रभाव बहुत बढ गया । जैन और बौद्ध परम्पराओ में भी संस्कृत भाषा प्रमुख हो गई ।

उत्तर भारत में गुजरात और राजस्थान दोनों जैन धर्म के प्रमुख केन्द्र रहे । इन दोनों में जैन मुनि स्थान-स्थान पर विहार करते थे । उनकी साहित्य-साधना भी प्रचुर मात्रा में हुई । राजस्थान की जैन परम्परा में संस्कृत-साहित्य के प्रथम निर्माता हरिभद्रसूरि है । उनका अस्तित्व-काल विक्रम की आठवी नौवी शताब्दी (757-857) है । उन्हे प्राकृत और संस्कृत दोनो भाषाओ पर समान अधिकार प्राप्त था । उनकी लेखनी दोनो भाषाओ पर समान रूप से चली । उनकी प्राकृत रचनाएं जितनी विपुल संख्या मे और जितनी महत्वपूर्ण हैं, उतनी ही महत्वपूर्ण और उतनी ही विपुल संख्या में उनकी संस्कृत रचनाएं है । उन्होंने धर्म, योग, दर्शन, न्याय, अनेकान्त, आचार, अहिंसा आदि अनेक विषयो पर लिखा । आगम सूत्रो पर अनेक विशाल व्याख्या ग्रन्थ लिखे ।

जैन दर्शन ने सत्य की व्याख्या नय-पद्धति से की । तीर्थंकर का कोई भी वचन नय-शून्य नही है—इस उक्ति की प्रतिध्वनि यह है कि कोई भी वचन निरपेक्ष नही है। प्रत्येक वचन को नयदृष्टि से ही समझा जा सकता है। सिद्धसेन दिवाकर और समन्तभद्र ने अनेकान्त और नयवाद को दार्शनिक धरातल पर प्रस्फुटित किया । उसके पल्लवनकारो में हरिभद्रसूरि का एक प्रमुख व्यक्तित्व है । उन्होने संस्कृत साहित्य को कल्पना और अलकार की कसौटी से कसे हुए कवित्व तथा तर्कवाद और निराकरण प्रधान शैली से परिपुष्ट तार्किकता से ऊपर उठाकर स्वतन्त्र चिन्तन और समन्वय की भूमिका पर प्रतिष्ठित किया। उनके लोकतत्त्व-निर्णय नामक ग्रन्थ में स्वतंत्र चिन्तन की ऐसी चिरतन व्याख्या हुई है, जिसे कालातीत कहा जा सकता है । उन्होंने लिखा है :—

मातृमोदकवद् बाला., ये गृण्हन्त्यविचारितम् ।
ते पश्चात् परितप्यन्ते, सुवर्णग्राहको यथा ॥[1]

मा के द्वारा दिये हुए मोदक को बिना किसी विचार के ले लेने वाले बालक की भांति बिना विचार किए दूसरे के विचार को स्वीकार करने वाला वैसे ही पश्चात्ताप करता है, जैसे बिना परीक्षा किए स्वर्ण को खरीदने वाला पछताता है । सुनने के लिये कान हैं । विचारणा के लिये वाणी और बुद्धि है । फिर भी जो व्यक्ति श्रुत विषय पर चिन्तन नही करता, वह कर्तव्य को कैसे प्राप्त हो सकता है :—

श्रोतव्ये च कृतौ कर्णौ, वाग्बुद्धिश्च विचारणे ।
यः श्रुत न विचारेत, स कार्यं विन्दते कथम् ? ॥[2]

---

1. लोकतत्वनिर्णय, 19   2. लोकतत्वनिर्णय, 20

आगम-युग में श्रद्धा पर बहुत बल दिया गया । ईश्वरीय आदेशों और आप्त-वचनों पर संदेह नहीं किया जा सकता । इस मान्यता ने चिन्तन की धारा को क्षीण बना दिया था । अधिकांश लोग किसी व्यक्ति की वाणी या ग्रन्थ को बिना किसी चिन्तन के स्वीकार कर लेते थे । इस परम्परा ने रूढिवाद की जड़ें बहुत सुदृढ बना दी थीं । उन्हें तोड़ना श्रम-साध्य था । वैसे वातावरण में दूसरों पर भरोसा कर चलने को बुरा कहने वाले के लिये अच्छा नहीं था । फिर भी कहा गया :—

> हठो हठे यद्वदभिप्लुतः स्यात्, नौर्नावि बद्धा च यथा समुद्रे ।
> तथा पर-प्रत्ययमात्रदक्षः, लोकः प्रमादाम्भसि बाम्भ्रमीति ॥[1]

'जो व्यक्ति दूसरों की वाणी का अनुसरण करने मे ही दक्ष है, वह प्रमाद के जल में वैसे ही भ्रमण करता है, जैसे जलकुंभी का पौधा दूसरे पौधे के पीछे-पीछे बहता है और जैसे नाव से बंधी हुई नाव उसके पीछे-पीछे चलती है ।'

हरिभद्रसूरि को समन्वय का पुरोधा और उनकी रचनाओं को समन्वय की संहिता कहा जा सकता है। जब सम्प्रदायो मे अपने-अपने इष्टदेव के नाम की महिमा गाई जा रही थी, उस समय यह स्वर कितना महत्वपूर्ण था :—

> यस्य निखिलाश्च दोषा न सन्ति सर्वे गुणाश्च विद्यन्ते ।
> ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥[2]

'जिसके समस्त दोष नष्ट हो चुके है, सब गुण प्रकट हो गये हैं, उसे मेरा नमस्कार है, फिर वह ब्रह्मा हो या विष्णु, महादेव हो या जिन ।'

हरिभद्रसूरि ने योग की विविध परम्पराओ का समन्वय कर जैन योग-पद्धति को नया रूप प्रदान किया था । 'योगविंशिका' प्राकृत में लिखित है। संस्कृत में उनकी दो महत्वपूर्ण कृतिया है 'योगदृष्टिसमुच्चय' और 'योगबिन्दु'। उनमे जैन योग और पतंजलि की योग-पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन बहुत सूक्ष्म मति से किया गया है। अनेकान्त-दृष्टि प्राप्त होने पर सांप्रदायिक अभिनिवेश समाप्त हो जाता है ।

विक्रम की आठवी शती मे संस्कृत-साहित्य की जो धारा प्रवाहित हुई, वह वर्तमान शती तक अविच्छिन्न रूप में प्रवाहित है। वह कभी विशाल हुई है और कभी क्षीण, पर उसका अस्तित्व निरन्तरित रहा है । जैन परम्परा के संस्कृत-साहित्य पर अभी कोई व्यवस्थित कार्य नही हुआ है । लेखक, लेखनस्थान, लेखन-काल ये सब अभी निर्णय की प्रतीक्षा में हैं । अब तक 'संस्कृत-साहित्य का इतिहास' इस शीर्षक से जितने प्रबन्ध लिखे गए हैं, वे या तो जैन परम्परा के संस्कृत-साहित्य का स्पर्श नहीं करते या दो चार प्रसिद्ध ग्रन्थों का विवरण प्रस्तुत कर विषय को सम्पन्न कर देते हैं । जैन विद्वान् भी इस कार्य के प्रति उदासीन रहे हैं । इन दिनों कुछ ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, पर वे अपेक्षा के अनुरूप शोधपूर्ण और वैज्ञानिक पद्धति से लिखित नहीं है । मै इस अपेक्षा को इसलिये प्रस्तुत कर रहा हू कि जैन परम्परा के 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' इस विषय का एक महाग्रन्थ आधुनिक शैली में तैयार किया जाए । मैं नहीं मानता कि इस लघुकाय निबन्ध में मै राजस्थान के जैन लेखकों की सभी संस्कृत रचनाओं के साथ न्याय कर सकूंगा ।

---

1. लोकतत्वनिर्णय, 14   2. लोकतत्वनिर्णय, 20

हरिभद्रसूरि की रचनाओ के बाद सिद्धर्षि की महान् कृति 'उपमितिभवप्रपंच' कथा है। यह वि. सं. 906 (ई. स. 962) मे लिखी गई थी। शैली की दृष्टि से यह एक अपूर्व ग्रन्थ है। इसमे काल्पनिक पात्रो के माध्यम मे धर्म के विराट् स्वरूप को रूपायित किया गया है। डा. हीरालाल जैन ने लिखा है—"इसे पढते हुए अग्रेजी की जान बनयन कृत 'पिल्ग्रिम्स प्रोग्रेस' का स्मरण हो आता है, जिसमे रूपक की रीति से धर्मवृद्धि और उसमे आने वाली विघ्नबाधाओ की कथा कही गई है"[1]। सिद्धर्षि ने उपदेशमाला की टीका लिखी, कुछ अन्य ग्रंथ भी लिखे। पर मैं केवल उन्ही ग्रन्थो का नामोल्लेख करना अपेक्षित समझता हूं, जिनका विधा और वर्ण्य विषय की दृष्टि मे वैशिष्ट्य है।

विधा और प्रेरक तत्व

देश, काल, मान्यताए, परिस्थितिया, लोकमानस, लोक-कल्याण, जनप्रतिबोध, शिक्षा और उद्देश्य ये लेखन के प्रेरक तत्व होते हैं। लेखन की विधाए प्रेरक तत्वो के आधार पर बनती है। जैन लेखको ने अनेक प्रेरणाओ से संस्कृत साहित्य लिखा और अनेक विधाओं में लिखा। धर्म प्रचार के उद्देश्य से धार्मिक और दार्शनिक ग्रन्थ लिखे गए। अपने अभ्युपगम की स्थापना और प्रतिपक्ष-निरसन के लिये तर्क-प्रधान न्यायशास्त्रो की रचना हुई। जनप्रतिबोध और शिक्षा के उद्देश्य से कथा-ग्रन्थो का प्रणयन हुआ। लोक-कल्याण की दृष्टि से आयुर्वेद, ज्योतिष के ग्रन्थ निर्मित हुए। देश, काल और लोकमानस को ध्यान मे रखकर जैन लेखको ने प्राकृत के साथ-साथ संस्कृत भाषा को भी महत्व दिया। प्राकृत युग (विक्रम की तीसरी शती तक) मे जैन लेखको ने केवल प्राकृत मे लिखा। प्राकृत-संस्कृत-मिश्रित युग (विक्रम की चौथी शती से आठवी शती के पूर्वार्द्ध तक) मे अधिकाश रचनाए प्राकृत मे हुई और कुछ-कुछ संस्कृत मे भी। विक्रम की पाचवी से सातवी शती के मध्य लिखित आगम-चूर्णियो मे मिश्रित भाषा का प्रयोग मिलता है—प्राकृत के साथ-साथ संस्कृत के वाक्य भी प्रयुक्त है। आठवी शती के उत्तरार्ध मे हरिभद्रसूरि ने प्रथम बार आगम की व्याख्या संस्कृत में लिखी। विक्रम की ग्यारहवी शती के उत्तरवर्ती संस्कृत-प्राकृत-मिश्रित युग मे आगमो की अधिकाश व्याख्याए संस्कृत मे ही लिखी गई। अन्य साहित्य भी अधिकमात्रा मे संस्कृत मे ही लिखा गया और अनेक विधाओ मे लिखा गया। गुजरात, मालवा (मध्यप्रदेश) और दक्षिण भारत मे लिखा गया और राजस्थान मे भी लिखा गया।

आयुर्वेद

आयुर्वेद का सम्बन्ध जीवन मे है। जीवन का संबन्ध स्वास्थ्य से है। स्वास्थ्य का संबन्ध हित-मित आहार मे है। हित-मित आहार करते हुए भी यदि रोग उत्पन्न हो जाय तो चिकित्सा की अपेक्षा होती है। जैन विद्वानो ने इस अपेक्षा की भी यथासम्भव पूर्ति की है। उन्होंने राजस्थानी मे आयुर्वेद के विषय मे प्रचुर साहित्य लिखा। कुछ ग्रथ संस्कृत मे भी लिखे। हर्षकीर्त्तिसूरि (विक्रम की 17 वी शती) का योगचिन्तामणि और यति हस्तिरुचि (विक्रम की 18वी शती) का वैद्य वल्लभ दोनो प्रसिद्ध ग्रन्थ है। ये चिकित्सा-क्षेत्र मे बहुत प्रचलित रहे हैं। इन पर अनेक व्याख्याए लिखी गई।

---

1. भारतीय संस्कृति मे जैन धर्म का योगदान, पृ. 174

ज्योतिष

विक्रम की आठवीं शती से जैन मुनियो और यतियों ने ज्योतिष के ग्रन्थ लिखने शुरू किए । यह क्रम 19वी शती तक चला। नरचन्द्रसूरि ने वि. स. 1280 में ज्योतिस्सार (नारचन्द्र ज्योतिष) नामक ग्रन्थ की रचना की ।

उपाध्याय नरचन्द्र ने विक्रम की चौदहवी शती मे बेडा जातकवृत्ति, प्रश्नशतक, प्रश्न चतुर्विंशतिका आदि अनेक ग्रन्थ लिखे । डा नेमिचन्द्र शास्त्री ने इनके ग्रन्थो का मूल्याकन करते हुए लिखा है—'बेडा जातकवृत्ति मे लग्न और चन्द्रमा से ही समस्त फलो का विचार किया गया है । यह जातक-ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है । प्रश्नचतुर्विंशतिका के प्रारम्भ में ज्योतिष का महत्वपूर्ण गणित लिखा है । ग्रन्थ अत्यन्त गूढ और रहस्यपूर्ण है ।[1]

उपाध्याय मेघविजय ने विक्रमी के अठारहवी शती के पूर्वार्ध मे वर्ष प्रबोध, रमलशास्त्र, हस्त-सजीवन आदि अनेक ग्रन्थ लिखे । डॉ नेमिचद्र शास्त्री के अनुसार इनके फलित ग्रन्थो को देखने से सहिता और सामुद्रिक शास्त्र मे बंधा प्रकाण्ड विद्वत्ता का पता सहज में लग जाता है।[2]

मध्य युग मे जैन उपाश्रय शिक्षा, चिकित्सा और ज्योतिष के केन्द्र बन गए थे । जैसे-जैसे जन-सम्पर्क बढा वैसे-वैसे लोक-कल्याणकारी प्रवृत्तिया और तद्विषयक साहित्य की मात्रा बढी।

स्तोत्र

समूचा उत्तर भारत भक्ति की लहर मे आप्लावित हो रहा था । ईश्वर और गुरु की स्तुति ही धर्म की प्रधान अग बन रही थी । जैन धर्म भी उस धारा मे अप्रभावित नही था । इन बारह सौ वर्षों मे विपुल मात्रा में स्तोत्र रचे गए । स्तोत्र के पाठ की प्रवृत्ति भी विकसित की गई । सस्कृत नही जानने वाले भी स्तोत्र का पाठ करते थे । इसके साथ श्रद्धा और विघ्न-विलय की भावना दोनो जुडी हुई थी।

स्तोत्रो के साथ मन्त्र-ग्रन्थों का भी निर्माण हुआ । ऐहिक सिद्धि के लिए मन्त्र, यन्त्र और तन्त्र तीनो का प्रयोग होता था । फलत तीनो विषयो पर अनेक ग्रन्थो की रचना हुई ।

यात्रा ग्रन्थ

जिनप्रभसूरि ने वि सं 1389 (ई स. 1332) म विविध-तीर्थ-कल्प नामक ग्रन्थ का निर्माण किया । तीर्थ-यात्रा मे जो देखा, उसका सजीव वर्णन हुआ है । उसमें भक्ति, इतिहास और चरित तीनो एक साथ मिलते है ।

महाकाव्य और काव्य

जन-साधारण मे सस्कृत का ज्ञान नही था । फिर भी उसमें सस्कृत और सस्कृत के प्रति सम्मान का भाव था । कुछ लोग सहृदय थे, वे काव्य के मर्म को समझते थे । काव्य-

---

1. भारतीय ज्योतिष, पृ. 102, सस्करण छठा ।
2. भारतीय ज्योतिष, पृ. 109, सस्करण छठा ।

अधिक दुर्लभ मानी जाती थी। राजस्थान के जैन कवियों ने केवल काव्यों की ही रचना नहीं की, उनमें कुछ प्रयोग भी किए। उदाहरण के लिए महोपाध्याय समयसुन्दर की अष्टलक्षी, जिनप्रभसूरि के द्व्याश्रय काव्य और उपाध्याय मेघविजय के सप्तसन्धान काव्य को प्रस्तुत किया जा सकता है।

अष्टलक्षी वि. सं. 1649 की रचना है। उसमें 'राजा नो ददते सौख्यम्' इन आठ अक्षरों के आठ लाख अर्थ किए गए हैं।

महाकवि धनजय (ग्यारहवीं शती) का द्विसन्धान काव्य तथा आचार्य हेमचन्द्र का द्व्याश्रय काव्य प्रतिष्ठित हो चुका था। विक्रम की चौदहवी शती मे जिनप्रभसूरि ने श्रेणिक द्व्याश्रय काव्य लिखा। उसमें कातन्त्र व्याकरण की दुर्गसिंह कृत वृत्ति के उदाहरण और मगधपति श्रेणिक का जीवन चरित—दोनो एक साथ चलते है।

विक्रम की अठारहवी शती में उपाध्याय मेघविजय ने सप्तसधान काव्य का निर्माण किया। उस में ऋषभ, शान्तिनाथ, अरिष्टनेमि, पार्श्व और महावीर इन पाच तीर्थकरों नथा राम और कृष्ण के चरित निबद्ध हैं।

विक्रम की तेरहवी शती में सोमप्रभाचार्य ने सूक्ति-मुक्तावली की रचना की। यह सुभाषित-सूक्त होने के साथ-साथ प्रांजल भाषा, प्रसाद-गुण-सम्पन्न पदावली और कलात्मक कृति है। इनकी शृंगार-वैराग्य-तरंगिणी भी एक महत्वपूर्ण कृति है।

सूक्ति-मुक्तावली का दूसरा नाम सिन्दूरप्रकर है। इस पर अनेक व्याख्याएं लिखी गईं। इसका अनुसरण कर कर्पूर प्रकर, कस्तूरी प्रकर, हिंगुल प्रकर आदि अनेक सूक्ति-ग्रन्थों का सृजन हुआ।

विक्रम की सातवी शती तक जैन लेखक धर्म, दर्शन, न्याय, गणित, ज्योतिष, भूगोल खगोल, जीवन-चरित और कथा मुख्यत इन विषयों पर ही लिखते रहे।

विक्रम की आठवी शती से लेखन की धाराएं विकसित होने लगी। उसमें सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन, साम्प्रदायिक प्रतिस्पर्धा और सघर्ष, लोक-संग्रह के प्रति झुकाव, जन शासन के अस्तित्व की सुरक्षा, शक्ति-प्रयोग, शक्ति-साधना, चमत्कार-प्रदर्शन, जनता को आकर्षित करने का प्रयत्न, बाह्याचार पर अतिरिक्त बल आदि अनेक कारण बने।

बौद्ध कवि अश्वघोष का बुद्धचरित ख्याति बहुत पा चुका था। महाकवि कालिदास, माघ और भारवि के काव्य प्रसिद्धि के शिखर पर थे। उस समय जैन कवियों में भी संस्कृत-भाषा मे काव्य लिखने की मनोवृत्ति विकसित हुई। राजस्थान के जैन लेखक भी इस प्रवृत्ति में पीछे नही रहे। महाकाव्यो की शृंखला मे भी अनेक काव्यो की रचना हुई उनमें भरत-बाहुबलि-महाकाव्य का उल्लेख अनिवार्य है।

जैनेतर ग्रन्थों पर टीकाएं

जैन आचार्यों और विद्वानों को उदारता का दृष्टिकोण विरासत मे प्राप्त था। उन्होंने उसका उपयोग साहित्य की दिशा में भी किया। जैन लेखको ने बौद्ध और वैदिक साहित्य प अनेक व्याख्याएं लिखी। राजस्थान के जैन लेखक इसमें अग्रणी रहे हैं। हरिभद्रसूरि बौद्ध विद्वान् दिङ्नाग (ईसा की पाचवीं शती) के न्याय-प्रवेश पर टिका लिखी। पार्श्वदे गणि (अपर नाम श्रीचन्द्रसूरि) ने विक्रम की बारहवी शती में न्याय-प्रवेश पर पंजिका लिखी

बौद्ध आचार्य धर्मदास के विदग्धमुखमण्डन पर जिनप्रभसूरि ने एक व्याख्या लिखी। खरतर-गच्छीय जिनराजसूरि ने विक्रम की सतरहवीं शती में नैषध-चरित पर टीका लिखी। विक्रम की पन्द्रहवी शती में वैराट के अंचल-गच्छीय श्रावक वाडव ने कुमार-संभव, मेघदूत, रघुवंश, माघ आदि काव्यों पर अवचूरि विधा की व्याख्याएं निर्मित कीं।

सिंहावलोकन

राजस्थान में संस्कृत की सरिता प्रवाहित हुई, उसमें जैन आचार्य आदि-स्रोत रहे हैं। ईसा की सातवी शती में महाकवि माघ (भीनमाल प्रदेश) अपनी काव्य-शक्ति से राजस्थान की मरुधरा को अभिषिक्त कर रहे थे तो दूसरी ओर हरिभद्रसूरि (चित्तौड) अपनी बहुमुखी प्रतिभा से मरुधरा के कण-कण को प्राणवान् बना रहे थे। इसके उत्तरकाल में भी जैन लेखकों की लेखनी सभी दिशाओ में अनवरत चली। वह आज भी गतिशील है। वर्तमान शती में राजस्थान में विहार करने वाले जैन आचार्यों, साधु-साध्वियो और लेखकों ने अनेक ग्रन्थों, काव्यो, और महाकाव्यों की रचना की है। संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन की प्रवृत्तियां भी प्रचलित हैं। प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश आज प्रचलित भाषाएं नहीं है फिर भी ये बहुत समृद्ध भाषाए है। वर्तमान की भाषा का प्रयोग करते हुए भी इनका मूल्य विस्मृत न करना-जैन परम्परा का यह चिरन्तन-सूत्र आज भी उसकी स्मृति में है। संस्कृत के विकास और उसकी प्रवृत्ति के पीछे भी वह सर्वत्र प्राणवान् रहा है।

संस्कृत साहित्य एवं साहित्यकार: 2

—म० विनयसागर, साहित्य महोपाध्याय

भारतीय संस्कृत-साहित्य के सवर्धन एव सरक्षण मे जैन श्रमण-परम्परा ने अभूतपूर्व कार्य किया है। जैन श्रमण सार्वदेशीय विद्वान एव भाषाविद् होते है। यह श्रमण-यतिवर्ग अपने धर्म-आचार परम्परा के अनुसार सर्वदा विचरणशील रहा करता है। पादभ्रमण करता हुआ एक स्थान से दूसरे स्थान, एक प्रदेश मे दूसरे प्रदेश अर्थात सारे भारत मे प्रवास करता रहता है। इस वर्ग के लिये एक प्रदेश विशेष का बन्धन नही होता है। प्रवासकाल मे इन श्रमणो-मुनियो के मुख्यतया दो कार्य होते है—1. अध्ययन अध्यापन के साथ स्वतन्त्र लेखन, ग्रन्थनिर्माण और प्राचीन ग्रन्थो की प्रतिलिपिया करना। 2 लोकभाषा मे धर्म-प्रचार करना, उपदेश देकर शास्त्र लिखवाना, ज्ञान भण्डार स्थापित करवाना, मन्दिर-मूर्तियो का निर्माण, प्रतिष्ठा, प्राचीन मन्दिरो का जीर्णोद्धार करवाना और सघ के साथ तीर्थयात्रा करना। इन कार्य-कलापो के द्वारा इस वर्ग ने सरस्वती की उपासना के साथ-साथ भारतीय स्थापत्य कला, मूर्तिकला, चित्रकला का भी सवर्धन और रक्षण किया है, जो आज भी प्रत्यक्ष है।

इस राजस्थान प्रदेश-मरुधरा ने ऐसे सहस्रो नर-रत्न श्रमणो को पैदा किया है जिन्होंने अपने कृतित्व के माध्यम से इस क्षरदेह को अक्षरत्व-अमरत्व प्रदान करने में सफलता प्राप्त की है। राजस्थान मे उत्पन्न हुए जैन श्वेताम्बर सस्कृत-साहित्यकारो का एव राजस्थान मे विचरण करते हुये श्रमण लेखकों का यदि परिचय व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ लिखा जाय तो कई ग्रन्थ लिखे जा सकते है, जो इस निबन्ध मे सभव नही है। अतएव निबन्ध को दो विभागो में विभक्त किया जा रहा है—1 राजस्थान के जैन संस्कृत-साहित्यकार, और 2. राजस्थान में रचित सस्कृत-साहित्य की सूची।

1. राजस्थान के जैन सस्कृत साहित्यकार

अन्त साक्ष्य प्रमाणो के द्वारा अथवा उनके द्वारा रचित ग्रन्थो की भाषा के आलोक मे जिनकी जन्मभूमि-निवास या साहित्यिक कार्यक्षेत्र राजस्थान प्रदेश निश्चित है और जिन्होने देववाणी मे रचनाये की है उनमे से प्रमुख-प्रमुख कतिपय साहित्यकारो का सामान्य परिचय इस विभाग मे दे रहा हू।

1 हरिभद्रसूरि—समय 757 से 857। चित्रकूट (चित्तौड) के समर्थ विद्वान एवं राजपुरोहित। जाति ब्राह्मण। साध्वी याकिनी महत्तरा से प्रतिबोधित होकर जिनदत्तसूरि के पास दीक्षा। भवविरहाक विशेषण या उपनाम। महान् सिद्धान्तकार, दार्शनिक, विचारक, महाकवि एव सर्वश्रेष्ठ टीकाकार। श्वेताम्बर परम्परा इनको आप्तपुरुष और इनके वचनो को आप्त-वचनो की कोटि मे स्थान देती आई है। परम्परानुसार इनके द्वारा रचित 1444 ग्रन्थ माने जाते हैं। वर्तमान मे प्राप्त ग्रन्थो में से कतिपय विशिष्ट ग्रन्थ निम्न है—

अनुयोगद्वार सूत्र टीका, आवश्यक सूत्र बृहद्वृत्ति, आवश्यक निर्युक्ति टीका, जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति सूत्र टीका, जीवाभिगम सूत्र लघुवृत्ति, तत्वार्थसूत्र टीका, दशवैकालिक सूत्र टीका, नन्दीसूत्र टीका, पिण्डनिर्युक्ति टीका, प्रज्ञापना सूत्र प्रदेशव्याख्या, ललितविस्तारा-चैत्यवन्दन सूत्र वृत्ति आदि आगमिक टीका ग्रन्थ।

अनेकान्तवाद प्रवेश, अनेकान्तजयपताका, दिङ्‌नागकृत न्यायप्रवेश सूत्र टीका, न्याय-विनिश्चय, न्यायावतार टीका, लोकतत्त्वनिर्णय, शास्त्रवार्तासमुच्चय, सर्वज्ञसिद्धिप्रकरण आदि न्याय-दर्शन के मौलिक एव टीका ग्रन्थ ।

योगदृष्टिसमुच्चय, योगबिन्दु, योगशतक, योगविंशिका आदि योगशास्त्र के ग्रन्थ ।

उपदेशपद, पञ्चाशक आदि प्रकरण ग्रन्थ और समराइच्चकहा आदि काव्य प्राकृत भाषा मे है ।

2 सिद्धर्षिसूरि—समय 10वी शती । निर्वृ त्तिकुलीय श्री दुर्गस्वामी के शिष्य । दुर्गस्वामी का स्वर्गवास भिन्नमाल में हुआ था । दीक्षा दाता गर्गस्वामी । आगम, न्याय-दर्शन और सिद्धान्तों के मूर्धन्य विद्वान् । निम्न रचनाये प्राप्त हैं ।

उपमितिभवप्रपञ्चकथा र. स 962 भिन्नमाल, चन्द्रकेवली चरित्र र म. 974, उपदेशमाला बृहदवृत्ति एव लघुवृत्ति, न्यायावतार टीका ।

उपमितिभवप्रपञ्च कथा एक विशाल एव श्रेष्ठतम महारूपक ग्रन्थ है। यह समस्त भारतीय भाषाओ मे ही नही, अपितु विश्व-साहित्य मे प्राचीनतम और मौलिक रूपक उपन्यास है ।

3. जिनेश्वरसूरि[1]—समय लगभग 1050 से 1110 । मध्यदेश निवासी कृष्ण ब्राह्मण के पुत्र । दीक्षा से पूर्व नाम श्रीधर । धारानगरी मे दीक्षा । गुरु वर्धमानसूरि । खरतरगच्छ के संस्थापक प्रथम आचार्य । स 1066-1078 के मध्य मे अणहिलपुरपत्तन में महाराजा दुर्लभराज की अध्यक्षता मे चत्यवासी सूराचार्य प्रभृति प्रमुख आचार्यों के साथ शास्त्रार्थ। शास्त्रार्थ मे विजय और खरतर विरुद प्राप्ति। कार्य क्षेत्र राजस्थान एव गुजरात। प्रमुख रचनाये हैं:—

प्रमालक्ष्म स्वोपज्ञ टीका सह र सं 1080 जालोर, अष्टक प्रकरण टीका सं. 1080 जालोर, कथाकोष प्रकरण स्वोपज्ञ टीका सह र स. 1108 डीडवाणा, निर्वाणलीलावती कथा (अप्राप्त) आदि अन्य 7 ग्रन्थ प्राकृत भाषा मे है। प्रमालक्ष्म जैन दर्शन प्रतिपादक आद्यग्रन्थ है ।

4. बुद्धिसागरसूरि—पूर्वोक्त जिनेश्वरसूरि के लघुभ्राता। दीक्षा-पूर्व नाम श्रीपति । प्रमुख रचना है पञ्चग्रन्थी व्याकरण अपरनाम बुद्धिसागर व्याकरण र. स. 1080 जालौर । यह श्वेताम्बर समाज का सर्वप्रथम एव मौलिक व्याकरण ग्रन्थ है। आचार्य हेमचन्द्र ने भी इस व्याकरण का अपने व्याकरण सिद्धहेमशब्दानुशासन और टीका ग्रन्थो मे उपयोग किया है । वर्द्धमानसूरि रचित मनोरमा चरित्र प्रशस्ति (र स 1140) के अनुसार बुद्धिसागरसूरि ने छन्दः शास्त्र, निघण्टु (कोष), काव्य, नाटक, कथा, प्रबन्ध आदि अनेक विषयो के ग्रन्थो की रचना की थी, किन्तु वे सब ग्रन्थ आज अप्राप्त है ।

5. जिनवल्लभसूरि[2]—समय लगभग 1090 से 1167। खरतरगच्छ । मूलत कूर्चपुरगच्छीय जिनेश्वरसूरि के शिष्य । नवागटीकाकार अभयदेवसूरि के पास श्रुताभ्यास और उपसम्पदा । चित्तौड मे देवभद्राचार्य द्वारा 1167 आषाढ मे आचार्य पद प्रदान कर अभयदेवसूरि के पट्ट पर स्थापन । 1167 कार्तिक मास, चित्तौड मे ही स्वर्गवास । कार्यक्षेत्र चित्तौड आदि राजस्थान, गुजरात और पजाब । आगम-सिद्धान्त, साहित्यशास्त्र और ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान् । प्रमुख रचनायें है—

1. विशेष परिचय के लिये लेखक की 'वल्लभ-भारती' देखें ।
2. विशेष परिचय के लिये देखें, वल्लभ-भारती ।

धर्मशिक्षा प्रकरण, संघपट्टक, श्रृंगारशतक, प्रश्नोत्तरैकषष्टिशतकाव्य, अष्ट सप्ततिका अपरनाम चित्रकूटीय वीर चैत्यप्रशस्ति (1163) एवं भावारिवारण स्तोत्रादि अनेकों स्तोत्र ।

सूक्ष्मार्थविचारसारोद्धार, आगमिक वस्तुविचारसार, पिण्डविशुद्धि, स्वप्नस तिका, द्वादशकुलक एवं कतिपय स्तोत्र प्राकृत भाषा में हैं ।

6. जिनपतिसूरि[1]—समय 1210–1277 । खरतरगच्छ । गुरु मणिधारी जिनचन्द्रसूरि । जन्म 1210 विक्रमपुर (बीकमपुर, जैसलमेर के निकट) । माता-पिता मालू गोत्रीय यशोवर्धन एवं सूहवदेवी । दीक्षा 1217 । दीक्षानाम नरपति । आचार्य पद 1223 । स्वर्गवास 1277 । मुख्यकार्य 1228 आशिका में नृपति भीमसिंह के समक्ष महाप्रामाणिक दिगम्बर विद्वान् के साथ शास्त्रार्थ में विजय, 1239अजमेर में अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की सभा में पद्मप्रभ के साथ शास्त्रार्थ में विजय, और प्रद्युम्नाचार्य के साथ हुए शास्त्रार्थ में विजय । प्रमुख रचनायें हैं :—

संघपट्टक बृहद्वृत्ति, पञ्चलिंगी प्रकरण टीका, प्रबोधोदय वादस्थल और कतिपय स्तोत्र ।

7. जिनपालोपाध्याय—समय 1217 से 1311 । खरतरगच्छ । गुरु जिनपतिसूरि । दीक्षा 1225 पुष्कर । वाचनाचार्य 1251 कुहियपग्राम । उपाध्याय पद 1269 जालोर । 1311 पालनपुर मे स्वर्गवास । 1273 बृहद्वार में नगरकोट्टीय राजाधिराज पृथ्वीचन्द्र की सभा मे काश्मीरी पण्डित मनोदानन्द के साथ शास्त्रार्थ में विजय । चन्द्रतिलकोपाध्याय और प्रबोधचन्द्रगणि के विद्यागुरु । स्वदर्शन के साथ न्याय, अलंकार, साहित्य-शास्त्र के प्रौढ विद्वान् एव सफल टीकाकार । प्रमुख कृतियाँ हैं :—

सनत्कुमारचक्रिचरित महाकाव्य[2] षट्स्थानकप्रकरण टीका (1262), उपदेशरसायन विवरण (1292), द्वादशकुलक विवरण (1293), धर्मशिक्षा विवरण (1293), चर्चरी विवरण (1294) और युगप्रधानाचार्य गुर्वावली (1305) आदि । सनत्कुमारचक्रिचरित शिशुपालवध की कोटि का श्रेष्ठ महाकाव्य है और युगप्रधानाचार्य गुर्वावली ऐतिहासिक दृष्टि से एक अद्वितीय रचना है ।

8. लक्ष्मीतिलकोपाध्याय—समय लगभग 1275 से 1340 । खरतरगच्छ । गुरु जिनेश्वरसूरि द्वितीय । दीक्षा 1288 जालोर । वाचनाचार्य पद 1312 । उपाध्याय पद 1317 जालोर । सं. 1333 में जिनप्रबोधसूरि की अध्यक्षता में जालोर से निकले तीर्थ-यात्रा संघ में सम्मिलित थे । अभयतिलकोपाध्याय और चन्द्रतिलकोपाध्याय के विद्यागुरु । पूर्णकलश गणि रचित 'प्राकृत द्व्याश्रय काव्य टीका' (1307), अभयतिलक रचित 'पंच-प्रस्थान न्यायतर्क व्याख्या', चन्द्रतिलक रचित 'अभयकुमार चरित्र' (1312), प्रबोधचन्द्र गणि कृत 'संदेहदोलावली टीका' (1320), धर्मतिलक रचित 'उल्लासिस्तोत्र टीका' (1322) आदि अनेको ग्रन्थो के सशोधक । महाकवि एव सार्वदेशीय विद्वान् । प्रमुख रचनायें है :—

प्रत्येकबुद्धचरित्र महाकाव्य (1311) और श्रावक धर्म बृहद्वृत्ति (1317 जालोर) ।

---

1. देखें, खरतरगच्छालङ्कार युगप्रधानाचार्य गुर्वावली ।
2. म. विनयसागर द्वारा सम्पादित होकर राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से प्रकाशित ।

9. अभयतिलकोपाध्याय :—समय 13वीं-14 वीं शती । खरतरगच्छ । गुरु जिनेश्वरसूरि द्वितीय । दीक्षा 1291 जालोर । उपाध्याय पद 1319 । न्याय और काव्य-शास्त्र के प्रौढ़ विद्वान् । प्रमुख रचनायें हैं :— हेमचन्द्रीय संस्कृत द्व्याश्रय काव्य टीका (1312), पंचप्रस्थान न्यायतर्क व्याख्या, पालनीय वादस्थल।

10. जिनप्रभसूरि[1] :—समय लगभग 1326 से 1393। लघु खरतरगच्छ। गुरु जिनसिंहसूरि। जन्मस्थान मोहिलवाडी (झुन्झुनू के आसपास)। माता-पिता श्रीमाल-वंशीय ताम्बीगोत्रीय श्रेष्ठी रत्नपाल और खेतलदेवी। दीक्षा 1326। आचार्यपद 1341। महाप्रभाविक एवं चमत्कारी आचार्य। मुहम्मद तुगलक के प्रतिबोधक एव धर्मगुरु। कन्या-नयनीय महावीर प्रतिमा के उद्धारक। विहार क्षेत्र—राजस्थान, गुजरात, बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, दक्षिण, कर्णाटक और तैलंग। कार्यक्षेत्र दिल्ली और देवगिरि। प्रमुख रचनायें है :—

श्रेणिक चरित्र (द्वयाश्रय काव्य, 1356), कल्पसूत्र संदेह-विषौषधि टीका (1364), साधुप्रतिक्रमणसूत्र टीका (1364), षडावश्यक टीका, अनुयोग चतुष्टय व्याख्या, प्रव्रज्याभिधान टीका, विधिमार्गप्रपा (1363), कातन्त्रविभ्रम टीका (1352), अनेकार्थसंग्रह टीका, शेष संग्रह टीका, विदग्धमुखमण्डन टीका (1368), गायत्री विवरण, सूरिमन्त्रबृहत्कल्प विवरण, रहस्य कल्पद्रुम और विविध तीर्थ-कल्प आदि अनेकों ग्रन्थ। स्तोत्र-साहित्य में लगभग 80 स्तोत्र प्राप्त हैं। तीर्थों का इतिहास—इस दृष्टि से विविधतीर्थकल्प अभूतपूर्व, मौलिक और ऐतिहासिक तथ्यो से परिपूर्ण रचना है।

11. जिनकुशलसूरि:—समय 1337 से 1389। खरतरगच्छ। गुरु कलिकाल कल्पतरु जिनचन्द्रसूरि। श्वेताम्बर समाज में तीसरे दादाजी के नाम से प्रसिद्धतम आचार्य। जन्म 1337 सिवाना। माता-पिता छाजहड गोत्रीय ठ जैसल एवं जयतश्री। दीक्षा 1346 सिवाना। वाचनाचार्य पद 1375 नागौर। दीक्षा नाम कुशलकीर्ति। आचार्य पद 1377 पाटण। स्वर्गवास 1379 देवराजपुर (देरावर)। स. 1383 बाडमेर मे रचित "चैत्यवन्दन-कुलक वृत्ति" इनकी मुख्य कृति है। कई स्तोत्र भी प्राप्त हैं।

12. जिनवर्द्धनसूरि:—समय 15वी शती। खरतरगच्छ। गुरु जिनराजसूरि। आचार्य पद 1461 देवकुलपाटक। इनके समय मे खरतरगच्छ की पिप्पलक शाखा का 1469 जैसलमेर में उद्भव हुआ। कार्यक्षेत्र जैसलमेर और मेवाड। 1473 जैसलमेर मे लक्ष्मण-विहार की प्रतिष्ठा। सप्तपदार्थी टीका (1474), वाग्भटालंकार टीका, प्रत्येकबुद्ध चरित्र और सत्यपुरमडन महावीर स्तोत्र इनकी मुख्य कृतिया हैं।

---

1 द्रष्टव्य, म. विनय सागर : शासन प्रभावक आचार्य जिनप्रभ और उनका साहित्य।

13. जिनभद्रसूरि:—समय 1449-1514 । खरतरगच्छ । गुरु जिनराजसूरि । जन्म 1449 । जन्मनाम रामणकुमार । माता-पिता छाजहड़ गोत्रीय सा. धाणिक एवं खेतलदे । दीक्षा 1461 । आचार्यपद 1475 । स्वर्गवास 1514 कुंभलमेर । प्रमुख कार्य—जैसलमेर, जालोर, देवगिरि, नागोर, पाटण, मांडवगढ, आशापल्ली, कर्णावती और खंभात आदि स्थानों पर इन्होंने ज्ञान भण्डार स्थापित किये और सहस्रों नये ग्रन्थ लिखवाकर, संशोधन कर इन भंडारों में स्थापित किये । जैसलमेर का ज्ञान भण्डार आज भी आपकी कीर्ति-पताका को अक्षुण्ण रखकर विश्व में फहरा रहा है । इन्होंने सहस्रों मूर्तियों की प्रतिष्ठायें एवं अनेकों नवीन मन्दिरों की स्थापना की । रचनायें निम्न हैं :—

सूरिमन्त्रकल्प, शत्रुञ्जय लघुमाहात्म्य, स्तोत्रादि । जिनसत्तरी प्राकृत भाषा में है ।

14. वाडव:—जैन श्वेताम्बर उपासक वर्ग के इने-गिने साहित्यकारों—कवि पद्मानन्द, ठक्कुर फेरु, मन्त्री मण्डन, मन्त्री धनद आदि के साथ टीकाकार वाडव का नाम भी गौरव के साथ लिया जा सकता है । वाडव जैन श्वेताम्बर अञ्चलगच्छीय उपासक श्रावक था । वह विराट नगर वर्तमान बैराठ (अलवर के पास, राजस्थान प्रदेश) का निवासी था । संस्कृत साहित्य-शास्त्र और जैन साहित्य का प्रौढ विद्वान् एवं सफल टीकाकार था । इसका समय वैक्रमीय पन्द्रहवीं शती का उत्तरार्द्ध है । इसने अनेक ग्रन्थों पर टीकायें लिखी थीं किन्तु दुःख: है कि आज न तो उसका कोई ग्रन्थ ही प्राप्त है और न जैन इतिहास या विद्वानों में उल्लेख ही प्राप्त है । वाडव की एकमात्र अपूर्ण कृति "वृत्तरत्नाकर अवचूरि" (15वीं शती के अन्तिम चरण की लिखी) मेरे निजी संग्रह में है । इसकी प्रशस्ति के अनुसार वाडव ने जिन-जिन ग्रन्थों पर टीकायें लिखी हैं, उनके नाम उसने इस प्रकार दिये हैं :—

1. कुमारसम्भव काव्य अवचूरि
2. मेघदूत काव्य अवचूरि
3. रघुवंश काव्य अवचूरि
4. माघ काव्य अवचूरि
5. किरातार्जुनीय काव्य अवचूरि
6. कल्याण मन्दिर स्तोत्र अवचूरि
7. भक्तामर स्तोत्र अवचूरि
8. पार्श्वनाथ स्तोत्र अवचूरि
9. जीरापल्ली पार्श्वनाथ स्तोत्र अवचूरि
10. त्रिपुरा स्तोत्र अवचूरि
11. वृत्तरत्नाकर अवचूरि
12. वाग्भटालंकार अवचूरि
13. विदग्धमुखमण्डन अवचूरि
14. योगशास्त्र (4 अध्याय) अवचूरि
15. वीतराग स्तोत्र अवचूरि

वाडव की अन्य कृतिया जो अप्राप्त हैं उनके लिये शोध विद्वानों का कर्त्तव्य है कि खोज करके अन्य ग्रन्थों को प्राप्त करें और वाडव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विशेष प्रकाश डालें ।

15. चारित्रवर्द्धन.—समय लगभग 1470 से 1520 । लघु खरतरगच्छ । गुरु कल्याणराज । कार्य क्षेत्र झुन्झुनूं के आस-पास का प्रदेश । प्रतिभाशाली और बहुश्रुत विद्वान् । नरवेष-सरस्वती उपनाम । ख्यातिप्राप्त समर्थ टीकाकार । प्रमुख रचनायें हैं :—

रघुवंश टीका, कुमारसम्भव टीका (1492), शिशुपालवध टीका, नैषधकाव्य टीका (1511), मेघदूत टीका, राघवपाण्डवीय टीका, सिन्दूर प्रकर टीका (1505), भावारिवारण एवं कल्याण मन्दिर स्तोत्र टीका ।

चारित्रवर्द्धन ने इन टीकाओं की रचना अपने उपासकों की ज्ञान-वृद्धि के लिये की है । इससे स्पष्ट है कि ठ. अरडक्कमल्ल और ठ. सहस्रमल्ल, भीषण आदि भी संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे ।

16. जयसागरोपाध्यायः—समय लगभग 1450-1515 खरतरगच्छ। गुरु जिनराजसूरि। जन्म नाम जयदत्त। माता-पिता दरडागोत्रीय आसराज और सोखू। इन्हीं के भाई मण्डलीक आदि ने आबू में खरतरवसही का निर्माण करवाया। कार्यक्षेत्र—जैसलमेर, आबू, गुजरात, सिन्ध, पंजाब, हिमाचल। श्रीवल्लभ के कथनानुसार इन्होंने सहस्रों स्तुति-स्तोत्रों की रचना की थी। मुख्य कृतियां निम्न हैं :—

विज्ञप्ति त्रिवेणी (1484), पृथ्वीचन्द्र चरित्र (1503); जैसलमेर शान्तिनाथ जिनालय प्रशस्ति (1493), संदेहदोलावली टीका, गुरुपारतन्त्र्य स्तोत्र टीका, भावारिवारण स्तोत्र टीका आदि एवं अनेकों स्तोत्र। विज्ञप्ति त्रिवेणी एक ऐतिहासिक विज्ञप्ति पत्र है। नगरकोट, कागडा आदि तीर्थों का दुर्लभ विवरण इसमें प्राप्त है।

17. कीर्तिरत्नसूरिः—समय 1449-1525। खरतरगच्छ। गुरु जिनवर्धनसूरि। जन्म 1449। नाम देल्हाकुंवर। माता-पिता शखवाल गोत्रीय शाह कोचर के वंशज दीपा और देवलदे। दीक्षा 1463, नाम कीर्तिराज। वाचनाचार्य 1470। उपाध्याय पद 1480 महेवा। आचार्यपद 1497 जैसलमेर। आचार्य नाम कीर्तिरत्नसूरि। स्वर्गवास 1525 वीरमपुर। नाकोडा पार्श्वनाथ तीर्थ के प्रतिष्ठापक। इनकी शिष्य परम्परा कीर्ति-रत्नसूरि शाखा के नाम से चली आ रही है। नेमिनाथ महाकाव्य इनकी विशिष्ट रचना है।

18. जिनहंससूरि.—समय 1524 से 1582। खरतरगच्छ। गुरु जिनसमुद्रसूरि। जन्म 1524। सेत्रावा निवासी चोपडा गोत्रीय मेघराज और कमलादे के पुत्र। दीक्षा 1535 बीकानेर। आचार्य पद 1555। बादशाह को धौलपुर में चमत्कार दिखाकर 500 कैदियो को छुडवाया। स्वर्गवास 1582। आचारांगसूत्र दीपिका (1572 बीकानेर) इनकी प्रमुख रचना है।

19. युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि.—समय 1598-1670। खरतरगच्छ। गुरु जिन माणिक्यसूरि। जन्म 1598, नाम सुलतान कुमार। बडली निवासी रीहड गोत्रीय श्रीवंत एवं सिरियादेवी के पुत्र। दीक्षा 1604। दीक्षा नाम सुमतिधीर। आचार्यपद 1612 जैसलमेर। क्रियोद्धार 1614 बीकानेर। 1617 पाटण में सर्वगच्छीय आचार्यों के सन्मुख धर्मसागरोपाध्याय को उत्सूत्रवादी घोषित किया। 1648 लाहोर में सम्राट अकबर से मिलन और प्रतिबोध। अकबर द्वारा युगप्रधान पद प्राप्त। स्वर्गवास 1670 बिलाडा। कार्यक्षेत्र राजस्थान, गुजरात, पंजाब। अनेको प्रतिष्ठायें एव कई यात्रा-सघो का सचालन। प्रमुख भक्त बीकानेर के महामत्री कर्मचन्द्र बच्छावत अदेर अहमदाबाद के श्रेष्ठि शिवा सोम। मुख्य कृति पौषधविधि प्रकरण टीका (1617) है।

20 महोपाध्याय पुण्यसागरः—समय 16वी एव 17वी शती। खरतरगच्छ। गुरु जिनहंससूरि। प्रमुख रचनायें है :—

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र टीका (1645 जैसलमेर) और प्रश्नोत्तरैकषष्टिशत काव्य टीका (1640 बीकानेर)।

इनके शिष्य पद्मराज भी संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। जिनकी भावारिवारण पादपूर्ति स्तोत्र टीका सह (1659, जैसलमेर), 'दुरित' दण्डक स्तुति टीका (1644 फलवर्धि) आदि कई कृतियां प्राप्त हैं।

21. जिनराजसूरि :—समय 1647-1699 । खरतरगच्छ । गुरु जिनसिंहसूरि । जन्म 1647 बीकानेर । बोहिथरा गोत्रीय धर्मसी धारलदे के पुत्र । जन्म नाम खेतसी । दीक्षा 1656 । दीक्षा नाम राजसमुद्र । उपाध्याय पद 1668 आसाउल । आचार्य पद 1674 मेडता । स्वर्गवास 1699 । 1675 शत्रुञ्जय खरतरवसही, लौद्रवा तीर्थ और सहस्रों जिनमूर्तियों के प्रतिष्ठापक । नव्यन्याय और साहित्यशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित । प्रमुख रचनाएं हैं :—

नैषधीय महाकाव्य जैनराजी टीका (श्लोक परिमाण 36000) और भगवती सूत्र टीका ।

22. महोपाध्याय समयसुन्दर[1]:—समय लगभग 1610-1703 । खरतरगच्छ । गुरु सकलचन्द्र गणि । साचोर निवासी प्राग्वाट ज्ञातीय रूपसी-लीलादेवी के पुत्र । जन्म लगभग 1610 । गणिपद 1640 जैसलमेर । वाचनाचार्य पद 1649 लाहोर । उपाध्याय पद 1671 लवेरा । स्वर्गवास 1703 । कार्य क्षेत्र राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, सिन्ध और पंजाब । सिद्धपुर (सिन्ध) का अधिकारी मखनूम महमूद शेख काजी, जैसलमेर के रावल भीमसिंह, खंभात, मंडोवर और मेडता के शासकों को प्रभावित कर जीवहिंसा निषेध और अमारी-पटह की घोषणा करवाई । 17वीं शती का सर्वतोमुखी और सर्वश्रेष्ठ विद्वान् । सं. 1649 में काश्मीर विजय के समय सम्राट् अकबर के सन्मुख 'राजा नो ददते सौख्यम्' चरण के प्रत्येक अक्षर के एक-एक लाख अर्थ अर्थात् आठ अक्षरों के आठ लाख अर्थ कर अष्टलक्षी ग्रन्थ रचा । प्रमुख-प्रमुख कृतियां निम्नांकित हैं:—

सारस्वत वृत्ति, सारस्वत रहस्य, लिंगानुशासन अवचूर्णि, अनिट्कारिका, सारस्वतीय शब्द रूपावली आदि व्याकरण के ग्रन्थ ।

अष्टलक्षी, मेघदूत प्रथमपद्यस्य त्रयो अर्थाः, आदि अनेकार्थी साहित्य ।

जिनसिंहसूरि पदोत्सव काव्य (रघुवंश पादपूर्ति), रघुवंश टीका, कुमारसंभव टीका, मेघदूत टीका, शिशुपालवध तृतीय सर्ग टीका, रूपकमाला अवचूरि, ऋषभ भक्तामर (भक्तामर पादपूर्ति) आदि काव्य ग्रन्थ एवं टीकायें ।

भावशतक, वाग्भटालंकार टीका, वृत्तरत्नाकर टीका, मंगलवाद आदि लक्षण; छंद न्यायक ग्रन्थ ।

कल्पसूत्र टीका, दशवैकालिक सूत्र टीका, नवतत्त्व प्रकरण टीका, समाचारी शतक; विशेष संग्रह, विशेष शतक, गाथा सहस्री, सप्तस्मरण टीका आदि अनेकों आगमिक सैद्धांतिक और स्तोत्र साहित्य पर रचनायें एवं टीकायें ।

समयसुन्दर के शिष्य वादी हर्षनन्दन की निम्नलिखित रचनायें प्राप्त हैं :—मध्याह्न व्याख्यानपद्धति (1673), ऋषि मण्डल वृत्ति (1704), स्थानांग सूत्र गाथागत वृत्ति (1705), उत्तराध्ययन सूत्र टीका (1711) आदि ।

23. महोपाध्याय गुणविनयः—समय लगभग 1615-1675 । खरतरगच्छ, क्षेमकीर्ति शाखा । गुरु जयसोमोपाध्याय । वाचक पद 1649 । स्वर्गवास 1675 के लगभग ।

टि. 1. देखें, म. विनयसागर: महोपाध्याय समयसुन्दर

कार्यक्षेत्र अधिकांशतः राजस्थान । सम्राट् जहांगीर द्वारा 'कविराज' पद प्राप्त । प्रमुख रचनायें हैं :—

खण्डप्रशस्ति टीका[1] (1641), नेमिदूत टीका[2] (1644), दमयन्ती कथा चम्पू टीका (1646), रघुवंश टीका (1646), वैराग्यशतक टीका (1647), सम्बोध सप्तति टीका (1651), कर्मचन्द्रवंश प्रबन्ध टीका (1656), लघुशान्ति स्तव टीका (1659); शीलोपदेशमाला लघु वृत्ति आदि 13 टीका ग्रन्थ । 'सव्वत्थशब्दार्थ समुच्चय' अनेकार्थी ग्रन्थ और 'हुण्डिका' (1657) संग्रह ग्रंथ है । गुणविनय के शिष्य गमतिकीर्ति रचित दशाश्रुतस्कन्ध टीका और गुणकित्व षोडशिका भी प्राप्त है ।

24. श्रीवल्लभोपाध्याय :—समय लगभग 1620-1687 । खरतरगच्छ । गुरु ज्ञानविमलोपाध्याय । कार्यक्षेत्र–जोधपुर, नागौर, बीकानेर, गुजरात । महाकवि, बहुश्रुतज्ञ, व्याकरण-कोष के मूर्धन्य विद्वान् और सफल टीकाकार । प्रमुख कृतिया निम्नलिखित हैं :—

विजयदेवमाहात्म्य काव्य, सहस्रदलकमलगर्भित अरजिन स्तव स्वोपज्ञ टीका सह[3] विद्वत्प्रबोधकाव्य, संघपति रूपजी वंश प्रशस्ति[4], मातृकाश्लोकमाला, चतुर्दशस्वरस्थापन वादस्थल आदि 8 मौलिक कृतिया ।

हैमनाममाला शेषसग्रह टीका, हैमनाममाला शिलोञ्छ टीका,[5] हैमलिंगानुशासन दुर्गप्रदप्रबोध टीका, हैमनिघण्टुशेष टीका, अभिधानचिन्तामणि नाममाला टीका, सिद्धहेमशब्दानुशासन टीका, विदग्धमुखमण्डन टीका आदि 12 टीका ग्रन्थ ।

25. सहजकीर्ति :—समय 17वीं शती । खरतरगच्छ । गुरु हेमनन्दन । कार्यक्षेत्र राजस्थान । प्रमुख रचनाये है :—

कल्पसूत्र टीका (1685), अनेकशास्त्रसमुच्चय, गौतमकुलक टीका (1671), फलवर्द्धि पार्श्वनाथ माहात्म्य काव्य, वैराग्यशतक, ऋजुप्राज्ञ व्याकरण, सारस्वत टीका (1681); सिद्धशब्दार्णव नामकोष, शतदलकमलबद्ध पार्श्वनाथ स्तोत्र आदि ।

26. गुणरत्न :—समय 17वी शती । खरतरगच्छ । गुरु विनयप्रमोद । न्याय, लक्षण, काव्य-शास्त्र के प्रौढ विद्वान् । कार्यक्षेत्र राजस्थान । प्रमुख रचनाये हैं :—

काव्यप्रकाश टीका, तर्कभाषा टीका, सारस्वत टीका (1641), रघुवंश टीका (1667), मंगलवाद आदि ।

---

1. 4. म. विनयसागर द्वारा सम्पादित होकर राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित ।

2. 3. म. विनयसागर द्वारा सम्पादित होकर सुमतिसदन, कोटा से प्रकाशित ।

5. म. विनयसागर द्वारा सम्पादित होकर ला. द. भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर, अहमदाबाद से प्रकाशित ।

27. सूरचन्द्र :—समय 17वीं शती । खरतरगच्छ । गुरु वीरकलश । कार्यक्षेत्र राजस्थान । दर्शन और साहित्य शास्त्र का प्रकाण्ड-पण्डित । प्रमुख रचनायें हैं :—

स्थूलिभद्रगुणमालाकाव्य (1680), जैनतत्वसार स्वोपज्ञ टीका सह (1679); अष्टार्थी श्लोक वृत्ति, पदैकविंशति, शांतिलहरी, श्रृंगार रसमाला (1659), पंचतीर्थी श्लेषालंकार चित्रकाव्य आदि ।

28. मेघविजयोपाध्याय:—समय लगभग 1685-1760 । तपागच्छ । गुरु कृपाविजय । कार्यक्षेत्र राजस्थान और गुजरात । बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न विशिष्ट विद्वान् एवं काव्य-साहित्य, व्याकरण, अनेकार्थ, न्याय, ज्योतिष, सामुद्रिक आदि अन्यान्य विषयो के प्रकाण्ड पण्डित । प्रमुख रचनायें हैं :—

सप्तसन्धान महाकाव्य (1760), दिग्विजय महाकाव्य, शान्तिनाथ चरित्र (नैषधपादपूर्ति); देवानन्द महाकाव्य (माघ पादपूर्ति), किरात समस्या पूर्ति, मेघदूत समस्यालेख (मेघदूत पादपूर्ति), लघुत्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, भविष्यदत्त चरित्र, पचाख्यान, चन्द्रप्रभा व्याकरण (1757), हेमशब्दचन्द्रिका, हेमशब्दप्रक्रिया, चिन्तामणि परीक्षा, युक्तिप्रबोध, मेघमहोदयवर्षप्रबोध, हस्तसजीवन, उदयदीपिका, वीसायन्त्रविधि, मातृका प्रसाद (1747), अर्हद्गीता आदि 38 कृतिया प्राप्त है ।

29. महिमोदय :—समय 18वी शती । खरतरगच्छ । गुरु मतिहस । कार्यक्षेत्र राजस्थान । ज्योतिष शास्त्र का विद्वान् । प्रमुख कृतियां है :—

खेटसिद्धि, जन्मपत्री पद्धति, ज्योतिष रत्नाकर (1722), पञ्चांगानयन विधि (1722); प्रेम ज्योतिष (1723), षट्पञ्चाशिकावृत्ति बालावबोध आदि ।

30. यशस्वत्सागर (जसवतसागर) :—समय 18वी शती । तपागच्छ । गुरु यश.सागर । न्याय-दर्शन और ज्योतिष के श्रेष्ठ विद्वान् । कार्यक्षेत्र राजस्थान । निम्नाकित साहित्य प्राप्त है :—

विचारषट्त्रिंशिका अवचूरि (1721), भावसप्ततिका (1740), जैन सप्तपदार्थी (1757); प्रमाणवादार्थ (1757 सांगानेर), वादार्थ निरूपण, स्याद्वादमुक्तावली, स्तवनरत्न, ग्रहलाघव वार्तिक (1760), यशोराजी राजपद्धति आदि ।

31. लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय :—समय 18वीं शती । खरतरगच्छ, क्षेमकीर्तिशाखा । गुरु लक्ष्मीकीर्ति । कार्यक्षेत्र राजस्थान । प्रमुख रचनाए है :—

कल्पसूत्र टीका, उत्तराध्ययन सूत्र टीका, कालिकाचार्य कथा, कुमारसंभव टीका, मातृक धर्मोपदेश स्वोपज्ञ टीका सह, संसारदावा पादपूर्त्यात्मक पार्श्वनाथ स्तोत्र आदि ।

32. धर्मवर्द्धन :—समय 1700-1883-84 । खरतरगच्छ । गुरु विजयहर्ष । जन्म 1700 । जन्मनाम धर्मसी । दीक्षा 1713 । उपाध्याय पद 1740 । स्वर्गवास 1783-84 के मध्य । प्रमुख रचनायें हू वीरभक्तामर स्वोपज्ञ टीका सहित और अनेकों स्तोत्र ।

33. महोपाध्याय रामविजय (रूपचन्द्र) :—समय 1734-1835 । खरतरगच्छ क्षेमकीर्तिशाखा । गुरु दयासिंह । ओसवाल आंचलिया गोत्र । जन्म नाम रूपचन्द्र जो अन्त तक प्रसिद्ध रहा । दीक्षा नाम रामविजय । दीक्षा 1755 बिल्हावास । स्वर्गवास 1835 पाली । कार्यक्षेत्र जोधपुर, बीकानेर । अनेक भाषाओं और अनेक विषयों के प्रगाढ विद्वान् । प्रमुख रचनायें हैं :—

गौतमीय महाकाव्य (1807), गुणमाला प्रकरण, सिद्धान्त चन्द्रिका टीका, साध्वाचार षट्त्रिंशिका, मुहूर्तमणिमाला (1801), षड्भाषामय पत्र (1787) आदि ।

महो. रामविजय के शिष्य पुण्यशील गणि कृत जयदेवीय गीतगोविन्द की पद्धति पर 'चतुर्विंशति जिन स्तवनानि स्वोपज्ञ टीका सह' और 'ज्ञानानन्द प्रकाश' प्राप्त हैं । और इन्हीं के प्रशिष्य शिवचन्द्रोपाध्याय कृत अनेक कृतियां प्राप्त हैं । जिनमें से मुख्य ये हैं :—

प्रद्युम्न लीला प्रकाश (1879), विंशतिपद प्रकाश, सिद्ध सप्ततिका, भावना प्रकाश, मूलराज गुणवर्णन समुद्रबन्ध काव्य (1861) और अनेक स्तोत्र ।

34. महोपाध्याय क्षमाकल्याण :—समय 1801 से 1872 । खरतरगच्छ । गुरु अमृतधर्म । जन्म 1801 केसरदेसर । माल्हू गोत्र । दीक्षा 1812 । स्वर्गवास 1872 । इनकी विद्वत्ता के संबंध में मुनि जिनविजय जी ने तर्कसंग्रह के प्रकाशकीय वक्तव्य (पृ.2) में लिखा है:—

"राजस्थान के जैन विद्वानों में एक उत्तम कोटि के विद्वान् थे और अन्य प्रकार से अन्तिम प्रौढ पण्डित थे। इनके बाद राजस्थान में ही नहीं अन्यत्र भी इस श्रेणी का कोई जैन विद्वान् नहीं हुआ ।"

इनकी प्राप्त रचनाओं में मुख्य रचनायें निम्न हैं —

तर्कसंग्रह फक्किका (1827), भूधातुवृत्ति (1829), समरादित्य केवली चरित्र पूर्वार्द्ध, अम्बड चरित्र, यशोधर चरित्र, गौतमीय महाकाव्य टीका, सूक्ति रत्नावली स्वोपज्ञ टीका सह, विज्ञान चन्द्रिका, खरतरगच्छ पट्टावली, जीवविचार टीका, परसमयसार विचार संग्रह, प्रश्नोत्तर सार्द्धशतक, साधु-श्रावक विधि प्रकाश, अष्टाहृनिकादि पर्वव्याख्यान, चैत्यवन्दन चतुर्विंशति आदि अनेकों ग्रन्थ एवं कतिपय स्तोत्र ।

35. जिनमणिसागरसूरि :—समय 1944-2007 । खरतरगच्छ । गुरु महोपाध्याय सुमतिसागर । जन्म 1944 बाकडिया बडगांव । जन्म नाम मनजी । दीक्षा 1960 पालीताणा। आचार्य पद 2000 बीकानेर । स्वर्गवास 2007 मालवाडा । सागरानन्दसूरि, विजय वल्लभसूरि और चौथमल जी आदि के साथ शास्त्रार्थ । प्रमुख कार्य आगमों का राष्ट्र भाषा में अनुवाद । कार्य क्षेत्र कोटा, बम्बई, कलकत्ता । जैन शास्त्रों के श्रेष्ठ विद्वान् । संस्कृत भाषा में एक ही कृति प्राप्त है –साध्वी व्याख्यान निर्णय । अन्य कृतिया षट्कल्याणक निर्णय, पर्युषणा निर्णय, क्या पृथ्वी स्थिर है ? देवार्चन एक दृष्टि, साध्वी व्याख्यान निर्णय, आगमानुसार मुंहपति निर्णय, देव द्रव्य निर्णय आदि हिन्दी भाषा में प्राप्त हैं ।

36. बुद्धिमुनि गणि :—समय लगभग 1950 से 2025 । खरतरगच्छ श्री मोहन लाल जी परम्परा । गुरु श्री केशर मुनि । संस्कृत, प्राकृत, गुजराती भाषा और जैन साहित्य के विशिष्ट विद्वान् । विहार क्षेत्र राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र । संस्कृत भाषा में इनकी कल्पसूत्र टीका, कल्याणक परामर्श, पर्युषणा परामर्श आदि कई कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं । साधुरंगीय सूत्रकृतांग दीपिका, पिण्डविशुद्धि (3 टीका सहित) आदि अनेक ग्रन्थों

का इन्होंने सम्पादन किया है। सम्पादित ग्रन्थों की विस्तृत भूमिकायें भी इन्होंने संस्कृत में लिखी हैं। गुजराती और हिन्दी में भी इनकी लिखित एवं सम्पादित कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

37. आचार्य घासीलाल जी :— ये स्थानकवासी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य श्री जवाहिरलाल जी के शिष्य थे। इनका जन्म सं. 1941 जसवन्तगढ (मेवाड) में हुआ था। ये संस्कृत और प्राकृत भाषा तथा जैनागम, व्याकरण, काव्य, कोष आदि विषयो के श्रेष्ठ विद्वान् थे। इन्होने स्थानकवासी सम्प्रदाय द्वारा मान्य 32 आगमो पर संस्कृत भाषा में विस्तृत टीकायें लिखी और विविध विषयो में अनेक नूतन ग्रन्थों का निर्माण किया। इनकी मौलिक रचनायें निम्नलिखित प्राप्त होती है :—

शिवकोश, नानार्थ उदयसागर कोश, श्रीलाल नाममाला कोश, आर्हत् व्याकरण, आर्हत् लघु व्याकरण, आर्हत् सिद्धान्त व्याकरण, शान्ति सिन्धु महाकाव्य, लौकाशाह महाकाव्य, पूज्य श्री लाल काव्य, लवजी मुनि काव्य, जैनागम तत्व दीपिका, वृत्तबोध, तत्व प्रदीप, सूक्ति संग्रह, गृहस्थ कल्पतरु, नागाम्बरमञ्जरी, नव स्मरण, कल्याण मंगल स्तोत्र, वर्धमान स्तोत्र आदि।

38. आचार्य हस्तिमल जी :—ये वर्तमान में स्थानकवासी समाज के प्रमुख आचार्यों मे से हैं। संस्कृत भाषा के अच्छे विद्वान् है। नन्दीसूत्र आदि आगम ग्रन्थो पर इन्होने संस्कृत भाषा में टीकाओ का निर्माण किया है। इनकी हिन्दी भाषा में कई कृतिया भी प्रकाशित हो चुकी है।

× × × ×

राजस्थान प्रदेश में अन्य गच्छों की अपेक्षा खरतरगच्छ का प्रभाव एवं प्रचार विशेष रहा है। खरतरगच्छ की अनेक शाखाओ का उद्भव, विकास और अवसान भी इस प्रदेश में ही हुआ है। अन्य शाखाओ के कतिपय साहित्यकारो की रचनायें मेरे विचार से इसी राजस्थान प्रदेश मे ही हुई होगी। इसी अनुमान के आधार पर कतिपय लेखको और उनकी कृतियो का यहां निर्देश करना अप्रासगिक न होगा।

रुद्रपल्लीय शाखा :—

अभयदेवसूरि:—	जयन्त विजय महाकाव्य (1278)
सोमतिलकसूरि:—	शीलोपदेशमाला टीका (1392), षड्दर्शनसमुच्चय टीका (1392), कल्यानयन तीर्थकल्प
संघतिलकसूरि:—	सम्यक्त्वसप्तति टीका (1422), कुमारपालप्रबन्ध (1454), धूर्त्ताख्यान
दिवाकराचार्य —	दानोपदेशमाला (14वीं)
देवेन्द्रसूरि.—	दानोपदेशमाला टीका (1418), प्रश्नोत्तररत्नमाला टीका (1429), नवपद अभिनव प्रकरण टीका (1452)
वर्द्धमानसूरि:—	आचार दिनकर (1468)
श्रीतिलक:—	गौतमपृच्छा टीका (15वीं शती)
लक्ष्मीचन्द:—	संदेशरासक टीका (1465)

बेगड शाखा:—

जिनसमुद्रसूरि:— 18वी शती। कल्पान्तर्वाच्य, सारस्वत धातुपाठ, वैराग्यशतक टीका

पिप्पलक शाखा:—

जिनसागरसूरि:— 15वी शती। कर्पूर प्रकर टीका, सिद्धहेमशब्दानुशासन लघुवृत्ति

धर्मचन्द्र:— सिन्दूरप्रकर टीका (1513), स्वात्मसम्बोध, कर्पूरमञ्जरी सट्टक टीका

हर्षकुञ्जरोपाध्याय।— सुमित्र चरित्र (1535)

विनयसागरोपाध्याय:— अविदपद-शतार्थी, नलवर्णन महाकाव्य (अप्राप्त), प्रश्नप्रबोध काव्यालंकार स्वोपज्ञ टीकासह (1667), राक्षस काव्य टीका, राघव पाण्डवीय काव्य टीका, विदग्धमुखमण्डन टीका (1669)

उदयसागर:— 17वी शती। वाग्भटालंकार टीका

आद्यपक्षीय शाखा:—

दयारत्न:— न्यायरत्नावली (1626)

जिनचन्द्रसूरि:— 18वी शती। आचारांग सूत्र टीका

सुमतिहंस:— 18वी शती। कल्पसूत्र टीका

2. राजस्थान में रचित संस्कृत-साहित्य की सूची :—

लेखकों ने अपनी कृतियों के अन्त में रचना समय के साथ जहां रचना स्थान का विवरण किया है उन कृतियों की सूची विषयवार एवं अकारानुक्रम से प्रस्तुत कर रहा हूं। इस सूची के निर्माण में मैंने "जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास" जैन संस्कृत साहित्य नो इतिहास, जिनरत्न कोष और स्वसम्पादित "खरतरगच्छ साहित्य-सूची" आदि पुस्तकों का उपयोग किया है। विशेष शोध करने पर इस प्रकार की कई सूचियां तैयार की जा सकती हैं।

ग्रंथ का नाम	कर्त्ता नाम	गच्छ	रचना संवत् विक्रमी	रचना स्थान
आगम-टीकाएं —				
1. आचारांग सूत्र दीपिका	जिनहंससूरि	खरतर	1572	बीकानेर
2. उत्तराध्ययन सूत्र दीपिका	चारित्रचन्द्र	खरतर	1723	रिणी
3. उत्तराध्ययन सूत्र टीका	भावविजय	तपा.	1689	रोहिणीपुर (सिरोही)
4. उत्तराध्ययन सूत्र टीका	वादी हर्षनन्दन	खरतर.	1711	बीकानेर
5. उत्तराध्ययन सूत्र कथा संग्रह	पद्मसागर	तपा.	1657	पींपाड
6. कल्पसूत्र टीका कल्पलता	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1685	रिणी
7. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र टीका	महो. पुण्यसागर	खरतर.	1645	जैसलमेर
8. ज्ञाता धर्मकथा सूत्र टीका	कस्तूरचन्द्र गणि	खरतर.	1899	जयपुर
9. तंदुलवेयालिय पयन्ना अवचूरि (संक्षेप)	विशालसुन्दर	तपा.	1655	नागौर
10. नन्दीसूत्र मलयगिरी टीकोपरि टीका	जिनचारित्रसूरि	खरतर.	20वीं	बीकानेर
11. सूत्रकृतांगसूत्र दीपिका	साधुरंग	खरतर.	1599	[illegible]
सैद्धान्तिक प्रकरण :—				
12. चैत्यवन्दनक	जिनेश्वरसूरि प्र.	खरतर.	1080	जालौर
13. चैत्यवन्दन कुलक टीका	जिनकुशलसूरि	खरतर.	1383	बाड़मेर
14. जम्बूद्वीप समास टीका	विजयसिंहसूरि	राजगच्छ	1215	पाली
15. जीवविचार प्रकरण टीका	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1850	बीकानेर
16. प्रतिक्रमण हेतु	"	खरतर.	19वीं	बीकानेर
17. श्रावकधर्मविधि स्वोपज्ञ टीका	जिनेश्वरसूरि द्वि.	खरतर.	1317	जालौर
18. श्रावकधर्मविधि बृहद्वृत्ति	लक्ष्मीतिलकोपाध्याय	खरतर.	1317	जालौर
19. षट्स्थानक प्रकरण टीका	जिनपालोपाध्याय	खरतर.	1262	श्रीमालपुर
20. सम्बोधसप्ततिका टीका	गुणविनयोपाध्याय	खरतर.	1651	पाली

	ग्रंथ का नाम	कर्त्ता नाम	गच्छ	रचना संवत् विक्रमी	रचना स्थान
44.	विचारशतक	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1674	मेड़ता
45.	विधि कन्दली स्वोपज्ञ टीका सह	नयरत्न	खरतर.	1625	वीरमपुर
46.	विशेषशतक	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1672	मेड़ता
47.	श्रावकव्रत कुलक	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1683	बीकानेर
48.	श्रावक विधि प्रकाश	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1838	जैसलमेर
49	समाचारी शतक	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1672	मेड़ता
50.	साध्वी व्याख्यान निर्णय	जिनमणिसागरसूरि	खरतर.	2002	जयपुर

काव्य-साहित्य तथा टीकादि

	ग्रंथ का नाम	कर्त्ता नाम	गच्छ	रचना संवत् विक्रमी	रचना स्थान
51	अभय कुमार चरित्र	चन्द्रतिलकोपाध्याय	खरतर.	1312	बाडमर में प्रारम्भ
52	अष्टसप्तति (चित्रकूटीय वीर चैत्य प्रशस्ति)	जिनवल्लभसूरि	खरतर.	1163	चितौड़
53	आचार दिनकर लेखन प्रशस्ति	वादी हर्षनन्दन	खरतर.	1669	जैसलमेर
54	इन्दुदूत	विनयविजयोपाध्याय	तपा.	1718 लगभग	जोधपुर
55	उपकेश शब्दव्युत्पत्ति	श्रीवल्लभोपाध्याय	खरतर.	1655	बीकानेर
56	उपमिति भवप्रपञ्चकथा	सिद्धर्षि		1962	श्रीमाल
57.	कृष्णरुक्मिणी वेलि टीका	श्रीसार	खरतर.	1703	बीकानेर
58	खण्ड प्रशस्ति टीका	गुणविनयोपाध्याय	खरतर.	1641	फलवर्द्धि
59	गौतमीय महाकाव्य	रामविजयोपाध्याय	खरतर.	1807	जोधपुर
60	गौतमीय महाकाव्य टीका	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1855	जैसलमेर
61.	चित्रकूट वीर चैत्य प्रशस्ति	चारित्रसुन्दर गणि	तपा.	1495	चितौड़
62	दमयन्तीकथा चम्पू टीका	गुणविनयोपाध्याय	खरतर.	1646	सेरुणा
63	देवानन्द महाकाव्य	मेघविजयोपाध्याय	तपा.	1727	सादड़ी
64	नेमिदूत टीका	गुणविनयोपाध्याय	खरतर.	1644	बीकानेर
65	प्रद्युम्न लीला प्रकाश	शिवचन्द्रोपाध्याय	खरतर.	1879	जयपुर
66.	भक्तामर कथष्टिनशत काव्य टीका	महो पुण्यसागर	खरतर.	1640	बीकानेर

67.	फलवर्द्धिपार्श्वनाथ महाकाव्य	सहजकीर्ति	खरतर.	17 वीं	फलवर्द्धि
68.	भर्तृहरि शतक त्रय टीका	पाठक धनसार	उपकेश.	1525	जयपुर(?)
69.	भावप्रदीप	हेमरत्न		1638	बीकानेर
70.	मातृका श्लोकमाला	श्रीवल्लभोपाध्याय	खरतर.	1655	बीकानेर
71.	मूलराज-गुण-वर्णन समुद्रबन्धकाव्य	शिवचन्द्रोपाध्याय	खरतर.	1861	जैसलमेर
72	मेघदूत टीका	विनयचन्द्र	खरतर.	1694	राडद्रह
73.	रघुवंश टीका	गुणरत्न	खरतर.	1676	जोधपुर
74.	रघुवंश टीका	गुणविनयोपाध्याय	खरतर.	1646	बीकानेर
75.	रघुवंश टीका	सुमतिविजय	खरतर.	1698	बीकानेर
76.	लक्ष्मण विहार प्रशस्ति	कीर्तिराज (कीर्तिरत्नसूरि)	खरतर.	1473	जैसलमेर
77.	वस्तुपाल चरित्र काव्य	जिनहर्ष गणि	तपा.	1497	चितोड़
78.	विजय प्रशस्ति काव्य टीका	गुणविजय	तपा.	17 वीं	सिरोही
79.	विज्ञप्तिका	दयासिंह	खरतर.	1771 लगभग	रूपावास
80	विज्ञप्तिका	राजविजय	खरतर.	1727	बीकानेर
81.	विज्ञप्तिका	लावण्यविजय	तपा.	1709 लगभग	जोधपुर
82.	विज्ञप्तिपत्र	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	17 वीं	मेड़ता
83	विज्ञप्तिजल्पितपात्र पत्र	कमलसुन्दर	खरतर.	19 वीं	जयपुर
84	विज्ञान चन्द्रिका	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1859	जैसलमेर
85	विद्वत्प्रबोध	श्रीवल्लभोपाध्याय	खरतर.	17 वीं	बलभद्रपुर (बालोतरा)
86	वैराग्यशतक	पद्मानन्द श्रावक	खरतर.	12 वीं	नागौर
87	शान्तिनाथ जिनालय प्रशस्ति	जयसागरोपाध्याय	खरतर.	1473	जैसलमेर
88	श्रीधर चरित्र महाकाव्य	माणिक्यसुन्दरसूरि	अचलगच्छ	1463	देवकुलपाटक
89	षड्भाषामय पत्र	रामविजयोपाध्याय	खरतर.	1787	बेनातट (बिलाड़ा)
90	सम्भवजिनालय प्रशस्ति	सोमकुञ्जर	खरतर.	1497	जैसलमेर
91.	सूक्तिमुक्तावली	जिनवर्द्धमानसूरि	खरतर.	1739	उदयपुर
92	स्थूलिभद्र गणमाला काव्य	सूरचन्द्रोपाध्याय	खरतर.	1680	सागानेर
	कथा चरित्र :—				
93	अम्बड चरित्र	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1854	पाली

	ग्रंथ का नाम	कर्त्ता नाम	गच्छ	रचना संवत् विक्रमी	रचना स्थान
94.	कथाकोष स्वोपज्ञ टीका सह	जिनेश्वरसूरि प्र	खरतर.	1108	डीडवाणा
95.	कालिकाचार्य कथा	कनकसोम	खरतर	1632	जैसलमेर
96	कालिकाचार्य कथा	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1666	वीरमपुर
97	गुणवर्म चरित्र	माणिक्यसुन्दरसूरि	अचलगच्छ	1484	साचौर
98	धन्यशालिभद्र चरित्र	पूर्णभद्रगणि	खरतर.	1285	जैसलमेर
99	पञ्चकुमार कथा	लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय	खरतर.	1746	रिणी
100	परमहंससंबोध चरित्र	नयरंग	खरतर	1624	वाल्पनाकापुरी
101	पुण्यसार कथानक	विवेकसमुद्रोपाध्याय	खरतर.	1334	जैसलमेर
102	मदनरेखा चरित्र	दयासागर	खरतर	1619	जालौर
103	महावीर चरित्र टीका	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर	1684	लूणकरणसर
104.	मोहजीत चरित्र	क्षेमसागर	खरतर.	1969	कोटा
105	यशोधर चरित्र	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1839	जैसलमेर
106.	रत्नशेखर कथा	जिनहर्ष गणि	तपा.	15वीं	चित्तौड़
107	रामचरित्र	देवविजय गणि	तपा.	1652	श्रीमालपुर
108	शीलवती कथा	आज्ञासुन्दर	खरतर.	1562	काडिऊपुर
109.	श्रीपाल चरित्र टीका	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1869	बीकानेर
110	श्रीपाल चरित्र	जयकीर्ति	खरतर.	1868	जैसलमेर
111	समरादित्यकेवली चरित्र उत्तरार्द्ध	सुमतिवर्धन	खरतर.	1874	अजमेर

पर्व व्याख्यान —

	ग्रंथ का नाम	कर्त्ता नाम	गच्छ	रचना संवत् विक्रमी	रचना स्थान
112.	अष्टाह्निका व्याख्यान	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर	1860	जैसलमेर
113.	कार्तिकी पूर्णिमा व्याख्यान	जयसागर	खरतर.	1873	जैसलमेर
114	चातुर्मासिक व्याख्यान	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1835	पादौदी

115.	चातुर्मासिक व्याख्यान	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1665	अमरसर
116.	मौनत्रयोदशी व्याख्यान	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1860	बीकानेर
117.	मौनकादशी व्याख्यान	जीवराज	खरतर.	1847	बीकानेर
118	मौनकादशी व्याख्यान	शिवचन्द्रोपाध्याय	खरतर.	1884	जैसलमेर
119.	सौभाग्यपञ्चमी कथा	कनककुशल	तपा	1665	मेड़ता

स्तुति स्तोत्र —

120	चतुर्विंशतिजिन स्तुति पचाशिका	रामविजयापाध्याय	खरतर.	1814	बीकानेर
121	चैत्यवन्दन चतुर्विंशतिका स्वोपज्ञ टीका सह	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1856	नागपुर (नागौर)
122	जैसलमेर अष्टजिनालय स्तोत्र	कनक कुमार	खरतर	1716	जैसलमेर
123	जैसलमेर पार्श्वजिन स्तव	ज्ञानविमलोपाध्याय	खरतर.	17वी	जैसलमेर
124	जैसलमेर पार्श्वजिन स्तव	तरुणप्रभाचार्य	खरतर.	14वी	जैसलमेर
125.	जसलमेर पार्श्वजिन स्तुति	साधुसुन्दर	खरतर.	1683	जैसलमेर
126	जैसलमेर पार्श्वजिन स्तोत्र	गुणविनयोपाध्याय	खरतर.	17वी	जैसलमेर
127.	जैसलमेर पार्श्वजिन स्तोत्र	जिनभद्रसूरि	खरतर.	15वी	जैसलमेर
128.	जैसलमेर पार्श्वजिन स्तोत्र	मेरुसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	16वी	जैसलमेर
129.	तिमरी ग्रामस्थ पार्श्वजिन स्तव	जयसोमोपाध्याय	खरतर.	17वी	तिवरी
130.	पार्श्वजिन स्तुति (महादण्डकछन्द)	सहजकीर्ति उपाध्याय	खरतर.	1683	जैसलमेर
131	पार्श्वनाथ नवग्रहगर्भित स्तोत्रावचूरि	लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय	खरतर.	1738	बीकानेर
132.	फलवर्द्धिमण्डन पार्श्वजिन स्तव	जिनप्रभसूरि	खरतर.	14वी	फलवर्द्धि (मेडतारोड)
133.	फलवर्द्धिमण्डन पार्श्वजिन स्तव	जिनप्रभसूरि	खरतर.	14वी	"
134.	फलवर्द्धिमण्डन पार्श्वजिन स्तव	जिनप्रभसूरि	खरतर.	14वी	"
135.	फलवर्द्धिमण्डन पार्श्वजिन स्तव	जिनप्रभसूरि	खरतर.	14वी	"
136.	फलवर्द्धिमण्डन पार्श्वजिन स्तव	मेरुनन्दन	खरतर.	15वी	"
137.	फलवर्द्धिमण्डन पार्श्वजिन स्तोत्र	गुणविनयोपाध्याय	खरतर.	17वीं	"
138.	फलवर्द्धिमण्डन पार्श्वजिन स्तोत्र	जिनकुशलसूरि	खरतर.	14वीं	"

	ग्रंथ का नाम	कर्त्ता नाम	गच्छ	रचना संवत् विक्रमी	रचनास्थान
139.	फलवर्द्धिमण्डन पार्श्वजिन स्तोत्र	सूरचन्द्रोपाध्याय	खरतर.	17वी	फलवर्द्धि
140	मावारिवारण पादपूर्ति स्तोत्र स्वोपज्ञ टीका सह	पद्मराज गणि	खरतर	1659	जैसलमेर
141.	रुचितदण्डक स्तुति टीका	पद्मराज गणि	खरतर.	1644	जैसलमेर
142.	लघुशान्तिस्तव टीका	गुणविनयोपाध्याय	खरतर.	1659	बैनातट (बिलाड़ा)
143	विक्रमपुर आदीश्वर स्तोत्र	धर्मवर्द्धन	खरतर.	18वी	बीकानेर
144.	विशाललोचन स्तुति टीका	कनककुशल	तपा.	1653	सादडी
145	शतदलकमलमय पार्श्वजिन स्तव	सहजकीर्ति उपाध्याय	खरतर.	1675	लौद्रवा
146.	शाश्वतजिन स्तव टीका	शिवनिधानोपाध्याय	खरतर.	1652	सामर
147.	सत्यपुरमण्डन महावीरजिन स्तव	जिनवर्द्धनसूरि	खरतर.	15वी	साचौर
148.	सप्तस्मरण स्तोत्र टीका	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1695	जालौर
149.	स्वर्णगिरि पार्श्वजिन स्तोत्र	जिनरत्नसूरि प्र	खरतर.	14वी	जालौर
150.	हरिभक्तामर	कवीन्द्रसागरसूरि	खरतर.	21वी	मेडतारोड

न्याय-दर्शन.—

	ग्रंथ का नाम	कर्त्ता नाम	गच्छ	रचना संवत् विक्रमी	रचनास्थान
151.	तर्कसंग्रह टीका	कर्मचन्द्र	खरतर.	1824	नागौर
152.	प्रमाणवादार्थ	यशस्वत्सागर	तपा.	1759	संग्रामपुर (सांगानेर)
153.	प्रमालक्ष्म स्वोपज्ञ टीका सह	जिनेश्वरसूरि प्र.	खरतर.	1080	जालौर
154.	षट्दर्शन समुच्चय टीका	सोमतिलकसूरि	खरतर (रुद्र.)	1392	आदित्यवर्द्धनपुर
155.	सप्तपदार्थी टीका	भावप्रमोद	खरतर.	1730	बैनातट (बिलाड़ा)

व्याकरण:—

156.	पंचग्रन्थी (बुद्धिसागर) व्याकरण	बुद्धिसागरसूरि	खरतर.	1080	जालौर
157.	वेट्थपद विवेचन	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1684	बीकानेर
158.	सारस्वतानुवृत्यवबोधक	ज्ञानमेरु	खरतर.	1667	डीडवाणा
159.	सिद्धान्तरत्नावली व्याकरण		खरतर.	1897	जयपुर
160.	हैमलिंगानुशासन दुर्गपदप्रबोध टीका	श्रीवल्लभोपाध्याय	खरतर.	1661	जोधपुर

कोष:—

161.	अभिधानचिन्तामणि नाममाला टीका	श्रीवल्लभोपाध्याय	खरतर.	1667	जोधपुर
162.	अभिधानचिन्तामणि नाममाला टीका	रामविजयोपाध्याय	खरतर.	1822	कालाऊना
163.	शब्दप्रभेद टीका	ज्ञानविमलोपाध्याय	खरतर.	1654	बीकानेर
164.	हैमनाममाला शेषसंग्रह टीका	श्रीवल्लभोपाध्याय	खरतर.	1654	बीकानेर
165.	हैमनाममाला शिलोञ्छ टीका	श्रीवल्लभोपाध्याय	खरतर.	1654	नागौर

छन्दःशास्त्र:—

166.	वृत्तरत्नाकर टीका,	वाडव	अचलगच्छ	15वी	विराटनगर
167.	वृत्तरत्नाकर टीका	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1694	जालौर

अलंकार —

168.	काव्यप्रकाश नवमोल्लास टीका	क्षमामाणिक्य	खरतर.	1884	राजपुर
169.	पाण्डित्य दर्पण	उदयचन्द्र	खरतर.	1731	बीकानेर

	ग्रंथ का नाम	कर्त्ता नाम	गच्छ	रचना संवत् विक्रमी	रचना स्थान
170.	रसिकप्रिया सस्कृत टीका	समयमाणिक्य	खरतर.	1735	जालिपुर
171.	रसिकप्रिया टीका	कुशलधीर	खरतर.	1724	जोधपुर
172.	विदग्धमुखमण्डन टीका	शिवचन्द्र	खरतर.	1699	अलवर
	आयुर्वेद :—				
173.	पथ्यापथ्यनिर्णय	दीपचन्द्र	खरतर.	1792	जयपुर
	ज्योतिष:—				
	अकप्रस्तार	लाभवर्धन	खरतर.	1761	गूढा
174.	अवयदी शकुनावली	रायचन्द	खरतर.	1827	नागपुर (नागोर)
175.	जन्मप्रकाशिका ज्योतिष	कीर्तिवर्द्धन	खरतर.	17वी	मेड़ता
176.	ज्योतिषसार	हीरकलश	खरतर.	1721	नागोर
177.	दीक्षा प्रतिष्ठा शुद्धि	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1685	लूणकरणसर
178.	महादेवी दीपिका	धनराज	अचल	1692	पद्मावती पत्तन
179.	लघुजातक टीका	भक्तिलाभोपाध्याय	खरतर.	1571	बीकानेर
180.	बसन्तराज शकुन टीका	भानुचन्द्रगणि	तपा.	17वी	सिरोही
181.					

जैन मनीषियों द्वारा राजस्थान प्रदेश में सर्जित साहित्य-समृद्धि का इस लेख में यत्किंचित दिग्दर्शनमात्र हुआ है। विशेष शोध करने पर उनके नये लेखक और अनेकों नवीन कृतियां प्रकाश में आ सकती हैं। अत: विद्वानों का कर्त्तव्य है कि राजस्थान के लेखकों और उनके कृतित्व पर शोध कर नूतन जानकारी साहित्यिक जगत को दें।

परिशिष्ट

राजस्थान प्रदेश म उत्पन्न दो जैनेतर साहित्यकारों को भी इस प्रसंग पर भुलाया नहीं जा सकता। एक हैं–पं. नित्यानन्द जी शास्त्री और दूसरे है श्री गिरिधर शर्मा।

1. पं. नित्यानन्द शास्त्री:–प्रतिभा सम्पन्न आशुकवि और संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। जातित: दाधीच ब्राह्मण थे और थे जोधपुर के निवासी। शायद दो दशक पूर्व ही इनका स्वर्गवास जोधपुर में हुआ है। पचासों जैन मन्दिरमार्गी साधु-साध्वियों के ये शिक्षा गुरु रहे हैं। जैन न होते हुए भी जैन-दर्शन और जैनाचार्यों के प्रति इनकी प्रगाढ़ श्रद्धा थी। यही कारण है कि इनके बनाये हुए कुछ महाकाव्य जैन साधु-साध्वियों से संबन्धित प्राप्त होते हैं।

(क) पुण्यश्री चरित महाकाव्य:–यह अठारह सर्गों का काव्य है। इसमें खरतर-गच्छीया प्रवर्तिनी साध्वी श्री पुण्यश्रीजी का जीवन चरित्रगंफित है। इसकी हिन्दी भाषा में "तात्पर्यबोधिनी" नाम की टीका नित्यानन्दजी के बड़े भाई विद्याभूषण पं. भगवतीलाल शर्मा (प्रथमाध्यापक, वैदिक पाठशाला, जोधपुर) ने बनाई है। सं. 1967 की लिखित इसकी हस्तप्रति प्राप्त है।

(ख) श्री क्षमाकल्याण चरित:–इस काव्य में महोपाध्याय श्री क्षमाकल्याणजी के जीवन-चरित्र का आलेखन है।

मेरी स्मृति के अनुसार श्री नित्यानन्दजी ने जैनाचार्यों पर दो लघुकाव्य और एक चित्र काव्य की और भी रचना की थी।

2. पं. गिरिधर शर्मा–महामहोपाध्याय, साहित्यवाचस्पति, राजकवि श्री गिरिधर शर्मा झालरापाटन के निवासी थे। इनका भी स्वर्गवास इन दो दशकों के मध्य में ही हुआ है। संस्कृत और हिन्दी के प्रौढ़ विद्वान् थे। इनकी दो जैन रचनायें प्राप्त हैं:—

भक्तामर स्तोत्र पादपूर्ति
कल्याणमन्दिर स्तोत्र पादपूर्ति

यह दोनों ही पादपूर्तियां अन्तिम चरणात्मक न होकर चारों ही पाद पर की गई हैं।

संस्कृत साहित्य एवं साहित्यकार 3.

—मुनि गुलाबचन्द्र निर्मोही

जैन परम्परा में भी संस्कृत साहित्य का प्राचुर्य है। जैन आगमों तथा तत्सम ग्रन्थों की भाषा मूलत: प्राकृत, अर्धमागधी अथवा शौरसेनी रही है। आगमोत्तर साहित्य की अधिकांश प्राचीन रचनाए भी प्राकृत में हुई है किन्तु जनरुचि को देखते हुए जैनाचार्यों ने संस्कृत को भी प्राकृत के समकक्ष प्रतिष्ठा प्रदान की। जिस समय वैदिक साहित्य और संस्कृति का व्यापक प्रभाव समाज में बढने लगा तथा शास्त्रार्थ और वाद-विवाद के अनेक उप-क्रम होने लगे तब जैन आचार्यों ने भी संस्कृत को अधिक महत्व देना प्रारम्भ किया। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर और हरिभद्र के ग्रन्थ इसके परिणाम कहे जा सकते हैं। यह समय ईसा की दूसरी शताब्दी से आठवी शताब्दी तक का है। आठवी शताब्दी के पश्चात् जैन संस्कृत साहित्य की रचना के मूल में यहां की राजनैतिक, सामाजिक एव धार्मिक स्थिति ने अधिक काम किया है। जैन आचार्यों को सस्कृत साहित्य के निर्माण में जिन कारणों से प्रेरणा प्राप्त हुई, उनमें से कुछ इस प्रकार है:—

1. जैन धर्म के मौलिक तत्वों का प्रसार
2. आप्त पुरुषों तथा धार्मिक महापुरुषों की गरिमा का बखान
3. प्रभावी राजा, मन्त्री या अनुयायियो का अनुरोध

उक्त कारणों के अतिरिक्त एक अन्य कारण यह भी हो सकता है कि अनेक जैन आचार्य मूलत: ब्राह्मण थे। अत: बचपन से ही संस्कृत उन्हें विरासत के रूप में प्राप्त हुई थी। उस विरासत से अपनी प्रतिभा को और अधिक विकसित करने के लिए साहित्य सर्जन का माध्यम उन्होंने सस्कृत को चुना। जैन साहित्य का प्रवाह ईसा की दूसरी शताब्दी से प्रारम्भ हुआ और चौदहवी शताब्दी तक निरन्तर चलता रहा। पन्द्रहवीं और सोलहवी शताब्दी के संस्कृत ग्रन्थो मे रचना स्थल का उल्लेख प्राप्त नही होता। सतरहवी और अठारवीं शताब्दी म संस्कृत में प्रचुर साहित्य लिखा गया। उन्नीसवी शताब्दी मे जैन विद्वानों द्वारा लिखित संस्कृत साहित्य बहुत कम प्राप्त है। तेरापथ का संस्कृत साहित्य मख्यत: नौ भागों में विभक्त किया जा सकता है:—

1 व्याकरण, 2 दर्शन और न्याय, 3. योग, 4. महाकाव्य (गद्य-पद्य) 5. खण्ड काव्य (गद्य-पद्य), 6 प्रकीर्णक काव्य, 7. संगीत काव्य, 8. स्तोत्र काव्य, 9 नीति काव्य।

व्याकरण

भिक्षु शब्दानुशासन की रचना राजस्थान के थली प्रदेश म वि. सं. 1980 मे 1988 के बीच हुई। तेरापथ के आठवें आचार्य श्री कालूगणी का व्याकरण विषयक अध्ययन बहुत विशद था। मुनि चौथमल जी का अध्ययन अधिकांशत: कालूगणी के सान्निध्य में सम्पन्न हुआ। उन्होंने आगम, साहित्य, न्याय, दर्शन, व्याकरण, कोश आदि विविध विषयों का गहन अध्ययन किया। व्याकरण उनका सर्वप्रिय विषय था। उन्होने पाणिनीय, जैनेन्द्र, शाकटायन, हेमशब्दानुशासन, सारस्वत, सिद्धान्त चन्द्रिका, मुग्धबोध, सारकौमुदी आदि अनेक व्याकरण ग्रन्थों का गंभीर मनन किया। आचार्य श्री कालूगणी की भावना थी कि एक समयोपयोगी सरल और सुबोध संस्कृत व्याकरण तैयार हो ताकि सस्कृत के विद्यार्थियों के लिय सुविधा हो सके। क्योंकि उस समय उपलब्ध व्याकरणों में सारस्वत चन्द्रिका बहुत अधिक संक्षिप्त थी। सिद्धान्त-कौमुदी वार्तिक फक्किका आदि की अधिकता के कारण जटिल थी। हेमशब्दानुशासन की रचना-पद्धति कठिन थी। इस प्रकार एक भी ऐसा व्याकरण ग्रन्थ उपलब्ध

नहीं था जिसे सहज और सुगम माना जा सके। मुनि चौथमल जी ने आचार्य श्री कालूगणी की भावना को साकाररूप दिया और आठ वर्षों के अनवरत परिश्रम से तेरापंथ के आद्य प्रवर्तक आचार्य भिक्षु के नाम से क्लिष्टता, विस्तार, दुरन्वय आदि से रहित एक सर्वांग सुन्दर व्याकरण तैयार किया। इसमें उणादिपाठ, धातुपाठ, न्यायदर्पण, लिंगानुशासन आदि का भी सुन्दर समावेश है। इस महान कार्य में सोनामाई (अलीगढ़) निवासी आशुकविरत्न पं. रघुनन्दन शर्मा आयुर्वेदाचार्य का भी मूल्यवान सहयोग रहा।

दर्शन और न्याय

जैन तत्व दर्शन, जीव विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, आचार शास्त्र, मोक्ष मार्ग, प्रमाण, नय, निक्षेप, सप्तभंगी, स्यादवाद आदि विषयों के निरूपण के लिए तीसरी शताब्दी में आचार्य उमास्वाति ने सर्वप्रथम तत्वार्थ सूत्र की रचना की। इसे 'मोक्षशास्त्र' भी कहा जाता है। यह ग्रन्थ दिगम्बर और श्वेताम्बरों को समान रूप से मान्य है। इस पर सिद्धसेन, हरिभद्र, पूज्यपाद, अकलंक, विद्यानन्द, उपाध्याय यशोविजय आदि उच्चकोटि के जैन विद्वानों ने टीकाएं लिखी हैं। जैन दर्शन साहित्य का विकास तत्वार्थ सूत्र को केन्द्रीभूत मानकर ही हुआ है।

तत्वार्थ सूत्र की गहनता को प्राप्त करना हर एक के लिए संभव नहीं है। आचार्य श्री तुलसी ने दर्शन विषयक "जैन सिद्धान्त दीपिका" और न्याय विषयक "भिक्षु न्याय कर्णिका" की रचना करके जैन दर्शन और न्याय के अध्येताओं के लिए सरल, सुबोध और मूल्यवान सामग्री प्रस्तुत की है। मुनि नथमल जी ने हिन्दी भाषा में उसकी विस्तृत व्याख्या लिखी है। "जैन दर्शन: मनन और मीमांसा" के नाम से यह स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में भी प्रकाशित है। इससे जैन दर्शन के अध्ययनशील विद्यार्थी बहुत लाभान्वित हुए हैं।

जैन सिद्धान्त दीपिका की रचना वि. सं. 2002 में वैशाख शुक्ला 13 के दिन चूरू (राजस्थान) में सम्पन्न हुई। यह नौ प्रकाशों में रचित है। पहले प्रकाश में द्रव्य, गुण और पर्याय का निरूपण है। दूसरे प्रकाश में जीव विज्ञान का निरूपण है। तीसरे प्रकाश में जीव और अजीव के भेदों का निरूपण है। चौथे प्रकाश में बन्ध पुण्य और आस्रव के स्वरूप का निरूपण है। पांचवें प्रकाश में संवर, निर्जरा और मोक्ष के स्वरूप का निरूपण है। छठे प्रकाश में मोक्ष मार्ग का विश्लेषण है। सातवें प्रकाश में जीवस्थान (गुणस्थान) का निरूपण है। आठवें प्रकाश में देव, गुरू और धर्म का निरूपण है। नौवें प्रकाश में निक्षेप का निरूपण है। इसकी कुल सूत्र संख्या 266 है। इसके सम्पादक और हिन्दी भाषा में अनुवादक मुनि नथमल जी हैं। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने समान रूप से इसकी उपयोगिता स्वीकार की है। एक फ्रेंच महिला ने जैन सिद्धान्त दीपिका पर पी एच डी. भी किया है।

भिक्षु न्याय कर्णिका की रचना वि. सं. 2002 में भाद्र शुक्ला ९ के दिन डूंगरगढ़ (राजस्थान) में सम्पन्न हुई है। यह सात विभागों में ग्रथित है। पहले विभाग में लक्षण और प्रमाण के स्वरूप का निरूपण है। दूसरे विभाग में प्रत्यक्ष के स्वरूप का निरूपण है। तीसरे विभाग में मति के स्वरूप का निरूपण है। चौथे विभाग में श्रुत के स्वरूप का निरूपण है। पांचवें विभाग में नय के स्वरूप का निरूपण है। छठे विभाग में प्रमेय और प्रमिति के स्वरूप का निरूपण है। सातवें विभाग में प्रमाता के स्वरूप का निरूपण है। इसकी कुलसूत्र संख्या 137 है। इसके सम्पादक मुनि नथमल जी और हिन्दी भाषा में अनुवादक साध्वी प्रमुखा कनकप्रभाजी व साध्वी मंजुलाजी हैं।

इनके अतिरिक्त मुनि नथमल जी (बागोर) ने न्याय और दर्शन के क्षेत्र में "युक्तिवाद और अन्यापदेश" नामक ग्रन्थ का निर्माण किया है। तथा मुनि नथमल जी ने 'न्याय पंचाशति' की रचना की है। किन्तु ये सब अप्रकाशित हैं।

योग:—

तत्वदर्शन की तरह साधना पद्धति के क्षेत्र में जैन आचार्यों ने काफी गहराई का स्पर्श किया है। प्रत्येक धर्म का अपना स्वतन्त्र साध्य होता है और उसकी सिद्धि के लिए उसी के अनुकूल साधना पद्धति होती है। महर्षि पतंजलि ने सांख्यदर्शन की साधना पद्धति को व्यवस्थित रूप दिया और "योग" नाम से एक स्वतन्त्र साधना पद्धति विकसित हो गई। अब हर साधना पद्धति योग नाम से अभिहित होती है। इसी प्रकार जैन साधना पद्धति को जैन "योग और बौद्ध साधना पद्धति को बौद्ध योग कहा जाने लगा। जैन साधना पद्धति की स्वतन्त्र संज्ञा भी है जिसे मोक्ष मार्ग कहा जाता है।

जैन योग पर सम्यग प्रकाश डालने वाले अनेक ग्रन्थ जैन आचार्यों द्वारा लिखे जा चुके हैं, जिनमें समाधितन्त्र, योग-दृष्टि-समुच्चय, योगबिन्दु, योगशास्त्र, योग विद्या, अध्यात्मरहस्य ज्ञानार्णव, योग चिन्तामणि, योग दीपिका आदि प्रमुख हैं।

आचार्य श्री तुलसी द्वारा 'मनोनशासनम्' की रचना वि. सं. 2018 में धवल समारोह के अवसर पर हुई थी। इसके सात प्रकरण हैं। इसका रचनाक्रम सूत्र रूप में है। इसके पहले प्रकरण में योग का विस्तृत निरूपण है। दूसरे प्रकरण में मन की अवस्थाओं का निरूपण है। तीसरे प्रकरण में ध्यान, आसन, भावना आदि का प्रतिपादन है। चौथे प्रकरण में ध्यान के प्रकार, धारणा, विपश्यना, लेश्या आदि का विवेचन है। पांचवें प्रकरण में वायु के प्रकार और उनकी विजय का निरूपण है। छठे प्रकरण में महाव्रत, श्रमणधर्म, संकल्प, जय आदि का निरूपण है। सातवें प्रकरण में जिनकल्प की पांच भावनाओं-प्रतिमाओं का प्रतिपादन है। इसकी कुल सूत्र संख्या 170 है। इसके हिन्दी अनुवाद और व्याख्याता मुनि नथमल जी हैं। व्याख्या से जैन साधारण के लिए ग्रन्थ की उपयोगिता बढ़ गई है।

मनोनशासनम् के उपरान्त भी योग प्रक्रिया को विश्लेषण पूर्वक समझाने के लिए एक और ग्रन्थ की आवश्यकता अनुभव की गई। उसकी पूर्ति सम्बोधि द्वारा की गई। सम्बोधि शब्द सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यगचारित्र को अपने में समेटे हुए है। सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान अज्ञान बना रहता है और चारित्र के अभाव में ज्ञान और दर्शन निष्क्रिय रह जाते है। आत्मदर्शन के लिये तीनों का समान और अपरिहार्य महत्व है। इस दृष्टि से ही इसका नाम सम्बोधि रखा गया है।

सम्बोधि मुनि नथमल जी की श्लोकबद्ध कृति है। इसमें आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग भगवति, ज्ञातधर्मकथा, उपासकदशा, प्रश्न व्याकरण, दशाश्रुत स्कन्ध आदि आगमों के सार संगृहीत हैं। इसकी शैली गीता के समान है। गीता के तत्वदर्शन में ईश्वरार्पण का जो माहात्म्य है, वही माहात्म्य जैन दर्शन में आत्मार्पण का है। जैन दर्शन के अनुसार आत्मा ही परमात्मा या ईश्वर है। गीता का अर्जुन कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमि में कायर होता है तो सम्बोधि का मेघकुमार साधना की समरभूमि में कायर होता है। गीता के संगायक कृष्ण हैं तो सम्बोधि के संगायक महावीर हैं। कृष्ण का वाक् संबल प्राप्त कर अर्जुन का पुरुषार्थ जाग उठता है तो महावीर की वाक् प्रेरणा से मेघकुमार की मूर्छित चेतना जागृत हो जाती है। मेघकुमार ने जो प्रकाश पाया उसी का व्यापक दिग्दर्शन सम्बोधि में है।

सम्बोधि का हिन्दी अनुवाद मुनि मिठालाल जी ने किया है और इसकी विशद व्याख्या मुनि शुभकरण जी और मुनि दुलहराज जी ने की है। इसका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है। इसके सोलह अध्याय है। उनमें से पहले आठ अध्यायों की रचना वि. सं. 2012 में महाराष्ट्र में तथा शेष आठ अध्यायों की रचना वि. सं. 2016 में कलकत्ता में हुई। इसकी कुल श्लोक संख्या 702 है।

महाकाव्य (गद्य-पद्य):

जैन मनीषियो न संस्कृत भाषा मे काव्य रचना के द्वारा अपनी प्रतिभा का पर्याप्त चमत्कार प्रस्तुत किया है। काव्य के लिए संस्कृत भाषा का प्रयोग करने वाले जैन विद्वानो में आचार्य समन्तभद्र का नाम अग्रणी माना जाता है। उन्होने अनेक स्तोत्र काव्यो की रचना की। यह क्रम विकसित होता हुआ क्रमशः सातवीं शताब्दी तक चरित काव्य और महाकाव्य तक पहुच गया है। संस्कृत भाषा के जैन महाकाव्यो में वरागचरित, चन्द्रप्रभचरित, वर्धमानचरित, पार्श्वनाथचरित, प्रद्युम्नचरित, शान्तिनाथचरित, धर्मशर्माभ्युदय, नेमि निर्वाण काव्य, पद्मानन्द महाकाव्य, भरतबाहुबलि महाकाव्य, जैन कुमार सभव, यशोधर चरित, पाडवचरित, त्रिषष्टि-शलाकापुरुष चरित आदि की गणना प्रमुख रूप से की जा सकती है।

महाकाव्यो की यह परम्परा बीसवी शताब्दी मे और अधिक वृद्धिगत हुई। तेरापंथ धर्म संघ में इस दिशा मे एक नया उन्मेष आया और विगत दो दशको मे जो काव्य रचना हुई उसमें तीन महाकाव्यो के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है:—

(1) अभिनिष्क्रमणम्,
(2) श्री तुलसी महाकाव्यम्,
(3) श्री भिक्षु महाकाव्यम्

1. अभिनिष्क्रमणम्:—चन्दन मुनि द्वारा रचित आचार्य भिक्षु के जीवन का एक महत्व पूर्ण घटना वृत्त है। संस्कृत महाकाव्य के कुछ स्वतन्त्र मापदड है। प्रस्तुत कृति मे उनका सम्यग् निर्वहन हुआ है। इसकी शैली गद्यात्मक है, रचना मे प्रौढता है और शब्दो मे ओज है। यत्र-तत्र वाक्यो का विस्तृत, सालकार तथा उक्ति वैचित्र्य पूर्ण कलेवर संस्कृत के प्राचीन गद्य-पद्य लेखको की कृतियो का स्मरण करा देता है। विद्वानो की दृष्टि मे प्रस्तुत काव्य मे भाव प्रवणता जहा चरम उत्कर्ष पर पहुची है, वहा विचार गरिमा भी सागर की अतल गहराइयो से जा मिली है। इसमे तत्व, प्रकृति, ऋतु, मनोभाव आदि का मार्मिक विवेचन हुआ है। स्थान-स्थान पर लोक व्यवहार के उपयोगी तथ्यो का भी विश्लेषण हुआ है। एक स्थान पर काव्यकार ने लिखा है—
हन्त! अनवसरं अमृतमपि विषायते, विषमप्यवसर-प्रयुक्त-ममृतमतिरिच्यते। एकमेव वस्तु महद्धस्तोपढौकितं सन्महार्घ्यत्वमालिगति, बहुमूल्यरत्नमपि कालटनेयकरक्रोडस्थ शतमूल्यमपि नार्हति। अवसरे प्रयुक्तमेकमपि सूक्तं स्वातेः शुक्तिगत पानीयमिव मौक्तिकतामाराधयत् सेवते सार्वभौमानां मञ्जुलमौलिकुमुटानि।

इस काव्य के सत्रह उच्छ्वास है। इसकी रचना तेरापंथ द्विशताब्दी के अवसर पर वि. सं. 2017 मे कांकरोली (राजस्थान) मे हुई। इसका हिन्दी भाषा मे अनुवाद मुनि मोहन लाल जी "शार्दूल" ने किया है तथा भूमिका पेनसिलवानिया विश्वविद्यालय (अमरीका) के संस्कृत प्राध्यापक डा. लूडो रोचर ने लिखी है।

2. श्री तुलसी महाकाव्यम्:—प. रघुनन्दन शर्मा आयुर्वेदाचार्य की काव्य-कृति है। इसमे आचार्य श्री तुलसी के जीवन-दर्शन का समग्रता से विश्लेषण हुआ है। तेरापथ के सघाधिनायक के रूप मे आचार्य श्री के यशस्वी जीवन के पच्चीस वर्षों की परिसम्पन्नता पर श्रद्धालुओ ने अपना शक्तिभर अर्घ्य चढाया। पडितजी आचार्य के श्रद्धालु भक्त थे अतः प्रस्तुत कृति उसी अर्घ्य प्रस्तुतीकरण का एक अग है।

पंडितजी मे कवित्व की अद्भुत क्षमता थी। कविता उनकी सहचरी के रूप मे नही, अपितु अनुचरी के रूप मे प्रकट हुई—इस प्रतिपत्ति मे विसगति का लेश भी नही है। अत्यन्त ऋजु और अकृत्रिम व्यक्तित्व के धनी पडितजी मे एक छलाग में ही महाकाव्य के गगन-स्पर्शी प्रासाद पर

आरूढ़ होने की क्षमता थी। पंडितजी प्रच्छन्न कवि थे, वे ख्याति और प्रसिद्धि से विरत थे। अतः उनकी विशेषताएं प्रच्छन्न ही रही। प्रस्तुत काव्य में रस, अलंकार, भाव, भाषा आदि सभी दृष्टियों से पंडितजी के वैदग्ध्य की स्पष्ट झलक है। उन्होंने आधुनिक शब्दों, रूपकों और उपमाओं का प्रयोग करके संस्कृत भाषा को पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न किया है। पंडित जी की शब्द-सरचना प्रसाद गुण सवलित है। पंडितजी जन्मना आशु कवि थे। अतः उन्हें सहज और सानुप्रास काव्य रचना का अभ्यास था। गंभीर और गूढ़ भावों को सरस और सरल पदावली में रखने की उनकी अद्भुत क्षमता थी। उनकी यह विशेषता इस महाकाव्य में यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती है। पंडितजी की कल्पना-प्रसू संगीति का सहारा पाकर वस्तु सत्य वास्तव में ही वस्तुसत्य के रूप में उभरा है।

प्रस्तुत महाकाव्य के पच्चीस सर्ग हैं जिनकी रचना वि. स. 2018 में धवल समारोह के अवसर पर हुई। इनमें स्थान-स्थान पर कवि के उत्कृष्ट शब्द-शिल्पित्व का चित्र प्रस्तुत होता है। आचार्यश्री का जन्म, जो जागतिक अध्यात्म अभ्युदय की एक उल्लेखनीय घटना थी, का बहुत ही भावपूर्ण शब्दो मे चित्रण किया गया है। इसके अध्ययन से जीवन-दर्शन, तत्वदर्शन, इतिहास एव परम्पराओ का समीचीन बोध होता है। इसका हिन्दी अनुवाद छगनलाल शास्त्री ने किया है।

3. श्री भिक्षु महाकाव्यः—मुनि नथमलजी (बागोर) द्वारा रचित तेरापथ के आद्य प्रवर्तक आचार्य भिक्षु के जीवन-दर्शन पर प्रकाश डालने वाला चरित काव्य है। इसकी शैली पद्यात्मक है। काव्यकार स्वय प्रौढ संस्कृतज्ञ होने के कारण इसकी शब्द-सकलना भी प्रौढ और भावपूर्ण है। राजस्थान की अरावली की घाटियो का वर्णन इसमे बहुत सजीव और प्राणवान है। महाकाव्य के लक्षणो से यह परिपूर्ण है। इसके 18 सर्ग है। इसकी यथेष्ट प्रसिद्धि और पठन-पाठन न होने का मुख्य कारण यही है कि यह काव्य अब तक अप्रकाशित है। इसकी रचना तेरापथ द्विशताब्दी के अवसर पर वि. स. 2017 मे हुई।

खण्ड काव्य (गद्य-पद्य):

महाकाव्यो की परम्परा के समानान्तर खण्ड काव्यो की परम्परा भी बहुत प्राचीन रही है। गद्य और पद्य—दोनो ही शैलियो मे इनकी रचना हुई है। जैन आचार्यों और विद्वानों ने भी इस परम्परा को पर्याप्त विकसित किया है। विगत दशको में तेरापथ धर्म-सघ में भी इस काव्य परम्परा का इतिहास बहुत वर्धमान रहा है। प्रभव-प्रबोध काव्य, आर्जुन-मालाकारम्, अश्रुवीणा, रत्नपालचरित्रम्, प्राकृत-काश्मीरम् आदि काव्य इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

1. प्रभवप्रबोधकाव्यम्.—चन्दनमुनि द्वारा रचित आर्य जम्बू के जीवन चरित से सम्बन्धित एक विशेष घटना क्रम को प्रकाशित करता है। प्रभव राजकुमार भी था और चोरो का सरदार भी। उसने जम्बूकुमार की त्यागवृत्ति से प्रभावित होकर प्रव्रज्या स्वीकार की। अर्थ और काम की मनोवृत्ति को उद्वेलित करने वाला यह एक रोचक प्रसग है। कथा वस्तु की रोचकता को काव्यकार के भाव-प्रधान रचना सौष्ठव ने और अधिक निखार दिया है। इस गद्य काव्य के नौ प्रकाश है। इसकी सम्पूर्ण रचना वि. स. 2008 के ज्येष्ठ मास मे गुजरात प्रान्त के जामनगर शहर मे हुई। मुनि दुलहराज जी ने इसका हिन्दी भाषा मे अनुवाद किया है। इसकी भाषा जितनी प्रौढ और अस्खलित है, अनुवाद भी उतना ही अस्खलित और प्राजल है।

2. आर्जुनमालाकारम्—चन्दनमुनि द्वारा रचित गद्य काव्य है। जैन कथा साहित्य मे अर्जुनमाली एक कथानायक के रूप में बहुत प्रसिद्ध है। इसकी भाषा में प्रवाह, शैली में प्रसाद और शब्दों में सुकुमारता है। स्वतन्त्र सरिता की तरह इसकी वाग् धारा अस्खलित और अप्रतिबद्ध है। साहित्यिक दृष्टि से यह रचना अत्यन्त प्रशान्त कही जा सकती है। इसकी सरल

और सुबोध शब्दावली से संस्कृत के विद्यार्थी बहुत लाभान्वित हो सकते हैं । इसके छोटे वाक्यों में भी पर्याप्त भाव-गांभीर्य है ।

प्रस्तुत काव्य सात समुच्छ्वासों में रचित है । इसके हिन्दी अनुवादक छोगमल चोपड़ा हैं । इसकी रचना वि. सं. 2005 के ज्येष्ठ मास में हुई है ।

3. अश्रुवीणा:—मुनि नथमलजी द्वारा मन्दाक्रान्ता छन्द में रचित सौ श्लोकों का खण्ड काव्य है । यह काव्य भर्तृहरि आदि विश्रुत कवियों द्वारा रचित शतक काव्यों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम है । इस काव्य में एक ओर जहां शब्दों का वैभव है, वहां दूसरी ओर अर्थ की गम्भीरता है । इसमें शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों एक दूसरे से बढ़े-चढ़े हैं । काव्यानुरागियों, तत्त्वजिज्ञासुओं तथा धर्म के रहस्य को प्राप्त करने की आकांक्षा वालों के लिये यह समान रूप से समादरणीय है । इस काव्य की कथावस्तु जैन आगमों से ग्रहण की गई है । भगवान् महावीर ने तेरह बातों का घोर अभिग्रह धारण किया था । वे घर-घर जाकर भी भिक्षा नहीं ले रहे थे क्योंकि अभिग्रह पूर्ण नहीं हो रहा था । उधर चन्दनबाला राजा की पुत्री होकर भी अनेक कष्टपूर्ण स्थितियों में से गुजर रही थी । उसका शिर मंडित था । हाथों-पैरों में जंजीरें थी । तीन दिनों की भूखी थी । छाज के कोने में उबले उड़द थे । इस प्रकार अभिग्रह की अन्य सारी बातें तो मिल गईं किन्तु उसकी आंखों में आंसू नहीं थे । महावीर इस एक बात की कमी देखकर वापस मुड़ गए । चन्दनबाला का हृदय दुःख से भर गया । उसकी आंखों में अश्रुधार बह चली । उसने अपने अश्रु-प्रवाह को दूत बनाकर भगवान् को अपना सन्देश भेजा । भगवान् वापस लौटे और उसके हाथ से उड़द ग्रहण किए । अश्रुप्रवाह के माध्यम से चन्दनबाला का सन्देश ही प्रस्तुत काव्य का प्रतिपाद्य है । इसकी रचना वि. स. 2016 में कलकत्ता प्रवास के अवसर पर हुई । इसका हिन्दी अनुवाद मुनि मिट्ठालाल जी द्वारा किया गया है ।

4. रत्नपाल चरित्रम्—जैन पौराणिक आख्यान पर मुनि नथमल जी द्वारा रचित पद्यमय खण्ड काव्य है । पांच सर्गों में निबद्ध प्रस्तुत काव्य में कथानक की अपेक्षा कल्पना अधिक है ।

सहज शब्द-विलास के साथ भाव-प्रवणता को लिये प्रस्तुत काव्य संस्कृत-भारती को गरिमान्वित करने वाला है । इसकी सम्पूर्ति वि. सं. 2002 में श्रावण शुक्ला 5 के दिन डूंगरगढ़ में हुई थी । इसका हिन्दी अनुवाद मुनि दुलहराज जी द्वारा किया गया है ।

खण्ड-काव्यों की परम्परा में उक्त काव्यों के संक्षिप्त परिचय के अनन्तर और भी अनेक काव्य हैं जिनका परिचय अवशिष्ट रह जाता है । संस्कृत विद्यार्थियों के लिये उनके अध्ययन का [illegible] महत्त्व है अतः उनमें से कुछ एक का नामोल्लेख करना आवश्यक और प्रासंगिक होगा ।

1. [illegible] — मुनि डूंगरमलजी
2. [illegible] — मुनि बुद्धमल्लजी
3. [illegible] सुधा — मुनि नगराजजी
4. भाव-भास्कर काव्यम् — मुनि धनराजजी 'द्वितीय'
5. वंकचूल चरित्रम — मुनि कन्हैयालालजी
6. मयूर काव्यम् — मुनि मोहनलालजी 'शार्दूल'

ज्योति स्फुलिंगा:—चन्दन मुनि द्वारा रचित भाव-प्रधान गद्य कृति है । कृतिकार का भावोद्वेलन वाणी का परिधान प्राप्त कर 56 विषयों के माध्यम से वाङ्मय के प्रांगण में उपस्थित हुआ है । सहज हृदय से निःसृत निष्पक्षभाव राशि में अकृत्रिम लावण्य के दर्शन होते हैं ।

इस भावोद्वलन में मात्र भावनात्मक उल्लास ही नहीं अपितु सत्कर्म और सदाचरण की पगडंडियां भी अंकित हैं । इसकी रचना वि. सं. 2020 मे बम्बई प्रवास में हुई थी ।

2. तुला-अतुला :—मुनि नथमलजी द्वारा समय-समय पर आशुकवित्व, समस्यापूर्ति तथा अन्य प्रकार के रचित स्फुट श्लोको का सग्रह है । प्रस्तुत कृति के पाच विभाग हैं । इसका हिन्दी भाषा में अनुवाद मुनि दुलहराज जी ने किया है ।

मुकुलम् :—मुनि नथमलजी द्वारा रचित संस्कृत के लघु निबन्धों का संकलन है । इसमें प्रांजल और प्रवाहपूर्ण भाषा में छात्रोपयोगी 49 गद्यों का संकलन है । इसका विषय-निर्वाचन बड़ी गहराई से किया गया है । इसमें वर्णनात्मक और भावात्मक विषयों के साथ सुवेदनात्मक विषयों का भी सन्धान किया गया है ।

प्रस्तुत कृति ज्ञान और अनुभव दोनों के विकास में सहयोगी बन सकती है । इसकी रचना वि. सं. 2004 में पडिहारा (राजस्थान) में हुई थी । मुनि दुलहराजजी ने इसका हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है ।

उत्तिष्ठत ! जाग्रत ! :—मुनि बुद्धमल जी द्वारा लिखित 71 लघु निबन्धों का संग्रह है । प्रस्तुत निबन्धों में दृढ निश्चय, अटूट आत्म-विश्वास, गहरी स्पन्दनशीलता और अप्रतिम उदारता की भावनाएं प्रस्फुटित हुई हैं । साहित्य में हृदय की आवाज होती है । अत. वह सीधा हृदय का स्पर्श करता है । कुछ मानसिक कुंठाएं इतनी गहरी होती है कि जिन्हें तोडना हर एक के लिये सहज नही होता किन्तु साहित्य के माध्यम से वे अनायास ही टूट जाती हैं । प्रस्तुत कृति मानसिक कुंठाओं के घेरे को तोड़ कर आशा की आलोक रश्मि प्रदान करने में समर्थ बनी है।

इसकी रचना वि. सं. 2006-7 के बीच की है। इसका हिन्दी भाषा में अनुवाद मुनि मोहनलाल जी 'शार्दूल' ने किया है। दिल्ली से प्रकाशित होने वाले 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में ये निबध क्रमशः प्रकाशित हो चुके हैं । राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा यह कृति स्नातकीय (बी. ए. आनर्स) पाठ्यक्रम में स्वीकृत की गई है ।

संस्कृत भाषा में महाकवि जयदेव का 'गीतगोविन्द' तथा जैन-परम्परा में उपाध्याय विनयविजय जी का 'शान्त-सुधारस' प्रसिद्ध संगीत-काव्य है । संगीत काव्यो की परम्परा को तेरापंथ के साधु-साध्वियो ने अस्खलित रखा है । चन्दन मुनि का 'संवरसुधा' काव्य संगीत काव्यों की परम्परा में एक उत्कृष्ट कड़ी है । संवरतत्व पर आधारित विभिन्न लयों में संस्कृत भाषा की 20 गीतिकाएं है । इसकी रचना वि. सं. 2018 में दीपावली के दिन बम्बई में सम्पन्न हुई । मुनि मिटठालालजी ने इस का हिन्दी अनुवाद किया है। अन्य अनेक संगीतकाव्य जो अब तक अप्रकाशित है, वे भी भाव-प्रधान और रस-पूरित हैं । उनका उल्लेख भी यहां प्रासंगिक और उपयोगी होगा :—

1 पंचतीर्थी	चन्दनमुनि
2 गीतिसदोह:	मुनि दुलीचन्द जी 'दिनकर'
3 संस्कृत गीतिमाला	साध्वी संघमित्राजी

4 गीतिगुच्छ	साध्वी संघमित्राजी
5. गीतिसन्दोह:	साध्वी मंजुलाजी
6 गीतिगुम्फ:	साध्वी कमलश्रीजी

स्तोत्र काव्य :—

जैन परम्परा में भी भक्ति रस से स्निग्ध और आत्म निवेदन से परिपूर्ण अनेक स्तोत्र काव्यों का प्रणयन हुआ है। स्तोत्र काव्यों का प्रारम्भ आचार्य समन्तभद्र ने स्वयंभू स्तोत्र, देवागम स्तोत्र आदि स्तुति रचनाओं से किया। सिद्धसेन दिवाकर का 'कल्याण-मन्दिर स्तोत्र' तथा मानतुंगाचार्य का भक्तामर स्तोत्र इस क्रम में विशेष उल्लेखनीय है। तेरापंथ के साधु-साध्वियों ने भी स्तोत्र काव्यों को पर्याप्त विकसित किया है। उन्होंने स्वतन्त्र स्तोत्र काव्यों की रचना भी की है और समस्या-पूर्तिमूलक स्तोत्र काव्यों की रचना भी की है। समस्या-पूर्तिमूलक स्तोत्र काव्यों में किसी अन्य काव्य के श्लोको का एक-एक चरण लेकर उस पर नई श्लोक रचना के द्वारा नये काव्य की रचना की जाती है। इस पद्धति का प्रारम्भ जैन परम्परा में सर्व प्रथम आचार्य जिनसेन ने किया। उन्होंने कालिदास के मेघदूत के समस्त पद्यों के समग्र चरणो की पूर्ति करते हुए पार्श्वाभ्युदय की रचना की। मेघदूत जैसे शृंगार रस प्रधान काव्य की परिणति शान्त और संवेग रस में करना कवि की श्लाघनीय प्रतिभा का परिणाम है।

मेघदूत के चतुर्थ चरण की पूर्ति में दो जैन काव्य और उपलब्ध हैं। उनमें पहला 'नेमिदूत' है और दूसरा 'शीलदूत' है। नेमिदूत की रचना विक्रम कवि ने तथा शीलदूत की रचना चारित्रसुन्दर गणि द्वारा हुई है।

तेरापंथ के साधु-साध्वियों में समस्या पूर्ति स्तोत्र काव्यों का प्रवाह भी एक साथ ही उमड़ा। वि. सं. 1980 में सर्व प्रथम मुनि नथमल जी (बागोर) ने सिद्धसेन दिवाकर रचित कल्याण-मन्दिर स्तोत्र की पादपूर्ति करते हुए दो 'काल-कल्याण-मन्दिर' स्तोत्रों की रचना की। वि. सं. 1989 में आचार्य श्री तुलसी, मुनि धनराज जी (प्रथम) और चन्दन मुनि ने भी कल्याण-मन्दिर स्तोत्र के पृथक-पृथक चरण लेकर कालू-कल्याण-मन्दिर स्तोत्रों की रचना की। यह क्रम क्रमशः विकसित होता गया और आगे चलकर मुनि कानमलजी ने मानतुंगाचार्य के भक्तामर स्तोत्र की पादपूर्ति करते हुए 'कालू भक्तामर' की रचना की तथा मुनि सोहनलाल जी (चूरू) ने कल्याण-मंदिर स्तोत्र और भक्तामर स्तोत्र की पादपूर्ति करते हुए क्रमशः कालू-कल्याण-मन्दिर और कालू-भक्तामर स्तोत्रों की रचना की।

स्वतंत्र स्तोत्र काव्यों में आचार्य श्री तुलसी द्वारा रचित 'चतुर्विंशति स्तवन' विशेष उल्लेखनीय है। इसकी कोमल पदावली में अन्तःकरण से सहज निःसृत भावों की अनुस्यूति है। इसकी रचना वि. सं. 2000 के आस-पास हुई थी। इसके अतिरिक्त स्तोत्र काव्यों की एक लम्बी शृंखला उपलब्ध है जिसमें उल्लेखनीय हैं:—

तेरापंथी स्तोत्रम्	मुनि नथमल जी (बागोर)
जिन चतुर्विंशिका	" "
तुलसी-वचनामृतस्तोत्रम्	" "
देव-गुरु-धर्म द्वात्रिंशिका	मुनि धनराजजी 'प्रथम'
वीतराग स्तुति	चन्दन मुनि
गुरु-गौरवम्	मुनि डूंगरमल जी
देव-गुरु-स्तोत्रम्	मुनि सोहन लाल जी (चूरू)
मातृ-कीर्तनम्	"

भगवत् स्तुति	मुनि मोहनलालजी
तुलसी-स्तोत्रम्	मुनि नथमल जी
देवगुरु द्वात्रिंशिका	मुनि छत्रमल जी
भिक्षु द्वात्रिंशिका	"
तुलसी द्वात्रिंशिका	"
तुलसी स्तोत्रम्	मुनि दुलीचन्द जी 'दिनकर'
श्री तुलसी स्तोत्रम्	मुनि बुद्धमल्ल जी
श्री तुलसी स्तोत्रम्	मुनि फूलचन्द जी
नेमिनाथ स्तुति :	मुनि मोहनलाल जी 'शार्दूल'

नीति काव्य :—

जैन परम्परा में नीति काव्यों के प्रणेता भर्तृहरि माने जाते हैं । उनके द्वारा प्रणीत नीति-शतक और वैराग्य-शतक चाणक्य-नीति की समकक्षता को प्राप्त करने वाले काव्य हैं ।

तेरापंथ में काव्य की अन्य विधाओं के साथ-साथ नीति काव्य की परम्परा भी सतत वर्धमान रही है । पंचसूत्रम्, शिक्षा षण्णवति, कर्तव्य षट्त्रिंशिका, उपदेशामृतम्, प्रास्ताविक श्लोक शतकम् आदि अनेक काव्य ग्रन्थ इस परम्परा के विकास के हेतु हैं ।

पंचसूत्रम्:—आचार्य श्री तुलसी की एक विशिष्ट देन है। आज के स्वतंत्र मानस में परतन्त्रता के प्रति इतनी तीव्र प्रतिक्रिया है कि वह व्यवस्था भंग के लिये उत्सुक ही नहीं अपितु आतुर हो रहा है । प्रश्न होता है कि क्या समाज अनुशासन का अतिक्रमण करके अपने अस्तित्व को सुरक्षित रख सकता है ? इसका उत्तर आचार्य श्री ने अहिंसा की भाषा में दिया है । आचार्य श्री सामूहिक जीवन में अनुशासन और व्यवस्था को आवश्यक मानते हैं । आचार्य श्री के विचारों में अनुशासन जीवन की गति का अवरोधक नहीं किन्तु प्रेरक है । इसी आशय से उन्होंने लिखा है :—

> पंगूतो न नयत्येष, हस्तालम्ब ददन्नपि ।
> गतिं सम्प्रेरयत्येव, गच्छेयुस्ते निजक्रमैः ॥

शिक्षा षण्णवति :— आचार्य श्री तुलसी का विभिन्न विषयों का स्पर्श करने वाला एक नीतिकाव्य है । इसकी मौलिक विशेषता यह है कि इसकी श्लोक रचना मानतुंगाचार्य के भक्तामर स्तोत्र की पादपूर्ति के रूप में हुई है । शैक्ष विद्यार्थियों के लिये इसकी उपयोगिता असंदिग्ध है । इसके पारायण से श्लोक रचना, पादपूर्ति, विषय निरूपण आदि का सम्यग् बोध होता है । इसमें पादपूर्ति के साथ भाव-सामंजस्य का निर्वहन भी बहुत सुचारु रूप से हुआ है । स्तुत कृति में विरक्ति का विश्लेषण करते हुए कहा है :—

> दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंग,
> कः कोत्र भोः प्रशमयेत् प्रचरेन्धनेन ।
> आभ्यन्तरो विषयभोगविजृम्भिदाह-
> स्त्वन्तर्विरागसलिलैः शमतामुपैति ॥

इसकी रचना वि. सं. 2005 में छापर (राजस्थान) में हुई । इसमें कुल 20 प्रकरण हैं । इसका हिन्दी अनुवाद मुनि बुद्धमल्ल जी द्वारा किया गया है ।

<u>कर्तव्य षट्त्रिंशिका</u>:—आचार्य श्री तुलसी द्वारा रचित एक लघु नीतिकाव्य है। नव साधु-साध्वियों को साधना का सम्यग्दर्शन प्रदान करने के लिये प्रस्तुत कृति की रचना हुई है।

इसकी रचना वि. सं. 2005 में छापर (राजस्थान) में हुई इसका। हिन्दी अनुवाद मुनि बुद्धमल्ल जी द्वारा किया गया है। उक्त तीनों नीति-काव्यों के कंठीकरण की परम्परा भी रही है।

<u>उपदेशामृतम्</u> :— चन्दन मुनि द्वारा रचित नीति काव्य है। इसमें अध्ययन जन्य और अनुभव जन्य तथ्यों का सुन्दर विश्लेषण है। वर्तमान की कुप्रथाओं और समस्याओं की आलोचना के साथ उनके समाधान और परिहार का निदर्शन भी इसमें है। नीति की अनेक व्यवहारिक बातों का इसमें समावेश हुआ है। कवि ने एक स्थान पर कहा है :—

> किं वक्तव्यं ? कियत् ? कुत्र ? का वेला ? कीदृशी स्थितिः ?
> इत्यादि विदितं येन तं वाणी सुखयेत् सदा ॥

इसी प्रकार आवश्यकताओं की सीमाकरण की प्रेरणा देते हुए अन्यत्र कहा गया है —

> सर्वाणि खलु वस्तूनि सीमितानि विधाय च।
> तिष्ठ स्वस्थः क्षणं भ्रातः ! क्वापि नातः परं सुखम् ॥

प्रस्तुत कृति की रचना वि. सं. 2015 में भाद्र कृष्ण अष्टमी के दिन जालना (महाराष्ट्र) में हुई थी। यह 16 स्तबकों में गुम्फित है।

<u>प्रास्ताविक-श्लोक-शतकम्</u>: – चन्दन मुनि के धार्मिक, नैतिक और औपदेशिक सुभाषित पद्यों का संकलन है।

प्रस्तुत कृति में 100 श्लोक हैं। इसकी रचना वि. स. 2018 में बम्बई (महाराष्ट्र) म हुई। इसका हिन्दी भाषा में अनुवाद मुनि मोहनलाल 'शार्दूल' द्वारा किया गया है।

प्रास्ताविक श्लोक-शतकम् के नाम से मुनि धनराज जी 'प्रथम' की एक अन्य कृति और प्राप्त है। उसमें भी विभिन्न विषयों पर श्लोक रचना की गई है। यह कृति अप्रकाशित होने के कारण साधारण पाठक के लिये सुलभ नहीं है। नीति-काव्यों की श्रृंखला में मुनि वत्सराजजी का "चतुरायाम:" भी एक सशक्त कृति है किन्तु वह भी अब तक अप्रकाशित है।

तेरापंथ के साधु-साध्वियों ने संस्कृत भाषा के विकास के लिये हर नये उन्मेष को स्वीकार किया और उसमें सफलता प्राप्त की। ऐकाह्निकशतक, समस्यापूर्ति, आशुकवित्व चित्रमय काव्य आदि उनमें प्रमुख हैं।

ऐकाह्निक शतकों के अतिरिक्त कुछ अन्य शतक काव्य भी लिखे गये हैं जिनमें मानवीय संवेदनाओं के साथ अन्तरंग अनुभूतियों का सम्यक् चित्रण हुआ है। उनमें से कुछ प्रमुख हैं:—

अनुभूति शतकम्	चन्दनमुनि
भिक्षु शतकम्	मुनि नथमल जी
कृष्ण शतकम्	मुनि छत्रमल जी
महावीर शतकम्	"

शिक्षा शतकम्	मुनि छत्रमल जी
जयाचार्य शतकम्	"
कालू शतकम्	"
तुलसी शतकम्	"
तेरापंथ शतकम्	"
तुलसी शतकम्	मुनि दुलीचन्दजी 'दिनकर'
भिक्षु शतकम्	मुनि नगराज जी
आषाढभूति शतकम्	मुनि मिट्ठालाल जी
अणुव्रत शतकम्	मुनि चम्पा लाल जी
धर्म शतकम्	"
समस्या शतकम्	मुनि मधुकर जी
मीरा द्विशतकम्	मुनि राकेशकुमार जी
हरिश्चन्द्र-कालिक द्विशतकम्	साध्वी फूलकुमारी जी
श्लोक शतकम्	साध्वी मोहनकुमारी जी
पृथ्वी शतकम्	साध्वी कनकश्री जी

संस्कृत काव्य की एक और विधा है—चित्रमय काव्य। यह विधा बहुत ही जटिल और क्लिष्ट है। इसमें रचना करना अगाध पाडित्य का सूचक है। इसके लिये गहरे अध्यवसाय की आवश्यकता होती है। विक्रम की बारहवी-तेरहवी शताब्दी के लगभग वाग्भट्ट ने अपनी कृति 'वाग्भट्टालकार' में चित्रमय श्लोको का दिग्दर्शन कराया है। चित्रमय काव्य की रचना जटिल और क्लिष्ट होने के कारण अधिक प्रसारित नहीं हो सकी। सोलहवीं शताब्दी के पश्चात् तो वह प्रायः लुप्त हो गई। किन्तु इस लुप्तप्रायः काव्य रचना की विधि को तेरापंथ धर्मसंघ में पुनर्जीवन प्राप्त हुआ है। उदाहरणार्थ एक श्लोक प्रस्तुत है।

> विश्वेस्मिन् प्राप्तुकामा विमलमतिमया मानवा ! नव्यनव्यां,
> सच्चिद् रोचिर्विचित्रच्छविरविशिविकां सिद्धिसाम्राज्यनिष्ठाम्।
> माहात्म्यार्चिः प्रविष्टा सितमधुसरसां संप्रधत्ताशु तर्हि,
> सच्छिक्षां सत्यसन्धेः कविवरतुलसेश्चन्द्रवच्छीतरश्मेः ॥

उक्त शिबिका बन्ध चित्रमय श्लोक में 84 अक्षर होते हैं किन्तु उनमें से केवल 70 अक्षर ही लिखे जाते है। शेष 14 अक्षरों की पूर्ति भिन्न-भिन्न प्रकोष्ठों से की जाती है। उक्त श्लोक के रचयिता मनि नवरत्नमल जी हैं। उन्होने अनेक प्रकार के चित्रमय श्लोको की रचना की है।

इस प्रकार के तेरापंथ संस्कृत-साहित्य के उद्भव और विकास-की संक्षिप्त प्रस्तुति इस निबन्ध में हुई है। अनवगति और अनुपलब्धि के कारण समव है पूर्ण परिचिति में कुछ अवरोध भी रहा हो फिर भी उपलब्ध साहित्य का यथासंभव परिचय देने का प्रयत्न किया गया है। विक्रम की बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और इक्कीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में तेरापंथ धर्म-संघ में संस्कृत वाङ्मय को विभिन्न नए उन्मेष प्रदान किये हैं। अतीत के सिंहावलोकन के आधार पर अनागत का योग और अधिक मूल्यवान हो सकेगा, ऐसी आशंका स्वाभाविक है।

संस्कृत साहित्य एवं साहित्यकार : 4

डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल

1. रविषेणाचार्यः—रविषेण पुराण ग्रन्थ के कर्ता के रूप में प्रसिद्ध आचार्य हैं। इन्होंने स्वयं ने अपने सम्बन्ध में कहीं कोई उल्लेख नहीं किया किन्तु इन्होंने जिस गुरु परम्परा का उल्लेख किया है उसके अनुसार इन्द्रसेन के शिष्य दिवाकर सेन, दिवाकर सेन के शिष्य अर्हत्सेन, अर्हत्सेन के शिष्य लक्ष्मणसेन और लक्ष्मणसेन के शिष्य रविषेण। [1]सेनान्त नाम होने के कारण ये सेनसंघ के विद्वान् जान पडते हैं। सेन संघ का राजस्थान में बहुत जोर रहा। सोमकीर्ति आदि भट्टारक राजस्थान के ही जैन सन्त थे। इसलिये रविषेण का भी राजस्थान से विशेष सम्बन्ध रहा इसमें दो मत नहीं हो सकते।

रविषेण की एक मात्र कृति पद्मचरित (पद्मपुराण) उपलब्ध होती है लेकिन यह एक ही कृति उनके विशाल पाण्डित्य एवं अद्भुत व्यक्तित्व की परिचायक है। यह एक चरित काव्य है। जिसमें 123 पर्व हैं। इसमें त्रेसठ शालाका के महापुरुषो में से आठवें बलभद्र राम, आठवें नारायण लक्ष्मण, भरत, सीता, जनक, अंजना, पवन, भामण्डल, हनुमान, राक्षसवंशी रावण, विभीषण एवं सुग्रीव आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसे हम जैन रामायण कह सकते हैं। रामकथा के अनेक रूप है उसमें जैन आम्नाय के अनुसार इस चरित काव्य में उसका एक रूप मिलता है। पद्मचरित में सीता के आदर्श की सुन्दर झांकी प्रस्तुत की गयी है तथा राम के जीवन की सभी दृष्टियो से महत्ता स्वीकार की गयी है। ग्रन्थ में रामचरित के साथ बन, पर्वत, नदी, ऋतु आदि के प्राकृतिक दृश्यों को तथा विवाह, जन्म, मृत्यु आदि सामाजिक रीति-रिवाजो का सुन्दर वर्णन हुआ है। जैन पुराण साहित्य में रविषेण के पद्मपुराण का महत्वपूर्ण स्थान है। रविषेण ने महावीर भगवान् के निर्वाण के 1203 वर्ष 6 महीने व्यतीत होने पर वि. सं. 734 (सन् 677) में इसे समाप्त किया था जैसा कि निम्न प्रशस्ति से ज्ञात होता है:—

> द्विशताभ्यधिके समासहस्रे समतीते अर्ध-चतुर्थ-वर्षयुक्ते ।
> जिन-भास्कर-वर्द्धमान सिद्धे चरितं पद्ममुनेरिदं निबद्धम् ॥

2. ऐलाचार्यः—ऐलाचार्य प्राकृत एवं संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् थे। ये सिद्धान्त शास्त्रो के विशेष ज्ञाता एवं महान् तपस्वी थे। चित्रकूटपुर (चितौड) इनका निवास स्थान था। इन्होंने ही आचार्य वीरसेन को सिद्धान्त ग्रन्थों का अध्ययन कराया था। वीरसेनाचार्य ने धवला टीका प्रशस्ति म ऐलाचार्य का निम्न शब्दों में उल्लेख किया है:—

> जस्स पसाएण मए सिद्धंत मिद हि अहिलहुदं ।
> महुसो एलाइरियो पसियउ वर वीरसेणस्स ॥

ऐलाचार्य का समय 8वीं शताब्दी का अन्तिम पाद होना चाहिये क्योंकि वीरसेन न धवला टीका सन् 811 में (शक में 738) में निबद्ध की थी।

---

1. आसीदिन्द्रगुरो दिवाकरयतिः शिष्योऽस्य चार्हन्मुनि ।
   स्तस्माल्लक्ष्मणसेन सन्मुनिरदः शिष्यो रविस्तु स्मृतम्— ॥

3. आचार्य अमृतचन्द्र सूरि:—आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार, प्रवचनसार एवं पंचास्तिकाय की टीका करने के कारण आचार्य अमृतचन्द्र जैन संस्कृत साहित्य में अत्यधिक लोकप्रिय टीकाकार हैं। इनकी टीकाओं के कारण आज कुन्दकुन्द के ग्रन्थों का रहस्य सबके समझने में आ सका। उक्त टीकाओं के अतिरिक्त इनकी पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, तत्वार्थसार एवं समयसार कलश भी अत्यधिक लोकप्रिय रचनायें मानी जाती हैं।

महापंडित आशाधर ने अमृतचन्द्र का उल्लेख सूरि पद के साथ किया है इससे ज्ञात होता है कि अमृतचन्द्र किसी सम्मानित कुल के व्यक्ति थे। पं. नाथूराम प्रेमी ने अमृतचन्द्र के सम्बन्ध में जो नया प्रकाश डाला है उसके आधार पर माधवचन्द्र के शिष्य अमृतचन्द्र 'बामणवाडे' में आये और यहां उन्होंने रल्हण के पुत्र सिंह या सिद्ध नामक कवि को पज्जुण्णचरिउ बनाने की प्रेरणा की। यदि बयाना (राज.) के पास स्थित बांभणवाड-ब्रह्मवाद दोनों एक ही हैं तो अमृतचन्द्र ने राजस्थान को भी पर्याप्त समय तक अलकृत किया था ऐसा कहा जा सकता है। उसके अतिरिक्त राजस्थान के विभिन्न जैन भण्डारो में अमृतचन्द्र के ग्रन्थों का जो विशाल संग्रह मिलता है उससे भी हम इन्हें राजस्थानी विद्वान् कह सकते हैं। यही नहीं राजस्थानी विद्वान् राजमल ने सर्व प्रथम अमृतचन्द्र कृत समयसार कलश टीका पर हिन्दी में टब्बा टीका लिखी थी। अमृतचन्द्र का समय अधिकांश विद्वानों ने 11वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना है। लेकिन पं. जुगलकिशोर मुख्तार ने इनका समय 10वी शताब्दी का तृतीय चरण बतलाया है।

इनका पुरुषार्थसिद्ध्युपाय श्रावकाचार सम्बन्धी ग्रन्थ है इसमें 226 संस्कृत पद्य हैं। श्रावक धर्म के वर्णन के साथ ही उसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र का सुन्दर वर्णन किया गया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में निश्चय नय एव व्यवहार नय की चर्चा है तो अन्त में रत्नत्रय को मोक्ष का उपाय बतलाया गया है। पुण्यास्रव को शुभोपयोग का बाधक बतलाना पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय की विशेषता है।

तत्वार्थसार को आचार्य अमृतचन्द्र ने मोक्षमार्ग का प्रकाश करने वाला एक प्रमुख दीपक बतलाया है। यह तत्वार्थसूत्र का सार रूप ग्रन्थ है जिसमें 9 अधिकार है और जीव अजीव आस्रव बंध आदि तत्वों का विशद विवेचन है। इसमें युक्ति आगम से सुनिश्चित सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का स्वरूप प्रतिपादित किया गया है।

समयसार कलश—आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार पर कलश रूप में लिखा गया है। इसका विषय वर्गीकरण भी समयसार के अनुसार ही है। इसमें 278 पद्य है जो 12 अधिकारों में विभक्त हैं। प्रारम्भ में आचार्य अमृतचन्द्र ने आत्म तत्व को नमस्कार करते हुए बतलाया है:—

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे।

समयसार टीका आत्मख्याति के नाम से प्रसिद्ध है। टीका में उन्होंने गाथा के शब्दों की व्याख्या करके उसके अभिप्राय को अपनी परिष्कृत गद्यशैली में व्यक्त किया है। इसी तरह प्रवचनसार की टीका का नाम तत्वदीपिका है। इस टीका में आचार्य अमृतचन्द्र की आध्यात्मिक रसिकता, आत्मानुभव, प्रखर विद्वत्ता, एवं वस्तु स्वरूप को तर्क पूर्वक सिद्ध करने की असाधारण शक्ति का परिचय मिलता है। कहीं कही तो मूल ग्रन्थकार ने जिन भावो को छोड दिया है उनको भी उन्होंने इस टीका म खोल दिया है। इसी तरह पंचास्तिकाय टीका भी इनकी प्रांजलकृति है जिसमें जीवादि पंचास्तिकाय का विशद विवेचन हुआ है।

अमतचन्द्र (द्वितीय)—लेकिन पं. परमानन्द जी शास्त्री का मत है कि अमृतचन्द्र-II माधवचन्द्र मलधारी के शिष्य थे। अपभ्रंश के महाकवि सिंह अथवा सिद्ध इन्हीं के शिष्य थे

जिन्होंने अमृतचन्द्र की प्रेरणा से अपूर्ण एवं खण्डित प्रद्युम्नचरित का उद्धार किया था। प्रद्युम्न-चरित की प्रशस्ति में अमृतचन्द्र के लिये लिखा है कि अमृतचन्द्र तप तेज रूपी दिवाकर तथा व्रत नियम एवं शील के रत्नाकर थे। अपने तर्क रूपी लहरों से जिन्होंने अन्य दर्शनों को झंकोलित कर दिया था। जो उनमें व्याकरण रूप पदों के प्रसारक थे तथा जिनके ब्रह्मचर्य के आगे कामदेव भी हिल गया था।[1]

4. रामसेन:—रामसेन नामके कितने ही विद्वान् हो चुके हैं लेकिन प्रस्तुत रामसेन काष्टासंघ, नन्दातटगच्छ और विद्यागण के आचार्य थे। आचार्य सोमकीर्ति द्वारा रचित गुर्वावलि में रामसेन को नरसिंहपुरा जाति का संस्थापक माना है। बागड प्रदेश से रामसेन का अधिक सम्बन्ध था और राजस्थान इनकी विहार भूमि थी। रामसेन की परम्परा में कितने ही भट्टारक प्रसिद्ध विद्वान् थे और उन्होंने अपनी प्रशस्तियों में रामसेन का सादर स्मरण किया है। रामसेन को विद्वानों ने 10 वीं शताब्दी का स्वीकार किया है। इनकी एक मात्र कृति तत्वानुशासन संस्कृत की महत्वपूर्ण रचना है। इसमें 258 पद्य हैं जिनमें अध्यात्म विषय का बहुत ही सुन्दर प्रतिपादन हुआ है। एक विद्वान् के शब्दों में रामसेन ने अध्यात्म जैसे नीरस, कठोर और दुर्बोध विषय को उतना सरल एवं सुबोध बना दिया है कि पाठक का मन कभी ऊब नहीं सकता। इस ग्रन्थ में ध्यान का विशद विवेचन हुआ है। कर्मबन्ध की निवृत्ति के लिये ध्यान की आवश्यकता बतलाते हुए ध्यान, ध्यान की सामग्री और उसके भेदों आदि का सुन्दर प्रतिपादन हुआ है। स्वाध्याय से ध्यान का अभ्यास करें क्योंकि ध्यान और स्वाध्याय से परमात्मा का प्रकाश होता है।

5. आचार्य महासेन:—आचार्य महासेन लाड बागड संघ के पूर्णचन्द्र आचार्य जयसेन के शिष्य और गुणाकरसेनसूरि के शिष्य थे। लाड बागड संघ का राजस्थान से विशेष सम्बन्ध था। इसलिये आचार्य महासेन ने राजस्थान में विशेष रूप से विहार किया और धर्म साहित्य एवं संस्कृति का प्रचार किया। प्रद्युम्न चरित की प्रशस्ति के अनुसार ये सिद्धान्तज्ञ, वादी, वाग्मी और कवि थे तथा शब्दरूपी ब्रह्म के विचित्र धाम थे। वे यशस्वियों द्वारा मान्य, सज्जनों में अग्रणी एवं पाप रहित थे और परमार वंशी राजा मुञ्ज के द्वारा पूजित थे।[2]

आचार्य महासेन की एक मात्र कृति प्रद्युम्नचरित उपलब्ध है। यह एक महाकाव्य है। इसमें 14 सर्ग हैं जिनमें श्रीकृष्ण जी के पुत्र प्रद्युम्न का जीवन चरित निबद्ध है। काव्य का कथानक बड़ा ही सुन्दर रस और अलंकारों से अलंकृत है। कवि ने इसमें रचनाकाल का उल्लेख नहीं किया है किन्तु राजा मुञ्ज का समय 10 वीं शताब्दी का है अतः यही समय आचार्य महासेन का होना चाहिए।

6. कवि डड्ढा—ये संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। चित्तौड इनका निवास स्थान था। इनके पिता का नाम श्रीपाल एवं ये जाति से पोरवाड थे। जैसा कि निम्न प्रशस्ति में दिया गया है—

श्रीचित्रकूट वास्तव्य प्राग्वार वणिजा कृते।
श्रीपालसुत-डड्ढेण स्फुटः प्रकृतिसंग्रहः ॥

इनकी एक मात्र कृति संस्कृत पंचसंग्रह है जो प्राकृत पंचसंग्रह की गाथाओं का अनुवाद है। अमितिगति आचार्य ने भी संस्कृत में पंचसंग्रह की रचना की थी लेकिन दोनों के अध्ययन से ज्ञात

---

1. जैन धर्म का प्राचीन इतिहास—भाग 2 पृष्ठ 357
2. सिद्धान्तज्ञो विहिता जितोदसमयो वादी च वाग्मी कवि
   शब्दब्रह्मविचित्रधाम यशसा मान्यो सतामग्रणी।
   आसीत् श्रीमहसेनसूरिरनघ श्री मुञ्जराजार्चित:
   सीमा-दर्शन-बोधवृत्त तपसा, भव्याब्जिनी बांधवः।

होता है कि डड्ढा के पंचसंग्रह में जहां प्राकृत गाथाओं का अनुवाद मात्र है वहां अमितिगति के पंचसंग्रह में अनावश्यक कथन भी पाया जाता है।

कवि डड्ढा अमृतचन्द्रसूरि के बाद के तथा अमितिगति के पूर्व के विद्वान् हैं। अमितिगति ने अपना पंचसंग्रह वि. सं. 1073 में बना कर समाप्त किया था इसलिए डड्ढा इसके पूर्व के विद्वान् हैं। विद्वानों ने इनका समय संवत् 1055 का माना है।

7. आचार्य शुभचन्द्र-(प्रथम):—शुभचन्द्र नाम के कितने ही विद्वान् हो गये हैं। आगे इन्हीं पृष्ठों में दो शुभचन्द्र का और वर्णन किया जावेगा। प्रस्तुत शुभचन्द्र ज्ञानार्णव के रचयिता हैं जिनके निवास स्थान, कुल जाति एवं वंश परम्परा के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती। शुभचन्द्र के ज्ञानार्णव का राजस्थान में सर्वाधिक प्रचार रहा। एक एक भण्डार में इनकी 25-30 प्रतियां तक मिलती हैं। यही नहीं इस पर हिन्दी गद्य पद्य टीका भी राजस्थानी विद्वानों की है। इसलिये अधिक सम्भव यही है कि शुभचन्द्र राजस्थानी विद्वान् रहे हों अथवा इन्होंने राजस्थान को भी अपने विहार से एवं उपदेशों से पावन किया हो।

ज्ञानार्णव योगशास्त्र का प्रमुख ग्रन्थ है। इसमें 48 प्रकरण हैं जिनमें 12 भावना, पंच महाव्रत एवं ध्यानादि का सुन्दर विवेचन हुआ है। ज्ञानार्णव पूज्यपाद के समाधितन्त्र एवं इष्टोपदेश से प्रभावित है। ग्रन्थ की भाषा सरल एवं प्रवाहमय है तथा वह सामान्य पाठक के भी अच्छी तरह समझ में आ सकती है।

8. ब्रह्मदेव:—ब्रह्मदेव राजस्थानी विद्वान् थे। प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत के वे धुरन्धर पंडित थे। वे आश्रमपत्तन नामक नगर में निवास करते थे। आश्रमपत्तन का वर्तमान नाम केशोरायपाटन है। यह स्थान बून्दी से तीन मील दूर चम्बल नदी के किनारे पर अवस्थित है। यहीं पर मुनिसुव्रत नाथ का विशाल एवं प्राचीन मन्दिर है जो अतीत में एक तीर्थ स्थल के रूप में प्रतिष्ठित था जहां प्रतिवर्ष हजारों यात्री दर्शनार्थ आते हैं। 13 वीं शताब्दी में होने वाले मुनि मदनकीर्ति ने अपनी शासन चतुस्त्रिंशिका में इस नगर का उल्लेख किया है। यही नही इस तीर्थ की निर्वाण काण्ड गाथा में भी "अस्सारम्मे पट्टणि मुणिसुव्वयजिणं च वंदामि" शब्दों में वन्दना की है।

ब्रह्मदेव ने इसी नगर में बृहद्द्रव्यसंग्रह एवं परमात्मप्रकाश पर संस्कृत में टीका लिखी थी टीका बहुत ही विस्तृत एवं महत्वपूर्ण है। यह टीका सोमराज श्रेष्ठी के लिये लिखी गयी थी और सबसे बड़ी विशेषता यह है कि स्वयं ग्रन्थकार मुनि नेमिचन्द्र, टीकाकार ब्रह्मदेव एवं सोमराज श्रेष्ठी इस साहित्यिक यज्ञ में सम्मिलित थे। द्रव्यसंग्रह कृति में सोमराज श्रेष्ठि के दो प्रश्नो का उत्तर नामोल्लेख के साथ किया गया है इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कृतिकार के समय वे भी उपस्थित थे।

द्रव्यसंग्रह कृति की प्राचीनतम पाण्डुलिपि सं. 1416 की जयपुर के ठोलियों के मंदिर में उपलब्ध होती है। द्रव्यसंग्रह एवं प्रवचनसार टीकाओं में अमृतचन्द्र, रामसिंह, अमितिगति, डड्ढा और प्रभाचन्द्र आदि के ग्रन्थों के उद्धरण मिलते हैं जो 10वीं और 11 शताब्दी के विद्वान् हैं। इसलिये ब्रह्मदेव का समय 11वीं शताब्दी का अंतिम चरण अथवा 12वी शताब्दी का प्रथम चरण माना जा सकता है।

9. आ. जयसेन:—आचार्य अमृतचन्द्र के समान जयसेन ने भी समयसार, प्रवचनसार एवं पंचास्तिकाय इन तीनों पर संस्कृत टीका लिखी है और इन टीकाओं की भी समाज में लोकप्रियता रही है। जयसेन आचार्य वीरसेन के प्रशिष्य

एवं सोमसेन के शिष्य थे। एक प्रशस्ति के अनुसार इनके पितामह का नाम मालू साहू एवं पिता का नाम महीपति साधु था। उनका स्वयं का नाम चारुभट था और जब वे दिगम्बर मुनि हो गये तब उनका नाम जयसेन रखा गया ।[1]

समयसार, प्रवचनसार एवं पञ्चास्तिकाय पर निर्मित टीकाओं का नाम तात्पर्य वृत्ति है। वृत्ति की भाषा सरल एवं सुगम है। राजस्थान में जैन शास्त्र भण्डारों में इन टीकाओं की प्रतियां अच्छी संख्या में मिलती हैं।

जयसेन न अपनी टीकाओं में समय का कोई उल्लेख नहीं किया । डा. ए. एन. उपाध्ये ने इनका समय 12वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध एवं 13वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध निश्चित किया है क्योंकि इन्होंने वीरनन्दि के आचारसार मे दो पद्य उद्धृत किये है । वीरनन्दि के गुरु माधवचन्द्र त्रैविधदेव का स्वर्गवास विक्रम की 12वी शताब्दी मे हुआ था इसलिये जयसेन का समय 13वी शताब्दी का प्रथम चरण मानना ही उचित है ।

10 आशाधर:—महापंडित आशाधर राजस्थान के लोकप्रिय विद्वान् थे। वे मूलतः मांडलगढ (मेवाड) के निवासी थे । इनका जन्म भी उसी नगर में हुआ था । इनके पिता का नाम सल्लखण एव माता का नाम श्रीरत्नी था । इनकी पत्नी का नाम सरस्वती एवं पुत्र का नाम छाहड था । इनके पुत्र छाहड ने अर्जुन वर्मा को अनुरंजित किया था । आशाधर मांडलगढ मे दस-पन्द्रह वर्ष ही बिता पाये थे कि शहाबुद्दीन गोरी ने सन् 1292 मे पृथ्वीराज को हराकर दिल्ली को अपनी राजधानी बनायी और अजमेर पर भी अपना अधिकार कर लिया । उनके आक्रमणो से सन्त्रस्त होकर अपने चरित्र की रक्षार्थ वे सपरिवार बहुत से अन्य लोगों के साथ मालवदेश की राजधानी धारा में आकर बस गये थे ।[2] उस समय धारा नगरी विद्या का केन्द्र थी और अनेक विद्वानो की वहा भीड रहती थी । आशाधर ने धारा मे आने के पश्चात् पंडित श्रीधर के शिष्य पंडित महावीर से न्याय और व्याकरण शास्त्र का अध्ययन किया था । लेकिन कुछ समय धारा में रहने के उपरान्त वे वहा से नलकच्छपुर चले गये जो धारा नगरी से 10 कोश दूरी पर स्थित था ।[3]

नलकच्छपुर (नालछा) धर्मनिष्ठ श्रावकों का केन्द्र था । वहा का नेमिनाथ का मन्दिर आशाधर के स्वाध्याय एवं ग्रन्थ निर्माण करने का केन्द्र था । यहा वे 30-35 वर्ष तक रहे

---

1. सूरि. श्री वीरसेनाख्यो मूलसंघेपि सत्तया: ।
नैर्ग्रन्थंपदवी भेजे जातरूप धरोपि य:
तत: श्री सोमसेनोऽभूद् गणी गुणगणाश्रय: ।
तद्विनेयोस्ति यस्तस्मै जयसेन तपोभृते ॥
शीघ्रं बभूव मालू साधु: सदा धर्मरतो वदान्य :
सूनुस्तत: साधु: महीपतिस्तस्मादयं चारुभटस्तनूज : ॥

2. म्लेच्छेशेन सपादलक्षविषये व्याप्ते सुवृत्तक्षति—
त्रासाद्विन्ध्य नरेन्द्रदो: परिमलस्फूर्जत्त्रिवर्गौजसि
प्राप्तो मालवमण्डले बहुपरीवार: पुरीमावसन्
यो धारामपठज्जिनप्रमिति वाक्शास्त्रे महावीरत: ॥ 5॥

3. श्रीमदर्जुन भूपाल राज्ये श्रावकसंकुले ।
जैनधर्मोदयार्थं यो नलकच्छपुरेऽवसत् ।

और रहते हुए उन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे, उनकी टीकायें लिखीं और वहां अध्यापन कार्य भी सम्पन्न किया । लेकिन संवत् 1282 में आशाधर जी नालछा से सलखणपुर चले गये जहां जैन अच्छी संख्या में रहते थे । मल्ह का पुत्र नागदेव भी वहां का निवासी था जो मालवराज्य की चुंगी विभाग में कार्य करता था तथा यथाशक्ति धर्म-साधन भी करता था । नागदेव की पत्नी के लिये उन्होंने रत्नत्रय विधान की रचना की थी ।

आशाधर संस्कृत के महान् पंडित थे तथा न्याय, व्याकरण, काव्य, अलंकार, शब्दकोष, धर्मशास्त्र, योगशास्त्र और वैद्यक आदि विषयों पर उनका पूर्ण अधिकार था । वे प्रतिभासम्पन्न विद्वान् थे । उनकी लेखनी केवल जैन ग्रन्थों तक ही सीमित नहीं रही किन्तु अष्टांगहृदय, काव्यालंकार एवं अमरकोष जैसे ग्रन्थों पर उन्होंने टीकायें लिख कर अपने पाण्डित्य का भी परिचय दिया । लेकिन खेद है कि ये सभी टीकायें वर्तमान में उपलब्ध नहीं हैं। विभिन्न विद्वानों ने उन्हें कवि कालिदास, प्रज्ञापुंज एवं नयविश्वचक्षु जैसी उपाधियों से उनका अपने ग्रन्थों में अभिनन्दन किया है । वास्तव में संस्कृत भाषा के ऐसे धुरन्धर विद्वान् पर जैन समाज को ही नहीं किन्तु समस्त देश को गर्व है ।

महापंडित आशाधर की 18 रचनाओं का उल्लेख मिलता है, लेकिन इनमें 11 रचनायें उपलब्ध हैं और सात रचनायें अनुपलब्ध हैं । इन रचनाओं का सामान्य परिचय निम्न प्रकार है :—

1. प्रमेयरत्नाकर:—यह ग्रन्थ अभी तक अप्राप्त है । ग्रन्थकार ने इसे स्याद्वादविद्या का निर्मल प्रसाद बतलाया है ।

2. भरतेश्वराभ्युदय:—यह काव्य ग्रन्थ भी अप्राप्त है । इस काव्य में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती के अभ्युदय का वर्णन है ।

3. ज्ञानदीपिका:—यह सागार एवं अनगारधर्मामृत की स्वोपज्ञ पंजिका है । यह भी अभी तक अनुपलब्ध ही है ।

4. राजमती विप्रलम्भ:—यह एक खण्ड काव्य है जिसमें राजमती और नेमिनाथ के वियोग का वर्णन किया गया है । रचना स्वोपज्ञ टीका सहित है लेकिन अभी तक अनुपलब्ध है ।

5. अध्यात्मरहस्य:—इस रचना को खोज निकालने का श्रेय श्री जुगल किशोर मुख्तार को है । इसकी एक मात्र पाण्डुलिपि अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है । प्रस्तुत कृति मुख्तार सा. द्वारा हिन्दी टीका के साथ सम्पादित होकर वीर सेवा मन्दिर से प्रकाशित हो चुकी है । यह अध्यात्म विषय का ग्रन्थ है । आचार्य कुन्दकुन्द ने आत्मा के बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ये तीन भेद किये हैं जबकि आशाधर ने स्वात्मा, शुद्धस्वात्मा एवं परब्रह्म इस प्रकार तीन भेद किये हैं ।

6. मूलाराधना टीका:—यह प्राकृत भाषा में निबद्ध शिवार्य की भगवती आराधना की टीका है ।

7. इष्टोपदेश टीका:—आचार्य पूज्यपाद के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश की टीका है ।

8. भूपाल चतुर्विंशति टीका:—भूपाल कवि कृत चतुर्विंशति स्तोत्र की टीका है जो विनयचन्द्र के लिये बनायी गयी थी ।

9. आराधनासार टीका—यह देवसेन के आराधनासार पर टीका है। इसकी एक पाण्डुलिपि आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर में उपलब्ध है।

10. अमरकोष टीका—यह अमरसिंह कृत अमरकोश पर टीका है जो अभी तक अप्राप्य स्थिति में ही है।

11. क्रियाकलाप—इसमें आचार शास्त्र का वर्णन है।

12. काव्यालंकार टीका—यह रुद्रट कवि के काव्यालंकार पर टीका है।

13. जिन सहस्रनाम—यह जिनेन्द्र भगवान् का स्तोत्र है जिस पर स्वयं ग्रन्थकार की टीका है। यह श्रुतसागर सूरि की टीका के साथ भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हो चुका है।

14. जिन-यज्ञकल्प—इसमें प्रतिष्ठा सम्बन्धी क्रियाओं का विस्तृत वर्णन किया हुआ है। महापंडित आशाधर ने इसे संवत् 1285 में नलकच्छपुर के नेमिनाथ चैत्यालय में समाप्त किया था। उस समय मालवा पर परमारवंशी देवपाल का शासन था।

15. त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र—इसमें संक्षिप्त रूप में त्रेसठ शलाका पुरुषों का चरित्र वर्णित है। ग्रन्थ का रचना नित्य स्वाध्याय के लिये जाजाक पंडित की प्रेरणा से सम्पन्न हुई थी। इस ग्रन्थ का रचनाकाल वि. सं. 1292 है। यह भी नलकच्छपुर के नेमिनाथ चैत्यालय म ही समाप्त हुआ था।

16. रत्नत्रय विधान—यह लघु ग्रन्थ है जो सलखणपुर के निवासी नागदेव की प्रेरणा से उसकी पत्नी के लिये लिखा गया था। इसका रचना काल संवत् 1282 है।

17–18. सागार धर्मामृत एव अनगार धर्मामृत भव्यकुमुद चन्द्रिका टीका सहित—महा पंडित आशाधर के ये दोनों ही अत्यधिक लोकप्रिय ग्रन्थ हैं। सागारधर्मामृत में गृहस्थधर्म का निरूपण किया गया है जो आठ अध्यायो में विभक्त है। इसी तरह अनगारधर्मामृत में मुनिधर्म का वर्णन किया गया है। इसमें मुनियों के मूलगुण एवं उत्तरगुणो का विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है। सागार धर्मामृत टीका सहित रचना वि. सं. 1296 में पौष सुदी 7 शुक्रवार के दिन समाप्त की गयी। इस ग्रन्थ-रचना की प्रेरणा देने वाले थे पौरपाटान्वयी महीचन्द साधु। अनगारधर्मामृत की रचना इसके चार वर्ष पश्चात् वि. स. 1300 में कार्तिक सुदी 5 सोमवार के दिन समाप्त हुई थी। यह भी टीका सहित है। कवि ने मूल ग्रन्थ की रचना 954 श्लोकों में की थी।

इस प्रकार महा पंडित आशाधर ने संस्कृत भाषा की जो सेवा की थी, वह सदा उल्लेखनीय रहेगी। आशाधर का समय विक्रम की 13 वी शताब्दी निश्चित है। अनगार धर्मामृत उनकी अन्तिम कृति थी जो संवत् 1300 की रचना है। इसके पश्चात् कवि अधिक समय तक जीवित रह हों इसकी कम संभावना है।

11. वाग्भट्ट

वाग्भट्ट नाम के कितने ही विद्वान् हो गये हैं। आयुर्वेद शास्त्र की सुप्रसिद्ध कृति अष्टांग-हृदय के रचयिता वाग्भट्ट के नाम से अधिकांश विद्वान् परिचित हैं, ये सिन्धु देश

निवासी थे। नेमिनिर्वाण महाकाव्य के निर्माता वाग्भट्ट महाकवि थे जो पोरवाड जाति के श्रावक थे तथा छाहड के पुत्र थे। वाग्भटालंकार के कर्ता तीसर वाग्भट्ट थे जो गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह के महामात्य थे। ये श्वेताम्बर सम्प्रदाय के विद्वान् थे।

प्रस्तुत वाग्भट्ट उक्त तीनों विद्वानों से भिन्न हैं। ये वाग्भट्ट भी अत्यधिक सम्पन्न घराने के थे जिनके पितामह का नाम माक्कलय था। माक्कलय के दो पुत्र थे, इसमें राहड ज्येष्ठ एवं नेमिकुमार लघु पुत्र थे। इन दोनों भाइयों में राम लक्ष्मण जैसा प्रेम था। राहड ने व्यापार में विपुल द्रव्य एवं प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। राहड ने दो नगरों को बसाया था जो राहडपुर एवं नलोटकपुर के नाम से विख्यात हुये। राहडपुर में भगवान् नेमिनाथ का विशाल जिनालय भी इन्होंने ही बनवाया। नलोटकपुर में राहड द्वारा निर्मित ऋषभदेव के विशाल जिनालय में 22 वेदियां बनवायी गयीं। मेवाड की जनता नेमिकुमार से बहुत प्रभावित थी। इन्हीं नेमिकुमार के पुत्र थे वाग्भट्ट, जिनकी दो कृतियां छन्दोनुशासन एवं काव्यानुशासन उपलब्ध होती ह, छन्दोनुशासन सस्कृत के छन्द शास्त्र का ग्रन्थ है जो पाच अध्यायों में विभक्त है। ये अध्याय हैं— संज्ञाध्याय, समवृत्ताख्य, अर्ध समवृत्ताख्य, मात्रासमक एवं मात्रा छन्दक।

काव्यानुशासन लघु ग्रन्थ है जिसमें 289 सूत्र हैं तथा जिनमें काव्य संबंधी विषयों का रस, अलंकार, छन्द, गुण, दोष आदि का कथन किया गया है। इसकी स्वोपज्ञवृत्ति में कवि ने विभिन्न ग्रन्थों के पद्य उद्धृत किये हैं।

वाग्भट्ट स्वयं ने अपने आपको महाकवि लिखा है। ये 13 वीं शताब्दी के विद्वान् थे।

12. भट्टारक प्रभाचन्द्र

प्रभाचन्द्र भट्टारक थे। वे भट्टारक धर्मचन्द्र के प्रशिष्य एवं भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य थे। भट्टारक धर्मचन्द्र एव भट्टारक रत्नकीर्ति दोनों ही अपने समय के प्रभावशाली भट्टारक थे। इनके द्वारा प्रतिष्ठापित कितनी ही मूर्तिया रणथम्भौर, भरतपुर एव जयपुर आदि नगरों में मिलती हैं। प्रभाचन्द्र तुगलक वंश के शासन काल में हुये थे। वे जैन सघ के आचार्य थे और अजमेर उनकी गादी का प्रमुख केन्द्र था तथा राजस्थान, देहली एवं उत्तर-प्रदेश, उनका कार्यक्षेत्र था।

एक पट्टावली के अनुसार भट्टारक प्रभाचन्द्र का जन्म संवत् 1290 पौष सुदी 15 को हुआ। वे 12 वर्ष तक गृहस्थ रहे तथा 12 वर्ष तक साधु की अवस्था में दीक्षित रहे। वे 74 वर्ष 11 मास 15 दिन तक भट्टारक पद पर बने रहे।

इन्होंने पूज्यपाद के समाधितन्त्र पर तथा आचार्य अमृतचन्द्र के आत्मानुशासन पर संस्कृत टीकायें लिखीं जो अपने समय की लोकप्रिय टीकायें मानी जाती रहीं।

13. भट्टारक पद्मनन्दि

भ. प्रभाचन्द्र के ये प्रमुख शिष्य थे। वे प्रभाचन्द्र की ओर से गुजरात में धर्म प्रचार के लिये नियुक्त थे और वहीं पर वे समाज द्वारा भट्टारक पद पर प्रतिष्ठित कर दिये गये। भट्टारक बनने से पूर्व ये आचार्य शब्द से संबोधित किये जाते थे। एक पट्टावली के अनुसार वे जाति से ब्राह्मण थे। वे केवल 10 वर्ष 7 महीने तक ही अपने पिता के पास रहे और 11 वर्ष की आयु में ही वैराग्य धारण कर इन्होंने भट्टारक प्रभाचन्द्र का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। युवावस्था में वे आचार्य बन गये। इसके पश्चात् संवत 1385 पौष सुदी सप्तमी की शुभ वेला में भट्टारक

पद पर सुशोभित कर दिये गये। इस समय उनकी आयु केवल 34 वर्ष की थी। वे पूर्ण युवा थे, और प्रतिभा के धनी थे। पद्मनन्दि पर सरस्वती की असीम कृपा थी। एक बार उन्होंने पाषाण की सरस्वती को मुख से बुला दिया था।

गुजरात प्रदेश के अतिरिक्त आचार्य पद्मनन्दि ने राजस्थान को अपना कार्य क्षेत्र चुना तथा चित्तौड़, मेवाड़, बून्दी, नैणवा, टौंक झालावाड़ जैसे स्थानों को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाया। वे नैणवा (चित्तौड़) जैसे सांस्कृतिक नगर में 10 वर्ष से भी अधिक समय तक रहे। भ. सकलकीर्ति ने उनसे इसी नगर में शिक्षा प्राप्त की थी और यहीं पर उनसे दीक्षा धारण की थी। इनके पन्थ में अनेक साधु-साध्वियां थीं। इनके चार शिष्य प्रधान थे जिन्होंने देश के अलग-अलग भागों में भट्टारक गादियां स्थापित की थीं।

आचार्य पद्मनन्दि संस्कृत के बड़े भारी विद्वान् थे। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों में इनकी कितनी ही रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं उनमें से कुछ रचनाओं के नाम निम्न प्रकार हैं :-

1. पद्मनन्दि श्रावकाचार
2. अनन्तव्रत कथा
3. द्वादशव्रतोद्यापन पूजा
4. पार्श्वनाथ स्तोत्र
5. नन्दीश्वर भक्ति पूजा
6. लक्ष्मी स्तोत्र
7. वीतराग स्तोत्र
8. श्रावकाचार टीका
9. देव-शास्त्र-गुरुपूजा
10. रत्नत्रयपूजा
11. भावना चौतीसी
12. परमात्मराज स्तोत्र
13. सरस्वती पूजा
14. सिद्धपूजा
15. शान्तिनाथ स्तवन

14. भट्टारक सकलकीर्ति

15 वी शताब्दी में जैन साहित्य की जबरदस्त प्रभावना करने वाले आचार्यों में भट्टारक सकलकीर्ति का नाम सर्वोपरि है। देश में जैन साहित्य एवं संस्कृति का जो जबरदस्त प्रचार एवं प्रसार हो सका उसमें इनका प्रमुख योगदान रहा। सकलकीर्ति ने संस्कृत एवं प्राकृत साहित्य को नष्ट होने से बचाया और लोगों में उसके प्रति अद्भुत आकर्षण पैदा किया।

जीवन परिचय

सन्त सकलकीर्ति का जन्म संवत् 1443 (सन् 1386) में हुआ था।[1] इनके पिता का नाम करमसिंह एवं माता का नाम शोभा था। ये अणहिलपुर पट्टण के रहने वाले थे। इनकी जाति हुबड थी।[2]

इनके बचपन का नाम 'पूर्नसिंह' अथवा पूर्णसिंह था। एक पट्टावली में इनका नाम 'पदर्थ' भी दिया हुआ है। 25 वर्ष तक ये पूर्ण गृहस्थ रहे लेकिन 26वें वर्ष में इन्होंने अपार

---

1. हरषी सुणीय सुवाणि पालइ अन्य ऊअरि सुपर ।
   चोऊद त्रिताल प्रमाणि पूरइ दिन पुत्र जनमीउ ॥
2. न्याति मांहि मुहुतवंत हूंबड हरषि बखाणिइए ।
   करमसिह वितपन्न उदयवन्त इम जाणीइए ॥3॥
   शोभित तरस अरधांगि, मूलीसरीस्य सुंदरीय ।
   सील स्यंगारित अंगि पेखु प्रत्यक्ष पुरंदरीय ॥4॥

—सकलकीर्ति रास

सम्पत्ति को तिलांजलि देकर साधु जीवन अपना लिया । उस समय भट्टारक पद्मनन्दि का मुख्य केन्द्र नैणवा (राजस्थान) था । वे आगम ग्रन्थों के पारगामी विद्वान् माने जाते थे। इसलिये ये भी नैणवां चले गये और उनके शिष्य बन कर अध्ययन करने लगे । वहां ये आठ वर्ष रहे और प्राकृत एवं संस्कृत के ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया, उनके मर्म को समझा और भविष्य में सत्-साहित्य का प्रचार-प्रसार ही अपना एक उद्देश्य बना लिया । 34 वें वर्ष में उन्होंने भट्टारक पदवी ग्रहण की और अपना नाम सकलकीर्ति रख लिया ।

व्यक्तित्व एवं पाण्डित्य

भट्टारक सकलकीर्ति असाधारण व्यक्तित्व वाले सन्त थे । इन्होंने जिन-जिन परम्पराओं की नींव रखी, उनका बाद में खूब विकास हुआ । अध्ययन गम्भीर था--इसलिये कोई भी विद्वान् इनके सामने नहीं टिक सकता था । प्राकृत एवं संस्कृत भाषाओं पर इनका समान अधिकार था । ब्रह्म जिनदास एवं भट्टारक भुवनकीर्ति जैसे विद्वानो का इनका शिष्य होना ही इनके प्रबल पाण्डित्य का सूचक है । इनकी वाणी में जादू था इसलिये जहा भी इनका विहार हो जाता था वहीं इनके सैकडो भक्त बन जाते थे । ये स्वय तो योग्यतम विद्वान् थे ही, किन्तु इन्होंने अपने शिष्यो को भी अपने ही समान विद्वान् बनाया । ब्रह्म जिनदास ने, अपने "जम्बूस्वामी चरित" में इनको महाकवि, निर्ग्रन्थ राज एवं शुद्ध चरित्रधारी[1] तथा हरिवंश पुराण में तपोनिधि एवं निर्ग्रन्थ श्रेष्ठ[2] आदि उपाधियों से सम्बोधित किया है ।

भट्टारक सकलभूषण ने अपने उपदेश-रत्नमाला की प्रशस्ति में कहा है कि सकलकीर्ति जन-जन का चित्त स्वतः ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे । ये पुण्य-मूर्ति स्वरूप थे तथा पुराण ग्रन्थो के रचयिता थे ।[3]

इसी तरह भट्टारक शुभचन्द्र ने सकलकीर्ति को पुराण एवं काव्यों का प्रसिद्ध नेता कहा है । इनके अतिरिक्त इनके बाद होने वाले प्रायः सभी भट्टारक सन्तों ने सकलकीर्ति के व्यक्तित्व एवं विद्वत्ता की भारी प्रशसा की है । ये भट्टारक थे किन्तु मुनि नाम से भी अपने आपको सम्बोधित करते थे । "धन्य कुमार चरित्र" ग्रन्थ की पुष्पिका में इन्होंने अपने-आपका "मुनि सकलकीर्ति" नाम से परिचय दिया है ।

मृत्यु

एक पट्टावली के अनुसार भट्टारक सकलकीर्ति 56 वर्ष तक जीवित रहे । संवत् 1499 में महसाना नगर मे उनका स्वर्गवास हुआ । पं. परमानन्द शास्त्री ने भी "प्रशस्ति सग्रह" में इनकी मृत्यु सवत् 1499 में महसाना (गुजरात) में होना लिखा है । डा. ज्योति-

1. ततोभवत्तस्य जगत्प्रसिद्धेः पट्टे मनोज्ञे सकलादिकीर्तिः ।
महाकविः शुद्धचरित्रधारी निर्ग्रन्थराजा जगति प्रतापी ॥

—जम्बूस्वामी चरित्र

2. तत्पट्ट पंकेजविकासभास्वान् बभूव निर्ग्रन्थवरः प्रतापी ।
महाकवित्वादिकला प्रवीणः तपोनिधिः श्री सकलादिकीर्तिः ॥

—हरिवंश पुराण

3. तत्पट्टधारी जनचित्तहारि पुराणमुख्योत्तम-शास्त्रकारी ।
भट्टारक-श्रीसकलादिकीर्तिः प्रसिद्धनामाजनि पुण्यमूर्तिः ॥216॥

उपदेशरत्नमाला, सकलभूषण

प्रसाद जैन एवं डा. प्रेमसागर भी इसी संवत् को सही मानते हैं। लेकिन डा. ज्योतिप्रसाद इनका पूरा जीवन 81 वर्ष स्वीकार करते हैं जो अब लेखक को प्राप्त विभिन्न पट्टावलियों के अनुसार वह सही नहीं जान पड़ता। 'सकलकीर्ति रास' में उनकी विस्तृत जीवन गाथा है। उसमें स्पष्ट रूप से संवत् 1443 को जन्म एवं 1499 में मृत्यु तिथि लिखी है।

राजस्थान में ग्रन्थ भंडारों की जो अभी खोज हुई है उनमें हमें अभी तक निम्न रचनायें उपलब्ध हो सकी हैं :—

संस्कृत की रचनाएं

1. मूलाचार प्रदीप
2. प्रश्नोत्तरोपासकाचार
3. आदि पुराण
4. उत्तर पुराण
5. शान्तिनाथ चरित्र
6. वर्द्धमान चरित्र
7. मल्लिनाथ चरित्र
8. यशोधर चरित्र
9. धन्यकुमार चरित्र
10. सुकुमाल चरित्र
11. सुदर्शन चरित्र
12. सद्भाषितावलि
13. पार्श्वनाथ चरित्र
14 व्रतकथा कोष
15. नेमिजिन चरित्र
16. कर्मविपाक
17. तत्वार्थसार दीपक
18. सिद्धान्तसार दीपक
19. आगमसार
20 परमात्मराज स्तोत्र
21. सारचतुर्विंशतिका
22. श्रीपाल चरित्र
23. जम्बूस्वामी चरित्र
24. द्वादशानुप्रेक्षा

पूजा ग्रन्थ

25. अष्टान्हिका पूजा
26. सोलहकारण पूजा
27. गणधरवलय पूजा

राजस्थानी कृतिया

1. आराधना प्रतिबोध सार
2. नेमीश्वर गीत
3. मुक्तावलि गीत
4. णमोकार फल गीत
5. सोलह कारण रास
6. सारसीखामणि रास
7. शान्तिनाथ फागु

उक्त कृतियो के अतिरिक्त अभी और भी रचनाएं हो सकती है जिनकी अभी खोज होना बाकी है। भट्टारक सकलकीर्ति की सस्कृत भाषा के समान राजस्थानी भाषा में भी कोई बडी रचना मिलनी चाहिये, क्योकि इनके प्रमुख शिष्य ब्र. जिनदास ने इन्ही की प्रेरणा एव उपदेश से राजस्थानी भाषा मे 50 से भी अधिक रचनाएं निबद्ध की हैं। अकेले इन्ही के साहित्य पर एक शोध प्रबन्ध लिखा जा सकता है। अब यहां कुछ ग्रन्थो का परिचय दिया जा रहा है।

1. <u>आदिपुराण</u>—इस पुराण मे भगवान् आदिनाथ, भरत, बाहुबलि, सुलोचना, जयकीर्ति आदि महापुरुषो के जीवन का विस्तृत वर्णन किया गया है। पुराण सर्गों में विभक्त है और इसमें 20 सर्ग है। पुराण की श्लोक संख्या 4628 श्लोक प्रमाण है। वर्णन, शैली सुन्दर एवं सरस है। रचना का दूसरा नाम 'वृषभनाथचरित्र' भी है।

2. उत्तर पुराण ---इसमें 23 तीर्थंकरों के जीवन का वर्णन है एवं साथ में चक्रवर्ती बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण आदि शलाका-महापुरुषो के जीवन का भी वर्णन है। इसमे 15 अधिकार है। उत्तरपुराण, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से प्रकाशित हो चुका है।

3. कर्मविपाक ---यह कृति सस्कृत गद्य मे है। इसमे आठ कर्मों के तथा उनके 148 भेदो का वर्णन है। प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध एव अनुभाग बन्ध की अपेक्षा से कर्मों के बन्ध का वर्णन है। वर्णन सुन्दर एव बोधगम्य है। यह ग्रन्थ 547 श्लोक सख्या प्रमाण है। रचना अभी तक अप्रकाशित है।

4 तत्वार्थसार दीपक ---सकलकीर्ति ने अपनी इस कृति को अध्यात्म महाग्रन्थ कहा है। जीव, अजीव आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा तथा मोक्ष इन सात तत्वो का वर्णन 12 अध्यायो मे निम्न प्रकार विभक्त है:---

प्रथम सात अध्याय तक जीव एव उसकी विभिन्न अवस्थाओ का वर्णन है। शेष 8 से 12 वें अध्याय मे अजीव, आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा, मोक्ष का क्रमश वर्णन है। ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है।

5 धन्यकुमार चरित्र--- यह एक छोटा सा ग्रन्थ है जिसमे सेठ धन्यकुमार के पावन-जीवन का यशोगान किया गया है। पूरी कथा सात अधिकारो मे समाप्त होती है। धन्यकुमार का जीवन अनेक कौतहलो एव विशेषताओ से ओत-प्रोत है। एक बार कथा आरम्भ करने के बाद पूरी पढे बिना उसे छोडने को मन नहीं करता। भाषा सरल एव सुन्दर है।

6 नेमिजिन चरित्र--- नेमिजिन चरित्र का दूसरा नाम हरिवंश पुराण भी है। नेमिनाथ 22वें तीर्थंकर थे जिन्होंने कृष्ण युग में अवतार लिया था। वे कृष्ण के चचेरे भाई थे। अहिंसा मे दृढ विश्वास होने के कारण तोरण-द्वार पर पहुंचकर एक स्थान पर एकत्रित जीवो को वध के लिये लाया हुआ जानकर विवाह के स्थान पर दीक्षा ग्रहण कर ली थी तथा राजुल जैसी अनुपम सुन्दर राजकुमारी को त्यागने मे जरा भी विचार नहीं किया था। इस प्रकार इसमे भगवान नेमिनाथ एव श्री कृष्ण के जीवन एव उनके पूर्व-भवो का वर्णन है। कृति की भाषा काव्यमय एव प्रवाहयुक्त है। इसकी स० 1571 मे लिखित एक प्रति आमेर शास्त्र भडार जयपुर मे सग्रहीत है।

7 मल्लिनाथ चरित्र--- 20 वें तीर्थंकर मल्लिनाथ के जीवन पर यह एक छोटा सा काव्य ग्रन्थ है जिसमे 7 सर्ग है।

8 पार्श्वनाथ चरित्र--- इसमे 23 वे तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के जीवन का वर्णन है। यह एक 23 सर्ग वाला सुन्दर काव्य है। मगलाचरण के पश्चात् कुन्दकुन्द, अकलक, समन्तभद्र, जिनसेन आदि आचार्यों को स्मरण किया गया है।

9 सुदर्शन चरित्र--- इस प्रबन्ध काव्य मे सेठ सुदर्शन के जीवन का वर्णन किया गया है, जो आठ परिच्छेदों मे पूर्ण होता है। काव्य की भाषा सुन्दर एव प्रभावयुक्त है।

10 सुकुमाल चरित्र--- यह एक छोटा सा प्रबन्ध काव्य है, जिसमे मुनि सुकुमाल के जीवन का पूर्व-भव सहित वर्णन किया गया है। पूर्व मे हुआ वैर-भाव किस प्रकार अगले जीवन मे भी चलता रहता है इसका वर्णन इस काव्य में सुन्दर रीति से हुआ है। इसमे

सुकुमाल के वैभव पूर्ण जीवन एव मुनि अवस्था की घोर तपस्या का अति सुन्दर एव रोमाचकारी वर्णन मिलता है। पूरे काव्य मे 9 सर्ग है।

11. <u>मूलाचार प्रदीप</u>—यह आचार शास्त्र का ग्रन्थ है जिसमे जैन साधु के जीवन मे कौन कौन सी क्रियाओं की साधना आवश्यक है—इन क्रियाओं का स्वरूप एव उनके भेद-प्रभेदो पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इसमे 12 अधिकार है जिसमे 28 मूलगुण, पचाचार, दशलक्षण धर्म, बारह अनुप्रेक्षा एव बारह तप आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है।

12. <u>सिद्धान्तसार दीपक</u>—यह करणानुयोग का ग्रन्थ है—इसमे उर्ध्वलोक, मध्यलोक एव पाताल लोक और उनमे रहने वाले देवो, मनुष्यो, तिर्यचो तथा नारकियो का विस्तृत वर्णन है। इसमे जैन सिद्धान्तानुसार सारे विश्व का भूगोलिक एव खगोलिक वर्णन आ जाता है। इसका रचना काल स 1481 है। रचना स्थान है—नगली नगर। प्रेरक थे इसके ब्र जिनदास।

जैन सिद्धान्त की जानकारी के लिये यह बडा उपयोगी है। ग्रन्थ 16 सर्गो मे है।

13 <u>वर्द्धमान चरित्र</u>—इस काव्य मे अन्तिम तीर्थंकर महावीर वर्द्धमान के पावन-जीवन का वर्णन किया गया है। प्रथम 6 सर्गो मे महावीर के पूर्व भवो का एव शेष 13 अधिकारो मे गर्भ कल्याणक से लेकर निर्वाण प्राप्ति तक की विभिन्न जीवन घटनाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। भाषा सरल किन्तु काव्यमय है। वर्णन शैली अच्छी है। कवि जिस किसी वर्णन को जब प्रारम्भ करता है तो वर्णन करते करते उसी मे मग्न हो जाता है।

14. <u>यशोधर चरित्र</u>—राजा यशोधर का जीवन जैन समाज मे बहुत प्रिय रहा है। इसलिये इस पर विभिन्न भाषाओ मे कितनी ही कृतियां मिलती है। सकलकीर्ति की यह कृति संस्कृत भाषा की सुन्दर रचना है। इसमे आठ सर्ग है। इसे हम एक प्रबन्ध काव्य कह सकते है।

15 <u>सद्भाषितावलि</u>—यह एक छोटा सा सुभाषित ग्रन्थ है जिसमे धर्म, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, इन्द्रियविषय स्त्री महत्वाश, कामसेवन, निर्ग्रन्थ सेवा, तप, त्याग, राग, द्वेष, लोभ आदि विषयो पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

16. श्रीपाल चरित्र—यह सकलकीर्ति का एक काव्य ग्रन्थ है जिसमे 7 परिच्छेद है। कोटीभट श्रीपाल का जीवन अनेक विशेषताओ से भरा हुआ है। राजा से कुष्टी होना, समुद्र मे गिरना, सूली पर चढना आदि कितनी ही घटनाये उसके जीवन मे एक के बाद दूसरी आती है जिससे उसका सारा जीवन नाटकीय बन जाता है। सकलकीर्ति ने इसमे बडा सुन्दर रीति से प्रतिपादित किया है। इस चरित्र की रचना कर्मफल सिद्धान्त को पुरुषार्थ से अधिक विश्वसनीय सिद्ध करने के लिये की गई है। मानव ही क्या विश्व के सभी जीवधारियो का सारा व्यवहार उसके द्वारा उपार्जित पाप-पुण्य पर आधारित है। उसके सामने पुरुषार्थ कुछ भी नही कर सकता। काव्य पठनीय है।

17. <u>शान्तिनाथ चरित्र</u>—शान्तिनाथ 16 वे तीर्थंकर थे। तीर्थंकर के साथ-साथ वे कामदेव एव चक्रवर्ती भी थे। उनके जीवन की विशेषताये बतलाने के लिये इस काव्य की रचना की गई है। काव्य मे 16 अधिकार है तथा 3475 श्लोक संख्या प्रमाण है। इस काव्य को महाकाव्य की सज्ञा मिल सकती है। भाषा अलकारिक एव वर्णन प्रभावमय है। प्रारम्भ मे कवि ने श्रृगार-रस से ओत-प्रोत काव्य की रचना क्यो नही करनी चाहिये इस पर अच्छा प्रकाश डाला है। काव्य सुन्दर एव पठनीय है।

18. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार— इस कृति में श्रावकों के आचार-धर्म का वर्णन है। श्रावकाचार 24 परिच्छेदों में विभक्त है, जिसमे आचार शास्त्र पर विस्तृत विवेचन किया गया है। भट्टारक सकलकीर्ति स्वय मुनि भी थे—इसलिये उनसे श्रद्धालु भक्त आचार-धर्म के विषय मे विभिन्न प्रश्न प्रस्तुत करते होंगे—इसलिये उन सबके समाधान के लिये कवि ने इस ग्रन्थ का निर्माण किया। भाषा एव शैली की दृष्टि से रचना सुन्दर है। कृति मे रचनाकाल एव रचना स्थान नही दिया गया है।

19. पुराणसार सग्रह— प्रस्तुत पुराण सग्रह मे 6 तीर्थकर के चरित्रो का सग्रह है और य तीर्थकर है –आदिनाथ, चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एव महावीर वर्द्धमान। भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से "पुराणसार सग्रह" प्रकाशित हो चुका है। प्रत्येक तीर्थकर का चरित्र अलग-अलग सर्गों में विभक्त है जो निम्न प्रकार है.—

आदिनाथ चरित्र	5 सर्ग
चन्द्रप्रभ चरित्र	1 सर्ग
शान्तिनाथ चरित्र	6 सर्ग
नेमिनाथ चरित्र	5 सर्ग
पार्श्वनाथ चरित्र	5 सर्ग
महावीर चरित्र	5 सर्ग

20 व्रतकथा कोप— व्रतकथा कोष की एक हस्तलिखित प्रति जयपुर के दि. जैन मन्दिर पाटोदी के शास्त्र भडार मे सग्रहीत है। इनमे विभिन्न व्रतो पर आधारित कथाओ का सग्रह है। ग्रन्थ की पूरी प्रति उपलब्ध नही होने से अभी तक यह निश्चित नही हो सका कि भट्टारक सकलकीर्ति ने कितनी व्रत कथाये लिखी थी।

21. परमात्मराज स्तोत्र— यह एक लघुस्तोत्र है, जिसमे 16 पद्य है। स्तोत्र सुन्दर एव भावपूर्ण है। इसका 1 प्रति जयपुर के दि. जैन मन्दिर पाटोदी के शास्त्र भडार मे सग्रहीत है।

उक्त सस्कृत कृतियो के अतिरिक्त पञ्चपरमेष्ठिपूजा, अष्टान्हिका पूजा, सोलहकारण पूजा, गणधरवलय पूजा, द्वादशानुप्रेक्षा एव सारचतुर्विशतिका आदि और कृतिया है जो राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो मे उपलब्ध होती है।

15. भट्टारक ज्ञानभूषण

ज्ञानभूषण नाम के भी चार भट्टारक हुए है। इसमे सर्व प्रथम भट्टारक सकलकीर्ति की परम्परा मे भट्टारक भवनकीर्ति के शिष्य थे। दूसरे ज्ञानभूषण भट्टारक वीरचन्द्र के शिष्य थे जिनका सम्बन्ध सूरत शाखा के भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति की परम्परा से था। ये सवत् 1600 से 1616 तक भट्टारक रहे। तीसरे ज्ञानभूषण का सम्बन्ध अटेर शाखा से रहा था और इनका समय 17 वी शताब्दी का माना जाता है और चौथे ज्ञानभूषण नागौर गादी के भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य थे। इनका समय 18 वी शताब्दी का अन्तिम चरण था।

---

1. देखिये भट्टारक पट्टावलि शास्त्र भण्डार भ. यशः कीर्ति दि. जैन सरस्वती भवन, ऋषभदेव, (राजस्थान)

प्रस्तुत भट्टारक ज्ञानभूषण पहिले भट्टारक विमलेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे और बाद में इन्होंने भट्टारक भुवनकीर्ति को भी अपना गुरु स्वीकार कर लिया था। ज्ञानभूषण एव ज्ञानकीर्ति ये दोनो ही सगे भाई एव गुरु भाई थे और वे पूर्वी गोलालारे जाति के श्रावक थे। लेकिन सवत् 1535 मे सागवाडा एव नोगाम मे एक साथ दो प्रतिष्ठाए प्रारम्भ हुई। सागवाडा मे होने वाली प्रतिष्ठा के सचालक भट्टारक ज्ञानभूषण और नोगाम की प्रतिष्ठा महोत्सव का सचालन ज्ञानकीर्ति ने किया। यही से भट्टारक ज्ञानभूषण वृहद् शाखा के भट्टारक माने जाने लगे और भट्टारक ज्ञानकीर्ति लघु शाखा के गुरु कहलाने लगे।[1]

एक नन्दि सघ की पट्टावली से ज्ञात होता है कि ये गुजरात के रहने वाले थे। गुजरात मे ही उन्होने सागार-धर्म धारण किया, अहीर (आभीर) देश मे ग्यारह प्रतिमाए धारण की और वाग्वर या बागड देश मे दुर्धर महाव्रत ग्रहण किये। तैलव देश के यतियो मे इनकी बडी प्रतिष्ठा थी। तैलव देश के उत्तम पुरुषो ने उनके चरणो की वन्दना की, द्रविड देश के विद्वानो ने उनका स्तवन किया, महाराष्ट्र मे उन्हे बहुत यश मिला, सौराष्ट्र के धनी श्रावको ने उनके लिए महामहोत्सव किया। रायदेश (ईडर के आस-पास का प्रान्त) के निवासियो ने उनके वचनो को अतिशय प्रमाण माना, मेरूभाट (मेवाड) के मूर्ख लोगो को उन्होने प्रतिबोधित किया, मालवा के भव्यजनों के हृदय-कमल को विकसित किया, मेवात मे उनके अध्यात्म-रहस्यपूर्ण व्याख्यान से विविध विद्वान् श्रावक प्रसन्न हुए। कुरुजागल के लोगो का अज्ञान रोग दूर किया, बैराठ (जयपुर के आस-पास) के लोगो को उभय मार्ग (सागार, अनगार) दिखलाये, नमियाड (नीमाड) मे जैन धर्म की प्रभावना की। भैरव राजा ने उनकी भक्ति की इन्द्रराज ने चरण पूजे, राजाधिराज देवराज ने चरणो की आराधना की। जिन धर्म के आराधक मुदलियार, रामनाथराय, बोम्मरसराय, कलपराय, पाडुराय आदि राजाओ ने पूजा की और उन्होने अनेक तीर्थो की यात्रा की। व्याकरण-छन्द-अलकार-साहित्य-तर्क-आगम-आध्यात्म आदि शास्त्र रूपी कमलो पर विहार करने के लिए वे राजहस थे और शुद्ध ध्यानामृत-पान की उन्हे लालसा थी।[2] ये उक्त विवरण कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण भी हो सकता है लेकिन इतना अवश्य है कि ज्ञानभूषण अपने समय के प्रसिद्ध सन्त थे और उन्होने अपने त्याग एव विद्वत्ता से सभी को मुग्ध कर रखा था।

ज्ञानभूषण भट्टारक भुवनकीर्ति के पश्चात् सागवाडा मे भट्टारक गादी पर बैठे। अब तक सबसे प्राचीन उल्लेख सवत् 1531 बैशाख सुदी 2 का मिलता है जब कि इन्होने डूगरपुर मे आयोजित प्रतिष्ठा महोत्सव का सचालन किया था। उस समय डूगरपुर पर रावल सोमदास एव रानी गुराई का शासन था।[3] ज्ञानभूषण भट्टारक गादी पर सवत् 1531 से 1557-58 तक रहे। सवत् 1560 मे उन्होने तत्वज्ञान तरगिणी की रचना समाप्त की थी इसकी पुष्पिका मे इन्होने अपने नाम के पूर्व मुमुक्षु शब्द जोडा है जो अन्य रचनाओ मे नही मिलता। इससे ज्ञात होता है कि इसी वर्ष अथवा इससे पूर्व ही इन्होने भट्टारक पद छोड दिया था।

साहित्य साधना

ज्ञानभूषण भट्टारक बनने से पूर्व और इस पद को छोडने के पश्चात् भी साहित्य-साधना मे लगे रहे। वे जबरदस्त साहित्य सेवी थे। प्राकृत, सस्कृत, हिन्दी, गुजराती एव राजस्थानी

---

1. देखिये भट्टारक पट्टावलि शास्त्रभण्डार भ. यश.कीर्ति दि. जैन सरस्वती भवन ऋषभदेव, (राजस्थान)
2. देखिये प. नाथूरामजी प्रेमी कृत जैन साहित्य और इतिहास पृ. 381-82
3. सवत् 1531 वर्षे वैसाख बुदी 5 बुधे श्री मूलसघे भ. श्री सकलकीर्तिस्तत्पट्टे भ. भुवनकीर्ति देवास्तत्पट्टे भ. श्री ज्ञानभूषणस्तदुपदेशात् मेघा भार्या टीगू प्रणमति श्री गिरिपुर रावल श्री सोमदास राज्ञी गुराई सुराज्ये।

भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। इन्होंने संस्कृत एवं हिन्दी में मौलिक कृतियां निबद्ध कीं और प्राकृत ग्रन्थो की संस्कृत टीकाए लिखी। यद्यपि संख्या की दृष्टि से इनकी कृतिया अधिक नही है फिर भी जो कुछ है वे ही इनकी विद्वत्ता एव पाडित्य को प्रदर्शित करने के लिये पर्याप्त हैं। श्री नाथूराम जी प्रेमी ने इनके "तत्वज्ञानतरंगिणी, सिद्धान्तसार भाष्य, परमार्थोपदेश, आदीश्वर फाग, भक्तामरोद्यापन, सरस्वती पूजा" ग्रन्थो का उल्लेख किया है।[2] पडित परमानन्द जीन उक्त रचनाओ के अतिरिक्त सरस्वती स्तवन, आत्म सम्बोधन आदि का और उल्लेख किया है।[3] इधर राजस्थान के जैन ग्रन्थ भडारो की जब से लेखक ने खोज एवं छानबीन की है तब से उक्त रचनाओं के अतिरिक्त इनके और भी ग्रन्थो का पता लगा है। अब तक इनकी जितनी रचनाओ का पता लग पाया है उनके नाम निम्न प्रकार है:—

संस्कृत ग्रन्थ

1. आत्मसबोधन काव्य
2. ऋषिमंडल पूजा[4]
3. तत्वज्ञान तरगिणी
4. पूजाष्टक टीका
5. पचकल्याणकोद्यापन पूजा[5]
6. भक्तामर पूजा[6]
7. श्रुत पूजा[7]
8. सरस्वती पूजा[8]
9. सरस्वती स्तुति[9]
10. शास्त्र मडल पूजा[10]
11. दशलक्षण व्रतोद्यापन पूजा[11]

तत्वज्ञानतरगिणी —इसे ज्ञानभूषण की उत्कृष्ट रचना कही जा सकती है। इसमे शुद्ध आत्म तत्व की प्राप्ति के उपाय बतलाये गये ह। रचना अधिक बडी नहीं है किन्तु कवि ने उसे 18 अध्यायो मे विभाजित किया है इसकी रचना स 1560 मे हुई थी जब वे भट्टारक पद छोड चुके थे और आत्मतत्व की प्राप्ति के लिये मुमुक्षु बन चुके थे। रचना काव्यत्वपूर्ण एव विद्वत्ता लिये हुए है।

16. भट्टारक शुभचन्द्र

शुभचन्द्र भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य थे। वे अपने समय के प्रसिद्ध भट्टारक, साहित्य प्रेमी, धर्म-प्रचारक एव शास्त्रो के प्रबल विद्वान् थे।

---

2. देखिये प. नाथूरामजी प्रेमी कृत जैन साहित्य और इतिहास पृ 382
3. देखिये प. परमानन्द जी का "जैन-ग्रन्थ प्रशस्ति-सग्रह"
4. राजस्थान क जैन शास्त्र भडारो की ग्रन्थ सूची भाग चतुर्थ पृ. स 463
5. " " 650
6. " " 523
7. " " 537
8. " " 515
9. राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारो की ग्रन्थ सूची भाग चतुर्थ पृ. स. 657
10. " " 830
11 " " 830

इनका जन्म संवत् 1530-40 के मध्य कभी हुआ होगा। ये जब बालक थे तभी से इनका इन भट्टारकों से सम्पर्क स्थापित हो गया। प्रारम्भ में इन्होंने अपना समय संस्कृत एवं प्राकृत भाषा के ग्रन्थो के पढने में लगाया। व्याकरण एव छन्द शास्त्र में निपुणता प्राप्त की और फिर भट्टारक ज्ञानभूषण एवं भट्टारक विजयकीर्ति के सान्निध्य में रहने लगे। श्री वी.पी. जोहरापुरकर के मतानुसार ये सवत् 1573 मे भट्टारक बने।[4] और वे इसी पद पर संवत् 1613 तक रहे। इस तरह शुभचन्द्र ने अपने जीवन का अधिक भाग भट्टारक पद पर रहते हुए ही व्यतीत किया। बलात्कारगण की ईडर शाखा की गद्दी पर इतने समय तक सम्भवत. ये ही भट्टारक रहे। इन्होंने अपनी प्रतिष्ठा एव पद का खूब अच्छी तरह सदुपयोग किया और इन 40 वर्षों में राजस्थान, पंजाब, गुजरात एवं उत्तर प्रदेश मे भगवान् महावीर के शासन का जबरदस्त प्रभाव स्थापित किया।

विद्वत्ता

शुभचन्द्र शास्त्रों के पूर्ण मर्मज्ञ थे। ये षट् भाषा-कवि चक्रवर्ती कहलाते थे। छह भाषाओ में सम्भवत. संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती एव राजस्थानी भाषाये थी। ये त्रिविध विद्याधर (शब्दागम, युक्त्यागम एव परमागम) के ज्ञाता थे। पट्टावलि के अनुसार ये प्रमाणपरीक्षा, पत्र परीक्षा, पुष्प परीक्षा (?) परीक्षा-मुख, प्रमाण-निर्णय, न्यायमकरन्द, न्यायकुमुदचन्द्र, न्याय विनिश्चय. श्लोकवार्तिक, राजवार्तिक, प्रमेयकमल मार्त्तण्ड, आप्तमीमासा, अष्टसहस्री, चितामणिमीमामा, विवरण वाचस्पति, तत्व कौमुदी आदि न्याय ग्रन्थो के जैनेन्द्र, शाकटायन, एन्द्र, पाणिनी, कलाप आदि व्याकरण ग्रन्थो के, त्रैलोक्यसार गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, सुविज्ञप्ति, अध्यात्माष्ट-सहस्री (?) और छन्दोलकार आदि महाग्रन्थो के पारगामी विद्वान् थे।[5]

साहित्यिक सेवा

शुभचन्द्र ज्ञान के सागर एव अनेक विद्याओ में पारंगत विद्वान् थे। वे वक्तृत्व-कला में पटु तथा आकर्षक व्यक्तित्व वाले सन्त थे। इन्होने जो साहित्य सेवा अपने जीवन मे की थी वह इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे लिखने योग्य है। अपने संघ की व्यवस्था तथा धर्मोपदेश एव आत्म-साधना के अतिरिक्त जो भी समय इन्हे मिला उसका साहित्य-निर्माण मे ही सदुपयोग किया गया। वे स्वय ग्रन्थो का निर्माण करते, शास्त्र भण्डारो की सम्हाल करत, अपने शिष्यो से प्रतिलिपिया करवाते, तथा जगह-जगह शास्त्रागार खोलने की व्यवस्था कराते थे। वास्तव में ऐसे ही सन्तो के सद्प्रयास से भारतीय साहित्य सुरक्षित रह सका है।

पाण्डवपुराण इनकी संवत् 1608 की कृति है। उस समय साहित्यिक-जगत में इनकी ख्याति चरमोत्कर्ष पर थी। समाज में इनकी कृतिया प्रिय बन चुकी थीं और उनका अत्यधिक प्रचार हो चुका था। सवत् 1608 तक जिन कृतियो को इन्होने समाप्त कर लिया था उनमें (1) चन्द्रप्रभ चरित्र (2) श्रेणिक चरित्र (3) जीवधर चरित्र (4) चन्दना कथा (5) अष्टान्हिका कथा (6) सद्वृत्तिशालिनी (7) तीन चौबीसी पूजा (8) सिद्धचक्र पूजा (9) सरस्वती पूजा (10) चितामणि पूजा (11) कर्मदहन पूजा (12) पार्श्वनाथ काव्य पंजिका (13) पल्यव्रतोद्यापन (14) चारित्र शुद्धिविधान (15) सशयवदन विदारण (16) अपशब्द खण्डन (17) तत्व निर्णय (18) स्वरूप सबोधन वृत्ति (19) अध्यात्म तरंगिणी (20) चितामणि प्राकृत व्याकरण (21) अगप्रज्ञप्ति आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उक्त साहित्य भट्टारक शुभचन्द्र के कठोर परिश्रम एव त्याग का फल है। इसके पश्चात्

4. देखिये भट्टारक सम्प्रदाय पृष्ठ सख्या 158
5. देखिये नाथूरामजी प्रेमी कृत-जैन साहित्य और इतिहास पृ.सं. 383

इन्होंने और भी कृतियां लिखीं ।[1] संस्कृत रचनाओं के अतिरिक्त इनकी कुछ रचनायें हिन्दी में भी उपलब्ध होती हैं । लेकिन कवि ने पाण्डव पुराण में उनका कोई उल्लेख नहीं किया है । राजस्थान के प्राय: सभी ग्रन्थ भण्डारो में इनकी अब तक जो कृतियां उपलब्ध हुई हैं वे निम्न प्रकार हैं:—

संस्कृत रचनाएं

1. ऋषि मंडल पूजा
2. अनन्त व्रत पूजा
3. अम्बिका कल्प
4. अष्टान्हिका व्रत कथा
5 अष्टान्हिका पूजा
6. अढाई द्वीप पूजा
7. करकण्डु चरित्र
8. कर्मदहन पूजा
9. कार्तिकेयानुप्रेक्षा टीका
10. गणधरवलय पूजा
11. गरावली पूजा
12. चतुर्विंशति पूजा
13. चन्दना चरित्र
14. चन्दनषष्टिव्रत पूजा
15. चन्द्रप्रभ चरित्र
16. चरित्र शुद्धि विधान
17. चिंतामणि पार्श्वनाथ पूजा
18. जीवंधर चरित्र
19. तेरह द्वीप पूजा
20. तीन चौबीसी पूजा
21. तीस चौबीसी पूजा
22. त्रिलोक पूजा
23. त्रपन क्रियागति
24. नन्दीश्वर पंक्ति पूजा
25. पच कल्याणक पूजा
26. पंच गणमाल पूजा
27. पंचपरमेष्टी पूजा
28. पल्यव्रतोद्यापन
29 पाण्डवपुराण
30. पार्श्वनाथ काव्य पंजिका
31. प्राकृत लक्षण टीका
32. पुष्पांजलिव्रत पूजा
33. प्रद्युम्न चरित्र
34. बारहसौ चौतीस व्रत पूजा
35. लघु सिद्ध चक्रपूजा
36. बृहद् सिद्ध पूजा
37. श्रेणिक चरित्र
38 समयसार टीका
39 सहस्रगुणित पूजा
40 सुभाषितार्णव

17. भट्टारक श्रीभूषण

ये भट्टारक भानुकीर्ति के शिष्य थे तथा नागौर गादी के संवत् 1705 में भट्टारक बने थे। 7 वर्ष तक भट्टारक रहने के पश्चात् इन्होने अपने शिष्य धर्मचन्द्र को भट्टारक गादी देकर एक उत्तम उदाहरण उपस्थित किया था । ये खण्डेलवाल एवं पाटनी गौत्र के थे। साहित्य रचना में इन्हें विशेष रुचि थी। इनकी कुछ रचनायें निम्न प्रकार है:—

अनन्तचतुर्दशी पूजा	संस्कृत
अनन्तनाथ पूजा	,,
भक्तामर पूजा विधान	,,
श्रुतस्कंध पूजा	,,
सप्तर्षि पूजा	,,

18. भट्टारक धर्मचन्द्र

भट्टारक धर्मचन्द्र का पट्टाभिषेक मारोठ में संवत् 1712 में हुआ था। ये नागौर गादी के भट्टारक थे। एक पट्टावली के अनुसार ये 9 वर्ष गृहस्थ रहे, 20 वर्ष तक साधु अवस्था में रहे तथा 15 वष तक भट्टारक पद पर आसीन रहे। संस्कृत एव हिन्दी दोनों के हो थे।

1. विस्तृत प्रशस्ति के लिये देखिये लेखक द्वारा सम्पादित 'प्रशस्ति संग्रह' पृ.सं. 7।

अच्छे विद्वान् थे और इन्होंने संवत् 1726 में 'गौतमस्वामीचरित' की रचना की थी। संस्कृत का यह एक अच्छा काव्य है। मारोठ (राजस्थान) में इसकी रचना की गई थी। उस समय मारोठ पर रघुनाथ का राज्य था। उक्त रचना के अतिरिक्त नेमिनाथ बीनती, सम्बोध पंचासिका एवं सहस्रनाम पूजा कृतियां और मिलती हैं।

19. पं. खेता

सम्यक्त्व कौमुदी के रचयिता पण्डित खेता राजस्थानी विद्वान् थे। यह एक कथा-कृति है जिसका राजस्थान में विशेष प्रचार रहा और यहा के शास्त्र भण्डारो मे इसकी अनेकों प्रतिया उपलब्ध होती हैं। सम्यक्त्व कौमुदी की एक पाण्डुलिपि संवत् 1582 में प्रतिलिपि करवा कर चंपावती नगरी में ब्र. बूचराज को प्रदान की गयी थी। ये वैद्य-विद्या में पारगत थे और अपनी विद्या के कारण रणथम्भौर दुर्ग के बादशाह शेरशाह द्वारा सम्मानित हुये थे।

20. पण्डित मेधावी

पडित मेधावी संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् थे। ये भट्टारक जिनचन्द्र के प्रिय शिष्य थे। इनके पिता का नाम उद्धरण साहु तथा माता का नाम भीषुही था। जाति से अग्रवाल जैन थे। एक प्रशस्ति में उन्होंने अपने आपको पण्डित-कुंजर लिखा है।

> अग्रोतवंशज : साधुर्लवदेवाभिधानक. ।
> तत्त्वगुद्धरणः संज्ञा तत्पत्नी भीषुहीप्सुभिः ॥32॥
>
> तयो पुत्रोस्ति मेधावी नामा पडितकुंजर. ।
> आप्तागमविचारज्ञो जिनपदाम्बुज षट्पदः ॥33॥

इन्होने इसी तरह अन्य प्रशस्तियो में भी अपना परिचय दिया है । इन्होने संवत् 1541 में धर्मसग्रह श्रावकाचार की रचना नागौर में सम्पन्न की थी । वैसे इन्होंने इसे हिसार मे प्रारम्भ किया था। उन्होने यह भी सकेत दिया है कि प्रस्तुत धर्मसग्रह श्रावकाचार, समन्तभद्र वसुनन्दि एवं आशाधर के विचारो के आधार पर ही अपने आचार शास्त्र की रचना की है। इस ग्रन्थ की विस्तृत प्रशस्ति दी हुई है।

21. पण्डित जिनदास

पण्डित जिनदास रणथम्भौर दुर्ग के समीप स्थित नवलक्षपुर के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम खेता था जिनका ऊपर परिचय दिया आ चुका है। पण्डित जिनदास भी आयुर्वेद विशारद थे। इन्होंने 'होली रेणुका चरित्र' की रचना संवत् 1608 मे (सन् 1551 ई.) मे समाप्त की थी। रचना अभी तक अप्रकाशित है ।

22. पण्डित राजमल्ल

पं. राजमल्ल संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। वे जयपुर से दक्षिण की ओर 40 मील दूरी पर स्थित बैराठ नगर के रहने वाले थे। व्याकरण, सिद्धान्त, छंदशास्त्र और स्याद्वाद विद्या में पारंगत थे। अध्यात्म का प्रचार करने के लिये वे मारवाड, मेवाड एवं ढूंढाड के नगरों में भ्रमण करते। इन्होंने आचार्य अमृतचन्द्र कृत समयसार टीका पर राजस्थानी में टीका लिखी थी। अब तक इनके निम्न ग्रन्थ उपलब्ध हो चुके हैं:—जम्बू स्वामीचरित्र, अध्यात्मकमलमार्तण्ड, लाटी संहिता, छन्दो विद्या एवं पंचाध्यायी। जम्बूस्वामी चरित्र की रचना संवत् 1632 में

सम्पन्न हुई थी। इसमें अन्तिम केवली जम्बूस्वामी का जीवन चरित्र निबद्ध है। 'अध्यात्मकमल-मार्तण्ड' 250 श्लोक प्रमाण रचना है। इसमें सात तत्व एवं नौ पदार्थों का वर्णन है। लाटी संहिता आचार शास्त्र है इसमें सात सर्ग हैं और 1600 के लगभग पद्यों की संख्या है। इसकी रचना बैराट नगर के जिन मन्दिर में सम्पन्न हुई थी। पचाध्यायी में पांच अध्याय होने चाहिये लेकिन बीच में कवि का निधन होने के कारण यह रचना पूर्ण नही की जा सकी। इनका समय 17वीं शताब्दी का है।

23. ब्र. कामराज

ब्र. कामराज भ. सकलभूषण के प्रशिष्य एवं भ. नरेन्द्रकीर्ति के शिष्य ब्र. प्रहलाद वर्णी के शिष्य थे। इन्होंने संवत् 1691 में 'जयपुराण' को मेवाड में समाप्त किया था। जिसका उल्लेख निम्न प्रकार है:—

> राष्ट्रस्यैतत्पुराणं शकमनुजपतेर्मेदपाटस्य पुर्यां
> पश्चात्संवत्सरस्य प्ररचितपटतः पच पंचाशतो हि।
> अभ्राभ्राक्षैकसवच्छरनिवियुजः (1555) फाल्गुने मासि पूर्णे-
> मुख्यायामोदयायो सुकविनयिनो लालजिष्णोश्च वाक्यात् ॥

24. पण्डित जगन्नाथ

पोमराज श्रेष्ठि के पुत्र पण्डित जगन्नाथ तक्षकगढ (वर्तमान नाम टोडारायसिंह) के रहने वाले थे। ये भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। इनके भाई वादिराज भी सस्कृत के बडे भारी विद्वान् थे। प. जगन्नाथ की अब तक 6 रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं जिनमे चतुर्विशति संधान स्वोपज्ञ टीका, सुखनिधान, सुषेण चरित, नमिनरेन्द्र स्तोत्र, कर्मस्वरूप वर्णन के नाम उल्लेखनीय हैं। सभी रचनायें सस्कृत भाषा की अच्छी रचनायें हैं।

25. वादिराज

ये खण्डेलवाल वशीय श्रेष्ठि पोमराज के दूसरे पुत्र थे। ये संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे तथा राजनीति में भी पटु थे। वादिराज ने अपने आपको धनजय, आशाधर और वाणभट्ट का पद धारण करने वाला दूसरा वाणभट्ट लिखा है। वहा के राजा राजसिंह को दूसरा जयसिंह तथा तक्षकनगर को दूसरे अणहिलपुर की उपमा दी है।

> धनञ्जयाशाधरवाग्भटाना धत्ते पद सम्प्रति वादिराज. ।
> खाडिल्लवशोद्भव-पोमसूनु, जिनोक्तिपीयूषसुतृप्तगात्रः ।।

वादिराज तक्षकनगर के राजा राजसिंह के महामात्य थे। राजसिह भीमसिह के पुत्र थे। वादिराज के चार पुत्र थे--रामचन्द्र, लालजी, नेमिदास और विमलदास।

वादिराज की तीन कृतियां मिलती हैं एक है वाग्भटालंकार की टीका कविचन्द्रिका' दूसरी रचना ज्ञानलोचन स्तोत्र तथा तीसरी सुलोचना चरित्र है। कविचन्द्रिका को इन्होंने संवत् 1729 को दीपमालिका के दिन समाप्त की थी। कवि 18वीं शताब्दि के प्रथम चरण के विद्वान् थे।

26. भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति

भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति भट्टारक जगत्कीर्ति के शिष्य थे। संवत् 1770 की माह बुदी 11 को आमेर में इनका पट्टाभिषेक हुआ था। उस समय आमेर अपने पूर्ण वैभव पर था और महाराजा सवाई जयसिंह उसके शासक थे। ये करीब 22 वर्ष तक भट्टारक पद पर रहे। इन्होंने समयसार पर एक संस्कृत टीका ईसरदा (राज.) में संवत् 1788 में समाप्त की थी। देवेन्द्रकीर्ति ने राजस्थान एवं विशेषत: ढूंढाड प्रदेश में विहार करके साहित्य का अच्छा प्रचार किया था।

27. भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति

भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति का जयपुर में भट्टारक गादी पर पट्टाभिषेक हुआ था। भ. पट्टावली में पट्टाभिषेक का समय सं. 1822 तथा बुद्धिविलास में संवत् 1823 दिया हुआ है। सुरेन्द्र-कीर्ति संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। अब तक इनकी निम्न रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं:—

1. अष्टाह्निका कथा
2. पंच कल्याणक विधान
3. पंचमास चतुर्दशी व्रतोद्यापन
4. पुरन्दर-व्रतोद्यापन
5. लब्धि विधान
6. सम्मेदशिखर पूजा
7. प्रतापकाव्य

28. आचार्य ज्ञानसागर

वर्तमान शताब्दि में संस्कृत भाषा में महाकाव्यों के रचना की परम्परा को जीवित रखने वाले विद्वानों में जैनाचार्य ज्ञानसागरजी महाराज का नाम विशेषत: उल्लेखनीय है। वे 50 वर्षों से भी अधिक समय तक संस्कृत वाङ्मय की अनवरत सेवा करने में लगे रहे।

आचार्य श्री का जन्म राजस्थान के सीकर जिलान्तर्गत राणोली ग्राम में संवत् 1948 में एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम चतुर्भुज एवं माता का नाम घेवरी देवी था। उस समय उनका नाम भूरामल रखा गया। गांव की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उनको संस्कृत भाषा के उच्च अध्ययन की इच्छा जाग्रत हुई और माता-पिता की अनुमति लेकर ये वाराणसी चले गये जहां उन्होंने संस्कृत एवं जैन सिद्धान्त का गहरा अध्ययन करके शास्त्री की परीक्षा पास की। राजस्थान के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् प. चैनसुखदासजी न्याय-तीर्थ आपके सहपाठियों में से थे। काशी के स्नातक बनने के पश्चात् ये वापिस ग्राम आ गये और ग्रन्थों के अध्ययन के साथ-साथ स्वतन्त्र व्यवसाय भी करने लगे। लेकिन काव्य-निर्माण में विशेष रुचि लेने के कारण उनका व्यवसाय में मन नहीं लगा। विवाह की चर्चा आने पर उन्होंने आजन्म अविवाहित रहने की अपनी हार्दिक इच्छा व्यक्त की और अपने आपको मां भारती की सेवा में समर्पित कर दिया।

महाकवि के रूप में—

आचार्य श्री ने तीन महाकाव्य वीरोदय, जयोदय एवं दयोदय चम्पू चरित्र काव्य-समुद्रदत्त चरित्र, सुदर्शनोदय, भद्रोदय आदि एवं हिन्दी काव्य-ऋषभचरित, भाग्योदय, विवेकोदय आदि

करीब 20 काव्य लिखकर मां भारती की अपूर्व सेवा की है। 'वीरोदय' भगवान महावीर के जीवन पर आधारित महाकाव्य है जो हमें महाकवि कालिदास, भारवि, श्रीहर्ष एव माघ आदि के महाकाव्यों की याद दिलाता है। इस काव्य में इन कवियों के महाकाव्यों की शैली को पूर्ण रूप से अपनाया गया है। तथा "माघे सन्ति त्रयो गुणाः" वाली कहावत में वीरोदय काव्य में पूर्णतः चरितार्थ होती है।

जयोदय काव्य में जयकुमार सुलोचना की कथा का वर्णन किया गया है। काव्य का प्रमुख उद्देश्य अपरिग्रह व्रत का महात्म्य दिखलाना है। इस काव्य में 28 सर्ग हैं जो आचार्य श्री के महाकाव्यों में सबसे बडा काव्य है। इसकी संस्कृत टीका भी स्वयं आचार्य श्री ने की है जिसमें काव्य का वास्तविक अर्थ समझने में पाठकों को सुविधा दी गई है। यह महाकाव्य संस्कृत टीका एव हिन्दी अर्थ सहित शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है।

दयोदय चम्पू में मृगसेन धीवर की कथा वर्णित है। महाकाव्यों में सामान्य वर्ग के व्यक्ति को नायक के रूप में प्रस्तुत करना जैन कवियों की परम्परा रही है और इस परम्परा के आधार पर इस काव्य में एक सामान्य जाति के व्यक्ति के व्यक्तित्व को उभारा गया है। धीवर जाति हिंसक होती है किन्तु मृगसेन द्वारा अहिंसा व्रत लेने के कारण इसके जीवन में कितना निखार आता है और अहिंसा व्रत का कितना महत्व है इस तथ्य को प्रस्तुत करने के लिये आचार्य श्री ने दयोदय चम्पू काव्य की रचना की है। इसमें सात लम्ब (अधिकार) है और संस्कृत गद्य पद्य में निर्मित यह काव्य संस्कृत भाषा का अनूठा काव्य है।

आचार्य श्री ने सस्कृत में काव्य रचना के साथ-साथ हिन्दी में भी कितने ही काव्य लिखे हैं। कुछ प्राचीन ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद किया तथा कर्त्तव्य-पथ-प्रदर्शन जैसी कृतियो द्वारा जन साधारण को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में दैनिक कर्तव्यो पर प्रकाश डाला है। ऋषभदेव चरित हिन्दी का एक प्रबन्ध काव्य है जिसके 17 अध्यायो में आदि तीर्थंकर ऋषभदेव का जीवन चरित निबद्ध है। इस काव्य में आचार्य श्री ने मानव को सामान्य धरातल से उठाकर जीवन को सुखी एव समुन्नत बनाने की प्रेरणा दी है।

उक्त विद्वानों के अतिरिक्त पं चैनसुखदास न्यायतीर्थ, प. इन्द्रलाल शास्त्री, प. मूलचन्द शास्त्री, प श्री प्रकाश शास्त्री के नाम विशेषत. उल्लेखनीय हैं। प चैनसुखदास जी का जैनदर्शनसार, भावना-विवेक, पावनप्रवाह, निक्षेपचक्र सस्कृत की उत्कृष्ट रचनाये है। जैन दर्शनसार मे जैन दर्शन के सार को जिस उत्तम रीति से प्रतिपादित किया गया है वह प्रशंसनीय है। प. मूलचन्द शास्त्री का अभी वचनदूतम् खण्ड काव्य प्रकाशित हुआ है। इस काव्य में मेघदूत की चतुर्थपंक्ति को लेकर राजुल के मनोभावो को नेमि के पास प्रेषित किया गया है।

जैन-संस्कृत महाकाव्य : 5

—डा. सत्यव्रत

भारतीय संस्कृति के विभिन्न अंगो की भांति साहित्य के उन्नयन तथा विकास में भी राजस्थान ने मूल्यवान् योग दिया है 1 । जैन-बहुल प्रदेश होने के नाते संस्कृत-महाकाव्य की समृद्धि में जैन कवियो ने श्लाघ्य प्रयत्न किया है। यह सुखद आश्चर्य है कि जैन साधुओ ने, दीक्षित जीवन तथा निश्चित दृष्टिकोण की परिधि में बद्ध होते हुए भी, साहित्य के व्यापक क्षेत्र में झाकने का साहस किया है, जिसके फलस्वरूप वे न केवल साहित्य की विभिन्न विधाओ की अपितु विभिन्न विधाओ की नाना शैलियों की रचनाओं से भारती के कोष को समृद्ध बनाने में सफल हुए हैं। राजस्थान के जैन कवियो ने शास्त्रीय, ऐतिहासिक, पौराणिक, चरितात्मक तथा चित्र-काव्य शैली के संस्कृत-महाकाव्यो की रचना करके संस्कृत काव्य-परम्परा पर अमिट छाप अंकित कर दी है।

शास्त्रीय-महाकाव्य —वाग्भट का नेमिनिर्वाण (बारहवी शताब्दी) राजस्थान में रचित शास्त्रीय शैली का कदाचित् प्राचीनतम जैन संस्कृत-महाकाव्य है। काव्य में यद्यपि इसके रचनाकाल अथवा रचना-स्थल का कोई उल्लेख नही है, किन्तु जैन सिद्धान्त भवन, आरा तथा पं दौर्बल्लि जिनदास शास्त्री की हस्तप्रति के अतिरिक्त प्रशस्ति-श्लोक के अनुसार नेमिनिर्वाण का निर्माता अहिछत्रपुर का वासी था, जो म. म. ओझा जी के विचार में नागौर का प्राचीन नाम है[2] ।

नेमि प्रभु के चरित के आधार पर जैन संस्कृत-साहित्य में दो महाकाव्यो की रचना हुई है। वाग्भट के प्रस्तुत काव्य के अतिरिक्त कीर्तिराज उपाध्याय का नेमिनाथ महाकाव्य इस विषय की अन्य महत्वपूर्ण कृति है । नेमिनिर्वाण की भांति नेमिनाथ महाकाव्य (पन्द्रहवी शताब्दी) मे भी प्रशस्ति का अभाव है, किन्तु कवि की गुरु परम्परा, विहार क्षेत्र आदि के आधार पर इसे राजस्थान रचित मानना सर्वथा न्यायोचित है। कीर्तिराज को उपाध्याय तथा आचार्य पद पर क्रमश: महेवा तथा जैसलमेर में प्रतिष्ठित किया गया था। कवि के जीवन-काल सम्वत् 1505, में लिखित काव्य की प्रति की बीकानेर मे प्राप्ति भी कीर्तिराज के राजस्थानी होने की ओर संकेत करती है ।

दोनों काव्यों में तीर्थंकर नेमिनाथ के जीवन-वृत्त की प्रमुख घटनाएं समान हैं, किन्तु उनके प्रस्तुतीकरण में बहुत अन्तर है । वाग्भट ने कथानक के स्वरूप और पल्लवन में बहुधा जिनसेन प्रथम के हरिवंश पुराण का अनुगमन किया है । दोनो में स्वप्नों की संख्या तथा क्रम समान है। देवताओं का आगमन, जन्माभिषेक, नेमि प्रभु की पूर्व-भवावली, तपश्चर्या,

1. भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में राजस्थान के योगदान के लिए देखिये ।
K. C. Jain : Jainism in Rajasthan, Sholapur, 1963

2. नेमिचन्द्र शास्त्री : संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृष्ठ 282.

केवल ज्ञान प्राप्ति, धर्मोपदेश तथा निर्वाण-प्राप्ति आदि घटनाएं भी जिनसेन के विवरण पर आधारित हैं। नेमिनाथ महाकाव्य की कथावस्तु अधिक विस्तृत नहीं है किन्तु कवि की अलंकारी-वृत्ति ने उसे सजा-संवार कर बारह सर्गों का विस्तार दिया है। नेमिनिर्वाण में मूल कथा से सम्बन्धित घटनाएं और भी कम हैं। सब मिलाकर भी उसका कथानक नेमिनाथ काव्य की अपेक्षा छोटा माना जाएगा। पर वाग्भट ने उसमें एक और वस्तु-व्यापार के परम्परागत वर्णनो को ठूंसकर और दूसरी ओर पुराण-वर्णित प्रसंगों को आवश्यकता से अधिक महत्व देकर उसे पन्द्रह सर्गों की विशाल काया प्रदान की है। ऐसा करने से वे अपने स्रोत तथा महाकाव्य के बाह्य तत्वों के प्रति भले ही निष्ठावान् रहे हों परन्तु वे स्वाभाविकता तथा संतुलन से दूर भटक गये हैं। वीतराग तीर्थंकर के जीवन से सम्बन्धित रचना में, पूरे छह सर्गों में, कुसुमावचय, जल-क्रीडा, चन्द्रोदय, मधुपान, सम्भोग आदि के शृंगारी वर्णनों की क्या सार्थकता है? स्पष्टतः वाग्भट काव्य-रूढियो के जाल से मुक्त होने में असमर्थ है। इसी परवशता के कारण उसे शान्त-पर्यवसायी काव्य में पान-गोष्ठी और रति-क्रीडा का रंगीला चित्रण करने में भी कोई वैचित्र्य दिखाई नहीं देता। काव्य-रूढियों का समावेश कीर्तिराज ने भी किया है, किन्तु उसने विवेक तथा संयम से काम लिया है। उसने जल-क्रीडा, सूर्यास्त, मधुपान आदि मूल कथा से असबद्ध तथा अनावश्यक प्रसंगो की तो पूर्ण उपेक्षा की है, नायक के पूर्वजन्म के वर्णन को भी काव्य में स्थान नहीं दिया है। उनके तप, समवसरण तथा देशना का भी बहुत संक्षिप्त उल्लेख किया है जिससे काव्य नेमिनिर्वाण जैसे विस्तृत वर्णनों से मुक्त रहता है। अन्यत्र भी कीर्तिराज के वर्णन सन्तुलन की परिधि का उल्लंघन नही करते। जहाँ वाग्भट ने तृतीय सर्ग में प्रातःकाल का वर्णन करके अन्त में जयन्त देव के शिवा के गर्भ में प्रविष्ट होने का केवल एक पद्य में उल्लेख किया है वहां कीर्तिराज ने नेमिनिर्वाण के अप्सराओं के आगमन के प्रसंग को छोडकर उसके द्वितीय तथा तृतीय सर्गों में वर्णित स्वप्नदर्शन तथा प्रभात वर्णन का केवल एक सर्ग में समाहार किया है। इसी प्रकार वाग्भट ने वसन्त वर्णन पर पूरा एक सर्ग व्यय किया है जबकि कीर्तिराज ने अकेले आठवें सर्ग का उपयोग छहों ऋतुओं का रोचक चित्रण करने में किया है।

नेमिनिर्वाण तथा नेमिनाथ महाकाव्य दोनो ही संस्कृत महाकाव्य के ह्रासकाल की रचनाएं हैं। इस युग के अन्य अधिकांश महाकाव्यो की तरह इनमें भी वे प्रवृत्तिया दृष्टिगत होती हैं जिनका प्रवर्तन भारवि ने किया था और जिनको विकसित कर माघ ने साहित्य पर प्रभुत्व स्थापित किया था। वाग्भट पर यह प्रभाव भरपूर पड़ा है जबकि कीर्तिराज अपने लिये एक समन्वित मार्ग निकालने में सफल हुए हैं। माघ का प्रभाव वाग्भट की वर्णन-शैली पर भी लक्षित होता है, उनके वर्णन माघ की तरह ही कृत्रिम तथा दूरारूढ कल्पना से आक्रान्त हैं। वाग्भट की प्रवृत्ति अलकरण की ओर है। कीर्तिराज के काव्य में सहजता है, जो काव्य की विभूति है और कीर्तिराज की श्रेष्ठता की द्योतक भी। कवित्व-शक्ति की दृष्टि से दोनो में अधिक अन्तर नही है[1]।

राजस्थान के शास्त्रीय महाकाव्यों में जिनप्रभसूरिकृत श्रेणिक चरित को प्रतिष्ठित पद प्राप्त है। वृध्दाचार्य प्रबन्धावली के जिनप्रभसूरि-प्रबन्ध के अनुसार जिनप्रभ मोहिल-वाडी लाडनूं के श्रीमाल ताम्बी गोत्रीय श्रावक महाधर के आत्मज थे[2]। सम्वत् 1356 में रचित श्रेणिकचरित अपरनाम 'दुर्गवृत्तिद्व्याश्रय महाकाव्य' जिनप्रभसूरि की काव्यकीर्ति का आधार-स्तम्भ है। अठारह सर्गों के इस महाकाव्य में भगवान् महावीर के समका-

1. नेमिनिर्वाण तथा नेमिनाथ महाकाव्य के विस्तृत तुलनात्मक विवेचन के लिये देखिये लेखक द्वारा सम्पादित नेमिनाथ महाकाव्य के मुद्रणाधीन संस्करण की भूमिका।

2. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, पृ. 33।

तीन राजा श्रेणिक का जीवनचरित वर्णित है। इसके प्रथम सात सर्ग पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके हैं, शेष ग्यारह सर्ग अभी अमुद्रित हैं। श्रेणिकचरित की एक हस्तलिखित प्रति जैन शालानो भण्डार, खम्भात में विद्यमान है। श्रेणिकचरित में शास्त्रीय और पौराणिक शैलियों के तत्वों का ऐसा मिश्रण है कि इसे गेटे के शब्दों में धरा तथा आकाश का मिलन कहा जा सकता है।

श्रेणिकचरित का कथानक स्पष्टतया दो भागों में विभक्त है। प्रथम ग्यारह सर्ग, जिनमें श्रेणिक की धार्मिकता और जिनेश्वर की देशनाओं का वर्णन है, प्रथम खण्ड के अन्तर्गत आते हैं। हार के खोने और उसकी खोज की कथा वाले शेष सात सर्गों का समावेश द्वितीय भाग में किया जा सकता है। कथानक के य दोनों खण्ड अतिसूक्ष्म तथा शिथिल तन्तु से आबद्ध हैं। कथानक में कतिपय अश तो सर्वथा अनावश्यक प्रतीत होते हैं। सुलसोपाख्यान इसी कोटि का प्रसग है, जो काव्य में बलात् ठूंसा गया है, यद्यपि कथावस्तु में इसका कोई औचित्य नहीं है।

श्रेणिकचरित के कर्त्ता का मुख्य उद्देश्य काव्य के व्याज से कातन्त्र व्याकरण की दुर्गवृत्ति के अनुसार व्याकरण के सिध्द प्रयोगो को प्रदर्शित करना है। इस दृष्टि से वे भट्टि के अनुगामी हैं और भट्टिकाव्य की तरह श्रेणिकचरित को न्यायपूर्वक शास्त्रकाव्य कहा जा सकता है।1।

टीका की अवतरणिका के प्रासंगिक उल्लेख के अनुसार जयशेखरसूरि के जैन कुमारसम्भव की रचना खम्भात मे सम्पन्न हुई थी, किन्तु कवि के शिष्य धर्मशेखर ने काव्य पर टीका साँभर में लिखी, इसका स्पष्ट निर्देश टीका-प्रशस्ति मे किया गया है2। अतः यहा इसका सामान्य परिचय देना अप्रासगिक न होगा। महाकवि कालिदास-कृत कुमारसम्भव की भाँति जैन कुमारसम्भव का उद्देश्य कुमार (भरत) के जन्म का वर्णन करना है, किन्तु जिस प्रकार कुमारसम्भव के प्रामाणिक अश (प्रथम आठ सर्ग) में कार्तिकेय का जन्म वर्णित नही हैं, वैसे ही जैन कवि के महाकाव्य मे भी भरतकुमार के जन्म का कही उल्लेख नहीं हुआ है। और, इस तरह दोनो काव्यो के शीर्षक उनके प्रतिपादित विषय पर पूर्णतया चरितार्थ नही होते। परन्तु जहा कालिदास ने अष्टम सर्ग में पार्वती के गर्भाधान के द्वारा कुमार कार्तिकेय के भावी जन्म की व्यजना कर काव्य को समाप्त कर दिया है, वहाँ जैन कुमारसम्भव मे सुमंगला के गर्भाधान का निर्देश करने के पश्चात् भी (6/74) काव्य को पाच अतिरिक्त सर्गो मे लिखा गया है। यह अनावश्यक विस्तार कवि की वर्णनात्मक प्रकृति के अनुरूप भले ही हो, इससे काव्य की अन्विति नष्ट हो गई है, कथानक का विकासक्रम छिन्न हो गया है और काव्य का अन्त अतीव आकस्मिक ढग से हुआ है।

खरतरगच्छीय सूरचन्द्र का स्थूलभद्र गुणमाला काव्य राजस्थान मे रचित एक अन्य शास्त्रीय महाकाव्य है। हरविजय, कप्फिणाभ्युदय आदि महाकाव्यो के समान स्थूलभद्रगुणमाला में भी वर्णनों की भित्ति पर महाकाव्य की अट्टालिका का निर्माण किया गया है। इसके उपलब्ध साढे पन्द्रह सर्गों (अधिकारो) में नन्दराज के महामन्त्री शकटाल के पुत्र स्थूलभद्र तथा पाटलिपुत्र की वेश्या कोशा के प्रणय की सुकुमार पृष्ठभूमि में मन्त्रिपुत्र की प्रव्रज्या का वर्णन करना कवि को अभीष्ट है।

---

1. विस्तृत विवेचन के लिये देखिये, श्यामशंकर दीक्षित कृत तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य, पृ. 120-143।

2. देशे सपादलक्षे सुखलक्ष्ये पद्यरे पुरप्रवरे।
नयनवसुवार्धिचन्द्रे वर्षे हर्षेण निर्मिता सेयम्॥ 5॥

स्थूलभद्र गुणमाला की एक प्रति केसरियानाथ जी का मन्दिर, जोधपुर में स्थित ज्ञान भण्डार में विद्यमान है। दुर्भाग्यवश यह हस्तलेख अधूरा है। इसमें न केवल प्रथम दो पत्र अप्राप्त हैं, अन्तिम से पूर्ववर्ती तीन पत्र भी नष्ट हो चुके हैं। घाणेराव भण्डार की काव्य की एक पूर्ण प्रति की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि कवि ने स्थूलभद्र गुणमाला की पूर्ति जयपुर नरेश जयसिंह के शासन काल में सम्वत् 1680 (1623 ई.) पौष तृतीया को जयपुर के उपनगर सांगानेर (संग्राम नगर) में की थी[1]। इस प्रति से यह भी स्पष्ट है कि काव्य मे सतरह अधिकार हैं और इसकी समाप्ति व स्थूलभद्र के उपदेश से वेश्या के प्रतिबोध तथा नायक के गुणगान एवं स्वर्गारोहण से होती है[2]। खेद है, यह प्रति हमें अध्ययनार्थ प्राप्त नही हो सकी।

कथानक के नाम पर स्थूलभद्र गुणमाला मे वर्णनो का जाल बिछा हुआ है। दो-तीन सर्गों मे सौन्दर्य-चित्रण करना तथा पांच स्वतन्त्र सर्गों में विस्तृत ऋतु-वर्णन कर देना कवि की काव्य-शैली का उग्र प्रमाण है। भोग की अति की परिणति अनिवार्यत. भोग के त्याग मे होती है, अपने इस सन्देश को कवि ने सरस काव्य के परिधान मे प्रस्तुत किया है, किन्तु उसे अधिक आकर्षक बनाने के आवेश मे वह काव्य में सन्तुलन नही रख सका। काव्य मे वर्णित सभी उपकरणो सहित इसे 6–7 सर्गों में सफलता-पूर्वक समाप्त किया जा सकता था। किन्तु सूरचन्द्र की काव्य-प्रतिभा तथा वर्णनात्मक अभिरुचि ने इसे 17 सर्गों का बृहद् आकार दे दिया है। किसी विषय से सम्बन्धित अपनी कल्पना का कोश जब तक वह रीता नही कर देता, कवि आगे बढने का नाम नही लेता। यह सत्य है कि इन वर्णनों में कवि-प्रतिभा का भव्य उन्मेष हुआ है, किन्तु उनके अतिशय के विस्तार ने काव्य चमत्कार को नष्ट कर दिया है। स्थूलभद्र गुणमाला का महत्व इसके वर्णनो तक सीमित है, किन्तु वे इसके लिए घातक भी बने हैं। कवि की विस्तार भावना ने उसकी कवित्व-शक्ति को दबा दिया है। सूरचन्द्र की काव्य-प्रतिभा प्रशंसनीय है, परन्तु उसने अधिकतर उसका अनावश्यक क्षय किया है। सारा काव्य सूक्ष्म वर्णनो से भरा हुआ है।

माघकाव्य का समस्यापूर्ति रूप मेघविजयगणि-कृत देवानन्द महाकाव्य सात सर्गों की प्रौढ एव अलकृत कृति है। इसमे जैन धर्म के प्रसिद्ध प्रभावक, तपागच्छीय आचार्य विजयदेवसूरि तथा उनके पट्टधर विजयप्रभसूरि के साधु-जीवन के कतिपय प्रसगो को निबद्ध करने का उपक्रम किया गया है, किन्तु कवि का वास्तविक उद्देश्य चित्रकाव्य के द्वारा पाठक को चमत्कृत करते हुए अपने पाण्डित्य तथा रचना-कौशल की प्रतिष्ठा करना है। इसीलिये देवानन्द के तथाकथित इतिहास का कंकाल चित्रकाव्य की बाढ में डूब गया है और यह मुख्यत अलकृति-प्रधान चमत्कारजनक काव्य बन गया है। इसकी रचना मारवाड के सादडी नगर में सम्वत् 1727 (1650 ई.) में विजयदशमी को पूर्ण हुई था, इसका उल्लेख काव्य की प्रान्त प्रशस्ति में किया गया है। इसकी एक प्रतिलिपि स्वय ग्रन्थकार ने ग्वालियर मे की थी[3]।

---

1. सग्रामनगरे तस्मिन् जैनप्रासाद सुन्दरे।
   काशीवत्काशते यत्र गंगेव विमला नदी ॥ 296 ॥
   राज्ये श्रीजयसिंहस्य मानसिंहस्वसन्तते । 298

2. श्री स्थूलभद्रस्य गुणमालानामनि चरिते वेश्या-प्रतिबोधन—श्राविकीकरण—श्रीगुरुपाद-मूलसमागत—श्रीस्थूलालिप्रशसना स्थूलभद्रस्वर्गमन—गुणमाला—समर्थनवर्णनो नाम सप्तदशो-धिकारः सम्पूर्णः।

3—देवानन्दमहाकाव्य, ग्रन्थप्रशस्ति 3।

देवानन्द की रचना माघ के सुविख्यात काव्य शिशुपालवध की समस्यापूर्ति के रूप में हुई है । इसमें माघ के प्रथम सात सर्गों को ही समस्या पूर्ति का आधार बनाया गया है । अधिकतर माघकाव्य के पद्यों के चतुर्थ पाद को समस्या के रूप में ग्रहण करके अन्य तीन चरणों की रचना कवि ने स्वयं की है, किन्तु कहीं-कहीं दो अथवा तीन चरणों को लेकर भी समस्यापूर्ति की गई है । कुछ पद्यों के विभिन्न चरणों को लेकर अलग-अलग श्लोक रचे गये हैं । माघ के 3 48 के चारों पादों के आधार पर मेघविजय ने चार स्वतन्त्र पद्य बनाये हैं (3/51–54) । कभी-कभी एक समस्या-पाद की पूर्ति चार पद्यों में की गई है । माघ के 3/69 के तृतीय चरण 'प्रायेण निष्क्रामति चक्रपाणौ' का कवि ने चार पद्यों में प्रयोग किया है (3/117–120) । कहीं-कहीं एक समस्या दो-दो पद्यों का विषय बनी है। 'सरिताम्भसागानतपाशुक' के आधार पर मेघविजय ने 4/27–28 की रचना की है। 'क्वचित् कपिशयन्ति चामीकरा' की पूर्ति चतुर्थ सर्ग के बत्तीसवें तथा तेतीसवें पद्य में की गयी है । मेघविजय ने एक ही पद्य में यथावत् दो बार प्रयुक्त करके भी अपने रचना-कौशल का चमत्कार दिखाया है । 'अभिमिष्ट मधु-वासरनारम्, 'प्रभावनी केनववैजयन्ती' 'परिनिम्नतार रवेरमत्यवच्यम्' को क्रमशः 6/79-80,81 के पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध में प्रयुक्त किया गया है, यद्यपि, दोनों भागों में, इनके अर्थ में, आकाश-पाताल का अन्तर है ।

भाषा का कुशल शिल्पी होने के कारण मेघविजय ने माघकाव्य से गृहीत समस्याओं का बहुधा सर्वथा अज्ञात तथा चमत्कारजनक अर्थ किया है । वांछित नवीन अर्थ निकालने के लिये कवि को भाषा के साथ मनमाना खिलवाड़ करना पड़ा है । कविने अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति अधिकतर नवीन पदच्छेद के द्वारा की है । अभिनव पदच्छेद की सहायता से वह ऐसे विचित्र अर्थ निकालने में सफल हुआ है, जिनकी कल्पना माघ ने भी कभी नहीं की होगी । उसमें उसे पूर्वचरण की पदावली में बहुत सहायता मिली है । देवानन्द में माघ के कतिपय पद्य भी यथावत्, अविकल ग्रहण किये गये हैं, किन्तु अकल्पनीय पदच्छेद से कवि ने उनसे विचित्र-विचित्र तथा चमत्कारी अर्थ निकाले हैं । देवानन्द के तृतीय सर्ग के प्रथम तीन पद्य माघ के उन्हीं सर्गों के प्रथम पद्य हैं, पर उनके अर्थ में विराट् अन्तर है । कवि के ईप्सित अर्थ को हृदयगम करना सर्वथा असम्भव होता यदि कवि ने इस प्रकार के पद्यों पर टिप्पणी लिखने की कल्पना न की होती ।

माघकाव्य से गृहीत समस्याओं की सफल पूर्ति के लिये उसी कोटि का वरन् उससे भी अधिक, गुरु गम्भीर पाण्डित्य अपेक्षित है । माघ की भांति मेघविजय की सर्वतोमुखी विद्वत्ता का परिचय तो उनके काव्य से नहीं मिलता क्योंकि देवानन्द की विषयवस्तु ऐसी है कि उसमें शास्त्रीय पाण्डित्य के प्रकाशन का अधिक अवकाश नहीं है । किन्तु अपने कथ्य को जिस प्रौढ भाषा तथा अलंकृत शैली में प्रस्तुत किया है, उससे स्पष्ट है कि मेघविजय चित्रमार्ग के सिद्धहस्त कवि हैं । उनकी तथा माघ की शैली में कहीं भी अन्तर दिखाई नहीं देता । अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये कवि ने भाषा का जो हृदयहीन उत्पीड़न किया है उससे जूझता पाठक झुंझला उठता है तथा इस भाषायी जादूगरी के चक्रव्यूह में फंसकर वह ताश हो जाता है, परन्तु यह शाब्दी-क्रीडा तथा भाषात्मक उछलकूद, उसके गहन पाण्डित्य तथा भाषाधिकार के द्योतक हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । मेघविजय का उद्देश्य ही चित्रकाव्य से पाठक को चमत्कृत करना है ।

मेघविजय का एक अन्य चित्रकाव्य सप्तसन्धान नानार्थक काव्य-परम्परा का उत्कर्ष है । नौ सर्गों के इस काव्य में जैन धर्म के पांच तीर्थंकरों—ऋषभदेव, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर तथा पुरुषोत्तम राम एवं कृष्ण वासुदेव का चरित श्लेषविधि से गुम्फित है। काव्य में यद्यपि इन महापुरुषों के जीवन के कुछ महत्वपूर्ण प्रकरणों का ही निबन्धन हुआ

है, किन्तु उन्हें एक साथ चित्रित करने के दुस्साध्य कार्य की पूर्ति के लिये कवि को विकट चित्रशैली तथा उच्छृखल शाब्दी-क्रीडा का आश्रय लेना पड़ा है जिससे काव्य वज्रवत् दुर्भेद्य बन गया है। टीका के जल-पाथेय के बिना काव्य के इस मरुस्थल को पार करना सर्वथा असंभव है। ग्रन्थप्रशस्ति के अनुसार सप्तसन्धान की रचना सम्वत् 1760 में हुई थी 1।

सात व्यक्तियों के चरित को एक साथ ग्रथित करना दुस्साध्य कार्य है। प्रस्तुत काव्य में यह कठिनाई इसलिये और बढ़ गयी है कि यहा जिन महापुरुषो का जीवनवृत्त निबद्ध है, उनमें से पाच जैन धर्म के तीर्थ कर है, अन्य दो हिन्दू धर्म के आराध्य देव, यद्यपि जैन साहित्य में भी वे अज्ञात नही है। कवि को अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सबसे अधिक सहायता सस्कृत भाषा की सश्लिष्ट प्रकृति से मिली है। श्लेष एक ऐसा अलंकार है जिसके द्वारा कवि भाषा का इच्छानुसार तोड-मरोड कर उससे अभीष्ट अर्थ निकाल सकता है। इसलिए काव्य में श्लेष की निर्बाध योजना की गयी है, जिससे काव्य का सातो पक्षों में अर्थ ग्रहण किया जा सके। किन्तु यहा यह ज्ञातव्य है कि सप्तसन्धान के प्रत्येक पद्य के सात अर्थ नहीं है। वस्तुतः ऐसे पद्य बहुत कम है जिनके सात स्वतन्त्र अर्थ किये जा सकते है। अधिकांश पद्यों के तीन अर्थ निकलते है, जिनमें से एक जिनेश्वरो पर घटित होता है, शेष दो का सम्बन्ध राम तथा कृष्ण से है। तीर्थ करो की निजी विशेषताओ के कारण कुछ पद्यों के चार, पाँच अथवा छह अर्थ भी किये गये हैं। कुछ पद्य तो श्लेष से सर्वथा मुक्त हैं तथा उनका केवल एक अर्थ है। वही अर्थ सातो नायकों पर चरितार्थ होता है। प्रस्तुत काव्य का यही सप्तसन्धानत्व है। कवि की यह उक्ति भी—काव्येऽस्मिन्नत एवं सप्त कथिता अर्था समथाः श्रिये (4142)—इसी अर्थ में सार्थक है। इस सप्तसन्धानात्मक गड्डमड्ड के कारण अधिकांश काव्य-नायको के चरित धूमिल रह गये हैं। ऋषभदेव की कथा में ही कुछ विस्तार मिलता है।

अपने काव्य की समीक्षा की जो आकाक्षा कवि ने पाठक से की है, उसकी पूर्ति में उसकी दूरारूढ शैली सब से बड़ी बाधा है। पर हमें यह नही भूलना चाहिये कि सप्तसन्धान का उद्देश्य चित्रकाव्य-रचना में कवि की दक्षता का प्रदर्शन करना है, सरस कविता से पाठक का मनोरजन करना नही। इसमें कवि पूर्णतः सफल हुआ है।

<u>ऐतिहासिक महाकाव्य</u> —राजस्थान के जैन कवियो ने दो प्रकार के ऐतिहासिक महाकाव्यो के द्वारा अपनी ऐतिहासिक प्रतिभा की प्रतिष्ठा की है। प्रथम वर्ग के हम्मीर महाकाव्य, कुमारपाल चरित तथा वस्तुपालचरित आदि भारतीय इतिहास के गौरवशाली शासको के ऐतिहासिक वृत्त का निरूपण करते है। दूसरी कोटि के ऐतिहासिक महाकाव्य वे है जिनमे संयम धन-साधुओं का जीवन-वृत निबद्ध है, यद्यपि इन तपस्वियों का धर्मशासन सम्राटों से भी अधिक मान्य तथा तेजस्वी था। रोचक सयोग है, इनका इतिहास-पक्ष सस्कृत के प्राचीन बहु प्रसंसित ऐतिहासिक महाकाव्यो की अपेक्षा कही अधिक विश्वसनीय है। इनमे से कुछ कवित्व की दृष्टि से भी बहुत समर्थ तथा सफल है।

हम्मीर महाकाव्य देश के किस भाग मे लिखा गया इसका कोई सकेत काव्य मे उपलब्ध नही। यद्यपि जैसे स्वय नयचन्द्र ने सूचित किया है उसे हम्मीर महाकाव्य के प्रणयन की प्रेरणा तोमरनरेश वीरम के सभासदों की इस व्यग्योक्ति से मिली थी कि प्राचीन कवियो के समान उत्कृष्ट काव्य-रचना करने वाला अब कोई कवि नही [2] तथापि जिस तल्लीनता तथा तादात्म्य से कवि ने राजस्थान के मध्यकालीन इतिहास का निरूपण किया है उस आधार पर यह

1. ग्रन्थ प्रशस्ति, 3.

2. हम्मीर महाकाव्य, 14/43

कल्पना करना अयुक्त नहीं कि नयचन्द्र यदि जन्मना राजस्थानी नहीं थे, तो भी इस प्रदेश से उनका गहरा सम्बन्ध रहा होगा। तभी तो हम्मीर चरित का प्रणयन करने की लालसा उन्हें दिन-रात मथ रही थी [1] ।

चौदह सर्गों के इस वीरांक काव्य में राजपूती शौर्य की साकार प्रतिमा महाहठी हम्मीरदेव तथा भारतीय इतिहास के कुटिलतम शासक अलाउद्दीन खिलजी के घनघोर युद्धों तथा अन्तत हम्मीर के प्राणोत्सर्ग का गौरवपूर्ण इतिहास प्रशस्त शैली में निबद्ध है। बध्दमूल-परम्परा के अनुसार यद्यपि कवि ने इतिहास को काव्य के आकर्षक परिधान में प्रस्तुत किया है, किन्तु हम्मीर महाकाव्य की विशेषता यह है कि इसका ऐतिहासिक भाग कवित्व के इन्द्रधनुषी सौन्दर्य में विलीन नहीं हुआ अपितु वह स्पष्ट, सुग्रथित, प्रामाणिक तथा अलौकिक तत्त्वों से प्राय मुक्त है तथा इसकी पुष्टि यवन इतिहासकारों के स्वतन्त्र विवरणों से होती है। काव्य की दृष्टि से भी नयचन्द्र का ग्रन्थ उच्च बिन्दु का स्पर्श करता है। स्वयं कवि को इसमें काव्यगत वैशिष्ट्य पर गर्व है [2] । ज्ञातव्य है कि काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य-हम्मीरकथा-केवल छः (8-13) सर्गों तक सीमित है। प्रथम चार सर्ग, जिनमें चाहमानवंश की उत्पत्ति तथा हम्मीर के पूर्वजों का वर्णन है, एक प्रकार से, हम्मीरकथा की भूमिका है। नयचन्द्र के सृजन में इतिहास तथा काव्य का यह रासायनिक सम्मिश्रण हम्मीर महाकाव्य को अत्युच्च धरातल पर प्रतिष्ठित करता है।

वस्तुपाल-चरित की रचना जिनहर्ष ने चित्रकूटपुर (चित्तौड़) के जिनेश्वर मन्दिर में सम्वत् 1497 (सन् 1440) में की थी [3] । इसके आठ विशालकाय प्रस्तावों में चौलुक्यनरेश वीरधवल के नीतिनिपुण महामात्य वस्तुपाल की बहुमुखी उपलब्धियों, दुर्लभ मानवीय गुणों, साहित्यप्रेम तथा जैन धर्म के प्रति अपार उत्साह और उसके प्रचार-प्रसार के लिये किये गये अथक प्रयत्नों, कूटनीतिक कौशल एवं प्रशासनिक प्रवीणता का सांगोपांग वर्णन हुआ है। वस्तुत काव्य में वस्तुपाल तथा उसके अनुज तेजपाल दोनों का चरित गुम्फित है, किन्तु वस्तुपाल के गरिमापूर्ण व्यक्तित्व के प्रकाश में तेजःपाल का वृत्त मन्द पड गया है। वस्तुपाल की प्रधानता के कारण ही काव्य का नाम वस्तुपाल चरित रखा गया है।

वस्तुपाल चरित को ऐतिहासिक रचना माना जाता है। निस्सन्देह इसमें चालुक्य-वंश, धोलका-नरेश वीरधवल, विशेषकर उसके प्रखरमति अमात्य वस्तुपाल के विषय में कुछ उपयोगी जानकारी प्राप्त होती है। किन्तु इन सूक्ष्म ऐतिहासिक संकेतों को पौराणिकता के चक्रव्यूह में इस प्रकार बन्द कर दिया गया है कि पाठक का अभिमन्यु इससे जूझता-जूझता वहीं खेत रह जाता है। 4559 पद्यों के इस बृहत् काव्य में कवि ने ऐतिहासिक सामग्री पर 200-250 से अधिक पद्य व्यय करना उपयुक्त नहीं समझा है। सतोष यह है कि वस्तुपाल चरित का ऐतिहासिक अंश यथार्थ, प्रामाणिक तथा विश्वसनीय है। यही इस काव्य का आकर्षण है।

जैनाचार्यों के इतिहास-सम्बन्धी महाकाव्यों में श्रीवल्लभ पाठक का विजयदेव माहात्म्य महत्वपूर्ण रचना है। उन्नीस सर्गों का यह काव्य तपागच्छ के सुविज्ञात आचार्य विजयदेवसूरि के धर्म-प्रधान वृत्त का तथ्यात्मक विवरण प्रस्तुत करता है। अपने कथ्य के चित्रण में कवि ने इतनी तत्परता दिखाई है कि चरित-नायक के जीवन की विभिन्न घटनाओं के दिन, नक्षत्र, सम्वत् तक का इसमें यथातथ्य उल्लेख हुआ है। विजयदेवसूरि की धार्मिक गतिविधियों की जानकारी के लिये प्रस्तुत काव्य वस्तुतः बहुत उपयोगी तथा विश्वसनीय है।

---

1. वही, 14/26
2. वही, 14/46
3. वस्तुपालचरित, प्रशस्ति, 11.

श्रीवल्लभ ने विजयदेव माहात्म्य में इसके रचनाकाल का कोई संकेत नहीं किया है, किन्तु काव्य के आलोडन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इसकी रचना सम्वत् 1687 (सन् 1630) के पश्चात् हुई थी। विविध ग्रन्थों पर कवि की टीकाओं में प्रयुक्त मारवाड़ी शब्दों के आधार पर यह मानना भी असंगत नहीं कि उसका जन्म राजस्थान के मारवाड़ प्रदेश में हुआ था।

देवानन्द महाकाव्य में मेघविजय ने विजयप्रभ के चरित पर दृष्टिपात तो किया, किन्तु इससे उन्हें सताष नहीं हुआ। दिग्विजय महाकाव्य के तेरह सर्गों में पूज्य गुरु के जीवन-वृत्त को स्वतन्त्र रूप से निबद्ध करने की चेष्टा की गयी है। इसकी रचना के मूल में गुरुभक्ति की उदात्त प्रेरणा निहित है। किन्तु खेद है कि विद्वान् तथा प्रतिभाशाली होता हुआ भी कवि महाकाव्य रूढियों के जाल में फस कर अपने निर्धारित लक्ष्य से भ्रष्ट हो गया है। 1274 पद्यो के इस विशाल काव्य का पढने के पश्चात् भी विजयप्रभसूरि के विषय में हमारी जानकारी में विशेष वृद्धि नहीं होती, यह कटु तथ्य है। सारा काव्य वर्णनो की बाढ़ से आप्लावित है। इतना अवश्य है कि कवि के अन्य दो काव्यो की भांति इसकी परिणति दुरूहता में नहीं हुई है, यद्यपि इसके कुछ अंशों में भी पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति फुफकार उठी है।

पौराणिक महाकाव्य:—पौराणिक कथाओं के द्वारा जन साधारण को धर्मबोध देने की प्रवृत्ति बहुत प्रभावी तथा प्राचीन है। जैन कवियो ने पौराणिक आख्यानो के आधार पर चरितात्मक काव्य रच कर उक्त उद्देश्य की पूर्ति की है। यह बात भिन्न है कि पौराणिक काव्यो में से कुछ अपनी प्रौढता, कवित्व तथा भाषागत सौन्दर्य के कारण शास्त्रीय काव्यो के बहुत निकट पहुच जाते है। कहना न होगा कि जैन साहित्य में पौराणिक रचनाओं का ही बाहुल्य है।

सनत्कुमारचक्रिचरित (सन 1205–1221) राजस्थान के पौराणिक महाकाव्यो में प्रतिष्ठित पद का अधिकारी है। इसके रचयिता जिनपाल उपाध्याय जिनपतिसूरि के शिष्य थे, जिनका जन्म 1153 ईस्वी में जैसलमेर राज्य के विक्रमपुर (बीकमपुर) स्थान पर हुआ था तथा जिन्होंने अजमेर के प्रख्यात चौहान शासक पृथ्वीराज द्वितीय की सभा में पधार कर उसे गौरवान्वित किया था।

सनत्कुमारचक्रिचरित्र के 24 सर्गों में जैन साहित्य में सुविज्ञात चक्री सनत्कुमार के चरित्र का मनोहर शैली में निरूपण किया गया है। इसमें शास्त्रीय तथा पौराणिक शैलियो का इतना गहन मिश्रण है कि इसके स्वरूप का निश्चयात्मक निर्णय करना दुष्कर है। पौराणिक तत्त्वो के प्राचुर्य के कारण इसे पौराणिक काव्य माना गया है, किन्तु इसकी चमत्कृति प्रधानता, चित्रकाव्य-योजना तथा पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति आदि के कारण इसे शास्त्रीय महाकाव्यो के अन्तर्गत स्थान देना ही न्यायोचित होगा। सनत्कुमारचरित का कथानक सुसगठित और व्यवस्थित है। इसकी समस्त घटनायें परस्पर सबद्ध हैं जिसके फलस्वरूप इसमें अविच्छिन्नता तथा धारावाहिकता बराबर बनी रहती है। यह महत्वपूर्ण महाकाव्य महोपाध्याय विनय सागर द्वारा सम्पादित होकर, प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से प्रकाशित हो चुका है।

अभयदेवसूरि-कृत जयन्तविजय (1221 ई.) को विशुद्ध पौराणिक महाकाव्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सनत्कुमारचक्रिचरित्र की भांति इसमें भी शास्त्रीय रूढियो का व्यापक समावेश हुआ है। इसके 19 सर्गों में विक्रमसिंह के पुत्र जयन्त का जीवनवृत्त रोचक शैली में वर्णित है। जयन्तविजय में कथावस्तु का सामान्यत सफल निर्वाह हुआ है। पन्द्रहवें सर्ग में दार्शनिक सिद्धान्तो का विस्तृत विवेचन और सतरहवें सर्ग में जयन्त और रतिसुन्दरी

है पूर्वभव का वर्णन मुख्य कथा में व्याघात पहुंचाते हैं । पौराणिकता के कारण कथा-प्रवाह में कहीं-कहीं शिथिलता अवश्य आ गयी है पर क्रम कहीं भी छिन्न नही होता । नवें, दसवें और चौदहवें सर्गों के युद्ध प्रसगो में पात्रो के संवाद नाटकीयता से तरलित हैं[1]।

जैन साहित्य में ऐसी रचनाओं की तो कमी नही, जिनमें पूर्वोक्त काव्यो की भांति महाकाव्य की पौराणिक तथा शास्त्रीय शैलियो के तत्व परस्पर अनुस्यूत है, पर अचलगच्छीय आचार्य माणिक्यसुन्दर के श्रीधरचरित में शास्त्र काव्य की विशेषताओं का भी गठबन्धन दिखाई देता है । इसके नौ माणिक्याक सर्गों में मगलपुर नरेश जयचन्द्र के पुत्र विजयचन्द्र का जीवन-वृत्त निबद्ध है । विजयचन्द्र पूर्व जन्म का श्रीधर है । काव्य का शीर्षक उसके भवान्तर क इसी नाम पर आधारित है। इस दृष्टि से प्रस्तुत शीर्षक काव्य पर पूर्णतया चरितार्थ नही होता। चरित-वर्णन के साथ-साथ कवि का उद्देश्य अपनी छन्द-मर्मज्ञता तथा उन्हे यथेष्ट रूप से उदाहृत करने की क्षमता का प्रदर्शन करना है । इसीलिए काव्य में 92 वर्णिक तथा मात्रिक वृत्त तथा उनके ऐसे भेदो प्रभेदो और कतिपय अज्ञात अथवा अल्पज्ञात छन्दो का प्रयोग हुआ है, जो साहित्य मे अन्यत्र शायद ही प्रयुक्त हुए हो । छन्दो के प्रायोगिक उदाहरण प्रस्तुत करने के कारण श्रीधरचरित छन्दों के बोध के लिए लक्षण-ग्रन्थों की अपेक्षा कही अधिक उपयोगी है । किन्तु कवि का यह लक्ष्य, शास्त्र अथवा नानार्थक काव्यो की भांति, काव्य के लिए घातक नही है क्योकि उसकी प्रतिभा छन्दों की धारा में बन्दी नही है । वैसे भी अज्ञात छन्द व्याकरण के दुस्साध्य प्रयोगो के समान रस-चर्वणा में बाधक नही है ।

श्रीधरचरित का कथानक बहुत सक्षिप्त है, किन्तु कवि ने उसे महाकाव्योचित परि-वेश देने के लिए प्रभात, सूर्योदय, पर्वत, नगर, दूतप्रेषण स्वयवर आदि के वर्णनो से मास ल बनाकर प्रस्तुत किया है। फलत श्रीधरचरित का कथानक वस्तु व्यापार के वर्णनो के सेतुओ से टकराता हुआ आगे बढता है । काव्य के उत्तरार्ध मे तो कवि की वर्णनात्मक प्रवृत्ति ने विकराल रूप धारण कर लिया है । आठव तथा नवे सर्ग का ससार यक्षो, गन्धर्वों, सिद्धो, नागकन्याओ, युद्धो, नरमेध, स्त्री-हरण तथा चमत्कारो का अजीब ससार है । इनमे अति प्राकृतिक तत्वों, अबाध वर्णनो तथा विषयान्तरो का इतना बाहुल्य है कि ये सर्ग, विशेषत अष्टम सर्ग काव्य की अपेक्षा रोमाचक कथा बन गये है । काव्य की जो कथा सातवे सर्ग तक लगडाती चली आ रही थी, वह आठवे सग म आकर एकदम ढेर हो जाती है । वस्तुतः श्रीधर चरित को पौराणिक काव्य बनाने का दायित्व इन दो सर्ग पर ही है ।

प्रान्त प्रशस्ति के अनुसार श्रीधरचरित की रचना सम्वत् 1463 (1406 ई.) में मेवाड़ के देवकुलपाटक (देलवाडा ?) नगर मे सम्पन्न हुई थी।

श्रीमेदपाटदेशे ग्रन्थो माणिक्यसुन्दरेणायम् ।
देवकुलपाटकपुरे गुणरसवार्धीन्दुवर्षे व्यरचि ।। प्रशस्ति, 2.

अठारहवी शताब्दी मे प्रदेश को एक महाकाव्य प्रदान करने का श्रेय जोधपुर को है । जैसा ग्रन्थ प्रशस्ति मे सूचित किया गया है, रूपचन्द्र गणि अपरनाम रामविजय ने गौतमीय काव्य का निर्माण जोधपुर नरेश रामसिंह के शासनकाल में, सम्वत् 1807 (सन् 1650) में किया[2] । रूपचन्द्र के शिष्य क्षमाकल्याण ने इस पर स. 1852 (सन् 1695) मे टीका लिखी जिसका प्रारम्भ तो राजनगर (अहमदाबाद) मे किया था, किन्तु पूर्ति जैसलमर मे हुई[3] ।

1. श्यामशकर दीक्षित : तेरहवी चौदहवी शताब्दि के जैन सस्कृत महाकाव्य, पृ. 282.
2. ग्रथकार-प्रशस्ति, 1-3.
3. टीकाकार-प्रशस्ति, 1-3.

गौतमीय काव्य का उद्देश्य कविता के व्याज से जैन सिद्धान्त का निरूपण करना है। भगवान् महावीर के गणधर तथा प्रमुख शिष्य गौतम इन्द्रभूति और उनके अनुज के संशयो के निवारणार्थ कवि ने महाश्रमण के उपदेश के माध्यम से जैन दर्शन का प्रतिपादन किया है, जो पारिभाषिक शब्दावली में होने के कारण शुष्क तथा नीरस बन गया है। कवि ने प्रथम सर्ग में ऋतु वर्णन के द्वारा काव्य में रोचकता लाने प्रयास किया है, किन्तु काव्य-कथा का सकेत किए बिना प्रथम सर्ग मे ही ऋतुवर्णन मे जूट जाना अवांछनीय है और कथानक के विनियोग में कवि की कौशल-हीनता का सूचक भी ।

अपभ्रंश जैन साहित्य

अपभ्रंश साहित्य : सामान्य परिचय 1.

-डा. देवेन्द्रकुमार जैन

अपशब्द और अपभ्रंश

अपभ्रंश के साहित्य के साथ भाषा से भी परिचित होना, जरूरी है। भाष्यकार के अनुसार "शब्द थोडे है और अपशब्द बहुत"। एक-एक शब्द के कई अपभ्रंश हैं, जैसे-'गो' के गावी, गौणी, गोता और गोपोतलिका। संस्कृत भाषा के संदर्भ में गो शब्द है। शेष अपशब्द हैं। गावी आदि शब्द, गो के अपभ्रंश है, अर्थात् तद्‌भव है, या गोमूलक शब्द ह जो सस्कृत के लिये अपशब्द होते हुए भी, दूसरी भाषाओं के लिय शब्द हैं। अतः अपशब्द और अपभ्रंश का एक अर्थ नही है, जैसा कि प्रायः भ्रम है।

भाष्यकार से लगभग छह सौ साल बाद ईसवी 3री सदी में भरत मुनि ने आभीरोक्ति को उकार बहुला बताते हुए उसका उदाहरण दिया है-'मोरल्लउ नच्चन्तउ' इसका संस्कृत में होगा 'नृत्यमान. मयूर', नृत्यमान का नच्चन्त और मयूर: का मोरल्लउ रूप प्राकृतिक प्रक्रिया पारकर ही समव हो सका। अतः आभीरोक्ति आभीरो की स्वतत्र बोली न होकर सस्कृत परंपरा मूलक बोली ही है,जो प्राकृतो की ओकारात प्रकृति के समानान्तर विकसित हो रही थी, और 'नियप्राकृत' मे जिसका पूर्वाभास मिलता है। राम. का विकास रामो और रामु दोनो रूपो में सभव है, चूंकि अपभ्रंश क्रिया कृदन्त किया बहुल है अतः उसमें भी उकारांत की प्रवृत्ति आ गई। ईसा की 6ठीं सदी मे संस्कृत साहित्य समीक्षक दडी आभीरोक्ति को साहित्यिक भाषा बनने पर, अपभ्रंश कहने के पक्ष मे थे। इसका अर्थ है, वह भी आर्यभाषा मूलक-भाषा सस्कृत का एक विकसित रूप है।

अपभ्रंश और देशी

अपभ्रंश को प्रायः देशी तत्व से प्रचुर समझा जाता है। इसे भी स्पष्ट कर लेना जरूरी है। पाणिनी अपनी भाषा को वैदिक भाषा की तुलना में लोकभाषा कहते है, वह भाषा जो लोक में व्यवहृत हो। साहित्यरूढ होने पर सस्कृत कहलाई। प्राकृतकाल मे लोक के शब्द की जगह बोलचाल की भाषा के लिए देशी शब्द चल पडा। यह एक भाषा-वैज्ञानिक तथ्य है कि कोई भाषा बिना लोकाधार के पैदा नही होती, इसी प्रकार वह बिना सस्कार या नियमन के व्यापक और शिष्ट नही बनती। यह देशीभाषा साहित्यिक बनने पर प्राकृत कहलाई, जिसका व्याकरणिक, सस्कृत को प्रकृति मानकर किया गया। अपभ्रंश कवि स्वयंभू 'पउमचरिउ' को एक ओर 'देशीभाषा उभय तडुज्जल' कहते है और दूसरी ओर अपनी भाषा को 'गोमिल्ल वचन' से रहित भी बताते ह। स्वयभू के समय देशी-वचन का स्थान ग्राम्य-वचन ले लेता है। कहने का अभिप्राय, संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश, लोक देश ग्राम्य स्तर से उठकर ही साहित्यिक और सामान्य व्यवहार की भाषायें बनती हैं। अत. अपभ्रश का अर्थ न तो बिगडी हुई भाषा है और न जनबोली, और न यह कि जिसका उच्चारण ठीक से न हो सके। जैसा कि अपभ्र श के कुछ युवा अध्येता समझते हैं। यह भ्रम भी निराधार है कि अपभ्रश केवल काव्यभाषा थी, या यह कि उसमें गद्य नहीं था। संस्कृत; प्राकृत की तुलना म अपभ्रंश का क्षेत्र सीमित है, परन्तु उसकी कडवक शैली में और संवादों और वर्णनो में अपभ्रंश गद्य का रूप देखा जा सकता है। सोचने की बात है कि क्या बिना गद्य के कोई भाषा विकास कर सकती है ? अपभ्रंश में उकारान्त प्रकृति के साथ आकारात प्रकृति की भी बहुलता है, कृदंत क्रियाओं की मुख्यता, शब्द क्रियारूपों की कमी, विभक्तियो का लोप, षष्ठी विभक्ति की व्यापकता, दूसरी विभक्तियों और परसर्ग के समान नए शब्दों का प्रयोग

पूर्वकालिक और क्रियार्थक क्रियाओं के प्रयोगो में विकल्पों की भरमार, कृदत क्रिया के कारण कालबोध के लिए सहायक क्रिया का विस्तार, उसकी प्रमुख विशषताएं है।

अपभ्रंश साहित्य का युग

संस्कृत साहित्य-मीमासको और इधर–उधर के उल्लेखो से यह स्पष्ट है कि ईसा की छठी सदी से न केवल अपभ्र श साहित्य लिखा जाने लगा था, बल्कि उसे मान्यता भी मिल चुकी थी। मैं 12वी सदी तक अपभ्र श का युग मानता हू। यद्यपि उसके बाद 15वी 16 वी सदी तक अपभ्रंश साहित्य लिखा जाता रहा है, परन्तु वह रूढ साहित्य है, भाषा और अभिव्यक्ति की दृष्टि से उसमें वह युगबोध नही है जो कि होना चाहिए। फिर इस काल मे आ भा आर्य-भाषाओ का साहित्य अस्तित्व मे आ चुका था। 7वीं से 12वी तक का यह काल, राजनीतिक दृष्टि से हर्ष के साम्राज्य के विघटन, राजपूतशक्तियो के उदय और सघर्ष तथा मुहम्मदबिन कासिम (ई. 711), महमूद गजनी (1026) और मुहम्मद गौरी (1194) जैसे विदेशी आक्राताओ की सफल घुसपेठ का समय है। धामिक दृष्टि से आलोच्यकाल मे बौद्ध ओर जैनधर्म के समानातर शैव और वैष्णव भक्तिमतो का बोलबाला रहा। सभी धर्ममन आडबर पूर्ण थे। धर्म और राज्य एक दूसरे पर आधारित थे। धम राज्य से विस्तार चाहता था, ओर राज्य धर्म से प्रेरणा। सिद्ध और हठयोग साधनाएं भी इसी युग की देन है। सस्कृत और प्राकृत साहित्य भी काफी मात्रा मे इस काल म लिखा गया।

स्वयभू के पूर्व का अपभ्र श साहित्य

दण्डी, भामह और बाणभट्ट के उल्लेखो और स्वयभूच्छद से यह स्पष्ट है कि स्वयभू (आठवी और नौवी सदियो का मध्यबिन्दु) से दा सो वर्ष पूव स अपभ्र श साहित्य की रचना होने लगी थी। स्वयभूच्छद में अकित एक दजन कवियो मे पद्धडिया बन्ध के निर्माता कवि चतुर्मुख और गोइंद (गोविन्द) के नाम उल्लेखनीय है। दोनो हरिकथा काव्य के रचयिता प्रतीत होते है। अनुमान है कि चतुर्मुख ने कोई राम कथा काव्य लिखा होगा। स्वयंभूच्छद के कृष्ण-कथा से सबन्धित एक उद्धरण का अर्थ है, 'यद्यपि कृष्ण सभी गोपियों को आदर से देखते है परन्तु उनकी दृष्टि वही पडती है जहा राधा है, स्नेहपूरित नेत्रो का कान रोक सकता है ?' इसमें राधा के प्रति कृष्ण के आकर्षण का उल्लेख महत्वपूर्ण है। इससे सिद्ध है कि स्वयभू के पूर्व राधा कृष्ण लीलाए लोकप्रिय हो चुकी थी। स्वयभूच्छद के उदाहरण मे प्रकृति-चित्रण, ऋतु-प्रेम और उपालंभ से सम्बन्धित अवतरण है। जहा तक अपभ्रंश प्रबन्ध काव्यो (चरित काव्यो) का प्रश्न है उनकी कथा-वस्तु के मख्य स्रोत रामायण ओर महाभारत की 'वस्तु' है।

विधाएं

आलोच्य-काव्य की दो विधाए मुख्य और महत्वपूर्ण है, ये है प्रबन्ध और मुक्तक। अपभ्रंश साहित्य म नाटक और गद्य-साहित्य का अभाव है। प्रारंभिक अपभ्रंश प्रबन्धकाव्य पुराण-काव्य के रूप में मिलते है। यहा 'चरिउ' और 'पुराण काव्य' का अन्तर समझ लेना उचित होगा। त्रेसठ शलाका पुरुषो के चरित्रो का वर्णन करने वाला काव्य महापुराण कहलाता है। त्रेसठ शलाका पुरुषों में 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती ओर क्रमशः 9-9 बलभद्र, नारायण और प्रतिनारायण वाल्मीकि रामायण और महाभारत की कथा-वस्तु का सम्बन्ध, बलभद्र (राम) और नारायण (कृष्ण) से सम्बद्ध है। राम, बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत के तीर्थकाल मे हुए, जबकि कृष्ण 22 वें तीर्थंकर नेमिनाथ के समय। संस्कृत मे पृथक्–पृथक् रूप मे लिखित काव्यो को भी पुराण कहा गया, जैसे–आदि पुराण, पद्म पुराण, हरिवंश पुराण इत्यादि। आचार्य रविषेण ने पद्मचरित्र नाम भी दिया है। इसके विपरीत अपभ्रंश के स्वयंभू, पउम चरिउ और रिट्ठणेमि चरिउ नाम देते

है। पुष्पदन्त ने समग्र चरितों के सकलन को महापुराण कहा है, परन्तु पृथक्-पृथक रूप में वह चरित काव्य कहने के पक्ष मे है। वह लिखते हैं:—

धम्माणुसासणाणंद भरिउ, पुणु कहमि विरहु णामय चरिउ। म. पु. 1/2 में फिर. धर्म के अनुशासन और आनन्द से भरे पवित्र नामेय चरित्र का वर्णन करता हूं। इस प्रकार उनके महापुराण में कई चरित-काव्य हैं। इसमें संदेह नहीं कि अपभ्रंश चरित-काव्य विषय-वस्तु और वर्णन में बहुत कुछ संस्कृत जैन पुराणों पर आधारित है, परन्तु वस्तुनियोजन और वर्णन में अन्तर है। संस्कृत पुराण काव्यों की तुलना में इनमें सक्षेप है और कथा-निर्वाह में अपेक्षाकृत कार्यकारण सम्बन्ध है। पौराणिक वस्तु-निर्देश कम है तथा विविध छदों वाली सर्गबद्ध शैली के स्थान पर, कडवक शैली है। एक संधि मे कई कडवक रहते हैं, प्रत्येक कडवक के अन्त में घत्ता के रूप में कोई छद रहता है, कडवक मे कई तुकात दो पक्तिया रहती है। यह शैली प्राकृत काव्यों में भी नही है। विषय और प्रसंग के अनुरोध से कडवक को पक्तियो मे संकोच विस्तार संभव है। हमारा अनुमान है कि लोकगीत शैली के आधार पर ही कडवक शैली का विकास हुआ। पुष्पदन्त जैसे कवियों ने संस्कृत के वर्णिक वृत्तो का प्रयोग कडवक शैली के अन्तर्गत किया है। जायसी के पद्मावत और तुलसी के मानस के दोहा-चौपाई शैली, इसी का परवर्ती विकास है।

चरित काव्य के दो भेद

अपभ्रंश मे दो प्रकार के चरित-काव्य है, एक पुराणो के प्रभाव से ग्रस्त जैसे पउमचरिउ और नामेयचरिउ। दूसरे है, रोमाचक अथवा कल्पना प्रधान जैसे णायकुमार चरिउ, करकंड-चरिउ, जसहर चरिउ। धर्म से अनुशासित होने पर भी इनमें रोमांस, कल्पना-प्रवणता और प्रेम तथा युद्ध की उत्तेजक स्थितिया होती है। विशेष उल्लेखनीय यह है कि अपभ्रंश में लौकिक पुरुष पर एक भी चरित-काव्य नही लिखा गया। अपभ्रंश कवि कथा-काव्य और चरित-काव्य में भेद नही करते। भेद है भी नही। भविसयत्त कहा और भविसयत्त चरिउ एक ही बात है। प्राकृत में अवश्य कथा-काव्य कहने का प्रचलन था। इधर हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यो पर अपभ्रंश चरित-काव्यो का प्रभाव सिद्ध करने के लिए, अपभ्रंश के एक नए खोजी ने उसमे भी प्रेमाख्यानक काव्य खोज निकाले हैं। उसके अनुसार धाहिल का पउमसिरि चरिउ प्रेमाख्यानक काव्य है, (अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोधप्रवृत्तिया पृ स. 36) जो सचमुच चिन्तनीय है। प्रेमकाव्य और प्रेमाख्यानक काव्य मे जमीन आसमान का अन्तर है। प्रेम काव्यो में प्रेम की मुख्यता होती है, जबकि प्रेमाख्यानक-काव्य म लौकिक प्रेम वाली कथा के माध्यम से अलौकिक प्रेम अर्थात् ईश्वरीय प्रेम का साक्षात्कार किया जाता है। पउमसिरि चरिउ कवि धाहिल के अनुसार, धर्माख्यान है जिसका उद्देश्य यह बताना है कि धर्म के लिए भी किया गया कपटाचरण दुखदायी होता है। यह खोजना भी भ्रांतिपूर्ण है, कि अपभ्रंश चरित-काव्यो के नायक लोक सामान्य जीवन से आए हैं, वे सब अभिजात्य वर्ग के है। सस्कृत जैन पुराण-काव्य मे जो पात्र अभिजात्यवर्ग के है, वे अपभ्रंश में सामान्यवर्ग के कैसे हो गए। वस्तुत वे पुण्यसिद्ध सामन्तवर्ग के है। अपभ्रंश चरित-काव्य वस्तुत. धवल मगल गान से युक्त हैं। आध्यात्मिक गुणों से सम्बन्धित गीत मगल-गीत हैं और लौकिक गुणों से सम्बन्धित गीत धवल-गीत है। अपभ्रंश कथा-काव्य के नायक दोनो प्रकार के गुणों से अलकृत हैं। आध्यात्मिक गुणों से शून्य होने पर, इन्हें प्राकृत जन कहा जाएगा, जिनका मान करने पर तुलसीदास की सरस्वती माथा पीटने लगती है। हिन्दी का रासो-काव्य वस्तुत. प्राकृत जन गुणगान ही है। चरित काव्यो के अतिरिक्त रासो-काव्य, संधिकाव्य, रूपक आदि छोटी-छोटी रचनाएं भी अपभ्रंश में मिलती है जो वस्तुत. चरित-काव्यों के विघटन से अस्तित्व में आईं। एक तो ये रचनाऐं परवर्ती है और दूसरे काव्यात्मक दृष्टि से इनका विशेष महत्व नहीं है। खंडकाव्य के रूप में रहमान का संदेश-रासक उपलब्ध है, जो सुखांत विप्रलम्भ शृंगार का प्रति-क्रियात्मक-काव्य है। इसमें विक्रमपुर की एक वियोगिनी, अपने प्रवासी पति के लिए प्रेम संदेश भेजती है। जैसे ही पथिक प्रस्थान करता है कि उसका पति आ जाता है। यह विशुद्ध पाठ्यकाव्य

है। डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी इसे गेय-काव्य समझते हैं। इसमें एक ओर सरल मुहावरे वाली भाषा है और दूसरी ओर ऊहात्मक अलकृत शैली भी है।

जहां तक अपभ्रंश चरित-काव्यो के वस्तुवर्णन का सम्बन्ध है, उसमें यथासंभव पुराण-काव्य और लोकरूढियो का वर्णन हैं, प्रकृति-चित्रण, देश-नगर-वर्णन, नदी-वन और सरोवर चित्रण, प्रात. काल सूर्य-चन्द्र-सायकाल का वर्णन, विवाह, भोजन, युद्ध, स्वयवर, नारी, जलक्रीडा, नख-शिख वर्णन भरपूर हैं। श्रोता वक्ता शैली और संवाद शैली, विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। इनका अंतिम उद्देश्य तीन पुरुषार्थों की सिद्धि के अनंतर मोक्ष पुरुषार्थ की प्राप्ति है।

मुक्तक काव्य

मुक्तक-काव्य क रूप मे एक ओर उपदेश रसायन रास, चर्चरी आदि ताललय पर आश्रित गेय रचनाएं हैं और दूसरी ओर सिद्धो के चर्यापद हैं। जिस प्रकार अपभ्रंश प्रबन्ध-काव्य में चरित-काव्य प्रमुख हैं उसी प्रकार मुक्तक-काव्य में दोहा। जैन और बौद्ध दोनो के दोहा-कोश मिलते है। इनमें विशुद्ध आध्यात्मिक अनुभूतियो की अभिव्यक्ति है। सावयधम्म-दोहा में जैन गृहस्थ धर्म का निरूपण है, जबकि योगसार और परमात्मप्रकाश म संसार के दुःख का निदान करते हुए कवि ऊची आध्यात्मिक कल्पनाए करने लगता है। वह आत्मा को शिव, हंस और ब्रह्म के नाम से पुकारता है, वह रूपको, प्रतीको और पारिभाषिक शब्दावली मे बात करने लगता है, उसके अनुसार शुद्ध आत्मा ही परमात्मा है और वह मानव शरीर में है, इसलिए मानव शरीर तीर्थ है। चित्त की शद्धि ही उसका एकमात्र साधन है, आत्मा-परमात्मा मे प्रेमसी और प्रियतम का आरोपकर कवि इस बात पर अफसोस व्यक्त करता है कि एक ही शरीर में रहते हुए भी, अंग से अग नही मिला। "यदि लोग पागल-पागल कहते है तो कहने दो, तू मोह को उखाड कर शिव को पा। आगे-पीछे ऊपर जहा देखता हू, वहा वही है।" कह्न (कृष्णपाद) कहते है, दुनिया जग मे भ्रमित है, वह अपने स्वभाव को समझने मे असमर्थ है, मनुष्य को चित्त बांधता है और वही मुक्त करता है। सरह कहता है, जहा मन पवन सचार नही करते, जहा सूर्य और चन्द्रमा का प्रवेश नही, हे मूर्ख, वहा प्रवेश कर। आध्यात्मिक दोहो के अतिरिक्त शृंगार, नीति, प्रेम, वीर, रोमांस और अन्योक्ति से सम्बन्धित दोहो की कमी नही। भाषा और विषय-वर्णन की दृष्टि से ये दोहे दो टूक अभिव्यक्ति देते है, उनमे कृत्रिमता नही है। धवल (बैल) सामतयम की स्वामी-भक्ति का प्रतीक है, स्वामी का भारी भार देखकर वह कहता है,-'स्वामी ने मेरे दो टुकड़े कर दोनो ओर क्यो नही जोत दिया। गुणो से सम्पत्ति नही मिलती है, केवल कीर्ति मिलती है। लोग सिंह को कौडी के भाव नही खरीदते जब कि हाथी लाखो मे खरीदा जाता है।' एक योद्धा गिरनार पर्वत को उलाहना देता है, 'हे गिरिनार, तू ने मनमे ईर्ष्या की, खगार के मारे जाने पर तू दुश्मन पर एक शिखर तक नही गिरा सका।' वीर रस की दर्पोक्तियो का एक से बढ़कर एक दोहा है। एक वीर पत्नी यह कहकर संतुष्ट है कि,-'युद्ध मे उसका पति मारा गया, क्योकि यदि वह भागकर घर आता तो उसे सखियो के सामने लज्जित होना पडता। ऐसा योद्धा सचमुच बलिहारी के काबिल है कि, सिर के कधे पर लटक जाने पर भी, जिसका हाथ कटारी पर है।' एक प्रोषित पतिका कहती है,-"प्रिय ने मुझे जो दिन दिए थे, उन्हे नख से गिनते-गिनते मेरी अगुलियां क्षीण हो गई।" एक ओर पथिक बादल से कहता है,' हे दुष्ट बादल! मत गरज, यदि मेरी प्रिया सचमुच प्रेम करती होगी तो मर चुकी होगी, यदि प्रेम नही करती, तो स्नेह-हीन है, वह दोनो तरह से मेरे लिए नष्ट हुए के समान है।' कुछ मुक्तक इतिवृत्तात्मक खण्डो पर आधारित हैं, जैसे कोशा (वेश्या) को एक जैन मुनि नेपाल से लाकर रत्नकबल देता है, वह उसे नाली में फैंक देती है, मुनि सोच में पड जाता है। वेश्या कहती है–' हे मुनि! तुम कबल के नष्ट होने की चिन्ता करते हो, परन्तु अपने संयम-रूपी रत्न की चिन्ता नही करते।'

निष्कर्ष

कुल मिलाकर अपभ्रंश भाषा और साहित्य, परम्परागत भा. आर्यभाषा और साहित्य को ही एक कड़ी है। पूर्णरूप से काव्यात्मक और व्यापक भाषा होते हुए भी उसकी विषयवस्तु सीमित रही है। गद्य और नाटको के अभाव की पूर्ति वह, अपनी कडवक शैली मे उनके तत्वों के सयोजन द्वारा करती है। उसका भाषाई गठन आर्यभाषा की संयोगात्मक और वियोगात्मक स्थितियो का संधिकाल है। अपभ्रंश साहित्य का अंतिम चरण (12 वी सदी) के पहिले दो सौ साल नई भाषाओं के विकास के साल थे। जबकि बाद के दो सौ साल, साहित्य संक्रमण काल के। अधिकांश साहित्य धार्मिक है, वह भौतिक हीनताओं और दुर्बलताओ पर आत्मा की विजय, चित्त का संयम और जिनभक्ति इसका प्रमुख स्वर है। लौकिक भावों और राग-विराग की प्रतिक्रिया भी, आलोच्य साहित्य मे व्यक्तिगत स्तर पर अंकित है। युग के सामाजिक और राजनीतिक द्वंद्वों, यहाँ तक कि बाह्य आक्रमणो के प्रति ये कवि तटस्थ है। अपभ्रंश चरित-काव्य गीत-तत्व को अपने में समाहार करके चलते है। भाग्य की विडम्बना के प्रति अपभ्रंश साहित्य का स्वर सबसे अधिक सवेदनशील और आक्रोश पूर्ण है। आलोच्य साहित्य में लोक और शास्त्र, दोनो का समन्वय है, उसकी कला रसवती और अलंकृत कला है, वीर और शृंगार रस की प्रचुरता होते हुए भी उसका अन्त शात रस मे होता है। युग की धार्मिक संवेदनाओं को वह साहित्य अंकित करता है। अत में निष्कर्षरूप में यह कहा जा सकता है, अपभ्रंश भाषा की तरह उसका साहित्य भी आ. भा. आर्यभाषाओ के प्रारंभिक साहित्य के लिये आधारभूत उपजीव्य रहा है। इस प्रकार अपभ्रंश, भाषा और साहित्य दोनो स्तरो पर, आ. भा. आर्यभाषाओं और साहित्यो की प्रारम्भिक रूपरचना और विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

अपभ्रंश साहित्य : विकास एवं प्रवृत्तियां 2.

डा. राजाराम जैन

भारतीय वाङ्मय का प्रारम्भ वैदिककाल के उन साधक ऋषियो की वाणी से प्रारम्भ होता है, जिन्होने प्रकृति की कोमल और रौद्र शक्तियो से प्रभावित होकर आशा-निराशा, हर्ष-विषाद एवं सुख-दुख सम्बन्धी अपने उद्गार आलंकारिक वाणी मे प्रकट किए थे। विद्वानो ने उस वाणी को छान्दस् भाषा कहा है। ऋग्वेद एवं अथर्ववेद की भाषा वही छान्दस् थी, किन्तु गम्भीर अध्ययनों के बाद भाषा-वैज्ञानिक विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि उक्त दोनो वेदो की छान्दस् भाषा में भी पर्याप्त अन्तर है। उनका अभिमत है कि ऋग्वेद की भाषा ब्राह्मण ग्रन्थों की संस्कृत में ढाली हुई एक सुनिश्चित परम्परा-सम्मत है, किन्तु अथर्ववेद की भाषा--जनभाषा[1] है और इसके साहित्य मे पर्याप्त लोकतत्व पाए जाते है। अतएव स्पष्ट है कि आर्य-भाषा और आर्य-साहित्य पर द्रविड और मुण्डा वर्ग की भाषा और साहित्य का प्रभाव पर्याप्त रूप मे पड़ा है और अथर्ववेद उसी प्रभाव को स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त कर रहा है[2]।

आर्यों के सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों के सदर्भ में उनकी बोलचाल की भाषा भी बदलती रही और ध्वन्यात्मक तथा पद-रचनात्मक दृष्टि से पर्याप्त विकास होता रहा। ब्राह्मण एवं उपनिषद् काल मे वैभाषिक-प्रवृत्तिया स्पष्टत परिलक्षित होती है। वैदिक-भाषा पर प्राच्य जनभाषा का इतना अधिक प्रभाव पडा कि जिससे ब्राह्मण-ग्रन्थो ने असम्कृत एव अशुद्ध प्राच्य-प्रभाव से अपने को सुरक्षित रखने की घोषणा की[3]। कौषीतिकी ब्राह्मण मे उदीच्य लोगो के उच्चारण की प्रशंसा की गई है और उन्हे भाषा की शिक्षा मे गुरु माना गया है[4]। महर्षि पाणिनि ने जिस संस्कृत भाषा को शब्दानुसार लिखा, वह उदीच्य-भाषा ही है। प्राच्य-भाषा, उदीच्य भाषा की दृष्टि से असम्कृत एव अशुद्ध थी, क्योकि उस पर मुण्डा एव द्रविड जैसी लोक-भाषाओ का पर्याप्त प्रभाव था[5]। व्रात्यो की निन्दा जहा उनके यज्ञ-यागादि मे आस्था न रहने के कारण की गई है, वही उनकी 'देश्य-भाषा' भी उसका एक कारण था। अतएव निष्पक्षरूप से यह स्वीकार करना होगा कि छान्दस् युग मे देश्य-भाषा की एक क्षीण-धारा प्रवाहित हो रही थी, जो आगे चलकर प्राकृत के नाम से विख्यात हुई।

पी डी गुणे प्रभृति अनेक भाषाविदो की यह मान्यता है कि 'छान्दस्' के समानान्तर कोई जनभाषा अवश्य थी और यही जनभाषा परिनिष्ठित साहित्य के रूप मे वेदो मे प्रयुक्त हुई[6]। सुप्रसिद्ध महावैयाकरण पाणिनि ने वैदिक संस्कृत को व्याकरण के द्वारा अनुशासित कर लौकिक संस्कृत-भाषा का रूप उपस्थित किया है। पाणिनि के व्याकरण से स्पष्ट है कि छान्दस् की प्रवृत्तिया वैकल्पिक थी। उन्होने इन विकल्पो का परिहार कर एक सार्वजनीन मान्यरूप उपस्थित किया। वेद की वैकल्पिक विधिया अपने मूल-रूप मे बराबर चलती रही, जिनके ऊपर पाणिनीय-तन्त्र का अकुश न रहा और ये विकसित प्रवृत्तिया ही 'प्राकृत' के नाम से पुकारी जाने लगीं। यहा यह ध्यातव्य है कि प्राकृत की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे सर्वमान्य धारणा यही है कि छान्दस् भाषा से ही

---

1. प्राकृत भाषा (लेखक-प्रबोध पण्डित) पृ. 13-14/ 2. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी (चटर्जी) पृ स 63, 3 ताण्ड्य ब्राह्मण 17।4,/ 4. कौषीतिकी ब्राह्मण 7।6/ 5. संस्कृत का भाषा शास्त्रीय अध्ययन (बनारस, 1957 ई.) पृ. 270-271/ 6 तुलनात्मक भाषा-विज्ञान (गुणे) पृ. 129-130

मुख्यतया प्राकृत का आविर्भाव व विकास हुआ है। छान्दस् के समानान्तर प्रवाहित होने वाले जनभाषा की प्रवृत्तियां पृथक् रूप में उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु इनका आभास छान्दस से मिल जाता है[1]।

प्राच्या, जो कि 'देश्य' या 'प्राकृत' का मूल है, उसका वास्तविक रूप क्या था, इसकी निश्चित जानकारी हमें ज्ञात नहीं है। महावीर एवं बुद्ध के उपदेशों की भाषा भी हमें आज मूलरूप मे प्राप्त नहीं है। जो रूप आज निश्चित रूप से उपलब्ध है, वह प्रियदर्शी अशोक के अभिलेखों की भाषा का ही है, किन्तु इन अभिलेखों की भाषा में भी एकरूपता नहीं है। उनमें विभिन्न वैभाषिक प्रवृत्तियां सन्निहित हैं। इन अभिलेखो का प्रथम रूप पूर्व की स्थानीय बोली है, जो कि मगध की राजधानी पाटलीपुत्र तथा उसके समीपवर्ती प्रदेश में बोली जाती थी और जिसको साम्राज्य की अन्तर्प्रान्तीय भाषा कहा जा सकता है।

प्राच्या का दूसरा रूप, उत्तर पश्चिम की स्थानीय बोली है। इसका अत्यन्त प्राचीन स्वरूप अभिलेखों मे सुरक्षित है। इस प्रकार इसी भाषा को साहित्यिक प्राकृत का मूलरूप कहा जा सकता है।

उसका तीसरा रूप पश्चिम की स्थानीय बोली है, जिसका रूप हिन्दुकुश पर्वत के आसपास एव विन्ध्याचल के समीपवर्ती प्रदेशो में माना गया है। विद्वानो का अनुमान है कि यह पैशाची भाषा रही होगी या उसीसे पैशाची भाषा का विकास हुआ होगा।

प्रियदर्शी अशोक के अभिलेखो के उक्त भाषाक्षेत्रो मे से पूर्वीय भाषा का सम्बन्ध मागधी एवं अर्धमागधी के साथ है। यद्यपि उपलब्ध अर्धमागधी साहित्य की भाषा में उक्त समस्त प्रवृत्तियो का अस्तित्व उपलब्ध नही होता। उत्तर पश्चिम की बोली का सम्बन्ध शौरसैनी के साथ है, जिसका विकसित रूप सम्राट् खारवेल के शिलालेख, दि. जैनागमों एव संस्कृत नाटको में उपलब्ध होता है। पश्चिमी बोली का सम्बन्ध पैशाची के साथ है, जिसका रूप गणाढ्य की 'वड्डकहा' मे सुरक्षित था।

भाषाविदो ने प्रथम प्राकृत को 'आर्ष' एव 'शिलालेखीय' इन दो भागो मे विभक्त किया है, जिनमे से आर्ष प्राकृत जैनागमो एव बौद्धागमो में उपलब्ध है और शिलालेखीय प्राकृत ब्राह्मी और खरोष्ठी-लिपि मे उपलब्ध हुए शिलालेखो में।

द्वितीय प्राकृत मे वैयाकरणो द्वारा विवेचित महाराष्ट्री, शौरसैनी, मागधी और पैशाची भाषाओ का साहित्य प्रस्तुत होता है। महाराष्ट्री द्वितीय प्राकृत की साहित्यिक परिनिष्ठित भाषा मानी गई है[2]। महाकवि दण्डी ने महाराष्ट्रीय प्राकृत की पर्याप्त प्रशसा की है[3]। वररुचि के 'प्राकृत-प्रकाश' से भी इस बात का समर्थन होता है कि महाराष्ट्री प्राकृत पर्याप्त समृद्ध रूप में वर्तमान थी। यह भाषा-शैली उस समय आविन्ध्य–हिमालय भारत की राष्ट्र-भाषा मानी जा सकती है, यद्यपि कुछ विचारक मनीषी महाराष्ट्री और शौरसैनी को दो पृथक् पृथक् भाषाएं नही मानते, बल्कि एक ही भाषा की दो शैलिया मानते है[4]। उनका मत है कि गद्य-शैली का नाम शौरसैनी और पद्यशैली का नाम महाराष्ट्री है। मूलतः यह प्राकृत सामान्य प्राकृत ही है और शैली-भेद से ही इसके दो भेद किए जा सकते है।

---

1. दे. आष्टाध्यायी के सूत्र–विभाषा छंदसि 1-2-26
   बहुलं छन्दसि 2-3-62 आदि
2. इन्ट्रोडक्शन टू प्राकृत (वॉलर) पृष्ठ-2-5/ 3, काव्यादर्श 1134,
4. कर्पूरमंजरी (कलकत्ता वि. वि. प्रकाशन) भूमिका पृ. 76

तीसरी प्राकृत को वैयाकरणों ने अपभ्रंश की संज्ञा प्रदान की है। कुछ लोगों का विचार है कि अपभ्रंश एक भ्रष्ट भाषा है, पर हम इस विचार से सहमत नहीं हैं। वस्तुतः अपभ्रंश वह भाषा है, जिसकी शब्दावली एवं काव्य-विन्यास संस्कृत शब्दानुशासन के नियमों एवं उप-नियमों से अनुशासित नहीं है, जो शब्दावली देशी-भाषाओं में प्रचलित है तथा संस्कृत के शब्दों के यथार्थ उच्चरित न होने से कुछ विकृत रूप में उच्चरित है, वही शब्दावली अपभ्रंश भाषा के अन्तर्गत मानी जाती है। यही कारण है कि महर्षि पतञ्जलि ने एक ही संस्कृत-शब्द के उच्चारण भेद से अनेक शब्द स्वीकार किए हैं।1 अतएव अपभ्रंश वह भाषा है जिसमें प्राकृत की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक देशी-शब्द उपलब्ध है तथा वाक्य-रचना एवं अन्य कई दृष्टियों से सरलीकरण तथा देशीकरण को प्रवृत्ति अधिकतर प्राप्त होती है और जिसकी शब्दराशि पाणिनि के व्याकरण से सिद्ध नहीं है।

ईस्वी सन् की दूसरी सदी के समर्थ आचार्य भरतमुनि ने यद्यपि अपभ्रंश भाषा का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया, किन्तु उन्होंने संस्कृत एवं प्राकृत के साथ–साथ देश्य-भाषा2 का भी उल्लेख किया है तथा इसी देश्य-भाषा में शबर, आभीर, चाण्डाल, द्रविड, ओड्र तथा अन्य वनेचरों की विभाषाओं की भी गिनती की है3। अतः भरतमुनि का उक्त उल्लेख अपभ्रंश की सूचना देता है क्योंकि आगे चलकर विविध देशों में विविध प्रकार की भाषाओं के प्रयोग किये जाने का उन्होंने उल्लेख किया है। उनके अनुसार हिमालय के आसपास स्थित प्रदेशों तथा सिन्धु, सौवीर जैसे देशवासियों के लिये उकार-बहुला भाषा का प्रयोग होना चाहिये4। उकार-बहुल शब्द अपभ्रंश की ही सर्वविदित प्रवृत्ति है।

उक्त भरतमुनि की उकार–बहुला भाषा-अपभ्रंश काव्य-भाषा कब बनी, इसका स्पष्ट उल्लेख बलभी के राजा धरसेन द्वितीय (678 ई. के लगभग) के दानपत्र में मिलता है। उसके समय में प्राकृत एवं संस्कृत के साथ ही अपभ्रंश में भी काव्य-रचना करना एक विशिष्ट प्रतिष्ठा का द्योतक प्रशंसनीय चिह्न माना जाने लगा था। उक्त दान-पत्र में धरसेन ने अपने पिता गुहसेन (559-569 ई) को संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश काव्य-रचना में अत्यन्त निपुण कहा है5। इससे ज्ञात होता है कि छठवीं सदी तक अपभ्रंश भाषा व्याकरण एवं साहित्य के नियमों से परिनिष्ठित हो चुकी थी और वह काव्य-रचना का माध्यम बन चुकी थी। आगे चलकर महाकवि दण्डी, राजशेखर, नमिसाधु, अमरचन्द्र प्रभृति आचार्यों ने विविध दृष्टिकोणों से विचार किया है और उनके अध्ययन से यही विदित होता है कि इसकी दूसरी शती में जहां अपभ्रंश का प्रच्छन्न नामोल्लेख मात्र मिलता था और अपाणिनीय शब्दों के अतिरिक्त अपभ्रष्ट, विकृत या अशुद्ध शब्दमात्र अपभ्रंश की संज्ञा प्राप्त करते थे, वही ईस्वी की छठवीं-सातवीं सदी तक वह साहित्यिक भाषा के रूप में प्रचलित हो गई और नौवीं-दसवीं सदी तक वह सर्वाधिक सशक्त एवं समृद्ध भाषा के रूप में विकसित हो गई। उसके बाद वही अपभ्रंश आधुनिक देश-भाषाओं के रूप में विकसित होने लगी, यद्यपि उसकी साहित्यिक रचनाएं पन्द्रहवीं-सोलहवीं सदी तक चलती रहीं।

अपभ्रंश के उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि छठी सदी के अनन्तर उसमें साहित्यिक रचनाएं होने लगी थीं, पर अपभ्रंश साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास महाकवि चउमुह से प्रारम्भ होता है और उसके बाद दसवीं सदी से तेरहवीं सदी के पूर्वार्ध तक तो इसका स्वर्णकाल ही माना जाने लगा।

---

1. महाभाष्य 1।1।1।
2. नाट्यशास्त्र 18।22-23
3. वही 17।50
4. नाट्यशास्त्र 18।47-48
5. इण्डियन एण्टीक्वेरी वोल्यम 10, पृष्ठ-284

उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य से यह सिद्ध है कि वह मुक्तक-काव्य से प्रारम्भ होकर प्रबन्ध-काव्य मे पर्यवसान को प्राप्त हुआ । यतः साहित्य की परम्परा सदैव ही मुक्तक से प्रारम्भ होती है । प्रारम्भ मे जीवन किसी एक दो भावना के द्वारा ही अभिव्यञ्जित किया जाता है, पर, जैसे-जैसे ज्ञान और संस्कृति के साधनो का विकास होने लगता है, जीवन भी विविधमुखी होकर साहित्य मे प्रस्फुटित होता है । संस्कृत और प्राकृत मे साहित्य की जो विविध प्रवृत्तियां अग्रसर हो रही थी, प्रायः वे ही प्रवृत्तिया कुछ रूपान्तरित होकर अपभ्रंश साहित्य में प्रविष्ट हुई । फलतः दोहा-गान के साथ-साथ प्रबन्धात्मक पद्धति भी अपभ्रंश में समादृत हुई । इस दृष्टि से महाकवि चउमुह, द्रोण, ईशान,पुष्पदन्त, धनपाल प्रभृति कवि प्रमुख है । इन कवियो के साहित्य का अध्ययन करने से अपभ्रंश-साहित्य की निम्न प्रमुख प्रवृत्तिया ज्ञात होती है.–1. प्रबन्ध-काव्य प्रवृत्ति, 2. आध्यात्मिक-काव्य प्रवृत्ति, 3. बौद्ध दोहा एवं चर्यापद तथा 4. शौर्य-वीर्य एवं प्रणय–शृंगार काव्य प्रवृत्ति ।

प्रथम प्रबन्ध-काव्य प्रवृत्ति के अन्तर्गत पुराण, चरित, काव्य एवं कथा-साहित्य की गणना की जा सकती है । वर्ण्य-विषय की दृष्टि मे इन काव्यो को पौराणिक एवं रोमाण्टिक काव्य रूप मे इन दो वर्गों मे विभक्त कर सकते है । महाकवि स्वयम्भू, पुष्पदन्त एव धनपाल ये तीनो ही इस विधा के "त्रिरत्न" है । इन्होने अपभ्रंश-साहित्य मे जिन प्रबन्ध-रूढियो एवं कथानक सम्बन्धी अभिप्रायों का ग्रथन किया है, वे उत्तरवर्ती अपभ्रंश-साहित्य के लिये आधार ही बन गए हैं । महाकवि स्वयम्भू के पउमचरिउ मे काव्य की सरसता का पूर्ण निर्वाह हुआ है। उक्त ग्रन्थ की अंग्रेजी प्रस्तावना मे बताया गया है कि 'रसात्मकता एवं सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिये कवि ने विभिन्न मर्मस्पर्शी भावो के चित्रण, प्राकृतिक दृश्यो एव घटनाओ के वर्णन तथा वस्तु-व्यापार के संश्लिष्ट और प्रासंगिक निरूपण मे पर्याप्त मौलिकता एव धार्मिक रूढियो से ऊपर उठकर स्वतन्त्रता की प्रवृत्ति का परिचय दिया है। ।[1] काव्यारम्भ मे देव-स्तुति, विषय वस्तु का निर्देश, अपनी असमर्थता एव दीनता का निवेदन, पूर्वकवि-प्रशंसा, सज्जन-प्रशंसा, दुर्जन-निन्दा, देश एवं नगर वर्णन के साथ ही साथ राजनीति, दण्डनीति, अर्थनीति आदि विषयो का वर्णन उस कोटि का है, जो इस रचना को प्रबन्ध-काव्यो मे महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करता है।

महाकवि पुष्पदन्त कृत महापुराण[2] नाममात्र का ही महापुराण है । वस्तुतः वह महाभारत की शैली का विकसनशील महाकाव्य है.। महाभारत के सम्बन्ध मे जो यह किवदंती है कि—'यदिहास्ति तदन्यत्र, यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् । उसी प्रकार पुष्पदन्त के महापुराण के सम्बन्ध मे स्वयं ही कवि ने कहा है —

> अत्र प्राकृतलक्षणानि सकला नीतिः स्थितिश्छन्दसा–
> मर्थालंकृतयो रसाश्च विविधास्तत्वार्थनिर्णीतय ।
> किचान्यद्यदिहास्ति जैनचरित नान्यत्र तद्विद्यते
> द्वावेतौ भरतेश-पुष्पदशनौ सिद्ध ययोरीदृशम् ॥

(महापुराण 59 वी सन्धि का प्रारम्भिक फुटनोट)

उक्त कथन से स्पष्ट है कि जो यहा (उक्त महापुराण मे) है, वह अन्यत्र है ही नही । अतः उद्देश्य की महत्ता, शैली की उदात्तता एव गरिमा तथा भाव-सौन्दर्य और वस्तु-व्यापार वर्णन आदि की दृष्टि से उक्त महाकाव्य मे अपूर्व रस विभोर करने की क्षमता विद्यमान है ।

---

1. पउमचरिउ (सिंघी सीरीज) प्र. भा प्रस्तावना पृष्ठ 48
2. माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला (बम्बई, 1940) द्वारा प्रकाशित

पौराणिक शैली के वैयक्तिक महापुरुषों से सम्बन्धित महाकाव्य भी अपभ्रंश में लिखे गए हैं। इन काव्यों की प्रवृत्ति यह रही है कि इनमें किसी पौराणिक या धार्मिक व्यक्ति की जीवन-कथा जैन-परम्परा में स्वीकृत शैली में कही जाती है। कवि अपनी कल्पना शक्ति से कथा के रूप में इतना परिवर्तन कर देता है कि समस्त चरित काव्यात्मक रूप धारण कर रसमय बन जाता है। इस श्रेणी के अपभ्रंश काव्यों में णेमिणाहचरिउ (हरिभद्र, 13वीं सदी), जम्बू-सामि चरिउ (वीर कवि 10 वीं सदी), पासणाह चरिउ (विबुध श्रीधर, 12 वीं सदी), संतिणाह-चरिउ (शुभकीर्ति) प्रभृति रचनाएं प्रमुख हैं। इन सभी पौराणिक काव्यों का आलोडन करने पर निम्न सामान्य प्रवृत्तियां लक्षित होती हैं :—

1. प्रबन्ध काव्यों में प्रारम्भ करने की शैली प्रायः एक सदृश है। प्रारम्भ म तीर्थंकरों की स्तुति, पूर्ववर्ती कवियो और विद्वानो का स्मरण, सज्जन-प्रशसा एव दुर्जननिन्दा, काव्य-रचना मे प्रेरणा एवं सहायता करने वालों की अनुशसा, विनम्रता अथवा दीनता प्रदर्शन, महावीर का राजग्रही मे समवशरण का आगमन तथा महाराज श्रेणिक का उसमें पहुँचकर प्रश्न करना तथा गौतम गणधर का उत्तर देना आदि पिष्टपेषित सन्दर्भाश विद्यमान है।

2. त्रेसठ शलाका महापुरुषो अथवा अन्य किन्हीं पुण्यशाली महापुरुषो के जीवन-चरितों को लेकर अपभ्रंश-कवियों ने कल्पना के द्वारा यत्किंचित् परिवर्तन कर काव्य का रूप खड़ा किया है। यद्यपि ढाचा संस्कृत एवं प्राकृत जैसा ही है, पर विषय-प्रतिपादन की शैली उनकी अपनी निजी है।

3. चरित-नायको और उनसे संबंधित व्यक्तियो के विभिन्न जन्मो की कथा के उस मार्मिक अश को ग्रहण किया गया है, जो लोक-जीवन का आदर्श आधार हो सकता है। यद्यपि क्वचित् भवान्तरो का निरूपण भी है, पर संस्कृत और प्राकृत की अपेक्षा उनकी निरूपण-शैली मे भी भिन्नता है। सस्कृत और प्राकृत के कवि जहा भवान्तरो की झडी लगा देते हैं, वहा अपभ्र श के पौराणिक महाकाव्यो के रचयिता कवि मात्र मर्मस्पर्शी भवान्तरो को ही समाविष्ट करते हैं।

4 उक्त भवान्तर-वर्णन का मूल कारण कर्मफल प्राप्ति में अडिग आस्था ही है और उसका मुख्य उद्देश्य जैन धर्म का उपदेश देना है। परिणाम स्वरूप ये सभी काव्य वैराग्यमूलक और शान्तरस पर्यवसायी हैं। यत उनके नायको का साधु हो जाना और निर्वाण प्राप्त करना आवश्यक माना गया है।

5 उक्त श्रेणी के काव्यो मे लोक-विश्वासो और लोक—कथाओ का पर्याप्त रूप में समावेश हुआ है। अलौकिक और अप्राकृतिक तत्व भी यथेष्ट रूप मे समाविष्ट हैं। यथा— देव, यक्ष, राक्षस, विद्याधर आदि के अलौकिक कार्यों, मत्तगज से यद्ध, आकाश गमन जैसे वर्णन प्राचीन परम्परा के आधार पर ही वर्णित है।

6 यद्यपि पौराणिक-काव्य धर्मविषयक है, पर शृंगार और युद्ध-वर्णन की परम्परा भी प्रायः सभी काव्यों में उपलब्ध हैं। कथा के भीतर अवसर मिलते ही कवि सन्ध्या, प्रभात, चन्द्रमा, नदी, सागर, पर्वत, वन आदि का सुन्दर चित्रण उपस्थित करता है। स्त्रियों के शारीरिक सौन्दर्य, जल क्रीडा एवं सुरति आदि के वर्णनो से भी परहेज दिखाई नही पड़ता। यद्ध-प्रयाण, कुमार-जन्म, विवाहोत्सव आदि के भी सजीव चित्र उपलब्ध होते है। कहीं-कही तो ऐसा होता है कि कथा-प्रवाह को दबा कर वस्तु-वर्णन हावी हो गया है।

रोमाण्टिक काव्य की कोटि की रचनाओ में धार्मिकता और ऐतिहासिकता का संगम है। इनमें कुछ धार्मिक महापुरुषो अथवा कामदेव के अवतारो के जीवन-चरित वर्णित है और

कुछ व्रतों और मन्त्रों का फल दिखाने के लिये दृष्टान्त के रूप में लिये गये आख्यान हैं। इस श्रेणी के काव्यों मे पुष्पदन्त कृत णायकुमार चरिउ, नयनन्दि कृत सुदसणचरिउ, कनकामर कृत करकंड चरिउ, लाखू कवि कृत जिणदत्त चरिउ आदि प्रमुख हैं। धनपाल कृत भविसयत्तकहा को भी इस कोटि का काव्य माना जा सकता है। इन समस्त रोमाण्टिक काव्यों में उपर्युक्त करकंड चरिउ, णायकुमार चरिउ एव सुदसणचरिउ प्रथम श्रेणी के रोमाण्टिक काव्य हैं। इन काव्यों का पृथक्-पृथक् विश्लेषण न कर इनकी सामान्य प्रवृत्तियों का संक्षिप्त परिचय यहां प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. अपभ्रंश के रोमाण्टिक-काव्यो की प्रमुख विशेषता पात्रो के मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण संबंधी है, यद्यपि नख-शिख वर्णन एव वेशभूषा के चित्रण में पूर्णतया शृंगारिकता है। कथावस्तु मे रोमाञ्च उत्पन्न करने हेतु साहसिक-यात्राएं तथा युद्ध एव प्रेम का वर्णन उदात्त शैली मे हुआ है।

2. अपभ्रंश के रोमाण्टिक-काव्यो की कथा का आधार प्रचलित लोक-कथाए और लोक-गाथाएं है। कवियो ने कुछ धार्मिक बाते जोडकर उन्हे चरित या कथा काव्य का परिधान पहिना दिया है। नायक को जैन धर्म का बाना पहिना कर ऐतिहासिकता और धार्मिकता के प्रयागराज मे लाकर उपस्थित कर दिया है।

3. रोमाण्टिक-काव्य एक प्रकार से प्रेमाख्यानक काव्य हैं। इनमे वीरगाथात्मक काव्यो के समान युद्ध और प्रेम को अधिक महत्व दिया गया है। यह लोक-गाथाओ और वीर-गीतो की प्रवृत्ति है या जिनके चक्र से विकसनशील महाकाव्यो का विकास होता है। इसमे सन्देह नही कि अपभ्रंश के कवियो ने धार्मिक आवरण मे रोमाञ्चक काव्य लिखे है।

4. प्रस्तुत काव्यों मे कल्पना की गगनचुम्बी उडाने एव अतिशयोक्तियों की भरमार है। यद्यपि उनका आधार यथार्थ जीवन है, तो भी कल्पना की रगरेलिया आखमिचौनी खेलती हुई दृष्टिगोचर हो जाती है। पुष्पदन्त के णायकुमार चरिउ मे नायक नागकुमार सैकड़ो राजकुमारियो से विवाह करता है, जिसका यथार्थ आधार यह है कि सामन्ती वीरयुग मे सामन्त लोग युद्ध मे विजित राजाओ की राजकुमारियां से विवाह करते थे। इस प्रकार बहुविवाह करने की प्रथा विकसित थी। कवियो ने इसी संभावना के बल पर अतिशयोक्तिपूर्ण घटनाओ का अकन किया है।

5. साहसिक-कार्य, बीहड यात्राएं, उजाड नगर अथवा भयंकर बन में अकेले जाना, उन्मत्त हाथी से अकेले ही युद्ध करना, यक्ष, गन्धर्व और विद्याधरादि से युद्ध करना, समुद्र-यात्रा और उसमे जहाज का फट जाना आदि का वर्णन मिलता है। ये वर्णन कथा में रोमाञ्च गुण उत्पन्न करने के लिये उस नमक के समान है जो व्यञ्जन को स्वादिष्ट बनाने के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

6. पौराणिक-काव्यो के समान रोमाण्टिक काव्यों के कथानक भी उलझे हुए और जटिल है। कथा के भीतर कथा की परम्परा जिसे कि 'कदलीस्तम्भशिल्प' कहा जा सकता है, सर्वत्र वर्तमान है। अवान्तर-कथाओ और भवान्तरो का वर्णन इन काव्यो की एक सामान्य विशेषता है। पूर्वजन्मो के कर्मों का फल दिखाकर शील का उन्नत बनाना एव वर्तमान जीवन को परिष्कृत करना ही इन काव्यों का उद्देश्य है। नायक आरम्भ में विषयासक्त दिखलाई पड़ेगा, पर अन्त में विरक्त होकर सन्यास ग्रहण कर लेता है तथा मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

7. अपभ्रंश के रोमाण्टिक-काव्यों मे कथानक रूढियों का प्रचुर परिमाण मे उपयोग हुआ है, जिनमें से निम्न रूढियां तो अत्यन्त प्रसिद्ध है :—

(क) उजाड नगर का मिलना, वहा किसी कुमारी का दर्शन होना और उससे विवाह हो जाना । भविसयत्तकहा इसका सुन्दर उदाहरण है ।

(ख) प्रथम-दर्शन, गुण-श्रवण या चित्र-दर्शन द्वारा प्रेम का जागृत होना। यथा— भविसयत्त कहा, णायकुमार चरिउ, सुदसण चरिउ आदि ।

(ग) द्वीप-द्वीपान्तरो की यात्रा, समुद्र मे जहाज का टूट जाना, नाना प्रकार की बाधाय और उन बाधाओं को पारकर निश्चित स्थान पर पहुंचना। यथा भविसयत्त कहा, णायकुमार चरिउ, सिरिवाल कहा आदि ।

(घ) दोहद कामना । यथा करकड चरिउ ।

(ङ) पञ्चाधिवासितो द्वारा राजा का निर्वाचन । यथा करकंड चरिउ ।

(च) शत्रु-सन्तापित सरदार की सहायता एव युद्ध मोल लेना । यथा करकड चरिउ, णायकुमार चरिउ ।

(छ) मुनि-श्राप । यथा करकड चरिउ, भविसयत्त कहा ।

(ज) पूर्व जन्म की स्मृति के आधार पर शत्रुता एव मित्रता का निर्वाह, पूर्व-जन्म के उपकारो का बदला चुकाना तथा जन्मान्तरो के दम्पतियों का पति-पत्नी के रूप मे होना । यथा जसहर चरिउ, णायकुमार चरिउ, करकड चरिउ, भविसयत्त कहा आदि ।

(झ) दुश्चरित्र अथवा धोखेबाज पत्नी का होना । यथा करकड चरिउ, जसहर चरिउ, सुदसण चरिउ आदि ।

(ञ) रूप-परिवर्तन । यथा करकड चरिउ, भविसयत्त कहा आदि ।

दूसरी आध्यात्मिक काव्य-प्रवृत्ति को कुछ विद्वानों ने रहस्यवादी काव्य-प्रवृत्ति भी कहा है । इस विधा मे सबसे प्राचीन जोइदु कृत परमप्पयासु-जोयसारु एवं मुनि रामसिह कृत पाहुडदोहा तथा सावयधम्मदोहा नामक दोहा-ग्रन्थ प्रमुख हे । अपभ्रंश के इस श्रेणी के साहित्य पर एक ओर कुन्दकुन्द के समयसार का प्रभाव हे, ता दूसरी ओर उपनिषद् तथा गीता के ब्रह्मवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है । इसमे आत्मा—परमात्मा, सम्यक्त्व—मिथ्यात्व एवं भेदानुभूति का बहुत ही सुन्दर चित्रण हुआ है। परमात्मा का स्वरूप बतलाते हुए कवि जोइदु ने कहा है—

> वेयहिं सत्थहिं इंदियहिं, जो जिय मुणहु ण जाइ ।
> णिम्मल झाणहं जो विसउ जो परमप्पु अणाइ ॥ (1।23)

अर्थात्—केवली की दिव्यवाणी से, महामुनियो के वचनो से तथा इन्द्रिय एवं मन से भी शुद्धात्मा को नही जाना जा सकता, किन्तु जो आत्मा निर्मल ध्यान द्वारा गम्य है, वही आदि-अन्त रहित परमात्मा है ।

मुनि रामसिंह ने रहस्यवाद का बहुत ही सुन्दर अंकन किया है। भारतीय-परम्परा में जिस रहस्यवाद के हमें दर्शन होते हैं, वह रहस्यवाद रामसिंह के निम्न दोहे में स्पष्ट रूप से विद्यमान है :—

हउं सगुणी पिउ णिग्गुणउ णिल्लक्खणु णीसगु।
एकहिं अगि बसंतयहं मिलिउ ण अंगहिं अंगु ॥ (पाहुड.-10)

अर्थात्—मैं सगुण हूं और प्रिय निर्गुण, निर्लक्षण और निःसंग है। एक ही अंग रूपी अंक अर्थात् कोठे में बसने पर भी अंग से अग नही मिल पाया।

तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर अवगत होता है कि अपभ्रंश की इस विधा पर योग एव तान्त्रिक पद्धति का भी यत्किञ्चित प्रभाव पड़ा है। इसमें चित्-अचित्, शिव-शक्ति, सगुण-निर्गुण, अक्षर, रवि-शशि आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग मिलता है, जो जैन परम्परा के शब्द नही है। शिव-शक्ति के सम्बन्ध मे कहा गया है :—

सिव विणु सत्ति ण वावरइ सिउ पुणु सत्ति-विहीणु।
दोहिंमि जाणहिं सयलु जगु बुज्झइ मोह विलीणु ॥ (पाहुड.-55)

अर्थात् शिव के बिना शक्ति का व्यापार नही होता और न शक्ति-विहीन शिव का। इन दोनो को जान लेने से सकल जगत् मोह में विलीन समझ में आने लगता है।

तीसरी महत्वपूर्ण विधा बौद्ध-दोहा एव चर्या-पद सम्बन्धी है, जिसे सन्ध्याभाषा की संज्ञा भी प्राप्त है। सिद्धों ने परमानन्द की स्थिति, उस मार्ग की भावना एवं योग-तत्व का वर्णन प्रतीकात्मक भाषा मे किया है। इतना ही नही, उन्होंने तात्कालिक सामाजिक कुरीतियों तथा रूढियो की निन्दा के साथ ब्राह्मण धर्म के पाखण्डो का भण्डाफोड किया है। यद्यपि इन दोहो मे आध्यात्मिक तत्व और दार्शनिक परम्परायें निहित है, पर इनमे ध्वसात्मक-तत्व प्रधान रूप से सजग हैं, जबकि जैन आध्यात्मिक अपभ्रंश दोहो मे तीव्र ध्वंसात्मक रूप न होकर आध्यात्मिक तत्व का निरूपण ही उपलब्ध होता है। मुनि रामसिंह ने भी यद्यपि आडम्बर-पूर्ण कुरीतियो का निराकरण किया है, पर वे अपनी वर्णन-प्रक्रिया में उग्र नही हो पाए हैं। यथा:—

मुडिय मडिय मुडिया सिरु मुडिउ चित्तु ण मुंडिया।
चित्तह मुंडणु जि कियउ ससारहं खडणु तिं कियउ ॥ (पाहुड—135)

अर्थात् हे मूड मुडाने वालो मे श्रेष्ठ मुंडी, तूने सिर तो मुंडाया पर चित्त को न मोड़ा। जिसने चित्त का मुण्डन कर डाला उसने ससार का खण्डन कर डाला।

जैन कवि कण्ह या सरह की भाति अपने विरोधी को जोर की डांट-फटकार नहीं बतलाते और तान्त्रिक-पद्धति भी उस रूप में समाविष्ट नही है, जिस रूप मे बौद्ध-दोहों मे। यत बौद्ध-तान्त्रिकों ने स्त्री-सग और मदिरा को साधना का एक आवश्यक अंग माना है। इन तान्त्रिकों की कृपा से ही शैव और शाक्त साधना में पंच-मकार को स्थान प्राप्त हुआ है। वज्रयान शाखा के कवियों ने अपनी रहस्यात्मक मान्यताओ को स्त्री-संग संबंधी प्रतीकों से व्यक्त किया है। यही कारण है कि बाला, रण्डा, डोम्बी, चाण्डाली, रजकी आदि के साथ भोग करना इन्होंने विहित समझा। यद्यपि यह सत्य है कि योग-स्थिति का वर्णन करने के हेतु वे अश्लील प्रतीक चुनते थे पर उनका अभिप्रेत अर्थ भिन्न ही होता था। बाला, रण्डा के साथ सम्भोग करने का अर्थ है कि कुण्डलिनी को सुषुम्ना के मार्ग से ब्रह्म रन्ध्र में ले जाना। अतएव स्पष्ट है कि बौद्ध-दोहों के द्वारा अपभ्रंश-साहित्य में प्रतीकात्मक-रहस्यवाद की एक परम्परा प्रारम्भ हुई।

चर्यापद तो परवर्ती-साहित्य के लिये बहुत ही अमूल्य-निधि सिद्ध हुए। इन्हीं पदों से हिन्दी के पद-साहित्य के विकास की कड़ी सहज में ही जोड़ी जा सकती है।

चौथी काव्य प्रवृत्ति शौर्य एवं प्रणय सबंधी है, जो अपभ्रंश दोहा-साहित्य में प्राचीन काल से चली आ रही है। डा हीरालाल जैन ने इस प्रवृत्ति को भावनात्मक-मुक्तक प्रवृत्ति[1] की संज्ञा प्रदान की है। उन्होने इस प्रवृत्ति के जन्मदाता राजस्थानी चारणया भाट कवियो को बताया है। वस्तुत इस प्रवृत्ति का दर्शन हमें महाकवि कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' नामक नाटक की उन उक्तियों में मिलता है, जिनमें विरही पुरुरवा अपने हृदय की मार्मिक दशा को व्यक्त करता है। पुरुरवा देखता है कि सामने से कोई हस मन्द गति से चला जा रहा है। हस को यह अलसगति कहा से मिली ? उसे सहसा ही उर्वशी का जघनभरालसगमन स्मरण आ जाता है और वह कह उठता है:—

रे रे हंसा किं गोइज्जइ गइ अणुसारें मइं लक्खिज्जइ।
कइं पइ सिक्खिउ ए गइ लालस सा पइं दिट्ठी जहणभरालस॥

(विक्रमोर्वशीय नाटकम् 4।32)

पुरुरवा हस-युवा को हमिनी के साथ प्रेमरस के साथ क्रीडा करते हुए देखकर उर्वशी के विरह से भर जाता है और उसके मुख से निकल पडता है, काश, मैं भी हस होता —

एक्कक्कमवड्ढिअगुरुअरपेम्मरसें।
सरे हंसजुआणओ कीलइ कामरसें (विक्रमोर्वशीय 4।41)

यहां यह स्मरणीय है कि उक्त पद्यो की अभिव्यञ्जना शैली लोकगीतो के अतिनिकट है। उपर्युक्त पद्य अडिल्ल छन्द में लिखा गया है, जो अपभ्र श का अपना छद है। अत यह निष्कर्ष निकालना कठिन नहीं है कि अपभ्रंश की प्रबन्ध-पद्धति के विकास मे लोकगीतो का प्रमुख स्थान रहा है।

कालिदास के प्रणय-मुक्तको के उपरान्त दूसरी मोतियो की लडी हमे आचार्य हेमचन्द्र के व्याकरण-दोहों में मिलती है। जहा कालिदास के मुक्तको में टीस, वेदना और कसक है वहा हेमचन्द्र के दोहों मे शौर्य-वीर्य का ज्वलन्त तेज, युवक-युवतियो के उल्लास, प्रणय-निवेदन के वैविध्य एव रतिभावों के गाम्भीर्य दृष्टिगोचर होते हैं। इसमे सदेह नही कि हेमचन्द्र के उन अपभ्रंश-दोहो में लोक-जीवन का तरल चित्रण मिलता है। प्रणय के भोलेपन और शौर्य की प्रौढी की झलक अद्वितीय है। हेमचन्द्र द्वारा उदाहृत इन दोहो में मात्र रमणी के विरह मे कुम्हलाने वाला प्रेम या संयोग की कसौटी पर कनकरेखा की तरह चमकने वाला प्रेम दिखलाई नही देता, किन्तु प्रेम का वह रूप दृष्टिगोचर होता है, जिसमे प्रिय अपने शौर्य और पराक्रम-प्रदर्शन द्वारा अपनी वीरता से नायिका के हृदय को जीत लेता है। यहां शृंगार-मिश्रित वीर-रस के कुछ पद उद्धृत किये जाते है :—

संगर सएहिं जु वण्णिअइ देक्खु अम्हारा कन्तु।
अइमत्तहं चत्तंकुसहं गयकुंभइं दारंतु॥ (सिद्धहेम. 45)

अर्थात् जो सैकडों युद्धो मे बखाना जाता है, उस अतिमत्त त्यक्तांकुश गजों के कुम्भस्थलो को विदीर्ण करने वाले मेरे कन्त को देखो।

---

1 नागरी प्रचारिणी पत्रिका—अक 50 पृष्ठ 108

एक नायिका युद्धस्थल में अपने प्रियतम के हाथों में करवाल देखकर प्रसन्न हो जाती है। वह देखती है कि जब उसकी अथवा शत्रुओं की सेना भागने लगती है तब उसके प्रियतम के हाथो में तलवार चमकने लगती है :—

> भग्गउ देक्खिवि निअय-बलु बलु पसरिअउ परस्सु ।
> उम्मिल्लइ ससिरेहं जिवं करि करवालु पियस्सु (सिद्धहेम. 354)

हेमचन्द्र के अनन्तर प्रबन्ध-चिन्तामणि में कवि मुञ्ज के भी उक्त प्रवृत्ति सम्बन्धी कुछ दोहे उपलब्ध होते है। यहा वीरता सम्बन्धी दो एक उदाहरण प्रस्तुत किये जाते है जिससे उक्त प्रवृत्ति का आभास उपलब्ध हो सके :—

> एहु जम्मु नग्गहं गियउ भडसिरि खग्गु न भग्गु ।
> तिक्खां तुरिय न माडिया गोरी गलि न लग्गु ॥ (पद्य-75)

अर्थात् यह जन्म व्यर्थ गया क्योकि भट के सिर पर खड्ग भग्न नहीं किया, न तीखे घोड़े पर सवारी की और न गौरी को गले मे ही लगाया।

> आपणइं प्रभु होइयइ कइ प्रभ कीजइ हत्थि ।
> काज करेवा माणमह नीजइ मग्गु न अत्थि ॥ (पद्य 179)

अर्थात् या तो स्वय अपने ही स्वामी हों या स्वामी को अपने हाथ में करे। कार्य करने वाले पुरुष के लिये अन्य तीसरा कोई मार्ग नही।

तत्पश्चात् इसी अपभ्रंश मे आधुनिक भारतीय लोकभाषाओ का उदय हुआ जिसमे नागर अथवा शौरसेनी अपभ्रंश से उसकी प्रायः समस्त प्रवृत्तियों को लिए हुए राजस्थानी भाषा का विकास हुआ। "राजस्थान" अथवा "राजस्थानी" शब्द युगो-युगो तक हमारे गौरव का प्रतीक-चिन्ह रहा है क्योकि उस पुण्यभूमि पर निर्मित विविध साहित्य अध्यात्म-जगत् मे तो सर्वोपरि रहा ही, साथ ही स्वाभिमान, संस्कृति एवं देश-गौरव की सुरक्षा की कहानी के रूप में भी वह महामहिम रहा है। उसके शौर्य-वीर्य पूर्ण साहित्य से प्रभावित होकर कर्नल टाड ने लिखा है कि "राजस्थान मे कोई छोटा सा राज्य भी ऐसा नही है कि जिसमें थर्मापिली जमी रण-भूमि न हो और न ही ऐसा कोई नगर अथवा ग्राम है जहा लाइयोनिडस जैसा वीर महापुरुष उत्पन्न न हुआ हो।" तात्पर्य यह है कि राजस्थानी भाषा मे 12वी-13वी सदी से ही ऐसे साहित्य का सृजन होता रहा है जिसमें एक ओर तो जैन कवियो द्वारा शान्तरस की अविच्छिन्न-धारा प्रवाहित रही और दूसरी ओर मुगलो के आक्रमणो के बाद रण में जूझने वाले लक्ष-लक्ष राष्ट्रप्रेमी आबाल-वृद्ध नर-नारियो की वीर-गाथाओ को लेकर राजस्थानी कवियों ने अपने विविध वीर काव्यो की रचनाएं की और शृंगार एवं वीर रस को नया ओज प्रदान किया। समग्र राजस्थानी साहित्य का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि वह युग-युग की पुकार के अनुसार एक योजनाबद्ध 'टीम-वर्क' के रूप मे विकसित हुआ है। राजस्थानी कवियो ने राजस्थान एवं राजस्थानी-भाषा, राजस्थानी-संस्कृति, राजस्थानी-इतिहास, राजस्थानी-लोक परम्परायें तथा अध्यात्म, धर्म, दर्शन एवं विचारधाराओ तथा सम-सामयिक परिस्थितियों के अनुसार समाज एवं देश को उदबोध देने हेतु अपनी-अपनी शक्ति एवं प्रतिभा के अनुसार साहित्य सृजन किया है। फिर भी अध्ययन की सुविधा से उसे तीन भागो में विभक्त किया जा सकता है :—

1. राजस्थानी जैन साहित्य 2 राजस्थानी चारण भाटो द्वारा लिखित साहित्य एवं 3. राजस्थानी लौकिक साहित्य।

प्राचीनता प्रामाणिकता एवं परिमाण में राजस्थानी जैन-साहित्य जैन-संस्कृति का पोषक होने पर भी भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त प्रामाणिक है, क्योंकि राजस्थानी भाषा के विकास के साथ ही जैन कवियों ने उसमें अपनी रचनाएं आरम्भ करदीं थी। अतः प्रारम्भिक राजस्थानी भाषा मे लिखे जाने तथा उन रचनाओं की समकालिक प्रतिलिपिया सुशिक्षित एवं गृहत्यागी साधक यतियों द्वारा लिखित होने से वे राजस्थानी भाषा के भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। वर्धमानसूरि कृत 'वर्धमान पारणउ' जैसी अनेक रचनाएं राजस्थानी के उदय काल में लिखी गई। तत्पश्चात् रासा-साहित्य में भरतेश्वर बाहुबलि घोर, भरतेश्वर बाहुबलि रास, बुद्धि रास, जीवदया रास, आबू रास एवं धवलगीत जैसी अनेक रचनाएं इसी कोटि मे लिखी गईं, साथ ही विविध कथा, चरित, आख्यान तथा छन्द, अलंकार और लोकोपयोगी अनेक ग्रन्थ लिखे जाते रहे। यह क्रम मुगल-आक्रमणो के पूर्व तक तीव्रगति से चलता रहा। उसके बाद विषम राजनैतिक उथल-पुथल की स्थिति मे चारण-भाटो ने रण-बाकुरो में रण-जोश जगाने हेतु वीरोचित्त अनेक काव्यो का प्रणयन किया, जो वर्षों तक कण्ठ-परम्परा मे ही प्रचलित बने रहे।

कुछ विद्वानो ने राजस्थानी जैन कवियो पर सम्प्रदायवाद का दोषारोपण किया है। उसका मूल कारण राजस्थानी कवियो की विविधमुखी साहित्यिक रचनाओ के प्रति उन (दोषारोपणा करने वालों) की सर्वथा अनभिज्ञता ही कही जानी चाहिये। साधन-सामग्री के अभाव अथवा स्वय के प्रमादवश सम्भवत उन्हें यह जानकारी प्राप्त नही हो सकी कि जैन कवि निरन्तर ही निस्पृह भावना से लोकानुगामी रहे है। उन्होने जैन विषयो पर मात्र इसलिये ही नही लिखा है कि वे जैन थे, बल्कि इसलिये लिखा है कि जैनधर्म एव दर्शन राजस्थान एव गुजरात के प्रमुख धर्म-दर्शनो में से एक था तथा वहा पर जैनधर्मियो की सख्या भी पर्याप्त थी। अत उस युग की माग को पूर्ण करने के लिये ही उसे एक विधा के रूप में लिखा गया, जो जैनधर्म, दर्शन, आचार एवं अध्यात्म को तो पुष्ट करना ही है साथ ही वह भावात्मक प्रवृत्तियो, साहित्यिक विविध शैलियों, विविध कथाओ, चरितो, आख्यानो, छन्दभेदो तथा अलकार, रस एव रीति-सिद्धान्तो की दृष्टि से भी कम महत्वपूर्ण नही है। जायसी, सूर, कबीर एवं तुलसी साहित्य का साहित्य के विकास-क्षेत्र में जो अनुदान है, राजस्थानी जैन कवियो के अनुदान उनसे कम नही माने जा सकते। यदि राजस्थानी जैन कवि सम्प्रदायवादी तथा एकागी विचारधारा वाले होते तो दलपत, हेमरत्न, लब्धोदय कुशललाभ, राजसोम, सोमसुन्दर, विद्याकुशल, चारित्रधर्म जैसे राजस्थानी जैन कवि (खुमानरासो, गोरा बादल चउपइ आदि) जैनेत्तर रचनाएं कभी न लिखते। जैन कवि मुंहणोत नणसी यदि राजस्थानी ख्याते न लिखते तो राजस्थान एव गुजरात का इतिहास लिखा जाना भी सम्भव न होता। राठोरो की ख्याते, राठोरो की वशावलिया तथा प्रबन्धकोश, प्रबन्ध-चिन्तामणि पुरातन-प्रबन्ध-सग्रह, कुमारपाल प्रतिबोध प्रभृति ग्रन्थ राजस्थान एव गुजरात के इतिहास के लिये ही नही अपितु भारतीय-साहित्य एव इतिहास के भी स्रोत-सदर्भ ग्रन्थ माने गये है। जैन कवि भानुचन्द्र सिद्धिचन्द्र गणि ने लाहे के चने समझी जाने वाली बाण-भट्ट कृत कादम्बरी की सरल संस्कृत टीका न लिखी होती, तो वह सम्भवतः लुप्त-विलुप्त अथवा अपठित एवं अप्रकाशित ही रहती। इसी प्रकार लीलावती भाषा चउपइ, गणितसार चउपइ, सारस्वत बालावबोध, वृत्तरत्नाकर बालावबोध, रसिकप्रिया बालावबोध, अमरुशतक टीका, क्रिसनबेलीरुक्मिणी टीका, माधव निदान टब्बा, चमत्कार चिन्तामणि बालावबोध, अगफुरकन चउपइ, मुहूर्त चिन्तामणि बालावबोध, हीरकलश, चाणक्यनीति टब्बा, हीयाली, ऊदररासो, तमाखू निषध, शृगारशत, बारहमासा, लोचन काजल संवाद, कर्पूरमंजरी, ढोलामारु, भोज चरित्र, विक्रमचरित्र, विल्हणपचाशिका, मदयवत्ससावलिगा चउपइ प्रभृति रचनाये ऐसी है, जो जैनेतर विषयो से सम्बन्धित है, किन्तु वे सभी राजस्थानी जैन कवियों द्वारा लिखित है और वे राजस्थानी साहित्य की सर्वोपरि रचनाएं भी सिद्ध हुई है। वस्तुत. जैन कवियो के सम्मुख जनाजन का भेदभाव न था। उनके सम्मुख तो एक ही दृष्टिकोण था—राजस्थानी-भाषा, राजस्थानी-साहित्य, लोकमगल, सर्वोदय एव समन्वय की भावना को जागृत कर उनके आदर्श रूपों को अधिकाधिक लोकोपयोगी बनाकर उनका सहज रूप में प्रस्तुतीकरण। अपने इसी

लक्ष्य की पूर्ति में जैन कवि व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं की भी निरन्तर उपेक्षा करते रहे । ऐसे शिरोमणि महाकवियों में समयसुन्दर, जिनहर्ष, जिनसमुद्रसूरि (बेगड), हालू, कुशललाभ, जिनदत्तसूरि, विनयसमुद्र, मतिसागर, लब्धोदय, सुमतिहंस, सिंहगणि, बच्छराज, मानसागर, सारंग, लक्ष्मीवल्लभ, हीरानन्द, केशव, घेल्ह, आनन्दघन प्रभृति प्रमुख है । ये निश्चय ही ऐसे सरस्वती-पुत्र हैं जिन्होने अपने साहित्य-साधना द्वारा राजस्थानी-अपभ्रंश के माध्यम से राष्ट्र-भारती की वेदिका को द्योतित कर उसे महार्घ्यदान दिया हैं ।

राजस्थानी जैन कवियो ने राजस्थानी जैनेतर कवियो की कमी पूर्ति तो की ही, उन्होने राजस्थानी साहित्य-शैलियो का कोना-कोना भी छान मारा और उन्हे जहा जो रिक्तता का अनुभव हुआ उसे पूरा ही नही किया बल्कि प्रत्येक विधा मे उन्होंने भरमार जैसी ही करदी । यदि उन्होने छन्दशास्त्र पर कुछ लिखा तो सामान्य रूप से ही नही बल्कि स्वरसंगीत की दृष्टि से पृथक, वर्ण-संगीत की दृष्टि से पृथक् और सरल सगीत की दृष्टि से पृथक् रूप से रचनाए कीं । यदि उन्होने कथाओं या आख्यानो पर रचनाए की तो उनमें भी सामान्य रूप से ही नही, बल्कि धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, उपदेशात्मक, मनोरजनात्मक, अलौकिक, नैतिक, पशुपक्षि सम्बन्धी, शाप-वरदान विषयक, व्यवसाय सम्बन्धी, यात्रा-सम्बन्धी, मन्त्र-तन्त्र-सम्बन्धी, विशिष्ट न्याय विषयक, काल्पनिक एव प्रकीर्णक आदि विषयो के वर्गीकरण करके तदनुसार सहस्रो-सहस्रों की मात्रा मे कथाए लिख डाली । ये कथाएं इतनी सरस, मार्मिक एव लोक-प्रिय हुई कि कुछ ने तो देश की परिधि भी लाघ डाली और सुदूर एशिया एव योरुप मे जाकर वहा के साहित्य की कुछ स्थानीय परिवर्तनो के साथ वे उसकी प्रमुख अग बन गई ।

इस प्रकार राजस्थानी भाषा का यह साहित्य वस्तुत. परवर्ती अपभ्र श के बहुमुखी विकास एव विविध प्रवृत्तियों की रसवती कहानी तथा साहित्यिक इतिहास की अक्षयनिधि है । हिन्दी-साहित्य के इतिहासकार इसे हिन्दी-साहित्य के महामहिम प्रथम अध्याय-आदिकाल के रूप मे स्वीकार करते हैं । यथार्थता यह है कि अपभ्र श साहित्य इतना विशाल, युगानुगामी तथा लोकानुगामी रहा हैं तथा उसका परिवार इतना विस्तृत रहा हैं कि हर प्रान्त एव हर बोली वालो ने उसे अपना-अपना नाम देकर तथा अपनी मुद्रा लगाकर उसे अपना ही घोषित किया है । विकसनशील लोकभाषा का यही प्रधान गुण भी होता है । परवर्ती अपभ्र श के इस रूप एव परिधि के विस्तार मे राजस्थानी कवियो, विशेषतया राजस्थानी जैन कवियो का योगदान कभी भी विस्मृत नही किया जा सकेगा ।

अपभ्रंश के साहित्यकार 3

—डा. देवेन्द्रकुमार शास्त्री

प्राचीनकाल में टक्क, भादानक, मालवा और मेदपाट से संयुक्त मरुभूमि न केवल शूर-वीरता के लिए रण-भूमि में राजपूताना की आन-बान को गौरव प्रदान करने वाली थी, बल्कि विभिन्न विषयों की साहित्य-सर्जना में भी ऊर्जस्वित स्वरों को मुखरित करने वाली थी । युद्ध-क्षेत्र में रण-बाकुरों की भांति इस प्रदेश के साहित्यकारों में भी वाणी की तेजस्विता थी, जो सतत जन-चेतना को जागृत करती रही है। यहां की भाषा भी सदा ओजस्फुरण वाली रही है। ओज गुण के अनुकूल ही मूर्धन्य वर्णों की प्रधानता इसी प्रवृत्ति की सूचक है। इसी प्रकार से राजस्थानी की रागात्मकता, स्वराघात तथा प्लुत आदि का प्रयोग अपने निरालेपन को सूचित करते हैं।

राजस्थान से अपभ्रंश का पुराना सम्बन्ध रहा है। अपभ्रंश भारत की पश्चिमोत्तर प्रदेश की बोली थी। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया यह बोली दक्षिण-पूर्व में फैलती गई। इसके प्रसार का सम्बन्ध आभीरों से बताया जाता है। इस देश के कई प्रदेशों में आभीरों का राज्य रह चुका है। नेपाल, गुजरात, महाराष्ट्र और पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों में कई आभीर राजाओं का राज्य था। आचार्य भरत मुनि ने हिमालय की तराई, सिन्ध प्रदेश और सिन्धु नदी के पूर्ववर्ती घाटी प्रदेश में बसने वाले वनचरों की भाषा को आभीरोक्ति कहा है। राजशेखर अपभ्रंश का क्षेत्र सम्पूर्ण राजपूताना, पंजाब (पूर्व में व्यास नदी से पश्चिम में सिन्ध नदी तट का प्रदेश) और भादानक (भदावर) प्रान्त बताते हैं। इस से यह स्पष्ट है कि दसवीं शताब्दी में अपभ्रंश राजस्थान में बोली जाती थी। पांचवीं-छठी शताब्दी में यहां प्राकृत भाषा का प्रचलन था। सातवीं शताब्दी से अपभ्रंश के स्पष्ट उल्लेख मिलने लगते हैं। दसवीं शताब्दी तक आते आते यह विभिन्न नाम-रूपों को ग्रहण करने लगती है। वस्तुस्थिति यह है कि आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के लिए अपभ्रंश एक सामान्य भूमिका रही है। इसलिए कोई क्षेत्रीय शब्द-रूपों के साथ इसे जूनी गुजराती कहता है, तो कोई प्राचीन पश्चिम राजस्थानी नाम से अभिहित करता है, तो कोई देशी भाषा या अवहट्ट कहता है। समय-समय पर अलग-अलग नाम विभिन्न स्थिति के सूचक रहे हैं। "कुवलयमालाकहा" के विशेष अध्ययन से पता लगता है कि आठवीं शताब्दी में राजस्थान में अपभ्रंश बोल-चाल की भाषा थी। डॉ. ग्रियर्सन तथा अन्य भाषाशास्त्रियों के अनुसार अपभ्रंश के क्षेत्रीय रूप ठेठ बोलियां रही हैं। अपभ्रंश ने छठी शताब्दी में ही साहित्य का स्थान प्राप्त कर लिया था। अपभ्रंश के सुप्रसिद्ध महाकवि स्वयम्भू ने चतुर्मुख, धूर्त, माउरदेव, धनदेव, आर्यदेव, छइल्ल, गोविन्द, शुद्धशील और जिनदास आदि का उल्लेख किया है, जो उन के पूर्ववर्ती कवि हैं। इन में से चतुर्मुख और गोविन्द कृष्णविषयक प्रबन्धकाव्य की रचना कर चुके थे। गोविन्द श्वेताम्बर जैन थे और चतुर्मुख दिगम्बर जैन आम्नाय के थे। अनुमान यह किया जाता है कि गोविन्द सौराष्ट्र के निवासी थे और चतुर्मुख राजस्थान के थे। महाकवि धवल ने कृष्णकथा (हरिवंशपुराण) की रचना चतुर्मुख के प्रबन्धकाव्य को ध्यान में रख कर की थी। इस प्रकार अपभ्रंश भाषा और साहित्य से राजस्थान का प्रारम्भ से ही रागात्मक सम्बन्ध रहा है।

कविवर हरिषेण

राजस्थान के दि. जैन अपभ्रंश-कवियों में कविवर हरिषेण का समय तथा स्थान निश्चित रूप से ज्ञात है। उन का जन्म राजस्थान के चित्तौड़ नगर में हुआ था। राजस्थान के ही प्रसिद्ध

वंश धक्कड (धर्कट) को उन्होंने विभूषित किया था। इस वंश में प्राकृत तथा अपभ्रंश के अनेक कवि हुए। कवि ने इस कुल का वर्णन निम्नलिखित शब्दों में किया है.—

> इह मेवाड- देसी- जण-संकुलि,
> सिरिउजहर - णिग्गय- धक्कडकुलि ।

उन के पिता का नाम गोवर्द्धन था, जो चित्तौड में रहते थे। उन की माता का नाम गुणवती था। कविवर हरिषेण चित्तौड में ही रहते थे। किसी कार्य से वे एक बार अचलपुर गए। यह अचलपुर वर्तमान में आबू होना चाहिए। वैसे तो राजस्थान में अचलपुर नाम से कई ग्राम हैं, किन्तु कविवर ने "जिणहर-पउरहो" कह कर जिस अचलपुर का संकेत किया है, वह आजकल का अचलगढ है। यहां पर अनेक जिन-मन्दिर है जो इतिहास-प्रसिद्ध है। बुध हरिषेण ने अचलपुर में रह कर "धर्मपरीक्षा" की रचना की थी। कवि के ही शब्दों में—

> सिरि-चित्तउडु चइवि अचलउरहो,
> गयउ णियकज्जें जिणहर-पउरहो ।
> तहिं छंदालंकार - पसाहिय,
> धम्मपरिक्ख एह तें साहिय ॥ (अन्त्य प्रशस्ति)

काव्य की रचना पूर्व-निबद्ध प्राकृत गाथा मे जयराम कवि की "धर्मपरीक्षा" के आधार पर की गई थी। कविवर हरिषेण ने 'धर्मपरीक्षा" की रचना पद्धडिया छन्द मे वि स. 1044 मे की थी। कवि ने स्वयं निर्देश किया है—

> विक्कमणिव परिवत्तिए कालए, गणए वरिस सहसचउतालए ।
> इउ उप्पण्णु भवियजण सुहकरु, डंभरहिय धम्मासय-सायरु ॥

यह काव्य ग्यारह सन्धियो मे निबद्ध है। इस मे कुल 238 कडवक है। पूर्ववर्ती कवियो में चतुर्मुख, स्वयम्भू, पुष्पदन्त, सिद्धसेन और जयराम का उल्लेख किया गया है। काव्य में मनोवेग और पवनवेग के रोचक स वाद के माध्यम से जैनधर्म की उत्कृष्टता निरूपित की गयी है।

अपभ्रंश में इस रचना के पश्चात् भट्टारक श्रुतकीर्ति कृत "धर्मपरीक्षा" की रचना हुई जिसका रचना-काल वि. स 1552 कहा गया है। यह काव्य कविवर हरिषेण को "धर्मपरीक्षा" के आधार पर लिखा गया। कथानक का ही नही, वर्णन का भी अनुगमन किया गया है। अतएव दोनों में बहुत कुछ साम्य लक्षित होता है। यद्यपि अद्यावधि इस को एक ही अपूर्ण प्रति उपलब्ध है, किन्तु उसके आधार पर डा. जैन ने उल्लेख किया है कि प्रस्तुत कृति का कथानक हरिषेण कृत दसवी सन्धि के छठे कडवक तक पाया जाता है। अनन्तर उसी सन्धि में ग्यारह कडवक और है, फिर ग्यारहवीं सन्धि मे सत्ताईस कडवको की रचना है, जिन में श्रावकधर्म का उपदेश दिया गया है। यह भाग श्रुतकीर्ति कृत "धर्मपरीक्षा" से विच्छिन्न हो गया है। सम्भवत वह सातवीं सन्धि में ही पूरा हो गया होगा[1]। कविवर हरिषेण की "धर्मपरीक्षा" नि:सन्देह मनोरंजक है। प. परमानन्द शास्त्री के शब्दो मे "वह पौराणिक कथानको के अविश्वसनीय तथा असम्बद्ध चित्रण से भरपूर है और उन आख्यानो को असंगत बतलाते हुए जैनधर्म के प्रति आस्था उत्पन्न की गई है"। किन्तु उसमें पुराण ग्रन्थो के मूल वाक्यो का कोई उल्लेख नही है।[2]

---

1. डा. हीरालाल जैन : श्रुतकीर्ति और उन की धर्मपरीक्षा, अनेकान्त में प्रकाशित लेख, अनेकान्त, वर्ष 11, किरण 2, पृ. 106।
2. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति-संग्रह, पृ. 52।

महाकवि धनपाल

जैन साहित्य में धनपाल नाम के कई साहित्यकारों का उल्लेख मिलता है। पं. परमानन्द शास्त्री ने धनपाल नाम के चार विद्वानों का परिचय दिया है[1]। ये चारो ही भिन्न-भिन्न काल के विद्वान् हुये। इनमे से दो संस्कृत भाषा के विद्वान् थे और दो अपभ्रंश के। प्रथम धनपाल संस्कृत के कवि राजा भोज के आश्रित थे, जिन्होंने दसवी शताब्दी मे 'तिलकमंजरी' और 'पाइयलच्छीनाममाला" ग्रन्थों की रचना की थी। द्वितीय धनपाल तेरहवी शताब्दी के कवि हैं। उनके रचे हुये ग्रन्थो में से अभी तक "तिलकमंजरीसार" का ही पता लग पाया है। ततीय धनपाल अपभ्रंश भाषा में लिखित "बाहुबलिचरित" के रचयिता है। इनका समय पन्द्रहवी शताब्दी कहा गया है। ये गुजरात के पुरवाड वंश के तिलक स्वरूप थे। इन की माता का नाम सुहडा देवी और पिता का नाम सुहडप्रभ था। चतुर्थ धनपाल का जन्म धक्कड वंश में हुआ था। इनका कोई विशेष परिचय नही मिलता है। इनके पिता का नाम मातेश्वर और माता का नाम धनश्री था। कहा जाता है कि इन्हे सरस्वती का वर प्राप्त था। इनकी रची हुई एक मात्र प्रसिद्ध रचना "भविसयत्तकहा"(भविष्यदत्तकथा) उपलब्ध होती है। अन्य किसी रचना के निर्माण का न तो उल्लेख मिलता है और न कोई संकेत ही। पता नही, किस आधार पर डा. कासलीवाल ने कवि धनपाल की जन्म-भूमि चित्तौडगढ मानी है[2]। इसका एक कारण तो यह कहा जाता है कि कवि धनपाल का जन्म उसी धक्कड कुल में हुआ था, जिस में "धर्म परीक्षा" के कविवर हरिषेण और महाकवि वीर का जन्म हुआ था। यह वंश अधिकतर राजस्थान मे पाया जाता है, इसलिये यह अनुमान कर लेना स्वाभाविक है कि कवि का जन्म राजस्थान में हुआ होगा। इसके अतिरिक्त भविष्यदत्त कथा मे कुछ राजस्थानी भाषा के शब्द भी पाये जाते है। हमारी जानकारी के अनुसार "तीमण" तीमन या तेमन मिष्ठान्न केवल राजस्थान में ही पाया जाता है। राजस्थानी संस्कृति के अभिव्यंजक निदर्शनो से भी यह सूचित होता है कि कवि धनपाल राजस्थान के निवासी होंगे। राजपूती आन-बान और शान का जो चित्रण महाकवि धनपाल ने किया हैं, वह अत्यन्त सजीव और हृदयग्राही है[3]। अतएव राजस्थान के प्रति उनका विशिष्ट अनुराग अभिव्यजित है।

पं. लाखू

पं. लाखू विरचित "जिनदत्तकथा" अपभ्रंश के कथाकाव्यो म एक उत्तम रचना मानी जाती है। कवि का जन्म राजस्थान मे हुआ था। वे कुछ समय तक आगरा और बादीकुई के बीच रायभा मे रहे। हमारे विचार मे पं. लाखू के बाबा रायभा के निवासी थे। वे जैसवाल वश के थे। किसी समय वे सपरिवार तहनगढ मे आकर बस गये थे। तहनगढ बयाना से पश्चिम-दक्षिण में पन्द्रह मील दूर है। इसका प्राचीन नाम त्रिभुवनगिरि है। करौली राज्य के मल संस्थापक राजा विजयपाल थे। उन्होंने 1040 ई में विजयमन्दिरगढ नामक दुर्ग का निर्माण कराया था। विजयपाल मथुरा के यदुवंशी राजा जयेन्द्रपाल या इन्द्रपाल (966-992 ई.) के ग्यारह पुत्रो में से एक था। इसी विजयपाल के अठारह पुत्रो मे से एक अत्यन्त पराक्रमी तिहुणपाल नाम का राजा हुआ। त्रिभुवनगिरि या तहनगढ इस तिहुणपाल राजा ने बसाया था[4]। तहनगढ म प्राचीन काल से यदुवंशी राजाओ का राज्य रहा है। ऐतिहासिक

1. प. परमानन्द जैन शास्त्री . धनपाल नाम के चार विद्वान् कवि, अनेकान्त, किरण 7-8 पृ. 82।
2. डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल : ग्रन्थ एव ग्रन्थकारो की भूमि–राजस्थान, अनेकान्त, वर्ष 15, किरण, 2, पृ. 78।
3. द्रष्टव्य है: भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश-कथाकाव्य, पृ. 102-141।
4. डा. ज्योतिप्रसाद जैन : शोधकण, "जन सन्देश" शोधांक, भाग 22, संख्या 36, पृ. 81।

उल्लेख के अनुसार विजयपाल के उत्तराधिकारी धर्मपाल और धर्मपाल के उत्तराधिकारी अजयपाल हुए। महाबाण प्रशस्ति के अनुसार 1150 ई. में अजयपाल का वहां राज्य था।[1] परम्परा के अनुसार अजयपाल क पुत्र व उत्तराधिकारी हरपाल थे। महावन में 1170 ई. का हरपाल का शिलालेख भी मिला है[2]। हरपाल के पुत्र कोशपाल थे, जो लाखू के पितामह थे। कोशपाल के पुत्र यशपाल थे। यशपाल के पुत्र लाहड थे। उनकी भार्या का नाम जिनमती था। उन दोनों के अल्हण, गाहुल, साहुल, सोहण, रयण, मयण, और सतण नाम के सात पुत्र हुये। इनमें से साहुल पं. लाखू के पिता थे। इस प्रकार कवि के पूर्वज यदुवंशी राजघराने से संबंधित थे। रचना की प्रशस्ति से स्पष्ट है कि कोसवाल यादववंश क राजा थे और उनका यश चारों ओर फैला हुआ था। कवि के शब्दों में—

जायसहोवंस उवयरणसिंधु गुणगणअमाल माणिक्कसिंधु।
जायव णरणाहहो कोसवाल जयरसमुद्दिय दिगचक्कवाल॥

कवि की रची हुई तीन रचनाओं का विवरण मिलता है। कवि की प्रारम्भिक रचना "चंदणछट्ठीकहा" है जो एक इतिवृत्तात्मक लघुकाय रचना है। इसम चन्दन षष्ठी व्रत का माहात्म्य एवं फल वर्णित है। दूसरी "जिनदत्तचरित" वि. सं. 1275 की रचना है। तीसरी "अणुव्रतप्रदीप" का रचना-काल वि सं. 1313 है।

जिनदत्त कथा एक सशक्त रचना है, जिसमें संस्कृत काव्य-रचना की तुलना में प्रकृति का श्लिष्ट वर्णन तथा अलंकृत शैली में रूप-वर्णन आदि चित्रबद्ध रूपों में लक्षित होते हैं। कवि की सबसे सुन्दर तथा सजीव रचना यही है।

मुनि विनयचन्द

मुनि विनयचन्द ने "चूनडीरास" नामक काव्य की रचना त्रिभुवनगढ में अजयनरेन्द्र के विहार में बैठ कर रची थी। अजयनरेन्द्र तहनगढ का राजा कुमारपाल का भतीजा था, जो राजा कुमारपाल के अनन्तर राज्य का उत्तराधिकारी बना था। त्रिभुवनगिरि या तहनगढ वर्तमान मे करौली से उत्तर-पूर्व में चौबीस मील की दूरी पर अवस्थित है। तेरहवी शताब्दी मे वहा पर यादव वंशीय महाराजा कुमारपाल राज्य करते थे। वि सं. 1252 मे वहा मुसलमानी राज्य स्थापित हो गया था। त्रिभुवनगिरि जयपुर राज्य का तहनगढ ही है[3]।

"चूनडीरास" मे 32 पद्य हैं। चूनडी या चुनडी छपी हुई साडी को कहते है। प्रस्तुत कृति मे चूनडी के रूपक मे एक गीतकाव्य की रचना की गई है। राजस्थान की महिलाये विशेष रूप से चूनडी ओढती है। कोई मुग्धा युवती मुस्कराती हुई अपने प्रियतम से कहती है कि, हे सुभग! आप जिन मन्दिर पधारिये और मेरे ऊपर दया कर शीघ्र ही एक अनुपम चूनडी छपवा दीजिये, जिसस मै जिनशासन में विचक्षण हो जाऊं। सुन्दरी यह भी कहती है कि, यदि चनडी छपवा कर नहीं ला देंगे, तो वह छीपा मुझ पर फब्ती कसेगा और उल्हाना देगा। पति इन वचनों को सुन कर कहता है—हे मुग्धे! उस छीपा ने मुझ से कहा है कि मै जैन सिद्धान्त के रहस्य से भरपूर एक सुन्दर चूनडी शीघ्र ही छाप कर दूंगा।

---

1. द स्ट्रगल फार इम्पायर, भारतीय विद्याभवन प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृ. 55।
2. वही, पृ. 55।
3. अगरचन्द नाहटा : त्रिभुवनगिरि व उसके विनाश के संबंध मे विशेष प्रकाश, अनेकान्त 8-12, पृ. 457।

चूनड़ीरास के अतिरिक्त 'णिज्झरपंचमीकहारासु' और 'पंचकल्लाणरासु' भी मुनि विनयचन्द कृत रचनायें उपलब्ध होती हैं। निर्झरपचमीकथा रास की रचना त्रिभवनगिरि की तलहटी में बैठकर की थी। इसम निर्झरपंचमी व्रत का माहात्म्य तथा फल बतलाया गया है। रचना संक्षिप्त तथा सुन्दर है। पंचकल्याणक रास में जैन तीर्थंकरो के पांच कल्याणकों की तिथियों का वर्णन किया गया है। रचना-काल तेरहवीं शताब्दी अनुमानित है।

कवि ठक्कुर

कवि ठक्कुर सोलहवी शताब्दी के अपभ्रंश तथा हिन्दी भाषा के कवि थे। इन का जन्म स्थान चाटसू (राजस्थान) कहा जाता है। इनकी जाति खण्डेलवाल तथा गोत्र अजमेरा था। इनके पिता का नाम "घेल्ह" था, जो स्वयं एक अच्छे कवि थे। कवि का रचना-काल वि. सं. 1578-1585 कहा गया है[1]। पं परमानन्द शास्त्री के अनुसार कवि ने वि. सं. 1578 में "पारस श्रवण सत्ताइसी" नामक एक रचना बनाई थी, जो ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करती है। कवि ने इसमें आखों देखा वर्णन किया है। इनके अतिरिक्त जिन चउवीसी, कृपणचरित्र (वि. सं. 1580), पंचेन्द्रियबेलि (वि. सं. 1585) और नेमीश्वर की बेलि आदि रचनायें भी बनाई थी। परन्तु डा. कासलीवाल ने कवि की उपलब्ध नौ रचनाओं का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—इनकी एक रचना बुद्धिप्रकाश कुछ समय पूर्व अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र-भण्डार में उपलब्ध हुई थी। ठक्कुरसी की अब तक 9 रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं, जिनके नाम निम्न प्रकार हैं[2]— (1) पार्श्वनाथ शकुनसत्तावीस (वि. सं. 1575), मेघमाला-व्रतकथा (वि सं. 1580), (3) कृपण-चरित्र (वि सं 1585), (4) शील बत्तीसी (वि. सं. 1585), (5) पंचेन्द्रिय बेलि (वि सं. 1585), (6) गुणवेलि, (7) नेमि राजवलि बेलि, (8) सीमन्धरस्तवन, (9) चिन्तामणि जयमाल। इन रचनाओ के अतिरिक्त इन के कुछ पद भी प्राप्त हुये हैं, जो विभिन्न गुटकों में संग्रहीत है।

हमारी जानकारी के अनुसार उक्त रचनाओ मे से "मेघमालाव्रत कथा" और "चिन्तामणि जयमाल" ये दोनो रचनाये अपभ्रंश भाषा की है। मेघमालाव्रत कथा में 115 कडवक है। इसमें मेघमाला व्रत की कथा का संक्षिप्त तथा सरल वर्णन है। यह व्रत भाद्रपद मास में प्रतिपदा से किया जाता है। यह व्रतकथा प. माल्हा के पुत्र कवि मल्लिदास की प्रेरणा से रची थी। चिन्तामणि जयमाल केवल 11 पद्य है। इस मे संयम का महत्व बताया गया है। रचना का प्रारम्भ इस प्रकार किया गया है—

> पणविवि जिणपासहु पूरण आसहु दुरुज्झिय संसार भलु।
> चिंतामणि जं तहु मणि सुमरंतहु सुणहु जेम संजमह फलु॥

उक्त विवरण के आधार पर पता लगता है कि कवि का रचना-काल वि. सं. 1575 से लगभग 1590 तक रहा होगा। कवि ठक्कुर अपभ्रंश के एक अन्य कवि ठाकुरसी से भिन्न है। उनका परिचय निम्नलिखित है।

शाह ठाकुर

रचना मे इन का नाम शाह ठाकुर मिलता है। अभी तक इन की दो रचनायें ही उपलब्ध हो सकी है। एक अपभ्रंश में निबद्ध है और दूसरी हिन्दी मे। "शान्तिनाथ चरित्र" एक

---

1 पं. परमानन्द जैन शास्त्री: जैन ग्रन्थ प्रशस्ति-संग्रह, प्रस्तावना, पृ. सं. 141।

2 डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल: अलभ्य ग्रन्थो की खोज, अनेकान्त मे प्रकाशित, वर्ष 16, किरण 4, पृ. 170-171।

अपभ्रंश काव्य है। यह पांच सन्धियों में निबद्ध है। कवि की दूसरी रचना "महापुराण-कलिका" है, जो 27 सन्धियो में विरचित एक हिन्दी प्रबन्धकाव्य है। शान्तिनाथ चरित्र में सोलहवें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ का संक्षेप मे जीवन-चरित वर्णित है। कवि ने यह प्रबन्ध-काव्य वि. सं 1652 में भाद्रपद सु पंचमी के दिन चकत्तावंश के जलालुद्दीन अकबर बादशाह के शासनकाल में ढुढाहड देश के कच्छपवंशी राजा मानसिंह के राज्य में बनाया था। राजा मानसिंह की राजधानी उस समय अंबावती या आमेर में थी[1]। कवि के पितामह का नाम साहु सील्हा और पिता का नाम खेता था। ये खण्डेलवाल जाति और लुहाड्या गोत्र के थे। ये भ. चन्द्रप्रभु के विशाल जिनमन्दिर से अलंकृत लुवाइणिपुर के निवासी थे। कवि संगीत, छन्द-अलंकार आदि मे निपुण तथा विद्वानो का सत्संग करने वाला था। इनके गुरु अजमेर शाखा के विद्वान् भट्टारक विशालकीर्ति थे[2]। अत कवि राजस्थान का निवासी था। कवि की भाषा बहुत ही सरल है। अपभ्रंश की रचना होने पर भी उस समय की हिन्दी से प्रभावा-पन्न हैं। क्योकि सतरहवीं शताब्दी मे व्रज भाषा अपने उत्कर्ष पर थी। अतएव उससे प्रभावित होना स्वाभाविक था। उदाहरण के लिये कुछ अन्तिम पंक्तियां हैं —

> जिणधम्मचक्क सासणि सरंति गयणय लहु जिम ससि सोह दिति,
> जिणधम्मणाण केवलरवी य तह अट्ठकम्ममल विलय कीय।
> एत्तउ मागउ जिण सणिणाह महु किज्जहु दिज्जहु जइ बोहिलाहु।
>
> 5,59

कवि ने अपनी गुरु-परम्परा का विस्तार के साथ वर्णन किया है। दिल्ली से लेकर अजमेर तक प्रतिष्ठित भट्टारक-परम्परा का एक ऐतिहासिक दस्तावेज इस रचना की अन्तिम प्रशस्ति म उपलब्ध है।

मुनि महनन्दि

मुनि महनन्दि भट्टारक वीरचन्द के शिष्य थे। इन की रची हुई एक मात्र कृति बारक्खडी या पाहुडदोहा उपलब्ध हुई है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति दि जैन तेरहपंथी बडे मन्दिर, जयपुर मे क्रमाक 1825, वेष्टन सं 1653, लेखनकाल वि स. 1591 मिलती है[3]। इससे यह निश्चित है कि रचना पन्द्रहवी शताब्दी या इससे पूर्व रची गई होगी। डा कासलीवाल जी ने इसका समय पन्द्रहवी शताब्दी बताया है[4]। इसके रचयिता एक राजस्थानी दि. जैन सन्त थे। किसी-किसी हस्तलिखित प्रति मे कवि का नाम "महयद" (महोचन्द) भी मिलता है। इस कृति मे 335 दोहे मिलते है। किसी-किसी प्रति में 333 दोहे देखने मे आते है। अपभ्रंश में अभी तक प्राप्त दोहा-रचनाओ मे निस्सन्देह यह एक सुन्दर एवं सरस रचना है। भाषा और भाव दोनो ही अर्थपूर्ण है। इसमे लगभग सभी तरह के दोहे मिलते है। आत्मा क्या है इसे समझाता हुआ कवि कहता है–

> खीरह मज्झह जेम घिउ तिलह मज्झि जिम तिल्लु।
> कट्ठहु आरणु जिम वसइ तिम देहहि देहिल्लु ॥22॥

अर्थात् जैसे दूध में घी रहता है, तिल मे तेल समाया रहता है, अरनिकाष्ठ मे अग्नि छिपी हुई रहती ह, वैसे ही शरीर के भीतर आत्मा व्याप्त है।

---

1. पं. परमानन्द जैन शास्त्री : जैन ग्रन्थ प्रशस्ति-संग्रह, प्रस्तावना, पृ. स. 130।
2. वही, प. 130-131।
3. डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल · राजस्थान के जैन शास्त्र-भण्डारों की ग्रन्थ-सूची, भाग 2,पृ.287।
4. डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल . राजस्थान के जैन सन्त-व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ.173।

कवि हरिचन्द

अपभ्रंश में हरिश्चन्द्र नाम के दो कवि हो गए हैं। एक हरिश्चन्द्र अग्रवाल हुए, जिन्होंने अणत्थमियकहा, दशलक्षणकथा, नारिकेरकथा, पुष्पांजलिकथा और पंचकल्याणक की रचना की थी। दूसरे कवि हरिचन्द राजस्थान के कवि थे। पं. परमानन्द शास्त्री के अनुसार कवि का नाम हल्ल या हरिइंद अथवा हरिचन्द है। कवि का "वड्ढमाणकव्व" या वर्द्धमानकाव्य विक्रम की पन्द्रहवीं शती की रचना ज्ञात होती है। उसका रचनास्थल राजस्थान है[1]। यह काव्य देवराय के पुत्र संघाधिप होलिवर्म के अनुरोध से रचा गया था। कवि हरिचन्द ने अपने गुरु मुनि पद्मनन्दि का भक्तिपूर्वक स्मरण किया है। कवि के शब्दों में—

पउमणंदि मुणिणाह गणिंदहु चरणसरणगउ कइ हरिइंदहु ।

मुनि पद्मनन्दि दि. जैन शासन-संघ के मध्ययुगीन परम प्रभावक भट्टारक थे जो बाद में मुनि अवस्था को प्राप्त हुए थे। ये मन्त्र-तन्त्रवादी भट्टारक थे। इन्होने अनेक प्रान्तों में ग्राम-ग्राम में विहार कर अनेक धार्मिक, साहित्यिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक लोकोपयोगी कार्यों को सम्पन्न किया था। आप के सम्बन्ध में ऐतिहासिक घटना का उल्लेख मिलता है[2]।

ब्रह्म बूचराज

ब्रह्म बूचराज या वल्ह मूलत एक राजस्थानी कवि थे। इनकी रचनाओ में इनके कई नामो का उल्लेख मिलता है—बूचा, वल्ह, वील्ह या वल्हव। ये भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य थे। ब्रह्मचारी होने के कारण इन का 'ब्रह्म' विशेषण प्रसिद्ध हो गया। डा. कासलीवाल जी ने इनकी रची हुई आठ रचनाओं का उल्लेख किया है[3]—मयणजुज्झ, संतोषतिलक जयमाल, चेतन-पुद्गल-धमाल, टंडाणा गीत, नेमिनाथ वसतु, नेमीश्वर का बारहमासा, विभिन्न रागो में आठ पद, विजयकीर्ति-गीत। विजयकीर्ति-गीत में गुरु भ. विजयकीर्ति की स्तुति का गान किया गया है। इन रचनाओ मे से केवल 'मयणजुज्झ' एक अपभ्रंश रचना है। मयणजुज्झ या मदनयुद्ध एक रूपक काव्य है। अपभ्रंश मे ही महाकवि हरदेव का भी 'मयणजुज्झ' काव्य मिलता है जो भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली से प्रकाशित हो चुका है। मदनयुद्ध मे जिनदेव और कामदेव के युद्ध का वर्णन किया गया है, जिस में अन्तत कामदेव पराभूत हो जाता है। कवि का वसन्त-वर्णन देखिए—

वज्जउ नीसाण वसंत आयउ छल्लकुंदसि खिल्लियं ।
सुगंध मलय-पवण झुल्लिय अंब कोइल्ल कुल्लियं ।
रुणझुणिय केवइ कलिय महुवर सुतरपत्तिह छाइयं ।
गावंति गीय वजति वीणा तरुणि पाइक आइयं ॥37॥

---

1. पं परमानन्द जैन शास्त्री जैन ग्रन्थप्रशस्ति- संग्रह, प्रस्तावना, पृ. 86।
2. प परमानन्द जैन शास्त्री राजस्थान के जैन सन्त मुनि पद्मनन्दी, अनेकान्त, वर्ष 22, कि. 6, पृ. 285।
3. डा कस्तूरचन्द कासलीवाल : राजस्थान के जैन सन्त-व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. 71।

'सन्तोषतिलक जयमाल' भी एक रूपक काव्य है। इसमें शील, सदाचार, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्-चारित्र, वैराग्य, तप, करुणा, क्षमा तथा संयम के द्वारा सन्तोष की उपलब्धि का वर्णन किया गया है । यह रचना वि. सं. 1591 में हिसार नगर में लिख कर सम्पूर्ण हुई थी । यह एक प्राचीन राजस्थानी रचना है ।

इनके अतिरिक्त अन्य कवियों में से अपभ्रंश-साहित्य की श्री-समृद्धि को समुन्नत करने वाले लगभग आठ-दस साहित्यकारो का उलेख किया जा सकता है । परन्तु उनके सम्बन्ध में कोई विवरण उपलब्ध न होने से कुछ भी कहना उचित प्रतीत नही होता है । हां, कुछ ऐसे विद्वानों का विवरण देना अनुचित न होगा, जिन्होंने स्वयं अपभ्रंश की कोई रचना नही लिखी पर दूसरो को प्रेरित कर लिखने या लिखवाने मे अथवा प्रतिलिपि कराने में अवश्य योग दिया है । भट्टारक प्रभाचन्द्र का नाम इस संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है । दि. जैन आम्नाय में प्रभाचन्द्र नाम के चार भट्टारक विद्वानों के नाम मिलते है । प्रथम भट्टारक प्रभाचन्द्र बारहवी शताब्दी के सेनगण भट्टारक बालचन्द्र के शिष्य थे। दूसरे प्रभाचन्द्र चमत्कारी भट्टारक थे जो गुजरात के बलात्कारगण शाखा के भ. रत्नकीर्ति क शिष्य थे । तीसरे प्रभाचन्द्र भ. जिनचन्द्र के शिष्य थे और चौथे प्रभाचन्द्र ज्ञानभूषण के शिष्य थे[1] । भट्टारक जिनचन्द्र के शिष्य प्रभाचन्द्र खण्डेलवाल जाति के थे। वि. सं 1571 में दिल्ली के पट्ट पर इनका अभिषेक हुआ । भट्टा क बनने के पश्चात् इन्होंने अपनी गद्दी दिल्लो से स्थानान्तरित कर चित्तौड में प्रतिष्ठित की । तब से ये बराबर राजस्थान मे पैदल भ्रमण करते रहे । स्थान-स्थान पर इन्होंने मन्दिरों में मूर्तियों तथा साहित्य की प्रतिष्ठा का कार्य किया। ये स्वयं बहुत बडे तार्किक तथा वाद-विवादों मे विद्वानों का मद-मर्दन करने वाले थे। इन्हें स्थान-स्थान पर श्रावको की ओर से प्रतिलिपि करा कर स्वाध्याय के लिये कई अपभ्र श काव्य भेट मे प्राप्त हुए थे । उनके नाम इस प्रकार है—पुष्पदन्त कवि कृत 'जसहरचरिउ' की प्रति वि सं 1575 म, पं. नरसेन कृत "सिद्धचक्र-कथा' टोक मे वि.सं 1579 मे, पुष्पदन्त कृत 'जसहरचरिउ' सिकन्दराबाद मे वि सं. 1580 में, इनके शिष्य ब्र. रत्नकीर्ति को महाकवि धनपाल कृत "बाहुबलिचरित" वि सं. 1584 मे स्वाध्याय के लिये भेट प्रदान किया गया था[2] । इससे पता चलता है कि सोलहवी शताब्दी मे अपभ्रंश साहित्य की अध्ययन-परम्परा बराबर बनी हुई थी ।

यथार्थ मे राजस्थान श्रमण जैन संस्कृति का अत्यन्त प्राचीन काल से एक प्रमुख केन्द्र रहा है । यहा प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, संस्कृत, हिन्दी आदि विभिन्न भारतीय भाषाओ मे लगभग सभी विषयों पर साहित्य लिखा जाता रहा है । साहित्य, कला, पुरातत्व आदि की दृष्टि से यह प्रदेश अत्यन्त समृद्ध है, इस मे कोई सन्देह नही है । इन सभी क्षेत्रो मे जैन साहित्यकार कभी पीछे नही रहे है, वरन् वे अग्रतम पंक्ति मे आते है, यह इस निबन्ध से प्रकट हो जाता है ।

---

1. डा. कस्तूर चन्द कासलीवाल : राजस्थान के जैन सन्त—व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. 183
2. वही. 185

अपभ्रंश साहित्य के आचार्य 4

—डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल

राजस्थान मे अपभ्रंश साहित्य को सर्वाधिक प्रश्रय मिला । मुस्लिम शासन काल में भट्टारको ने अपभ्र श भाषा के ग्रथो का अपने शास्त्र-भण्डारों मे अच्छा सग्रह किया और उनकी पाण्डुलिपिया करवाकर उनके पठन-पाठन मे योगदान दिया । राजस्थान के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों के शास्त्र-भण्डारो मे अपभ्र श के ग्रन्थ या तो मिलते ही नही है और कदाचित् कहीं-कही उपलब्ध भी होते है तो उनकी संख्या बहुत कम होती है । राजस्थान में अपभ्र श के ग्रन्थो की दृष्टि से भट्टारकीय शास्त्र भण्डार नागौर, अजमेर, जयपुर के शास्त्र-भण्डार सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और इन्ही भण्डारो मे अपभ्र श का 95 प्रतिशत साहित्य सग्रहीत है । अपभ्रंश के सभी प्रमुख कवि जैसे स्वयम्भ, पुष्पदन्त, धवल, वीर, नयनन्दि, धनपाल, हरिषेण, रइधू की अधिकाश कृतिया इन्ही भण्डारो में सुरक्षित हैं । और जो कुछ साहित्य प्रकाश में आया है अथवा इस साहित्य पर शोध-कार्य हुआ है वह सब राजस्थान के जैन भण्डारों मे सग्रहीत पाण्डलिपियों के आधार पर ही सम्पन्न हो सका है । अब यहा अपभ्र श के ऐसे कवियो पर प्रकाश डाला जा रहा है जिनका राजस्थान का किसी न किसी रूप में सम्बन्ध रहा है ।

1. महाकवि नयनन्दि:—

महाकवि नयनन्दि अपभ्रंश के उन कवियो में से है जिनसे अपभ्र श साहित्य स्वय गौरवान्वित है । जिनकी लेखनी द्वारा अपभ्र श मे दो महाकाव्य लिखे गये और जिनके द्वारा उसके प्रचार-प्रसार मे पूर्ण योगदान दिया गया । महाकवि नयनन्दि 11 वी शताब्दि के अन्तिम चरण के विद्वान् थे । इनकी अब तक दो कृतिया उपलब्ध हुई है और दोनो की पाण्डुलिपिया जयपुर के महावीर भवन के सग्रह मे है । नयनन्दि परमारवशी राजा भोजदेव त्रिभुवन नारायण के शासन काल मे हुए थे । इनके राज्यकाल के शिलालेख सवत् 1077 से 1109 तक के उपलब्ध होते है । त्रिभुवन नारायण का शासन राजस्थान के चितौड प्रदेश पर भी रहा था । इस कारण नयनन्दि को राजस्थानी कवि भी कहा जा सकता है । इन्होंने अपना प्रथम महाकाव्य "सुदसण चरिउ" को धारा नगरी के एक जैन मन्दिर के विहार मे बैठकर समाप्त किया था । मालवा और राजस्थान की सीमाए भी एक दूसरे से लगी हुई है इसलिये नयनन्दि जैसे विद्वान् का सम्पर्क तो दोनो ही प्रदेशो मे रहा होगा। सुदसण चरिउ का रचना काल सवत 1100 है।[1] यह महाकाव्य अभी तक अप्रकाशित है ।

सुदसण चरिउ अपभ्रंश का एक प्रबन्ध काव्य है जो महाकाव्यो की श्रेणी में रखने योग्य है । ग्रन्थ का चरित भाग रोचक एव आकर्षक है तथा अलकार एव काव्य-शैली दोनो ही दृष्टियो से महत्वपूर्ण है । महाकवि ने अपने काव्य को निर्दोष बतलाया है तथा कहा है कि रामायण में राम और सीता का वियोग, महाभारत मे पाण्डवो एवं कौरवो का परस्पर कलह एवं मार-काट तथा लौकिक काव्यो में कौलिक, चौर, व्याध आदि की कहानिया सुनने में आती

1. णिव विक्कम काल हो ववगएसु, एगारह सवच्छर सएसु ।
तहि केवली चरिउ अमयच्छरेण, णयणदी विरयउ वित्थरेण ।।

है किन्तु उसके काव्य मे ऐसा एक भी दोष नहीं है ।[1]

ग्रन्थ मे 12 संधिया और 207 कडवक छन्द है जिनम सुदर्शन के जीवन-परिचय को अंकित किया गया है । सुदर्शन एक वणिक् श्रेष्ठी है । उसका चरित्र अत्यन्त निर्मल तथा सुमेरु के समान निश्चल है । उसका रूप-लावण्य इतना आकर्षक था कि युवतियों का समूह इसे देखने के लिये उत्कंठित होकर महलो की छता पर एव झरोखों में एकत्रित हो जाता था । वह साक्षात् कामदेव था । उसके यहा अपार धन-सम्पदा थी किन्तु फिर भी वह धर्माचरण मे तत्पर, मधुरभाषी एव मानव-जीवन की महत्ता से परिचित था । सुदर्शन का चरित्र भारतीय सस्कृति का जीवन है जो लोभ एवं प्रलोभो मे भी अपने चरित्र की रक्षा करता है ।

सयलविहि-विहाणकव्व.—

यह महाकवि का दूसरा काव्य है जो 58 संधियों में पूर्ण होता है । प्रस्तुत काव्य विशाल काव्य है जिसका किसी एक विषय से संबंध न होकर विविध विषयो से संबंध है । इस ग्रन्थ की एक मात्र पाण्डलिपि आमेर शास्त्र भंण्डार, जयपुर में संग्रहीत है जिसमें बीच की 16 संधियां नहीं है । कवि ने काव्य के प्रारम्भ में अपने पूर्ववर्ती जैन एवं जनतर विद्वानो के नामो का उल्लेख किया है । इन विद्वानो मे वररुचि, वामन, कालिदास, कौतूहल, बाण, मयूर, जिनसेन, बादरायण, श्रीहर्ष, राजशेखर, जसचन्द्र, जयराम, जयदेव, पादलिप्त, वीरसेन, सिहनन्दी, गुणभद्र, समन्तभद्र, अकलंक, दण्डी, भामह, भारवि, भरत, चउमुह, स्वयम्भू, पुष्पदन्त, श्रीचन्द, प्रभाचन्द्र के नाम उल्लेखनीय है ।[2]

कवि ने अपने इस काव्य में विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है जिनकी सख्या 50 से अधिक होगी । छन्द शास्त्र की दृष्टि मे इनका अध्ययन अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है । काव्य की दूसरी संधि मे अंबावड एवं कंचीपुट का उल्लेख है । 'अबावड' अम्बावती का ही दूसरा नाम हो सकता है जो बाद में आमेर के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इससे भी सिद्ध होता है कि नयनन्दि को राजस्थान मे विशेष प्रेम था और वह इस प्रदेश में अवश्य घूमा होगा।

---

1. रामो सीय-विओय-सोयविहुरं सपत्तु रामायणे,
   जादं पाडव-धायरट्ठ-सददं गोत्तं कली भारहे ।
   डेडा-कोलिय चोर-रज्जु-णिरदा आहासिदा सुद्दये,
   णो एक्क पि सुदसणस्स चरिदे दोस समुब्भासिद ॥

2. मणु जण्ण वक्कु वम्मीउ वासु, वररुइ वामण, कवि, कालियासु ।
   कोऊहलु बाणु मऊरु सूरु, जिणसेण, जिणागम-कमल-सूरु ।
   वारायण वरणाउ विवियदड्ढ, सिरिहरिसु रायसेहरु गुणड्ढु ।
   जसइंधु जए जयराम णामु, जयदेउ जणमणाणंद कामु ।
   पालित्तउ पाणिणि पवरसेणु, पायजलि पिंगलु वीरसेणु ।
   सिरि सिहणदि गुणसिह भद्दु, गुणभद्दु गुणिल्लु समतभद्दु ।
   अकलंक विसम वाइय विहडि, कामद्दु रुद्दु गोविन्दु दडि ।
   भम्मुई भारहि भरहुवि माहंतु, चउमुह सयंभु कइ पुप्फयन्तु ।

घत्ता

सिरिचन्दु पहाचन्दु वि विबुह, गुणगणनंदि मणोहर ।
कइ सिरिकुमार सरसइ कुमर, कित्ति विलासिणी सेहर ।

2. दामोदर :—

कविवर दामोदर राजस्थानी कवि थे। इन्होंने अपने आपको मूलसंघ सरस्वती गच्छ और बलात्कार गण के भट्टारक, प्रभाचन्द्र, पद्मनन्दि, शुभचन्द्र, जिनचन्द्र की परम्परा का बतलाया है। भट्टारक जिनचन्द्र का राजस्थान से गहरा संबंध था और ये राजस्थान के विभिन्न भागों में विहार करते थे। आवां (टोंक) में इनकी अपने गुरु शुभचन्द्र एवं शिष्य प्रभाचन्द्र के साथ निषेधिकायें मिलती हैं। जिनचन्द्र ने राजस्थान में अनेक प्रतिष्ठा समारोहों का संचालन किया है। ऐसे प्रभावशाली एवं विद्वान् भट्टारक जिनचन्द्र का कविवर दामोदर को शिष्य होने का गौरव प्राप्त था।

कविवर दामोदर की तीन कृतियां उपलब्ध होती हैं। ये कृतियां हैं :— सिरिपाल चरिउ, चंदप्पह चरिउ एवं णेमीणाह चरिउ। इन तीनों ही काव्यों की पाण्डुलिपियां नागौर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार में उपलब्ध होती हैं।

सिरिपाल चरिउ :—

यह कवि का एक रमण काव्य है जिसमें सिद्धचक्र के महात्म्य का उल्लेख करते हुए उसका फल प्राप्त करने वाले चम्पापुर के राजा श्रीपाल एवं मैनासुन्दरी का जीवन परिचय दिया हुआ है। मैनासुन्दरी ने अपने कुष्ठी पति राजा श्रीपाल और उसके सातसौ साथियों का कुष्ठ रोग सिद्धचक्र के अनुष्ठान और जिनभक्ति की दृढ़ता से दूर किया था। काव्य में श्रीपाल के अनेक साहसिक कार्यों का भी वर्णन किया गया है। चरित काव्य में चार संधियां हैं। यह काव्य श्री देवराज के पुत्र साहू नरवत्तु के आग्रह पर लिखा गया था। काव्य अभी तक अप्रकाशित है।

चंदप्पहचरिउ —

यह कवि की दूसरी कृति है जिसमें आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभु के जीवन का वर्णन किया गया है। इसकी एकमात्र पाण्डुलिपि नागौर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है।

णेमिणाहचरिउ :—

यह कवि की तीसरी अपभ्रंश भाषा की कृति है जिसमे 22 वें तीर्थंकर नेमिनाथ का जीवन अत्यधिक रोचक ढंग से निबद्ध है। कवि का यह काव्य भी अभी तक अप्रकाशित है।

3. महाकवि रइधू :—

महाकवि रइधू उत्तरकालीन अपभ्रंश कवियों में सर्वाधिक लोकप्रिय कवि है। रचनाओं की संख्या की दृष्टि से अपभ्रंश साहित्य के इतिहास में इनका स्थान सर्वोपरि है। डा. राजाराम जैन ने रइधू की अब तक ज्ञात एवं अज्ञात 35 अपभ्रंश कृतियों का नाम उल्लेख किया है।[1] इनमें मेहेसर चरिउ, णेमिणाहचरिउ, पासणाह चरिउ, सम्मजिणचरिउ, बलहद्दचरिउ, प्रद्युम्न चरिउ, धन्यकुमार चरित, जसहरचरिउ, सुदसणचरिउ आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। महाकवि पर डा. राजाराम जैन ने गहरी छानबीन की है और 'रइधू ग्रन्थावली' के नाम से महाकवि के सभी उपलब्ध काव्यों के प्रकाशन की योजना पर कार्य हो रहा है

1. रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन पृ. 48

निवास स्थान :—

महाकवि का जीवन सार्वभौमिक एवं सार्वलौकिक होता है । भौगोलिक एवं राजनीतिक सीमाएं उन्हें बांध नही सकती । महाकवि रइधू ने अपनी किसी भी रचना में अपने जन्म-स्थान के सम्बन्ध में कोई जानकारी नही दी किन्तु उनके अपने काव्यो में रोहतक, पानीपत, हिसार, जोगिनीपुर, ग्वालियर, उज्जयिनी आदि नगरो का नामोल्लेख किया है । रइधू साहित्य के विशेषज्ञ डा. राजाराम जैन ने कवि के निवास-स्थान के सम्बन्ध में अपना अभिमत लिखते हुए लिखा है कि "उनकी हिन्दी रचना बारह-भावना में प्रयुक्त हिन्दी की प्रवृत्ति देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उनका जन्म या निवास स्थान पंजाब एवं राजस्थान के सीमान्त से लेकर मध्यभारत के ग्वालियर तक के बीच का कोई स्थान होना चाहिये ।" हमारे विचार से तो कवि का जन्म राजस्थान का सीमान्त प्रदेश धौलपुर प्रदेश का कोई भाग होना चाहिये । वयस्क होने के पूर्व तक कवि का जीवन कोई विशेष उल्लेखनीय नही रहा इसलिये यह कहा जा सकता है कि कवि का प्रारम्भिक जीवन अपने जन्म-स्थान में ही व्यतीत हुआ और वयस्क होने पर एवं काव्य रचना मे रुचि लेकर वे मध्य-प्रदेश में चले गये । महापंडित आशाधर भी राजस्थान को छोड़कर मालवा में जाकर बस गये थे और इसी शताब्दी में होने वाले प्राकृत एवं अपभ्रंश के महान विद्वान् डा. नेमिचन्द्र शास्त्री भी अपने निवास स्थान धौलपुर को छोड़कर आरा (बिहार) में जाकर रहने लगे थे ।

महाकवि रइधू की सभी अपभ्रंश कृतियां भाषा एवं काव्य शैली में अत्यधिक महत्वपूर्ण है । कवि ने अपभ्रंश का जनभाषा के रूप में प्रयोग किया है और जहां तक संभव हो सका है उसने अपने काव्यो की भाषा को सरल एवं सुबोध बनाने का प्रयास किया है । रइधू ने अपनी अधिकांश रचनायें किसी न किसी श्रेष्ठि के आग्रह अथवा अनुरोध पर निबद्ध की हैं । कवि ने अपने आश्रयदाता का विस्तृत वर्णन किया है एवं उसका उसके पूर्वजों सहित यशोगान गाया है । यही नही तत्कालीन शासको का भी अच्छा वर्णन किया है जिससे कवि के सभी काव्य इतिहास की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण बन गये है । इनकी प्रशस्तियो के आधार पर तत्कालीन सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति का अध्ययन किया जा सकता है ।

राजस्थान के ग्रंथ संग्रहालयो मे रइधू का साहित्य अच्छी संख्या में उपलब्ध होता है । जयपुर, अजमेर, नागौर, मौजमाबाद आदि स्थानो के ग्रंथ-संग्रहालयों में कवि की अपभ्रंश कृतियां संग्रहीत है और सम्पादन के लिये अत्यधिक उपयोगी है । राजस्थान के अपभ्रंश कवि की दृष्टि से रइधू के साहित्य पर विशेष अध्ययन की आवश्यकता है । अब तक महाकवि रइधू के निम्न ग्रंथ प्राप्त हो चुके हैं:—

1. पउम चरिउ अथवा बलभद्र चरित
2. हरिवंश पुराण
3. पज्जुण्ण चरिउ
4 पासणाह पुराण
5. सम्मत्त गुणनिधान
6. मेहेसर चरिउ
7. जीवंधर चरिउ
8 जसहर चरिउ
9 पुण्णासवकहाकोषु
10 धण्णकुमार चरिउ
11 सुकोसल चरिउ
12 सम्मइ जिण चरिउ
13 सिरिवाल कहा
14. सिद्धान्तार्थसार

15. अप्पसंबोह कव्व
16. सम्मत्त कउमुदी
17. दहलक्खण जयमाल
18. सोलहकारण जयमाल
19. संतिणाह चरिउ
20. णेमिणाह चरिउ
21. करकंडु चरिउ
22. भविसयत्त चरिउ

4. विनयचन्द्र:—

कविवर विनयचन्द्र माथुरसघ के भट्टारक उदयचन्द्र के प्रशिष्य और बालचन्द मुनि के शिष्य थे। इनकी अब तक तीन रचनायें चूनडीरास, निज्झर पचमी महारास एव कल्याणक रास उपलब्ध हो चुकी है । प्रथम दो रचनायें कवि ने त्रिभुवनगिरि मे निबद्ध की थीं। कवि ने अपनी प्रथम रचना चूनडीरास त्रिभुवनगिरि के राजा कुमारपाल के भतीजे अजयपाल के विहार में बैठकर निर्मित की थी । कवि के समय मे त्रिभुवनगिरि जन-धन से समृद्ध था । कवि ने उसे 'सग्गखण्डण धरियल आयउ' अर्थात् स्वर्ग-खण्ड के तुल्य बतलाया है । अजयराज तहनगढ़ के राजा कुमारपाल का भतीजा था तथा उसके बाद राज्य का उत्तराधिकारी हुआ । संवत् 1253 में मोहम्मद गौरी ने उस पर अपना अधिकार कर लिया और नगर को तहस-नहस कर दिया । अजयराज का नाम करौली के शासको मे दर्ज है । इसलिये 13 वीं शताब्दि में यह प्रदेश त्रिभुवनगिरि के नाम से प्रसिद्ध था ।

चूनडीरास:—

यह कवि की लघु-कृति है जिसमें 32 पद्य हैं । रास में चूनडी नामक उत्तरीय वस्त्र को रूपक बनाकर एक गीति-काव्य के रूप में रचना की गई है। कोई मुग्धा युवती हसती हुई अपने पति से कहती है कि, हे सुभग ! जिन मन्दिर जाइये और मेरे ऊपर दया करते हुए एक अनुपम चनडी शीघ्र छपवा दीजिये जिससे मै जिन शासन में विचक्षण हो जाउ । वह यह भी कहती है कि यदि आप वैसी चूनडी छपवा कर नहीं देंगे तो वह छीपा मुझे तानाकशी करेगा ।

चूनडी राजस्थान का विशेष परिधान है जिसे राजस्थानी महिलायें विशेष रूप से ओढ़ती हैं । यह राजस्थान का विशेष वस्त्र है । कवि ने इसी के आधार पर रूपक काव्य का निर्माण किया है । रचना सरस एव आकर्षक है ।

निज्झर पंचमी कहा रास :—

यह कवि की दूसरी रचना है जिसमे निर्झर पचमी के व्रत का फल बतलाया गया है । कवि ने लिखा है कि आषाढ शुक्ला पचमी के दिन जागरण करे और उपवास करे तथा कार्तिक के महीने में इसका उद्यापन करे अथवा श्रावण मे आरम्भ करके अगहन के महीने में उसका उद्यापन करे उद्यापन मे छत्र चमरादि पाच-पाच वस्तुये मन्दिर में भेंट करें । यदि किसी की उद्यापन करने की शक्ति न हो तो व्रत को दूने समय तक करे । कवि ने इस रास को भी त्रिभुवनगिरि में निबद्ध किया था ।

कल्याणकरास:—

यह कवि की तीसरी कृति है इसमें तीर्थंकरों के पाचो कल्याणको की तिथियों आदि का वर्णन किया गया है ।

8. महाकवि सिंह:—

महाकवि सिंह अपभ्रंश के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इसके अतिरिक्त वे प्राकृत एवं संस्कृत के भी प्रसिद्ध पंडित थे। इनके पिता रल्हण भी सस्कृत एवं प्राकृत के विद्वान् थे। कवि की माता का नाम जिनमती था और कवि ने इन्हीं की प्रेरणा से अपभ्रंश भाषा में पज्जुण्णचरिउ जैसा सुन्दर काव्य निबद्ध किया था। ये तीन भाई थे जिनमे प्रथम का नाम शुभकर, द्वितीय का गुणप्रवर और तृतीय का साधारण था। ये तीनों ही धर्मात्मा थे। कवि ने इन सबका वर्णन निम्न प्रकार किया है.—

> तह पयरउ णिरु उण्णय अमइयमाणु, गुज्जर-कुल-णह-उज्जोय-भाणू।
> जो उहयपवर वाणी-विलासु, एवविह विउसहो रल्हणासु।
> तहो पणइणि जिणमइ सुहम सील, सम्मत्तवत ण धम्मसील।
> कइ सीउ ताहि गब्मतरमि, समविउ कमलु जह सुर-सरमि।
> जणवच्छलु सज्जणु जणिय हरिसु, सुइवंतु तिविह वइराय सरिसु।
> उप्पण्णु सहोयरु तासु अवर, नामेण सुहकरु गुणहपवरु।
> साहारण लघवउ तासु जाउ, धम्माण रत्तु अइदिव्वकाउ॥

महाकवि सिंह का दूसरा नाम सिद्ध भी मिलता है जिससे यह कल्पना की गयी कि सिंह और सिद्ध एक ही व्यक्ति के नाम थे। पं. परमानन्द जी शास्त्री का अनुमान है कि सिद्ध कवि ने सर्व प्रथम प्रद्युम्न चरित का निर्माण किया और कालवश ग्रन्थ नष्ट होने पर सिंह कवि ने खंडित रूप से प्राप्त इस ग्रन्थ का पुनरुद्धार किया [1]। डा. हीरालाल जैन का भी यही विचार है[2] और डा. हरिवंश कोछड़ ने भी इसी तथ्य को स्वीकार किया है [3]।

रचना स्थान:—

कवि सिंह ने पज्जुण्णचरिउ की ग्रंथ प्रशस्ति म बह्मणवाड नगर का वर्णन किया है और लिखा है कि उस समय वहां रणधोरी या रणधीर का पुत्र बल्लाल था जो अर्णोराज को क्षय करने के लिये कालस्वरूप था और जिसका माडलिक भृत्य गुहिलवंशीय क्षत्रिय मल्लण ब्राह्मणवाड का शासक था। जब कुमारपाल गुजरात की गद्दी पर बैठा था तब मालवा का राजा बल्लाल था। इसके पश्चात् बल्लाल यशोधवल को दे दिया जिसने वल्लाल को मारा था। कुमारपाल का शासन वि. स 1199 से 1209 तक रहा अत बल्लाल की मृत्यु संवत् 1208 से पूर्व हुई होगी। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रद्युम्न चरित की रचना भी 1208 के पूर्व ही हो चुकी थी। अतएव सिंह कवि का समय विक्रम की 12 वी शताब्दी का अन्तिम पाद या 13 वी शताब्दी का प्रथम पाद मानना उचित प्रतीत होता है।

'ब्राह्मणवाड' या 'ब्राह्मवाद' नाम का स्थान बयाना (राजस्थान) के समीप है। वह भी पहिले एक प्रसिद्ध नगर था और वहा एक लेख मे 'ब्राह्मणवाद नगरे' इस शब्द का प्रयोग किया है। यदि यह, ब्राह्मवाद वही नगर है जिसका उल्लेख सिंह कवि ने अपनी प्रशस्ति में किया है तो कवि राजस्थानी थे ऐसा कहा जा सकता है। ब्राह्मवाद में आज भी एक जैन मन्दिर है जिसमें 15 वी शताब्दी तक की जिन प्रतिमाएं विराजमान हैं।

---

1. महाकवि सिंह और प्रद्युम्न चरित, अनेकान्त वर्ष 8 किरण 10-11 पृ.391।
2. नागपुर युनिवर्सिटी जनरल, सन 1942, पृ. 82-83।
3. अपभ्रन्श साहित्य: डा. हरिवंश कोछड़, पृ. 221।

पज्जुण्णचरिउः—

पज्जुण्णचरिउ अथवा प्रद्युम्नचरित 15 संधियों का अपभ्रंश काव्य है जिसमें श्रीकृष्ण जी के पुत्र प्रद्युम्न का जीवन-चरित निबद्ध किया गया है। जैन धर्म मे प्रद्युम्न को पुण्य पुरुषों में माना गया है। रुक्मिणी से उत्पन्न होते ही प्रद्युम्न का हरण एक राक्षस द्वारा कर लिया जाता है। प्रद्युम्न वही बडे होते हैं और फिर 12 वर्ष पश्चात् श्रीकृष्ण जी से आकर मिलते हैं। प्रद्युम्न चरित्र में सभी वर्णन बडे सुन्दर हुए है तथा ग्राम, नगर, ऋतु, सरोवर, उपवन, पर्वत आदि के वर्णन के साथ ही पात्रो की भावनाओ का भी अंकन किया गया है। काव्य मे करुणरस का भी अपूर्व चित्रण हुआ है तथा बालक्रीडाओ के वर्णन मे कवि ने अपनी काव्य चतुरता दिखलाई है। इसी तरह का एक वर्णन देखिये:—

> चाणउर विमद्दणु देवइं णदणु, सख चक्क मारगधरु।
> रणि कस खयकरु, असुर भयकरु, वसुह तिखडह अहियकरु ।। 112
> रजो दाणव माणव दलइ दप्पु जिणि गहिउ असुर णर खयर कप्पु।
> णव णव जोव्वण सुमणोहराइ, चक्कल घण पीण पउहराइ।
> छण इद बिंबसम वयणि याह, कुवलय दल दीहर णयणियाह।
> केऊर हार कुण्डलधराह, कण कण कणत ककणकराह ।। 113

6. ब्रह्म बूचराज.—

बूचराज राजस्थानी विद्वान् थे। यद्यपि अभी तक किसी भी कृति मे इन्होंने अपने जन्म-स्थान एवं माता-पिता आदि का परिचय नही दिया है किन्तु इनकी कृतियो की भाषा के आधार पर एवं भ. विजयकीर्ति के शिष्य होने के कारण इन्हे राजस्थानी विद्वान् मानना अधिक तर्क-सगत होगा। वैसे ये सन्त थे। इन्होने ब्रह्मचारी पद धारण कर लिया था इसीलिये साहित्य-प्रचार एव धर्मप्रचार के लिये ये उत्तरी भारत मे विहार किया करते थे। राजस्थान, पजाब, देहली एवं गुजरात इनके मुख्य प्रदेश थे। सवत् 1582 मे ये चम्पावती (चाटसू) राजस्थान मे थे और इस वर्ष फाल्गुन सुदी 14 के दिन इन्हे सम्यक्त्व कौमुदी की प्रति भेट स्वरूप प्रदान की गयी थी।[1] इन्होने अपनी कृतियो मे बूचराज के अतिरिक्त बूचा, वल्ह, वील्ह अथवा वल्हव नामो का उपयोग किया है। एक ही कृति मे दोनो प्रकार के नाम भी प्रयोग मे आये है। इनकी रचनाओ के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बूचराज का व्यक्तित्व एव मनोबल बहुत ही ऊचा था। इनकी रचनाए या तो भक्ति-परक है अथवा उपदेश-परक।

समय:—

कविवर के समय के बारे मे निश्चित तो कुछ भी नही कहा जा सकता लेकिन इनकी रचनाओ के आधार पर इनका समय सवत् 1530 से 1600 तक का माना जा सकता है इन्होने अपने जीवनकाल मे भट्टारक भुवनकीर्ति, भ ज्ञानभूषण एव भ विजयकीर्ति का समय देखा और इनके सानिध्य मे रहकर आत्मलाभ के अतिरिक्त साहित्यिक लाभ भी प्राप्त किया। अभी तक इनकी आठ रचनाये प्राप्त हो चुकी है। 'मयणजुज्झ' इनकी अपभ्रंश कृति है तथा शेष सब हिन्दी कृतिया है। इनकी अन्य कृतियो के नाम है-सतोष जयतिलक, चेतनपुद्गल धमाल, टडाणा गीत, नेमिनाथ बसत, नेमीश्वर का बारहमासा, विजयकीर्ति गीत आदि।

---

1 संवत् 1582 फाल्गुन सुदी 14 शुभ दिने ·· चम्पावतीनगरे ···एतान। इदं शास्त्र कौमदी लिखाप्य कर्मक्षयनिमित्तं ब्रह्म बूचाय दत्तम्।

प्रशस्ति संग्रह पृ. 63

मयणजुज्झ:—

यह एक रूपक-काव्य है जिसमें भगवान् ऋषभदेव द्वारा कामदेव पराजय का वर्णन है। यह एक आध्यात्मिक रूपक काव्य है जिसका मुख्य उद्देश्य मनोविकारों पर विजय प्राप्त करना है। काम मोक्षरूपी लक्ष्मी प्राप्त करने में एक बडी बाधा है। मोह, माया, राग एवं द्वेष काम के मल्ल सहायक हैं। वसन्त काम का दूत है जो काम की विजय के लिये पृष्ठभूमि बनाता है, लेकिन मानव अनन्त-शक्ति एव ज्ञानवाला है, यदि वह चाहे तो सभी विकारों पर विजय प्राप्त कर सकता है। भगवान् ऋषभदेव भी अपने आत्मिक-गुणो द्वारा काम पर विजय प्राप्त करते हैं। कवि ने इसी रूपक को मयणजुज्झ मे बहुत ही सुन्दर रीति से प्रस्तुत किया है।

वसन्त कामदेव का दूत होने के कारण उसकी विजय के लिये पहिले जाकर अपने अनुरूप वातावरण बनाता है। वसन्त के आगमन का वृक्ष एव लताये तक नव पुष्पों से उसका स्वागत करती है। कोयल कुहु-कुहु की रट लगाकर एव भ्रमर-पंक्ति गुंजार करती हुई उसके आगमन की सूचना देती है। युवतिया अपने आपको सज्जित करके भ्रमण करती है। इसी वर्णन को कवि के शब्दो में पढिये:—

बज्जउ नीसाण वसत आयउ, छल्ल कुंद सिखिल्लिय।
सुगध मलया पवण झुल्लिय, अब कोइल्ल कुल्लिय।
रुण झुणिय केवइ कलिय महुवर, सुतर पत्तिह छाइय।
गावति गीय वजति वीणा, तरुणि पाइक भाइय।।3॥

मयणजुज्झ को कवि ने सवत् 1589 में समाप्त किया था जिसका उल्लेख कवि ने रचना के अन्तिम छन्द मे किया हैं। इस कृति की पाण्डुलिपियां राजस्थान के कितने ही शास्त्र-भण्डारो मे उपलब्ध होती हैं।

7. ब्रह्म साधारण:—

ब्रह्म साधारण राजस्थानी सन्त थे। पहिले वे पडित साधारण के नाम से प्रसिद्ध थे। किन्तु बाद मे ब्रह्मचारी बनने के कारण उन्हे ब्रह्म साधारण कहा जाने लगा। उन्होंने अपनी पूर्ववर्तीगुरु-परम्परा मे भ. रत्नकीर्ति, भ प्रभाचन्द्र, भ. पद्मनन्दि, हरिभूषण, नरेन्द्रकीर्ति, एवं विद्यानन्दि का उल्लेख किया है और अपने आपको भ. नरेन्द्रकीर्ति का शिष्य लिखा है। भ. नरेन्द्रकीर्ति का राजस्थान से विशेष सम्बन्ध था और वे इसी प्रदेश मे विहार किया करते थे। सवत् 1577 की एक प्रशस्ति मे प. साधारण का उल्लेख मिला है जिसके अनुसार इन्हें पंचास्तिकाय की एक पाण्डुलिपि सा धौपाल द्वारा भेंट की गई थी[1]।

ब्रह्म साधारण अपभ्रंश भाषा के विद्वान् थे। छोटी-छोटी कथाओ की रचना करके वे श्रावको को स्वाध्याय की प्रेरणा दिया करते थे। 15 वी 16 वी शताब्दी में भी अपभ्रंश भाषा की रचनाओं का निबद्ध करना उनके अपभ्रंश-प्रेम का द्योतक है। अब तक उनकी 9 रचनायें उपलब्ध हो चुकी है:—

1. कोइलपचमी कहा (कोकिला पचमी कथा)
2. मउड सप्तमी कहा (मुकुट सप्तमी कथा)
3. रविवय कहा (रविव्रत कथा)
4. तियालचउवीसी कहा (त्रिकाल चउवीस कथा)
5. कुसुमजलि कहा (पुष्पाजली कथा)

---

1. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थसूची, पंचम भाग, पृ.72

6. णिद्दुसि सत्तमी वय कथा (निर्दोष सप्तमी व्रत कथा)
7. णिज्झर पचमी कहा (निर्झर पचमी कथा)
8. अणुवेक्खा (अनुप्रेक्षा)
9. दुद्धारसि कहा (दुग्ध द्वादशी कथा)

उक्त सभी कृतियो मे लघु-कथाए हैं। भाषा अत्यधिक सरल किन्तु प्रवाहमय है। सभी कथाओ में अपनी पूर्ववर्ती गुरु परम्परा का उल्लेख किया है तथा कथा-समाप्ति की पंक्ति में अपने आपको नरेन्द्रकीर्ति का शिष्य लिखा है।

8. तेजपाल:—

तेजपाल राजस्थानी विद्वान् थे। अपभ्रंश भाषा मे काव्य-निबद्ध करने की ओर इनकी विशेष रुचि थी। ये मूलसघ के भट्टारक रत्नकीर्ति, भुवनकीर्ति, धर्मकीर्ति और विशालकीर्ति की आम्नाय के थे। कवि ने अपना परिचय देते हुए लिखा है कि 'वासनपुर' नामक गाव से बरसाबडह बंश मे जाल्हड नामके एक साहू थे। उनके पुत्र का नाम सुजड साहू था। वे दयावंत एव जिनधर्म में अनुरक्त रहते थे। उनके चार पुत्र थे—रणमल, बल्लाल, ईसरु और पोल्हणु। ये चारो ही भाई खण्डेलवाल जाति के भूषण थे। रणमल साहू के पुत्र ताल्हुप के पुत्र साहु हुए और उनके तेजपाल हुए। इस प्रकार तेजपाल खण्डेलवाल जाति मे उत्पन्न हुए थे और अपभ्रंश के अच्छे कवि थे।

तेजपाल की अब तक तीन कृतिया उपलब्ध हो चुकी है, जिनके नाम पासणाह चरिउ, संभवणाह चरिउ एव वराग चरिउ है।

पासणाह चरिउः—

पार्श्वनाथ चरित्र एक खण्ड-काव्य है, जिसका रचनाकाल सवत् 1515 कार्तिक कृष्णा पंचमी है। सारी रचना अपभ्रंश के काडला छन्द पद्धडिया मे निर्मित है। इसमें भगवान् पार्श्वनाथ के जीवन का तीन सधियो मे वर्णन किया गया है। इस काव्य को कवि ने पडवशी साहु शिवदास के पुत्र घूघलि साहु की अनुमति से रचा था। कृति अभी तक अप्रकाशित है तथा इसकी एक पाण्डुलिपि अजमेर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है।

सभवणाह चरिउः—

इस काव्य में छह सधिया और 170 कडवक है। इसमे तीसरे तीर्थंकर भगवान् सभवनाथ का जीवन-चरित्र निबद्ध है। महापुराणो के अतिरिक्त सभवनाथ का जीवन बहुत कम लिखा गया है, इसलिये कवि ने सभवनाथ पर काव्य रचना करके उल्लेखनीय कार्य किया है। इसकी रचना श्रीमन्त नगर मे हुई थी तथा मित्तल गोत्रीय साहु लक्षमदेव के चतुर्थ पुत्र थील्हा के अनुरोध पर लिखी गई थी। रचना सुरुचिपूर्ण एव अत्यन्त सुन्दर भाषा में निबद्ध है। इसका रचनाकाल सवत् 1500 के आस-पास का है। रचना अभी तक अप्रकाशित है।

वरांग चरिउः—

यह कविवर तेजपाल की तीसरी कृति है। इसमें चार सधिया है जिनमें राजा वराग का जीवन निबद्ध है। इसका रचनाकाल सवत् 1507 की वैशाख शुक्ला सप्तमी है। रचना सरल एवं सरस है तथा हिन्दी के विकास पर प्रकाश डालने वाली है। यह कृति भी अभी तक अप्रकाशित है।

उक्त कवियों के अतिरिक्त अपभ्रंश के अन्य कवियों का भी राजस्थान से विशेष सम्बन्ध रहा है। ऐसे कवियों में जम्बूसामि चरिउ के रचयिता महाकवि वीर, पासणाह चरिउ, सुकुमाल चरिउ एवं भविसयत्त चरिउ के रचयिता श्रीधर, महाकवि यशःकीर्ति, माणिक्यराज, भगवतीदास आदि के नाम उल्लेखनीय है।

जिनदत्तसूरिः—

जिनदत्तसूरि राजस्थानी सन्त थे। धन्धुका के रहने वाले वाछिग मन्त्री की पत्नी देल्हणदे की कोख से आपका सवत् 1132 मे जन्म हुआ। बाल्यकाल मे ही 9 वर्ष की आयु मे आपने दीक्षा ग्रहण करली। आपका जन्म नाम सोमचन्द्र था। चित्तौड के वीर जिनालय मे जिनवल्लभसूरि के मरणोपरान्त आपको सूरि पद प्राप्त हुआ और आपका नाम जिनदत्तसूरि रखा गया। मरुदेश, अजमेर, महाराष्ट्र एव राजस्थान के अन्य प्रदेशो मे आपने खूब विहार किया। मन्त्र शास्त्र के आप बडे भारी साधक थे। जब से जिनदत्तसूरि ने पाटण नगर मे अबड के हाथ पर वासक्षेप का प्रक्षेपन कर उन अक्षरो को पढ़ा तभी से आप युगप्रधान कहलाने लगे। आपने त्रिभुवनगिरि के राजा कुमारपाल एव सामर नरेश अर्णोराज को प्रतिबोध दिया। आपकी मृत्यु 1211 मे आषाढ शुक्ला 11 को अजमेर नगर मे हुई थी।[1]

अपभ्रंश-भाषा की अब तक आपकी तीन रचनाए उपलब्ध हुई है जिनके नाम है, उपदेश-रसायन रास, कालस्वरूप कुलक और चर्चरी। उपदेश रसायन रास मे 80 गाथाओं का संग्रह है। मगलाचरण के पश्चात् जिनदत्तसूरि ने मनुष्य जन्म के लिये आत्मोद्धार को आवश्यक बतलाया है। इसी रास मे मन्दिरो मे होने वाले तालरास एव लगुड रास का निषेध किया है। रास मे पद्धटिका-पज्झटिका छन्द का प्रयोग हुआ है। ओरियंटल इन्स्टीट्यूट, बडौदा से "अपभ्रंश काव्यत्रयी" मे उक्त रचना प्रकाशित हो चुकी है।

कालस्वरूप कुलक.—

यह श्री जिनदत्तसूरि की लघुकृति है जिसमे केवल 32 पद्य है। इसका दूसरा नाम उपदेश-कुलक भी है।

मगलाचरण के पश्चात् जिनदत्तसूरि ने 12वी शताब्दी मे सामाजिक स्थिति का उल्लेख किया है जिसके अनुसार लोगो मे धर्म के प्रति अनादर, मोहनिद्रा की प्रबलता और गुरु वचनो के प्रति अरुचि प्रमुख है। कवि ने सुगुरु और कुगुरु का भेद बतलाया है और कुगुरु को धतूरे के फल से समान बतलाया है। साथ ही में सुगुरुवाणी और जिनवाणी मे श्रद्धा का उपदेश दिया है। इस प्रकार कृति का विषय पूर्णत. धर्मोपदेश है। इसी प्रकार सुगुरु और कुगुरु बाहर से समान दिखते हैं किन्तु कुगुरु अभ्यन्तर व्याधिरूप है जो बुद्धिमान् दोनों मे भेद करता है वह परम पद को प्राप्त होता है।

चर्चरी.—

प्रस्तुत चर्चरी मे जिनदत्तसूरि ने 47 छन्दो मे अपने गुरु जिनवल्लभसूरि का गुणानुवाद एव चैत्य-विधि का विधान किया है। इस चर्चरी की रचना जिनदत्तसूरि ने बागड (राज.)

---

1. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, पृ. 5।

देशान्तर्गत व्याघ्रपुर नगर में विक्रम की 12वीं के उत्तरार्ध में की । कवि अपने गुरु जिनवल्लभ-सूरि को कालिदास एवं वाक्पतिराज से भी बढ़कर मानता है ।—

कालियासु कइ आसि जु लोइहि वन्नियइ ।
ताव जाव जिणवल्लहु कइ ना अन्नियइ ।।
अप्पु चित्त परियाणहि तं पि विसुद्ध न य ।
ते वि चित्त कइराय भणिज्जहि मुद्धनय ।।

हरिभद्रसूरि:—

हरिभद्र नाम से दो प्रसिद्ध विद्वान् हुए है । प्रथम हरिभद्रसूरि 8वीं शताब्दि में हुए जिनका चित्तौड़ से गहरा सम्बन्ध था । ये प्राकृत एव सस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे और जिन्होंने सैकड़ों की सख्या मे रचनाए निबद्ध करके एक अमृतपूर्व कार्य किया था । दूसरे हरिभद्र जिनेचन्द्रसूरि के प्रशिष्य एव श्रीचन्द्र के शिष्य थे । इनका सम्बन्ध गुजरात से अधिक था और वही चालुक्यवशी राजा सिद्धराज और कुमारपाल के अमात्य पृथ्वीपाल के आश्रय मे रहते थे किन्तु राजस्थान से भी उनका विशेष सम्बन्ध था और उस प्रदेश मे उनका बराबर बिहार होता रहता था ।

डा. देवेन्द्रकुमार शास्त्री ने हरिभद्र की दो अपभ्रंश कृतियों का उल्लेख किया है जिनके नाम सनत्कुमार चरित एव णमिणाह चरिउ है[1] । लेकिन डा. हरिवश कोछड ने अपने 'अपभ्रंश साहित्य' पुस्तक मे लिखा है कि नेमिनाथ चरित का एक अश सनत्कुमार चरित के नाम से प्रकाशित हुआ है । नेमिनाथ चरित के 443 पद्य से 785 पद्य तक अर्थात् 343 रड्डा पद्यो मे सनत्कुमार का चरित मिलता है । वैसे दोना चरित काव्य कथानक की दृष्टि से स्वतन्त्र काव्य प्रतीत होते हैं ।

नेमिनाथ चरित मे 22वे तीर्थंकर नेमिनाथ के जीवन पर आधारित काव्य निबद्ध किया गया है जबकि सनत्कुमार चरित, चक्रवर्ती सनत्कुमार के जीवन पर आधारित काव्य है। काव्य मे सनत्कुमार की विजय यात्रा, उनके अनेक विवाहो का वर्णन, उसके अमित तेज एव सौन्दर्य का वर्णन एव अन्त मे भोगो से विरक्ति, तपस्या का वर्णन और अन्त में स्वर्ग प्राप्ति का वर्णन मिलता है । काव्य का कथानक अन्य चरित-काव्यों के समान वीर और श्रृंगार के वर्णनो से युक्त है । लेकिन काव्य का पर्यवसान शान्त रूप मे होता है।

महेश्वरसूरि:—

महेश्वरसूरि राजस्थानी सन्त थे। इनके द्वारा रचित 'सयममजरी' अपभ्रंश भाषा की लघुकृति प्राप्त है[2]। सयममजरी में कवि ने सयम मे रहने का उपदेश दिया है। उसने सयम के 17 प्रकारो का उल्लेख करते हुए कुकर्म त्याग और इन्द्रिय निग्रह का विधान किया है।

उक्त अपभ्रंश कृतियों के अतिरिक्ति, रास एव फागु सज्ञक की कुछ रचनायें उपलब्ध होती है जिनमे विजयसेन सूरि कृत रेवतगिरिरास व देल्हण कृत गयमुकुमालरास, अबदेव कृत समरारास, राजेश्वरसूरि कृत नेमिनाथरास, शालिभद्रसूरि कृत भरत बाहुबलि रास के नाम उल्लेखनीय हैं ।

---

1. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तिया. डा. देवेन्द्रकुमार, पृ. 187
2. अपभ्रंश साहित्य डा. हरिवश कोछड 295

राजस्थानी जैन साहित्य

राजस्थानी साहित्य का सामान्य परिचय (पृष्ठभूमि) 1

—डा० हीरालाल माहेश्वरी

—: 1 :—

अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की भांति राजस्थानी का विकास भी तत्कालीन गुजरात और राजस्थान में लोक प्रचलित अपभ्रंश से हुआ है। विक्रम 5वीं से 12वीं शताब्दी अपभ्रंश का समृद्ध काल है। आचार्य हेमचन्द्र (संवत् 1145-1229) को अपभ्रंश की ऊपरी सीमा स्वीकार किया जा सकता है। यद्यपि अपभ्रंश की रचनायें उनके बाद भी लगभग चार शताब्दियों तक होती रहीं, तथापि देशी भाषाओं के आविर्भाव और प्रचलन के संदर्भ में, उसका प्रयोग परम्परा का पालन ही कहा जायेगा। प्राप्त अपभ्रंश साहित्य के आधार पर उसको तीन रूपों में विभाजित किया जा सकता है—1. पश्चिमी, 2. उत्तरी और 3 पूर्वी। ये भेद अपभ्रंश के एक प्रचलित सामान्य रूप में स्थानीय भाषाओं की विशेषताओं के समावेश के कारण हैं। उसका एक सामान्य रूप था जिसका मूलाधार शोरसैनी अपभ्रंश या पश्चिमी अपभ्रंश था। 9वीं से 12वीं शताब्दी के बीच यह पश्चिमी अपभ्रंश पूरे उत्तरी और पूर्वी भारत में साहित्यिक भाषा के रूप में समादृत हो चुकी थी। इसके दो प्रधान कारण थे—1. राजपूतों का उत्थान और इन राजाओं द्वारा उत्तरकालीन शोरसैनी अपभ्रंश तथा इससे मिलती जुलती बोली को अपनाना एवं प्रश्रय देना। 2. इसका शैव, जैन और वज्रयान बौद्धसिद्धों में एक धार्मिक भाषा के रूप में मान्य होना।

सर्वाधिक साहित्य पश्चिमी अपभ्रंश में ही पाया जाता है तथा प्राप्त अपभ्रंश साहित्य में सबसे अधिक रचनाये जैन कवियों की है। सनत्कुमार चरिउ, हेमचन्द्र द्वारा संग्रहीत दोहे, कुमारपाल प्रतिबोध में प्राप्त अपभ्रंश पद्यों आदि को विद्वानों ने गुर्जर अपभ्रंश कहा है और गुर्जर अपभ्रंश में पश्चिमी अपभ्रंश की सभी विशेषतायें प्राप्त होती है—'मारू-गुर्जर' या पुरानी राजस्थानी का विकास गुर्जरी अपभ्रंश से हुआ है।

इस प्रकार, 'मारू-गुर्जर' और उसके साहित्य में गुर्जरी अपभ्रंश और उसके साहित्य की सर्वाधिक विशेषतायें और परम्पराये सुरक्षित हैं। उसके काव्य रूप, कथ्य और शैली तथा साहित्यिक धारायें, कतिपय कालज और देशज विशेषताओं के साथ 'मारू-गुर्जर' के साहित्य में निर्विच्छिन्न रूप से मिलती हैं। अतः पुरानी राजस्थानी और उसके साहित्य के सम्यक्रूपेण अध्ययन के लिये पश्चिमी अपभ्रंश, विशेषतः गुर्जरी अपभ्रंश का अध्ययन अतीव आवश्यक है। पुरानी राजस्थानी में भी सर्वाधिक रचनायें जैन कवियों की हैं। लगभग संवत् 1100 से आगे चार शताब्दियों तक के साहित्य को 'मारू-गुर्जर' या पुरानी राजस्थानी का साहित्य कहा जा सकता है।

—2—

राजस्थानी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है.—

1. विकास काल (विक्रम संवत् 1100 से 1500)।

2. मध्य काल क—विकसित काल (संवत् 1500 से 1650)।
ख—विवर्द्धित काल (संवत् 1650 से 1900)।

3. अर्वाचीन काल (संवत् 1900 से वर्तमान समय तक)।

इस विभाजन के औचित्य के संबंध में साहित्यिक, भाषिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक—राजनैतिक अनेक कारण बताये जा सकते हैं।

भाषा की दृष्टि से विकास काल का साहित्य 'मारू-गुर्जर' का साहित्य है। इसके 'पुरानी राजस्थानी', 'पुरानी पश्चिमी राजस्थानी', 'जूनी गुजराती', 'मारू-सौरठ' आदि नाम भी दिये गये है, पर सर्वाधिक उचित नाम 'मारू-गुर्जर' ही है। इससे तत्कालीन गुजरात और राजस्थान-मरुप्रदेश की भाषाओं का सामूहिक रूप से बोध होता है।

उल्लेखनीय है कि विक्रम 15वी शताब्दी तक पुरानी गुजराती और पुरानी राजस्थानी एक ही थी। संवत् 1500 के लगभग दोनों पृथक्-पृथक् हुई। इसलिये 'मारू-गुर्जर' का साहित्य गुजराती और राजस्थानी दोनो का साहित्य है; दोनों का उस पर समान अधिकार है। यही कारण है कि इन 400 सालों में रचित साहित्य की चर्चा गुजराती और राजस्थानी साहित्य के इतिहासों में समान रूप से होती है। यद्यपि भाषिक दृष्टि से सवत् 1500 तक गुजराती और राजस्थानी अलग-अलग हो गई थीं; तथापि सास्कृतिक और कुछेक अंशो तक साहित्यिक परम्पराओ की दृष्टि से, उसके पश्चात् भी दोनो में काफी समानतायें मिलती है।

इस संबंध में डा० टैसीटरी की डिंगल विषयक धारणा की अमान्यता का उल्लेख भी आवश्यक है क्योकि अभी भी राजस्थानी के कुछ विद्वान उसको सत्य और प्रमाणिक मानते हैं; यही नही उन्होने राठोड पृथ्वीराज कृत 'वेली', 'ढोलामारू' आदि रचनाओ के पाठो मे शब्दरूप भी उसी के अनुसार रखे हैं। जब कि संबधित महत्वपूर्ण प्राचीन प्रतियो मे ऐसे रूप उपलब्ध नही होते। इससे राजस्थानी के विकास संबधी गलत धारणा को प्रश्रय मिलता है। डा० टैसीटरी ने डिगल के दो रूप माने है —1 प्राचीन डिंगल और 2 अर्वाचीन डिंगल। उन्होने ईसा की 13वी शती से 16वी शती के अन्त तक की डिंगल को प्राचीन डिंगल और ईसा की 17वी शती के आरम्भ से आज तक की डिंगल को अर्वाचीन डिंगल बताया है। उनके अनुसार इन दोनो मे मुख्य भेद यह है कि प्राचीन डिंगल मे जहा 'अई' और 'अउ' का प्रयोग होता है, वहा अर्वाचीन डिंगल मे उनके स्थान पर क्रमश 'ऐ' और 'औ' का। उनकी यह धारणा नितान्त निराधार है, जिसकी सप्रमाण पुष्टि प्रस्तुत पक्तियो के लेखक ने अन्यत्र की है, साथ ही यह स्थापना भी कि पन्द्रहवी शताब्दी के अन्तिम वर्षों तक 'पुरानी राजस्थानी' या 'मारू-गुर्जर' अपना पुराना स्वरूप छोड कर नया रूप ग्रहण कर चुकी थी। प्राचीन 'अई', 'अउ' के स्थान पर नवीन रूप 'ऐ', 'औ' इस शताब्दी मे पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित हो चुके थे। विकास का यह क्रम धीरे-धीरे आया।

'डिंगल' की व्युत्पत्ति, अर्थ आदि के विषय में विभिन्न मत प्रकट किये गये हैं। 'डिंगल' को भाषा भी माना गया है और शैली भी। भाषा मानने वालों मे भी मतैक्य नहीं है, किन्तु उन सबकी चर्चा यहा न कर इतना कहना ही पर्याप्त समझता हूं कि 'डिंगल' मरुभाषा या राजस्थानी का ही पर्याय है, चाहे वह साहित्यिक हो या बोलचाल की। राजस्थानी के छन्दशास्त्रीय ग्रन्थों से इसकी पुष्टि होती है। एक और तरह से भी इसकी पुष्टि की जा सकती है कि डिंगल मे लिखने वालो ने उसको क्या समझा है। दो उदाहरण पर्याप्त होंगे।

1. पदम भगत ने सवत् 1545 के लगभग 'रुकमणी मंगल' या 'हरजी रो व्यांवलो' नामक लोककाव्य लिखा था। यह राजस्थानी के प्राचीनतम आख्यान काव्यो मे एक है। कहने

की आवश्यकता नहीं कि इसकी भाषा बोलचाल की मरुभाषा है। इसकी प्राचीनतम उपलब्ध प्रति संवत् 1669 की लिपिबद्ध है। इसमें तो नहीं पर इसके पश्चात् की लिपिबद्ध बहुत सी प्रतियों में रचना के पुष्पिका स्वरूप यह दोहा मिलता है—

> कविता मोरी डींगली, नहीं व्याकरण ग्यान ।
> छन्द प्रबन्ध कविता नहीं, केवल हर को ध्यान ॥

यह दोहा मूल का नहीं प्रतीत होता है तथापि इतना तो स्पष्ट ही है कि इसको लिखने या रचने वाला 'व्यावले' को 'डींगली कविता' समझता है। श्री अगरचन्दजी नाहटा ने सवत् 1669 वाली प्रति का पाठ छपवाया है। उसमें सवत् 1891 की लिखी हुई एक अन्य प्रति का कुछ अतिरिक्त अंश भी दिया गया है। जिसमे उल्लिखित दोहा भी है। तात्पर्य यह है कि बोलचाल की राजस्थानी का भी दूसरा नाम 'डिंगल' है।

2. चारण स्वरूपदासजी दादूपंथी (समय-संवत् 1860-1900/1925) का 'पाण्डवयशेन्दु चन्द्रिका' काव्य प्रसिद्ध है। इसमे 16 अध्यायों में महाभारत की कथा का साराश है! इसकी भाषा बहुत ही सरल पिंगल है। इसकी भाषा के सबंध में स्वयं कवि का कथन यह है—

> पिंगल डिंगल सस्कृत, सब समझन के काज ।
> मिश्रित सी भाषा करी, क्षमा करहु कविराज ॥

अर्थात् (1) डिंगल भाषा है और वह (2) 'सब समझन के काज' स्वरूप भाषा है। सबके समझने लायक भाषा तो बोलचाल की ही हो सकती है। अत. बोलचाल की मरुभाषा की गणना डिंगल के अन्तर्गत है।

इस प्रकार की अनेक उक्तियो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मरुभाषा या राजस्थानी और डिंगल एक ही है।

— 3 —

राजस्थानी साहित्य को निम्नलिखित रूपों में विभाजित कर सकते हैं—

1. जैन साहित्य,
2. चारण साहित्य,
3. लौकिक साहित्य,
4. संतभक्ति साहित्य,
   तथा
5. गद्य साहित्य।

प्रथम चार प्रकार की रचनाओं में प्रत्येक की एक विशिष्ट शैली लक्षित होती है, अतः प्रत्येक को उस शैली का साहित्य भी कहा जा सकता है।

भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के कुछ पश्चात् और सन् 1857 (संवत् 1914) के स्वतन्त्रता-सग्राम से भी पूर्व, त्वरा से बदलती परिस्थितियों के कारण राजस्थानी कविता का स्वर भी बदलने लगा। यहां यह उल्लेखनीय है कि राजस्थान (अजमेर-मेरवाड़ा को छोड़ कर) सीधा अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत नही आया। यहा की विभिन्न रियासतो में वहां के परम्परागत नरेशों का ही राज्य रहा। यद्यपि अंग्रेजो की सार्वभौम सत्ता के कारण उनका प्रभुत्व सीमित हो गया था तथापि अपने-अपने अनेकश: आन्तरिक मामलों मे वे स्वतन्त्र थे। अधिकाश जनता 1857 के बाद भी राजाओं के प्रति स्वामिभक्त और राजभक्त बनी रही। कालान्तर

में जब देश के अन्यान्य भागों में स्वराज्य और स्वतन्त्रता की आवाज उठने लगी, तो उसकी प्रतिध्वनि शनैः शनैः राजस्थान में भी सुनाई देने लगी। इस प्रकार अर्वाचीन काल में परम्परागत काव्य-धारायें तथा नवीन भावनायें और विचार साथ-साथ मिलते हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् देश में अन्यत्र जिन भावों और विचारों की परम्परायें चलीं, उनके प्रवाह में कम-बेशी रूप में कुछ अंशों तक स्थानीय रंगत के साथ राजस्थानी साहित्य भी प्रवाहित हुआ। परन्तु अनेक कारणों से इसकी गति अपेक्षाकृत बहुत मन्द रही है।

यहां राजस्थानी साहित्य का केवल स्थूल दिग्दर्शन ही कराया जा सकता है।

—: 4 :—

राजस्थानी साहित्य के इतिहास में प्राचीनता, प्रवाह नैरन्तर्य, प्रामाणिकता तथा रचना और रूप विविधता की दृष्टि से जैन साहित्य का महत्व सर्वोपरि है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी इन दृष्टियों से हिन्दी जैन साहित्य का विशेष महत्व है किन्तु उसकी स्वीकृति और यथोचित मूल्याकन अभी किया जाना बाकी है।

जैन साहित्य की प्रेरणा का मूल केन्द्र धर्म है और उसका मुख्य स्वर धार्मिक है। रस की दृष्टि से यह साहित्य मुख्यत: शान्तरस प्रधान है।

राजस्थानी में चरित और कथाओं से संबंधित प्रभूत साहित्य का निर्माण हुआ। कथा-काव्यों में विविध प्रकार के वर्णित पापों के दुष्परिणाम, पुण्य के प्रसाद तथा धर्म पालन की महत्ता जान कर जन साधारण सहज ही धर्मोन्मुख होता है और तदनुकूल धर्मपालन में कटिबद्ध होता है। जैन धर्म मूलतः आध्यात्मिक है। जैन मुनियों का उद्देश्य व्यक्ति को धर्म प्रेरणा देना और उसको धर्मोन्मुख करना था।

'मारू-गुर्जर' के विकास-चिन्ह 11वी शताब्दी से दो प्रकार की अपभ्रंश रचनाओं में मिलने लगते हैं—एक तो कवि-विशेष द्वारा रचित रचनाओं में और दूसरे जैन प्रबन्ध ग्रन्थों में उपलब्ध अपभ्रंश पद्यो में। पहले प्रकार के अन्तर्गत कवि धनपाल कृत 15 पद्यों की छोटी सी रचना 'सच्च-उरिय महावीर उत्साह' तथा अन्य ऐसी कृतियो की गणना है। दूसरे के अन्तर्गत (1) प्रभावक चरित, (2) प्रबन्ध चिन्तामणि, (3) प्रबन्धकोष, (4) पुरातन प्रबन्ध 'संग्रह' (5) कुमारपाल प्रतिबोध, (6) उपदेश सप्तति आदि ग्रन्थो मे आये पद्य आते है। इन प्रबन्ध ग्रन्थों मे कालक्रम की दृष्टि से आचार्य वृद्धवादी और सिद्धसेन दिवाकर के प्रबन्ध में उद्धत अपभ्रंश और 'मारू-गुर्जर' के पद्यों को अपेक्षाकृत प्राचीन माना गया है। इनमे चारणों के कहे हुये पद्य भी उपलब्ध हैं जो 12वी से 14वी शताब्दी तक के हैं। इस काल में दोहा और छप्पय (कवित्त)-दो छन्द बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। छप्पयों में बप्पभट्टसूरि प्रबन्ध में उद्धृत छप्पय तथा वादिदेवसूरि सबधित छप्पय (समय लगभग 12वी शताब्दी) सर्वाधिक प्राचीन है।

12वी शताब्दी की रचनाओं में 'मारू-गुर्जर' का रूप और अधिक खुल कर सामने आने लगता है तथा उत्तरोत्तर अपभ्रंश का प्रभाव कम होता चलता है। इस शताब्दी की रचनाओं में पल्ल कवि कृत 'जिनदत्तसूरि स्तुति' और उनकी स्तुति रूप रचनाओं की गणना है। दोनों शताब्दियों की रचनाओ में अपभ्रंश का प्राधान्य है।

13वीं शताब्दी में और अधिक तथा अपेक्षाकृत बड़ी रचनायें मिलने लगती हैं। इनमें ये मुख्य हैं.—वज्रसेनसूरि द्वारा संवत् 1225 के आसपास रचित भरतेश्वर बाहुबलि घोर, शालिभद्रसूरि कृत भरतेश्वर बाहुबलि रास (संवत् 1241), बुद्धिरास, आसिगुरचित जीवदया

रास(संवत् 1257), चन्दनबाला रास, नेमिचन्द्र भण्डारी कृत गुरु-गुणवर्णन, देल्हप कृत गयसु-कुमार रास, धर्मकृत जम्बूस्वामिरास, स्थूलभद्ररास, सुभद्रासती चतुष्पदिका, जिनपतिसूरि बधावणागीत और जिनपतिसूरिजी से सबधित श्रावक कवि रयण और भत्तु रचित रचनायें; पाल्हण कृत आबूरास, रेवतगिरिरास, जगडू रचित सम्यक्त्व माई चौपाई, पृथ्वीचन्द्र कृत रस विलास, अभय देवसूरि रचित जयंत विजय काव्य आदि आदि। इनका महत्व साहित्यिक दृष्टि से उतना नही है जितना प्राचीनता और भाषिक दृष्टि से है। इन दो शताब्दियो (12वी 13वी) की रचनाओ मे कुछ की भाषा अपभ्रंश है जिसमे 'मारू-गुर्जर' का भी यत्किंचित पुट है तथा कुछ की भाषा अपभ्रंश प्रभावित 'मारू-गुर्जर' है।

14वी शताब्दी से तो अनेकानेक रचनायें मिलती हैं जिनका नामोल्लेख भी यहा संभव नही है। 15 वी शताब्दी मे पौराणिक प्रसगो के अतिरिक्त लोककथाओ को लेकर भी भाषा-काव्य लिखे जाने लगे। विकास काल की जैन रचनाओं के लिये गुर्जर रासावली, प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रह, प्राचीन गुजराती गद्य सदर्भ, जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य सचय, ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह, प्राचीन फागु सग्रह, पन्द्रमा शतकना प्राचीन गुर्जर काव्य, रास और रासान्वयी काव्य, पन्द्रमा शतकना चार फागु काव्यो आदि ग्रन्थो मे सग्रहीत कृतिया दृष्टव्य है। अनेक सस्थाओ और पत्र-पत्रिकाओ के माध्यम से सवत् 1500 के पश्चात् सैकडो जैन रचनाये प्रकाश में लाई गई हैं। इन सबका सक्षिप्त विवरण भी यहां नही दिया जा सकता। आगे जैन साहित्य की कतिपय प्रमुख विशेषताओ का उल्लेख किया जा रहा है.—

1. 'मारू-गुर्जर' के प्राचीनतम रूप का पता जैन कृतियो से ही मिलता है। 13वी शताब्दी से अर्वाचीन काल तक प्रत्येक शताब्दी के प्रत्येक चरण की रचनाये मिलती ह।

2. अनेक रचना-प्रकार और काव्यरूप मिलते हैं।

3. प्राचीनतम गद्य के नमूने भी जैन कृतियो मे ही मिलते हैं।

4. रचनाओ में नीति, धर्म, सदाचरण और आध्यात्म की प्रेरणा मुख्य है। शान्त रस प्रधान है।

5. जैन पुराणानुसार कथा-काव्य और रचित-काव्यो की प्रचुर मात्रा मे सृष्टि हुई है।

6. विभिन्न लोक प्रचलित कथानको के आधार पर भी जैन धर्मानुसार काव्य सृजन किया गया है। विक्रमादित्य, भोज, अलाउद्दीन-पद्मिनि, ढोला-मारू, सदयवत्स-सावलिगा आदि से सबधित अनेकश. रचनाये जैन कवियो ने लिखी हैं।

7. लोकगीतो और लोककथाओ की देशियो को अपना कर लोक साहित्य का सरक्षण किया है। बहुत से जैन कवियो ने प्रसिद्ध और प्राचीन लोकगीतो की देशियो की चाल पर अपनी कृतिया ढालबद्ध की है। इनसे अनेकशः लोकगीतो की प्राचीनता और प्रचलन का पता लगाया जा सकता है। श्री मोहनलाल दुलीचन्द देसाई ने ऐसी लगभग 2500 देशियों की सूची दी है।

इस प्रकार लगभग संवत् 1100 से वर्तमान समय तक राजस्थानी साहित्य अनेक धाराओ मे प्रवाहित हो रहा है। देश और काल के अनुसार कई धाराये क्षीण भी हुई, कई किंचित परिवर्तित भी हुई; अनेक लोकभूमि का जीवन रस पाकर 'नई' भी मिली परन्तु सामूहिक रूप मे इसका सातत्य निरन्तर बना रहा।

राजस्थानी पद्य साहित्यकार 2

—श्री अगरचन्द नाहटा

11वीं शताब्दी की अपभ्रंश रचनाओं में राजस्थानी भाषा के विकास के चिह्न मिलने लगते है। कवि धनपाल रचित 'सच्चउरिय महावीर उत्साह' ऐसी ही एक रचना है। इसमें केवल 15 पद्य है लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से यह अत्यधिक महत्वपूर्ण कृति है। 12वी शताब्दी में रचित पल्ह कवि की जिनदत्तसूरि स्तुति 10 छप्पय छन्दो की रचना है, इसकी भाषा अपभ्रंश प्रधान है। इसी प्रकार जिनदत्तसूरिजी की स्तुति रूप कई और छप्पय जैसलमेर के ताडपत्रीय भण्डार में संग्रहीत हैं। 13वीं शताब्दी मे नागौर मे होने वाले देवसूरि नामक विद्वान् आचार्य द्वारा अपने गुरु मुनिचन्द्रसूरि की स्तुति रूप मे 25 पद्य अपभ्रश मे रचे हुये मिलते है। इन वादिदेवसूरि को नमस्कार करके वज्रसेनसूरि ने 'भरतेश्वर बाहुबलि घोर' नामक 45 पद्यो की राजस्थानी कृति निबद्ध की थी। इसमे भगवान् ऋषभदेव के पुत्र भरत और उनके भ्राता बाहुबलि के युद्ध का वर्णन है। शालिभद्रसूरि कृत 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' राजस्थानी भाषा की सवतोल्लेख वाली प्रथम रचना है। इसमे 203 पद्य हैं। इन्ही की दूसरी रचना 'बुद्धिरास' है जो 63 पद्यो मे पूर्ण होती है।[1] कवि असगु ने सवत् 1257 मे जीवदयारास सहजिगपुर के पार्श्वनाथ जिनालय मे निबद्ध किया था। कवि जालौर का निवासी था। जैसलमेर के वृहद् ज्ञान भण्डार मे सग्रहीत सवत् 1437 मे लिखित स्वाध्याय पुस्तिका मे एव 'चन्दनबाला रास' भी उल्लेखनीय है। सवतोल्लेख वाली एक रचना 'जम्बूसामिरास' है जिसे महेन्द्रसूरि के शिष्य धर्म ने सवत् 1266 मे बनायी थी। 41 पद्यो की इस रचना में भगवान महावीर के प्रशिष्य जम्बूस्वामी का चरित्र वर्णित है। इन्ही की दूसरी कृति 'सुभद्रासती चतुष्पादिका' है जो 42 पद्यों की है। 13वी शताब्दी की अन्य रचनाओ मे 'आबूरास' (सवत् 1289) एव रेवंतगिरिरास के नाम उल्लेखनीय है।

14वीं शताब्दी—

सवत् 1307 मे भीमपल्ली (भीलडिया) के महावीर जिनालय की प्रतिष्ठा के समय अभयतिलकगणि ने 21 पद्यो का 'महावीर रास' बनाया। इन्ही के लघुभ्राता लक्ष्मीतिलक उपाध्याय भी सस्कृत एव राजस्थानी के अच्छे विद्वान् थे। इन्होने 'शातिनाथ देव रास' नामक राजस्थानी काव्य लिखा था। वह एक ऐतिहासिक रास है जिसमे सवत् 1313 मे जालोर मे उदयसिंह के शासन मे शाति जिनालय की प्रतिष्ठा जिनेश्वरसूरि ने की थी, उसका उल्लेख है। सवत् 1332 मे जिनप्रबोधसूरि द्वारा रचित 'शालिभद्ररास' 35 पद्यो की एक सुन्दर राजस्थानी रचना है। इसमे राजगृही के समृद्धशाली सेठ शालिभद्र का चरित्र वर्णित है।

रत्नसिंहसूरि के शिष्य विनयचन्द्रसूरि ने सवत् 1338 मे 'बारहव्रत रास' लिखा जिसमें 53 पद्य है। सवत् 1341 मे जिनप्रबोधसूरि के पट्ट पर जिनचन्द्रसूरि स्थापित हुये। उनके संबध में हेमभूषणगणि रचित 'युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि चर्चरी' नामक 25 पद्यो की रचना मिली है। सवत् 1363 मे प्रज्ञातिलक के समय मे रचित 'कच्छुलीरास' की रचना कोरटा

---

1. भारतीय विद्या—द्वितीय वर्ष, प्रथम अंक।

(जोधपुर) में हुई थी। इसी तरह इस शताब्दी में रचित निम्न रचनायें और उल्लेखनीय हैं.—

1.	बीस विहरमान रास[1] ..	कवि वस्तिग ..	संवत् 1368
2.	श्रावक विधि रास2	गुणाकरसूरि . ..	सवत् 1371
3.	समरा रास[3] . .	अंबदेवसूरि	सवत् 1371
4.	जिनकुशलसूरि पट्टाभिषेक रास ..	धर्मकलश मुनि ..	संवत् 1377
5.	पद्मावती चौपई[4]	जिनप्रभुसूरि .. .	सवत् 1386
6.	स्थूलिभद्र फाग . ..	जिन पद्मसूरि.. ..	सवत् 1390
7.	शालिभद्र काक	पउम कवि	14वी
8.	नैमिनाथ फाग	पउम कवि ..	14वी

15वी शताब्दी:—

इस शताब्दी मे राजस्थानी साहित्य में एक नया मोड़ आता है। इस शती की प्रारम्भ की कुछ रचनाओं में अपभ्रंश का प्रभाव अधिक है पर उत्तरार्ध की रचनाओं मे भाषा काफी सरल पायी जाती है। बड़े-बड़े रास उसी शताब्दी में रचे जाने लगे। लोक-कथाओं को लेकर राजस्थानी भाषा में काव्य लिखे जाने का प्रारम्भ भी इसी शताब्दी मे हुआ।

राजशेखरसूरि ने सवत् 1405 मे 'प्रबन्ध कोष' की रचना की और 'नेमिनाथ फागु' नामक कृति को छन्दोबद्ध किया। सवत् 1410 मे पूर्णिमागच्छ के शालिभद्रसूरि ने नादउद्री में देवचन्द्र के अनुरोध से 'पाच पाडव रास' बनाया। इसी समय सवत् 1412 मे विनयप्रभ ने 'गौतम-स्वामी रास' को छन्दोबद्ध किया। इस रास ने अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त की और राजस्थान के कितने ही शास्त्र भण्डारो मे इसकी हजारों पाण्डुलिपिया उपलब्ध होती है। सवत् 1423 मे रचित 'ज्ञान पचमी चौपई' 548 पद्यो की रचना है जिसके रचियता है श्रावक विद्धणु। ये जिनोदयसूरि के शिष्य थे। सवत् 1432 मे मेरुनन्दनगणि ने 'जिनोदयसूरि गच्छनायक विवाह-लउ' की रचना की। यह काव्य छोटा होने पर भी बहुत सुन्दर है। सवत् 1455 में साधुहस मे 222 पद्यो मे 'शालिभद्र राम' का निर्माण किया। इसी समय के लगभग जयशेखरसूरि हुये जिन्होने 'त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध' नामक 448 पद्यो का रूपक काव्य लिखा। पीपलगच्छ के हीरानन्दसूरि ने 'वस्तुपालतेजपाल राम' (सं 1484), 'विद्याविलास पवाडा' (स. 1485), 'कलिकाल राम' (1495) की रचना की। उक्त कवियो के अतिरिक्त इस शताब्दी में और भी कितने ही कवि हुये जिन्होने राजस्थानी में अनेक काव्यो की रचना की। इनमे से निम्न काव्य विशेषतः उल्लेखनीय है—

1.	जिनोदयसूरि पट्टाभिषेक रास	मुनि ज्ञानकलश	सवत् 1415
2.	स्थूलिभद्र फाग	हलराज कवि	सवत् 1409 आधाटनगर
3.	भट्टारक देवसुन्दरसूरि रास	चांप कवि	सवत् 1445/55 पद्य
4.	विहुगति चौपाई	वस्तो कवि	15वी शताब्दी

1. जैन गुर्जर कविओ भाग—2।
2. आत्मानन्द शताब्दी स्मारक ग्रन्थ में प्रकाशित।
3. प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह में प्रकाशित।
4. भैरव पद्मावती काव्य, परिशिष्ट—10।

5.	सिद्धचक्र श्रीपाल रास	मांडण सेठ	संवत् 1498 258 पद्य
6.	राणकपुर स्तवन	मेहा कवि	संवत् 1499
7.	तीर्थमाला स्तवन	मेहा कवि	सवत् 1499
8.	ऋषभ रास एव भरत बाहुबलि पवाडा	गुणरत्नसूरि	15वीं
9.	नैमिनाथ नवरस फाग	सोमसुन्दरसूरि	1481
10.	स्थूलिभद्र कवित्त	सोमसुन्दरसूरि	1481

मध्यकाल—

राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल काफी लम्बे (400 वर्षों) समय का है और इस काल मे रचनाये भी बहुत अधिक रची गई है। शताधिक जैन कवि इस समय मे हो गये है और उनमे से कई कवि ऐसे भी है जिन्होने बहुत बडे परिमाण मे साहित्य निर्माण किया है। इसलिये इस काल के सब जैन कवियो और उनकी रचनाओ का परिचय देना इस निबन्ध मे सभव नही है। 16वी शताब्दी से मध्यकाल का प्रारम्भ होता है और उस शताब्दी की रचनाये तो कम है, पर 17वी और 18वी शताब्दी तो राजस्थानी साहित्य का परमोत्कर्ष काल है, अत इस समय मे राजस्थानी जैन साहित्य का जितना अधिक निर्माण हुआ, अन्य किसी भी शताब्दी मे नही हुआ। 19वी शताब्दी स साहित्य निर्माण की वह परम्परा कमजोर व क्षीण होने लगती है। उत्कृष्ट कवि भी 17वी व 18वी शताब्दी मे ही अधिक हुये है। गद्य मे रचनाये तो बहुत थोडे विद्वानो ने ही लिखी है। बहुत सी रचनाये अज्ञात कवियो की ही है और ज्ञात कवियो की रचनाओ में भी किन्ही मे रचनाकाल और किसी में रचना स्थान का उल्लेख नही मिलता है। 16वी शताब्दी मे तो रचना स्थान का उल्लेख थोडे से कवियो ने किया है। 17वी व 18वी शताब्दी के अधिकाश जैन कवियो ने रचनाकाल के साथ-साथ रचना स्थान का भी उल्लेख कर दिया है। अन्त मे जिन व्यक्तियो के अनुरोध से रचना की गई, उन व्यक्तियो का भी उल्लेख किसी-किसी रचना मे पाया जाता है। कवियो ने अपनी गुरु परम्परा का तो उल्लेख प्राय किया है पर अपना जन्म कब एव कहा हुआ, माता पिता का नाम क्या था, वे किस वश या गोत्र के थे, उनकी दीक्षा कब व कहा हुई, शिक्षा किससे प्राप्त की और जीवन मे क्या क्या विशेष कार्य किये तथा स्वर्गवास कब एव कहा हुआ, इन ज्ञातव्य बातो की जानकारी उनकी रचनाओ से प्राय नही मिलती। इसलिये साहित्यकारो की जीवनी पर अधिक प्रकाश डालना सभव नही। उनकी रचनाओ को ठीक से पढे बिना उनकी आलोचना करना भी उचित नही है। इसलिये प्रस्तुत निबन्ध मे कवियों की सक्षिप्त जानकारी ही दी जा सकेगी।

मध्यकाल की जैन रचनाओ मे चरित काव्य जिस 'राम-चोपाई' आदि की सज्ञा दी गई है, ही अधिक रचे गये हे। 14-15वी शताब्दी तक के अधिकाश रास छोटे-छोटे थे। 16वी शताब्दी मे भी उनका परिमाण मध्यम सा रहा, पर 17वी व 18वी शताब्दी मे तो बहुत बडे-बडे रास रचे गये, जिनमे से कई रास तो 8-10 हजार श्लोक परिमित भी है। मध्यकाल मे रास के स्वरूप और उसकी शैली मे भी काफी परिवर्तन हो गया है। दोहा और लोकगीतो की देशियों का प्रयोग ही मध्यकाल के रासो मे अधिक हुआ है। किसी-किसी रास में चौपई छन्द का प्रयोग होने से उसका नाम चतुष्पदी या चौपई रखा गया है पर आगे चल कर जब वह सज्ञा चरित काव्यादि के लिये रूढ हो गई तो चौपई छन्द का प्रयोग न होने वाली रचनाओं को भी चौपई के नाम से प्रसिद्ध कर दिया। एक ही रचना को किसी ने चौपई के नाम से और किसी ने रास के नाम से संबोधित किया है अर्थात् फिर रास और चौपई मे कोई खास भेद नही रह गया और चरित काव्य के लिये इन दोनो नामो का खुल कर प्रयोग होने लगा। 'वेलि' सज्ञा काव्यो का निर्माण भी 16वी से प्रारम्भ होता है और सबसे अधिक वेलिया 17-18वी सदी में बनाई गई हैं।

सुदर्शन श्रेष्ठिरासः—

सवतोल्लेख वाली सुदर्शन श्रेष्ठि रास या प्रबन्ध की रचना सवत् 1501 में हुई है । 225 पद्यो के इस रास के रचियता के सबध मे प्रत्यन्तरो मे पाठ-भेद पाया जाता है। श्री मोहन लाल देसाई ने इसका रचयिता तपागच्छीय मुनिसुन्दरसूरि के शिष्य सघविमल या शुभशील माना है, पर बीकानेर के वृहद ज्ञान भण्डार में जो प्रति उपलब्ध है उसमे 'तपागच्छी गुरु गौतम सभायें मा श्री मुनिसुन्दरसूरि पू.' के स्थान पर 'चन्द्रगच्छी गौतम सभाये मा श्री चन्द्रप्रभसूरि' पाठ मिलता है। रास का चरित नायक सुदर्शन सेठ है जो अपने शीलधर्म की निष्ठा के कारण बहुत ही प्रसिद्ध है।

कविवर देपाल —

इस शताब्दी के प्रारम्भ मे देपाल नामक एक उल्लेखनीय सुकवि हुआ है। 17वीं शताब्दी के कवि ऋषभदास ने अपने मे पूर्ववर्ती प्रसिद्ध कवियों में इसका उल्लेख किया है। 'कोचर व्यवहारी रास' के अनुसार यह कवि दिल्ली के प्रसिद्ध देसलहरा, साह समरा और सारग का आश्रित था। देपाल कवि की रचनाओ मे तत्कालीन अनेक रचना-प्रकारो का उपयोग हुआ है। रास, सूड, चौपई, धवल, विवाहला, मास, गीत, कडावा एवं पूजा सज्ञक रचनाये मिलती है जिनकी सख्या 18 है।

संघकलश —

16वी शताब्दी की जिन रचनाओं में रचना स्थान, राजस्थान के किसी ग्राम या नगर का उल्लेख हो ऐसी सर्व प्रथम रचना 'सम्यकत्वरास' है। यह मारवाड के तलवाडा गाव में सवत् 1505 मगसिर महिने मे रची गयी थी। सवत् 1538 की लिखी हुई उसकी प्रति पाटण भण्डार मे है। रास के प्रारम्भ में कवि ने तलवाडा में 4 जैन मन्दिर व मूर्तिया होने का उल्लेख किया है :—

तब कोई मारवाड कहीजई, तलवाडों तेह माह गणीजई, जाणी जे मचराचरी।
तिहा श्री विमल, वीर, शाति पास जिन सासणधीर ए धारइ जिणवर नमई ॥

ऋषिवर्द्धन सूरि —

रचना स्थान के उल्लेख वाली कृतियो में अंचलगच्छीय जयकीर्ति सूरि शिष्य ऋषिवर्द्धन सूरि का 'नल दमयन्ती रास' उल्लेखनीय है। 331 पद्यो के इस रास की रचना सवत् 1512 मे चित्तौड़ में हुई। नल दमयन्ती की प्रसिद्ध कथा को इस रास में सक्षेप मे पर बहुत सुन्दर ढंग से व्यक्त की है। प्रारम्भ और अन्त के पद्य इस प्रकार हैं:—

सकल सघ सुह शातिकर, प्रणमीय शाति जिनेसु।
दान शील तप भावना, पुण्य प्रभाव भणेसु ॥
सुणता सुपुरिष वर चरिय, बाधइ पुण्य पवित।
दवयंती नलराय नु, निसुणु चारु चरित ॥

अंत-सवत् पनर बारोतर वरसे, चित्रकूट गिरि नयर सुवासे, श्री संघआदर भणई।
ए हू चरित जेह भणई भणावई, ऋद्धि वृद्धि सुख उच्छवआवई, नितु नितु मन्दिर तस तणई ए।

मतिशेखर:—

इसके पश्चात् उपकेशगच्छीय मतिशेखर सुकवि हो गये हैं। इस कवि की कई रचनायें प्राप्त होती है। यद्यपि उनमे रचना स्थान का उल्लेख नही है पर उपकेशगच्छ मारवाड़ के ओसिया गांव के नाम से प्रसिद्ध हुआ और उसका प्रचार प्रभाव भी राजस्थान मे अधिक रहा, इसलिये मतिशेखर की रचनायें राजस्थान में ही रची गई होंगी। इनके रचित 1. धन्नारास, संवत् 1514, पद्य 328, 2. मयणरेहा रास, सवत 1537, गाथा 347 और 3. बावनी प्राप्त है। इनके अतिरिक्त 4. नैमिनाथ बसत फुलडा फाग, गाथा 108, 5. कुरगडू महर्षि रास संवत् 1536, 6. इलापुत्र चरित्र, गाथा 165 और 7. नेमिगीत है। मतिशेखर वाचक पद से विभूषित कवि थे।

रत्नचूड रास:—

रत्नचूड रास नामक एक और चरित काव्य इसी समय का प्राप्त है पर उसमें रचना स्थान का उल्लेख नही है और विभिन्न प्रतियो मे रचना काल और रचयिता सबधी पाठ भेद पाया जाता है। इसी तरह की और भी कई रचनायें है जिनका यहा उल्लेख नही किया जा रहा है।

आज्ञासुन्दर —

सवत् 1516 मे जिनवर्द्धनसूरि के शिष्य आज्ञासुन्दर उपाध्याय रचित 'विद्या विलास चरित्र चौपई' 363 पद्यो की प्राप्त है।

विवाहले —

आचार्य कीर्तिरत्नसूरि की जीवनी के सम्बन्ध मे उनके शिष्य कल्याणचन्द्र ने 54 पद्यो का 'श्री कीर्तिरत्नसूरि विवाहलउ' की रचना की। यह ऐतिहासिक कृति है। इसमे कीर्तिरत्न-सूरि के जन्म से स्वर्गवास तक का संवतोल्लेख सहित वृत्तात दिया गया है। इसी तरह का एक और भी विवाहलउ कीर्तिरत्नसूरि के शिष्य गुणरत्नसूरि के संबध मे पद्ममन्दिर गणि रचित प्राप्त हुआ है।

कवि पुण्यनन्दि :—

पुण्यनन्दि ने राजस्थानी मे 32 पद्यो में 'रूपकमाला' की रचना की इस पर सस्कृत मे भी टीकायें लिखा जाना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। संवत् 1582 मे रत्नरंग उपाध्याय ने इस पर बालावबोध नामक भाषा टीका बनायी और सुप्रसिद्ध कवि समयसुन्दर ने संवत् 1663 में सस्कृत मे चूर्णि लिखी।

राजशील :—

खरतरगच्छ के साधु हर्ष शिष्य राजशील उपाध्याय ने चित्तौड में संवत् 1563 मे 'विक्रम-चरित्र चौपई' की रचना की। इसमे खापरा चोर का प्रसंग वर्णित है। रचनाकाल और स्थान का उल्लेख इस प्रकार किया है :—

पनरसइ त्रिसठी सुविचारी, जेठमासि उज्जल पाखि सारी।
चित्रकूट गढ तास मझारि, भणतां भवियण जयजयकारि।

वाचक धर्मसमुद्र :—

धर्मसमुद्र वाचक विवेकसिंह के शिष्य थे। इन्होने 'सुमित्र कुमार रास' सवत् 1567 मे जालौर मे 337 पद्यो मे बनाया था। दानधर्म के महात्म्य पर इस चरित्र काव्य की रचना हुई। 'कुलध्वज कुमार रास' को कवि ने 1584 मे समाप्त किया। इसमे 143 पद्य है। कवि ने मेवाड के धजिलाणापुर मे सवत् 1573 मे श्रीमल साह के आग्रह से एक कल्पित कथा 'गुणाकर चौपई' की रचना की। इसमे 530 पद्य हैं। कवि ने 104 पद्यो मे 'शकुन्तला रास' का निर्माण किया। इनके अतिरिक्त सुदर्शनरास, सुकमाल सज्झाय आदि और भी कितनी ही लघु रचनाएं मिलती है।

सहजसुन्दर :—

उपाध्याय रत्नसमुद्र के शिष्य कवि सहजसुन्दर भी इसी शताब्दी के कवि थे। संवत् 1570 मे सवत् 1596 तक इनकी 10 रचनाये प्राप्त हो चुकी है। इनके इलाती पुत्र सज्झाय, गुणरत्नाकर छन्द (स 1572), ऋषिदत्तारास, आत्मरा। रास, परदेशी राजा रास का नाम विशेषत उल्लेखनीय है।

भक्तिलाभ व उनके शिष्य चारुचन्द्र :—

खरतरगच्छ के प्रसिद्ध विद्वान् उपाध्याय जयसागर के प्रशिष्य भक्तिलाभ उपाध्याय भी अच्छे विद्वान हो गये है। जिनकी कल्पान्तरवाच्य, बाल-शिक्षा आदि सस्कृत रचनाओ के अतिरिक्त 'लघु जातक' नामक ज्योतिष ग्रन्थ की भाषा टीका सवत् 1571 बीकानेर मे रचित प्राप्त है। यह राजस्थानी के अच्छे कवि भी थे, यद्यपि इनकी कोई बडी रचना नही मिली पर सीमधर स्तवन, वरकाणा स्तवन, जीरावली स्तवन, रोहिणी स्तवन आदि कई स्तवन प्राप्त है। इनमे सीमधर स्तवन का तो काफी प्रचार रहा है। भक्तिलाभ के शिष्य चारुचन्द्र रचित उत्तमकुमार चरित्र की स्वय लिखित प्रति हमारे सग्रह मे है जो सवत् 1572 बीकानेर मे लिखी गई है।

पार्श्वचन्द्र सूरि —

इस शताब्दी के अन्त मे और उल्लेखनीय राजस्थानी जैन कवि पार्श्वचन्द्र सूरि हैं। इनके नाम से पार्श्वचन्द्र गच्छ प्रसिद्ध हुआ। बीकानेर में इस गच्छ की श्रीपूज्य गद्दी है। नागौर मे भी गच्छ का प्रसिद्ध उपाश्रय है। पार्श्वचन्द्र का जन्म सिरोही राज्य के हमीरपुर के पोरवाड वेलगसाह की पत्नी विमलादे की कुक्षि से सं. 1537 मे हुआ था। 9 वर्ष की छोटी आयु मे ही उन्होने मुनि दीक्षा स्वीकार की और जल्दी ही पढ-लिख कर विद्वान बन गये, इसलिये केवल 17 वर्ष की आयु में उपाध्याय पद और 28 वर्ष की आयु मे आचार्य पद प्राप्त किया। सवत् 1612 मे जोधपुर में इनका स्वर्गवास हुआ। गद्य और पद्य मे इनकी छोटी बड़ी शताधिक रचनायें मिलती है। पार्श्वचन्द्र सूरि की अधिकाश रचनायें सैद्धान्तिक विषया सबंधी है। इसलिये काव्य की दृष्टि से, रचनाये सख्या मे अधिक होने पर भी, उतनी उल्लेखनीय नहीं। इनकी बालावबोध सज्ञक भाषा टीकाये तत्कालीन राजस्थानी गद्य के स्वरूप को जानने के लिये महत्व की हैं। अग सूत्रों पर सबसे पहले भाषा टीकाये इन्ही की मिलती हैं।

विजयदेवसूरि :—

इनके प्रगुरु पुंजराज के शिष्य विजयदेवसूरि का 'शीलरास' काव्य की दृष्टि से भी (छोटा होने पर भी) महत्व का है और उसका प्रचार इतना अधिक रहा है कि पचासों हस्तलिखित

प्रतियाँ प्राप्त हैं; यद्यपि उसमे रचनाकाल का उल्लेख नहीं है, पर संवत् 1611 की लिखी हुई प्रति प्राप्त है। पार्श्वचन्द्रसूरि के पट्टधर समरचन्द्र को आचार्य पद सवत् 1604 मे मिला था और उससे पहले ही विजयदेवसूरि का स्वर्गवास हो गया इसलिये इस रचना को 16वी शताब्दी के अन्त की ही मानी जा सकती है। इस रास की रचना जालौर मे हुई थी। 80 पद्यो का यह रास प्रकाशित भी हो चुका है। 'वीसलदेव रास' की तरह इसका छन्द काफी बडा है। इसलिये 80 पद्यो का श्लोक परिमाण 270 पद्यो का हो जाता है। शील के महात्म्य का बडे सुन्दर ढंग से और सरल भाषा मे कवि ने निरूपण किया है, इसीलिये वह इतना लोकप्रिय हो सका।

वाचक विनयसमुद्र —

इस शताब्दी के अन्तिम कवि जिनकी स. 1611 तक की रचना प्राप्त है, वाचक विनयसमुद्र हुए हैं जो उपकेश गच्छ के वाचक हर्षसमुद्र के शिष्य थे। बीकानेर मे रची हुई इनकी कई रचनाये प्राप्त है। एक जोधपुर और एक तिवरी में भी रची गई। सवत् 1583 से 1614 तक मे रची हुई इनकी करीब 25 रचनाये प्राप्त हुई है, जिनमे से 20 का विवरण राजस्थान भारती, भाग 5, अक 1 मे प्रकाशित 'वाचक विनयसमुद्र' लेख मे दिया गया है।

17वी शताब्दी :

मालदेव .—

वाचक मालदेव आचार्य भानदेवसूरि के शिष्य थे। सस्कृत, प्राकृत रचनाओ के अतिरिक्त, कवि ने राजस्थानी भाषा मे कितनी ही रचनायें लिखी। इनके द्वारा रचित 'पुरन्दर चौपई' का तो विशेष प्रचार है। विक्रम और भोज को लेकर उन्होने बडे-बडे राजस्थानी काव्य लिखे हैं। कवि की पुरन्दर चौपई, सुरसुन्दर चौपई, भोज प्रबन्ध, विक्रम पंचदण्ड चौपई, अजना सुन्दरी चौपई, पद्मावती पद्मश्री रास, आदि 20 से भी अधिक रचनायें उपलब्ध हैं।

पुण्यसागर :—

महोपाध्याय पुण्यसागर ने सुबाहुसंधि की रचना सवत् 1604 में जैसलमेर में की थी। इसमें 89 पद्य है। इसके अतिरिक्त साधु वन्दना, नमि राजर्षिगीत आदि और भी कितनी ही रचनाये मिलती है। इनके अनेक शिष्य, प्रशिष्य थे और वे सभी राजस्थानी के अच्छे विद्वान थे। इनके शिष्य पद्मराज ने अभयकुमार चौपई (स 1650), क्षुल्लक ऋषि प्रबन्ध (सं 1667), सनत्कुमार रास (1669) की रचना की थी। पुण्यसागर के प्रशिष्य परमानन्द ने देवराज वच्छराज चौपई (स. 1675) की रचना की थी।

साधुकीर्ति :—

जैसलमेर वृहद् ज्ञान भण्डार के संस्थापक जिनभद्रसूरि की परम्परा में अमरमाणिक्य के शिष्य उपाध्याय साधुकीर्त्ति राजस्थानी के अच्छे विद्वान थे। विशेष नाममाला, संघपट्टकवृत्ति, भक्तामर अवचूरि आदि सस्कृत रचनाओ के अतिरिक्त आपने राजस्थानी गद्य-पद्य मे अनेक रचनायें की है। आपकी सर्वप्रथम रचना सप्तस्मरण बालावबोध सवत् 1611 की है। उसके पश्चात् दिल्ली, अलवर, नागौर आदि नगरो मे इन्होने और भी रचनाये लिखी।

इनके गुरुभ्राता कनकसोम भी अच्छे कवि थे, जिनकी जैतपदवेलि (सं. 1625), जिनपालित जिनरक्षित रास (1632), आषाढभूति धमाल (1638), हरिकेशी संधि

(1640), आर्द्रकुमार धमाल (1644), नेमिफाग आदि कितनी ही रचनायें उपलब्ध होती हैं ।

कुशललाभ :—

कुशललाभ खरतरगच्छीय अभयधर्म के शिष्य थे । ढोला-मारू और माधवानल काम-कन्दला चौपई आपकी लोकप्रिय एव प्रसिद्ध रचनाये हैं । जैसलमेर के रावल मालदेव के कुवर हरराज के कौतुहल के लिये इन दोनो लोककथाओ सबधी राजस्थानी काव्यो की रचना संवत् 1616 एवं 1617 मे की थी । इनके अतिरिक्त तेजसार रास, अगडदत्त रास जैसी और भी रचनायें उपलब्ध होती हैं ।

कविवर हीरकलश :—

बीकानेर और नागौर प्रदेश मे समान रूप से विराजने वाले इस कवि ने राजस्थानी भाषा मे 'हीरकलश जोइस हीर' नामक महत्वपूर्ण रचना सवत् 1657 में समाप्त की थी । प्रस्तुत कृति भाषा की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है । कुमति विध्वसंन (सं. 1617), सम्यक्त्व-कौमुदी रास, अठारह नाता, आराधना चौपई, मोती कपासिया सम्वाद, रतनचूड चौपई, हीयाली आदि और भी कितनी ही इनकी रचनाये उपलब्ध होती हैं । सवत् 1615 से लेकर संवत् 1657 तक आपकी करीब 40 रचनायें प्राप्त हुई हैं ।

महोपाध्याय समयसुन्दर :—

राजस्थानी साहित्य के सबसे बडे गीतकार एव कवि के रूप मे महोपाध्याय समयसुन्दर का नाम उल्लेखनीय है । सवत् 1641 मे 1709 तक 60 वर्षो मे आपका साहित्य-रचना का दीर्घकाल है । 'राजा नो ददते सौख्यम' इन आठ अक्षरो के वाक्य के आपने 10 लाख से भी अधिक अर्थ करके सम्राट अकबर और समस्त सभा को आश्चर्य चकित कर दिया था । 'सीताराम चौपई' नामक राजस्थानी जैन रामायण की एक ढाल आपने सांचौर में बनायी थी । राजस्थानी गद्य-पद्य मे आपकी सैकडो रचनाये उपलब्ध होती है, जिनमे 563 रचनाये 'समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि' मे प्रकाशित हो चुकी है । सम्बप्रद्युम्न चौपई, मृगावती रास (1668), प्रियमेलक रास (1672), शत्रुंजय रास, स्थूलिभद्र रास आदि रचनाओ के नाम उल्लेखनीय हैं । आपका शिष्य परिवार भी विशाल था और जिसकी परम्परा अभी तक उपलब्ध है ।

उक्त कवियों के अतिरिक्त विमलकीर्ति, नयरग, जयनिधान, वाचक गणरत्न, चारित्रसिंह, धर्मरत्न, धर्मप्रमोद, कल्याणदेव, वीरविजय, हेमरत्नसूरि, सारग, उपाध्याय जयसोम, उपाध्याय गुणविनय, उपाध्याय लब्धिकल्लोल, महोपाध्याय सहजकीर्ति, श्रीसार, विनयमेरु, वाचक सूरचन्द्र आदि कितने ही राजस्थानी कवि हुये है जिन्होने राजस्थानी भाषा को अपनी साहित्य सर्जना का माध्यम बना कर उसके प्रचार-प्रसार मे योग दिया ।

सम्राट अकबर प्रतिबोधक युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि के अनेक शिष्य एव प्रशिष्य थे जो राजस्थानी के अच्छे विद्वान थे । ऐसे विद्वानों मे समयप्रमोद, मुनिप्रभ, समयराज उपाध्याय, हर्षवल्लभ, सुमतिकल्लोल, धर्मकीर्ति, श्रीसुन्दर, ज्ञानसुन्दर, जीवराज, जिनसिंहसूरि, जिनराजसूरि आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

इसी शताब्दी में होने वाले भुवनकीर्ति की संवत् 1687 से 1706 तक रचनायें मिलती हैं जिनमें भरतबाहुबलि चौपई, गजसुकुमाल चौपई, अंजनासुन्दरी रास के नाम उल्लेखनीय हैं ।

लावण्यकीर्ति खरतरगच्छीय ज्ञानविलास के शिष्य थे। इनकी सबसे उल्लेखनीय 'रामकृष्ण चौपई' है जो छह खण्डों मे कृष्ण और बलराम के चरित्र को लेकर लिखी गई है। लाभोदय खरतरगच्छीय भुवनकीर्ति के शिष्य थे। इनके द्वारा रचित 'कयवन्ना रास' महत्वपूर्ण कृति है। गुणनन्दन सागरचन्द्रसूरि शाखा के विद्वान ज्ञानप्रमोद के शिष्य थे। इनके द्वारा रचित इलापुत्र रास (सं. 1676) उल्लेखनीय कृति है। इनके अतिरिक्त कविवर लब्धिरत्न, देवरत्न, महिमामेरु, लब्धिराज, कल्याणकलश, पद्मकुमार, कनककीर्ति एव लखपत के नाम उल्लेखनीय हैं।

18वीं शताब्दी :—

सतरहवी शती राजस्थानी साहित्य का उत्कर्ष काल था। उसका प्रभाव 18वीं के पूर्वार्द्ध तक रहा, फलत पूर्वार्द्ध मे कई विशिष्ट विद्वानो एव सुकवियो के दर्शन होते है जिनमे से कुछ का जन्म 17वी मे और कुछ कवियो का जन्म 17वी के अन्त मे हुआ है। ऐसे विद्वानों मे तपागच्छ मे उ मेघविजय, विनयविजय, यशोविजय एव खरतरगच्छ मे धर्मवर्द्धन, जिनहर्ष, योगीराज आनदघन, लक्ष्मीवल्लभ, जिनसमुद्रसूरि एव उत्तरार्द्ध मे श्रीमद्देवचन्द्र विशेष रूप से उल्लेख योग्य है। इनमे से मेघविजय का विहार तो राजस्थान मे रहा पर उनकी काव्यादि रचनाएं सस्कृत मे ही अधिक हैं। व्याकरण, काव्य, ज्योतिष, सामुद्रिक, मत्र, छद, न्याय आदि के आप प्रकाण्ड विद्वान थे। यशोविजय, विनयविजय का विहार गुजरात मे ही अधिक है। इनकी सस्कृत के साथ लोकभाषा की भी प्रचुर रचनाये प्राप्त है पर उनकी भाषा गुजराती है। जिनहर्ष एव देवचन्द्र दो ऐसे विद्वान है जिनका उत्तरकाल (जीवन) गुजरात मे बीता। अत आपकी पूर्ववर्ती रचनाए राजस्थानी मे और परवर्ती रचनाये गुजराती भाषा मे पाई जाती हैं।

इस शती के दो जैन कवियो ने मातृभाषा की अनुपम सेवा की है। इनकी समस्त रचनायें लोकभाषा की ही हैं और उनका समग्र परिमाण लाख श्लोको के बराबर है। वे हैं—जिनहर्ष और जिनसमुद्र सूरि। वैसे जयरग, सुमतिरग, धर्ममन्दिर, लब्धोदय, अभयसोम, लाभवर्द्धन, कुशलधीर, अमरविजय, विनयचन्द्र, आनन्दघन, लक्ष्मीवल्लभ, अमरविजय आदि पचासो कवियो ने राजस्थानी साहित्य के भण्डार को भरा है।

कविवर जिनहर्ष —

आपका नाम जसराज था और दीक्षित अवस्था का नाम जिनहर्ष है। आपकी गुरु परम्परा खरतरगच्छ के प्रकट प्रभावी दादा श्री जिनकुशलसूरि के प्रशिष्य क्षेमकीर्ति क्षेम शाखा से संबंधित है एव परवर्ती परम्परा मे बीकानेर के श्री पूज्य जिनविजयेन्द्र सूरि एक दशक पूर्व विद्यमान थे। आपकी सर्वप्रथम रचना स 1704 की उपलब्ध होने से जन्म स. 1675 के लगभग होना सम्भव है। दीक्षा जिनराजसूरि के हाथ से स 1690 के लगभग हुई होगी। आपका जन्म तो मारवाड मे ही होना सुनिश्चित है, क्योकि स. 1704 से 1735 तक की रचनायें भी आपकी मारवाड प्रदेश मे ही रचित है। आपके बड़े-बडे ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है :—

चन्दनमलयागिरी चौ., स 1704; विद्याविलास रास, स 1711 सरसा; मंगलकलश चौ., सं. 1714, मत्स्योदर रास, सं 1718 बाहडमेर; शीलनववाड सम्यक्, सं. 1729; नंदबहुत्तरी, स. 1714; गजसुकुमाल चौ, सं. 1714; जिनप्रतिमा हुण्डी रास, सं. 1725; कुसुमश्री रास, सं. 1719, मृगापुत्र चौ., स. 1714 सत्यपुर; मातृका बावनी, सं. 1730, ज्ञातासूत्र सज्झाय, सं. 1736 पाटण; समकित सतरी, सं. 1736; सुकराज रास, सं. 1736 पाटण;

श्रीपाल रास, सं. 1740; सुकुमाल रास ..., रत्नसिंह रास, सं. 1741; श्रीपाल रास संक्षिप्त सं. 1742; अवंती सं ..., स 1741 राजनगर, उत्तमकुमार रास सं. 1745 पाटण; कुमारपाल रास .. 1742 पाटण, अमरदत्त मित्रानन्द रास स 1749 पाटण, चन्दन मलयागिरी चौपाई सं. 1744 पाटण, हरिश्चन्द्र रास स. 1744 पाटण, हरिबलमच्छी रास स. 174 ; सुदर्शन सेठ रास स 1749/अजितसेन कनकावती रास स 1751; गुणावली रास स 1751, महाबल मलयासुन्दरी रास सं 1751, शत्रुंजय महात्म्य रास स 1755; सत्यविजय निर्वाण रास स 1756, रत्नचूड रास स 175;, अभयकुमार रास स 1758, रात्रिभोजन रास सं. 1758; रत्नसार रास स 1759, वयरस्वामी रास स 1759 पाटण. जम्बूस्वामी रास स 1760 पाटण रात्रिभद्र सज्झाय स 1760 पाटण, नर्मदा ... स 1710 पाटण; आरामशोभा रास स 1761 पाटण, वसुदेव रास स 1762 ... स. 1738 पाटण, मेघकुमार चौढालिया पाटण; यशोधर रास स 1747 पा.., श्रीमती रास सं 1761 पाटण; कनकावती रास, उपमिति भवप्रपचारास स 1745, ऋषिदत्त रास सं 1749 पाटण, शीलवती रास स 1758 रत्नेश्वर रत्नावती रास स 175.; चौबीसी (हिन्दी) सं. 1738, वीशी स 1745, दस वैकालिक दस गीत स. 1737, दोहा संग्रह, चौबोली कथा आदि, विविध स्तवन सज्झाय आदि, गजसिंह चरित्त चौ स 1708, उपदेश छत्तीसी सवैया (हिन्दी) स 1713, सवैया 39, वीसी स 1727, गाथा 144, आहार दोष छत्तीसी स 17 7, गाथा 36, वैराग्य छत्तीसी स 1727, गाथा 36, आदिनाथ स्तवन स 1738, सम्मेतसिखर यात्रा स्तवन स 1744, अमरसेन वयरसेन रास स 1744; दीवाली कल्पबालावबोध, स 1751; शत्रुंजय यात्रास्तवन स 1758, कलावती रास स 1759, पूजा पचाशिका बालावबोध स 1703 नेमि चरित्र (शीलोपदेशमाला-शीलतरगिक बोध)।

जिनसमुद्रसूरि —

आपका जन्म श्री श्रीमाल जातीय शाह हरराज की भार्या लखमादवी की कुक्षि से हुआ। आपका जन्म स्थान एवं संवत् अभी तक अज्ञात है। जैसलमेर भण्डार की एक पट्टावली मे लिखा है, कि आपने 31 वर्ष साधु पद पाला, और स .713 मे आचार्य पद प्राप्त किया। आपके गुरु श्री जिनचन्द्रसूरि थे। आपकी साधु अवस्था का नाम महिमसमुद्र था जो कि आपकी अनेक रचनाओं मे पाया जाता है। आपकी रचनाओं मे पता चलता है कि आपका विहार जैसलमेर के निकटवर्ती सिन्ध प्रान्त एव जोधपुर राज्य मे ही विशेष तौर से हुआ था। स. 1713 मे बेगड गच्छ के आचार्य जिनचन्द्रसूरि का स्वर्गवास होने पर आपको इनके पट्टधर के रूप मे आचार्य पद प्राप्त हुआ। स 1741 की कार्तिक सुदी 15 को वर्द्धनपुर मे आप स्वर्ग सिधारे।

आपकी सर्वप्रथम रचना नेमिनाथ फाग स 1697 की रचना है तथा अन्तिम कृति सर्वार्थसिद्धि मणिमाला है जो सवत् 1740 मे पूर्ण हुई थी। इसके अतिरिक्त 25 रचनायें और है जिनमे वसुदेव चौपई, ऋषिदत्ता चौपई, रुक्मणि चरित्र, गुणसुन्दर चौपई, प्रवचन रचनावेलि, मनोरथमाला बावनी के नाम उल्लेखनीय है।

महोपाध्याय लब्धोदय:—

ये जिनमाणिक्यसूरि शाखा के विद्वान् एव जिनरगसूरि की गद्दी के आज्ञावर्ती थे। कवि की प्रथम रचना पद्मिनी चरित्र चौपई की रचना संवत् 1706 उदयपुर में हुई थी। इसके बाद की सभी रचनाये उदयपुर, गोगुन्दा, एव धुलेवा मे रचित है। कवि की अन्य उपलब्ध रचनाओं में रत्नचूड मणिचूड चौपई, मलयसुन्दरी चौपई, गुणावली चौपई है। सभी रचनायें भाषा एवं साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। कवि अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान् सन्त थे।

जयरंग (जैतसी):—

आपका जन्म नाम जैतसी व दीक्षा का नाम जयरंग था। संवत् 1700 से 1739 तक की आपकी रचनायें मिलती हैं। उनमें अमरसेन वयरसैन चौपई, दशवैकालिक गीत (1707), कयवन्नारास (1721) आदि के नाम प्रमुख हैं।

योगीराज आनन्दघन—

आपका मूल नाम लाभानन्द था। आनन्दघन की रचनाये अनुभूति प्रधान हैं। ये मेड़ते में काफी रहे थे। आपके अधिकाश पद आध्यात्मिक परक हैं। उक्त कवियो के अतिरिक्त अभयसोम, महिमोदय, सुमतिरंग, लाभवर्द्धन, राजलाभ, धर्ममन्दिर, उपाध्याय लक्ष्मीवल्लभ, कमलहर्ष, महोपाध्याय धर्मवर्द्धन, कुशलधीर, यशोवर्द्धन, विनयचन्द्र के नाम उल्लेखनीय है। कुछ कवियो का सक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है:—

लब्धिविजय के शिष्य महिमोदय ने संवत् 1722 मे श्रीपाल रास की रचना की। सुकवि सुमतिरंग ने कितने ही आध्यात्मिक ग्रथो का राजस्थानी मे अनुवाद किया। आपकी प्रमुख रचनाओं मे ज्ञानकला चौपई, योगशास्त्र चौपई, हरिकेसी सधि, चौबीमजिन सवैय्या आदि उल्लेखनीय है।

लाभवर्द्धन कविवर जिनहर्ष के गुरुभ्राता थे। जन्म नाम बालचन्द था। आप अच्छे कवि थे। अब तक इनकी 11 रचनायें प्राप्त हो चुकी है। जिनमे लीलावती रास (स 1728) विक्रम पचदण्ड चौपई (स 1733), धर्मबुद्धि पापबुद्धि चौपई आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन्ही के समान कविवर राजलाभ, धर्ममन्दिर, उपाध्याय लक्ष्मीवल्लभ की साहित्यक सेवाये उल्लेखनीय है।

महोपाध्याय धर्मवर्द्धन राजस्थानी भाषा के उत्कृष्ट कवियो मे से है। जन्म नाम धर्मसी था। आप राजमान्य कवि थे। महाराजा सुजाणसिह के दिये पत्रो में आपको सादर वदना लिखी है। श्रेणिक चौपई (1719), अमरसेन वयरसैन चौपई (1724), सुरसुन्दरी रास (1736), शील राम आदि आपकी उल्लेखनीय रचनाये है। कुशलधीर वाचक कल्याणलाभ के शिष्य थे। कवि के साथ भाषा टीकाकार भी थे। स 1696 मे कृष्ण-बेलि का बालावबोध भावसिंह के आग्रह से लिखा था। शीलवती रास (1722), लीलावती रास (1728), भोज चौपई आदि आपकी प्रमुख रचनाये हैं।

यशोवर्द्धन रत्नवल्लभ के शिष्य थे। इनके रत्नहास रास, चन्दनमलयगिरी रास, जम्बूस्वामी रास एव विद्याविलास रास प्राप्त होते हैं। कविवर विनयचन्द्र महोपाध्याय समय-सुन्दर की परम्परा मे ज्ञानतिलक के शिष्य थे। आपकी उत्तमकुमार रास, बीसी, चौबीसी, एवं एकादस अग सज्झाय (1755) तथा शत्रुजय रास (1755) रचनाये मिलती हैं। इसी तरह लक्ष्मीविनय, श्रीमद् देवचन्द्र एव अमरविजय भी राजस्थानी भाषा के अच्छे कवि थे। अमर विजय की अब तक 25 रचनायें प्राप्त हो चुकी है। जिनमे भावपच्चीसी (1761), मेघकुमार चौढालिया (1774), सुकुमाल चोपई, सुदर्शन चौपई, अक्षरबत्तीसी, उपदेश बत्तीसी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

रामविजय दयासिंह के शिष्य थे। आपका जन्म नाम रूपचन्द था। आपकी गद्य-पद्य दोनो में रचनाये मिलती हैं। राजस्थानी पद्य रचनाओ मे चित्रसेन पद्मावती चौपई, नेमि-नाथरासो, ओसवाल रास, आबू स्तवन आदि के नाम प्रमुख रूप से लिये जा सकते हैं।

सुकवि रघपति खरतरगच्छाचार्य जिनसुखसूरि के शिष्य विद्यानिधान के शिष्य थे। आपकी समस्त रचनायें राजस्थानी भाषा मे हैं। संवत् 1788 से 1848 तक आपका साहित्य निर्माण काल है। नंदिषेण चौपई, श्रीपाल चौपई, रत्नपाल चौपई, सुभद्रा चौपई, छप्पय, बावनी, उपदेश बत्तीसी एव उपदेश रसाल बत्तीसी के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस शताब्दी के अन्य कवियो में भुवनसेन (1701), सुमतिवल्लभ (1720), श्रीसोम (1725), कनकनिधान, मतिकुशल (1722), रामचन्द्र (1711), विनयलाभ (1748), कुशलसागर, (1736), जिनरत्नसूरि (1700-11), क्षेमहर्ष (1704), राजहर्ष, राजसार, दयासार, जिनसुन्दरसूरि, जिनरंगसूरि (1731), लब्धिसागर (1770), जिनवर्द्धनसूरि (1710), जयसोम (1703), विद्यारुचि और लब्धिरुचि, मानसागर (1724-59), उदयविजय, सुखसागर, जैसे पचासो कवि हुये जिन्होने राजस्थानी भाषा की अपूर्व सेवा की।

19 वी शताब्दी —

17वी शताब्दी के स्वर्णयुग की साहित्य धारा 18वी शताब्दी तक ठीक से चलती रहने पर 19वी शताब्दी मे उसकी गति मन्द पड गई। यद्यपि 5-7 कवि इस शताब्दी मे भी महत्वपूर्ण हुये है पर इन्हे परवर्ती कवियो की टक्कर में नही रखा जा सकता। रचनाओं की विशालता, विविधता और गुणवत्ता सभी दृष्टियो से 19वी शताब्दी को अवनत काल कहा जा सकता है। इस शताब्दि में होने वाले प्रमुख, कवियो मे आलमचन्द, रत्नविमल, ज्ञानसार, लाभचन्द, उपाध्याय क्षमाकल्याण, मतिलाभ, खुश्यालचन्द, उदयकमल, गुणकमल, चारित्रसुन्दर, जिनलाभसूरि, शिवचन्द्र, अमरसिन्धुर, सत्यरत्न, उदयरत्न, गुमानचन्द्र, जयरग, तत्वकुमार, गिरधरलाल, जगन्नाथ, क्षमाप्रमोद, जयचन्द, हेमविलास, ज्ञानकीर्ति, दयामेरु, अगरचन्द्र, विनयसागर के नाम उल्लेखनीय है।

राजस्थानी कवि 3

—डा. नरेन्द्र भानावत,

—डा (श्रीमती) शान्ता भानावत

विश्व के इतिहास में 15-16वी शताब्दी वैचारिक क्रान्ति और आचारगत पवित्रता की शताब्दी रही है। यूरोप मे पोपवाद के विरुद्ध मार्टिन लूथर ने क्रान्ति का शखनाद किया। भारत मे पजाब मे गुरुनानक, मध्यप्रदेश मे सत कबीर और दक्षिण मे नामदेव आदि ने धार्मिक आडम्बर, बाह्याचार, जडपूजा आदि के विरुद्ध आवाज बुलन्द कर जनमानस को शुद्ध सात्विक आन्तरिक धर्मसाधना की ओर प्रेरित किया। इसी कड़ी मे महान् क्रान्तिकारी वीर लोकाशाह हुये जिन्होने जैन धर्म मे प्रचलित रूढिवादिता तथा जड़ता का उन्मूलन कर साध्वाचार की मर्यादा और संयम की कठोरता पर बल देते हुये गुणपूजा की प्रतिष्ठा की। लोकाशाह द्वारा किये गये प्रयत्नो की इसी पृष्ठभूमि मे स्थानकवासी परम्परा का उद्‌भव, विकास और प्रसार हुआ।

लोंकाशाह के जन्मस्थान, समय और माता-पिता आदि के नाम के सबध मे विभिन्न मत है पर सामान्यत यह माना जाता है कि उनका जन्म सवत् 1472 की कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को अरहटवाडा मे हुआ। इनके पिता का नाम हेमा भाई और माता का गगा बाई था। अहमदाबाद मे इन्होने अपना रत्न-व्यवसाय आरम्भ किया और थोडे ही समय मे अपनी प्रामाणिकता, श्रमशीलता और दूरदर्शिता से इस क्षेत्र मे चमक उठे। गुजरात के तत्कालीन बादशाह मुहम्मद ने इनकी कार्य कुशलता और विवेकशीलता से प्रभावित होकर इन्हे खजाची बना लिया। इतना सब कुछ होते हुये भी लोंकाशाह वैभव और ऐश्वर्य मे नही उलझे। व प्रारम्भ से ही तत्व-शोधक थे। शास्त्रों के [illegible] [illegible]गमन और प्रतिलेखन से उनके ज्ञानचक्षु खुल गये और समाज मे व्याप्त शिथिलता [illegible] मे वर्णित आचरण का अभाव देख इन्हे बड़ा आघात पहुचा। इन्होने तप, [illegible] [illegible] द्वारा आत्मशुद्धि के शाश्वत सत्य को उद्‌घोषित करने का दृढ सकल्प कर लिया। [illegible] घोर विरोध और विपाक्त वातावरण मे भी इन्होंने अपनी विचार धारा का खुल कर प्रचार किया। इनके उपदेशो से प्रभावित होकर लखमसी, भाणजी, नूनजी आदि लोगो ने इनका साथ दिया। इस प्रकार लोकाशाह के माध्यम से धार्मिक जगत में महान् क्रान्ति का सूत्रपात हुआ।[1]

लोकागच्छ की परम्परा का राजस्थान में भी खूब प्रचार हुआ। जालोर, सिरोही, नागौर, बीकानेर और जैतारण में लोकागच्छ की गद्दिया प्रतिष्ठापित हो गई। कालान्तर में लोंकाशाह के 100 वर्षों बाद यह गच्छ मुख्यत तीन शाखाओं में बट गया—गुजराती लोका, नागौरी लोका, और लाहोरी उत्तरार्धी लोका तथा धीरे-धीरे धार्मिक क्रान्ति की ज्योति मद पड़ने लगी। क्रिया मे शिथिलता आने के कारण परिग्रह का प्रादुर्भाव होने लगा। फलत: क्रान्ति शिखा को पुन. प्रज्वलित करने के लिये कुछ आत्मार्थी साधक क्रियोद्धारक के रूप मे सामने आये। इनमें मुख्य थे पूज्य श्री जीवराज जी, धर्मसिंह जी, लवजी, धर्मदासजी और

1. देखिये—धर्मवीर लोकाशाह : मरुधर केसरी श्री मिश्रीमलजी म.।

हरिदास जी महाराज। राजस्थान मे जिस स्थानकवासी परम्परा का विकास हुआ है, वह इन्हीं महान् क्रियोद्धारक महापुरुषों से संबद्ध है।[1]

लोंकागच्छ और स्थानकवासी परम्परा का राजस्थान के धार्मिक जीवन, सामाजिक जागरण और साहित्यक विकास मे महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस परम्परा में शताधिक कवि और शास्त्रज्ञ हुये है जिन्होने अपने उपदेशो और साधनामय जीवन से लोक मानस को उपकृत किया है। पर यह खेद का विषय है कि इनकी साहित्यिक निधि का अभी तक समुचित मूल्यांकन नही हो पाया है। इसका मुख्य कारण यह रहा है कि इनका कृतित्व हस्तलिखित प्रतियों के रूप मे यत्र-तत्र बिखरा पडा है और उनके व्यवस्थित संग्रह-सरक्षण की दिशा मे ठोस प्रयत्न वर्षों तक नही किया गया। अब आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज साहब की प्रेरणा से आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, लाल भवन, जयपुर में इस परम्परा के साहित्य का विशाल संग्रह किया गया है। इस दिशा मे मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमलजी म सा एव मुनि श्री मिश्रीमलजी 'मधुकर' ने भी विशेष प्रेरणा दी है। संग्रहीत ग्रन्थों के विषयवार सूचीकरण का कार्य अब भी नहीं हुआ है। इसके अभाव मे शोधकर्ताओं को भारी दिक्कत का सामना करना पड़ता है। इस दिशा मे आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार ग्रन्थ सूची भाग–1 का प्रकाशन[2] महत्वपूर्ण कदम है जिसमे 3710 रचनाओ का विवरण प्रकाशित किया गया है। ऐसे सूचीपत्र कई भागों में प्रकाशित होने पर ही यह साहित्य शोधार्थियों के सम्मुख आ सकता है और तभी इसका समुचित मूल्याकन सभव है।

स्थानकवासी परम्परा की मुख्य बाईस शाखाये होने से यह 'बाइस टोला' के नाम से भी प्रसिद्ध है। सभी शाखाओं का न्यूनाधिक रूप से साहित्यिक विकास मे योगदान रहा है। पर केन्द्रीय सस्थान के अभाव मे सभी शाखाओ की बिखरी हुई साहित्यिक सम्पदा से साक्षात्कार करना सभव नही है। प्रयत्न करने पर हमे जो जानकारी प्राप्त हो सकी उसी के आधार पर यह निबन्ध प्रस्तुत किया जा रहा है। इस बात की पूरी सभावना है कि इसमें कई कवियो के नाम छूट गये हो।

साहित्य के विकास मे जैन मुनियो के साथ-साथ साध्वियों और उनके अनुयायी श्रावकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है और इनकी सख्या सैकडो मे है। लोंकागच्छ की परम्परा के कवियो मे जसवतजी, रूपऋषि, गणि तेजसिह जी, केशवजी आदि प्रमुख है।[3]

यहा प्रमुख कवियों का परिचय संत कवि, श्रावक कवि और साध्वी कवयित्रियों के क्रम से प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

1. देखिये—(अ) पट्टावली प्रबन्ध संग्रह सं. आचार्य श्री हस्तीमलजी म.।
   (ब) जैन आचार्य चरितावली : आचार्य श्री हस्तीमलजी म.।

2. सम्पादक—डा. नरेन्द्र भानावत।

3. इस संबंध में "मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रंथ" में प्रकाशित मुनि कांति सागरजी का लेख "लोंकाशाह की परम्परा और उसका अज्ञात साहित्य," पृ. 214-253 तथा श्री आलमशाह खान का लेख 'लोंकागच्छ की साहित्य सेवा' पृ. 201-213 विशेष द्रष्टव्य हैं।

(अ) संत कवि

1. जयमल्ल:—

संत कवि आचार्य श्री जयमल्ल जी का स्थानकवासी परम्परा के कवियों में विशिष्ट स्थान है। इनका जन्म संवत् 1765, भादवा सुदी 13 को लांबिया (जोधपुर) नामक गांव में हुआ इनके पिता का नाम मोहन लाल जी समदड़िया तथा माता का नाम महिमादेवी था। संवत् 1788 में इन्होंने आचार्य श्री भूधर जी म सा. के पास दीक्षा व्रत अंगीकार किया। ये साधना में वज्र की तरह कठोर थे। श्रमण जीवन में प्रवेश करते ही एकान्तर (एक दिन उपवास, एक दिन आहार) तप करने लगे। यह तपाराधना 16 वर्ष तक निरन्तर चलती रही। अपने गुरु के प्रति इनकी असीम श्रद्धा थी। भूधर जी के स्वर्ग सिधारने पर इन्होंने कभी न लेटने की प्रतिज्ञा की थी फल स्वरूप 50 वर्ष (जीवन पर्यन्त) तक ये लेट कर न सोये। संवत् 1853 की वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को नागौर में इनका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य जयमल्ल जी अपने समय के महान् आचार्य और प्रभावशाली कवि थे। सामान्य जनता से लेकर राजवर्ग तक इनका सम्पर्क था। जोधपुर नरेश अभयसिंह जी, बीकानेर नरेश गजसिंह जी, उदयपुर के महाराणा रायसिंह जी (द्वितीय) के अतिरिक्त जयपुर और जैसलमेर के तत्कालीन नरेश भी इनका बडा सम्मान करते थे। पोकरण के ठाकुर देवी सिंह जी चापावत, देवगढ के जसवतराय, देलवाडा के राव रघु आदि कितने ही सरदार इनके उपदेश सुनकर धर्मानुरागी बने और आखेट चर्या न करने की प्रतिज्ञा की। 'सूरज प्रकाश' के रचियता यशस्वी कवि करणीदान भी इनके सम्पर्क में आये थे।

मुनि श्री मिश्रीलाल जी 'मधुकर' ने बडे परिश्रम से इनकी यत्र-तत्र बिखरी हुई रचनाओं का 'जयवाणी'[1] नाम से सकलन किया है। इस संकलन में इनकी 71 रचनाये सकलित है। इन समस्त रचनाओ को विषय की दृष्टि से चार खण्डो में विभक्त किया गया है—स्तुति, सज्झाय, उपदेशी पद और चरित्र। इन सकलित रचनाओ के अतिरिक्त भी इनकी और कई रचनायें विभिन्न भण्डारो मे सुरक्षित है। हमारी दृष्टि में जो नई रचनायें है उनमें से कुछेक के नाम इस प्रकार है।[2]

1. चन्दनबाला की सज्झाय
2. मृगलोढ़ा की कथा
3. श्रीमती जी नी ढाल
4. मल्लिनाथ चरित
5. अजना रो रास
6. पाच पाडव चरित
7. कंलकली की ढाल
8. नंदन मनिहार
9. क्रोध की सज्झाय
10. आनन्द श्रावक
11. सोलह सती की सज्झाय व चौपई
12. अजितनाथ स्तवन
13. दुर्लभ मनुष्य जन्म की सज्झाय
14. रावण–विभीषण संवाद
15. इलायची पुत्र को चौढालियो
16. नव तत्व की ढाल
17. नव नियाणा की ढालो
18. दान-शील-तप-भावना सज्झाय
19. मिथ्या उपदेश निषेध सज्झाय
20. लघु साधु वन्दना
21. वज्र पुरन्दर चौढालिया
22. कुंडरीक पुण्डरीक चौढालिया

---

1. प्रकाशक—सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा।
2. इन समस्त रचनाओ की हस्तलिखित प्रतियां आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भंडार, लाल भवन, जयपुर में सुरक्षित हैं।

23. सुरपिता का दोहा
24. रोहिणी
25. भंवड सन्यासी
26. कर्म फल पद।

जयमल्ल जी की रचनाओं का परिमाण काफी विस्तृत है। इनके कवि-व्यक्तित्व में संत कवियो का विद्रोह और भक्त कवियो का समर्पण एक साथ दिखाई पडता है। प्रबन्ध काव्य मे उन्होने तीर्थ करो, सतियों, व्रती श्रावकों आदि को अपना वर्ण्य विषय बनाया है। मुक्तक काव्य में जैन दर्शन के तात्विक सिद्धांतों के साथ-साथ जीवन को उन्नत बनाने वाली व्यावहारिक बातों का सरल, सुबोध ढ़ंग से निरूपण किया गया है।

संस्कृत, प्राकृत के विशिष्ट ज्ञाता होते हुये भी इन्होंने अपनी रचनाये बोलचाल की सरल राजस्थानी भाषा मे ही लिखी हैं।[1]

(२) कुशलो जी —

इनका जन्म सवत् 1767 में सेठों की रीया (मारवाड) मे हुआ। इनके पिता का नाम लाधूराम जी चंगेरिया और माता का कानू बाई था। सवत् 1794 में फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को इन्होने पूज्य आचार्य श्री भूधर जी म. से दीक्षा अंगीकृत की। आचार्य श्री जयमल्ल जी म. इनके बडे गुरु भाई थे। सवत् 1840 ज्येष्ठ कृष्णा छठ को इनका स्वर्गवास हुआ। आप अपने समय के प्रभावशाली सत थे। पूज्य रत्नचन्द्र जी म की परम्परा के ये मूल स्तम्भ माने जाते है। शास्त्रज्ञ विद्वान् होने के साथ-साथ ये कवि भी थे। इनकी रचनाये ज्ञान भण्डारों मे बिखरी पडी है। जिन रचनाओ की जानकारी मिली है उनमे स्तवन और उपदेशी पदों के अतिरिक्त 'राजमती सज्झाय', साधुगण की सज्झाय, दशारण भद्र को चौढालियो, धन्ना जी ढाल, नेमनाथ जी का सिलोका, विजय सेठ,-विजया सेठानी की सज्झाय, सीता जी की आलोयणा आदि मुख्य हैं।[2]

(३) रायचन्द —

इनका जन्म संवत् 1796 की आश्विन शुक्ला एकादशी को जोधपुर में हुआ। इनके पिता का नाम विजयचन्दजी धाडीवाल तथा माता का नाम नन्दा देवी था। सवत् 1814 की आषाढ शुक्ला एकादशी को पीपाड शहर में इन्होने आचार्य श्री जयमल्ल जी से दीक्षा व्रत अंगीकार किया। 65 वर्ष की आयु मे सवत् 1861 की चैत्र शुक्ला द्वितीया को रोहिट गाव में इनका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य श्री रायचन्द जी अपने समय के प्रख्यात कवि और प्रभावशाली आचार्य थे। इनकी वाणी में माधुर्य और व्यक्तित्व में आकर्षण था। जो भी इनके सम्पर्क मे आता, इनका अपना बन जाता। सफल कवि, मधुर व्याख्याता होने के साथ-साथ ये प्रखर चर्चावादी भी थे। इन्होंने रीतिकालीन उद्दाम वासनात्मक श्रृंगारधारा को भक्तिकालीन प्रशात साधनात्मक प्रेम धारा की ओर मोड़ा। इनकी दो सौ से अधिक रचनायें उपलब्ध है। प्रमुख रचनाओ के नाम

---

1. इनके जीवन और कवित्व के संबंध में विस्तृत जानकारी के लिये देखिये:—
   (अ) सन्त कवि आचार्य श्री जयमल्ल : व्यक्तित्व और कृतित्व—श्रीमती उषा बाफना।
   (ब) मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रंथ में प्रकाशित डा. नरेन्द्र भानावत का लेख 'संत कवि आचार्य श्री जयमल्ल : व्यक्तित्व और कृतित्व', पृ. 137-155।
2. इनकी हस्तलिखित प्रतियां अ. वि. ज्ञा. भ. जयपुर में सुरक्षित हैं।

है—आठ कर्मों की चौपाई, जम्बू स्वामी की सज्झाय, नन्दन मणिहार की चौपाई, मल्लिनाथ जी की चौपाई, महावीर जी को चौढालियो, कमलावती की ढाल, एवन्ता ऋषि की ढाल, गौतम-स्वामी को रास, आषाढ़ भूति मुनि को पंचढालियो, सती नरमदा की चौपाई, करकंडु की चौपाई, देवकी राणी की ढाल, मेतारज मुनि चरित्र रायनमि का पंचढालिया, राजा श्रेणिक रो चौढ लियों, सालिभद्र को पट्ढालियो, महासती चेलना की ढाल, श्रेयास कुमार की ढाल, कलावती की चौपाई, चन्दनबाला की ढाल आदि ।[1]

इन रचनाओं के अतिरिक्त इन्होंने पच्चीसी संज्ञक कई रचनाये लिखी । [2] इनमें संबद्ध विषय के गुणावगुणों की चर्चा करते हुये आत्मा को निर्मल बनाने की प्रेरणा दी गई है । इन रचनाओं में मुख्य हैं वय पच्चीसी, जोबन पच्चीसी, चित्त समाधि पच्चीनी, ज्ञान पच्चीसी, चेतन पच्चीसी, दीक्षा पच्चीसी, कोध पच्चीसी, माया पच्चीसी, लोभ पच्चीसी, निन्दक पच्चीसी आदि।

परिमाण की दृष्टि से रायचन्द जी की सार्वाधिक रचनायें प्राप्त हुई हैं । विषय की दृष्टि से एक ओर इन्होंने ऋषभदेव, नेमिनाथ, महावीर आदि तीर्थंकरो, जम्बू स्वामी, गौतम स्वामी, स्थूलिभद्र आदि श्रमणों, तेजपाल, वस्तुपाल आदि श्रेष्ठियो, तथा चदनबाला, नर्मदा, कलावती, पुष्पा चूला आदि सतियो को अपने आख्यान का विषय बनाया है तो दूसरी ओर अपने आराध्य के चरणो में भक्ति भावना से पूर्ण पद लिखते हुये जीवन-व्यवहार मे उपयोगी उपदेश और चेतावनिया दी है । इनका सारा काव्य लोकभूमि पर आश्रित है और उसमे राजस्थान की सांस्कृतिक गरिमा के सरस चित्र मिलते हैं ।

(4) चौथमल —

ये आचार्य श्री रघुनाथ जी म. के शिष्य मुनि श्री अमीचन्द जी के शिष्य थे । इनका जन्म संवत् 1800 मे मेडता के निकट भवाल में हुआ । इनके पिता का नाम रामचन्द्र जी व माता का गुमान बाई था । सवत् 1810 मे माघ से शुक्ला पचमी को इन्होने दीक्षा अंगीकृत की । 70 वर्ष का सयम पालन के बाद संवत् 1880 मे मेडता मे इनका निधन हुआ । ये सुमधुर गायक और कवि थे । इनकी जिन रचनाओं का पता चला है, उनमे मुख्य हैं—जयवन्ती की ढाल, जिनरिख–जिनपाल, सेठ सुदर्शन, नन्दन मणिहार, सनतकुमार चौढालिया, महाभारत ढाल सागर (ढाल सख्या 163), रामायण, श्रीपाल चरित्र, दमघोष चौपाई, जम्बू चरित्र, ऋषि देव ढाल, तामली तापस चरित्र आदि । रामायण और महाभारत की कथा को जैन दृष्टि से पद्यबद्ध कर इन्होंने अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त की।

(5) दुर्गादास.—

इनका जन्म संवत् 1806 मे मारवाड जंक्शन के पास सालटिया गांव हुआ मे । इनके पिता का नाम शिवराज जी और माता का नाम सेणादेवी था । 15 वर्ष की लघु वय में संवत् 1821 मे मेवाड़ के ऊंठाला (अब वल्लभनगर) नामक गांव मे इन्होंने आचार्य कुशलदास जी

1. इस सबध मे 'मरुधर केसरी मुनि श्री मिश्रमल जी म अभिनन्दन ग्रथ' में प्रकाशित पं. मुनि श्री लक्ष्मीचन्द जी म. सा का 'सत कवि रायचन्द जी और उनकी रचनायें' (पृ. 420-429) लेख द्रष्टव्य है ।

2. देखिये—कुमारी स्नेहलता माथुर का 'कवि रायचन्द और उनकी पच्चीसी संज्ञक रचनायें' लघुशोध प्रबन्ध (अप्रकाशित—राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर) । इनकी हस्तलिखित प्रतियां आ बि.ज्ञा. भ. जयपुर में सुरक्षित ।

(कुशलोजी) म के पास दीक्षा अंगीकार की। साधना में ये बड़े दृढ़ व्रती थे। निरन्तर अंतर तप करते थे। पू. गुमानचन्द जी म के क्रियोद्धार में इन्होंने पूरा सहयोग दिया। संवत् 1882 में श्रावण शुक्ला दसमी को जोधपुर में इनका स्वर्गवास हुआ। ये समर्थ कवि थे। स्फुट रूप से पद सज्झाय, ढालें आदि के रूप में इनकी रचनायें प्राप्त होती हैं। इनके पद भावपूर्ण और वैराग्य प्रधान है। प्रमुख रचनाओं के नाम हे—नोकरवारी स्तवन, पार्श्वनाथ स्तवन, जम्बूजी की सज्झाय, महावीर के तेरह अभिग्रह की सज्झाय, गौतम रास, ऋषभ चरित, उपदेशात्मक ढाल, सवैये आदि।[2]

(6) आसकरण.—

इनका जन्म गाव सवत् 1812 मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया को जोधपुर राज्य के तिवरी गाव मे हुआ। इनके पिता का नाम रूपचन्द जी बोथरा तथा माता का गीगादे था। सवत् 1830 की बैशाख कृष्णा पचमी को उन्होंने आचार्य जयमल्ल जी के चरणो मे दीक्षा अगीकृत की। 70 वर्ष की आयु मे सवत् 1882 की कार्तिक कृष्णा पचमी को इनका स्वर्गवास हुआ। आसकरण जी अपने समय के प्रसिद्ध कवि और तपस्वी साधक सत थे। आचार्य रायचन्द जी के बाद सवत् 1868 माघ शुक्ला पूर्णिमा के दिन ये आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुये। अपने गुरु रायचन्दजी के समान ही इनमे काव्य-प्रतिभा थी। इनकी छोटी-बडी अनेक आध्यात्मिक भावपूर्ण रचनायें हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डारो मे बिखरी पडी है। ये रचनायें प्रबन्ध और मुक्तक दोनों रूपो में मिलती हैं। इनकी 'छोटी साधु वदना' रचना का जैन समुदाय मे व्यापक प्रचार है। जिन रचनाओ की जानकारी मिली है उनमे प्रमुख हे–दस श्रावको को ढाल, पुण्यवाणी ऊपर ढाल, केशी गौतम चर्चा ढाल, साधु गुण माला, भरत जी री रिद्धि, नमिराय जी सप्तढालिया, राजमती सज्झाय, पार्श्वनाथ स्तुति, श्री पार्श्वनाथ चरित्र, गजसिंह जी का चौढालिया, श्री धन्ना जी की 7 ढाला, जय घोष विजयघोष का 7 ढाला, श्री तेरा काठिया की ढाल, श्री अठारह नाता को चौढालियो, पूज्य श्री रायचद जी म के गुणो की ढाल।

(7) जीतमल —

ये अमरसिंह जी म की परम्परा के प्रभावशाली आचार्य थे। इनका जन्म सवत् 1826 मे रामपुरा (कोटा) मे हुआ। इनके पिता का नाम सुजानमल जी व माता का सुभद्रा देवी था। सवत् 1834 मे इन्होंने आचार्य सुजानमल जी म सा. के चरणों मे दीक्षा अंगीकृत की। सवत् 1912 की ज्येष्ठ शुक्ला दसमी को जोधपुर मे 78 वर्ष की आयु मे इनका निधन हुआ। ये बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। कवि होने के साथ-साथ ये उच्च कोटि के चित्रकार और सुन्दर लिपिकर्ता भी थे। ये दोनों हाथो से ही नही दोनो पैरो से भी लेखनी थाम कर लिखा करते थे। कहा जाता है कि उन्होने 13000 ग्रथो की प्रतिलिपिया तैयार की। अठाई द्वीप, त्रासनाडी, स्वर्ग, नरक, परदेसी राजा का स्वर्गीय दृश्य आदि चित्र कृतिया इनकी सूक्ष्मकला की प्रतीक है। एक बार तत्कालीन जोधपुर नरेश को कागज के एक छोटे से टुकडे पर 108 हाथियो के चित्र दिखा कर इन्होंने चमत्कृत और प्रभावित किया था। 'अण बिंधिया मोती' इनकी स्फुट कविताओ का सुन्दर सग्रह है जो प्रकाशनाधीन है।[2]

---

1. इन रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियां प्रा. वि ज्ञान भ. जयपुर में सुरक्षित हैं।

2. इसका सम्पादन श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री ने किया है।

(8) सबलदास:—

इनका जन्म संवत् 1828 मे भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को पोकरण में हुआ। इनके पिता का नाम आनन्द राज जी लूणिया और माता का सुन्दर देवी था। इन्होंने 14 वर्ष की अवस्था में संवत् 1842 मे मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीया को बुचकला ग्राम मे आचार्य रायचंद जी से दीक्षा अंगीकृत की। आचार्य आसकरण जी के बाद सवत् 1882 की माघ शुक्ला त्रयोदशी को जोधपुर में ये आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। सवत् 1903 मे बैशाख शुक्ला नवमी को मोजत में इनका स्वर्गवास हुआ। ये अच्छे कवि और मधुर गायक थे। इनकी कई रचनाए ज्ञान भण्डारों मे बिखरी पडी है। प्रमुख रचनाओं के नाम है–आसकरण जी महाराज के गुण, गुरु महिमा स्तवन, जुग मन्दिर स्वामी की सज्झाय, विमलनाथ का स्तवन, कनकरथ राजा नो चरित, खदक जी की लावणी, तामली तापस की चौपई, त्रिलोक सुन्दरी नी ढाल, धन्ना जी री चौपी, शंख पोरवली को चरित, उपदेशी ढाल, साधु कर्तव्य की ढाल आदि।[1]

(9) रत्नचन्द्र —

इनका जन्म सवत् 1834 मे बैशाख शुक्ला पचमी को जोधपुर राज्य के कुड नामक गाव मे हुआ। इनके पिता का नाम लालचन्द जी और माता का हीरा देवी था। सवत् 1848 में पूज्य गुमानचन्द जी म सा के नेश्राय मे इन्होंने दीक्षा अगीकृत की। आप बडे प्रभावी सत थे और साध्वाचार की पवित्रता पर विशेष बल देते थे। जोधपुर नरेश मानसिह जी इनकी विद्वता और काव्यशक्ति से अत्यन्त प्रभावित थे। जोधपुर के राजगुरु कवि लाडूनाथ जी भी इनके सम्पर्क मे आये थे और वे इनके साधनानिष्ठ कवि-जीवन से विशेष प्रभावित थे। जोधपुर के दीवान लक्ष्मीचन्द जी मूथा इनके अनन्य भक्तो मे से थे। सवत् 1902 मे जोधपुर मे इनका स्वर्गवास हुआ। इन्होंने छोटी-बडी अनेक रचनाए लिखी हैं। इनकी रचनाओं का एक सग्रह 'श्री रत्नचन्द्र पद मुक्तावली' नाम से प्रकाशित हुआ है।[2] सगृहीत रचनाओ को तीन भागो मे बाटा गया है–स्तुति, उपदेश और धर्मकथा। स्तुतिपरक पद्यों मे तीर्थंकरो, गणधरों, विरहमानो, तथा अन्य साधक पुरुषो की स्तुति की गई है। औपदेशिक भाग मे पुण्य-पाप, आत्मा–परमात्मा, बध-मोक्षादि भावो का सुन्दर चित्रण किया गया है। धर्म कथा खड मे जीवन को उदात्त बनाने वाली पद्यात्मक कथाए हैं। इनके औपदेशिक पद अत्यन्त ही भावपूर्ण और मर्मस्पर्शी हैं।

(10) रत्नचन्द्र .—

ये रत्नचन्द्र आचार्य मनोहरदासजी की परम्परा से सबद्ध हैं। इनका जन्म सवत् 1850 भाद्रपद कृष्णा चतुर्दशी को तातीजा (जयपुर) नामक गाव मे हुआ। इनके पिता का नाम चौधरी गगाराम जी व माता का सरूपादेवी था। संवत् 1862 भाद्रपद शुक्ला छठ को नारनौल (पटियाला) मे श्री मुनि श्री हरजीमल जी के पास ये दीक्षित हुए। सवत् 1921 मे बैशाख शुक्ला पूर्णिमा को आगरा मे इनका स्वर्गवास हुआ। ये बड़े तार्किक, महान् शास्त्राभ्यासी और गंभीर विद्वान तथा कवि होने पर भी पद लोलुपता से निर्लिप्त और विनम्रता की प्रतिमूर्ति थे। इनका गद्य और पद्य दोनो पर स[illegible] अधिकार था। पद्य रूप मे इन्होने 'जिन स्तुति' 'सती स्तवन', 'ससारवैराग्य', 'बारह भावना [illegible]ग्रासा' हैं आदि पर आध्यात्मिक पद लिखे

---

1. इनकी हस्तलिखित प्रतिया आ. वि. ज्ञा. भ. जयपुर मे सुरक्षित हैं।

2. सम्पादक–पं. मुनि श्री लक्ष्मीचन्द जी म., प्रकाशक–सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल, जयपुर।

हैं जो बड़े ही भावपूर्ण हैं। इनका प्रकाशन 'रत्नज्योति' 1 नाम से दो भागों में हुआ है। पदों के अतिरिक्त इन्होंने चरित काव्य भी लिखे हैं जिनमें सुखानन्द मनोरमा चरित्र विस्तृत है, अन्य चरित काव्यो मे सगर चरित, और इलायची चरित' प्रकाशित हो चुके हैं। इन चरितों में विभिन्न छदों और राग-रागिनियो का प्रयोग किया गया है।2

(11) कनीराम :—

इनका जन्म सवत् 1859 मे माघ शुक्ला एकादशी को खिवसर (जोधपुर) में हुआ। इनके पिता का नाम किसनदास जी पूणोत तथा माता का राऊदेवी था। सवत् 1870 में पौष कृष्णा त्रयोदशी को पूज्य दुर्गादासजी म. के शिष्य मुनि श्री दलीचन्द जी से इन्होंने दीक्षा अंगीकृत की। सवत् 1936 मे माघ शुक्ला पचमी को पीपाड मे इनका स्वर्गवास हुआ। ये अत्यन्त सेवा भावी और चर्चावादी सत थे। नागौर, अजमेर, कालू, पाली, पीपाड तथा पंजाब प्रदेश में इन्होंने कई तात्विक चर्चाओ मे भाग लिया। अपने मत की पुष्टि करते समय ये नैतिक मर्यादाओं का पूरा ध्यान रखते थे। चर्चावादी होने के कारण ये 'वादीभ केसरी' नाम से प्रसिद्ध थे। इनके औपदेशिक पद तात्विक होते हुए भी बड़े भावप्रवण हैं। अन्य प्रमुख रचनाए हैं जम्बूकुमार की सज्झाय, तुंगिया के श्रावक की सज्झाय, पडिमा छत्तीसी, सिद्धान्तसार, ब्रह्मविलास (इसमे 87 ढाले हैं) आदि।[3]

(12) विनयचन्द्र —

इनका जन्म सवत् 1897 मे आसोज शुक्ला चतुर्दशी को फलौदी (मारवाड) मे हुआ। इनके पिता का नाम प्रतापमल जी पुगलिया तथा माता का रमाजी था। 16 वर्ष की अवस्था मे सवत् 1912 मे मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया को अपने लघु भ्राता श्री कस्तूरचन्दजी के साथ ये पूज्य कजोडमलजी म के पास दीक्षित हुए। सवत् 1937 मे ज्येष्ठ कृष्णा पचमी को अजमेर मे ये आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुये। नेत्र ज्योति क्षीण हो जाने से सवत् 1959 से जयपुर में इनका स्थिरवास रहा। सवत् 1972 मे मार्गशीर्ष कृष्णा द्वादशी को 75 वर्ष की आयु मे जयपुर मे ही इनका स्वर्गवास हुआ। जयपुर मे स्थित आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार इन्ही के नाम पर है। ये बडे शात स्वभावी, वात्सल्य प्रेमी, उदार हृदय और विद्वान् कवि थे। इनके पद बडे हृदयस्पर्शी और भावपूर्ण हैं। प्रमुख रचनाये है—मुनि अनाथी री सज्झाय, रतनचन्द्र जी म का गण, अजना सती को राम, गौतम रास, धन्ना जी की सज्झाय, नदराय चरित, नेम जी को व्यावलो, मेणरेहा कथा, सुभद्रा सती की चोपाई, उपदेशी सज्झाय, होली रो चौढालियो, नेमनाथ राजमती बारहमासियो आदि।[4]

(13) लालचन्द —

इनका जन्म कातरदा (कोटा) नामक गाव मे हुआ। ये कोटा-परम्परा के आचार्य श्री दौलतराम जी म के शिष्य थे। ये कुशल चित्रकार थे। एक बार किसी दिवाल पर

---

1 स श्री श्रीचन्द्रजी म, प्र श्री रत्नमुनि जैन कालेज, लोहामंडी, आगरा।

2. देखिये–गुरुदेव श्री रत्नमुनि स्मृति ग्रंथ में प्रकाशित डा नरेन्द्र भानावत का लेख पूज्य रत्नचन्द्र जी की काव्य साधना, पृ. 317-327।

3 देखिये – आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भडार ग्रथ सूची भाग 1, स. डा नरेन्द्र भानावत।

4. देखिए–आ. वि. ज्ञा. भ. ग्रन्थसूची भाग 1, सं. डा नरेन्द्र भानावत।

इन्होंने चित्रकारी की। उस पर अच्छा रंग किया और प्रात काल उसे देखा तो हजारों कीट मच्छर उस रंग पर चिपके हुए दृष्टिगत हुए। इस दृश्य को देखकर इनका कोमल-करुण हृदय पसीज उठा और ये साधु बन गये। ये बड़े विद्वान् कवि, तपस्वी एव शासन-प्रभावक संत थे। कोटा, बूंदी, झालावाड, सवाई माधोपुर, टौंक इनके प्रमुख विहार क्षेत्र रहे। इनके उपदेशो से प्रभावित होकर मीणा लोगो ने मास, मदिरादि सेवन का त्याग किया। इनका रचनाकाल 19 वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध रहा है। उनकी रचनाओ मे महावीर स्वामी चरित, जम्बू चरित, चन्द सेन राजा की चौपाई, चौबीसी, अठारह पाप के सवैये, वकचूल का चरित्र, श्रीमती का चौढालिया, विजयकवर व विजय कुवरी का चोढालिया, लालचन्द बावनी आदि प्रमुख है।

(14) हिम्मतराम —

ये सवत् 1895 मे जोधपुर मे आचार्य श्री रतनचन्द म के चरणो मे दीक्षित हुए। ये अपनी साधना मे कठोर और स्वभाव से मधुर तथा विनयशील थे। कवि होने के साथ-साथ ये अच्छे लिपिकार भी थे। इन्होंने अनेक सवो, थोकडो, चौपाइयो और स्तवनो का प्रतिलेखन भी किया। अपने गुरु रतनचन्द जी से इन्हे काव्य रचना करने की प्रेरणा मिली। इनकी रचनायें मुख्यत दो प्रकार की हैं—कथापरक और उपदेश परक। कथापरक रचनाओ मे तीर्थ करो और आदर्श जीवन जीने वाले मुनि-महात्माओ का यशोगान किया है। उपदेशपरक रचनाओ मे मन को राग-द्वेष से रिक्त होकर आत्मकल्याण की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दी गई है। सम्यक्ज्ञान प्रचारक मडल जयपुर ने उनकी रचनाओ का एक सग्रह 'हिम्मतराम पदावली' नाम से प्रकाशित किया है

(15) सुजानमल —

इनका जन्म वि स 1896 मे जयपुर के प्रतिष्ठित जौहरी परिवार मे हुआ। उनके पिता का नाम ताराचन्द जी सेठ व माता का राई बाई था। वैभव सम्पन्न घराने मे जन्म लेकर भी इनकी धर्म मे गहरी श्रद्धा थी। इनका कठ मधुर था और सगीत मे अच्छी रुचि थी। इनके जीवन के 50वे वर्ष मे एक व्याधि उत्पन्न हुई। बड़े-बड़े डाक्टरो और वैद्यो का उपचार किया गया पर शात होने के बजाय वह और बढती गई। इससे ये सर्वथा पगु और परावलम्बी बन गये। अत मे इन्होने अनाथीमुनि की तरह मन ही मन दृढ सकल्प किया कि यदि मैं नीरोग हो जाऊ तो पूज्य विनयचद जी म सा के सान्निध्य मे प्रव्रज्या धारण करू। इस सकल्प के थोडे ही दिनो बाद इनकी व्याधि दूर हो गई और इन्होने सवत 1951 मे आश्विन शुक्ला त्रयोदशी को जयपुर मे अपने 15 वर्षीय बाल साथी कपूरचन्द पाटनी के साथ आचार्य विनय चद जी म. के पास दीक्षा अगीकृत की। इनमे काव्य रचना की प्रतिभा प्रारम्भ से ही थी। अब सुमार्ग पाकर प्रति दिन ये नये-नये पदो की रचना करने लगे। इनके रचे लगभग चार सौ पद्य मिलने हैं। इनका सग्रह 'सुजान पद सुमन वाटिका' नाम से प्रकाशित हुआ है।1 इनके प्रत्येक पद्य मे आत्मकल्याण और जीवन-सुधार का प्रेरणादायी सदेश भरा पड़ा है। सवत् 1968 मे इनका निधन हुआ।

(16) रामचन्द्र —

ये आचार्य जयमल जी की परम्परा के श्रेष्ठ कवियो मे से हैं। इनके औपदेशिक पद आध्यात्म भावना से ओतप्रोत है। इनकी रचनाए ज्ञान-भण्डारो मे बिखरी पडी है जिनमे

1. स. प. मुनि श्री लक्ष्मीचन्द जी म., प्रकाशक सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल, जयपुर।

विनयकुमार का चौढालिया, विष्णु कुमार चरित, शालिभद्र धन्ना अधिकार छहढालिया, हरिकेशी मुनि चरित, उपदेशी ढाल आदि प्रमुख है।[1]

(17) तिलोक ऋषि —

इनका जन्म संवत् 1904 मे चैत्रकृष्णा तृतीया को रतलाम में हुआ। इनके पिता का नाम दुलीचन्द जी सुराणा और माता का नानूबाई था। सवत् 1914 मे माघ कृष्णा प्रतिपदा को ये अपनी मा, बहिन और भाई के साथ अयवना ऋषि के सान्निध्य मे दीक्षित हुए। इनका विहारक्षेत्र मुख्यत मेवाड़, मालवा और महाराष्ट्र रहा। 36 वर्ष की अल्पायु मे ही सं. 1940 में श्रावणकृष्णा द्वितीया को अहमदनगर मे इनका निधन हो गया। पिछडी जाति के लोगों को व्यसन मुक्त बनाने मे इनकी बड़ी प्रेरणा रही है।

तिलोक ऋषि कवित्व की दृष्टि से स्थानकवासी परम्परा के श्रेष्ठ कवियो मे से हैं। इनका काव्य जितना भावनामय है, उतना ही सगीतमय भी। इन्होने जन-साधारण के लिये भी लिखा और विद्वत्मण्डली के लिये भी। पदों के अतिरिक्त इन्होंने भक्ति और वैराग्य भाव से परिपूर्ण बहुत ही प्रभावक कवित्त और सवैये लिखे। इनके समस्तकाव्य को दो वर्गों मे रक्खा जा सकता है —रसात्मक और कलात्मक। रसात्मक कृतिया विशद्ध साहित्यिक रस बोध की दृष्टि से लिखी गई है। इनमे कवि की अनुभूति, उसका लोक निरीक्षण और गेय व्यक्तित्व समाविष्ट है। ये आगमज्ञ, सस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के विद्वान् शास्त्रीय ज्ञान के धनी, विभिन्न छदो के विशेषज्ञ और लोक सस्कृति के पंडित थे। यही कारण है कि इनकी रचनाओ मे एक ओर संत कवि का मारल्य है तो दूसरी ओर शास्त्रज्ञ कवि का पांडित्य। ये रसात्मक कृतियां तीन प्रकार की हैं—स्तवनमूलक, आख्यानमूलक और औपदेशिक। स्तवनमूलक रचनाओ मे चौबीस तीर्थंकरो, पच परमेष्ठियों, गणधरों और सन्त-सतियों की स्तुति विशेष रूप से की गई है। इनमे इनके बाह्य रूप रग का वर्णन कम, आन्तरिक शक्ति तथा गरिमा का वर्णन अधिक रहा है। आख्यानमूलक रचनाओं में इतिवृत्त की प्रधानता है। इनमें विभिन्न दृढव्रती श्रावको और मुनियो को वर्ण्य विषय बनाया गया है। औपदेशिक रचनाओ मे कवि की विशेषता यह रही है कि उसमे रूपक योजना द्वारा सामान्य लौकिक विषयो को अध्यात्म भावों के माधुर्य से विमडित कर दिया है।[2]

कलात्मक कृतियों मे कवि की एकाग्रता, उसकी सूझबूझ, लेखन-कला, चित्रण-क्षमता, और अपार भाषा-शक्ति का परिचय मिलता है। ये कलात्मक कृतिया दो प्रकार की हैं— चित्रकाव्यात्मक और गूढार्थमूलक।

चित्रकाव्यात्मक रचनाएं तथाकथित चित्रकाव्य से भिन्न है। इनमे प्रधान दृष्टि चित्रकार के लाघव व गणितज्ञ की बुद्धि के कारण, चित्र बनाने की रही है। ये चित्रकाव्य दो प्रकार के है। सामान्य और रूपकात्मक। सामान्य चित्रो मे कवि ने स्वरचित या किसी प्रसिद्ध कवि की कविताओ, दोहे, सवैये, कवित्त आदि को इस ढग से लिखा है कि एक चित्ररूप खड़ा हो जाता है। समुद्र बध, नागपाश बध आदि कृतिया इसी प्रकार की है। इन चित्रों के नामानुरूप भाववाली कविताओं को ही यहा लिपिबद्ध किया गया है। समुद्रबन्ध कृति मे ससार को समुद्र के रूप में उपमित करने वाली कविता का प्रयोग किया गया है। नागपाश बन्ध में भगवान पार्श्वनाथ के जीवन की उस घटना को व्यक्त करने वाला छन्द सन्निहित है जिसमे उन्होंने कमठ तापस की पंचाग्नि से सकटग्रस्त नाग दम्पत्ति का उद्धार किया था। रूपकात्मक

1. इनकी हस्तलिखित प्रतियां आ. वि. ज्ञा भ जयपुर में सुरक्षित है।
2. देखिए—अध्यात्म पर्व दशहरा स्वाध्याय, प्र. श्री जैन धर्म प्रसारक संस्था नागपुर।

चित्र-काव्यों में कवि की रूपक योजक-वृत्ति काम करती रही है। 'ज्ञान कुंजर और शीलरथ' के रूपकात्मक चित्र अत्यन्त सुन्दर बन पड़े हैं। गूढार्थमूलक रचनाएं कूट शैली में लिखी गई हैं।

तिलोक ऋषि का छन्द प्रयोग भी विविधता लिये हुए है। दोहा और पद के अतिरिक्त इन्होंने रीतिकालीन कवियों के सवैया और कवित्त जैसे छन्द को अपनाकर उसमें जो संगीत की गूंज और भावना की पवित्रता भरी है, वह अन्यतम है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि तिलोक ऋषि के काव्य में भक्तियुग की रसात्मकता और रीति युग की कलात्मकता के एक साथ दर्शन होते हैं।[1]

(18) किशनलाल :—

ये आचार्य रतनचन्द जी म सा की परम्परा के मुनि श्री नन्दलाल जी म. के शिष्य थे। इनकी रचनायें विभिन्न ज्ञान भण्डारों में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है। इनकी रचनायें औपदेशिक पदों और पद्यकथाओं के रूप में मिलती हैं। इनके पद अध्यात्म प्रवण और आत्म-कल्याण में साधक है। हमें जो रचनायें ज्ञात हुई हैं उनमें नवकार मंत्र की लावणी, पंचपरमेष्ठी गुणमाला, चण्डरुद्र आचार्य की सज्झाय, सनतकुमार राजर्षि चौढालिया, कर्मों की लावणी, आदि उल्लेखनीय हैं।[2]

(19) नेमिचन्द्र —

इनका जन्म वि स 1925 में आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को बगडुन्दा (मेवाड) में हुआ। इनके पिता का नाम देवीलालजी लोढा और माता का कमला देवी था। इन्होंने आचार्य श्री अमरसिंह जी म की परम्परा के छठे पट्टधर श्री पूनमचन्द जी म सा. से सवत् 1940 फाल्गुन कृष्णा छठ को बगडुन्दे में दीक्षा अंगीकृत की। सवत् 1975 में कार्तिक शुक्ला पंचमी को छीपा का आकोला (मेवाड) में इनका निधन हुआ। ये आशु कवि थे और चलते-फिरते वार्तालाप में या प्रवचन में शीघ्र ही कविता बना लिया करते थे। कवि होने के साथ-साथ ये प्रत्युत्पन्नमति और शास्त्रज्ञ विद्वान थे। इनकी प्रवचन शैली अत्यन्त चित्ताकर्षक और प्रभावक थी। इन्होंने धर्म-प्रचार की दृष्टि से गावों को ही अपना विहार क्षेत्र बनाया। मेवाड के पर्वतीय प्रदेश गोगुन्दा, झाडोल, एव काटडा आदि क्षेत्रों को उन्होंने अपने उपदेशों से उपकृत किया। इनकी काव्य-प्रतिभा व्यापक थी। एक ओर इन्होंने रामायण और महाभारत के विभिन्न प्रसगों को अपने काव्य का आधार बनाया तो दूसरी ओर जैनागमों के विविध चरित्रों को सगीत की स्वर-लहरी में बाधा। इनकी रचनाओं में भक्ति भावना की तरंगिणी प्रवहमान है तो 'निह्नव भावना सप्तढालिया' जैसी रचनाओं में युग के अनाचार और बाह्य आडम्बर के खिलाफ विद्रोह की भावना है। 'भाव नौकरी', क्षमा माताशीतला, 'चेतन चरित' जैसी रचनाओं में कवि की सागरूपक योजना का चमत्कार दृष्टिगत होता है। 'नेमवाणी'[3] नाम से इनकी रचनाओं का प्रकाशन हुआ है।

---

1. विशेष जानकारी के लिए देखिए—
   (अ) कुमारी मधु माथुर का 'सत कवि तिलोक ऋषि : व्यक्तित्व और कृतित्व' लघु शोधप्रबन्ध (अप्रकाशित)।
   (ब) डा. शान्ता भानावत का 'तिलोक ऋषि की काव्य साधना' लेख, मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रंथ में प्रकाशित, पृ. 168-173।
2. आ. वि ज्ञा भ. ग्रन्थसूची भाग 1।
3. सं. पुष्कर मुनि, प्र. श्री तारक गुरु ग्रंथालय, पदराड़ा (उदयपुर)।

(20) दीपचन्द :—

इनका जन्म सवत् 1926 मे आश्विन शुक्ला छठ को पंजाब के फिरोजपुर क्षेत्र के अन्तर्गत झूबो नामक गाव मे हुआ। इनके पिता का नाम बधावासिह और माता का नाम नारायणीदेवी था। इन्होने सवत् 1951 मे मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीया को दिल्ली में पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज की परम्परा के जीवनरामजी म के पास अपनी धर्मपत्नी सहित 25 वर्ष की अवस्था में दीक्षा ग्रहण की। सवत् 1994 में श्री जीवनरामजी म. ने इन्हें सोनीपत मे पूज्य पदवी प्रदान की। ये आदर्श तपस्वी सत और आध्यात्मिक कवि थे। इनके पदो मे ससार की नश्वरता, आत्मा की अमरता का सुन्दर निरूपण है। इनकी भाषा राजस्थानी प्रभावित हिन्दी है। 'दीप भजनावली' नाम से इनकी रचनाओ का एक सग्रह प्रकाशित हुआ है।

(21) गजमल —

इनका जन्म किशनगढ के फतेहगढ नामक गाव मे हुआ। इनके पिता का नाम कल्याण मल जी ललवाणो तथा माता का नाम केसर बाई था। सवत् 1926 मे चैत्र शुक्ला चतुर्दशी को उन्होने अपनी माता के साथ पूज्य नानकराम जी महाराज के सम्प्रदाय के मुनि श्री मगनमलजी के पास दीक्षा अगीकृत की। सवत् 1975 में फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी को ठाठोठी ग्राम मे इनका निधन हुआ। ये अध्ययनशील प्रवृत्ति के तत्ववादी साधक थे। घटो तात्विक विषयो पर चर्चा किया करते थे। इन्होने छोटी-मोटी कई रचनाये लिखी है उनमे सबसे उल्लेखनीय रचना 'धर्मसेन' ग्रथ है जो छह खड एव 64 ढालो मे पूरा हुआ है। ग्रथ प्रमाण 6500 श्लोक हैं।

(22) माधव मुनि —

इनका जन्म सवत् 1928 मे भरतपुर के निकट अचनेरा गाव मे हुआ। इनके पिता का नाम बंशीधर सनाढ्य और माता का राय कवर था। सवत 1940 मे इन्होने मगन मुनिजी के पास दीक्षा अगीकृत की। संवत् 1978 मे वैशाख शुक्ला पचमी को ये धर्मदासजी महाराज की परम्परा मे आचार्य श्री नदलालजी म के बाद आचार्य बने। सवत् 1981 मे जयपुर के पास गाडोता गाव मे इनका स्वर्गवास हुआ। जैनागमो मे इनकी गहरी पैठ थी। व्याकरण, न्याय, साहित्य आदि भारतीय दर्शनो का इनका गहन अध्ययन था। इनमे कवित्व-प्रतिभा के साथ-साथ पैनी तर्कणा शक्ति भी थी। इनके काव्य मे चिन्तन की गहराई, अर्थगौरव और सिद्धान्त निष्ठता की दृढता से प्राण प्रतिष्ठा हुई है। इनकी भाषा प्रौढ और अभिव्यक्ति सशक्त है। इनकी रचनाओ का एक सग्रह 'जैन स्तवन तरगिणी' 1 नाम से प्रकाशित हुआ है जिसमे विनय, भक्ति, और उपदेश की तीव्र तरगें प्रवहमान हैं।

(23) खूबचन्द —

इनका जन्म सवत् 1930 मे कार्तिक शुक्ला अष्टमी को निम्बाहेडा (मेवाड) मे हुआ। इनके पिता का नाम टेकचन्दजी जैतावत और माता का गेंदी बाई था। 22 वर्ष की अवस्था में संवत् 1952 में आषाढ शुक्ला तृतीया को इन्होने नीमच शहर मे नन्दलाल जी म. सा. के चरणों मे दीक्षा अंगीकृत की। संवत् 1991 मे फाल्गुन शुक्ला तृतीया को रतलाम मे ये आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। सवत् 2002 चैत्र शुक्ला तृतीया को इनका स्वर्गवास हुआ। इनका जीवन बडा ही संयत, तपोमय और त्याग-वैराग्य से परिपूर्ण था। इनकी व्याख्यान शैली बडी ही रोचक और ओजपूर्ण थी। इनके उपदेशो से प्रभावित होकर जयपुर-नरेश श्री माधोसिंह जी तथा

1 प्रकाशक—श्री वर्धमान जैन स्थानकवासी श्री संघ, कोटा।

अलवर नरेश श्री जयसिंह जी ने संवत्सरी महापर्व के दिन हमेशा के लिये अगता रखाया। ये सुमधुर गायक और प्रतिभाशाली कवि थे। इनकी कविताओं का एक सकलन 'खूब कवितावली'[1] नाम से प्रकाशित हुआ है जिसमे स्तवन, उपदेशामृत, चरितावली और विविध विषयों से सम्बद्ध कविताएं संगृहीत हैं। इन्होने विविध राग-रागिनियो, दोहा, कवित-सवैया, ढाल आदि छन्दों के साथ-साथ ख्यालो मे प्रयुक्त शेर, चलत, मिलत, छोटी कडी झेला, द्रोण जैसे छन्दों का भी प्रयोग किया है। इनकी कविताओ मे लोक जीवन और लोक सस्कृति की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है।

(24) अमी ऋषि —

इनका जन्म सवत् 1930 मे दलोद (मालवा) मे हुआ। इनके पिता का नाम श्री भेरूलाल जी और माता का प्यारा बाई था। सवत् 1943 मे इन्होने श्री सुखा ऋषि जी म. के पास मगरदा (भोपाल) मे दीक्षा अगीकृत की। सवत् 1988 मे शुजालपुर में इनका स्वर्गवास हुआ। मालवा, मेवाड, मारवाड गुजरात, महाराष्ट्र आदि क्षेत्रो मे विहार कर इन्होने जिन शासन का उद्योत किया। इनकी बुद्धि और धारणा शक्ति अत्यन्त तीव्र थी। शास्त्रीय और दार्शनिक चर्चा मे इनकी विशेष रुचि थी। ये जितने तत्वज्ञ थे उतने ही कुशल कवि भी। इन्होने लगभग 23 ग्रथो की रचना की। इनकी कविताओ का एक संग्रह 'अमृत काव्य सग्रह'[2] के नाम से प्रकाशित हुआ है। इन्होने अनेक छन्दों और अनेक शैलियो मे रचना की है। छन्दो मे दोहा, कवित्त, सवैया, सोरठा, पद्धरी, हरिगीतिका, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, आदि छन्दो का सुचारु निर्वाह हुआ है। सवैया और कवित्त पर तो उनका विशेष अधिकार जान पडता है। रूप-भेद की दृष्टि से जहा इन्होने अष्टक, चालीसा, बावनी, शतक आदि सज्ञक काव्य लिखे है वहा चरित्र काव्यो मे सीता चरित, जिन सुन्दरी, भरत बाहुबलि चौढालिया, अम्बड सन्यासी चौढालिया, कीर्ति ध्वज राजा चोढालिया, धारदेव चरित आदि मुख्य हैं। इनकी कविता मे जहा निश्छलता, स्पष्टोक्ति है, वहीं चमत्कारप्रियता भी है। इस दृष्टि से इन्होने खडगबध, कपाटबध, कदली बध, मल्ल बध, कमल बध, चमर बध, एकाक्षर त्रिपदी बध, चटाई बंध, छत्र बध, धनुर्बन्ध, नागपाश बध, कटारबध, चौपड बध, स्वस्तिक बध आदि अनेक चित्र-काव्यो की रचना की है। 'जयकुजर' इस दृष्टि से इनकी श्रेष्ठ रचना है। लोकजीवन की निश्छल अभिव्यक्ति इनके काव्य की विशेषता है। पचतत्र मे आई हुई कई कहानियों को लेकर इन्होने सवैया छद मे उन्हे निबद्ध किया है। पूर्ति मे भी इन्हे पर्याप्त सफलता मिली है।

(25) जवाहरलाल —

इनका जन्म सवत् 1932 मे कार्तिक शुक्ला चतुर्थी को थादला (मालवा) गांव मे हुआ। इनके पिता का नाम जीवराज जी और माता का नाथी बाई था। 16 वर्ष की लघुवय में सवत् 1948 मे मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया को इन्होने मुनि श्री मगनलाल जी म. सा. के चरणों में दीक्षा अगीकृत की। सवत् 1977 आषाढ शुक्ला तृतीया को ये आचार्य श्री श्रीलाल जी म. सा. के बाद आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुये। सवत् 2000 मे आषाढ़ शुक्ला अष्टमी को भीनासर मे इनका स्वर्गवास हुआ। इनका व्यक्तित्व बडा आकर्षक व प्रभावशाली था। इन्होने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के सत्याग्रह, अहिंसक प्रतिरोध, स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग, खादी धारण, अछूतोद्धार जैसे रचनात्मक कार्यक्रमो मे सहयोग देने की जनमानस को विशेष प्रेरणा दी। इनके ओजस्वी व्यक्तित्व और क्रांतिकारी विचारो से प्रभावित होकर महात्मा गांधी,

---

1. सं. प. मुनि श्री हीरालालजी म., प्रकाशक-श्री सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा।
2. प्रकाशक—श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी (अहमदनगर)।

लोकमान्य तिलक, महामना मालवीय, सरदार पटेल आदि राष्ट्रीय महापुरुष इनके सम्पर्क में आये। इनकी उपदेश-शैली बडी रोचक, प्रेरक और विचारोत्तेजक थी। इनके प्रवचनो का प्रकाशन 'जवाहर किरणावली'[1] नाम से कई भागों में किया गया है। 'अनुकम्पा विचार' नाम से इनके राजस्थानी काव्य के दो भाग प्रकाशित हुये है। इनमें अहिंसा के विधेयात्मक स्वरूप पर बल देते हुये दया और दान की धार्मिक सदर्भ में विशेष महत्ता प्रतिपादित की है। राग-रागिनियों और ढालों मे निबद्ध यह काव्य सरस और रोचक बन पड़ा है।

(26) चौथमल:—

जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता के रूप मे प्रसिद्ध इन चौथमलजी म. का जन्म सं. 1934 में कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी को नीमच में हुआ। इनके पिता का नाम श्री गंगारामजी और माता का केसरा बाई था। स. 1952 मे इन्होंने श्री हीरालाल जी म सा से दीक्षा अंगीकृत की। ये जैन तत्व और साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् होने के साथ-साथ प्रभावशाली वक्ता, मधुरगायक और प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। इनके विचार बडे उदार और दृष्टि व्यापक थी। जैन धार्मिक तत्वों को संकीर्ण दायरे से उठा कर सर्व साधारण में प्रचारित-प्रसारित करने का इन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया। इनकी प्रवचन-सभा मे राजा-महाराजा और सेठ-साहूकारों से लेकर चमार, खटीक, भील, मीणे आदि पिछड़े वर्ग के लोग भी समान रूप से सम्मिलित होते थे। इनके उपदेशों से प्रभावित होकर अनेको ने आजीवन मासभक्षण, मदिरा-पान, भांग-गांजा, तम्बाखू आदि का त्याग किया। मेवाड़, मालवा एव मारवाड के अनेक जागीरदारों और राजा-महाराजाओं ने इनसे जीव दया का उपदेश सुनकर अपने-अपने राज्यो में हिंसाबन्दी की स्थायी आज्ञाये जारी करवा दी और उन्हे इस आशय की सनदे लिख दी। उदयपुर के महाराणा फतहसिंह जी और भोपालसिंह जी इनके अनन्य भक्त थे। इनका गद्य और पद्य दोनो पर समान अधिकार था। इन्होंने सैकडो भक्ति रस से परिपूर्ण भजन लिखे है, जिन्हे भक्तजन आत्म-विभोर होकर गाते है। काव्य के क्षेत्र मे 'आदर्श रामायण' और 'आदर्श महाभारत' इनके प्रसिद्ध ग्रथ है। 'जन सुबोध गुटका'[2] भाग 1, 2 मे इनके लगभग 1000 पद सग्रहीत है। इन्होंने राजस्थानी और हिन्दी दोनो भाषाओं मे समान अधिकार के साथ काव्य-रचना की है। इनके प्रवचन 'दिवाकर दिव्य ज्योति'[3] नाम से 21 भागो मे प्रकाशित हुये है। इनके द्वारा संग्रहीत और अनुवादित 'निर्ग्रन्थ प्रवचन'[4] अत्यन्त लोकप्रिय ग्रथ हैं। इसमें जैनागमो के आधार पर जैन दर्शन और धर्म सबधी महत्वपूर्ण गाथाओं का संकलन किया गया है।

(27) चौथमल:—

आचार्य जयमल्ल जी म की परम्परा से संबद्ध इन चौथमल जी का जन्म संवत् 1947 मे कुचेरा के पास फीरोजपुरा (मारवाड़) गाव मे हुआ। इनके पिता का नाम हरचन्दराय और माता का कुनरादे जी था। इन्होंने सवत् 1959 में वैशाख कृष्णा सप्तमी को सेठा री रीया मे श्री नथमल जी म. से दीक्षा अंगीकृत की। सवत् 2008 मे इनका निधन हुआ। ये कई भाषाओं के ज्ञाता और राजस्थानी के आशु कवि थे। अपनी परम्परा के आचार्यों और सन्तों की महत्वपूर्ण जीवन-घटनाओ को इन्होंने पद्यबद्ध किया जिनका ऐतिहासिक महत्व है। 'पूज्य गुणमाला'[5] में इनकी ऐसी रचनाये सग्रहीत हैं। इन्होने कई चरित काव्य भी लिखे हैं जिनका प्रकाशन 'व्याख्यान नव रत्नमाला' भाग 1, 2 में हुआ है।

---

1. सं. पं. शोभाचन्द्र भारिल्ल, प्र. श्री जवाहर साहित्य समिति, भीनासर, (बीकानेर)।
2. प्रकाशक—श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशन समिति, रतलाम।
3. सं. पं. शोभाचन्द्र भारिल्ल, प्र. श्री दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, ब्यावर।
4. प्र. श्री दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, ब्यावर।
5. प्रकाशक—श्री मलगट परिवार बडारा (महाराष्ट्र)।

(28) मिश्रीमल:—

'मरुधर केसरी' नाम से प्रसिद्ध मुनि श्री मिश्रीमल जी म. का जन्म सं. 1955 में श्रावण शुक्ला चतुर्दशी को पाली में हुआ। इनके पिता का नाम श्री शेषमल जी सोलकी तथा माता का केसर कुंवर था। संवत् 1975 में इन्होंने मुनि श्री बुधमल जी के पास दीक्षा अंगीकृत की। इनका राजस्थानी और हिन्दी दोनों भाषाओं पर समान रूप से अधिकार है। अब तक ये 100 से भी अधिक ग्रंथों का प्रणयन कर चुके हैं जिनमें विशालकाय 'पांडव यशोरासायन' (महाभारत) विशेष महत्वपूर्ण है। यह 309 ढालों में विभक्त है। भजनो की सख्या तो हजारों तक पहुंच चुकी है। 'मरुधर केसरी ग्रंथावली'[1] भाग 1, 2 में इनका प्रकाशन हुआ है। इनके काव्य में एक ओर संत कवि का रूढ परम्पराओं के प्रति विद्रोह और भक्त कवि का अपने आराध्य के प्रति समर्पण भाव है, वहीं दूसरी ओर चमत्कार प्रिय कवि का बौद्धिक विलास और कथाकार का चरित्र-निरूपण भी है। इनकी सम्पूर्ण काव्य चेतना लोकजीवन से रस-ग्रहण करती है। 'मधुर दृष्टांत मंजूषा' इस दृष्टि से कवि के लोक अनुभवों का संचित कोष है।[2]

(ब) श्रावक कवि:—

विनयचन्द:—

इनका जन्म जोधपुर-भोपालगढ़ के बीच एक छोटे से गाव देईकडा में हुआ। इनके पिता का नाम गोकुल चन्द कुंमट था। ये आचार्य श्री हम्मीरमल जी के निष्ठावान श्रावक थे और प्रज्ञाचक्षु थे। इनकी 'विनयचन्द्र चौबीसी' अत्यन्त प्रसिद्ध रचना है जिसे कवि ने सवत् 1906 मे पूरी की थी। इसमें 24 तीर्थंकरों की स्तुति की गई है। इसीलिये इसे चौबीसी कहा गया है। भावो की सरसता, कमनीयता एवं आध्यात्मिकता के कारण इनका एक-एक पद भक्तो को भाव-विह्वल एवं आत्मविभोर बना देता है। आज भी भक्त लोग इनके पदो को सस्वर गाते हुये मुग्ध और तन्मय बन जाते हैं। आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. इनके पदों से ही प्रवचन प्रारम्भ किया करते थे। इनकी दूसरी प्रसिद्ध कृति 'आत्मनिन्दा'[3] है। यह रचना भी अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। इसमें आत्मा की उसके किये हुये कलुषित कर्मों के लिये भर्त्सना की गई है। पूर्वकृत पापों को पश्चाताप की अग्नि से धो डालने का यह विधान साधक को आत्मोन्नति की ओर अग्रसर करता है। कवि ने हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह आदि पापो की निन्दा करते हुये चेतन को आत्म-स्वभाव में रमण करने की प्रेरणा दी है। तीसरी कृति 'पट्टावली' है जिसमें ऐतिहासिक दृष्टि से कवि ने भगवान महावीर से लेकर अपनी गुरु-परम्परा तक का उल्लेख किया है। इनकी एक अन्य रचना 'पूज्य हमीर चरित' भी है।

2. जेठमल:—

इनका जन्म जयपुर के प्रतिष्ठित जौहरी परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम भूधर जी चोरडिया और माता का लक्ष्मी देवी था। ये सहृदय और गायक कवि थे। इनकी 'जम्बू गुण रत्नमाला' प्रसिद्ध काव्य कृति है जिसकी रचना सवत् 1920 मे की गई। इस कृति का समाज में बडा प्रचार है। साधु लोग भी अपने व्याख्यानों में इसे गा-गा कर सुनाते हैं। विभिन्न

---

1. प्रकाशक—मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति, जोधपुर-ब्यावर।
2. विशेष के लिये देखिये 'मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रंथ' में प्रकाशित डा. नरेन्द्र भानावत का लेख 'मरुधर केसरी की काव्यकला', पृ. 34-52।
3. प्रकाशक—सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल, जयपुर।

पटकों में इनकी और भी कई फुटकर रचनायें मिलती हैं। इन्होंने कई उपदेशात्मक पद भी लिखे हैं जो वैराग्य भाव से परिपूर्ण हैं और उनमें प्रभाव डालने की क्षमता है। सभी संतों के प्रति इनके मन में बड़ा आदर था। अतः जो भी गुणी संत जयपुर में आते, उनके गुण-कीर्तन के रूप में इनकी काव्य धारा फूट पड़ती। विभिन्न साधुओं पर लिखी गई ऐसी कई रचनायें प्राप्य हैं।[1]

(स) साध्वी कवयित्रियां:—

भारतीय धर्म परम्परा में साधुओं की तरह साध्वियों का भी विशेष योगदान रहा है। ऐतिहासिक पम्परा के रूप में हमें भगवान् महावीर के बाद के साधुओं की आचार्य-परम्परा का तो पता चलता है पर साध्वियो की परम्परा अन्धकाराच्छन्न है। भगवान् महावीर के समय में 36,000 साध्वियों का नेतृत्व करने वाली चन्दनबाला उनकी प्रमुख शिष्या थी। महावीर से ही तत्व-चर्चा करने वाली जयन्ती का उल्लेख 'भगवती सूत्र' में आया है। अतः यह निश्चित है कि साधुओं और श्रावको के साथ-साथ साध्वियों और श्राविकाओ की भी अवच्छिन्न परम्परा रही है। इतिहासज्ञों एवं साहित्यकर्मियों का यह महत्वपूर्ण दायित्व है कि वे इस परम्परा को खोजें। साधुओ की तरह साध्वियो का भी अन्य क्षेत्रों की तरह साहित्य के निर्माण और संरक्षण में भी महत्वपूर्ण योग रहा है। 14वीं शती से लेकर आज तक काव्य-रचना मे रत जिन साध्वियों का उल्लेख मिलता है, उनमें गुण समृद्धि महत्ता, विनयचूला, पद्मश्री, हेमश्री, हेमसिद्धि, विवेक-सिद्धि, विद्या सिद्धि आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।[2] यहां स्थानकवासी परम्परा से संबद्ध कतिपय साध्वी कवयित्रीयो का संक्षेप में परिचय दिया जा रहा है—

1. हरकू बाई:—

आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर में पुष्ठा सं. 105 में 88वीं रचना में 'महासती श्री अमरुजी का चरित्र' इनके द्वारा रचित मिलता है। इसकी रचना सबत् 1820 मे किशनगढ़ में की गई है। इन्ही की एक अन्य रचना 'महासती चतरुजी सज्झाय' भी मिलती है, जिसका प्रकाशन श्री अगरचन्द जी नाहटा ने 'ऐतिहासिक काव्य संग्रह' में पृ. सं. 214-15 पर किया है।

2. हुलासाजी:—

आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर में पुष्ठा सं. 218 में 50वीं रचना 'क्षमा व तप ऊपर स्तवन' इनकी रचित मिलती है। इसकी रचना संवत् 1887 मे पाली में हुई।

3. सरूपाबाई:—

ये पूज्य श्री श्रीमलजी म. सा. से संबंधित हैं। नाहटाजी ने 'ऐतिहासिक काव्य संग्रह' में पृ. 156-58 पर इनकी एक रचना 'पू. श्रीमलजी की सज्झाय' प्रकाशित की है।

---

1. आ. वि. ज्ञा. भ. में ये सुरक्षित हैं।

2. देखिये—डा. शान्ता भानावत का 'मुनिद्वय अभिनन्दन ग्रंथ' में प्रकाशित 'साध्वी परम्परा की जैन कवयित्रियां' शीर्षक लेख, पृ. 301-307।

4. जड़ावजी:—

इनका जन्म सं. 1898 में सेठों की रीयां में हुआ था। बाल्यावस्था में ही इनका विवाह कर दिया गया। कुछ समय बाद ही इनके पति का देहान्त हो गया। परिणामस्वरूप इन्हें संसार के प्रति विरक्ति हो गई और 24 वर्ष की अवस्था में सं. 1922 में इन्होने आचार्य रत्नचन्द्र जी म. के सम्प्रदाय की प्रमुख शिष्या रम्भाजी के पास दीक्षा अंगीकृत करली। रभाजी की 16 विशिष्ट साध्वियां थी जिनमें ये प्रधान थी। नेत्र ज्योति क्षीण हो जाने से संवत् 1950 से अन्तिम समय तक ये जयपुर मे ही स्थिरवासी बन कर रही। संवत् 1972 में ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी को इनका स्वर्गवास हुआ।

सती जड़ाव जी जैन कवयित्रियों में नगीने की तरह जडी हुई प्रतीत होती हैं। यद्यपि ये अधिक पढी लिखी नही थी पर कविता करना इनकी जीवनचर्या का एक अग बन गया था। 50 वर्ष के सुदीर्घ साधना काल मे इन्होंने जीवन के विविध अनुभव आत्मसात् कर काव्य में उतारे। इनका जीवन जितना साधनामय था काव्य उतना ही भावनामय। इनकी रचनाओं का एक सकलन "जैन स्तवनावली" नाम से जयपुर से प्रकाशित हुआ है। प्रवृत्तियों के आधार पर इनकी रचनाओ को चार वर्गों मे बांट सकते है—स्तवनात्मक, कथात्मक, उपदेशात्मक और तात्विक। सुमति-कुमति को चौढालियों, अनाथी मुनि रो सतढालियो, जम्बू स्वामी को सतढालियो, इनकी कथात्मक रचनायें है। सरल बोलचाल की राजस्थानी में विविध राग-रागिनियो में हृदय की उमड़ती भावधारा को व्यक्त करने मे ये बडी कुशल हैं। लोक व्यवहार और प्राकृतिक वातावरण की भावभूमि पर लम्बे-लम्बे सागरूपक बाधने में इन्हे विशेष सफलता मिली है।[1]

5. पार्वता जी:—

ये पूज्य श्री अमरसिंह जी म. की परम्परा से संबद्ध है। इनका जन्म आगरा के निकट खेड़ा भांडपुरी गांव मे सवत् 1911 मे हुआ। इनके पिता का नाम श्री बलदेव सिंह जी चौहान व माता का धनवती था। सवत् 1924 में श्री कंवरसेन जी महाराज के प्रतिबोध से इन्होने साध्वी हीरादेवी जी के पास दीक्षा ग्रहण की। ये तपस्विनी सयम-साधिका, प्रभावशाली व्याख्याता और कवित्वशक्ति की धनी थी। 'जैन गुर्जर कवियो' भाग 3 खण्ड 1 पृ 389 पर इनकी चार रचनाओं का उल्लेख है—वृत्त मडली (स 1940), (2) अजितसेन कुमार ढाल (सं. 1940), (3) सुमति चरित्र (स 1961), (4) अरिदमन चौपई (स 1961)। इनकी कई गद्य कृतिया भी प्रकाशित हैं।[2]

6 भूरसुन्दरी—

इनका जन्म सवत् 1914 मे नागौर के समीप बुसेरी नामक गांव में हुआ। इनके पिता का नाम अखयचन्द जी राका और माता का रामबाई था। अपनी बुआ से प्रेरणा पाकर 11 वर्ष की अवस्था मे साध्वी चम्पाजी से इन्होने दीक्षा ग्रहण की। पद्य और गद्य दोनों पर इन का समान अधिकार था। इनकी रचनायें मूलतः स्तवनात्मक और उपदेशात्मक है। इन्होंने कई सुन्दर पहेलिया भी लिखी है। बीकानेर से इनके निम्नलिखित 6 ग्रंथ प्रकाशित हुये हैं।

---

1 इस संबंध में 'महावीर जयन्ती स्मारिका' अप्रेल 1964 में प्रकाशित—डा. नरेन्द्र भानावत का 'जड़ावजी की काव्यसाधना' लेख दृष्टव्य है।

2. विस्तृत जानकारी के लिये देखिये—'साधनापथ की अमर साधिका' ग्रंथ, लेखिका-साध्वी श्री सरला जी।

भूर सुन्दरी जैन भजनोद्धार (सं. 1980),(2)भूर सुन्दरी विवेक विलास (सं. 1984),(3) भूर सुन्दरी बोध विनोद (सं. 1984), (4) भूर सुन्दरी अध्यात्म बोध (सं. 1985),(5) भूर सुन्दरी ज्ञान प्रकाश (सं. 1986), (6) भूर सुन्दरी विद्याविलास (स. 1986) ।

7. रत्नकुंवर:—

आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज की आज्ञानुवर्ती प्रवर्तिनी श्री रत्नकुंवरजी शास्त्र पंडिता और तपस्विनी साध्वी है। काव्य क्षेत्र में इनकी अच्छी गति है। स्तवनों और उपदेशों का एक संग्रह 'रत्नावली' नाम से प्रकाशित हुआ है। 51 ढालो मे निबद्ध इनकी एक अन्य रचना 'श्री रत्नचूड, मणिचूड चरित्र' भी प्रकाशित हुई है। भीलवाडा से एक आख्यानक काव्य 'सती चन्द्रलेखा' स. 2004 मे प्रकाशित हुआ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्थानकवासी परम्परा के कवियों की काव्य-साधना की मुख्य विशेषताओं को संक्षेप मे इस प्रकार रखा जा सकता है.—

(1) ये कवि प्रमुख रूप से साधक और शास्त्रज्ञ रहे हैं। कवित्व इनके लिये गौण रहा है। प्रतिदिन जनमानस को प्रतिबोधित करना इनके कार्यक्रम का मुख्य अग होने से अपने उपदेश को बोधगम्य और जनसुलभ बनाने की दृष्टि से ये समय-समय पर स्तवन, भजन, कथाकाव्य आदि की रचना करते रहे हैं।

(2) इस परम्परा मे बत्तीस आगमों की मान्यता होने से इनके काव्य का मूल-प्रेरणा-स्रोत आगम साहित्य और इससे सबद्ध कथा साहित्य रहा है। सुविधा की दृष्टि से इनके काव्य के चार वर्ग किये जा सकते है—चरितकाव्य, उत्सव काव्य, नीति काव्य और स्तुति काव्य। चरित काव्य मे सामान्यत तीर्थंकरो, गणधरो, महान् आचार्यो, निष्ठावान श्रावको, सतियों आदि की कथा कही गई है। 'रामायण' और 'महाभारत' को अपने ढग से ढालों मे निबद्ध कर उनके आदर्शों का व्यापक प्रचार प्रसार करने मे ये बडे सफल रहे है। ये काव्य रास, चोपाई ढाल, सज्झाय, सधि, प्रबन्ध, चौढालिया, पचढालिया, पट्ढालिया, सप्तढालिया, चरित, कथा आदि रूपो मे लिखे गये है। उत्सव काव्य विभिन्न आध्यात्मिक पर्वो और ऋतु विशेष के बदलते हुये वातावरण को माध्यम बना कर लिखे गये है। इनमे सामान्यत. लौकिक रीति-नीति को साग-रूपक के माध्यम से लोकोत्तर रूप मे ढाला जा रहा है। नीति काव्य जीवनोपयोगी, उपदेशों, तथा तात्विक सिद्धातों से संबधित हैं। इनमे सदाचार पालन, कषायत्याग, सप्तव्यसन-त्याग ब्रह्मचर्य, व्रत-प्रत्याख्यान, बारह भावना, ज्ञान दर्शन, चारित्र, तप, दया, दान, सयम, आदि का माहात्म्य तथा प्रभाव वर्णित है। स्तुति काव्य चौबीस तीर्थंकरो, बीस विहरमानों और महान् आचार्यों तथा मुनियों से संबंधित हैं।

(3) इन विभिन्न काव्यों का महत्व दो दृष्टियों से विशेष है। साहित्यिक दृष्टि से इन कवियो ने महाकाव्य और खण्ड काव्यो के बीच काव्य-रूपो के कई नये स्तर कायम किये और उनमे लोक सगीत का विशेष सौन्दर्य भरा। वर्ण्य-विषय की दृष्टि से अधिकाश चरित काव्यों में कथा की कोई नवीनता या मौलिकता नही है। पिष्टपेषण मात्र सा लगता है। एक ही चरित्र को विभिन्न रूपो में बार-बार गाया गया है। पर इन कथाओ के माध्यम से क्षेत्रीय लोकजीवन और लोक संस्कृति का जो चित्र अंकित किया गया है, वह सांस्कृतिक दृष्टि से बडे महत्व का है। आगमिक कथाओं के अतिरिक्त अपनी परम्परा से संबद्ध जिन महान् आचार्यों मुनियों और साध्वियों पर जो सज्झाय, स्तवन और ढालें लिखी गई हैं, उनमें ऐतिहासिक शोध की पर्याप्त सामग्री हैं।

(4) यह परम्परा मूल रूप से धार्मिक क्रांति और सामाजिक जागरण से जुड़ी हुई है। इस कारण इन कवियों में धर्म के क्षेत्र में व्याप्त आडम्बर, बाह्याचार, रूढ़िवादिता और जड़ता के प्रति स्वाभाविक रूप से विद्रोह की भावना रही है। इन्होंने सदैव निर्मल संयम-साधना, आंतरिक पवित्रता और साध्वाचार की कठोर मर्यादा पर बल दिया है।

(5) इस परम्परा के कवियों का विहार क्षेत्र मुख्यतः राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब रहा है। जन्मना, राजस्थानी होकर भी अपने साधनाकाल में ये विभिन्न क्षेत्रों में पद विहार करते रहे हैं। इस कारण इनकी भाषा में स्वाभाविक रूप से अन्य प्रांतों के देशज शब्दों का समावेश हो गया है। भाषा के क्षेत्र में इन कवियों का दृष्टिकोण बड़ा उदार और लचीला रहा है। इन्होंने सदैव तत्सम प्रयोगों के स्थान पर तद्भव प्रयोगों को विशेष महत्व दिया है। भाषा की रूढ़िबद्धता से ये सदैव दूर रहे हैं। यही कारण है कि इनके काव्यों में भले ही रीतिकालीन कवियों सा चमत्कार-प्रदर्शन और कलात्मक सौन्दर्य न मिले पर भाषा विज्ञान की दृष्टि से इनके अध्ययन का विशेष महत्व है। अलंकारों के प्रयोग में ये बड़े सजग रहे हैं। उपमानों के चयन में इनकी दृष्टि शास्त्रीयता की अपेक्षा लोकजीवन पर अधिक टिकी है। लम्बे-लम्बे सांगरूपक बांधने में ये विशेष दक्ष प्रतीत होते हैं।

(6) छन्द के क्षेत्र में इनका विशेष योगदान है। जहां एक ओर इन्होंने प्रचलित मात्रिक और वर्णिक छन्दों का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है, वहां दूसरी ओर विभिन्न छन्दों को मिलाकर कई नये छन्दों की सृजना की है। ये कवि अपने काव्य का सृजन मुख्यतः जनमानस को प्रतिबोधित करने के उद्देश्य से किया करते थे, अतः समय-समय पर प्रचलित लोक धुनों और लोक प्रिय तर्जों को अपनाना ये कभी नहीं भूले। जहां वैराग्य प्रधान कवित्त और सवैये लिख कर इन्होंने मां भारती का भंडार भरा, वहां ख्यालों में प्रचलित तोड़े भी इनकी पहुच से नहीं बचे। गजल और फिल्मी धुन के प्रयोग भी आध्यात्मक के क्षेत्र में ये बड़ी कुशलता से कर सके हैं। चित्रकाव्यात्मक छन्दबद्ध रचना में तिलोक ऋषि और अमी ऋषि का योगदान विस्मृत नहीं किया जा सकता है।

(7) काव्य-निर्माण के साथ-साथ प्रति-लेखन और साहित्य-संरक्षण में भी इन कवियो की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। कई मुनियों और साध्वियों ने अपने जीवन में सैकड़ो मूल्यवान और दुर्लभ ग्रंथों का प्रतिलेखन कर, उन्हें कालकवलित होने से बचाया है। साहित्य के संरक्षण और प्रतिलेखन में इन्होने कभी भी साम्प्रदायिक दृष्टि को महत्व नहीं दिया। जो भी इन्हें ज्ञान-वर्द्धक, जनहितकारी और साहित्यिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यवान लगा, फिर चाहे वह जैन हो या जैनेतर, उसका संग्रह-संरक्षण अवश्य किया। राष्ट्रीय एकता एवं सांस्कृतिक दाय की दृष्टि से इनका योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

राजस्थानी पद्य साहित्यकार 4.

—साध्वी कनकश्री

—0:0—

सत्य एक है, अखण्ड है और शाश्वत है। लेकिन उसकी अभिव्यक्ति के स्रोत, साधन और परिवेश भिन्न-भिन्न होते हैं। यह विविधता साहित्यकार के विश्वजनीन व्यक्तित्व को भी सीमाओं, रेखाओं और नाना वर्गों में विभक्त कर देती है। साहित्य की मूल प्रेरणा है आन्तरिक संघर्ष और अपनी अनुभूतियों को जन-सामान्य की अनुभूतियों में भिगो देने की एक तीव्रतम उत्कंठा। फिर भी प्रत्येक साहित्यकार की यह मजबूरी होती है कि वह अपने कथ्य को अपने परिवेश के आवेष्टनों से आवेष्टित करके ही विश्व के सामने प्रस्तुत करता है और विश्व-चेतना उसे साम्प्रदायिकता की दृष्टि से देखने लगती है।

इस दृष्टि से देखें तो सभी जैन सम्प्रदायों के यशस्वी विद्वानों ने राजस्थानी भाषा का समादर किया है और समय-समय पर उसके साहित्य भण्डार को बहुमूल्य ग्रन्थरत्नों का अर्घ्य चढाया है। इस क्रम मे तेरापथ संघ की साहित्य-परम्परा ने भी अपने युग का सफल प्रतिनिधित्व किया है। तेरापथ के आद्य प्रणेता आचार्य श्री भिक्षु से लेकर युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी द्वारा प्रवाहित स्रोतस्विनी की एक-एक धारा इस तथ्य को उजागर करती हुई आगे बढ़ रही है। तेरापंथ संघ के अनेक-अनेक मनिषियो ने राजस्थानी साहित्य को समृद्ध बनाने में अपना महत्वपूर्ण योग दिया है।

प्रस्तुत है उनमें से कुछ चुने हुए साहित्यकारो का परिचय और उनकी पद्यबद्ध कृतियों की संक्षिप्त समीक्षा।

आचार्य श्री भिक्षु और उनकी साहित्य सेवा:—

आचार्य श्री भिक्षु तेरापंथ धर्म-संघ के प्रवर्तक थे पर अपने स्वतन्त्र दर्शन और मौलिक चिन्तन के आधार पर युग-चेतना ने उन्हें युगप्रवर्तक और क्रान्त-द्रष्टा के रूप में सहज स्वीकृति दी है।

आचार्य श्री भिक्षु की काव्य प्रतिभा नैसर्गिक थी। उन्होंने गद्य और पद्य दोनों ही विधाओं में अपनी अनुभूतियों को गूंथा है। वह समग्र साहित्य 38,000 श्लोक परिमित हो जाता है।

उनकी पद्यमय कृतियां 'भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर' नामक ग्रन्थ में संकलित हैं। उसके दो खण्ड हैं। पहले खण्ड के 938 पृष्ठों में उनकी छोटी-बडी 34 कृतियां प्रकाशित हैं और दूसरे खण्ड के 712 पृष्ठों में 21 कृतियां।

उनकी रचनाओं में सहज सौन्दर्य है, माधुर्य है, ओज है और है अद्भुत फक्कडपन के साथ पूर्ण अनाग्रहवृत्ति, ऋजु दृष्टिकोण, वीतराग प्रभु के प्रति अगाध आस्था, आगम वाणी के प्रति सम्पूर्ण समर्पण भाव और आन्तरिक विनम्रता की सुस्पष्ट झलक है।

उनकी तात्त्विक और दार्शनिक कृतियों में, एक गहनतम कृति है 'नव पदार्थ सद्भाव'। यह एक उच्चकोटि का दार्शनिक ग्रंथ है। जैन दर्शन सम्मत नौ तत्वो का सूक्ष्म प्रतिपादन जिस समग्रता और सहजता से इसमे हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

श्री मज्जाचार्य और उनकी विशाल साहित्य राशि:—

आचार्य श्री भिक्षु से लगभग एक शताब्दी पश्चात् आये, तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य श्री जीतमलजी स्वामी, जिन्हें हम जयाचार्य की अभिधा से अभिहित करते हैं। वे महान् साहित्कार थे। श्रुत समुपासना मे एकार्णवीभूत होकर उन्होने जो पाया और युग को दिया वह आज भी उनकी प्रचुर साहित्य राशि मे सुरक्षित है।

अद्वितीय टीकाकार:—

जयाचार्य की प्रतिभा चमत्कारी थी। उनकी साहित्यिक प्रतिभा बचपन में ही परि-स्फुट थी। ग्यारह वर्ष की किशोरावस्था में 'सन्तगुणमाला' नामक कृति की संरचना कर उन्होंने समूचे संघ को चोंका दिया था। यौवन की दहलीज पर पाव धरते ही मानों उनका कवि एक साथ अगडाई लेकर जाग उठा और मात्र 18 वर्ष की वय मे उन्होंने 'पन्नवणा' जैसे गहनतम जैन आगम पर, राजस्थानी भाषा मे पद्यबद्ध टीका लिख डाली। उसके बाद तो उनकी साहित्य स्रोतस्विनी इतनी तीव्र गति से बही कि थामे भी नही थमी। अपने जीवन काल में साढे तीन लाख पद्य प्रमाण ग्रन्थ रचना कर मानो उन्होंने राजस्थानी साहित्य की दिशा मे नये युग का सूत्रपात कर दिया।

'भगवती की जोड' आपकी अद्वितीय कृति है। यह है वृहत्तम जैन आगम भगवती की पद्यबद्ध राजस्थानी टीका। 80,000 पद्य परिमित यह अनुपम कृति अपनी दुरूहता की स्वयभूत प्रमाण है। सरस राग-रागिनियो मे सहब्ध यह टीका साहित्य-जगत् की अमूल्य धरोहर है।

इसके अतिरिक्त निशीथ, आचाराग और उत्तराध्ययन की पद्यबद्ध टीकायें लिखकर उन्होंने न केवल नई साहित्यिक विधा को जन्म दिया, बल्कि उसे सर्वजनीन बनाने मे भी वे सफल सिद्ध हुये हैं।

जयाचार्य पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने जैन आगमो की पद्यमय टीकायें लिखकर राजस्थानी साहित्य को गौरवान्वित किया। उन टीकाओं के माध्यम से उन्होंने गूढ़तम सैद्धातिक प्रश्नो को समाहित किया और चिन्तन के नये आयाम उद्घाटित किये। टीकाओ की भाषा सरस, सरल और प्रवाहपूर्ण है। उनकी लेखनी की क्षमता अद्भुत थी। एक दिन मे तीन-तीन सो पद्या का निर्माण कर लेना उनके लिये कोई कठिन नही था। तभी तो वे 'भगवती की जोड' जैसे महाग्रथ को पांच वर्षों का स्वल्प अवधि मे तैयार कर सके।

भक्त कवि:—

जयाचार्य एक उच्चकोटि के भक्त कवि थे। भक्ति रस से ओतप्रोत उनकी अनेक रचनाए जब लोक-गीतो के रूप मे जन-जन के मुह पर थिरकती हैं तो व्यक्ति की अध्यात्म चेतना झंकृत हो उठती है। 'चौबीसी' (चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति) आपकी ऐसी ही भक्ति प्रधान जनप्रिय कृति है। एक अध्यात्म कृति होते हुये भी उसका साहित्यिक रूप भी कम निखरा हुआ नहीं है।

उन्होंने तात्विक और दार्शनिक विषयों में स्वतन्त्र रूप से भी बहुत कुछ लिखा है। जिनमें 'झीणी चरचा, झीणों ज्ञान, प्रश्नोत्तर तत्व बोध और जिनाज्ञा को चौढालियो' प्रमुख है। चरित्र प्रबन्धों में 'भिक्षु जस रसायण, हेमन बरसो, सरदार सुजस, महिपाल चरित्र' प्रमुख हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि जयाचार्य की नाना विधाओं में विनिर्मित साहित्य राशि अपनी मौलिकता की प्रस्तुति के साथ-साथ शोध विद्वानों के लिये प्रचुर सामग्री प्रस्तुत कर रही है। उनकी अमर कृतियां राजस्थानी साहित्य की अप्रतिम उपलब्धि है।

युग प्रधान आचार्य श्री तुलसी और उनकी काव्य-कृतियां:—

युग प्रधान आचार्यश्री तुलसी तेरापंथ संघ के नौवें अधिशास्ता और जैन परम्परा के महान् वर्चस्वी युगप्रभावक आचार्य हैं। आप ग्यारह वर्ष की वय में मुनि बने, बाईस वर्ष की अवस्था में तेरापंथ के आचार्य बने। पैंतीस वर्ष की वय में अणुव्रत अनुशास्ता बने और एक महान् नैतिक क्रांति के सूत्रधार बनकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर एक महान् शक्ति के रूप में उभर आए।

आचार्यश्री की साहित्यिक प्रतिभा अनेक-अनेक धाराओं में बही है और दर्शन, न्याय, सिद्धांत, काव्य आदि साहित्य की नाना विधाओ मे परिस्फुटित हुई है। आपने जहां हिन्दी और संस्कृत को अपनी अमूल्य काव्य-कृतिया और ग्रन्थ-रत्न समर्पित किए हैं वहां अपनी मातृ-भाषा के चरणो मे भी अनर्घ्य मणियों का अर्घ्य चढ़ाया है। उन्होंने राजस्थानी भाषा मे बहुत कुछ लिखा है, जिसमे उल्लेखनीय है—'श्री कालू उपदेश वाटिका, श्री कालू यशोविलास, माणक महिमा, डालिम चरित्र, मगन चरित्र' आदि कृतियां।

कालू उपदेश वाटिका.—

आचार्यश्री के भावप्रवण औपदेशिक गीतों एव भजनों का उत्कृष्ट कोटि का संकलन है यह, इन गीतो में मीरां की भक्ति और कबीर का फक्कड़पन दोनों ही प्रखरता लिये हुये है।

श्री कालू यशोविलास.—

आचार्यश्री की अप्रतिम काव्य कृति है—श्री कालू यशोविलास। राजस्थानी भाषा में संदृब्ध यह कृति काव्य परम्परा की बेजोड़ कड़ी है। भाषा की संस्कृत निष्ठता ने राजस्थानी भाषा के गौरव को कम नहीं होने दिया है, प्रत्युत इसकी सजीवता और समृद्धि का संवर्द्धन ही किया है।

माणक महिमा:—

माणक महिमा आचार्यश्री की राजस्थानी भाषा में ग्रथित दूसरी काव्य कृति है। इसमें तेरापंथ के छठे आचार्यश्री माणक गणी की जीवन-गाथा गुम्फित है। इसमे तेरापंथ संघ की गौरवशाली परम्परा, इतिहास और तत्कालीन परिस्थितियो को जिस पटुता से गूंथा गया है वह कवि की व्यंजना शक्ति, भाव प्रवणता और अतीत को वर्तमान से सम्पृक्त कर देने की अद्भुत क्षमता का परिचायक है।

प्रस्तुत कृति में प्राकृतिकता चित्रण और काल्पनिक की अपेक्षा कवि ने मानवीय भावों के आकलन में अधिक सफलता पाई है। कवित्व की दृष्टि से अनेक स्थल बड़े ही चमत्कारी

और कलापूर्ण बन पड़े हैं। कही-कही अनुभूतियों की तीव्रता और कविता में उतर आई कवि की संवेदनशीलता हृदय को झकझोर देती है।

डालिम चरित्र—

इस प्रबन्ध काव्य मे तेरापथ के सप्तम आचार्यश्री डालगणी के गरिमामय व्यक्तित्व की विस्तृत झांकी प्रस्तुत की है आचार्यश्री तुलसी ने सरल भाषा और आकर्षक शैली मे। काव्य-नायक का व्यक्तित्व स्वतः स्फूर्त था और नेतृत्व सक्षम। उनकी वरिष्ठता का प्रमाण है, संघ के द्वारा आचार्य पद के लिये उनका निर्विरोध चुनाव।

आचार्य चरितावली की पूरक कड़िया.—

तेरापन्थ के पाच पूर्वाचार्यों का यशस्वी जीवन चरित्र 'आचार्य चरितावली' नामक ग्रंथ के दो खण्डो मे प्रकाशित है जो तेरापन्थ की सन्त परम्परा के विभिन्न कवियों द्वारा अपनी-अपनी शैली और अपने-अपने ढग से प्रणीत है। इन कृतियो का भी राजस्थानी पद्य-साहित्य परम्परा मे गौरवपूर्ण स्थान है। अपने पूर्वाचार्यों का प्रामाणिक जीवन वृत्त लिखकर तेरापन्थ सघ ने साहित्य-जगत् को अपनी मौलिक देन दी है। पश्चातवर्ती तीन आचार्यों के जीवन-वृत्त अलिखित थे, आचार्यश्री की चमत्कारी काव्य प्रतिभा का योग मिला, उस कमी की पूर्ति हुई। 'माणक महिमा, डालम चरित्र और कालू यशोविलास' ये तीनो काव्य कृतिया आचार्य चरितावली की अधूरी श्रृंखला की पूरक कडिया बन गई है।

मगन चरित्र —

मगन चरित्र आचार्यश्री तुलसी का राजस्थानी गेय काव्य है, जिसमे एक ऐसे महामना व्यक्ति की जीवन-गाथा कविता के कमनीय स्वरो मे मुखर हुई है, जिसने तेरापन्थ के पांच-पांच आचार्यों के विभिन्न युगो मे अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और आचार्यश्री ने उनकी विरल-ताओ का मूल्याकन कर उन्हे मन्त्री पद से समलंकृत किया था। वे थे शासन-स्तम्भ मुनि श्री मगनलाल जी स्वामी जिनकी विभिन्न भूमिकाओं का सक्षिप्त चित्र प्रस्तुत है कवि के शब्दों में—

मघवा मान्यों, माणक जान्यो, सम्मान्यो गणि डाल।
कालू अपनो मग पिछाण्यो, तुलसी मानी ढाल॥

तेरापन्थ के साधु-साध्वियो ने भी राजस्थानी भाषा मे बहुत कुछ लिखा है। उनका गीति साहित्य और आख्यान साहित्य राजस्थान के पद्यात्मक वाङ्मय में अपना विशिष्ट स्थान रखता है और लोक-जीवन को प्रभावित करने मे वह काफी सफल रहा है।

राजस्थानी पद्य साहित्यकार 5

—डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल

(1) भट्टारक सकलकीर्ति (सवत् 1443-1499)

भट्टारक सकलकीर्ति सस्कृत के समान ही राजस्थानी भाषा के भी जबरदस्त विद्वान थे। इसलिये जहा उन्होंने एक ओर सस्कृत भाषा मे 28 से भी अधिक कृतिया निबद्ध की वहा राजस्थानी में भी सात रचनायें छन्दोबद्ध करके राजस्थानी के प्रचार-प्रसार मे महत्वपूर्ण योग दिया है। ये 15वीं शताब्दी के विद्वान् थे तथा इनका मुख्य केन्द्र मेवाड, बागड एवं राजस्थान मे मिलने वाले गुजरात के नगर एव गाव थे। इनकी राजस्थानी रचनाओ के नाम निम्न प्रकार हैं —

आराधना प्रतिबोध सार	सोलहकारण रास
नेमीश्वर गीत	सार सीखामणि रास
मुक्तावलि गीत	शान्तिनाथ फागु
णमोकार फल गीत	

ये सभी कृतिया भाषा साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। णमोकार फल गीत में 15 पद्य हैं जिनमे णमोकार मन्त्र का महात्म्य एव उसके फल का वर्णन है। आराधना प्रतिबोध सार मे 55 पद्य हैं जिनमे विविध विषयो का वर्णन मिलता है। इसी तरह सार सीखामणि रास शिक्षाप्रद रचना है। इसमे 4 ढालें और तीन वस्तुबध छन्द है। मुक्तावली गीत, सोलहकारण रास एव शान्तिनाथ फागु भी लघु रचनाये अवश्य है किन्तु राजस्थानी भाषा एव शैली की दृष्टि से अवश्य महत्वपूर्ण है। नेमीश्वरगीत एव मुक्तावली गीत उनकी सगीत प्रधान रचनायें हैं।

(2) ब्रह्म जिनदास —

ब्रह्म जिनदास भट्टारक सकलकीर्ति के प्रमुख शिष्य थे। इसलिये ये योग्य गुरु के योग्यतम शिष्य थे। साहित्य सेवा ही इनके जीवन का एक मात्र उद्देश्य था। यद्यपि इनका संस्कृत एवं राजस्थानी दोनो भाषाओं पर समान अधिकार था लेकिन राजस्थानी से उन्हे विशेष अनुराग था इसलिये 50 से भी अधिक रचनाये इन्होने इसी भाषा मे लिखी। राजस्थानी भाषा के ब्रह्म जिनदास सभवत प्रथम महाकवि हे जिन्होंने इतनी अधिक सख्या मे काव्य रचना की हो। अपने जीवन काल मे और उसके सैकडो वर्षो बाद तक राजस्थानी भाषा को प्रश्रय देना इनकी बहुत बड़ी सेवा मानी जानी चाहिये।

ब्रह्म जिनदास के जन्म, जन्म-तिथि, जन्म-स्थान आदि के बारे मे तो निश्चित जानकारी नहीं मिलती। यह अवश्य है कि ये भ. सकलकीर्ति के शिष्य थे साथ ही लघु भ्राता भी थे। इसलिये भ सकलकीर्ति का उन पर सबसे अधिक अनुराग रहा होगा। इन्होंने सबसे अधिक रास संज्ञक काव्य लिखे जिससे पता चलता है कि वे काव्य की इस विधा को सबसे अधिक मान्यता देने वाले महाकवि थे। रामरास का इन्होंने सवत् 1508 मे तथा हरिवश पुराण को संवत् 1520 में निबद्ध किया था। शेष रचनाओ मे इन्होंने इनकी समाप्ति का कोई समय नहीं दिया। इन महाकवि की रचनाओं को हम चार भागो मे विभक्त कर सकते है :—

(1) पुराण साहित्य :—

आदिनाथ पुराण	हरिवंश पुराण

(2) रासक साहित्य :—

राम सीता रास	यशोधर रास	हनुमत रास
नागकुमार रास	परमहंस रास	अजितनाथ रास
होली रास	धर्मपरीक्षा रास	ज्येष्ठ जिनवर रास
श्रेणिक रास	सम्यक मिथ्यात्व रास	सुदर्शन रास
अम्बिका रास	नागश्री रास	श्रीपाल रास
जम्बूस्वामी रास	भद्रबाहु रास	कर्मविपक रास
सुकोशलस्वामी रास	रोहिणी रास	सोलहकारण रास
दश लक्षण रास	अनन्तव्रत रास	बकचूल रास
धन्यकुमार रास	चारुदत्त प्रबन्ध रास	पुष्पांजलि रास
धनपाल रास	भविष्यदत्त रास	जीवन्धर रास
नेमीश्वर रास	करकण्डु रास	सुभौमचक्रवर्ति रास
अठावीस मूलगुण रास		

(3) गीत एवं स्तवन —

मिथ्या-दुकड विनती	आदिनाथ स्तवन	बारहव्रत गीत
आलोचना जयमाल	जीवडा गीत	स्फुट वीनती, गीत आदि
जिणदगीत		

(4) कथा साहित्य :—

रविव्रत कथा	अष्टाग सम्यक्त्व कथा	व्रत कथा कोष
चौरासी जाति जयमाल	भट्टारक विद्याधरकथा	पञ्च परमेष्ठि गुणवर्णन

पूजा साहित्य :—

गुरु जयमाल	गुरु पूजा	शास्त्र पूजा
जम्बूद्वीप पूजा	सरस्वती पूजा	निर्दोष सप्तमी व्रत पूजा

भाषा :—

कवि के मुख्य क्षेत्र की भाषा गुजराती होने के कारण इनकी सभी रचनाओं पर गुजराती का स्पष्ट प्रभाव है। इसलिये कही-कही तो ऐसा लगने लगता है जैसे मानों वह गुजराती की ही रचना हो। ब्रह्म जिनदास ने अपने गुरु भ. सकलकीर्ति का प्रत्येक रचना मे उल्लेख ही नहीं किया किन्तु श्रद्धा के साथ उनकी वन्दना भी की है।

ब्रह्म जिनदास की कृतियो में काव्य के विविध लक्षणों का समावेश है। यद्यपि प्रायः सभी काव्य शान्त-रस पर्यवसायी हैं लेकिन वीर, शृंगार, हास्य आदि रसों का भी यत्र-तत्र प्रयोग

हुआ है। कवि में अपने मन्तव्य को आकर्षक रीति से कहने की क्षमता है। कवि की रचनाएं सदा ही लोकप्रिय रहे हैं। आज भी राजस्थान के पचासों शास्त्र भण्डार इनकी कृतियों से समलंकृत हैं।

(3) पद्मनाभ :—

ये राजस्थानी विद्वान थे और चित्तौड़ इनका निवास स्थान था। अभी तक इनकी एक रचना बावनी उपलब्ध हुई है जिसे इन्होंने संघपति डूंगर के आग्रह से लिखी थी। बावनी का रचना काल सन् 1486 है। इसमे सभी 54 छन्द छप्पय छन्द हैं। राजस्थानी भाषा एवं शैली की दृष्टि से यह एक उच्चस्तरीय रचना है। इसका दूसरा नाम 'डूंगर की बावनी' भी है क्योंकि बावनी के प्रत्येक छन्द में संघपति डूंगर को सबोधित किया गया है।

(4) ठक्कुरसी :—

कविवर ठक्कुरसी राजस्थानी के अच्छे विद्वान थे। इनकी लिखी हुई अब तक 5 रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं जिनके नाम हैं —पार्श्वनाथ सत्तावीसी, शील बत्तीसी, पंचेन्द्रिय बेलि, कृपण चरित्र एवं नेमि राजमति बेलि। प्रथम रचना संवत् 1578 मे तथा दूसरी एवं तीसरी रचना संवत् 1585 मे समाप्त हुई थी। यद्यपि ये सभी लघु रचनायें हैं लेकिन भाषा एवं वर्णन शैली की दृष्टि से ये उच्चकोटि की कृतिया हैं। कविवर ठक्कुरसी अपनी रचनाओं के कारण राजस्थान मे काफी लोकप्रिय रहे। भण्डारों मे पंचेन्द्रिय बेलि, कृपण चरित्र जैसी रचनाएं अच्छी संख्या मे उपलब्ध होती हैं।

इनके पिता का नाम घेल्ह अथवा थेल्ह था। ये राजस्थान के किस प्रदेश में निवास करते थे इसके बारे मे इनकी रचनायें मौन है।

(5) छीहल :—

राजस्थानी कवियों में छीहल का नाम विशेषत: उल्लेखनीय है। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों में इनकी प्रमुख रचना बावनी पर्याप्त संख्या मे उपलब्ध है। ये अग्रवाल जैन थे और इनके पिता का नाम नाथू था। अब तक इनकी पाच कृतियां उपलब्ध हो चुकी हैं जिनके नाम निम्न प्रकार हैं :—

पंच सहेली गीत	पंथी गीत	बावनी
उदरगीत	बेलि	गीत (रे जीव-जगत सुपणों जाणि)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं डा. रामकुमार वर्मा ने भी अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में कवि के पंच पहेली गीत का उल्लेख किया है।

उक्त रचनाओं में पंथी गीत एवं पंच पहेली गीत का रचनाकाल संवत् 1575 तथा बावनी का संवत् 1584 है। बावनी कवि की सबसे बड़ी रचना है जो एक से अधिक विषयों के वर्णन से युक्त है। जिसमे संसार की दशा, नारी चरित्र आदि विषय प्रमुख हैं। बावनी के प्रत्येक छंद में कवि ने अपने नाम का उल्लेख किया है। कवि की शेष सभी रचनायें गीतों के रूप में है जिससे पता चलता है कि तत्कालीन जन साधारण को हिन्दी भाषा की ओर आकृष्ट

[illegible] के लिए गीतात्मक शैली अपनायी है। कवि ने प्रत्येक विषय का सूक्ष्म वर्णन किया है भाषा एवं शैली की दृष्टि से सभी रचनायें ठीक हैं।

(6) आचार्य सोमकीर्ति :—

आचार्य सोमकीर्ति 15वीं शताब्दी के उद्‌भट विद्वान् प्रमुख साहित्य सेवी एवं उत्कृष्ट जैन संत थे। वे स्वाध्याय करते, साहित्य सृजन करते और लोगों को उसकी महत्ता बतलाते। ये संस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी एव गुजराती भाषा के प्रसिद्ध विद्वान् थे। आचार्य सोमकीर्ति काष्ठासंघ के नन्दीतट शाखा के सन्त थे। सवत् 1518 में रचित एक ऐतिहासिक पट्टावली में इन्होंने अपने आपको काष्ठासंघ का 7वा भट्टारक लिखा है। राजस्थानी भाषा में अब तक इनकी 6 रचनायें उपलब्ध हो चुकी है। इनके नाम निम्न प्रकार है :—

गुर्वावली	यशोधर रास	रिषभनाथ स्तुति
मल्लिनाथ गीत	आदिनाथ विनती	त्रेपन क्रियागीत

गुर्वावली संस्कृत एव राजस्थानी मिश्रित रचना है। इस कृति के आधार पर संवत् 1518 में रचित राजस्थानी गद्य का नमूना देखा जा सकता है। यशोधर रास कवि की सबसे बड़ी रचना है। इसे उसने सवत् 1536 मे लिखा था। ऋतुओ, पेड-पत्तों एवं प्राकृतिक दृश्यों का इस काव्य मे अच्छा वर्णन हुआ है। शेष सभी कृतिया सामान्य हैं।

(7) भ. ज्ञानभूषण :—

भट्टारक ज्ञानभूषण विक्रम की 16वी शताब्दी के विद्वान थे। ये भ. भुवनकीर्ति के शिष्य थे। ये संवत् 1530-31 मे किसी समय भट्टारक गादी पर बैठे और 1560 के पूर्व तक भट्टारक रहे। ये संस्कृत, प्राकृत, गुजराती एव राजस्थानी के प्रमुख विद्वान थे। अब तक इनके 10 संस्कृत ग्रन्थ एवं 5 राजस्थानी भाषा म निबद्ध ग्रथ मिल चुक है। राजस्थानी कृतियों के नाम निम्न प्रकार हैं :—

आदीश्वर फाग	जल गालण रास	पोसह रास
षट् कर्म रास	नागद्रा राम	

आदीश्वर फाग राजस्थानी भाषा की अच्छी कृति है। फाग सज्ञक काव्यों में इसका विशिष्ट स्थान है। यह कृति भी सस्कृत एव राजस्थानी भाषा मे निबद्ध है। इसमें दोनों भाषाओं के 501 पद्य है जिनमे 262 राजस्थानी और शेष 239 सस्कृत पद्य है।

कवि की अन्य सभी रचनायें भी भाषा, विषय वर्णन एवं छन्दो की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। ज्ञानभूषण ने राजस्थानी भाषा के विकास मे जो योगदान दिया वह सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

(8) ब्रह्म बूचराज :—

राजस्थानी भाषा में रूपक काव्यों के निर्माता की दृष्टि से ब्रह्म बूचराज का उल्लेखनीय स्थान है। इनकी रचनाओं के आधार पर इनका समय संवत् 1530 से 1600 तक का माना जा सकता है। मयणजुज्झ इनकी सर्वाधिक लोकप्रिय रचना रही जिसकी कितनी ही पाण्डुलिपियां राजस्थान के विभिन्न भण्डारों में उपलब्ध होती है। कवि पूर्णतः आध्यात्मिक थे

और अपने काव्यों मे भी उसने मानव के असद् गुणों पर सद्गुणों की विजय बतलायी है। मयणजुज्झ में कामदेव पर विजय प्राप्ति का जो चित्र उपस्थित किया है वह बड़ा ही आकर्षक है। इसी तरह उसने सन्तोष तिलक जयमाल मे सन्तोष की लोभ पर जो विजय बताई है वह अपने दृष्टि का अकेला काव्य है और अपनी चेतन पुद्गल धमाल मे जो जड़ और चेतन का द्वन्द बतलाया है तथा जन्म जन्मान्तरो से चले आ रहे संघर्ष को जिन शब्दों मे उपस्थित किया है वह कवि के काव्यत्व शक्ति एवं काव्य प्रतिभा का परिचायक है। चेतन और जड़ का संवाद बहुत ही सुन्दर रीति से प्रस्तुत किया गया है।

ब्रह्म बूचराज की अब तक निम्न रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं:—

मयणजुज्झ (मदनयुद्ध)	संतोष तिलक जयमाल	चेतन पुद्गल धमाल
टंडाणा गीत	नेमिनाथ वसंतु	नेमीश्वर का बारहमासा
विजयकीर्ति गीत	पद	

(9) ब्रह्म यशोधर (संवत् 1520-90) :—

ब्रह्म यशोधर काष्ठासघ मे होने वाले भ सोमकीर्ति के प्रशिष्य एवं विजयसेन के शिष्य थे। ये महाव्रती थे। इनका विहार स्थान राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश रहा। विभिन्न उपलब्ध प्रमाणो के आधार पर इनका समय सवत् 1520 से 1590 तक माना जा सकता है। इनकी अब तक निम्न कृतिया प्राप्त हो चुकी हैं :—

नेमिनाथ गीत (सं. 1581)	नेमिनाथ गीत	मल्लिनाथ गीत
नेमिनाथ गीत	बलिभद्र चौपई	

ब्रह्म यशोधर की काव्य शैली परिमार्जित है। वे किसी भी विषय को सरल शब्दों में प्रस्तुत करने मे सक्षम थे। उन्होने नेमिनाथ पर तीन गीत लिखे लेकिन तीनो ही गीतों में अपनी-अपनी विशेषताए है। बलिभद्र चौपई इनकी सबसे अच्छी काव्य कृति है। यह श्रीकृष्ण एवं बलराम के सहोदर प्रेम की एक उत्तम कृति है। यह लघु काव्य है। निखरी हुई भाषा में निबद्ध यह काव्य राजस्थानी भाषा की उत्तम कृति है। अभी इनकी और भी कृतियां मिलने की संभावना है।

(10) भट्टारक शुभचन्द्र—

भट्टारक शुभचन्द्र भ. विजयकीर्ति के शिष्य थे। संवत् 1530 के आस पास इनका जन्म हुआ और बाल्यकाल मे ही इनका भट्टारको से सम्पर्क हो गया। सवत् 1573 में ये भट्टारक बने और इस पद पर सवत् 1613 तक बने रहे। इन्होने देश के विभिन्न भागों में विहार किया और जीवन पर्यन्त सद् साहित्य का प्रचार करने में लगे रहे। इन्होने ग्रथो का भारी अध्ययन किया और जनता द्वारा ये षट्भाषा चक्रवर्ति कहलाए जाने लगे। अब तक इनकी 24 संस्कृत रचनायें एवं 7 राजस्थानी रचनायें प्राप्त हो चुकी हैं।

राजस्थानी रचनाओं के नाम निम्न प्रकार हैं:—

महावीर छन्द	विजयकीर्ति छन्द	गुरुछन्द
नेमिनाथ छन्द	दान छन्द	तत्वसार दूहा
आदि।		

इनकी भी सभी रचनायें लघु हैं। तत्वसार दूहा में 91 छन्द हैं जो जैन सिद्धांतों पर आधारित हैं। इनकी भाषा संस्कृत-निष्ठ है। कितने ही शब्दों का अनुस्वार सहित ज्यों का त्यों प्रयोग कर लिया गया है। सभी रचनायें मौलिक एवं पठनीय हैं।

(11) ब्रह्म जयसागरः—

ब्रह्म जयसागर भ. रत्नकीर्ति के प्रमुख शिष्यों में से थे। इनका समय संवत् 1580 से 1665 तक का माना जा सकता है। इनकी निम्न रचनायें महत्वपूर्ण हैं:—

नेमिनाथ गीत	जसोधर गीत	पंचकल्याणक गीत
चूनडी गीत	सघपति मल्लिदासजी गीत	
क्षेत्रपाल गीत	शीतलनाथ नी वीनती	

पंचकल्याणक गीत कवि की सबसे बड़ी कृति है। इसमें 70 पद्य हैं। राजस्थानी भाषा में लिखे गये ये सभी गीत अत्यधिक लोकप्रिय रहे हैं। चूनडी गीत एक रूपक गीत है। इसमें नेमिनाथ के बन चले जाने पर उन्होंने अपने चरित्र रूपी चुनडी को किस रूप मे धारण किया इसका संक्षिप्त वर्णन है।

(12) आचार्य चन्द्रकीर्तिः—

आचार्य चन्द्रकीर्ति 17वीं शताब्दी के विद्वान् थे। ये भ. रत्नकीर्ति के शिष्य थे। कांकरोली, डूगरपुर, सागवाड़ा आदि नगर इनके साहित्य निर्माण के केन्द्र थे। 'सोलहकारण-रास, जयकुमाराख्यान, चारित्र चूनडी, चोरासी लाख जीव योनि वीनती' ये चार रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं।

सोलहकारण रास एक लघु कृति है जिसमे 46 पद्य हैं। उसे भडौच (गुजरात) के शान्तिनाथ मन्दिर मे रची गई थी। जयकुमाराख्यान 4 सर्गों में विभक्त एक खण्ड काव्य है जिसमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र सम्राट भरत के सेनाध्यक्ष का भव्य जीवन-चरित्र वर्णित है। आख्यान वीर रस प्रधान है। इसकी रचना बारडोली नगर के चन्द्रप्रभ चैत्यालय में संवत् 1655 की चैत्र शुक्ला दशमी के दिन समाप्त हुई थी। शेष दोनो ही कृतियां लघु कृतियां हैं।

(13) मुनि महनन्दिः—

मुनि महनन्दि भ. वीरचन्द्र के शिष्य थे। इनकी एक मात्र कृति बारक्खरी दोहा उपलब्ध होती है। इस कृति का दूसरा नाम दोहा पाहुड भी है। इसमे विविध विषयों का वर्णन किया हुआ है जिनमें उपदेशात्मक, आध्यात्मिक एव नीति परक दोहे प्रमुख रूप से हैं।

(14) ब्रह्म रायमल्लः—

ब्रह्म रायमल्ल 17वीं शताब्दी के विद्वान् थे। राजस्थानी भाषा के विद्वान् सन्तों में इनका उल्लेखनीय स्थान है। ये मुनि अनन्तकीर्ति के शिष्य थे। ये राजस्थान के विभिन्न नगरों में विहार किया करते थे तथा वहीं पर श्रावकों के आग्रह से नवीन कृतियां निबद्ध करते रहते थे।

इनमें सांगानेर, रणथम्भौर, सांभर, टोडारायसिंह, हारसोर आदि स्थानों के नाम उल्लेखनीय हैं। अब तक इनकी निम्न रचनाएं उपलब्ध हो चुकी हैं।

नेमीश्वर रास (1615)	हनुमन्त रास (1616)	प्रद्युम्न रास (1628)
सुदर्शन रास (1629)	श्रीपाल रास (1630)	भविष्यदत्त रास (1633)
परमहंस चौपई (1636)	जम्बूस्वामी चौपई	निर्दोष सप्तमी कथा
आदित्यवार कथा	चिन्तामणि जयमाल	छियालीस ढाणा
चन्द्रगुप्त स्वप्न चौपई	ज्येष्ठ जिनवर कथा	

उक्त सभी कृतियों की भाषा राजस्थानी है तथा गीतात्मक शैली में लिखी हुई है। ऐसा लगता है कि कवि अथवा इनके शिष्य इन कृतियो को सुनाया करते थे। इसलिये कृतियो की भाषा अत्यधिक सरल एवं रुचिकर है। भविष्यदत्त रास इनकी सबसे अच्छी कृति है जिसमें 115 दोहा-चौपई हैं तथा नगरो, वहा के बाजारों में चलने वाला व्यापार, रहन-सहन आदि का भी सुन्दर वर्णन किया है। भविष्यदत्त रास मे सागानेर का इसी तरह का एक वर्णन देखिये.—

सोलहसै तैतीसै सार, कातिग सुदि चौदसि शनिवार,
स्वाति नक्षित्र सिद्धि शुभ जोग, पीडा दुख न व्यापै रोग ।908।
देस ढूंढाहड सोभा घणी, पूजै तहा आलि मण तणी ।
निर्मल तलौ नदी बहु फैरि, सुखस बसै बहु सागानेरि ।909।
चहुदिसि बण्डा भला बाजार, भरे पटोला मोती हार ।
भवन उत्तु ग जिनेसुर तणा, सोने चन्दवो तोरण घणा ।910।
राजा राजै भगवतदास, राजकुबर सेवहि बहुतास ।
परिजा लोग सुखी सुख वास, दुखी दलिद्री पूरवै आस ।।

(15) छीतर ठोलिया.—

छीतर ठोलिया मोजमाबाद के निवासी थे। उनकी जाति खण्डेलवाल एव गोत्र ठोलिया था। इनकी एक मात्र रचना होली की कथा सवत् 16 ०0 की कृति है जिसमे उन्होने अपने ही ग्राम मोजमाबाद में निबद्ध की थी। उस समय नगर पर आमेर के महाराजा मानसिंह का शासन था।[1]

(16) हर्षकीर्ति —

हर्षकीर्ति राजस्थान के जैन सन्त थे। इन्होने राजस्थानी एवं हिन्दी में कितनी ही छोटी बड़ी रचनायें निबद्ध की थी। चतुर्गति वेलि इनकी अत्यधिक लोकप्रिय रचना रही है जिसे इन्होंने सवत् 1633 मे समाप्त किया था। ये आध्यात्मिक कवि थे। नेमिराजुल गीत, नेमीश्वर गीत, मोरडा, कर्महिण्डोलना, पंचगति वेलि आदि सभी आध्यात्मिक रचनायें हैं। कवि द्वारा निबद्ध कितने ही पद भी मिलते है जो अभी तक प्रकाश में नहीं आये हैं। कवि की एक और रचना क्षेपनक्रिया रास की खोज की जा चुकी है। यह संवत् 1684 मे रची गई थी।

(17) ठाकुर.—

ठाकुर कवि 17वीं शताब्दी के कवि थे। कवि किस प्रदेश के थे तथा माता-पिता कौन थे इस संबंध में कोई जानकारी नहीं मिलती। इनकी एक मात्र कृति शान्तिनाथ पुराण की एक

1. शाकम्भरी के विकास में जैन धर्म का योगदान—डा. कासलीवाल, पृ. 47।

पाण्डुलिपि अजमेर के भट्टारकीय ग्रंथ भण्डार में संग्रहीत है। इसका रचनाकाल संवत् 1652 है। पुराण विस्तृत है तथा सभी काव्यगत तत्वों से युक्त है।

(18) देवेन्द्र:—

यशोधर के जीवन पर सभी भाषाओं मे कितने ही काव्य लिखे गये हैं। राजस्थानी एवं हिन्दी में भी विभिन्न कवियो ने इस कथा को अपने काव्यो का आधार बनाया है। इन्हीं काव्यों में देवेन्द्र कृत यशोधर चरित भी है जिसकी पाण्डुलिपि डूगरपुर के शास्त्र भण्डार मे उपलब्ध है। काव्य वृहद् हैं। इसका रचना काल स. 1683 है। देवेन्द्र विक्रम के पुत्र थे जो स्वयं भी संस्कृत एवं हिन्दी के अच्छे कवि थे। कवि ने महुआ नगर में यशोधर की रचना समाप्त की थी—

सवत् 16 आठ त्रीसि आसो सुदी बीज शुक्रवार तो।
रास रच्यो नवरस् भर्यो महुआ नगर मझार तो।।

कवि ने अपनी कृति को नवरस से परिपूर्ण कहा है।

(19) कल्याणकीर्ति:—

भट्टारक सकलकीर्ति की परम्परा मे होने वाले मुनि देवकीर्ति के शिष्य कल्याणकीर्ति थे। ये 17वी शताब्दी के विद्वान् थे। कवि की अब तक निम्न रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं—

चारुदत्त चरित्र (1692) पार्श्वनाथ रासो (1697)
श्रेणिक प्रबन्ध बधावा

चारुदत्त चरित्र में सेठ चारुदत्त के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। रचना दूहा और चौपई छन्द मे है। इसका दूसरा नाम चारुदत्त रास भी है। इस कृति को इन्होंने भिलोडा ग्राम मे निबद्ध की थी। श्रेणिक सबध तो इन्होने बागड देश के कोंटनगर मे सवत् 1705 मे लिखा था।

कल्याणकीर्ति राजस्थानी भाषा के अच्छे कवि है। इनके द्वारा रचित सस्कृत रचनाये भी मिलती है जिनके नाम जीरावली पार्श्वनाथ स्तवन, नवग्रह स्तवन एवं तीर्थंकर विनती है।

(20) वर्द्धमान कवि.—

भगवान् महावीर पर यह प्राचीनतम रास संज्ञक कृति है जिसका रचना काल संवत् 1665 है। रास के निर्माता वर्धमान कवि हैं। काव्य की दृष्टि से यह अच्छी रचना है। वर्धमान कवि ब्रह्मचारी थे और भट्टारक वादिभूषण के शिष्य थे। रास की एकमात्र पाण्डुलिपि उदयपुर के अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर में संग्रहीत है।

(21) भट्टारक वीरचन्द्र:—

वीरचन्द्र प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् थे। व्याकरण एवं न्यायशास्त्र के प्रकाण्ड वेत्ता थे। संस्कृत, प्राकृत, गुजराती एवं राजस्थानी पर इनका पूर्ण अधिकार था। ये भ. लक्ष्मीचन्द्र के

शिष्य थे। ये 17वीं शताब्दी के विद्वान् थे। अब तक इनकी आठ रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं जिनके नाम निम्न प्रकार हैं.—

वीरविलास फाग	संबोध सत्ताणु	जम्बूस्वामी वेलि
नैमिनाथ रास	जिन आंतरा	चित्तनिरोध कथा
सीमंधर स्वामी गीत	बाहुबलि वेलि	

वीरविलास फाग एक खण्ड काव्य है जिसमे 22 वें तीर्थं कर नैमिनाथ की जीवन घटना का वर्णन किया गया है। फाग मे 137 पद्य हैं। जम्बूस्वामी वेलि एक गुजराती मिश्रित राजस्थानी रचना है। जिन आंतरा मे 24 तीर्थंकरों के समय आदि का वर्णन किया गया है। संबोध सत्ताणु एक उपदेशात्मक गीत है जिसमें 57 पद्य हैं। चित्तनिरोधक कथा 15 पद्यो की एक लघु कृति है इसमें भ वीरचन्द्र को 'लाड नीति शृंगार' लिखा है। नेमिकुमार रास की रचना सं. 1673 मे समाप्त हुई थी यह भी नेमिनाथ की वैवाहिक घटना पर आधारित एक लघु कृति है।

(22) सन्त सुमतिकीर्ति —

सुमतिकीर्ति भट्टारकीय परम्परा के विद्वान् थे। एक भट्टारक विरुदावली में सुमतिकीर्ति को सिद्धातवेदि एव निर्ग्रन्थाचार्य इन दो विशेषणों से सबोधित किया है। ये राजस्थानी के अच्छे विद्वान् थे। अब तक इनकी निम्न रचनायें प्राप्त हो चुकी है —

धर्मपरीक्षा रास	जिनवरस्वामी वीनती
जिह्वादन्त विवाद	बसन्त विद्या विलास
शीतलनाथ गीत	पद

धर्मपरीक्षा रास इनकी सबसे बड़ी रचना है जिसे इन्होंने सवत् 1625 में समाप्त की थी।

(23) टीकम:—

टीकम 18वीं शताब्दी के प्रथम चरण के कवि थे। ये ढूंढाड प्रदेश के कालख ग्राम के निवासी थे। इन्होंने सवत् 1712 में चतुर्दशी चौपई की रचना इसी ग्राम के जिन मन्दिर में समाप्त की थी ।

(24) खडगसेन (संवत् 1713)—

खड्गसेन का जन्म स्थान नारनौल था जो बागड देश में स्थित था। ये मानूशाह के पौत्र एवं सूणराज के पुत्र थे। इनको शिक्षा आगरा में चतुरभुज वैरागी के पास हुई तथा लाहोर नगर में सम्राट शाहजहां के शासन काल मे संवत् 1713 मे त्रिलोकदर्पण कथा की रचना समाप्त की। रचना दोहा चौपई छन्द में निबद्ध है तथा तीन लोक का वर्णन करने वाली है। कवि ने कृति के अन्त में अपना विस्तृत परिचय दिया है।

(25) दिलाराम:—

कवि के पूर्वज सांखेले के पहुल गांव के रहने वाले थे। किन्तु बूंदी नरेश के अनुरोध से वे सपरिवार बूंदी आकर रहने लगे थे और वहीं इनकी 6 पीढ़ियां गुजर गयी थीं । इनके

पूर्व चार पीढ़ियां टोडारायसिंह में समाप्त हुई थीं। इनकी तीन रचनायें प्राप्त हो चुकी हैं। दिलाराम विलास इनकी सभी लघु कृतियों का संकलन है तथा आत्म द्वादशी में आत्मा का वर्णन हुआ है। संवत् 1768 मे दिलाराम विलास की रचना पूर्ण हुई थी। तीसरी रचना व्रत-विधानरासो है जिसकी रचना सवत् 1767 में समाप्त हुई थी। तीनों ही रचनायें अभी तक अप्रकाशित हैं। कवि की भाषा परिमार्जित है तथा उस पर हाडोती का प्रभाव है।

(26) मुनि शुभचन्द्र.—

मुनि शुभचन्द्र ब्र. जगत्कीर्ति के संघ में मुनि थे। भट्टारकों के संघ में आचार्य, मुनि, ब्रह्मचारी आदि सभी रहते थे। मुनि शुभचन्द्र इसका प्रमाण है। मुनि शुभचन्द्र हाडौती प्रदेश के कुजडपुर में रहते थे। वहां चन्द्रप्रभ स्वामी का चैत्यालय था। उसी मन्दिर मे इन्होंने होली कथा को निबद्ध किया था। यह रचना भाषा की दृष्टि से अच्छी कृति है। इसका रचना काल सं. 1755 है।

(27) नथमल बिलाला (संवत् 1822)—

नथमल बिलाला यद्यपि मूल निवासी आगरा के थे लेकिन पहिले भरतपुर और फिर हिण्डौन आकर रहने लगे थे। उनके पिता का नाम शोभाचन्द्र था। इन्होंने सिद्धातसार दीपक की रचना भरतपुर में सुखराम की सहायता से तथा भक्तामर स्तोत्रकी भाषा हिण्डौन मे सवत् 1829 में अटेर निवासी पाण्डे बालचन्द्र की सहायता से की थी। उक्त दोनो रचनाओ के अति-रिक्त कवि की निम्न रचनाए और उपलब्ध हो चुकी है —

जिणगुणविलास (1822)
नागकुमार चरित्र (1834)
जीवन्धर चरित (1835)
जम्बूस्वामी चरित्र
अष्टाह्निका कथा

नथमल प्रतिभा सम्पन्न कवि था इसलिये इसकी रचनाओं में सहज भाषा मिलती है। कवि ने सभी रचनाओ स्वान्त. सुखाय निबद्ध की थी। कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया—

नन्दन सोभाचन्द को नथमल अति गुनवान।
गोत बिलाला गगन में उग्यो चन्द समान।
नगर आगरो तज रहे, हीरापुर में आय।
करत देखि उग्रसैन को कीनो अधिक सहाय॥

(28) अचलकीर्ति —

ये 18वीं शताब्दी के कवि थे। अब तक इनकी विषापहार स्तोत्र भाषा, कर्मबत्तीसी एवं रविव्रतकथा रचनायें प्राप्त हो चुकी हैं। कर्मबत्तीसी को इन्होने संवत् 1777 में समाप्त की थी। ये भट्टारकीय परम्परा के सन्त थे।

(29) थानसिंह —

कविवर थानसिंह सांगानेर के रहने वाले थे। इनकी जाति खण्डेलवाल एवं गोत्र ठोलिया था। सुबुद्धिप्रकाश की ग्रन्थ प्रशस्ति में इन्होंने आमेर, सागानेर तथा जयपुर का वर्णन लिखा है। जब इनके माता-पिता जयपुर में अशान्ति के कारण करौली चले गये थे तब भी

ये सांगानेर में रहे और वहीं रहते हुये रचनायें लिखी थीं। इनकी अभी तक दो रचनायें प्राप्त होती हैं—रत्नकरण्ड श्रावकाचार एव सुबुद्धिप्रकाश। प्रथम रचना को इन्होंने सं. 1821 में तथा दूसरी को संवत् 1824 मे समाप्त की थी। सुबुद्धिप्रकाश का दूसरा नाम थानविलास भी है। इसमे छोटी रचनाओ का संग्रह है। दोनों ही रचनायें भाषा एवं वर्णन शैली की दृष्टि से सामान्य रचनायें हैं। इनकी भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव है।

(30) हीराः—

हीरा कवि बूंदी के रहने वाले थे। इन्होने संवत् 1848 में नेमिनाथ ब्याहलो नामक लघु रचना लिखी थी। रचना गीतात्मक है।

(31) टेकचन्द्र.—

टेकचन्द्र 18वी शताब्दी के राजस्थानी कवि हैं। इनके पिता का नाम दीपचन्द एवं पितामह का नाम रामकृष्ण था। ये मूलत जयपुर निवासी थे लेकिन फिर माहिपुरा मे जाकर रहने लगे थे। अब तक इनकी 21 से भी अधिक रचनायें उपलब्ध हो चुकी है। इनमें 'पुण्यास्रवकथाकोश (स 1822), पच परमेष्टीपूजा, कर्मदहनपूजा, तीनलोक पूजा (1828), सुदृष्टितरंगिणी (1838), व्यसनराज वर्णन (1827), पचकल्याण पूजा, पचमेदपूजा, अध्यात्म बारहखडी एव दशाध्यान सूत्र टीका' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके पद भी मिलते हैं जो अध्यात्मरस से ओतप्रोत होते है। पुण्यास्रव कथाकोश इनकी वृहत् रचना है जिसमें 79 कथाओं का सग्रह है। चौपई एव दोहा छन्दों मे लिखा हुआ यह एक सुन्दर काव्य है। कवि ने इसे सवत् 1822 मे समाप्त किया था।

इनकी सुदृष्टितरगिणी जैन समाज मे लोकप्रिय रचना मानी जाती है। इसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एव सम्यक्चरित्र का अच्छा वर्णन हुआ है।

(32) जोधराज कासलीवाल:—

जोधराज कासलीवाल महाकवि दौलतराम कासलीवाल के सुपुत्र थे। अपने पिता के समान यह भी राजस्थानी के अच्छे कवि थे। इनकी एकमात्र कृति सुखविलास है जिसमे इनकी सभी रचनाओ का संकलन है। इनका यह सकलन सवत् 1884 को समाप्त हुआ था। उस समय कवि की अतिम अवस्था थी। महाकवि दौलतराम के मरने के पश्चात् कवि जोधराज किसी समय कामा चले गये। सुखविलास मे कवि की गद्य पद्य दोनो ही रचनाये सम्मिलित है।

(33) सेवाराम पाटनी:—

सेवाराम पाटनी महापण्डित टोडरमल के समकालीन विद्वान् थे तथा उन्हीं के विचारों के समर्थक थे। इनके पिता का नाम मायाचन्द था। ये पहिले दौसा मे रहते थे फिर वहां से डीग जाकर रहने लगे। सवत् 1824 में दौसा में रहते हुये ही इन्होंने शातिनाथ चरित की रचना समाप्त की। इसके पश्चात् संवत् 1850 में इन्होंने डीग में रहते हुये मल्लिनाथ चरित की रचना समाप्त की। उस समय वहा महाराजा रणजीतसिंह का शासन था। प्रस्तुत रचना की मूल पाण्डुलिपि कामां के दिगम्बर जैन मन्दिर में सुरक्षित है।

सेवाराम कुछ समय तक जयपुर में भी रहे। लेकिन पं. टोडरमलजी की मृत्यु के पश्चात् इन्होंने जयपुर छोड़ दिया तथा डीग एव मालवा आदि मे चले गये। पाटनीजी स्वभाव से भी साहित्यिक थे।

(34) ब्रह्म चन्द्रसागर:—

ये राजस्थानी जैन संत थे तथा सोजत नगर इनका प्रमुख साहित्यिक केन्द्र था। ये भट्टारक रामसैन के अन्वय में होने वाले भ. सुरेन्द्रकीर्ति के प्रशिष्य एवं सकलकीर्ति के शिष्य थे। सोजत नगर मे रहते हुये ही इन्होने सवत् 1823 में श्रीपाल चरित की रचना समाप्त की थी। काव्य की भाषा एवं शैली दोनो ही उत्तम है तथा वह विविध छन्दों में निबद्ध की गयी है। ब्रह्म-चन्द्रसागर की एक और रचना पंच परमेष्ठि स्तुति प्राप्त होती है। कवि ने उसे भी सोजत नगर में ही सम्पूर्ण की थी।

(35) बख्तराम साह.—

कविवर बख्तराम साह इतिहास, सिद्धात एवं दर्शन के महान् विद्वान् थे। ये भट्टारकीय परम्परा के पण्डित थे। इन्होने मिथ्यात्वखण्डन लिख कर भट्टारक परम्परा का खुला समर्थन किया। जयपुर नगर के लश्कर का दिगम्बर जन मन्दिर इनका साहित्यिक केन्द्र था। 'बुद्धिविलास' इनकी महत्वपूर्ण कृति है जिसका इतिहास से पूर्ण सबध है। कवि ने इसमें तत्कालीन समाज, राजव्यवस्था एव जयपुर नगर निर्माण आदि का अच्छा वर्णन किया है यह उनकी सवत् 1827 की कृति है।

बख्तराम चाकसू के निवासी थे। इनके पिता का नाम प्रेमराज साह था जो वही रहते थे। लेकिन कुछ समय पश्चात् कवि जयपुर आकर रहने लगे। मिथ्यात्वखण्डन नाटक मे कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है :

आदि चाटसू नगर के, वासी तिनि को जानि।
हाल सवाई जै नगर, माहि वसे है आनि॥
तहा लसकरी देहुरे, राजत श्री प्रभु नेम।
जिनको दरसण करत ही, उपजत है अति प्रेम॥

कवि ने अपने बुद्धिविलास में महापण्डित टोडरमलजी की मृत्यु के संबंध में जो प्रकाश डाला है वह अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

(36) मन्ना साह.—

मन्ना साह 17वीं शताब्दी के विद्वान् थे। राजस्थान के ये किस प्रदेश को सुशोभित करते थे इसका कोई उल्लेख नही मिलता। अभी तक इनकी दो कृतियां मान बावनी एवं लघु बावनी उपलब्ध हुई हैं। दोनों ही अपने ढंग की अच्छी रचनायें हैं। कवि का दूसरा नाम मनोहर भी मिलता है।

(37) डालराम:—

ये 19वीं शताब्दी के कवि थे। इनकी गुरुपदेश श्रावकाचार, चतुर्दशी कथा तथा सम्यक्त्व प्रकाश प्रसिद्ध रचनायें हैं। इन रचनाओं के अतिरिक्त इन्होंने पूजा साहित्य भी खूब लिखा है। जो राजस्थान के विभिन्न भंडारों में संग्रहीत है।

उक्त सन्त कवियों के अतिरिक्त भट्टारक शुभचन्द्र[1] (द्वितीय) भ. नरेन्द्रकीर्ति[2], भ. सुरेन्द्रकीर्ति[3], ब्र गुणकीर्ति[4], आचार्य जिनसेन[5], ब्रह्म धर्मरुचि[6], आचार्य सुमतिसागर[7], संयमसागर[8], त्रिभुवनकीर्ति[9], ब्रह्म अजित[10], भ. महीचन्द्र[11], मुनि राजचन्द्र[12], विद्यासागर, भ. रत्नचन्द्र (द्वितीय), विद्याभूषण, ज्ञानकीर्ति आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन विद्वानों ने राजस्थानी भाषा में विविध कृतिया लिख कर जन-जन में स्वाध्याय के प्रति रुचि पैदा की।

---

1. राजस्थान के जैन सन्त व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. 161
2. वही, पृ. 165
3. वही, पृ. 164
4. वही, पृ 186
5. वही, पृ. 187
6. वही, पृ. 188
7. वही, पृ. 191
8. वही, पृ. 193
9. वही, पृ. 193
10. वही, पृ. 195
11. वही, पृ. 198
12. वही, पृ. 207

राजस्थानी पद्य साहित्यकार 6

(विक्रम की 18वी शताब्दी से 20वी शताब्दी तक)

लेखक—डा. गगाराम गर्ग

—:0 0:—

पश्चिमी राजस्थान की अपेक्षा पूर्वी राजस्थान मे दिगम्बर जैन समाज का बाहुल्य रहा। पूर्वी राजस्थान के ढूढाड तथा हाडौती क्षेत्रो मे सामन्तो और श्रेष्ठिजनो की प्रेरणाओ से अनेक जैन उत्सवो का आयोजन तथा जिनालयो का निर्माण हुआ। इससे जैन साहित्य के सृजन को बड़ी प्रेरणा मिली। पूर्वी राजस्थान के ब्रज के सन्निकट होने तथा आगरा के प्रसिद्ध कवि बनारसीदास, भूधरदास, द्यानतराय के प्रभाव के कारण राजस्थान के दिगम्बर जैन कवियों की भाषा भी ब्रजभाषा के प्रभाव से पूर्णत वचित न रह सकी। तथापि जैन साहित्य मे लोक-भाषा को प्राथमिकता दिये जाने के कारण राजस्थानी की प्रमुख शाखा ढूढाडी भाषा ही इन कवियों की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है।

आलोच्य काल मे कवियो ने जिन तीर्थकरो और विशिष्ट पौराणिक पात्रो के विषय मे अपने महाकाव्य और खण्डकाव्य लिखे है, वे पात्र है—तीर्थंकर, ऋषभदेव, तीर्थंकर नेमिनाथ, तीर्थकर शातिनाथ, धन्यकुमार, जीवन्धर, श्रीपाल, यशोधर, जम्बूस्वामी, श्रेणिक, भद्रबाहु आदि। ये प्रबन्ध काव्य अधिकाशत. प्राकृत और अपभ्रश के चरित्र ग्रथो के आधार पर ही लिखे गये है। फिर भी उनमे यत्र-तत्र मूल भाव का सा ही काव्यानन्द प्राप्त होता है। जैन प्रबन्धकारो मे चरित्र ग्रथो का पद्यानुवाद करते समय उनके मूल छन्दो के एक-एक शब्द का अर्थ ग्रहण करने की अपेक्षा उनका समग्रभाव ग्रहण कर अभिव्यजित करने की प्रवृति अधिक रही है। जैन पुराणो के चरित्रो मे भाषा के कथ्य एव प्रतिपाद्य मे यत्किञ्चित परिवर्तन न करने की प्रवृत्ति मे भाषा कवियो की धार्मिक भावना ही प्रधान रही है। ब्रह्म रायमल्ल, आचार्य नेमिचन्द जैसे एक दो कवि अवश्य ऐसे थे, जिन्होने जैन पुराणो के कथ्य को कुछ अधिक मौलिक ढंग से प्रतिपादित करके श्रेष्ठ प्रबन्ध कवि की क्षमता का नि सकोच प्रकट किया है।

18वी शताब्दी के प्रमुख कवि नेमिचन्द का 'प्रीतकर मोषिगामि चौपई', 829 दोहा-चौपाइयों मे लिखा हुआ एक श्रेष्ठ एव मौलिक चरित्र ग्रथ है। इस ग्रन्थ की रचना वैशाख शुक्ला 11 सवत् 1771 मे हुई। ग्रथ के प्रारम्भ मे पच परमेष्टि व गणधरों को प्रणाम करते हुये कवि ने श्रेणिक के प्रश्नोत्तर के रूप मे प्रीतकर की कथा गौतम मुनि द्वारा कहलवाई है।

कुछ ही प्रबन्ध काव्यो की अपेक्षा जैन कवियो ने फुटकर रचनाये अधिक लिखी हैं। मुक्तक रचनाओ मे दोहा, सवैया, छद अपेक्षाकृत कम और पद अधिक है। दोहा-परक मुक्तक रचनाओ मे आलोच्य काल की प्रमुख रचनाये हेमराज का दोहा शतक, दौलतराम का विवेक विलास, नवल की दोहा पच्चीसी तथा बुधजन रचित बुधजन सतसई हैं। दोहा-परक रचनाओ मे जैन कवियो ने जैन दर्शन तथा भक्ति भाव का यत्किंचित प्रतिपादन करते हुये नीति का विश्लेषण अधिक किया है। जैन दोहों मे अहिंसा, मास-भक्षण, परधन-प्राप्ति, परस्त्री गमन, नारी निन्दा, अहंकार वचन, कोध, दया आदि विभिन्न नैतिक विषयो पर अपने विचार प्रकट किये हैं। बुधजन सतसई आलोच्य काल का ही नही, समूचे हिन्दी जैन काव्य का प्रतिनिधि दोहा काव्य है।

कविवर बुधजन ने विभिन्न विषयों पर कही गई सूक्तियों को चार भागों में विभाजित किया है, देवानुरागशतक, सुभाषित नीति तथा उपदेशाधिकार।

ढूंढाड के जैन कवियो मे जोधराज और पार्श्वदास के सवैया बड़े मनोहारी हैं। सवैया का प्रयोग दरबारी कवियो ने शृगार रस तथा सत कवियो ने अध्यात्म और नीति के वर्णन के लिये किया है। सत सुन्दरदास की तरह आत्मा व तत्व के विवेचन, ससार की नश्वरता व भयावहता के चित्रण एव दया, अहिंसा, त्याग आदि नीति तत्वों के प्रतिपादन के लिये जैन कवियो ने सवैये लिखे है। इस दृष्टि से जोधराज की दो कृतिया ज्ञान समुद्र और धर्मसरोवर उल्लेखनीय है। दोनों कृतियो की छद सख्या क्रमश. 147 और 387 है।

पद साहित्य:—

विभिन्न राग-रागनियों से समन्वित गेय पदो की रचना का प्रारम्भ सिद्ध और नाथों द्वारा नवी दसवी शताब्दी मे ही कर दिया गया था, किन्तु इनकी प्रगतिशील परम्परा सोलहवी शताब्दी बाद सत और वैष्णव भक्तो के काव्य मे उपलब्ध होती है। जैन साहित्य मे पद रचना का प्रारम्भ तो वैष्णव भक्तों से कुछ पहले हुआ किन्तु उसका परम्पराबद्ध विकास और प्रसार वैष्णव पद साहित्य के कुछ बाद हुआ। 18वी और 19वी शताब्दी मे आगरा और जयपुर मे विपुल पद साहित्य लिखा गया। आगरा के प्रमुख पद रचयिता थे बनारसीदास, भूधरदास, भैया भगवतीदास, द्यानतराय, जगतराय और जगजीवन। जयपुर मे विपुल सख्या में पद रचना करने वाले कवियो में नवल, बुधजन, माणिकचन्द, उदयचन्द, नयनचन्द, रत्नचन्द और पार्श्वदास आदि है। उक्त प्रमुख कवियो के अतिरिक्त एसे फुटकर कवि तो अनेक है जिनके थोडे थोडे पद ही अभी तक जानकारी मे आ सके है। डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल के अनुसार यदि इन जैन कवियो के पदो की गणना की जाये तो यह सभवत. दस हजार से कम न होगी।

जैन पद साहित्य को चार भागों मे विभाजित किया जा सकता है, भक्तिपरक, अध्यात्मपरक, विरहपरक एव नीतिपरक। भक्तिपरक पदो मे तीर्थकरो का गुणगान, स्वदोषानुभूति, अनन्यता आदि भक्ति तत्व विद्यमान है। भक्तिपरक पद साहित्य मे नवधा भक्ति, प्रपत्तिवाद, दश आसक्तिया आदि तत्वो के साथ-साथ जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित दशधा भक्ति का विवेचन जैन भक्तो की समन्वय भावना का प्रतीक है। अध्यात्मपरक पद साहित्य मे जैन तत्वो, आत्मा, पुद्गल, परमात्मा, मोक्ष आदि का वर्णन किया गया है। विरहपरक पद साहित्य मे राजुल नेमिनाथ प्रसग को लेकर लिखा गया है। अहिंसा, सत्य, मन की पवित्रता, त्याग, दान, दया आदि नीति तत्व नीतिपरक पद साहित्य मे अभिव्यजित हुये है। आत्माभिव्यंजन अनुभूति की पूर्णता, भावो का ऐक्य तथा माधुर्यपूर्ण भाषा गीतिकाव्य के सभी तत्व जैन पद साहित्य में विद्यमान है।

आलोच्यकाल में प्रबन्ध और मुक्तक काव्यो की रचना करने वाले प्रमुख कवि इस प्रकार हैं.—

1. जोधराज गोदीका.—

जोधराज गोदीका सागानेर निवासी अमरचन्द गोदीका के पुत्र थे। जोधराज के नाना धरमदास और मामा कल्याण दास के पास लाखो की सम्पत्ति था। दूर-दूर तक उनका व्यापार फैला हुआ था। ऐसे धनसम्पन्न परिवार मे जन्म लेने पर भी बचपन से ही जोधराज के हृदय में धर्म की लगन थी। जोधराज ने प. हरिनाथ मिश्र को अपना मित्र बनाकर उनको सगति से शास्त्रज्ञान उपलब्ध किया तथा उनसे अपने पढ़ने के लिये कई हस्तलिखित ग्रन्थो की प्रतिलिपिया करवाई। जोधराज गोदीका के ग्रन्थ इस प्रकार है:—

1. सम्यक्त कौमुदी भाषा (1724)
2. प्रवचनसार भाषा

3. कथाकोषभाषा
4. प्रीतंकर चरित्र भाषा
5. ज्ञान समुद्र (1722)
6. धर्म सरोवर (1724)

जोधराज के प्रथम चार ग्रन्थ पद्यानुवाद तथा अन्तिम दो कृतिया मौलिक हैं। ज्ञान समुद्र और धर्म सरोवर दोनों ही नीति प्रधान ग्रन्थ है।

2. हेमराज.—

इनका आविर्भाव ढूंढाड प्रदेश के सागानेर गाव में हुआ। हेमराज पाण्डे रूपचन्द के शिष्य थे। अपने जीवन के आखिरी दिनो में हेमराज कामा चले गए। कामा में उस समय कीर्तिसिंह राज्य करते थे।

हेमराज का एक मौलिक ग्रन्थ दोहा शतक है। दोहा शतक की समाप्ति कवि ने संवत् 1725 में की थी। इस में नीति सबंधी लगभग सौ दोहे हैं। हेमराज ने आगरावासी पाण्डे हेमराज के गद्यग्रन्थ प्रवचनसार का भी पद्यानुवाद किया है।

3. नेमिचन्द.—

नेमिचन्द आमेर मे स्थापित मूलसघ के शारदा गच्छ के भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के प्रशिष्य देवेन्द्रकीर्ति (जगतकीर्ति के शिष्य) के अनुयायी थे। यह खण्डेलवाल जाति के सेठी गोत्र के श्रावक थे। नेमिचन्द अपनी आजीविका उपार्जन के अतिरिक्त शेष समय को काव्य रचना में लगाया करते थे। नेमिचन्द के छोटे भाई का नाम झगडू था। इनके प्रमुख शिष्य दो थे। डूंगरसी और रूपचन्द। जैन मन्दिर निवाई (टौक) के दो गुटको मे प्राप्त इनकी निम्नलिखित रचनाये है :—

1. प्रीतंकर चौपई (1771)
2. नेमिसुर राजमती की लूहरि
3. चेतन लूहरि
4. जीव लूहरि
5. जीव समोधन लूहरि
6. विसालकीर्ति को देहुरो
7. जखडी
8. कडखो
9. आम्बिक को गीत
10. नेमिसुर को गीत
11. पद सग्रह

नेमिचन्द की प्रथम रचना एक मौलिक खण्डकाव्य तथा अन्य रचनाये गेय रचनायें हैं। नेमिचन्द के गीत भावपूर्ण तथा मर्मस्पर्शी है।

डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल ने नेमिचन्द की एक महत्वपूर्ण कृति नेमिश्वर रास की खोज की है। इस ग्रन्थ की रचना सवत् 1769 मे हुई। इस रास में 36 अधिकार और 1308 छंद हैं। ग्रन्थ की महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इसमे गद्य और पद्य दोनो को ही अपनाया गया है।

4. ब्रह्म नाथू:—

ब्रह्मचारी नाथू का साधना स्थल वर्तमान टौंक जिले में स्थित 'नगर' ग्राम का जैन मन्दिर था। टौंक जिले के प्रमुख जैन मन्दिरो के शास्त्र भण्डारों की खोज करते समय ब्रह्म नाथू की निम्नलिखित रचनायें प्राप्त हुई हैं.—

1. नेमीश्वर राजमती को ब्याहुलो (1728)
2. नेमजी की लूहरि
3. जिनगीत
4. डोरी का गीत
5 दाई गीत
6. राग मलार, सोरठ, मारु, धनाश्री के गीत

मधुर गीतकर नाथू ब्रह्म की उक्त रचनाग्रो में नेमिश्वर राजमती को ब्याहुलो एक बडी रचना है। इसमें 'तलदी, निकासी, सिन्दूरी, विन्द्रावनी की ढालो में नेमिनाथ ग्रौर राजमती के समस्त विवाह प्रसंग का वर्णन किया गया है। उबटन, दूलह का शृगार, बारात की निकासी, सभी लोकाचार के वर्णन में कवि ने बडी रुचि ली है।

5 सेवक —

कवि लोहट द्वारा सेवक को ग्रपना गुरु लिखे जाने के कारण स्पष्ट है कि सेवक का ग्राविर्भाव ग्रठारहवी शताब्दी के प्रारम्भ मे हुग्रा। सेवक की दो रचनाये तथा 50 से ग्रधिक पद हैं। इनकी प्रथम रचना 'नेमिनाथ जी का दम भव वर्णन' चौधरियान मन्दिर टौंक में प्राप्त गुटका न 102 ब मे सग्रहीत है। इस रचना में नेमिनाथ ग्रौर राजमती के दस जन्मो के ग्रनन्य सम्बन्ध को दिखलाया गया है। सेवक की दूसरी रचना 'चौबीस जिन स्तुति' जैन मन्दिर निवाई (टौक) के एक गुटके में पृष्ठ 124-26 पर सग्रहीत है। इसमे 30 छद है। सेवक के पद जयपुर के छाबडों के मन्दिर ग्रौर तेरह पंथी मन्दिर में क्रमश गुटका नं. 47 ग्रौर पद संग्रह नं. 946 में प्राप्त हुये है।

6. लोहट:—

बघेरवाल जाति मे उत्पन्न कवि लोहट के पिता का नाम धर्म तथा बडे भाइयों का नाम हींग ग्रौर सुन्दर था। लोहट पहले साभर ग्रौर बाद में बूदी मे रहने लगे। ग्रभी तक इनकी केवल दो रचनाये टौंक के जैन मन्दिरो मे मिली हैं। लोहट की प्रथम रचना 'ग्रढाई को रासो' का रचनाकाल सवत् 1736 है। इसमें 22 छदो में मैनासुन्दरी ग्रौर श्रीपाल की कथा कही गई है। कवि की दूसरी रचना चौढालियो संवत् 1784 मे लिखी गई। इसमें 4 ढालो मे 50 छंद है। ग्रन्थ का विषय जैन ग्राचार ग्रौर नीति है। डा नरेन्द्र भानावत ने ग्रपने शोध प्रबन्ध 'राजस्थानी वेली साहित्य' मे स. 1735 मे रचित इनकी षटलेश्या बेलि का परिचय दिया है। इसके ग्रतिरिक्त कवि की यशोधरचरित (1725), पार्श्वनाथ जकमाला ग्रादि रचनायें ग्रौर मिलती है।

7. ग्रजयराज पाटणी:—

इनका जन्म सांगानेर में हुग्रा। इनके पिता का नाम मनसुख राम ग्रथवा मनीराम था। इन्होंने भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य महेन्द्रकीर्ति से ज्ञान ग्रहण किया ग्रौर ग्रधिकतर ग्रामेर रहने लगे। ग्रजयराज हिन्दी तथा संस्कृत के ग्रच्छे ज्ञाता थे। इनकी 20 रचनायें मिलती हैं।

1. आदि पुराण भाषा (1797)
2. नेमिनाथ चरित्र भाषा (1735)
3. कक्का बत्तीसी
4. चरखा चउपई
5. चार मित्रों की कथा
6. चौबीस तीर्थंकर पूजा
7. चौबीस तीर्थंकर स्तुति
8. जिन गीत
9. जिन जी की रसोई
10. णमोकार सिद्धि
11. नन्दीश्वर पूजा
12. पंचमेरु पूजा
13. पार्श्वनाथ जी का सालेहा
14. बाल्य वर्णन
15. बीस तीर्थंकरो की जयमाल
16. यशोधर चौपई
17. वंदना
18. शान्तिनाथ जयमाल
19. शिवरमणी विवाह
20. विनती

उक्त रचनाओं मे काव्यत्व की दृष्टि से शिवरमणी विवाह और चरखा चउपई श्रेष्ठ रचनायें हैं। दोनों ही रूपक काव्य है। 17 पद्यो के ग्रथ शिवरमणी विवाह में तीर्थ कर रूपी दूल्हा भव्यजनो की बारात के साथ पंचम गति रूपी ससुराल में पहुंच कर भक्तिरूपी शिवरमणी से विवाह करते हैं। तदुपरान्त वर-वधु ज्ञान सरोवर में मिलकर तृप्त हो जाते हैं। चरखा चउपई के 12 पद्यो में कवि ने एक ऐसा चरखा चलाने का उपदेश दिया है जिसमें खूटे शील और संयम, ताडियाँ शुभ ध्यान, पाया शुक्ल ध्यान, दामन सवर, माल दशधर्म, हाथली चार दान, ताकु आत्म सार, सूत सम्यक्त्व और कूकडी 12 व्रत है। जिन जी की रसोई भी एक सुन्दर रचना है। इसमे जिन को माता द्वारा परासे गये नाना प्रकार की मिठाई, पक्वान्न और फलों की चर्चा करते हुये वात्सल्य भाव का प्रतिपादन है।

8 खुशालचन्द्र काला —

काला गोत्रीय खुशालचन्द्र के पिता का नाम सुन्दरदास तथा माता का नाम सुजानदे था। खुशालचन्द्र की प्रारम्भिक शिक्षा उनके जन्मस्थान जयसिंहपुरा (जिहानाबाद) मे हुई। कालान्तर में भट्टारक देवेन्द्र कीर्ति के साथ सागानेर आ गये। यहा लक्ष्मीदास चादवाड से कवि ने शास्त्र-ज्ञान प्राप्त किया और फिर वापिस जयसिंहपुरा चले गये। खुशालचन्द्र ने अपनी अधिकाश रचनायें यहीं लिखी। रचनायें जैन पुराणो के आधार पर लिखी गई हैं —

1. हरिवंश पुराण (1780)
2. यशोधर चरित्र
3. पद्मपुराण
4. व्रतकथा कोष (1787)
5. जम्बूस्वामी चरित
6. उत्तरपुराण (1799)
7. सद्भाषितावली

8. प्रद्युम्नकुमार चरित
9. वर्द्धमान पुराण
10. शान्तिनाथ पुराण
11. चौबीस महाराज पूजा

उक्त सभी रचनायें भाषा एवं काव्य कला की दृष्टि से अच्छी रचनायें हैं।

9. किशनसिंह —

किशनसिंह के पिता मथुरादास पाटनी अलीगढ रामपुरा जिला टोंक के लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति थे। इन्होंने अलीगढ (रामपुरा) मे एक विशाल जिन मन्दिर का निर्माण कराया। किशनसिंह के छोटे भाई का नाम आनन्दसिंह था। किशनसिंह का साधना स्थल सांगानेर रहा। उन्होंने निम्नाकित रचनाये की —

1. णमोकार रास (1760)
2. चौबीस दण्डक (1764)
3. पुण्यास्रव कथा कोष (1773)
4. भद्रबाहु चरित्र (1783)
5. त्रेपन क्रिया कोष (1784)
6. लब्धि विधान कथा (1782)
7. निर्वाण काण्ड भाषा (1783)
8. चर्तुविशति स्तुति
9. चेतन गीत
10. चेतन लोरी
11. पद सग्रह

10. देवा ब्रह्म —

इनका आविर्भाव 18वी शताब्दी मे हुआ। इनका जन्मस्थान संभवत जयपुर ही था। बडा तेरहपथी मन्दिर जयपुर मे पद सग्रह 946 मे देवा ब्रह्म के लगभग 72 पद सग्रहीत है। जिनेन्द्र के चरणो मे देवा ब्रह्म का भक्तिभाव बेजोड है।

11. दौलतराम कासलीवाल (सवत् 1749-1829) —

जैन साहित्य में दौलतराम नामक तीन कवि हुये हैं। एक तो पल्लीवाल-जातीय आगरा के रहने वाले तथा दूसरे बूंदी के। तीसरे दौलतराम ढूढाड प्रदेश के बसवा ग्राम के निवासी आनन्दराम के पुत्र थे। इनका जन्म आषाढ की 14, सवत् 1749 को हुआ। दौलतराम के अजीत दास, जोधराज, गुलाबदास आदि छ. पुत्र हुये। दौलतराम का जीवन काल बसवा, जयपुर, उदयपुर और आगरा आदि चार स्थानों पर अधिक व्यतीत हुआ। दौलतराम की साहित्यिक रुचि को बढाने में आगरावासी विद्वान् बनारसीदास, भूधरदास और ऋषभदास के सम्पर्क का बडा योग रहा है। दौलतराम कासलीवाल जयपुर राज्य के महत्वपूर्ण पद को सभालते हुए भी अध्यात्म प्रवचन, जिनपूजा, शास्त्रचर्चा, गद्यलेखन और काव्य-सृजन में बडी रुचि रखते थे। इनकी राजस्थानी गद्य-पद्य में लिखी हुई 18 कृतियां प्राप्त हो

चुकी हैं जिनमें 8 पद्य रचनायें, 7 गद्य रचनायें एवं 3 रेखा टीकापरक रचनायें हैं। इनकी काव्य रचनायें हैं:—

1. जीवंधर चरित (1805)
2. त्रैपन क्रिया कोष (1795)
3. अध्यात्म बारह खडी
4 विवेक विलास
5. श्रेणिक चरित (1782)
6. श्रीपाल चरित (1822)
7 चौबीस दण्डक भाषा
8. सिद्ध पूजाष्टक
9 सार चौबीसी

दौलतराम कासलीवाल के उक्त चरित एवं अध्यात्म सम्बन्धी ग्रन्थों का आधार प्राचीन पुराण एवं जैन शास्त्र हैं। डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल ने अपनी कृति 'महाकवि दौलतराम कासलीवाल व्यक्तित्व और कृतित्व' में कवि का सांगोपाग अध्ययन प्रस्तुत करते हुए आचार्यत्व, काव्यत्व तथा वचनिका के क्षेत्र में दौलतराम की अप्रतिम गरिमा को प्रतिष्ठापित किया है। डा. कासलीवाल ने कवि की 'विवेक विलास' की विशेष प्रशसा करते हुए उसे काव्य प्रतिभा का सम्पूर्ण निदर्शन कहा है।

12. साहिबराम:—

साहिबराम की जीवनी के विषय में कोई जानकारी नही मिलती है। जयपुर के जैन मन्दिरो में इनकी रचनाओं की प्राप्ति तथा भाषा की दृष्टि से साहिबराम ढूंढाड के ही प्रतीत होते हैं। इनके पदो की संख्या 60 है।

13 नवल:—

यह बसवा के रहने वाले थे। इनका सम्भावित जीवनकाल सवत् 1790-1855 तक बतलाया जाता है। दौलतराम कासलीवाल से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। इन्ही की प्रेरणा से इनकी रुचि साहित्य मे हुई। बधीचन्द मन्दिर जयपुर के गुटका न. 1087 तथा पद सग्रह नं 492 मे नवल के 222 पद मिलते है। नवल की 'दोहा पच्चीसी' नामक एक छोटी सी रचना बीसपथी मन्दिर पुरानी टौंक के ग्रन्थाक 102 ब के पृष्ठ 6 पर अकित है। नवल का एक चरित ग्रन्थ वर्धमान पुराण भी बतलाया जाता है।

14 नयनचन्द्र:—

जयपुर के सभी प्रसिद्ध मन्दिरों बाबा दुलीचन्द भण्डार, आमेर शास्त्र भण्डार, बधीचन्द भण्डार में लगभग 246 पद नैन अथवा नैनसुख की छाप से मिलते हैं। उनको अभी तक प्रसिद्ध विद्वान् गोम्मटसार त्रिलोकसार जैसे जटिल शास्त्रों के टीकाकार जयचन्द छाबडा की रचना माना जाता है। पुष्ट प्रमाणों के अभाव में 'नैन' छाप के पदों को जयचन्द छाबडा के पद मान लेना सर्वथा संदिग्ध है। चरित ग्रन्थों की प्रशस्ति में तो कवि अपना परिचय लिख देता है, कोई चरित ग्रन्थ लिखने के अभाव मे नयनचन्द हमे अपने परिचय से अवगत नहीं करा सके। अत. नयनचन्द नामक किसी भक्त कवि के होने की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है।

15. बुधजन:—

इनका जन्म जयपुर शहर में निहालचन्द्र बज के यहां हुआ। बुधजन का दूसरा नाम भदीचन्द्र था। इनके पाच भाई और थे। इनके गुरु पं. मांगीलाल जी थे। बचपन से ही जैन धर्म और शास्त्रों में अधिक रुचि लेने के कारण बडे होने पर बुधजन बहुत विद्वान् हो गए। गहन पाण्डित्य के अतिरिक्त शका समाधान की भी इनमें अद्भुत क्षमता थी। बुधजन दीवान अमर चन्द के यहां मुनीम का काम करते थे। इनका बनवाया हुआ भदीचन्द मन्दिर जयपुर के प्रसिद्ध जैन मन्दिरो में से है। बुधजन के निम्नलिखित ग्रंथ उपलब्ध है :—

1. बुधजन सतसई
2. तत्वार्थ बोध
3. भक्तामर स्तोत्रोत्पत्ति कथा
4. संबोध अक्षर बावनी
5. योगसार भाषा
6. पचास्तिकाय भाषा
7. पंच कल्याणक पूजा
8. मृत्यु महोत्सव
9. छहढाला
10. इष्ट छत्तीसी
11. वर्द्धमान पुराण सूचनिका
12. दर्शनपच्चीसी
13. बारह भावना पूजन
14. पद सग्रह

16. माणिकचद.—

माणिकचद भावसा गोत्रीय खडेलवाल जैन थे। बाबा दुलीचद भडार जयपुर के पद सग्रह न. 428 मे इनके 183 पद प्राप्त हुए है, जो भक्ति और विरह के हैं।

17. उदयचन्द —

यह जयपुर नगर अथवा इसके आस-पास के ही रहने वाले थे। उदयचन्द लुहाडिया गोत्रीय खण्डेलवाल जैन थे। इनका रचनाकाल सवत् 1890 बतलाया जाता है। अभी तक उदयचन्द के लगभग 94 पद प्राप्त हुये हैं। प्राप्त पदो मे आराध्य का महिमागान तथा कवि का अवगुण निवेदन अधिक है।

18. पार्श्वदास.—

पार्श्वदास जयपुर निवासी ऋषभदास निगोत्या के पुत्र थे। पार्श्वदास के दो बडे भाई मानचन्द और दौलतराम थे। पार्श्वदास को प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से मिली। शास्त्र-पठन और परमार्थ तत्व की ओर इनका झुकाव प. सदासुखदास के सम्पर्क से हुआ। पार्श्व-दास का साधना स्थल शान्तिनाथ जी का बडा मन्दिर जयपुर था। वहा इनके प्रवचन को सुनने के लिये काफी जैन समुदाय एकत्र होता था। पार्श्वदास के शिष्यो मे बख्तावर कासलीवाल प्रमुख थे। उसे ही ये अपना पुत्र और मित्र समझते थे। पार्श्वदास अपने जीवन के अन्तिम वर्षों मे अजमेर रहने लग गये थे। वहा सर सेठ मूलचन्द सोनी के सान्निध्य मे वैशाख सुदि 5 संवत् 1936 को इन्होने समाधि मरण लिया।

पार्श्वदास का एक गद्य ग्रन्थ 'ज्ञान सूर्योदय नाटक की वचनिका' तथा समस्त काव्य-रचनायें 'पारस-विलास' मे संग्रहीत हैं। लघु ग्रन्थों की अपेक्षा कविवर पार्श्वदास की काव्य-प्रतिभा का पूर्ण निदर्शन उनके पदों में अधिक है। 43 राग-रागिनियो मे लिखित 425 पदों

में अध्यात्म, भक्ति, विरह तथा नीति आदि विभिन्न विषयक हैं। पार्श्वदास के पद विभिन्न प्रतिलिपियो के पाठ सम्पादन के आधार पर पार्श्वदास पदावली के रूप में दिगम्बर जैन समाज अमीरगंज, टौंक द्वारा प्रकाशित करवाये जा चुके हैं।

19. खेतसी साह.—

इन्होने नेमजी की लूहरि लिखी। इस रचना मे राजमति के बारह महीनो के वियोग का वर्णन है। यह रचना तेरहपथी मन्दिर, टौंक के ग्रन्थाक 50 ब मे सग्रहीत है।

20. खेतसी बिलाला—

इनकी 'सील जखडी' मे नारी निन्दा की गई है। यह रचना तेरहपथी मन्दिर के गुटका नं. 50 के पृष्ठ 195 पर अंकित है।

21. डालूराम—

यह सवाई माधोपुर के अग्रवाल श्रावक थे। इन्होने कुछ पूजाओ के अतिरिक्त सवत् 1895 में 'पच परमेष्ठीगुण स्तवन' लिखी।

22. नन्दराम—

यह बखतराम के पुत्र थे। इनके पद तेरहपथी मन्दिर, टौक मे ग्रन्थाक 50 मे पृष्ठ 208-213 पर मिलते हैं।

23. रामदास—

तेरहपथी मन्दिर, टौक के ग्रन्थाक 100 ब के पृष्ठ 120-122 पर इनकी रचना 'विनती' सग्रहीत है।

24. मूलकचन्द.—

तेरहपथी मन्दिर टौक के ग्रन्थाक 100 ब के पृष्ठ 146-148 पर इनकी रचना 'विनती' अंकित है।

25. रामचन्द्र—

संवत् 1957 मे पडित शिवदत्त द्वारा लिखी गई इनकी एक रचना 'चौबीस तीर्थंकर पूजा' जैन मन्दिर निवाई मे प्राप्त है। राम उपनाम से मिलने वाले इनके कुछ पद दिगम्बर जैन शोध सस्थान, जयपुर मे सग्रहीत हैं।

26. भविलाल:—

संवत् 1958 में लिखी 'छंदबद्ध समव शरण पूजा' जैन मन्दिर निवाई में उपलब्ध है।

27. स्वरूपचन्द मुनि.—

संवत् 1910 मे लिखी गई एक रचना चौंसठ ऋद्धि विधान पूजा जैन मन्दिर निवाई में प्राप्त है।

28. सवाईराम—

इनकी एक रचना 'जगतगुरु की वीनती' चौधरियान मन्दिर टोंक के ग्रन्थाक 102 ब के पृष्ठ 67 पर अंकित है।

29 सुगनचन्द —

• यह जीवराज बड़जात्या के पुत्र थे। इनकी माता गगा और भाई मगनलाल, सुजान, बख्तावर और हरसुख थे। यह अपने पिता के मझले पुत्र थे। इन्हें छद और व्याकरण का अच्छा ज्ञान था। इन्होंने जिनभक्ति की प्रेरणा से 'रामपुराण' ग्रन्थ की रचना की।

30. चन्द —

चन्द नाम से दो रचनायें चोईस तीर्थकिरा की वीनती तथा चौईस तीर्थकिरा की समुच्चय वीनती, तेरहपथी मन्दिर टौक के गुटका नम्बर 100 ब मे पृष्ठ 102-121 पर संग्रहीत हैं।

31 दीपचन्द शाह —

इनकी प्रमुख रचना 'ज्ञान दर्पण' जैन मन्दिर निवाई में ग्रन्थ सख्या 33 पर उपलब्ध हैं। इसमें कवि ने दोहा, कवित्त, सवैया, अडिल्ल, छप्पय आदि 196 छन्दो में अध्यात्म की चर्चा की है। दीप उपनाम से 12 दोहे और कुछ पद तेरहपथी मन्दिर टौक के गुटका न. 50 ब मे सग्रहीत है।

32. महेन्द्रकीर्ति —

यह सागानेर रहते थे। इनकी एक रचना 'धमालि' तेरहपंथी मन्दिर टौंक के गुटका न. 50 ब में सग्रहीत है।

33. विश्वभूषण .—

इनकी दो रचनायें श्री गुरु जोगी स्वरूप गीत और मुनीश्वरा की बीनती, तेरहपथी मन्दिर टौंक के गुटका न 50 ब मे सग्रहीत है। इनके कुछ पद भी दिगम्बर जैन शोध सस्थान जयपुर में उपलब्ध है।

उक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट है कि 18-20वी शताब्दी के मध्य परिनिष्ठित राजस्थानी तथा ढूढाडी (राजस्थानी तथा व्रज भाषा का सम्मिलित रूप) मे अनेक कवियो द्वारा विशाल साहित्य का सृजन हुआ। समृद्ध साहित्य भण्डारो मे खोजे जाने पर कई अज्ञात कवि तथा ज्ञात कवियो की अज्ञात रचनाए उपलब्ध हो सकती है। राजस्थानी तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास में आलोच्य काल के कई प्रमुख कवियो, भट्टारक नेमिचन्द्र, ब्रह्म नाथु, दौलतराम नवल, बुधजन, पार्श्वदास का उचित प्रतिनिधित्व नितान्त आयोजित एव न्याय सगत है।

राजस्थानी जैन गद्य की परम्परा 7.

—अगरचन्द नाहटा

यह तो निश्चित है कि अपभ्रंश मे पद्य रचनाओ की जो धारा बही वह गद्य में नही दिखायी देती और अपभ्रंश से ही राजस्थानी भाषा विकसित हुई इसलिए प्रारम्भिक राजस्थानी मे गद्य बहुत ही कम मिलता है। राजस्थानी मे काव्यो की परम्परा तो 11 वी से 14 वी तक मे खूब विकसित हो चुकी पर इस समय का राजस्थानी गद्य प्राय नही मिलता। यद्यपि कुछ रचनायें लिखी अवश्य गई पर वे सुरक्षित नही रह सकी। कारण स्पष्ट है कि पद्य मे जो लय-बद्धता और काव्य-सौष्ठव पाया जाता है उसी के कारण उसको याद रखने मे अधिक सुविधा होती है। गद्य को लम्बे समय तक मौखिक रूप मे याद रखना सम्भव नही होता।

गद्य मे अपने भावो को प्रकट करने की सुविधा अवश्य रहती है इसलिए बोलचाल मे तो उसकी प्रधानता रहती है पर साहित्य गद्य मे प्राय. इसीलिए लिखा जाता रहा है कि प्राकृत, संस्कृत आदि भाषाओ की रचनाओ को जन साधारण समझ नही पाते इसलिय टीका, टब्बा और बालावबोध के रूप मे गद्य का व्यवहार अधिक हुआ है। मौलिक रचनायें बहुत ही कम लिखी गई। इसीलिये राजस्थानी के प्राचीन गद्य को भी हम अधिकाश बालावबोध टीकाओ के रूप मे प्रयुक्त पाते है। अभी तक 14 वी शती के पूर्व का गद्य प्राय नही मिलता, गद्य का कुछ अश शिला-लेखो आदि मे मिलता है पर उससे भाषा का स्वरूप स्पष्ट नही हो पाता।

प्राचीन राजस्थानी गद्य की मैंने खोज की तो मुझे मुनि जिन विजय जी के पास एक प्राचीन प्रति ऐसी देखने को मिली जिसमे 12 वी शती के सुप्रसिद्ध विद्वान् जैनाचार्य जिनवल्लभसूरि जी की प्राकृत भाषा की रचना का सक्षिप्त अर्थ लिखा हुआ था। मेरे खयाल से वह 13 वी शती में किसी ने आचार्यश्री के उक्त ग्रन्थ का जनसाधारण के बोधगम्य बनाने के लिये सक्षिप्त अर्थ लिख दिया होगा। जैसे प. दामोदर रचित कोशली बोली का 'उक्ति-व्यक्ति प्रकरण' पाटण के जैन ज्ञान भण्डार से प्राप्त करके मुनी जिनविजय जी ने सपादित और प्रकाशित किया है—वैसे ग्रन्थो की परम्परा राजस्थानी मे भी रही है जिससे सस्कृत को सीखने में सुगमता हो। इस तरह की एक रचना 'बाल-शिक्षा' स. 1336 मे रचित प्राप्त है और वह राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से प्रकाशित हो चुकी है। 'प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रह' और 'प्राचीन गुजराती 'गद्य सदर्भ' ग्रन्थ मे स. 1330 की लिखी हुई आराधना, स. 1358 का नवकार व्याख्यान, स. 1359 का सर्वतीर्थ नमस्कार स्तवन और स. 1340 और 1369 का लिखा हुआ अतिचार ये कतिपय लघु रचनाये प्रकाशित हुई है। इनमे जैन पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग अधिक हुआ है। अत केवल गद्य का परम्परा का प्रकट करने के लिये ही उनका महत्व है। उस समय की भाषा की थोडी झाकी इससे मिल जाती है। स. 1330 की आराधना की प्रति ताडपत्रीय है। अतः वह इससे पुरानी प्रति की नकल होने पर 13 वी शताब्दी की रचना मानी जा सकती है। इस रचना का अतिम अश नीचे दिया जा रहा है जिससे प्राचीनतम राजस्थानी गद्य से पाठक परिचित हो सकें—

"अतीतु निदउ वर्तमानु सवरहु अनागतु पच्चखउ। पच परमेष्ठि नमस्कारु जिनसासनि सारु, चतुर्दशपूर्व समुद्धारु, सपादित सकल कल्याण सभारु, विहित दुरिता-पहारु, क्षुद्रोपद्रवपर्वतवज्र-प्रहारु, लीलादालतससारु, सु तुम्हि अनुसरहु, जिणिकारणी चतुर्दशपूर्वधर चतुर्दश पूर्वसम्बधिउ ध्यान परित्यजिउ पच परमेष्ठि नमस्कारु स्मरहि, तउ तुम्हि विशेषि स्मरवेउ, अनइ परमेश्वरि तीर्थकरदेवि इसउ अर्थु भणियउ अच्छइ, अनइ ससारतणऊ प्रतिभउ मकरिसउ, अनइ इद्धि नमस्कार इहलोकि परलोकि सपाधियइ ॥ आराधना समाप्तेति ॥"

प्राकृत के सूत्र या गाथा का विवेचन राजस्थानी गद्य में किया गया उसका प्राथमिक नमूना सं. 1358 में लिखे हुये नवकार व्याख्यान से यहां उद्धृत किया जा रहा है :—

"नमो अरिहंताणं ।।1।। माहरउ नमस्कारु अरिहंत हुउ। किसा जि अरिहंतु रागद्वेष-रूपिआ अरि-वयरी जैहि हणिया, अथवा चतुषष्ठि इंद्र संबन्धिनी पूजा महिमा अरिहइ; जि उत्पन्न दिव्य विमल केवलज्ञान, चउत्रीस अतिशयि समन्वित, अष्ट महाप्रातिहार्य शोभायमान महाविदेहि खेत्रि विहरमान तीह अरिहंत भगवंत माहरउ नमस्कारु हुउ ।।1।।"

व्रतों में दूषण लगाने को अतिचार कहते हैं। श्रावक पाक्षिक प्रतिक्रमण आदि में लोक भाषा में अपने व्रतों में लगे हुए दोषों की आलोचना करते हैं। उस अतिचार संज्ञक रचना में गद्य कुछ अधिक स्पष्ट हुआ है। इसलिए सं. 1369 की लिखी हुई ताड़पत्रीय प्रति का कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है :—

"हिव दुकृत गर्‌हिा करउ। जु अणादि संसार मांहि हींडतई हुतई ईणि जीवि मिथ्यात्वु प्रवर्तावि‌उ। कुतिर्थु सस्थापिउ, कुमार्ग प्ररूपिउ, सन्मार्गु अवलपिउ। हिवु ऊपाजि मेल्हि सरीरु कुटुबुजु पापि प्रर्वतिउ, जि अधि गण हलऊ खल घरट घरटी खांडा कटारी अरहट्ट पावटा कुप तलाब कीधा कराव्यां, अनुमोद्या ते सर्वे त्रिविधि त्रिविधि वोमिरावउ। देवस्थानि द्रवि वेचि पूजा महिमा प्रभावना की घी, तीर्थजात्रा रथजात्रा कीधी, पुस्तक लिखाव्या, माधर्मिक-वाछल्य कीधा, तप नीयम देववंदन वादणाई सज्झाई अनेराइ धर्मानिष्ठान तणइ विषइ जु ऊजमु कीधउ सु अम्हारउ सफलु हुओ। इति भावनापूर्वक अनुमोदउ।"

14 वीं शताब्दी के राजस्थानी गद्य के कुछ नमूने ऊपर दिये गये, वे सभी छोटी-छोटी रचनाओं के रूप में हैं। वास्तव मे राजस्थानी गद्य का सही स्वरूप 15 वीं शताब्दी में मिलने लगता है। खरतरगच्छ के आचार्य तरुणप्रभसूरि ने 'षडावश्यक बालावबोध' नामक बालावबोध संज्ञक पहली रचना सवत् 1411 मे पाटण मे बनाई। उसमें प्रासंगिक कथाएं बहुत सी पायी जाती हैं। जिनमे से कुछ 'प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ' मे प्रकाशित हो चुकी हैं। उन कथाओं मे प्रवाहबद्ध गद्य का स्वरूप स्पष्ट हुआ है—

"1. शका विषइ उदाहरणु यथा—नगरि एकि सेठि एक तणा बि पुत्र ले साल पढइं। तीहरहइ आरोग्य बुद्धि वृद्धि निमित्तु माता सप्रभाव ओसही पेया एकांत स्थानि षिकी करावइ। तीह माहि एक रहइ मक्षिकादि शंका लगी मनि सूग उपजइ। मानस दुक्खपूर्वक सरीर दुक्ख, इणि कारणि तेहरहइं वल्गुली रोगु ऊपनउ, मूयउ।

2. आकांक्षा विषइ उदाहरणु—राजा अनइ महामात्यु बे जणा अश्वापहारइतउ अटवी माहि गया। भूखिया हुया। वणफल खाधां। नगरि आविया। राजा सूपकार तेडी करी कहइ 'जि के भक्ष्य-भेद सभवइं ति सगलाइ करउ' सूपकारे कीधा।"

तरुणप्रभसूरि ने यद्यपि यह बालावबोध पाटण में रचा है पर उनका विहार राजस्थान और सिन्ध प्रदेश तक मे होता रहा है। उस समय प्रांतीय भाषाओं में इतना अंतर नहीं था। तरुणप्रभसूरि को आचार्य पद 1388 में मिला था। अतः उनकी रचना की भाषा गुजरात और राजस्थान मे तत्कालीन जन सामान्य की भाषा थी। इसके बाद तो बालावबोध शैली का खूब विकास हुआ और इससे राजस्थानी गद्य के नमूने भी प्रत्येक शताब्दी के प्रत्येक चरण के प्राप्त हैं।

15 वीं शताब्दी से तुकांत और साहित्यिक गद्य भी प्रचुर परिमाण में प्राप्त है। सं. 1478 में 'पृथ्वीचन्द्र चरित्र' माणिक्यचन्द्रसूरि ने गद्य मे बनाया। उसका नाम ही इसीलिए 'वाग्विलास' रखा गया है कि उसमे कथा तो बहुत थोडी है, वर्णन प्रचुर है। यहा वर्षाकाल का कुछ वर्णन नीचे दिया जा रहा है —

"हिव ते कुमार, चडी यौवनि भरि, परिवरी परिकरि, क्रीडा करइ नवनवी परि। इसिइं अवसरि आविउ आषाढ, इतर गुणि सबाड। काटइयइ लोह, धाम तणउ निरोह। छासि षाटी, पाणि वीयाइ माटी। विस्तरिउ वर्षाकाल, जे पथी तणउ काल, नाठउ दुकाल। जीणिइ वर्षाकालि मधुरध्वनि मेह गाजइ, दुर्भिक्ष तणा भय भाजइ, जाणे सुभिक्ष भूपति आवता जयढक्का वाजइ। चिहु दिसी बीज झलहलइ, पथी घर भणी पुलइ। विपरीत आकाश, चद्र सूर्य परियास। राति अधारी, लवइ तिमिरी। उत्तरनउ ऊनयण, छायउ गयण। दिसि घोर, नाचइ मोर। सघर, वरसइ धाराधर, पाणी तणा प्रवाह षलहलइ, वाडि ऊपरि वेला वलइ। चीखलि चालता शकट स्खलइ, लोक तणा मन धर्म्म ऊपरि वलइ।"

ऐसे वर्णनात्मक और तुकांत साहित्यिक गद्य रचनाओ की एक परम्परा रही है, जिनमे से कुछ रचनाओ का संग्रह मैने अपने 'सभाश्रृगार' ग्रथ मे किया है जो नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हो चुका है। इसी तरह मेरे मित्र डा भोगीलाल साडेसरा सपादित 'वर्णक समुच्चय' के दो भाग बडोदा से प्रकाशित हुए है। मेरी जानकारी मे इतना अलंकारिक, साहित्यिक गद्य इतना प्राचीन अन्य किसी भी प्रान्तीय भाषा मे नही है।

15 वी शताब्दी के और भी कई बालावबोध प्राप्त है जिनमे सुदर कथाए भी मिलती है। उनमे से सोमसुन्दरसूरि के 'उपदेशमाला' और 'योगशास्त्र' बालावबोध की कुछ कथाए 'प्राचीन गुजराती गद्य सदर्भ' मे प्रकाशित हो चुकी है। अभी-अभी 'सीता राम चरित' नामक 15 वी शताब्दी की गद्य कथा डा. हरिबल्लभ मायाणी सपादित 'विद्या' नामक पत्रिका मे प्रकाशित हुई है जो गुजरात विश्वविद्यालय की शोध-पत्रिका है। इसी तरह की 'धनपाल कथा' और 'तत्वविचार प्रकरण' मे राजस्थान भारती आदि मै प्रकाशित कर चुका हू। स 1485 की लिखी हुई 'कालिकाचार्य कथा' भी मेरे सग्रह मे है।

मेरुतुगसूरि ने व्याकरण चतुष्क बालावबोध, साधुरत्नसूरि ने नवतत्व बालावबोध, दयासिह ने सग्रहणी और क्षेत्रसमास बालावबोध की रचना की। सोमसुन्दरसूरि का षष्टिशतक बालावबोध स 1496 मे रचित डा. साडेसरा ने सपादित करके प्रकाशित किया है। हमारे संग्रह मे 'तपागच्छ गुर्वावली' की स 1497 की लिखी गई प्रति है जो 15 वी शती के ऐतिहासिक गद्य का अच्छा उदाहरण है।

जिनसागरसूरि ने षष्टिशतक बालावबोध स 1491 मे बनाया।

16 वी शताब्दी मे प्राकृत और सस्कृत के अनेक ग्रन्थों की बालावबोध भाषा टीका जैन विद्वानो ने बनायी, जिनमे हेमहसगणि का षडावश्यक बालावबोध सं 1501 मे रचा गया। मेवाड के देवकुलपाटक मे माणिक्यसुन्दर गणि ने भवभावना बालावबोध स 1501 मे रचा। जिनसूरि रचित गौतमपृच्छा बालावबोध, सवेगदेव गणि रचित पिण्डविशुद्धि बालावबोध सं. 1513, धर्मदेव गणि रचित षष्टि शतक बालावबोध संवत् 1515, आसचन्द्र रचित कल्पसूत्र बालावबोध स 1517, जयचन्द्रसूरि रचित चउसरण बालावबोध सं 1518 से पूर्व, उदयवल्लभ-सूरि रचित क्षेत्रसमास बालावबोध, कमलसंयम उपाध्याय रचित सिद्धान्त सारोद्धार आदि प्राप्त हैं और नन्नसूरि रचित उपदेशमाला बालावबोध सं. 1543 में रचित रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन से प्रकाशित हो चुका है।

16वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के गद्य लेखक मैरुसुन्दर और उत्तरार्ध के पार्श्वचन्द्र ने तो अनेकों ग्रन्थों के बालावबोध बनाये जिनमें मैरुसुन्दर खरतरगच्छ के प्रसिद्ध विद्वान् थे। इनके कई बालावबोधों में बहुत सी कथाएं पायी जाती हैं। इन्होने केवल जैन आगम और प्रकरणों की ही नहीं अपितु संस्कृत के अलकार ग्रन्थ 'विदग्धमुखमण्डन' और 'वाग्भटटालकार' तथा छंदग्रन्थ 'वृत्तरत्नाकर' की भी भाषाटीका बालावबोध रूप में बनायी। स. 1518 से 1535 के बीच में आपने 'शीलोपदेशमाला, पुष्पमाला, षडावश्यक, षष्टिशतक, कर्पूर प्रकर, योगशास्त्र, भक्तामर' आदि 20 ग्रथो के बालावबोध रचे। इनका एक स्वतन्त्र प्रश्नोत्तर ग्रंथ भी स. 1535 में रचित प्राप्त है।

पार्श्वचन्द्र सूरि ने सर्वप्रथम आचाराग, सूत्रकृताग, दशवैकालिक, औपपातिक, प्रश्नव्याकरण, तदुलवैयालिय, चउसरण, साधुप्रतिक्रमण, नवतत्व आदि जैन आगमो पर बालावबोध, भाषा-टीकाए लिखी। इनका मुख्य केन्द्र नागौर, जोधपुर आदि राजस्थान ही था।

खरतरगच्छीय धर्मदेव ने षष्टिशतक बालावबोध (स. 1515), रत्नरंगोपाध्याय ने रूपकमाला बालावबोध (स. 1582), राजशील ने सिंदूर प्रकर बालावबोध, अभयधर्म ने दश दृष्टात कथानक बालावबोध, राजहंस ने दशवैकालिक बालावबोध और प्रवचन सार बनाया। शिवसुन्दर ने गौतमपृच्छा बालावबोध स. 1569 खीवसर में बनाया।

17वी शताब्दी में भी बालावबोधो के अतिरिक्त कुछ मौलिक प्रश्नोत्तर आदि ग्रन्थ भी रचे गये। उनमे साधुकीर्ति रचित सत्तरमरण बालावबोध की रचना स. 1611 की दीवाली को बीकानेर के मन्त्री सग्रामसिंह के आदेश से की गई। हर्ष बल्लभ उपाध्याय ने 'अचलमत चर्चा' की रचना की जिसकी स. 1613 की प्रति प्राप्त है। सोमविमलसूरि ने दशवैकालिक और कल्पसूत्र बालावबोध, चन्द्रधर्म गणि ने युगादिदेवस्त्रोत बालावबोध, चारित्र-सिंह गणि सम्यक्त्वस्तव बालावबोध स. 1633, जयसोम उपाध्याय ने दो प्रश्नोत्तर ग्रथ और अष्टोतरी विधि स. 1650 के आसपास बनाये। स. 1651 मे पदमसुन्दर ने प्रवचनसार बालावबोध की रचना की।

उपाध्याय समयसुन्दर जी ने रूपकमाला बालावबोध, षडावश्यक बालावबोध और यति आराधना की रचना की। शिवनिधान उपाध्याय ने स. 1652 मे 1680 के बीच मे राजस्थान मे रहते हुए काफी गद्य की रचनाए की जिनमे शाश्वत स्तवन बालावबोध की रचना सं. 1652 साभर मे, लघुसग्रहणी और कल्पसूत्री बालावबोध स 1680 अमृतसर में, गुणस्थान गर्भित जिनस्तवन नामक राजस्थानी रचना पर स 1692 सागानेर मे बालावबोध लिखा। इसी तरह राजस्थानी के सुप्रसिद्ध काव्य 'कृष्णरुकमणी री वेलि' की भी बालावबोध भाषा टीका बनायी। आपने विधिप्रकाश नामक ग्रन्थ भी गद्य में रचा है। कृष्ण रुकमणी री वेलि पर समयसुन्दर जी के प्रशिष्य जयकीर्ति ने भी स. 1686 बीकानेर मे बालावबोध लिखा। इन्होंने षडावश्यक बालावबोध जैसलमेर के थाहरुशाह की अभ्यर्थना से स 1693 मे बनाया।

17वीं शताब्दी के खरतरगच्छीय विद्वान् विमलकीर्ति ने आवश्यक बालावबोध सं. 1662, जीवविचार-नवतत्व-दण्डक बालावबोध, जयतिहुअण बालावबोध, दशवैकालिक टब्बा, षष्टिशतक बालावबोध, उपदेशमाला टब्बा, प्रतिक्रमण टब्बा, इक्कीसठाणा टब्बा आदि भाषा टीकाएं बनायीं। इनके गुरुभाई के शिष्य विमलरत्न ने वीरचरित्र बालावबोध सं. 1702 सांचौर मे बनाया। उदयसागर ने क्षेत्रसमास बालावबोध की रचना स 1657 मे उदयपुर मे की। श्रीपाल ऋषि ने दशवैकालिक बालावबोध स. 1664 मे और कनकसुन्दर गणि ने दशवैकालिक बालावबोध 1666 और ज्ञाताधर्मसूत्र बालावबोध 14000 श्लोक परिमित बनाया। रामचन्द्रसूरि ने कल्पसूत्र बालावबोध, मेघराज जो पार्श्वचन्द्रसूरि के प्रशिष्य थे, ने राजप्रश्नीय, समवायाग, उत्तराध्ययन, औपपातिक, क्षेत्रसमास बालावबोध और साधुसमाचारी की रचना की।

उदयसागर ने सं. 1676 उदयपुर में क्षेत्रसमास बालावबोध मन्त्री धनराज के पुत्र गंगा की अभ्यर्थना से बनाया। पार्श्वचन्द्र गच्छीय राजचन्द्रसूरि ने दशवैकालिक बालावबोध, हर्षवल्लभ उपाध्याय ने उपासकदशांग बालावबोध की रचना सं. 1669 में की। सूरचन्द्र ने चातुर्मासिक व्याख्यान सं. 1694 में, मतिकीर्ति ने प्रश्नोत्तर सं. 1691 जैसलमेर में, कमलालाभ ने उत्तराध्ययन बालावबोध सं. 1674 और 1689 के बीच मे बनाया। कल्याण सागर ने दानशील-तप-भाव-तरंगिणी की रचना सं. 1694 में उदयपुर में की। नयविलास रचित लोकनाल बालावबोध की प्रति मेरे संग्रह मे है।

खरतरगच्छीय उपाध्याय कुशलधीर ने पृथ्वीराजकृत कृष्णरुकमणी री वैलि बालावबोध की रचना स. 1696 मे की। इनने रसिकप्रिया बालावबोध सं. 1724 जोधपुर में बनाया।

18वी शताब्दी मे भी राजस्थानी मे गद्य रचना की परम्परा चलती रही। पर उसमें एक नया मोड़ भी आया। 18वी शताब्दी के प्रारम्भ से ही राजस्थान मे हिन्दी का प्रभाव पड़ना शुरू हुआ। क्योंकि एक और मुगल बादशाहो से राजस्थान के राजाओ का सम्पर्क बढ़ा। ये बादशाहो के अधीन होकर अनेक हिन्दी प्रदेशो मे युद्ध करने गये। अत हिन्दी भाषा और साहित्य का प्रभाव उन पर पड़ा। फिर शाहजहा के बाद हिन्दी कवियों और लेखकों तथा कलाकारों को जो प्रोत्साहन मिलना था वह औरगजेब के समय से मिलना बन्द हो गया। फलत: अनेक कवि और कलाकार राजस्थान के राजाओ के आश्रित बन गये। उनके राजदरबार मे प्रतिष्ठा और प्रभाव बढ़ने के कारण भी 18वी शताब्दी से राजस्थानी के साथ-साथ हिन्दी मे भी रचनाए राजस्थान मे होने लगी। जैन कवियो का भी राजाओ से अच्छा सम्बन्ध रहा है। हिन्दी के कवियो और गुणीजनो से भी वे प्रभावित हुए। इसलिये राजस्थानी के जैन कवियो ने भी 18वी 19वी शताब्दी मे राजस्थानी के साथ-साथ हिन्दी में भी काफी रचनाएं है। पद्य रचनाओ के साथ-साथ गद्य मे भी हिन्दी का प्रयोग होने लगा। दिगम्बर सम्प्रदाय मे तो हिन्दी के कवि और गद्य लेखक बहुत अधिक हो गये। क्योंकि 17वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध के कवि बनारसीदास यद्यपि आगरा मे हुए पर उनकी रचनाओ का प्रचार राजस्थान और पंजाब तक बढता गया। उनके प्रचलित दिगम्बर तेरापथ का भी प्रभाव पड़ा।

18वी शताब्दी के प्रारम्भ मे श्वेताम्बर खरतरगच्छीय कवि जसराज जिनका दीक्षा नाम 'जिनहर्ष' था ने बहुत बड़ा साहित्य निर्माण किया। उनका प्रारम्भिक जीवन काल राजस्थान मे तथा पिछला गुजरात के पाटण में बीता। लक्ष्याधिक पद्य रचनाओं के अतिरिक्त इन्होंने गद्य मे दीवाली कल्प बालावबोध, स्नात्र पचासिका, ज्ञान पचमी और मौन एकादशी पर्व कथा बालबोध की रचना की।

यहा यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि बहुत से जैन कवियों के गद्य में राजस्थानी एवं गुजराती का मिलाजुला रूप मिलता है। क्योंकि उनका उद्देश्य था गुजरात और राजस्थान दोनो प्रातो के जैनी उनकी रचना को ठीक से समझ सकें। वैसे भी उनका विहार दोनो प्रान्तों में समान रूप मे होता था, अत. भाषा मे मिश्रण होना स्वाभाविक ही है। राजस्थान के अति चाहे वे पजाब मे तथा चाहे वे बगाल की ओर गये हों और मालवे में तो राजस्थानी का प्रभाव था ही। अत इन सब प्रान्तो मे जो उन्होने रचनाये की वे अधिकांश राजस्थानी भाषा में ही हैं। क्योंकि वहाँ के अधिकांश जैनी राजस्थान से ही गए हुए थे और उनकी घरेलू बोली राजस्थानी ही थी। इसलिये राजस्थानी मे लिखी हुई रचना उनके लिये समझने मे सुगम थी।

18वी शताब्दी के कवि जयरंग के शिष्य सुगुणचन्द ने ध्यानशतक बालावबोध की रचना संवत् 1736 फागुन सुदी 5 को जैसलमेर में की।

उपरोक्त कवि जिनहर्ष के गुरुभ्राता कवि लाभवर्द्धन ने चाणक्यनीति और सुभाषित ग्रंथ पर राजस्थानी भाषा में टब्बा लिखा। टब्बा एक तरह से संक्षिप्त अर्थ को कहते है, पर बालावबोध में विस्तृत विवेचन होता है टब्बे लिखने की शैली भी ऐसी होती है कि जिसमे प्राकृत या संस्कृत आदि के मूल ग्रंथ की एक पक्ति बड़े अक्षरो में लिखी जाती है और उसके ऊपर छोटे अक्षरों में उसका अर्थ लिख दिया जाता है।

खरतरगच्छीय प. रत्नराज के शिष्य रत्नजय जिनका गृहस्थावस्था का नाम सभवत: नरसिंह था, उन्होंने छठे अगसूत्र ज्ञाता पर टब्बा बनाया जिसका परिमाण 13581 श्लोको का है। इसकी प्रति सवत् 1733 की लिखी हुई मिली है। उन्होंने सप्तस्मरण टब्बा बनाया। सुप्रसिद्ध कल्पसूत्र और हर्षकीर्ति सूरि के सस्कृत वैद्य ग्रथ 'योग-चिन्तमणि' पर बालावबोध नामक भाषा टीकाये बनायी। इनमे से कल्पसूत्र बालावबोध का परिमाण 5229 श्लोको का है। यहा जो श्लोको का परिमाण बतलाया जाता है वह अनुष्ठुपूछद मे 32 अक्षर होते है अत. गद्य के भी 32 अक्षरो को एक श्लोक मानकर ग्रन्थो का परिमाण बतलाना चालू हो गया। जो लहइया लोग ग्रन्थो की प्रतिलिपि करते थे उनको भी लिखाई का पारिश्रमिक श्लोक परिमाण के हिसाब से दिया जाता था जैसे 100 या 1000 श्लोक की लिखाई की रेट (दर) तय हो जाती थी और ग्रन्थ की नकल कर लेने पर 32 अक्षरो के श्लोक के हिसाब से लिखाई के जितने श्लोक होते उनमे पैसो का चुकारा कर दिया जाता।

18वी शताब्दी के विद्वान् उपाध्याय लक्ष्मीवल्लभ ने सस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी तीनों भाषाओ मे राजस्थानी रचनाये की है। इन्होंने गद्य मे भर्तृहरि के शतक त्रय और पृथ्वीराज वेलि का टब्बा या अर्थ लिखा, जिससे इन ग्रन्थो को सर्वसाधारण समझ सके। पृथ्वीराज वलि राजस्थानी का सुप्रसिद्ध सर्वोत्तम काव्य बीकानेर के माहाराजा पृथ्वीराज ने बनाया है। डूगर भाषा की यह उत्कृष्ट कृति समझने मे कठिन पड़ती है इसलिये कई जैन विद्वानो ने इस काव्य के सस्कृत व राजस्थानी मे टीकाये लिखी है। उपाध्याय लक्ष्मीवल्लभ ने इसकी भाषा टीका विजयपुर के चतुर व्यक्तियो की अभ्यर्थना से बनायी। इसकी सवत् 1750 की लिखी हुई प्रति प्राप्त हुई है।

कवि कमलहर्ष के शिष्य विद्याविलास ने सवत् 1728 मे कल्पसूत्र बालावबोध की रचना की। जैन आगमो मे सबसे अधिक प्रचार कल्पसूत्र का है क्योंकि प्रतिवर्ष पर्युषणो मे इसे बांचा जाता है। अत इस सूत्र पर सस्कृत व राजस्थानी में सबसे अधिक टीकाये बनायी गई हैं।

18वी शताब्दी के खरतरगच्छीय जैन विद्वानो मे उपाध्याय धर्मवर्द्धन राजमान्य विद्वान् थे। इनकी लघु रचनाओ का सग्रह मैने सम्पादन करके 'धर्मवर्द्धन ग्रन्थावली' के नाम से प्रकाशित करवा दिया है। इन्होंने खण्डेलवाल रेखा जी के पौत्र, जोधराज के पुत्र नैना के लिये दिगम्बर अपभ्रश आध्यात्मिक ग्रथ, परमात्म-प्रकाश की हिन्दी म भाषा टीका संवत् 1762 में बनायी, जिसका एक मात्र प्रति अजमेर क दिगम्बर भट्टारकीय शास्त्र भडार में प्राप्त है। इनके शिष्य कीर्तिसुन्दर ने एक 'नाग विलास कथा सग्रह' नामक कथाओं की सक्षिप्त सूचना करने वाले ग्रन्थ की रचना गद्य मे की, जिसे मैने वरदा मे प्रकाशित करवा दिया है।

खरतरगच्छ की सागरचन्द्रसूरि शाखा के कवि लक्ष्मीविनय ने सस्कृत के ज्योतिष ग्रन्थ भुवनदीपक की बालवबोध भाषा टीका सवत् 1767 मे बनायी। इसके पहले पुण्यहर्ष के शिष्य अभयकुशल ने सिणली ग्राम के चतुर सोनी के आग्रह से भर्तृहरि शतक बालावबोध की रचना संवत् 1755 में की। इनके गुरु पुण्यहर्ष ने इनके साथ रहते हुये दिगम्बर ग्रन्थ पद्मनन्दी पंचविंशिका की हिन्दी भाषा मे टीका सवत् 1722 मे आगरा के जगतराय के लिये बनायी।

ज्ञानचन्द्र के शिष्य कवि श्री देव ने जैन भूगोल संबंधी प्राकृत ग्रन्थ क्षेत्र समास बालावबोध की रचना की।

महानतत्ववेत्ता उपाध्याय देवचन्द्र जी ने मरोठ की श्राविका के लिये जैन आगमों के सार रूप में आगम सार ग्रन्थ गद्य रूप मे सवत् 1776 मे बनाया। इन्होंने नयचक्र सार बालावबोध, गुण-स्थान-शतक व कर्मग्रन्थ बालावबोध, विचार सार टब्बा, गुरु गुण षट्त्रिंशिका टब्बा और विचार रत्नसार प्रश्नोत्तर ग्रन्थ गद्य मे विवेचित किये। अपने बनाये हुए 24 तीर्थंकरो पर भी इन्होंने बालावबोध भाषा टीका बना के उन स्तवनो के विशुद्ध भावो को स्पष्ट किया। आपने सप्त स्मरण बालावबोध, दण्डक बालावबोध और शातरस आदि और भी गद्यात्मक रचनायें की।

18वी के उत्तरार्द्ध और 19वी के प्रारम्भ के जैन विद्वान् महोपाध्याय रामविजय ने कई गद्य रचनाये करके उन प्राकृत सस्कृत ग्रन्थो को सर्व साधारण के लिये सुगम बना दिया। इनमे से कल्पसूत्र बालावबोध का रचनाकाल तो 19वी के प्रारम्भ का है। इनकी सबसे पहली गद्य रचना 'जिनसुख सूरि मजलस' हिन्दी की छटादार तुकान्त गद्य रचना बडी सुन्दर है, जो सवत् 1772 मे रची गयी। इसके बाद उन्होंने सवत् 1788 मे भर्तृहरि शतकत्रय बालावबोध सोजत के छाजेड मत्री जीवराज के पुत्र मनरूप के आग्रह से बनाया। उसी के आग्रह से अमरु शतक बालावबोध की रचना सवत् 1791 मे की।

इन्होंने सुप्रसिद्ध कविवर बनारसीदास जी के समयसार के हिन्दी आध्यात्मिक काव्य की बालावबोध भाषा टीका स्वर्णगिरि के गणधर गोत्रीय जगन्नाथ के लिये सवत् 1792 में की। सवत् 1792 मे लघु स्तव नामक देवी स्तुति की भाषा टीका बनायी। इनके अतिरिक्त भक्तामर टब्बा, नवतत्व टब्बा, दुरियर स्तोत्र टब्बा, कल्याण-मन्दिर टब्बा, सन्निपात कलिका टब्बा और हेमीनाममाला भाषा टीका की रचना की। अर्थात् ये बहुत अच्छे व बडे गद्य लेखक थे।

खरतरगच्छीय जसशील के शिष्य नैनसिह ने बीकानेर के महाराजा आनन्दसिह के कहने से भर्तृहरि नीतिशतक की हिन्दी भाषा टीका सवत् 1786 मे लिखी।

इस शताब्दी मे जयचन्द नाम के दो विद्वान् हुये है जिनमे से एक ने माताजी की वचनिका नामक राजस्थानी की एक सुन्दर गद्य रचना सवत् 1776 मे कुचेरा मे रहते हुये बनायी। यह राजस्थानी शोध सस्थान चोपासनी से प्रकाशित परम्परा मे छप चुकी है।

दयातिलक के शिष्य दीपचन्द ने बालतत्र नामक सस्कृत वैद्यक ग्रन्थ की हिन्दी भाषा टीका सवत् 1792 जयपुर म बनायी जिसकी हस्तलिखित प्रति हमारे सग्रह में है।

18वी शताब्दी क प्रारम्भ मे खरतरगच्छीय विमलरत्न ने वीर चरित्र बालावबोध सवत् 1702 साचोर मे बनाया जिसका परिमाण 552 श्लोको का है। इसके बाद समयसुन्दरजी की परम्परा के राजसोम ने श्रावकाराधना भाषा और इरिया वही मिथ्यादुष्कृत बालाबोध की रचना की, जिसकी प्रति सवत् 1709 की प्राप्त है। सवत् 1719 म ख ज्ञाननिधान ने विचार छत्तीसी गद्य ग्रन्थ बनाया।

पार्श्वचन्द्रगच्छीय रामचन्द्र ने द्रव्य सग्रह बालावबोध की रचना की है।

जैसा कि पहले कहा गया है कि राजस्थान के खरतरगच्छीय कवियो ने पजाब सिंध में चातुर्मास करते हुये भी राजस्थानी गद्य मे रचनायें की। जैसे ख. पद्मचन्द्र शिष्य ने नवतत्व का

विस्तृत बालावबोध संवत् 1766 घटा में बनाया, जिसका 3000 श्लोक परिमाण है। इसी घटा में बैगड़ शाखा के सभाचन्द्र ने ज्ञानसुखडी सवत् 1767 में रचा। इनके अतिरिक्त भी बहुत सी गद्य रचनायें है पर उनमे रचना स्थान का उल्लेख नहीं है। खरतरगच्छीय लेखकों के लिये तो प्रायः राजस्थान मे रचे जाने की संभावना की जा सकती है, क्योकि इस गच्छ का प्रचार व प्रभाव राजस्थान में ही अधिक रहा है। तपागच्छ का गुजरात में। इसलिये इस निबन्ध में खरतरगच्छ के साहित्य का ही अधिक उल्लेख हुआ है।

19वीं शताब्दी में साहित्य रचना पूर्वापेक्षा कम हुई। उल्लेखनीय श्वेताम्बर गद्य रचनायें तो और भी कम हैं।

ख. रत्नधीर ने भुवनदीपक नामक प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रन्थ का विस्तृत बालावबोध संवत् 1806 में बनाया। यह दिल्ली के नवाब के कहने से हिन्दी में लिखा गया। इसके बाद चैनसुख ने वैद्यक ग्रन्थ शतश्लोकी, वैद्यजीवन और पथ्यापथ्य पर टब्बा अर्थात् शब्दार्थ लिखा। यह रचना सवत् 1820 के लगभग हुई। कवि रघुपति ने दुरिग्रर बालावबोध रचा जिसकी प्रति 1813 की प्राप्त है।

इस शताब्दी के उल्लेखनीय विद्वानो में उपाध्याय क्षमा कल्याण जी ने प्रश्नोत्तर साहित्य शतक भाषा सवत् 1853 बीकानेर मे और अबड चरित्र सवत् 1854 में रचा। दूसरे ग्रन्थकार श्री ज्ञानसारजी जिन्होने आनन्दघनजी के चौबीसी और पदो पर विस्तृत विवेचन सवत् 1866 के आसपास किशनगढ़ में रचा। उन्होने और भी कई बालावबोध और गद्य रचनायें की हैं जिनमें आध्यात्मगीता बालावबोध, जिनप्रतिमा स्थापित ग्रन्थ, पच समवाय अधिकार आदि उल्लेखनीय है।

खरतर आनन्दवल्लभ ने सवत् 1873 से 1882 के बीच कई रचनायें गद्य मे कीं जिनमें चौमासा व्याख्यान, अठाई व्याख्यान, ज्ञान पचमी, मौन ग्यारस, होली के व्याख्यान और दडक, सग्रहणी, विशेषशतक, श्राद्ध दिनकृत्य बालावबोध उल्लेखनीय हैं। प. कस्तूरचन्द ने षट्-दर्शन समुच्चय बालावबोध की रचना सवत् 1894 मे बीकानेर मे की।

20वी शताब्दी में भी वैसे कई पुराने ग्रन्थो पर बालावबोध रचे गये जैसे देवमुनि ने श्रीपाल चरित्र भाषा सवत् 1907 मे रचा। सुगनजी ने मूर्तिमडन प्रकाश, रामलाल जी ने श्रीपाल चरित्र भाषा सवत् 1957, अठाई व्याख्यान 1949, सघपट्टक बालावबोध 1967 मे लिखे और स्वतन्त्र ग्रन्थ हिन्दी भाषा मे बहुत से बनाये। इसी तरह यति श्रीपाल जी ने जैन सम्प्रदाय शिक्षा नामक बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा। इसी तरह यति पन्नालाल जी ने आत्म-प्रबोध हिन्दी अनुवाद आदि ग्रन्थ अनेक लोगो ने प्राचीन ग्रन्थो के अनुवाद व कुछ मौलिक ग्रन्थ हिन्दी में लिखे। 20वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से तो हिन्दी में ही अधिक लिखा जाने लगा है।

तेरापन्थी सम्प्रदाय के प्रवर्तक भीखण जी ने राजस्थानी गद्य मे 19वी शताब्दी मे काफी लिखा पर वह गद्य संग्रह प्रकाशित नही हुआ। इस सम्प्रदाय के सबसे बड़े गद्य लेखक आचार्य जीतमल जी जयाचार्य हुये जिन्होने कथाओ का एक बहुत बडा संग्रह 20वी शताब्दी के प्रारम्भ में तैयार किया। जिसका परिमाण करीब 60 हजार श्लोक का बतलाया जाता है। इनकी और भी गद्य रचनाये हैं पर अभी तक प्रायः वे सभी अप्रकाशित हैं। स्थानकवासी सम्प्रदाय के गद्य साहित्य की भी पूरी जानकारी प्राप्त नही हो सकी। 20वी शताब्दी से तो पद्य की अपेक्षा गद्य में अधिक लिखा जाने लगा। अत उन सबका विवरण देना यहा संभव नही है। सक्षेप में श्वेताम्बर लेखकों ने पद्य के साथ-साथ गद्य में भी निरन्तर साहित्य निर्माण किया है और वह लाखों श्लोक परिमित हैं।

राजस्थानी गद्य साहित्यकार 8

—डा. देव कोठारी

जैन श्वेताम्बर तेरापन्थ के अस्तित्व का इतिहास वि. स. 1817 की आषाढ पूर्णिमा से आरम्भ होता है। इस प्रकार एक सम्प्रदाय के रूप में तेरापन्थ यद्यपि अर्वाचीन धर्म-संघ है किन्तु साहित्यिक चेतना और उसकी सृजनात्मक अभिव्यक्ति के रूप में उसकी प्रसिद्धि सर्व विदित है। नवीन सम्प्रदाय की कुशल संगठन व्यवस्था, स्वरूप-निर्माण एवं उसके प्रचार-प्रसार के लिये आरम्भिक दिनों से ही राजस्थानी गद्य और पद्य के रूप में विपुल साहित्य-निर्माण की परम्परा आरम्भ हो गई थी, जिसकी सुदृढ नींव आद्य आचार्य संत भीखण जी के कर-कमलों द्वारा रखी गई थी, परिणामस्वरूप परवर्ती काल में भी विविध रूपात्मक एवं विषयात्मक साहित्य सृजन की प्रक्रिया अनवरत रूप से चालू रही।

तेरापन्थ का राजस्थानी गद्य इसी परम्परा में विशाल परिमाण में प्रारम्भिक समय से ही प्राप्त होता है। अब तक किये गये अनुसंधान से तेरापन्थ सम्प्रदाय के ग्यारह राजस्थानी गद्य साहित्यकार और उनकी कृतियां प्रकाश में आई है। समस्त कृतिकार आचार्य अथवा संत हैं। इनकी कुछ तात्विक-चर्चा-प्रधान रचनायें यत्र तत्र प्रकाशित भी हुई है किन्तु अधिकांश गद्य साहित्य हस्तलिखित ग्रन्थों एवं पत्रों के रूप में ही उपलब्ध होता है। इनकी मूलप्रतियां तथा उनकी प्रतिलिपियां वर्तमान में युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी एवं उनके आज्ञानुवर्ती साधु-साध्वियों के पास है। कुछ प्रतियां लाडनूं (जिला नागौर) स्थित संग्रहालय में भी विद्यमान है।

यह सम्पूर्ण गद्य साहित्य मौलिक और अमौलिक दो प्रकार का है। मौलिक गद्य, कृतिकार की स्वयं की उद्भावना से उद्भावित है तथा अमौलिक गद्य अनुदित अथवा टीकायुक्त है। रूप-परम्परा की दृष्टि से भी यह गद्य काफी समृद्ध है। गद्य साहित्य के कुछ रूप तो राजस्थानी गद्य साहित्य के लिये अत्यन्त नवीन और विशिष्ट है, वस्तुतः ये तेरापन्थ सम्प्रदाय की देन के रूप में विख्यात हैं। लिखित, हाजरी, मर्यादावलि, हुण्डी, चरचा, टहुका, दृष्टांत (स्मरण) आदि ऐसे ही विशिष्ट गद्य रूप है। समस्त गद्य साहित्य निम्न रूपों में उपलब्ध होता है —

1. लिखत
2. मर्यादावलि
3. हाजरी
4. हुण्डी
5. ख्यात
6. बोल
7. चरचा
8. दृष्टांत
9. द्वार
10. थोकडा
11. ध्यान
12. कथा
13. पत्र

14. टबुका
15. टब्बा
16. अनुवाद
17 व्याकरण
18. प्रकीर्णक

विषय —वैविध्य की दृष्टि से भी यह गद्य साहित्य सुसम्पन्न है। तेरापन्थ धर्म-सघ को मर्यादित, अनुशासित एव सुव्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने के लिये समय-समय पर छोटी से छोटी प्रवृत्ति व मर्यादा को भी साहित्यबद्ध करने की परम्परा रही है, फलस्वरूप राजस्थानी गद्य की विधान या मर्यादा-परक रचनायें प्रचुर परिमाण मे मिलती हैं। नवीन धर्म-सघ की मान्यताओ के प्रचार प्रसार हेतु तात्विक या सैद्धांतिक कृतियो का सृजन भी प्रारम्भिक काल में बहुत हुआ है। व्याख्यान के उद्देश्य से उपदेशात्मक व कथात्मक गद्य साहित्य भी विपुल मात्रा में लिखा गया। अतीत की अनेक घटनाओ को लिपिबद्ध कर तेरापन्थ के इतिहास को विलुप्त होने से बचाने का कार्य भी क्रमश चलता रहा, फलत ऐतिहासिक गद्य का निर्माण भी बहुत हुआ। प्रथम बार सजित सस्मरणात्मक राजस्थानी गद्य भी इस सम्प्रदाय मे ही मिलता है। आगम ज्ञान की दुरुहता को कम कर उसे सहज सुलभ करने की दृष्टि से अनुवाद व टब्बों की रचना की गई। व्याकरण-बोध की प्रक्रिया में तत्सबधी कृतिया भी उपलब्ध होती है। इस प्रकार तेरापन्थ सम्प्रदाय का राजस्थानी गद्य साहित्य विषय वस्तु की विविधता से परिपूर्ण और विशाल है। तत्कालीन धार्मिक एव सामाजिक चेतना के प्रस्तुतन और अध्ययन की दृष्टि से भी इसके अनन्य महत्व का नकारा नही जा सकता है। मोटे रूप में इस गद्य साहित्य का नियमानुसार वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है —

1 विधान या मर्यादा प्रधान
2 तात्विक
3 उपदेशात्मक
4. सस्मरणात्मक
5. आख्यानात्मक
6 ऐतिहासिक
7 व्याकरण सबधी
8. अनुदित व टीकामूलक
9. अन्य

सम्पूर्ण गद्य साहित्य की राजस्थानी भाषा सहज व सरल है। स्थानीय शब्दो का प्राचुर्य भी यत्र-तत्र देखने को मिलता है। कही-कही गुजराती प्रभाव भी रचनाओ मे पाया जाता है। जहा कही भी भाषा मे अलकारिता आई है उससे विषय वस्तु में निखार ही आया है। भाषा के इन गुणो के कारण ही समाज मे ये इतना अधिक बोधगम्य और प्रिय रही है कि अधिकाश रचनाये लोगो मे आज भी कण्ठस्थ है।

गद्यकार और उनकी कृतिया —

तेरापथ के राजस्थानी गद्यकार सख्या की दृष्टि से यद्यपि कम है किन्तु उनका राजस्थानी गद्य-साहित्य मे गुणात्मक योग किसी भी दृष्टि से कम नही है। यहा प्रत्येक गद्यकार, उसकी रचना का परिचय यथा सभव उदाहरण सहित सक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है —

1. आचार्य सत भीखणजी —

राजस्थान के तत्कालीन जोधपुर राज्य के अन्तर्गत कटालिया (वर्तमान में जिला पाली) म वि. सं. 1783 की आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी को भीखणजी (भिक्षु) का जन्म हुआ। इनके

पिता ओसवाल जाति के संकलेचा गोत्र के शाह बलूजी थे। माता का नाम दीपाबाई था। इनके एक बडे भाई भी थे, जिनका नाम होलोजी था। बचपन से ही ये धर्मनिष्ठ, सत्यशोधक और सुधारवादी प्रवृत्ति के थे। विवाहोपरान्त असमय में ही इनकी पत्नी का देहावसान हो जाने से इनमें वैराग्य की प्रबल भावना जागृत हुई। अन्तत. वि. सं. 1808 की मृगशिर कृष्णा द्वादशी को स्थानकवासी सम्प्रदाय के तत्कालीन आचार्य सत रुघनाथ जी के पास 25 वर्ष की उम्र में बगडी कस्बे में ये दीक्षित हुये।

दीक्षा के पश्चात् इन्होंने अपना सारा ध्यान आगम-मन्थन एव चिन्तन में लगा दिया। अपनी तीक्ष्ण और कुशाग्र बुद्धि के द्वारा सत्य से साक्षात्कार करने मे इन्हें अधिक समय न लगा। वि. सं 1815 के राजनगर (मेवाड़) चातुर्मास के पश्चात् आचार-विचार सबंधी मान्यताओं को लेकर अपने गुरु से इनका मतभेद हो गया। फलस्वरूप वि स 1817 की चैत्र शुक्ला नवमी को इन्होंने चार अन्य साधुओ के साथ आचार्य रुघनाथ जी से अपना सबध विच्छेद कर लिया। तत्पश्चात् केलवा (मेवाड) के चातुर्मास के समय वि. स 1817 की आषाढ पूर्णिमा को इन्होंने भाव-सयम धारण किया। इसी दिन से तेरापन्थ की स्थापना हुई। एव नवीन धार्मिक क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ। लगभग 44 वर्ष तक नवीन धर्म संघ का नेतृत्व करते हुये 77 वर्ष की अवस्था में वि. स 1860 की भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी को आपका सिरियारी (मारवाड़) में स्वर्गवास हुआ।

क्रान्त दृष्टा आचार्य भीखणजी का एकमात्र उद्देश्य सम्यग् आचार और सम्यग् विचार की पुन संस्थापना करना था। इस दुर्द्धर मार्ग को सहज व सरल बनाने के लिये आपने तत्कालीन राजस्थानी भाषा को अपने प्रवचन तथा नवीन साहित्य के निर्माण के लिये आधार बनाया। आगमों की गूढ बातों को सीधी सरल राजस्थानी में अभिव्यक्त करने में भी भीखण जी सिद्धहस्त थे। अपने जीवनकाल में आपने लगभग अडतीस हजार श्लोक परिमाण साहित्य गद्य व पद्य मे लिखे। समस्त साहित्य तत्व-विश्लेषणात्मक, शिक्षात्मक, आचार-शोधक, आख्यानात्मक, स्तवन प्रधान एव अन्य विषयो से सबधित है। गद्य-साहित्य अभी तक अप्रकाशित है। गद्य मे आपकी रचनायें मुख्यत हुण्डी, चर्चा, थोकडा, सिखत, (मर्यादा पत्र) आदि के रूप मे उपलब्ध होती है। रचनाओ का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है —

(क) हुण्डियां —

हुण्डी शीर्षक से दो गद्य रचनायें मिलती है, यथा 306 बोला री हुण्डी तथा 181 बोलारी हुण्डी। दोनो हुण्डियो मे सैद्धान्तिक एव मान्यता सबधी विश्लेषण आगम-ग्रंथो की साक्षी के आधार पर किया गया है। यह विश्लेषण मुख्यत. दया, दान, व्रत, अव्रत, श्रद्धा, अश्रद्धा तथा आचार-विचार से सबंधित हैं —

1. 306 बोला री हुण्डी —यह एक बड़ी रचना है जो 55 पत्रों में समाप्त हुई है। इसका प्रधान विषय वीतराग द्वारा प्रतिपादित धर्म है। भीखणजी ने इसके द्वारा यह स्पष्ट किया है कि वीतराग का धर्म वीतराग की आज्ञा मे चलने से ही होता है। वीतराग की आज्ञा के बाहर कोई धर्म नहीं है। रचना का प्रारम्भिक अश इस प्रकार है.—

"श्री वीतराग नो धरम वीतराग री आग्या माहि छै। तिण धरम नी विगत। एक धरम साधु रो ते तो सरब धरम कहिबे ये। बीजो धरम श्रावक रो ते देस धरम

कहिये ए दोनूई धरम भगवान री आज्ञ मांहि छै। ए दोनूई धरम ग्यान दरसण अर चारित्र मांहि छै।"

2. 181 बोलां री हुण्डी.—यह अट्ठारह पन्नो की एक छोटी रचना है। साधुओं के आचार-व्यवहार को लेकर सूत्रो की साक्षिया उद्धृत करते हुये एवं विभिन्न उदाहरणो को प्रस्तुत करते हुये इसकी रचना की गई है। साधुओ के आचार व्यवहार संबंधी समस्त बातें इसमें समाहित हैं।

चरचायें:—

चरचा (सं चर्चा) सज्ञक कुल दस रचनाये मिलती है। सग्रहीत रूप मे कुल 25 पन्नों में समाप्त हुई हैं। सैद्धान्तिक व मान्यता सबधी विभिन्न तथ्यो को सरल राजस्थानी में चर्चा रूप मे इन रचनाओ मे समझाया गया है। समस्त चरचाओ का सूचनात्मक परिचय निम्न है। इस लेख की कलेवरसीमा के कारण प्रत्येक चरचा का रचना उदाहरण नही देकर केवल एक का ही उदाहरण अन्त मे प्रस्तुत किया जा रहा है।

जोगा री चरचा—

इसमे मन, वचन और काया अर्थात् इन तीनो योगो की मुख्य रूप मे चर्चा की गई है शुभ अशुभ योग की प्रवृत्ति कैसे होती है, इसका भी इस रचना मे सूक्ष्म विश्लेपण है।

जिनाग्या री चरचा.—

जो व्यक्ति जिन आज्ञा के बाहर धर्म की स्थापना करते है, उन स्थापनाओ के बारे में विवेचन करते हुये जिन धर्म के सही स्वरूप की इसमे चर्चा की गई है।

खुली चरचा:—

किस कर्म के क्षायोपशम से साधुत्व की प्राप्ति होती है, इसकी खुली चर्चा इसमें की गई है।

आस्रव संवर री चरचा.—

आस्रव तथा सवर के बारे में व्याप्त भ्रान्तियो का इसमें स्पष्ट विवेचन किया गया है। आस्रव व सवर जीव होता है, यह सप्रमाण दर्शाया गया है।

कालवादी की चरचा—

जो व्यक्ति कार्य सिद्धि में केवल काल को ही प्रधानता देते हैं, वह प्रधानता जैनागम के अनुकूल नहीं है। इसका इसमें विवेचन है।

इन्द्रियवादी की चरचा:—

इन्द्रियों को कुछ व्यक्ति सावद्य निरवद्य कहते हैं, वह सूत्र-सम्मत नहीं है। इसकी चर्चा इसमें की गई है।

द्रव्य जीव-भाव जीव री चरचा:—

कुछ व्यक्ति द्रव्य जीव तथा भाव जीव को एक समझते हैं, लेकिन वे दो हैं। आठ आत्माओं का विश्लेषण करते हुये इसे इसमें समझाया गया है।

निक्षेपा री चरचा:—

द्रव्य निक्षेप, नाम निक्षेप, स्थापना निक्षेप और भाव निक्षेप, इन चारो मे से कौन सा निक्षेप निन्दनीय तथा अवन्दनीय है, इसकी इसमें चर्चा की गई है।

टीकम डोसी री चरचा:—

कच्छ प्रान्त के टीकमजी डोसी नामक श्रावक की योग संबंधी शंकाओं का समाधान सूक्ष्म विश्लेषण के द्वारा इसमें किया गया है।

पाच भाव री चरचा —

इसमें उदय भाव, उपशम भाव, क्षायक भाव, क्षायोपशमिक भाव तथा परिणामिक भाव की विवेचना की गई है। इस रचना का प्रारम्भिक अश रचना उदाहरण की दृष्टि से निम्न है :—

"अथ पाच भाव री चरचा लिख्यते। उदैभाव मोह करम रा उदै सूं उदै भाव छै ते तो सावद्य छै। अर करम रा उदै गु उदैभाव छै ते सावद्य निरवद्य नही। उपशम भाव छै ते तो मोहनी करम उपशमे यै छै। दरसन मोहनी उपशमे या तो उपशम समकित छै।"

थोकडा —एक ही विषय के सक्षिप्त सग्रह को थोकडा (सं स्त्रोन) कहते हैं। कुल पांच थोकड़े दस हस्तलिखित पत्रो मे उपलब्ध है। परिचय निम्न है —

पांच भाव रो थोकडो, पैलो —

पाच भावो अर्थात् उदय, उपशम, क्षायक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक भावों का विभिन्न यन्त्रो (चार्टों) के माध्यम से इसमें विश्लेषण किया गया है।

पांच भाव रो थोकडो, दूजो —

उदय निष्पन्नादिक बोलो पर उपर्युक्त पांच भावों का यन्त्रों द्वारा विवेचन किया गया है।

आठ आत्मा रो थोकडो:—

इस थोकडे मे आठ आत्माओ का विवरण यन्त्रों द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

भिक्खु पिरिछा:—

इसमे भीखणजी से समय-समय पर की गई विभिन्न प्रकार की चर्चायें संग्रहीत हैं।

तेरह द्वार :—

नौ तत्व और छ द्रव्यों का दृष्टान्तों द्वारा इसमे सरल विवेचन किया गया है।

लिखत (मर्यादा पत्र):—

आचार्य सन्त भीखण जी ने नवीन धर्म-सघ को मर्यादित एवं सगठित रखने की दृष्टि से समय-समय पर जो लिखित मर्यादायें स्थापित की, उन्हे सामूहिक रूप से इस शीर्षक के अन्तर्गत रखा जा सकता है। ऐसे कुल 24 पत्र है। जिनमे नौ मर्यादायें सघ के सामूहिक स्वरूप को ध्यान मे रखते हुए है तथा अट्ठाइस मर्यादाए व्यक्तिगत पत्रों के रूप मे साधु विशेष के लिये हैं। इस प्रकार कुल 37 मर्यादायें लिखत रूप मे है। सामूहिक मर्यादाओ मे भीखणजी के हस्ताक्षरों के साथ-साथ अन्य साधुओ द्वारा साक्षिया भी दी गई है। आज भी इन मर्यादाओ के आधार पर ही तेरापन्थ धर्मसघ का सचालन होता है। इन मर्यादा पत्रो को शिक्षा व सघीय नियमों-पनियम भी कह सकते हैं। वि स 1832 मृगशिर कृष्णा 7 की प्रथम लिखत (मर्यादा) का एक अंश रचना उदाहरण की स्पष्टता के लिये प्रस्तुत है —

"रिष भीषम सर्वे साधा नै पूछ नै सर्वे साध साधविया री मरजादा बाधी ते साधा नै पूछ नै साधा कना थी कहवाय नै ते लिषीये छै। सर्व साध साधवी भारमल जी री आग्या माहे चालणो। विहार चोमासो करणा नै भारमल जी री आग्या सु करणो। दिख्या देणी त भारमल जी रे नाम दिष्या देणी। चेला री कपडा री साताकारीआ षेतर री आदि देई नैं ममता करर नैं अनता जीव चारत गमाय नैं नरक निगाद या माहे गया छै तिण सु सिषादिक री ममता मिटायवा रो नै चारित चोखौं पालणरो उपाय कीधो छै।"

2 कर्मचन्द जी स्वामी .—

देवगढ (मेवाड़) के निवासी और अपने माता पिता के इकलौते पुत्र थे। वि. स 1876 मे द्वितीय आचार्य भारमलजी के काल मे हमराज जी स्वामी ने इन्हे दीक्षा दी। वि. सं. 1926 मे इनका स्वर्गवास हुआ। इस प्रकार कुल 50 वर्ष तक साधु जीवन पाला।

इनकी ध्यान विषयक एक राजस्थानी गद्य कृति उपलब्ध होती है जो 'करमचन्द जी रो ध्यान' अथवा 'आतम चिन्तण रा ध्यान' के नाम से प्रसिद्ध है। इस कृति मे ध्यान करने की विधि सहज सरल रूप मे समझाई गई है। रचना के उदाहरण की दृष्टि से ध्यान का आरभ इस प्रकार हुआ है :—

"पहिला पद्म आसन थिर करि पछै मन थिर करि विषै कषाय थकी चितनी लहर मिटाय नै अतेकरण माय इण तरे ध्यावणो। नमस्कार थावो श्री अरहतजी नै। तै अरहतजी केहवा छै। सुरासुर सेवित चरण कमल सर्वज्ञ भगवत जगन्नाथ। जगजीवा ना तारक। कुगत मारग निवारण। निरवाण मारग पमाडण। निराह, निरहकार।"

3. ऋषिराम .—

तेरापथ के तीसरे आचार्य थे। इनका पूरा नाम रामचन्द्र जी था। वि. स. 1847 में उदयपुर जिले की बडी रावलियां (गाव से) इनका जन्म हुआ। पिता का नाम शाह चतरोजी

जन्म एवं माता का नाम कुशलाजी था। दस वर्ष की अल्प वय में अपनी माता जी के साथ वि. स 1857 की चैत्र पूर्णिमा को उन्होने आचार्य भीखणजी से दीक्षा ग्रहण की। वि. सं. 1878 की वैशाख कृष्णा नवमी को युवाचार्य और इसी वर्ष माघ कृष्णा नवमी को आचार्य पद पर आसीन हुए। छोटी रावलिया मे वि स. 1908 की माघ कृष्णा चतुर्दशी को 62 वर्ष की अवस्था मे स्वर्गवास हुआ।

इनकी 'अथ पाच व्वहार ना बोल' शीर्षक एक राजस्थानी लघु गद्य रचना मिलती है जो केवल तीन पत्रो मे है। इसमे साधुओ के कल्पाकल्प की व्यवस्था का विवरण दिया गया है।

4. कालूजी स्वामी बडा :—

इनका जन्म रेलमगरा (मेवाड) मे वि स. 1899 में हुआ था। लगभग नौ वर्ष की उम्र मे वि स 1908 मे आचार्य ऋषिराम से इन्होने दीक्षा ली। पचास वर्ष तक साधु जीवन व्यतीत करने के पश्चात् सप्तम आचार्य डालगणी के काल मे वि. स. 1958 मे दिवंगत हुए। इनकी साहित्यिक रुचि प्रबल थी। लिपि शुद्ध व सुन्दर थी। अपने जीवन काल में आपने तेरापन्थ के अनेक हस्तलिखित ग्रन्थो की सुन्दर व शुद्ध प्रतिलिपिया की। तेरापथ की ख्यात का लेखन आपने ही आरभ किया।

तेरापन्थ की ख्यात —

तेरापन्थ के चतुर्थ सघपति जयाचार्य के काल मे इस ख्यात का लेखन आपने आरंभ किया। यह ख्यात सन्तो व साध्वियो की अलग-अलग है। आचार्य भिक्षु के समय से इस ख्यात का आरभ होता है। इस ख्यात मे साधु साध्वियो का कुम्बकीय जीवन परिचय, दीक्षा, साधना, तपस्या, स्वाध्याय, धर्म-सघ का प्रचार-प्रसार, साहित्य-सर्जन, सेवा, कला तथा जीवन से संबधित विविध घटनाओ का विस्तृत विवरण दिया गया है। यह ख्यात तेरापन्थ के इतिहास का [illegible]यात्मक दिग्दर्शन कालक्रम से कराती है। कालूजी स्वामी के स्वर्गवास के पश्चात् चौथमल जी स्वामी ने इसका लेखन आरभ किया। वर्तमान मे मुनि मधुकर जी इसे हिन्दी मे लिख रहे है। साधुओ की ख्यात का आरभिक अश इस प्रकार है —

> "श्री भिक्खु मुनि नो जनम गाम ठाम वर्णावीयै छै। मरुधर देस जोधपुर रा अमराव कमधज राज ठाकर गामा का मोटा पटायत नयर कटाल्यै रा। तठै बहु-बस्ती ओसवाला रा घर घणा। जठै साह बलुजी वसै उमवाल बडे साजन जाति सकलैचा दी पादे तसु भार्य्या रे उदरे उपना। माता गरभ मे आया थका सिंघ रो सुपणो देख्यो।"

5. जयाचार्य —

सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी तेरापन्थ के चतुर्थ आचार्य जीतमल जी या जयाचार्य का जन्म जोधपुर सभाग के रोमट गाव मे वि. स. 1860 की आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को हुआ। आपके पिता ओसवाल जाति के गोलछा गोत्रीय श्री आईदानजी थे। माता का नाम कल्लूजी था। वि. स. 1869 की माघ कृष्णा सप्तमी को नो वर्ष की अवस्था मे द्वितीय आचार्य श्री भारमल जी की आज्ञा से ऋषिराय ने जयपुर में इन्हें दीक्षा दी। आचार्य पद वि. स. 1908 की माघ पूर्णिमा को बीदासर (चूरू) मे ग्रहण किया तथा जयपुर मे वि. स. 1938 की भाद्रपद कृष्णा द्वादशी को स्वर्गवास हुआ।

तेरापंथ धर्मसंघ में जयाचार्य उद्भट विद्वान, प्रतिभा सम्पन्न कवि और महान् गद्य लेखक के रूप में विख्यात हैं। आपने गद्य व पद्य की छोटी-बडी 128 राजस्थानी रचनाएं सर्जित की। प्राकृत साहित्य का राजस्थानी में अनुवाद भी किया। अनेक नई विधाओं का राजस्थानी साहित्य में प्रचलन किया। आपका विविध रूपात्मक एवं विषयात्मक समस्त साहित्य लगभग साढे तीन लाख अनुष्टुप छन्द परिमाण मे उपलब्ध होता है। गद्य रूप में प्राप्त आपकी कृतियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

भ्रम विध्वंसन:—

इसमें तेरापंथ एवं स्थानकवासी सम्प्रदाय के मतभेदों एवं विवादास्पद विषयों को चवदह अधिकारों में विभक्त कर आगमो के परिप्रेक्ष्य मे स्पष्ट किया गया है। वि सं 1980 में गंगाशहर (बीकानेर) से इस ग्रन्थ का 462 पृष्ठों में प्रकाशन हो चुका है।

संदेह विसोसधि:—

तत्कालीन विभिन्न प्रकार के सन्देहों का स्पष्टीकरण कर उन्हें दूर करने का इस ग्रन्थ में प्रयास किया गया है। यह लगभग 91 पत्रों की बडी प्रति है। जिसमे चवदह रत्नों में समस्त विषयवस्तु समाहित है। प्रारम्भ में संस्कृत का श्लोक है। उसके बाद रचना का आरंभ इस प्रकार हुआ है :—

> "पूरवे अनतकाल ससार समुदर नै विषै भ्रमण करतां जीवनैं समकत्व रतन नी प्राप्ति थई नथी अने किण ही समयै दरसण मोहनीय करम नां क्षयोपसम थी समकत्व हाथ आवै तो पिण असुभ करम न उदय पाखंडी आदि अनेक जिन-मतना उत्थापक छै त्यांरी कुसंगति करवा थी नाना प्रकार नां सदेह आत्मा ने विषै उतपन्न हुवे अनै ते संदेह उतपन्न होवा थी जै समकत्व नां आधार निस्संकि—"

जिनाग्या मुख मण्डन.—

साधुओं के आचार व्यवहार सबंधी कुछ अकल्पनीय लगने वाले प्रसंगों को आगमों के आधार पर इसमे सैद्धान्तिक दृष्टि से समर्थित किया गया है एवं सर्वज्ञों द्वारा विहित बताया है। रचना 17 पत्रों की है। रचना संवत् 1895 ज्येष्ठ कृष्णा सोमवती अमावस्या है। प्रारम्भ में दो दोहे हैं।

कुमति विहडन.—

इसमें साधुओं के आचार-विचार विषयक तत्कालीन समाज द्वारा उठाये गये कुतर्कों का आगमिक प्रमाणों के आधार पर स्पष्टीकरण किया गया है। कुल 14 पत्रों की रचना है। प्रारम्भ में संस्कृत श्लोक है।

अरणूनी बोल:—

इसमें कुल 308 बोल हैं। अन्तिम बोल को देखने से इंगित होता है कि श्री जयाचार्य इसे और आगे लिखना चाहते थे किन्तु किन्हीं कारणों से ऐसा न हो सका। इसमें आगमों के विभिन्न कठिन तथा विवादास्पद विषयों का स्पष्टीकरण एवं संग्रह बोल रूप में है।

<u>झीणी चरचा रा बोल:—</u>

इसमें द्रव्य जीव और भाव जीव की सूक्ष्मता एवं गूढ़ार्थ को सरल व स्पष्ट रूप में समझाया गया है। बीच-बीच में स्वामी जी के पद्यों तथा आगमों के उदाहरण भी प्रस्तुत किये गये हैं।

<u>परम्परा बोल:—</u>

इस शीर्षक के अन्तर्गत दो गद्य कृतियां हैं। प्रथम कृति शय्यातर संबंधी परम्परा के बोल की है। इसकी भी छोटी व बड़ी दो तरह की कृतियां उपलब्ध होती हैं। इसमें उन परम्पराओं का उल्लेख मिलता है, जिनका आगमो द्वारा स्पष्ट संकेत प्राप्त नहीं होता किन्तु प्राचीन आचार्यों की परम्पराओं के अनुसार वर्तमान में जिनके आधार पर साधुओं का व्यवहार चलता है। दूसरी कृति गोचरी संबंधी परम्परा के बोल की है। इसमें आगमों के अलावा गोचरी संबंधी परम्पराओं का वर्णन किया गया है।

<u>चरचा रतनमाला:—</u>

समय समय पर चर्चा रूप मे पूछे गये विभिन्न प्रश्न तथा आगम व अन्य प्रामाणिक ग्रंथों के प्रमाणो के आधार पर उनके उत्तर इस ग्रन्थ में सकलित हैं। दिल्ली के तत्कालीन श्रावक लाला कृष्णचन्द्र जौहरी द्वारा पूछे गये प्रश्न भी इसमे हैं। कृति अधूरी प्रतीत होती है।

<u>भिक्खु पिरछा:—</u>

इसमें श्रावको द्वारा समय-समय पर जयाचार्य से तत्व जिज्ञासा सबधी पूछे गये 138 प्रश्न और उनके उत्तर हैं।

<u>ध्यान:—</u>

इससे सबंधित दो कृतियां मिलती हैं ध्यान बड़ा और ध्यान छोटा। बड़े ध्यान मे ध्यान कैसे करे? कैसे बैठें? आदि बातो का गद्य मे वर्णन है। छोटे ध्यान मे पच परमेष्टियो के गुणो का चिन्तन करते हुए आत्म-शुद्धि की ओर प्रेरित किया गया है। बड़े ध्यान का प्रारभ इस प्रकार हुआ है—

> "प्रथम तो पदमासनादिक आसन थिर करि काया नौ चंचलपणो मेटी नै मन नो पिण चचल पणो मेटणो। पछै मन बाहिर थकी अतर जमावणो। विषयादिक थकी मन मे मिटाय ने एकत्र आणणो। ते मन ठिकाणे आणवा निमित स्वासा सूरत लगावणी—"

<u>प्रश्नोत्तर सार्द्ध सतक:—</u>

इसमें आचार-विचार एवं मान्यता संबंधी 151 सार्द्धशतक प्रश्न और उनके उत्तर दिये गये हैं। रचना वि स. 1895 से पूर्व हुई प्रतीत होती है।

<u>बृहद् प्रश्नोत्तर तत्वबोध:—</u>

मकसूदाबाद के श्रावक बाबू कालूराम जी ने प्रश्नोत्तर तत्वबोध काव्य कृति पढने के पश्चात् कुछ जिज्ञासाएं और प्रकट की, उन्हीं के निराकरण स्वरूप प्रस्तुत कृति गद्य मे बनानी आरंभ की किन्तु वह अस्वास्थ्य के कारण पूर्ण न हो सकी।

उपदेश रत्न कथा कोष :—

यह उपदेशात्मक कथाओं का विशाल संग्रह है, जो करीब 108 विषयों से संबधित है। कथाएं अत्यन्त सुरुचिपूर्ण, साहित्यिक एवं आगम बुद्धि की परिचायक हैं। कही-कहीं दोहे व गीतिकाए भी कथाओं में दी गई है। कथाओं में कथावस्तु प्रवाहपूर्ण है। इन कथाओं का संग्रह संकलन किसी एक समय अथवा एक स्थान पर नहीं हुआ, फलत इन पर मेवाडी, मारवाडी ढुंढाडी और प्रारंभिक हिन्दी की छाप दृष्टिगोचर होती है। राजस्थानी कथा साहित्य के लिये यह कथाकोष अत्यन्त महत्वपूर्ण और मूल्यवान है। कृति की प्रथम कथा इस प्रकार शुरु हुई है :—

> 'बसतपुर गामे नयर। तिण सैहर मे एक नगर सेठ। तिण के पाच पुत्र। छोटाई छोटा बेटा रो नाम मोतीलाल। मां बाप री माया मे तीखो पण प्रकृति करडी घणी। मां बाप विचार्यो ओ आदमी करडो क्रोधी अहकारी। मा नी माया सू झगडो करे। भोजायां सू नित लडे। लोगा सू लडे। कलहगारो घणो पिण—"

दृष्टांत —

राजस्थानी मे दृष्टान्त अथवा संस्मरण सर्व प्रथम लिखने का श्रेय जयाचार्य को ही है। इस तरह की आप की तीन गद्य रचनायें मिलती हैं। भिक्खु दृष्टान्त, श्रावक दृष्टान्त और हेम दृष्टान्त। प्रथम कृति मे आचार्य भीखणजी के 312 दृष्टान्त है। इन्हें मुनि हेमराज जी से सुनकर जयाचार्य ने लिखा। इसका रचना सवत् 1903 कार्तिक शुक्ला 13 रविवार और स्थान नाथद्वारा है। ये प्राय व्यंग्यात्मक किन्तु कुशाग्र बुद्धि के परिचायक है। दूसरी कृति मे तत्वज्ञ एव श्रद्धा भक्ति रखने वाले श्रावको के 32 दृष्टात है और तीसरी म मुनि हेमराज जी के 37 दृष्टान्त है। इसमे कुछ दृष्टान्त भारमल जी स्वामी के भी हैं।

गणविसुद्धिकरण हाजरी :—

आचार्य भीखणजी ने तेरापन्थ धर्म-संघ को संगठित व अनुशासित रखने के लिये जो मर्यादाए बनाई, जयाचार्य ने उन्हें संकलित कर विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत कर दिया। इस वर्गीकृत रूप को ही 'गण विसुद्धिकरण हाजरी' अथवा संक्षेप में हाजरी कहा जाता है। ये कुल 28 हैं। इनमें सघीय जीवन की अनेक मर्यादाए, शिक्षाएं तथा आवश्यक सूचनाए हैं।

मर्यादाएं :—

ये विधान विषयक दो कृतियां हैं। प्रथम कृति बडी मर्यादा कहलाती है। इसमे साधुओं के गोचरी, विहार, वस्त्र-पात्र आदि की मर्यादाएं हैं। द्वितीय छोटी मर्यादा है। इसमें साधुओं के आहार संबंधी मर्यादाएं ही दी गई हैं।

आचारांग टब्बा :—

शीलांकाचार्य एवं पार्श्वचन्द्रसूरिकृत आचारांग सूत्र के टब्बे के आधार को ध्यान में रखते हुए आचारांग सूत्र का राजस्थानी में यह सरल किन्तु विस्तृत टब्बा जयाचार्य ने वि. सं. 1919 की फाल्गुण शुक्ला 1 को बनाया है।

आगमाधिकार :—

आगमों की सख्या के बारे मे जैन सम्प्रदाय मे पर्याप्त मतभेद हैं। इस कृति में आगमों की संख्या को लेकर प्रामाणिक जानकारी देने का प्रयास किया गया है। आगमो के प्रक्षिप्त भाग को तर्क संगत ढंग से अमान्य भी ठहराया गया है।

हुण्डियां :—

जयाचार्य की चार हुण्डिया मिलती है। निशीथ री हुण्डी, बृहत्कल्प री हुण्डी, व्यवहारी री हुण्डी तथा भगवती री हुण्डी। इन हुण्डियो से सबंधित चारो सूत्रो का मर्म समझने की दृष्टि से इनमें उनका विषयानुक्रम प्रस्तुत किया गया है। ये हुण्डिया वस्तुत: इन सूत्रों की कुञ्जी सदृश उपयोगी हैं।

सिद्धान्तसार —

ये तुलनात्मक टिप्पणी-परक गद्य रचनाए हैं। भिक्षु स्वामी ने अपनी कृतियो मे जिन विवादास्पद विषयो को आगमो के सदर्भ मे लिया था, जयाचार्य ने उन कृतियों मे संग्राहित विषयों पर अनेक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए तुलनात्मक टिप्पणीयुक्त सिद्धान्तसार लिखे थे। कुछ सिद्धान्तसार लघु व बडे दोनो प्रकार के हैं। कुछ केवल लघु और कुछ केवल बडे ही मिलते हैं।

साधनिका —

सारस्वत-चन्द्रिका व्याकरण ग्रन्थ को समझने के लिये इस गद्य कृति का राजस्थानी में निर्माण किया गया है। इसमे कठिन स्थलों को सरलतम एव सूत्रबद्ध तरीके से समझाया गया है।

पत्रात्मक गद्य :—

पत्र समकालीन इतिहास व परिस्थितियों के बारे मे काफी अलम्य सामग्री उपलब्ध कराते हैं। वस्तुत: ये व्यक्ति के मानस के प्रतिबिम्ब को समझने के अच्छे साधन हैं। जयाचार्य के ऐसे अनेकों पत्र मिलते हैं, जिनका ग्रन्थाग्र 1501 है। ये पत्र विभिन्न समयो मे लिखे हुए हैं तथा ये शिक्षात्मक, समाधानात्मक एव घटना प्रधान सामग्री से परिपूर्ण हैं।

6. हरकचन्द जी स्वामी :—

ये गांव अटाटिया जिला उदयपुर (मेवाड) के निवासी थे। वि. सं. 1902 में जयाचार्य से दीक्षा ग्रहण की थी। तेइसीस वर्ष साधु जीवन पालने के पश्चात् वि. सं. 1925 में इनका स्वर्गवास हुआ था। जयाचार्य से जब उनके उत्तराधिकारी का नाम पूछते थे तो वे तीन नाम छोग, हरक, मघराज बताते थे। उनमे इनका नाम भी था। इनकी राजस्थानी गद्य में चरचा शीर्षक कृति मिलती है। इसमें व्रत-अव्रत, शुभ जोग, अशुभ जोग, साधु जीवन, सवर धर्म, कार्य का कर्ता आदि पर चर्चाएं हैं।

7. आचार्य कालू गणी :—

अष्टमाचार्य कालू गणी का जन्म बीकानेर संभाग के छापर गांव में वि. सं. 1933 की फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को हुआ। आपका जन्म नाम शोभचन्द और माता-पिता द्वारा प्रद

नाम कालूराम था। मूलचन्द जी कोठारी आपके पिता और छोगाजी माता थी। वि. सं. 1944 की आश्विन शुक्ला तृतीया को अपनी माता के साथ बीदासर (मारवाड) मे दीक्षा ग्रहण की। डालगणी के देवलोक के पश्चात् वि सं 1966 की भाद्रपद पूर्णिमा को लाडनू में आचार्य पद पर आसीन हुए। गंगापुर मेवाड मे वि. स. 1993 की भाद्रपद शुक्ला षष्ठी को आपका स्वर्गवास हुआ।

राजस्थानी गद्य मे आपका काल विषय पर एक लेख तथा पत्र साहित्य मिलता है। पत्र आपने अपने आज्ञानुवर्ती साधु-साध्वियो को समय-समय पर लिखे हैं। ऐसे पत्रो की संख्या लगभग बीस हैं। संघ संचालन तथा अनुशासन की दृष्टि से ये पत्र बहुत उपयोगी हैं। वि. सं. 1976 की चैत्र शुक्ला 3 को अपने शिष्य भीम जी को लिखे एक पत्र का कुछ अंश दृष्टव्य है—

> "शिष्य भीमजी आदि सू सुखसाता बचे और चित घणो समाधि मे राखजे। कोई चित मे विचारणा राखजे मती, अनै सुजानगढ में आछी तरे सू रहीजे सुजानगढ मे (सगला) संत काम तने पूछने करसी। आग्या मर्याद मे कहिणो सुणनो आछी तरे राखज्यो—"

8. चौथमल जी स्वामी—

आप जावद (मालवा) के निवासी थे। पन्द्रह वर्ष की उम्र मे सप्तमाचार्य डालू गणी के पास वि. स. 1965 मे शिक्षा ली और वि स. 2017 मे 48 वर्ष का साधु जीवन पालते हुए इनका देहावसान हुआ। ये संस्कृत, राजस्थानी एव व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान् थे। तत्संबंधी इनकी रचनाए भी मिलती है। तेरापथ के समस्त हस्तलिखित ग्रन्थ इनकी देखरेख मे ही रहते थे। कालूजी स्वामी बडा के वि स. 1958 मे स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् तेरापंथ की ख्यात आप ही राजस्थानी गद्य मे लिखते थे। उस ख्यात का परिचय उदाहरण कालूजी स्वामी बडा के परिचय के साथ दे दिया गया है। ख्यात के अलावा राजस्थानी गद्य की कोई अन्य रचना आपकी उपलब्ध नही होती है।

9. हेमराज जी स्वामी:—

मेवाड प्रदेशान्तर्गत आतमा गांव के निवासी थे। अष्टमाचार्य कालू गणी के समय में वि. सं. 1969 मे दीक्षा ग्रहण की तथा वि. स. 1994 मे इनका स्वर्गवास हुआ। इनके पच्चीस बोल अर्थ संग्रह तथा बीस से अधिक थोकडे मिलते हैं।

10. आचार्य श्री तुलसी:—

युग प्रधान आचार्य श्री तुलसी तेरापन्थ धर्म संघ के नवम् आचार्य हैं। आपका जन्म वि. सं. 1971 की कार्तिक शुक्ला द्वितीया को लाडनू (मारवाड) मे हुआ। आपके पिता ओसवाल जाति के खटेड गोत्रीय झूमरमलजी थे। माता का नाम वदनाजी है। ग्यारह वर्ष की अल्प वय में ही वि. सं. 1982 की पौष कृष्णा पंचमी को लाडनू मे ही आपकी दीक्षा हुई। युवाचार्य पद वि. सं. 1993 की भाद्रपद शुक्ला तृतीया को एवं आचार्य पद इसके छ: दिन बाद ही नवमी को प्राप्त किया।

आपने हिन्दी, संस्कृत व राजस्थानी में विपुल साहित्य लिखा है किन्तु राजस्थानी गद्य के रूप में आपका केवल पत्रात्मक साहित्य ही उपलब्ध होता है। ऐसे लगभग 150 पत्र मिलते

हैं। इन पत्रों में मंत्री मुनि मगनलाल जी, साध्वी प्रमुखा लाडाजी तथा मातुश्री वन्ना जी को लिखे गये पत्र विशेष उल्लेखनीय हैं।

11. नथमल जी स्वामी:—

आप टमकोर निवासी है। अपनी माता जी के साथ अष्टमाचार्य कालू गणी के समय में वि. सं. 1987 के माघ मास मे आपने सरदार शहर में दीक्षा ग्रहण की। आप प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी व गुजराती आदि भाषाओ के विशिष्ट विद्वान् हैं। आपकी अनेक साहित्यिक व शोधपूरक कृतिया भी प्रकाशित हुई हैं। आप संस्कृत के आशु कवि के रूप में भी विख्यात हैं। वर्तमान मे आगमो का पाठ सम्पादन आपकी देखरेख मे ही हो रहा है। दर्शन, योग व साहित्य पर आपकी समान गति है। राजस्थानी में आपके गद्य गीत तथा एक फूल लारे कांटो शीर्षक गद्य रचनाए मिलती हैं। दोनो प्रकार की रचनाए साहित्यिक किन्तु दार्शनिक संकेत से युक्त हैं। गद्य गीत का उदाहरण इस प्रकार है—

> "मे बरस्यो। पाणी रा परपोटा उछल-उछल ऊचा जाण लाग्या। ज्यू उछल्या त्यू ही मिटग्या। नीचे नाखण ने आकास आपरी छाती खोल दी। ऊचा लेज्यावण ने हाथ कामी पसार्‌या—नाखणेवाला घणाई है। उठाणेवाला किताक मिले ?"

अन्य :—

तेरापन्थ के उपर्युक्त राजस्थानी गद्यकारो के अलावा बागोर वाले नथमल जी स्वामी ने भी राजस्थानी गद्य मे एक दो गद्य रचनाए की हैं, ऐसा बताया जाता है।

राजस्थानी गद्य साहित्यकार 9

—डा. हुकमचन्द भारिल्ल

राजस्थानी मे गद्य लेखन की परम्परा अपभ्रंश काल से लेकर वर्तमान काल तक अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। इस साहित्य की यह विशेषता रही है कि जहा हिन्दी साहित्य मे गद्य का प्राचीन रूप नही के बराबर है वहा राजस्थानी में गद्य साहित्य मध्यकाल से ही पूर्ण विकसित रूप में मिलता है। वैसे तो राजस्थानी मे गद्य लिखने का प्रारम्भ 13-14 वीं शताब्दि से ही हो गया था लेकिन 16 वीं शताब्दि तक आते-आते वह पूर्ण विकसित हो चुका था। दिगम्बर जैन कवियों ने प्राकृत एव संस्कृत ग्रथों की बालावबोध टीकायें लिख कर राजस्थानी गद्य के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

1. पाण्डे राजमल्ल:—

राजस्थानी गद्य के विकास मे जिन विद्वानों ने अपना योगदान दिया था उनमें पाण्डे राजमल्ल का नाम विशेषत उल्लेखनीय है। ये 16 वी शताब्दि के विद्वान् थे और विराटनगर (बैराठ) इनका निवास स्थान था। प्राकृत एव सस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होने के साथ अध्यात्म की ओर इनकी विशेष रुचि थी। इन्होंने प्रसिद्ध आध्यात्मिक ग्रन्थ समयसार कलश पर बालावबोधिनी टीका लिखी थी। टीका पुरानी शैली पर खण्डान्वयी है। शब्द पर्याय देते हुए भावार्थ लिखा गया है। यद्यपि उनकी भाषा सस्कृत परक शब्दो से युक्त है। वाक्यों मे बराबर प्रवाह पाया जाता है। पाण्डे राजमल्ल के गद्य का एक नमूना देखिये—

"यथा कोई जीव मदिरा पीवाइ करि अधिकल कीजे छै, सर्वस्व छिनाइ लीजै छै। पदतै भ्रष्ट कीजे छै तथा अनादि ताई लेइ करि सर्वजीवराशि राग, द्वेष, मोह, अशुद्ध करि मतवालो हुओ छै तिहि तै ज्ञानावरणादि कर्म को बंध होइ छै —"

उक्त उद्धरण स जाना जा सकता है कि भाषा जयपुरी है किन्तु सर्वनाम और क्रियाओं का अर्थ जान लेने पर वचनिका का अर्थ सुगमता से जाना जा सकता है।

2. अखयराज श्रीमाल:—

अखयराज 17 वी शताब्दि के विद्वान् थे। इनके जन्म, स्थान एव जीवन के संबंध में कहीं भी उल्लेख नही मिलता। लेकिन भाषा एव शैली की दृष्टि से वे जयपुर प्रान्त के होने चाहिये। लेखक की अभी तक निम्न रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं —

1. चतुर्दश गुण स्थान चर्चा
2. विषापहार स्तोत्र वचनिका
3. कल्याणमन्दिर स्तोत्र भाषा वचनिका
4. भक्तामर स्तोत्र भाषा वचनिका
5. भूपाल चौबीसी भाषा वचनिका

प्रथम ग्रन्थ के अतिरिक्त शेष चार ग्रन्थों पर कवि ने भाषा वचनिका लिखी है। लेकिन चतुर्दश गुणस्थान चर्चा एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है जिसमें चौदह गुणस्थानो का अच्छा विवेचन किया

---

1. वीरवाणी वर्ष 3 अंक 1 पृष्ठ 10।

गया है। भाषा न कठिन है और न दुरूह शब्दों का प्रयोग किया गया है। अखयराज के एक गद्य का नमूना देखिये—

"आगै अन्तराय कर्म पाच प्रकार तिसि की दोइ साखा। एक निहचै और एक व्यौहार। निहचै सो कहियें जहां परगन का त्याग न होइ सो दानान्तराय। आत्म तत्व का लाभ न हो इसो लाभान्तराय। आत्म स्वरूप का भोग न होइ सो भोगान्तराय। जहां बारबार उपभोग न आगै सो उपभोगान्तराय। अष्ट कर्म कहु जीव जिसके नहीं सो वीर्यान्तिराय।"

3. पाण्डे हेमराज:—

पाण्डे हेमराज यद्यपि आगरा के निवासी थे लेकिन राजस्थान से भी उनका विशेष संबंध था। महाकवि दौलतराम कासलीवाल जब आगरा गये थे तो हेमराज से उनकी भेंट हुई थी। उन्होंने निम्न शब्दों मे हेमराज की प्रशंसा की है—

हेमराज साधर्मी भले, जिन वच मानि असुभ दल मलै।
अध्यातम चरचा निति करै, प्रभु के चरन सदा उर धरै।

हेमराज ने निम्न ग्रन्थो की बालावबोध टीका लिखी थी—

प्रवचनसार भाषा (स 1709) पचास्तिकाय, न यचक्र, गोमटसार कर्मकाण्ड।

इनकी गद्य शैली बहुत सुन्दर है। वाक्य सीधे और सुग्राह्य हैं। जो, सो, विषै, करि शब्दों का प्रयोग हुआ है। गद्य मे पडिताऊपन भी है। उनके गद्य का नमूना निम्न प्रकार है—

"धर्म द्रव्य सदा अविनासी टकोत्कीर्ण वस्तु है। यद्यपि अपणै अगुर लघु गुणनि करि षट् गुणी हानि वृद्धि रूप परिणवै है। परिणाम करि उत्पाद व्यय सयुक्त है तथापि अपने ध्रौव्य स्वरूप सौ चलता नाही द्रव्य तिसही का नाम है जो उपजै विनसै थिर रहै।"

पाण्डे हेमराज गद्य साहित्य के अपने युग के लोकप्रिय विद्वान् थे। इनके प्रवचनसार और पंचास्तिकाय भाषा टीका स्वाध्याय प्रेमियो मे बहुत प्रिय रहे हैं।

4. दीपचन्द कासलीवाल —

दीपचद शाह भी उन राजस्थानी विद्वानों मे से थे, जिन्होने राजस्थानी गद्य-निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान किया है। ये खण्डेलवाल जाति के कासलीवाल गोत्र मे जन्मे थे। अत: कई स्थानो पर उनका नाम दीपचद कासलीवाल भी लिखा मिलता है। ये पहिले सागानेर में रहते थे किन्तु बाद मे आमेर आ गय थे। ये स्वभाव से सरल, सादगी प्रिय और अध्यात्म चर्चा के रसिक विद्वान् थे।

आपके द्वारा रचित अनुभव प्रकाश (सं. 1781), चिद्विलास (सं. 1779), आत्माव-लोकन (सं. 1774), परमात्म प्रकाश, ज्ञान दर्पण, उपदेश रत्नमाला और स्वरूपानन्द नामक ग्रन्थ हैं।

ढूंढाहड प्रदेश के अन्य दिगम्बर जैन लेखकों की भांति इनकी भाषा में ब्रज और राजस्थानी के रूपो के साथ खडी बोली के शब्द-रूप है।[1] भाषा स्वच्छ है एवं साधु-वाक्यों में गम्भीर अर्थाभिव्यक्ति उसकी विशेषता है।

1. हिन्दी गद्य का विकास. डा. प्रेमप्रकाश गौतम, अनुसंधान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर, पृ. 187।

साहित्यिक मूल्यों की दृष्टि से इनकी रचनाओं का महत्व चाहे उतना न हो किन्तु तत्वचिंतन एव हिन्दी गद्य के निर्माण व प्रचार की दृष्टि से इनका कार्य अभिनन्दनीय है। हिन्दी गद्य की बाल्यावस्था मे बहुत रचनाओ का गद्य मे निर्माण कर इन्होने उसकी रिक्तता को भरने का प्रयास किया और इस दिशा मे महत्वपूर्ण योग दिया है। इनकी भाषा का नमूना निम्नानुसार है :

"जैसे बानर एक कांकरा के पडे रोवै तैसे याके देह का एक अंग भी छीजै तो बहुतेरा रोवै। ये मेरे और मैं इनका झूठ ही ऐसे जडन के सेवन तै सुख मानै। अपनी शिवनगरी का राज्य भूल्या. जो श्री गुरु के कहे शिवपुरी कौं सभालै, तो वहा का आप चेतन राजा अविनाशी राज्य करै।"

5. महाकवि दौलतराम कासलीवाल:—

दौलतराम कासलीवाल ने जिस प्रकार काव्य ग्रन्थो का निर्माण किया उसी प्रकार गद्य मे भी कितने ही ग्रन्थो का निर्माण करके राजस्थानी एव हिन्दी के विकास मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। कवि की प्रथम रचना पुण्यास्त्रवकथाकोश है और वह गद्य मे है। इसका रचना काल सवत् 1777 (सन् 1720) है। कवि उस समय आगरे मे थे और वही पर विद्वानो के ससर्ग से इनमे लिखने की रुचि जाग्रत हुई। अब तक इनकी निम्न रचनाये प्रकाश मे आ चुकी है।

1. पुण्यास्त्रवकथाकोश (स. 1777)
2. पद्मपुराण (सं. 1823)
3. आदि पुराण (स. 1823)
4. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (स. 1827) (अपूर्ण छोड दिया)
5. हरिवंश पुराण (स. 1829)
6. परमात्म प्रकाश
7. सारसमुच्चय

पुण्यास्त्रवकथाकोश, पद्मपुराण, आदिपुराण एव हरिवशपुराण विशालकाय ग्रन्थ है यद्यपि ये सभी सस्कृत भाषा से अनुदित कृतिया है। लेकिन कवि ने अपनी ओर से भी जो सामग्री जोडी है उससे ये सभी ग्रन्थ मौलिक ग्रन्थ हो गये है। कवि के समय तक अनुवाद मे जो सूनासूना सा नजर आता था उसे अपनी कृतियो मे जड से उखाड़ फेंका। यही कारण है कि उनके पद्मपुराण, हरिवशपुराण, आदि पुराण एव पुण्यास्त्रवकथाकोश का स्वाध्याय गत 200 वर्षों मे जितना हुआ उतना स्वाध्याय सभवतः अन्य किसी रचना का नही हुआ होगा। आज भी ये सभी रचनायें अत्यधिक लोकप्रिय है। डा. जयकिशन के शब्दो मे दौलतराम का हिन्दी गद्य सस्कृत परिनिष्ठ है। वह अपभ्रश प्राकृत तथा देशी शब्दो से मुक्त है। वह ब्रज भाषा का गद्य है लेकिन फिर भी उसमे खडी बोली का पूर्व रूप देखा जा सकता है।

दौलतराम के गद्य का नमूना देखिये:—

"मालव देस उजेणी नगरी विषै राजा अपराजित राणी विजया त्याकै विनयश्री नाम पुत्री हुई। हस्तिशीर्षपुर कै राजा हरिषेण परणी। एक दिन दंपति वरदत्त मुनि नै आहार दान देता हुआ। पाछै बहुत कालतांइ राज्य कीयौ। एक रात सज्याग्रह विषै विनयश्री पति सहित सूती थी। अगर का धूप का धूम करि राजा राणी मृत्यु प्राप्ति हुआ। मध्य भोग भूमि विषै उपज्यां।"—पुण्यास्त्रवकथाकोष

दौलतराम का जन्म जयपुर प्रदेश के कसबा ग्राम में संवत् 1749 मे हुआ था। उनका जन्म नाम बेगराज था। आगरा, उदयपुर एवं जयपुर उनका साहित्यिक क्षेत्र रहा। ये जीवन

भेर जयपुर महाराजा की सेवा मे रहे तथा साथ ही मे उनके कृपा पात्र भी रहे। इनका स्वर्गवास भादवा सुदी 2 संवत् 1829 को जयपुर मे हुआ। इनकी कृतियो का सामान्य परिचय निम्न प्रकार है—

पुण्यास्रव कथाकोष :—

पुण्यास्रव कथाकोष मे 59 कथाओ का सग्रह है। इनके अतिरिक्त 9 लघु कथाएं प्रमुख कथाओ मे आ गयी है जिससे उनकी सख्या 65 हो गई है। प्रत्येक कथा कहने का मुख्य उद्देश्य कथा नायक के जीवन का वर्णन करने के अतिरिक्त, नैतिकता, सदाचार और अच्छे कार्यों की परम्परा को जन्म देना है। सभी कथाये सरल एव रोचक शैली मे लिखी गयी है। कथाकोश मे निम्न कथाओं का सग्रह है —

1. जिनपूजा व्रत कथा, 2 महाराक्षस विद्याधर कथा, 3 मेंढक की कथा, 4. भरतकथा, 5. रत्नशेखर चक्रवर्ती कथा, 6. करकण्डु कथा, 7 वज्रदन्त चक्रवर्ती कथा, 8. श्रेणिक कथा, 9. पच नमस्कार मत्र कथा, 10. महाबली कथा, 11 भामण्डल कथा, 12. यमराज कथा, 13. भीम केवली कथा 14. चाण्डाल कुकरी कथा, 15. सुकोशल मुनि कथा, 16. कुबेर मित्रश्रेष्ठि कथा, 17. मेघ कुमार कथा, 18 सीताजी की कथा, 19. रानी प्रभावती कथा 20. राजा व्रजकरण कथा, 21. वादनीली कथा, 22. चाण्डाल कथा, 23. नाग कुमार कथा, 24. भविष्यदत्त कथा, 25. अशोक रोहिणी कथा 26. नन्दिमित्र कथा, 27. जामवन्ती कथा, 28 ललित घण्टा कथा, 29. अर्जुन चाण्डाल कथा, 30. दानकथा, 31. जयकुमार सुलोचना कथा, 32 वज्रगव कथा, 33. सुकेत श्रेष्ठि कथा, 34 सागर चक्रवर्ती कथा, 35 नन्दनाउ कथा, 36 लवकुश कथा, 37. दशरथ कथा, 38 भामण्डल कथा, 39 सुगामा कथा, 40 गधारी कथा, 41. गौरी कथा, 42. पद्मावती कथा, 43 धन्यकुमार कथा, 44 अगनोला ब्राह्मणी कथा, 45 पाच केसरी कथा, 46 अकलकदेव कथा, 47 समतभद्र कथा, 48 सनत्कुमार चक्रवर्ती कथा, 49 सजय मुनि कथा, 50. मधु पिगल कथा, 51 नागदत्त कथा, 52 ब्राह्मण चक्रवर्ती कथा, 53. अजन चार कथा, 54. अनन्तमती कथा, 55. उदयन कथा, 56. रेवती रानी कथा, 57. सेठ सुदर्शन कथा, 58 वारिषेण मुनि कथा, 59 विष्णुकुमार मुनि कथा, 60. वज्रकुमार कथा, 61. प्रीतिकर कथा, 62. सत्यभामा पूर्वभव कथा, 63 श्रीपाल चरित्र कथा, 64. जम्बूस्वामी कथा।

पद्मपुराण :—

पद्मपुराण कवि की मूल कृति नहीं है किन्तु 10-11 वी शताब्दी के महाकवि रविषेणाचार्य की सस्कृत कृति का गद्यानुवाद है। लेकिन कवि को लेखन शैली एव भाषा पर पूर्ण अधिकार होने से यह माना स्वय का मूल रचना के समान लगती है। इसमे 123 पर्व हैं जिनमे जैन धर्म के अनुसार रामकथा का विस्तार से वर्णन हुआ है।

पद्मपुराण की भाषा खडी बोली के रूप मे है किन्तु कुछ विद्वानो ने इसे ढूंढारी भाषा के रूप मे स्वीकार किया है। पुराण की भाषा अत्यधिक मनोरम एवं हृदयग्राही है।

आदि पुराण :—

आदि पुराण विशाल काय ग्रन्थ है। लेकिन कवि ने भाषा टीका की एक ही शैली को अपनाया है। आचार्य जिनसेन के क्लिष्ट शब्दों का अर्थ जितने सरल एवं बोधगम्य शब्दों में

किया है वह कवि के संस्कृत एवं हिन्दी के अगाध ज्ञान का द्योतक है। यह भी संवत् 1824 की कृति है।

हरिवंश पुराण :—

इस कृति का रचना काल सं. 1829 है। इसकी रचना जयपुर में ही सम्पन्न हुई थी। यह कवि की अन्तिम कृति है। 19 हजार श्लोक प्रमाण गद्य कृति लिखना दौलतराम के लिये महान् साहित्यिक उपलब्धि है। इसमें हरिवंश की कथा विस्तार से दी हुई है। पुराण के कितने ही प्रसंग ऐसे लगते हैं जैसे उन्होंने अपनी सारी शक्ति ही उलेटकर रखदी हो।

6. महापंडित टोडरमल:—

राजस्थानी गद्यकारों में महापंडित टोडरमल का विशेष स्थान है। उन्होंने टीकाओं एवं स्वतन्त्र ग्रन्थों के माध्यम से राजस्थानी गद्य के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनकी रचनाओं से पता चलता है कि पंडित जी की भाषा ढंढारी थी जो राजस्थानी भाषा की ही एक शाखा है। टोडरमल जी की भाषा में प्रवाह एवं लालित्य दोनों हैं।

टोडरमल जी का समय ईसा की अठारहवी शती का मध्यकाल है। उनके पिता का नाम जोगीदास एवं माता का नाम रम्भादेवी था। पंडित जी के दो पुत्र हरिचन्द एवं गुमानीराम थे। पंडितजी व्युत्पन्नमति थे, इसलिये थोड़े ही समय में उन्होने प्राकृत एवं संस्कृत पर पूर्ण अधिकार कर लिया। कन्नड भाषा का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। अधिकांश विद्वान उनकी आयु 27 वर्ष की मानते है लेकिन नवीन खोज के आधार पर वे 47 वर्ष तक जीवित रहे थे।

पंडित जी के प्रमुख गद्य ग्रन्थों में गोम्मटसार जीवकांड, गोम्मट सार कर्मकांड, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार, मोक्षमार्ग प्रकाशक आत्मानुशासन, पुरुषार्थसिद्धयपाय एवं रहस्यपूर्ण चिट्ठी के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें मोक्षमार्ग प्रकाशक एवं रहस्य पूर्ण चिट्ठी उनकी स्वतंत्र कृतियां हैं तथा शेष सब प्राकृत एवं संस्कृत ग्रन्थों पर राजस्थानी टीकायें हैं। गोम्मटसार जीवकांड, गोम्मटसार कर्मकांड, लब्धिसार एवं क्षपणासार पर चारों टीकाओं को मिला कर उनका नाम 'सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका' रखा गया है। सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका विवेचनात्मक गद्य शैली में लिखी गई है। प्रारम्भ में 71 पृष्ठों की पीठिका है जिसे हम आधुनिक भाषा में भूमिका कह सकते हैं। इसे पढने के पश्चात् ग्रंथ का पूरा हार्द खुल जाता है।

'मोक्षमार्ग प्रकाशक' पंडित जी का स्वतन्त्र ग्रन्थ है एवं वह बडी ही आकर्षक शैली में लिखा हुआ है। इसमें सभी जैन सिद्धान्त के ग्रन्थों का मानों निचोड है। पंडितजी का यह अत्यधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है जिसकी अब तक कितने ही आवृत्तियां प्रकाशित हो चुकी हैं। विवेचनात्मक गद्य शैली में लिखे जाने पर भी प्रश्नोत्तर के रूप में विषय का अच्छा प्रतिपादन किया गया है।

पंडितजी के गद्य का एक नमूना देखिये —

"तातैं बहुत कहा कहिए, जैसे रागादि मिटावने का श्रद्धान होय सो ही श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। बहुरि जैसे रागादि मिटावने का जानना होय सो ही सम्यग्ज्ञान है। बहुरि जैसे रागादि मिटैं सो ही आचरण सम्यक् चरित्र है। ऐसा ही मोक्षमार्ग मानना योग्य है।"

पं. टोडरमल जी की वाक्य रचना संक्षिप्त और विषय-प्रतिपादन शैली तार्किक एवं गम्भीर है। व्यर्थ का विस्तार उनमें नहीं है पर विस्तार के संकोच में कोई विषय अस्पष्ट नहीं रहा है। लेखक

विषय का यथोचित विवेचन करता हुआ आगे बढ़ने के लिये सर्वत्र ही आतुर रहा है। जहाँ कहीं भी विषय का विस्तार हुआ है वहां उत्तरोत्तर नवीनता आती गई है। वह विषय विस्तार सांगोपांग विषय-विवेचना ही की प्रेरणा मे ही हुआ है। जिस विषय को उन्होंने छुआ उसमें 'क्यों' का प्रश्नवाचक समाप्त हो गया है शैली ऐसी अद्‌भुत है कि एक अपरिचित विषय भी सहज हृदयंगम हो जाता है।

पंडित जी का सबसे बडा प्रदेय यह है कि उन्होंने संस्कृत, प्राकृत में निबद्ध आध्यात्मिक तत्वज्ञान को भाषा-गद्य के माध्यम से व्यक्त किया और तत्व विवेचन में एक नई दृष्टि दी। यह नवीनता उनकी क्रान्तिकारी दृष्टि में है।

टीकाकार होते हुए भी पंडित जी ने गद्यशैली का निर्माण किया। डा गौतम ने उन्हें गद्य निर्माता स्वीकार किया है।[1] उनकी शैली दृष्टान्तयुक्त प्रश्नोत्तरमयी तथा सुगम है। वे ऐसी शैली अपनाते हैं जो न तो एकदम शास्त्रीय है और न आध्यामिक सिद्धियो और चमत्कारों से बोझिल। उनकी इस शैली का सर्वोत्तम निर्वाह मोक्षमार्ग प्रकाशक में है। तत्तकालीन स्थिति मे गद्य को आध्यात्मिक चिन्तन का माध्यम बनाना बहुत ही सूझ-बूझ और श्रम का कार्य था। उनकी शैली में उनके चिन्तक का चरित्र और तर्क का स्वभाव स्पष्ट झलकता है। एक आध्यात्मिक लेखक होते हुए भी उनकी गद्यशैली मे व्यक्तित्व का प्रक्षेप उनकी मौलिक विशेषता है।

7. पंडित जयचन्द जी छाबडा:—

पंडित टोडरमल के पश्चात् राजस्थानी गद्य के प्रमुख निर्माता के रूप में पं जयचन्द छाबडा का नाम प्रमुख रूप मे लिया जा सकता है। जब ये 11 वर्ष के थे तभी से इन्होने अपने आपको विद्वानो को समर्पित कर दिया। सवत् 1859 (सन् 1802) से इन्होने लिखना प्रारम्भ किया और सर्व प्रथम तत्वार्थ सूत्र वचनिका लिखी। अब तक उनकी निम्न कृतियां प्राप्त हो चुकी हैं :—

1. तत्वार्थसूत्र वचनिका (सं 1859)
2. सर्वार्थसिद्धि वचनिका (सं. 1862)
3. प्रमेयरत्नमाला वचनिका (सं 1863)
4. स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा भाषा (सं 1863)
5. द्रव्य सग्रह वचनिका (सं 1863)
6 समयसार वचनिका (सं. 1864)
7 देवागमस्तोत्र (आप्त मीमांसा) (सं. 1866)
8. अष्ट पाहुड वचनिका (सं. 1867)
9. ज्ञानार्णव वचनिका (सं. 1869)
10 भक्तामर स्तोत्र वचनिका (सं. 1870)
11. पदसंग्रह
12. सामायिक पाठ वचनिका
13. पत्र परीक्षा वचनिका
14. चन्द्रप्रभ चरित द्वि सर्ग
15 धन्यकुमार चरित वचनिका

इनके ग्रन्थों की भाषा सरल सुबोध एवं परिमार्जित है, भाषा में जहां भी दुरूहता आई है, उसका कारण गम्भीर भाव और तात्विक गहराइयां रही हैं। इनके गद्य का नमूना इस प्रकार हैं:

1. हिन्दी गद्य का विकास: डा. प्रेम प्रकाश गौतम, अनुसंधान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर, पृ. 185 व 188

"जैसे इस लोक विषैं सुवर्ण अर रूपा कूं गालि एक किए एक पिण्ड का व्यवहार होय है तैसैं आत्मा के अर शरीर के परस्पर एक क्षेत्र की अवस्था ही तें एकपणा का व्यवहार है ऐसें व्यवहार मात्र ही करि आत्मा अर शरीर का एकपणा है। बहुरि निश्चय तैं एकपणा नाहीं हैं जातें पीला अर पांडुर है स्वभाव जिनिका ऐसा सुवर्ण अर रूपा है तिनके जैसे निश्चय विचारिए तब अत्यन्त भिन्नपणा करि एक एक पदार्थपणा की अनुपपत्ति है, तातैं नानापना ही है।"[1]

8. पंडित सदासुख :—

पंडितप्रवर जयचन्दजी छाबडा के बाद राजस्थानी भाषा के गद्य-भंडार को समृद्ध करने वालों में पंडित सदासुख कासलीवाल का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। इनका जन्म जयपुर में विक्रम संवत् 1852 तदनुसार ईस्वी सन् 1795 के लगभग हुआ था।[2]

आपके द्वारा लिखित ग्रन्थ निम्नानुसार है :

1. भगवती आराधना भाषा वचनिका (सं. 1906)
2. तत्वार्थसूत्र (लघु भाषाटीका) (सं 1910)
3. तत्वार्थ सूत्र (बृहद् भाषा टीका अर्थ प्रकाशिका) (सं 1914)
4. समयसार नाटक भाषा वचनिका (सं. 1914)
5. अकलंकाष्टक भाषा वचनिका (सं 1915)
6. मृत्यु महोत्सव (सं. 1918)
7. रत्नकरण्ड श्रावकाचार भाषा टीका (सं. 1920)
8. नित्य नियम पूजा (सं. 1921)

इनकी भाषा का नमूना इस प्रकार है :

"संसार में धर्म ऐसा नाम तो समस्त लोक कहैं हैं परन्तु शब्द का अर्थ तो ऐसा जो नरक तिर्यंचादिक गति में परिभ्रमणरूप दुखतें आत्माकूं छुडाय उत्तम आत्मीक, अविनाशी अतीन्द्रिय मोक्षसुख में धारण करै सो धर्म है। सो ऐसा धर्म मोल नाहीं आवै, जो धन खरचि दान-सन्मानादिकतैं ग्रहण करिये तथा किसी का दिया नाहीं आवैं, जो सेवा उपासनातैं राजी कर लिया जाय। तथा मंदिर, पर्वत, जल, अग्नि देवमूर्ति, तीर्थादिक में नाहीं धर्या है जो वहां जाय ल्याइये।"

9. ऋषभदास निगोत्या :—

ऋषभदास निगोत्या पं. जयचन्द्र छाबडा के समकालीन विद्वान थे। संवत् 1840 के लगभग इनका जन्म जयपुर में हुआ। ये शोभाचन्द के सुपुत्र थे। संवत् 1888 में इन्होंने प्राकृत भाषा में निबद्ध मूलाचार पर भाषा वचनिका लिखी थी। ग्रन्थ की भाषा ढूंढारी है तथा

---

1. हिन्दी साहित्य : द्वितीय खंड, पृ. 504।

2. रत्नकरण्ड श्रावकाचार भाषा टीका, पृष्ठ 2।

जिस पर पं टोडरमल एवं जयचन्द की शैली का प्रभाव है। इनकी भाषा का एक उदाहरण देखिये—

"वसुनंदि सिद्धान्त चक्रवर्ति कवि रची टीका है सो चिरकाल पर्यन्त पृथ्वी विषै तिष्ठहु। कैसी है टीका गर्व ग्रर्थनि की है सिद्धि जातें। बहुरि कैसी है समस्त गुणनि की निधि। बहुरि ग्रहण करि है नीति जाने ऐसो जो ग्राचार्य कहिये मुनिनि का ग्रावरण ताके सूक्ष्म भावनि की है। ग्रनुवृत्ति कहिये प्रवृत्ति जाने। बहुरि विख्यात है ग्रठारह दोष रहित प्रवृत्ति जाकी ऐसा जो जिनपति कहिये जिनेश्वर देव ताके निर्दोष वचनि करि प्रसिद्ध। बहुरि पाप रूप मल की दूर करण हारी।"

10. कनककीर्ति :—

कनककीर्ति 17 वीं शताब्दी के विद्वान थे। ये भट्टारकवर्गीय परम्परा के साधु थे। तथा संभवतः ग्रामेर के भट्टारको से इनका संबंध था। इनकी ग्रब तक निम्न रचनाएं उपलब्ध हो चुकी हैं —

कर्मघटावली (पद्य) जिनराज स्तुति (पद्य), तत्वार्थ सत्र भाषा टीका (गद्य), मेघकुमार गीत (पद्य), श्रीपाल स्तुति (पद्य), पद बारहखडी (पद्य) उक्त राजस्थानी रचनाओं के ग्रतिरिक्त, प्राकृत भाषा मे निबद्ध इनकी कुछ पूजाएं भी मिलती हैं। तत्वार्थसूत्र भाषा टीका इनकी एक मात्र गद्य कृति है जो ग्रपने समय मे ग्रत्यधिक लोकप्रिय कृति मानी जाती रही। राजस्थान के जैन ग्रन्थागारो मे इसकी कितनी ही पाण्डुलिपियां सग्रहीत है। इसमे उमास्वामी के तत्वार्थसूत्र पर श्रुतसागरी टीका की भाषा वचनिका की गयी है। इनके गद्य का एक उदाहरण निम्न प्रकार है —

ग्रह उमास्वामी मनीश्वर सत्र ग्रंथ कारक। श्री सर्वज्ञ वीतराग बंदे कहतां श्री सर्वज्ञ वीतराग ने नमस्कार करू छं। किसाक छै श्री वीतराग सर्वज्ञ देव मोक्ष मार्गस्य नेतारं कहता मोक्षमार्ग का प्रकाश का करवा वाला छै। ग्रौर किसा एक छै सर्वज्ञ देव कर्मभूभृता भेत्तारं कहता ज्ञानावरणादिक ग्राठ कर्म त्याह रूप पर्वत त्याह का भेदिवा वाला छै।"

11. पं शिवजीलाल :—

19 वी शताब्दी मे होने वाले विद्वानो मे पंडित शिवजीलाल का नाम उल्लेखनीय है। इनके वंश, कुल, गुरु एवं शिष्य परम्परा के संबंध मे ग्रभी तक कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नही हो सकी है। ग्रब तक इनके द्वारा रचित तीन ग्रन्थ प्राप्त हुये हैं जिनके नाम निम्न प्रकार हैं —

दर्शनसार भाषा, चर्चासार भाषा, प्रतिष्टासार भाषा। दर्शनसार को इन्होंने जयपुर में स 1923 में समाप्त किया था। यह राजस्थानी गद्य मे निबद्ध है। इनके गद्य का एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

"साच कहता जीव के उपरि लोक दुखों व तुषों। साच कहने वाला तो कहे ही कहा जग का भय करि राजदण्ड छोडि देता है वा जूवा का भय करि राज मनुष्य कपडा पटकि देय है। तैसे निंदने वाले निंदा, स्तुति करने वाले स्तुति करो, सांच बोला तो सांच कहै।"

12. ऋषभदास :—

ऋषभदास झालरापाटन के रहने वाले थे। ये हूबड जाति के श्रावक थे। इनके पिता का नाम नाभिराय था। वसुनन्दि श्रावकाचार की भाषा टीका इन्होने ग्रामेर के भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति की प्रेरणा से लिखी थी। भाषा टीका विस्तृत है जो 347 पृष्ठों मे पूर्ण होती है। भाषा टीका सवत् 1907 की है। जिसका उल्लेख निम्न प्रकार हुआ है:—

ऋषिपूरण नव पुनि, माघ पुनि शुभ श्वेत।
जया प्रथा प्रथम कुजवार, मम मगल होय निकेत॥

वसुनन्दिश्रावकाचार की पाण्डुलिपिया डीग एव डूगरपुर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है।

13. ज्ञानचन्द :—

ग्राचार्य शुभचन्द्र के ज्ञानार्णव पर सस्कृत एव हिन्दी की कितनी ही टीकाये उपलब्ध होती है इनमे ज्ञानचन्द द्वारा रचित हिन्दी गद्य टीका उल्लेखनीय है। टीका का रचनाकाल सवत् 1860 माघ सुदि 2 है। टीका की भाषा पर राजस्थानी का पूर्ण प्रभाव है। इसकी एक पाण्डुलिपि दि जैन मन्दिर कोटडियान डूगरपुर मे सग्रहीत है।

14. केशरीसिंह —

प केशरीसिह जयपुर के रहने वाले थे। य भट्टारकीय परम्परा के विद्वान थे। जयपुर राज्य के दीवान बालचन्द छाबडा के पुत्र दीवान जयचन्द के ग्रनुरोध पर प केशरीसिह ने सवत् 1873 मे वर्धमान पुराण की भाषा टीका निबद्ध की। ये यहा के लश्कर के दिगम्बर जैन मन्दिर मे रहते हुय साहित्य निर्माण का कार्य करते थे। इनके गद्य का एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

"ग्रहो या लोक विषे ते पुरुष धन्य है ज्या पुरुषन का ध्यान विषै तिष्ठता चित्त उपसर्ग के सैकण्डेन करिहु किञ्चित् मात्र ही विक्रिया क नही प्राप्ति होय है।"

15. चम्पाराम भावसा :—

ये खण्डेलवाल जाति मे उत्पन्न हुये थे। इनके पिता का नाम हीरालाल था जो माधोपुर (जयपुर) के रहने वाले थे। इन्होने अपनी ज्ञान-वृद्धि के लिये 'धर्म प्रश्नोत्तर श्रावकाचार' एव 'भद्रबाहु चरित्र' की रचना की थी। ये दोनो ही कृतिया राजस्थानी भाषा की ग्रच्छी रचनाये मानी जाती है।

हिन्दी जैन साहित्य

हिन्दी जैन साहित्य की प्रवृत्तियां-1.

डॉ. नरेन्द्र भानावत

प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रंश और राजस्थानी के समान हिन्दी (खड़ी बोली) भाषा मे भी राजस्थान के जैन साहित्यकार अविच्छिन्न रूप से साहित्य-सर्जना करते रहे हैं। हिन्दी के विकास के साथ समाज-सुधार, राष्ट्रीयता, आधुनिकीकरण आदि की भावना विशेष रूप से जुड़ी होने के कारण हिन्दी जैन साहित्य का कथ्य और शिल्प भी उससे प्रभावित हुआ। जैन साहित्य मुख्यत. धार्मिक विचारधारा से प्रभावित रहा है और पुरानी हिन्दी मे लगभग 12वी शताब्दी से अद्यावधि जो रचनाये मिलती है उनमे धार्मिक मान्यताओ का यह रूप स्पष्ट देखा जा सकता है। आधुनिक हिन्दी में रचित जैन साहित्य इस धार्मिकता से अछूता नही है पर यह अवश्य है कि वह साहित्यिक तत्त्वो से अधिकाधिक सपन्न होता जा रहा है। आधुनिक जैन साहित्यकार अपने कथाबीज प्राचीन धार्मिक ग्रन्थो से अवश्य लेता है पर उनका पल्लवन और पुष्पन करने मे वह अधुनातन विचार-दर्शन और साहित्यिक प्रवृत्तियो को अपनाने मे पीछे नही रहा है। साहित्य-सृजन की मूल प्रेरणा धार्मिक होते हुए भी वह सकुचित धार्मिक सीमा से आबद्ध नही है। उसका पठन-पाठन का क्षेत्र भी अब जैन मन्दिरो, उपाश्रयो और स्थानको से आगे बढ कर जैनेतर समाज तक विस्तृत हुआ है और इस प्रकार समसामयिक साहित्य के समानान्तर उठ खड़े होने मे उसकी क्षमता उजागर हुई है।

राजस्थान मे आधुनिक हिन्दी साहित्य सर्जना मे सत-सतियों और श्रावको दोनो का समान रूप से महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हिन्दी के राष्ट्र भाषा पद पर प्रतिष्ठित होने व सपर्क भाषा के रूप मे उसका महत्त्व बढने से सत-सतियो मे प्राकृत और सस्कृत भाषा के अध्ययन-अध्यापन की प्रवृत्ति के साथ हिन्दी-भाषा और साहित्य के अध्ययन की प्रवृत्ति ने विशेष जोर पकड़ा। धार्मिक शिक्षण के साथ-साथ व्यावहारिक शिक्षण का लाभ भी वे लेने लगे। यद्यपि धर्म और दर्शन ही अध्ययन का मुख्य क्षेत्र बना रहा तथापि इतिहास, राजनीति शास्त्र, समाज शास्त्र, अर्थ शास्त्र, मनोविज्ञान, भूगोल जैसे समाज-विज्ञान क्षेत्र के विषयो के भी वे सम्पर्क मे आए। विश्व-विद्यालयी पद्धति से अध्ययन करने का क्रम चालू होने व तथाकथित परीक्षाए देने से सत-सतियो के चिन्तन-फलक का विस्तार हुआ तथा व्याख्यान एव विवेचना शैली वस्तुनिष्ठ, तर्कसम्मत और परिष्कृत बनी। इधर मुद्रण और प्रकाशन की सुविधाए भी विशेष रूप से बढी। राजस्थान से ही कई मासिक एव पाक्षिक जैन पत्र-पत्रिकाए प्रकाशित होने लगी। इन सबका सम्मिलित प्रभाव साहित्य-सर्जना पर भी पड़ा।

राजस्थान मे रचित आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य को अभिव्यक्ति के माध्यम की दृष्टि से मुख्यत. दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—पद्य और गद्य। यद्यपि मानव जीवन के दैनिक व्यवहार मे गद्य का ही विशेष महत्त्व है तथापि साहित्य मे गद्य का विकास पद्य के बाद ही हुआ परिलक्षित होता है। इसके मूल मानव की भावनात्मक प्रवृत्ति ही प्रधान कारण रही है। सामान्यत पद्य को ही काव्य या कविता कहा जाता है। बन्ध की दृष्टि से कविता के दो भेद किए जाते हैं—प्रबध और मुक्तक। प्रबध मे पूर्वापर का तारतम्य होता है, मुक्तक मे यह तारतम्य नही पाया जाता। प्रबध मे छन्द एक दूसरे से कथानक की शृखला मे बधे रहते हैं। उनका क्रम उलटा-पलटा नही जा सकता। वे एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। मुक्तक स्वतः पूर्ण होते हैं, वे क्रम से रखे जा सकते हैं पर एक छद दूसरे छद की क्रमबद्धता की

अपेक्षा नही करता। प्रबध मे सपूर्ण काव्य के सामूहिक प्रभाव पर अधिक ध्यान दिया जाता है जब कि मुक्तक मे एक-एक छद की अलग-अलग साज-सभाल की जाती है।

पद्य की भाति गद्य की भी अपनी विशेष विधाए है। प्रमुख विधाओ मे नाटक, एकाकी, उपन्यास, कहानी, जीवनी, निबन्ध, प्रवचन, सस्मरण, यात्रावृत्त, गद्य-काव्य आदि सम्मिलित किए जा सकते है। कहना न होगा कि आधुनिक हिन्दी जैन साहित्यकारो ने इन सभी विधाओ मे साहित्य रचा है।

अध्ययन की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य का विधागत प्रवृत्ति की दृष्टि से इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है—

(1) पद्य साहित्य

(क) प्रबन्ध काव्य
(ख) मुक्तक काव्य

(2) गद्य साहित्य

(क) नाटक, एकाकी
(ख) उपन्यास, चरिताख्यान
(ग) कहानी, लघु कथा, प्रेरक प्रसग, गद्यकाव्य
(घ) जीवनी
(ङ) निबन्ध, प्रवचन
(च) शोध-समालोचना

(1) पद्य साहित्य

(क) प्रबन्ध काव्य—आचार्यो ने प्रबन्ध काव्य के दो भेद किए है— महाकाव्य और खण्डकाव्य। महाकाव्य का क्षेत्र विस्तृत होता है। उसमे सपूर्ण जीवन के विविध रूप चित्रित किए जाते है। खण्डकाव्य मे किसी एक ही घटना को प्रधानता दी जाती है। प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रश और राजस्थानी मे प्रबन्ध काव्य के रूप मे विपुल परिमाण मे साहित्य रचा गया है। महाकाव्य के रूप मे पुराण तथा चरित-सज्ञक अनेक रचनाए लिखी गयी है। छोटी प्रबन्ध रचनाओ मे रास, फागु, वेलि, चापई आदि नामो से अभिहित रचनायें विपुल परिमाण मे मिलती है।

इसी परम्परा मे आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्य लिखे गए है। वर्ण्य-विषय और पात्र-सृष्टि की दृष्टि से आधुनिक कवियो ने भी जैन परम्परा मे मान्य शलाकापुरुषो, गणधरो, युग-प्रधान आचार्यो तथा अन्य महापुरुषो को ही मूल आधार बनाया है पर कथावस्तु का गठन, उसका उठाव, विकास आदि मे नई नवीनता का समावेश किया गया है। अब वे ढालबद्ध न होकर सर्गबद्ध है। इनमे नया छन्द विधान और नई राग-रागनियो का समावेश है। प्रकृति चित्रण, सौन्दर्य बोध, युग-चिन्तन आदि की दृष्टि से वे अधिक युगीन और मम-मार्मिक सन्दर्भो से सम्पृक्त है।

(ख) मुक्तक काव्य—मुक्तक के भी स्थूल रूप मे दो भेद किए जा सकते है—गेय मुक्तक और पाठ्य मुक्तक। गेय मुक्तको मे गायन तत्त्व की प्रधानता रहती है। सामान्यत:

इसका आनन्द गाकर लिया जाता है। राजस्थान के आधुनिक जैन कवियों में जैन-संतो की विशेष भूमिका रही है। भक्त श्रद्धालुओं को प्रतिदिन नियमित रूप से प्रवचन या व्याख्यान सुनाना इन संतो का दैनन्दिन कार्यक्रम है। व्याख्यान में सरसता बनाए रखने के लिए सामान्यत: कविता का सहारा लिया जाता है। परम्परा रूप से ढाल और भजन गाने की परिपाटी रही है पर धीरे-धीरे उसका स्थान गेय मुक्तक लेते रहे है। इस दृष्टि से इन मुक्तको की रचना विपुल परिमाण में हुई है। इनका मुख्य उद्देश्य सदाचारमय नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा देना है। ये शुद्ध संवेदनात्मक गीतों के रूप में भी लिखे गए है और कथा का आधार बनाकर भी। शुद्ध संवेदनात्मक गीतों मे कवि स्वय ही अपना आत्म निवेदन करता है जब कि कथा-धारित गीतो मे कवि आत्म-निवेदन तो करता है पर किसी दूसरे पात्र द्वारा कथा का आधार बना कर।

अध्ययन की दृष्टि से गेय मुक्तको को तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है—स्तवन मूलक, प्रेरणा मूलक और वैराग्य मूलक। स्तवन मूलक गीत विशेषत प्रार्थनापरक और अपने आराध्य की गरिमा-महिमा के सूचक है। पूजा-गीत इसी श्रेणी मे आते हैं। प्रेरणा मूलक गीतो का मूल स्वर सुषुप्त पुरुषार्थ को जगा कर मनुष्यत्व से देवत्व की ओर बढने तथा आत्मविजेता, शुद्ध बुद्ध परमात्म बनने का है। सामाजिक धरातल से प्रेरित होकर लिखे गए प्रेरणा गीतो मे प्रगतिशील मानववादी स्वर मुखरित हुआ है। इसमे आधुनिक जीवन की विसगतियो, भौतिक सभ्यता के कृत्रिम आवरणों, शोषणपरक प्रवृत्तियों, अधंविश्वासों और थोथे आदर्शो पर कटु व्यग्य किया गया है। अणुव्रत आन्दोलन, विभिन्न पर्व-तिथियो और जयन्तियो का आधार बना कर लिखे गए प्रेरणा-गीत हृदय मे उत्साह और उमग, शक्ति और स्फूर्ति सचरित करने मे सक्षम बने है। वैराग्यमूलक गीतो मे जीव को ससार से विरक्त होकर आत्मकल्याण की ओर उन्मुख होने की उद्बोधना दी गई है। मन की चचल वृत्तियो, विषय-वासना और सप्त-कुव्यसनो के दुष्परिणामों व जीवन की क्षण भगुरता और ससार की असारता के आत्मस्पर्शी चित्रण के साथ-साथ आध्यात्मिक रहस्यात्मकता और परम आनन्दानुभूति का मार्मिक चित्रण यहा प्रस्तुत किया गया है।

पाठ्य मुक्तकों मे गेय मुक्तको की तरह गायन तत्त्व की प्रधानता नहीं है। ये सामान्य रूप मे मात्रिक एव वर्णिक छन्दों मे लिखे गए है। विषय की दृष्टि से इन्हे दो भेदो मे रखा जा सकता है—तत्त्व प्रधान और उपदेश प्रधान। तत्त्व-प्रधान मुक्तको मे आत्म-रत्नत्रय, कर्मफल, पुनर्जन्म, अहिसा, अनेकान्त, ब्रह्मचर्य, क्षमा जैसे उदात्त सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है। उपदेश प्रधान मुक्तको मे जीव को लोक व्यवहार एव अध्यात्म भाव की शिक्षा दी गई है। इन उपदेशो मे या तो सामान्य स्तर पर नीति की बाते कही गयी है पर कही-कही चुटीले-चुभते हुए व्यग्य के भी दर्शन होते है।

इन मुक्तको मे प्रकृति का शीलनिरूपक रूप ही विशेषत उभर कर सामने आया है। मानव जीवन की पृष्ठभूमि एव सहानुभूति के रूप मे प्रकृति के विभिन्न रग मर्मस्पर्शी बन पड़े है। विराट-प्रकृति के विविध उपादानो को माध्यम बना कर शाश्वत जीवन सत्य की झांकी व्यजना की गई है।

इन मुक्तको की भाषा सहज, सरल और प्रवाहपूर्ण है। भावो को विशेष प्रेषणीय बनाने के लिए प्रश्नोत्तर, आत्मकथात्मक, सम्बोधन आदि विविध शैलियो का प्रयोग किया गया है। अलकारो मे सादृश्यमूलक अलकारो का विशेष प्रयोग किया गया है, पर मानवीकरण, बिम्ब विधान, विशेषण विपर्यय, प्रतीकात्मकता आदि से ये अछूते नही है।

छन्दविधान की दृष्टि से ये मुक्तक वैविध्यपूर्ण हैं। जहां इनमें परम्परागत, दोहा, सोरठा, कुण्डलिया, सवैया जैसे छन्द प्रयुक्त हुए हैं वहा नवगीत, फिल्मी धुनो और लोक गीतों की पद्धति पर भी अच्छे गीत लिखे गए हैं। गजल और रुबाइयां लिखने में भी ये कवि पीछे नहीं रहे। मुक्त छदो मे भिन्न तुकान्त ढंग की यथार्थवादी कविताए लिखने मे भी इन्हें विशेष सफलता मिली है।

(2) गद्य साहित्य

(क) नाटक-एकाकी —ये दोनो दृश्य काव्य की श्रेणी मे आते है। इनमे रगमच पर पात्रो के द्वारा किसी कथा या घटना का प्रदर्शन होता है। यह प्रदर्शन अभिनय, रग सज्जा, सवाद, नृत्य-गीत, ध्वनि आदि के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। नाटक का फलक उपन्यास की भाति विस्तृत होता है। इसमे कई अक, घटनाओ, दृश्यो और समस्याओ का आयोजन होता है। एकाकी मे एक अक, एक घटना, एक कार्य और एक समस्या मुख्य होती है। इमका आरम्भ सामान्यत सघर्ष से होता है जो शीघ्र ही गति पकड कर चरम सीमा की ओर अग्रसर हो जाता है। आकाशवाणी के विकास के साथ अब रेडियो नाटक अधिक लोकप्रिय बनते जा रहे है। जैन-परम्परा मे नाट्य रूपो का विशेष महत्त्व रहा है। विभिन्न पर्वों और कल्याणक महोत्सवो पर नाट्य प्रदर्शित करने की यहा सुदीर्घ परम्परा रही है। आज नाटक और एकाकी जिस रूप मे है उनका मूल प्राचीन दीर्घ और लघु रास काव्यो मे देखा जा सकता है। प्रारम्भिक रास नृत्य, सगीत और अभिनय प्रधान होते थे। बाद मे चलकर वे आख्यान प्रधान बन गए।

आधुनिक युग मे नाट्य विधा की ओर जैन साहित्यकार विशेष आकर्षित नही हुए। इसके कई धार्मिक और सामाजिक कारण है। इनमे एक प्रमुख कारण वीतरागी पात्रो को मच पर उपस्थित न करने की प्रवृत्ति है।

राजस्थान के साहित्यकार भी कथा साहित्य की अपेक्षा नाट्य साहित्य की ओर कम आकर्षित हुए है। पूरे नाटक के रूप मे श्री महेन्द्र जैन द्वारा लिखित "महासती चन्दन बाला" नाटक ही उल्लेख योग्य है। साहित्यिक और रगमचीय दोनो तत्त्वो की दृष्टि से यह एक सफल नाट्य कृति है।

भगवान महावीर के 2500वें परिनिर्वाण वर्ष के अवसर पर लोक नाट्य शैली पर आधारित दो विशेष नाट्य तैयार किए गए हैं जिनकी भगवान महावीर के जीवनादर्शों को लोकमानस तक लोकोनुरजन परक शैली मे प्रेषित करने मे विशेष भूमिका रही है। ये है— "भगवान महावीर स्वामी की पड" और "वैशाली का अभिषेक"।

"महावीर स्वामी की पड", राजस्थानी पड परम्परा मे एक विशेष उपलब्धि है। पडो मे पाबूजी तथा देवनारायण की पडें तो लोकप्रिय हैं ही पर भीलवाडा के श्री निहाल अजमेरा ने जिनेन्द्र कला भारती की ओर से इस पड नाट्य को प्रस्तुत कर निश्चय ही एक अभिनव प्रयोग किया है। पड के चारो ओर बाउण्ड्री मे जैन प्रतीको (यथा—अष्टमगल, धर्मचक्र, स्वस्तिक आदि) व पट्टियो का सुन्दर सयोजन किया गया है। पड मे भगवान महावीर की प्रभाव पूर्ण जीवन गाथा चित्रित है। इसका प्रदर्शन करते समय यह मच पर दर्शको के सम्मुख लगा दी जाती है। तत्पश्चात् इसका वाचन प्रारम्भ होता है। एक व्यक्ति चित्रो के सम्बन्ध मे पूछता है और दूसरा उनके सम्बन्ध मे नाटकीय लहजे मे उत्तर देता चलता है। इसका चित्रांकन श्री राजेन्द्रकुमार जोशी ने बड़े मनोयोग पूर्वक किया है। इसकी प्रदर्शन-अवधि डेढ़ घण्टे की है।

"वैशाली का अभिषेक" कठपुतली नाट्य की रचना, भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर के सचालक श्री देवीलाल सामर की पुतली नाट्य क्षेत्र मे मौलिक देन है। कठपुतलियों की छड़ दस्ताना शैली मे इसका निर्माण किया गया है। इसके लिए मंच पर पूरा अन्धेरा कर दिया जाता है। दर्शक हाल भी इसके मचन के समय पूर्ण अंधेरे मे रहता है। इसमे पुतलियां विशेष रग फ्लोरोसेण्ट और विशेष रोशनी अल्ट्रावायलेट मे मच पर प्रदर्शित की जाती हैं। लगभग एक घण्टे की इस नाटिका को देखते समय दर्शक माता त्रिशला के रगीन आकर्षक स्वप्न लोक, शूलपाणि यक्ष के लोमहर्षक उपसर्ग और उससे अविचल बने भगवान महावीर के प्रशात ज्योतिर्मय भव्य व्यक्तित्व से अभिभूत हो एक अनोखी विस्मय विमुग्धकारी रसानुभूति मे डूबते-तैरते रहते है। ब्लैक थियेटर की तकनीक के प्रयोग से रग-योजना मे विशेष चमत्कृति आ गई है। पूरी नाटिका भगवान महावीर के लोकोपकारी व्यक्तित्व और आत्मौपम्य मैत्री भाव के आलोक से विमण्डित है।

एकाकी के क्षेत्र मे जैन सास्कृतिक धरातल से लिखे गए डा नरेन्द्र भानावत के नौ एकाकी 'विष से अमृत की ओर' सग्रह मे सकलित है। इनमे 'आत्मा का पर्व' अन्तरावलोकन पर बल देकर जीवन मे सयम, नैतिकता और मर्यादा की प्रतिष्ठा करता है। 'एटम, अहिंसा और शाति' मे युद्ध और शाति की समस्या को उठा कर एटम के सृजनात्मक पक्ष को उभारने पर बल दिया गया है। 'इन्सान की पूजा का दिन' दीपावली की रूढिगत पूजन विधि पर करारी चोट है। 'सच्चा यज्ञ' यज्ञ के लोक-कल्याणकारी रूप पर छाए हुए क्षुद्र स्वार्थो, विकारो और कर्म-काण्डो को धुनने का सबल माध्यम है। 'अनाथी मुनि' मे सनाथ-अनाथ विषयक तात्त्विक चर्चा के माध्यम से आत्मशक्ति और आत्म विश्वास जागृत करने पर बल दिया गया है। 'तीर्थकर' मे तीर्थकर के धर्मचक्र प्रवर्तन, उपदेश और लोककल्याणकारी स्वरूप की भव्य झाकी प्रस्तुत की गयी है। 'नमिराज और इन्द्र' मे आत्म-साधना का माहात्म्य प्रकट किया गया है। ये सभी एकाकी जैन विचारधारा से सम्बन्धित होते हुए भी अपने मूल रूप मे मानव सस्कृति के प्रतिपादक है।

श्री चन्दनमल 'चाद' ने अणुव्रत आन्दोलन की चेतना से प्रेरित होकर प्रवेशक अणुव्रत के ग्यारह नियमो पर आधारित ग्यारह एकाकी लिखे है जिनका सकलन 'कचन और कसौटी' नाम से हुआ है। इन एकाकियो की भावभूमि लोकजीवन से सम्बन्धित है और ये बडे प्रभावक बन पडे है।

(ख) उपन्यास-चरिताख्यान—उपन्यास अपेक्षाकृत नवीन विधा है। इसमें चरित्र-परिवर्तन व चरित्र-विकास के लिए पर्याप्त अवसर होता है। मुख्य कथा के साथ यहा कई प्रासगिक कथाए जुडी रहती है। युग विशेष के सास्कृतिक चित्रण के लिए यहा पर्याप्त गुजाइश होती है। मनोरजन के साथ लोक-शिक्षण का आज उपन्यास सशक्त माध्यम बना हुआ है। जैन पृष्ठभूमि को लेकर राजस्थान के साहित्यकारो ने बहुत अधिक उपन्यास नही लिखे है। जो उपन्यास लिखे गए है उनकी कथा के मूल प्रेरणास्रोत जैन आगम, पुराण या चरित ग्रन्थ रहे हैं। श्री ज्ञान भारिल्ल का 'तरगवती' आचार्य पादलिप्त की प्राकृत रचना 'तरगवई' का हिन्दी रूपान्तरण है। आचार्य अमृतकुमार का 'कपिल' उत्तराध्ययन सूत्र के आठवें अध्ययन पर आधारित है। ज्ञान भारिल्ल के ही अन्य उपन्यास 'भटकते-भटकते' की कथा उद्योतनसूरि कृत प्राकृत रचना 'कुवलयमाला' से ली गई है। महावीर कोटिया के 'आत्मजयी' और 'कूणिक' लघु उपन्यास तथा डा. प्रेम सुमन जैन के 'चितेरो के महावीर' भी परम्परागत जैन आख्यानो से सबद्ध हैं, पर इससे इनका महत्त्व कम नही होता। इन उपन्यासकारो की मौलिकता कथा मे निहित न होकर उसके प्रस्तुतीकरण और समसामयिक जीवन सदर्भ के सन्निवेश में है। प्रवाहपूर्ण भाषा, वर्णन-कौशल, चित्रोपम क्षमता, संवादयोजना, नूतन शैली और नये रचनातन्त्र के कारण ये उपन्यास रोचक और मार्मिक बन पड़े हैं। परम्परागत कथाचयन

की लीक से हटकर कमला जैन 'जीजी' ने 'अग्निपथ' में अपने ही बीच घूमती-फिरती सती साध्वी उमरावकुंवर जी 'अर्चना' को प्रकारान्तर से नायिका के रूप मे खडा किया है और जानकी के रूप मे लेखिका स्वय प्रकट हुई है। यह उपन्यास वात्सल्य, करुणा और अध्यात्म भावो से लबालब भरा है। जीवनचरित का उपन्यास के रूप मे प्रस्तुत करने का यह प्रयत्न बडा सफल बन पड़ा है।

नवीन औपन्यासिक शैली मे न सही, पर कथा की मनोरजकता और औत्सुक्य-वृत्ति का निर्वाह करते हुए राजस्थान के कथाकारो ने कई सुन्दर चरिताख्यान प्रस्तुत किए हैं। इन कथाकारो मे बम्बोरा के श्री काशीनाथ जैन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके पचास के लगभग चरिताख्यान प्रकाशित हुए है। जैन सत अपने प्रतिदिन के चातुर्मास कालीन प्रवचनो के अन्त मे सामान्यत धारावाही रूप मे कोई न कोई चरिताख्यान प्रस्तुत करते है। ये चरिताख्यान यो तो परम्परागत ही होते है पर समसामयिक जीवन-प्रसगो और समस्याओ का उनसे सबध जोडकर वे उसे अधिक रोचक, प्रेरक और मार्मिक बना देते है। धारावाही रूप मे कहे गए ऐसे चरिताख्यानो के कई सकलन प्रकाशित हुए है, उनमे आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा तथा जैन दिवाकर श्री चौथमल जी म सा के आख्यान विशेष महत्त्वपूर्ण है। श्री जवाहरलाल जी म सा के चरिताख्यानो मे सुबाहुकुमार, सती राजमती, सती मदनरेखा, रुक्मणि विवाह, अजना, शालिभद्र चरित, सुदर्शन चरित सेठ धन्ना चरित, पाण्डव चरित, राम वन गमन, हरिश्चन्द्र-तारा आदि उल्लेखनीय है।

(ग) कहानी, लघुकथा, प्रगल्भ प्रसग, गद्य काव्य —कहानी आज गद्य की सबसे लोकप्रिय विधा है। यह सतत विकासोन्मुख और प्रयोगशील रही है। आधुनिक हिन्दी कहानी के आविर्भाव स पूर्व हमारे यहा कहानी की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। दार्शनिक और तात्विक सिद्धान्तो की विवेचना के लिए कथाओ का आधार लिया जाता रहा है। ये कथाए रूपकात्मक, एतिहासिक पौराणिक, लौकिक आदि रूपो मे आज भी मनोरजन और उपदेश का माध्यम बनी हुई है। आगम ग्रन्थो की टीका, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, अवचूर्णि आदि मे इनके दर्शन होते है। जैन कथा साहित्य का यह विशाल भण्डार आधुनिक कथाकारो के लिए विशेष प्रेरणास्रोत बना हुआ है। यह अवश्य है कि आधुनिक जैन कथाकारो ने प्राचीन कथा को मूलाधार बनाते हुए भी उसके शिल्प तन्त्र मे परिवर्तन किया है। काल्पनिक और अलौकिक घटनाओ को जीवन की यथार्थ परिस्थितियो का धरातल और बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक आधार दिया है। घटनाओ को चरित्र-विश्लेषण और मानसिक द्वन्द्व से सम्पृक्त किया है। सक्षेप मे दैववाद एव आकस्मिक सयोग के प्रति आग्रह कम करते हुए स्वाभाविकता, यथार्थवादिता, विचारात्मकता, पुरुषार्थवाद और कार्य-कारण शृखला पर अधिक बल देने का प्रयत्न किया है।

मोटे तौर से कहानी साहित्य की प्रवृत्तियो को इस प्रकार विश्लेषित किया जा सकता है—

(1) सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश परम्परा से प्राप्त कथाओ को सरल सुबोध भाषा और रोचक शैली मे आधुनिक ढग से प्रस्तुत करने की एक मुख्य प्रवृत्ति उभर कर सामने आयी है। मुनि महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम' की जैन कहानिया भाग 1 से 25, श्री मधुकर मुनि की "जैन कथामाला" भाग 1 से 12, श्री रमेश मुनि की 'प्रताप कथा कौमुदी' भाग 1 से 5, श्री भगवती मुनि 'निर्मल' की 'आगम युग की कहानिया' भाग 1—2, श्री देवेन्द्र मुनि की 'महावीर युग की प्रतिनिधि कथाएं', पुष्कर मुनि की 'जैन कथाए', भाग 1 से 5 इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

(ii) वर्तमान जीवन की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को, प्राचीन कथ्य को आधार बना कर प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति भी कुछ कहानीकारों में परिलक्षित होती है। ये कहानीकार परम्परागत धार्मिक कथानक को आधार अवश्य बनाते हैं पर उसके माध्यम से आधुनिक जीवन-संवेदन को व्यंजित करना चाहते हैं। डा नरेन्द्र भानावत के 'कुछ मणियां कुछ पत्थर', श्री महावीर कोटिया के 'बदलते क्षण', श्री शांतिचन्द्र मेहता के 'सौन्दर्य-दर्शन' और श्री केसरीचन्द सेठिया के 'मुक्ति के पथ पर' कहानी संग्रहों में यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। इन कहानीकारों ने कतिपय ऐसी-कहानियां भी लिखी हैं जिनका कथ्य परम्परागत न होकर आधुनिक जीवन स्थितियों से लिया गया है और उसमें जैन-संस्कृति के आदर्शों को प्रतिष्ठित करने की प्रवृत्ति रही है।

(iii) जैन आगम और पुराण ग्रन्थों में इतिहास और धर्म-शास्त्रों में तथा लोक जीवन और लोक-साहित्य में ऐसे कई प्रेरणादायी प्रसंग, रूपक, दृष्टान्त भरे पड़े हैं जिन्हें पढ़ कर जीवन में हारा-थका निराश व्यक्ति आस्था और विश्वास का सम्बल पाकर अपने जीवन को सतेज और सार्थक बना सकता है। ऐसे मार्मिक, ज्ञानवर्धक, प्रेरणादायी और वृत्तिपरिष्कारक प्रसंगों का चयन कर, लघु कथा, बोध कथा, और संस्मरणों के रूप में कई सुन्दर संकलन प्रकाशित किए गए हैं। व्याख्यान देते समय जैन संत ऐसे दृष्टान्तों, संस्मरणों और रूपकों का विशेष रूप से प्रयोग करते हैं। आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा. के प्रवचनों से संकलित ऐसी कथाएं 'उदाहरणमाला' भाग 1, 2, 3 में प्रकाशित की गई हैं। इसी प्रकार के अन्य प्रमुख संकलन हैं—श्री देवेन्द्र मुनि कृत 'प्रतिध्वनि', श्री गणेश मुनि कृत 'प्रेरणा के बिन्दु', श्री भगवति मुनि 'निर्मल कृत-'लो कहानी सुनो' 'लो कथा कहदूं', मुनि श्री छत्रमलजी कृत 'कथा कल्पतरु, श्री अशोक मुनि कृत 'इनसे सीखें', श्री उदय मुनि कृत 'प्रिय दृष्टान्तोदय', आदि।

(iv) दैनन्दिन जीवन में व्यवहृत विभिन्न वस्तुओं, जीवन की साधारण घटनाओं और प्रकृति के विविध उपादानों को माध्यम बनाकर भी कथात्मक ढंग से मार्मिक संस्मरण और भाव-भीने गद्य काव्य लिखे गये हैं। इनमें अनुभूति की प्रधानता और भावों की गहराई रहती है। साधारण बातों को पकड़ कर सार्वभौमिक जीवन सत्यों को उद्घाटित करने में ये विशेष सफल होते हैं। आज के आस्थाहीन युग में ये छोटे-छोटे जीवन-प्रसंग महान् शक्ति और स्फूर्ति का अहसास कराते हैं। दार्शनिक संवेदना के धरातल से लिखे जाने के कारण कहीं-कहीं ये विचार बोझिल अवश्य हो गये है। श्री चन्दनमुनि कृत "अंतर्ध्वनि", साध्वी राजीमती कृत "पथ और पथिक", श्री देवेन्द्र मुनि कृत "चिन्तन की चांदनी", "अनुभूति के आलोक में", श्री भगवती मुनि "निर्मल" कृत "अनुभूति के शब्द-शिल्प" इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

(घ) जीवनी —कथा साहित्य की घटनाएं या पात्र काल्पनिक हो सकते है परन्तु जीवनी में वर्णित घटनायें या पात्र सच्चे होते है। जीवनी, इतिहास और उपन्यास के बीच की चीज है जिसका नायक वास्तविक होने के कारण अधिक व्यक्तित्वपूर्ण होता है। जीवनी का उद्देश्य किसी ऐसे चरित्र को प्रकाश में लाना होता है जिसका समाज की प्रगति और राष्ट्र की उन्नति में विशेष सहयोग रहा हो। सफल जीवनी लेखक के लिये आवश्यक है कि वह चरित्रनायक के भावों, विचारों तथा जीवन-दर्शन से पूर्णतया परिचित होकर भी उससे निर्लिप्त

हो, व्यक्तिगत द्वेष और राग के भाव से ऊपर उठा हो और साथ ही अपने वर्णन में सच्चा और प्रामाणिक हो। इन गुणो के अभाव मे लिखी हुई जीवनी या तो स्तुति मात्र होगी या निन्दा।

आधुनिक ढंग से जीवनिया लिखा जाना इस युग की विशेष प्रवृत्ति है। प्राचीन युग में जो महापुरुष हुए हैं, वे आत्म-विज्ञापन से प्राय दूर रहते थे। अतः अन्तर्साक्ष्य के रूप मे उनके सम्बन्ध में बहुत कम ज्ञातव्य प्राप्त होता है। जैन परम्परा मे गुर्वावली, पट्टावली आदि के रूप में धर्माचार्यों और मुनियो के महत्वपूर्ण जीवन-प्रसग लिखित मिलते हैं। समसामयिक शिष्य मुनियो और भक्त श्रावको द्वारा लिखित छोटे-छोटे पद्यबद्ध आख्यान चरित आदि मिलते हैं। ग्रन्थो की हस्तलिखित पाडुलिपियो के अन्त मे प्रशस्ति रूप मे रचनाकार, लिपिकार अपनी गुरु-परम्परा का निर्देश भी करते रहे हैं। इन सब स्रोतो से जीवनी लेखक सामग्री सकलित करता है।

यह सही है कि चरितनायक के महत्त्वपूर्ण प्रसगो को सुरक्षित रखने के प्रयत्न तो यहा अवश्य होते रहे पर जीवनी लेखन का व्यवस्थित कार्य आधुनिक युग की ही देन है। राजस्थान मे जैन धर्माचार्यों का आध्यात्मिक जीवन और सामाजिक चरित्र के उन्नयन मे महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जैन श्रमण ग्रामानुग्राम पद विहार करते हुए जन-मानस को सदाचार-निष्ठ साहित्यिक जीवन जीने की प्रेरणा देते रहे है। पादविहारी होने से वे जन-जीवन के निकट सपर्क मे तो आते ही हैं, विविध प्रकार की अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों से गुजरने के कारण उनका स्वय का जीवन भी नानाविध अनुभवो का सगम बन जाता है। अनेक व्यसनग्रस्त दिग्भ्रमित लोग उनसे प्रेरणा पाकर सन्मार्ग की ओर बढते है। ऐसे महान् प्रभावक आचार्यों और मुनियो की जीवनिया लिखने की ओर राजस्थान के जीवनी लेखको का ध्यान गया है और कतिपय प्रामाणिक जीवन ग्रन्थ प्रकाशित हुए है। इनमे उल्लेखनीय ग्रन्थों के नाम है—पूज्य श्री जवाहरलालजी म. सा की जीवनी (प शोभाचन्द्र भारिल्ल, डा इन्द्रचन्द शास्त्री), पूज्य गणेशाचार्य जीवन चरित (श्री देवकुमार जैन), मुक्ति के पथ पर—श्री सुजानमल जी म सा की जीवनी (मुनि श्री लक्ष्मीचन्द्रजी म.) अमरता का पुजारी-आचार्य श्री शोभाचन्द जी म की जीवनी (प दुख-मोचन झा), राजस्थान केसरी—पुष्कर मुनिजी म जीवनी और विचार (श्री राजेन्द्र मुनि), युग प्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि (श्री अगरचन्द भवरलाल नाहटा), आचार्य तुलसी जीवन दर्शन (मुनि श्री बुद्धमल जी), दिव्यतपोधन—तपस्वी श्री वेणीचन्दजी म की जीवनी (मुनि श्री महेन्द्र कुमारजी "कमल"), दिव्य जीवन—श्री विजय वल्लभ सूरि जी म की जीवनी (श्री जवाहरचन्द पटनी), जय ध्वज—आचार्य श्री जयमल्ल जी म का जीवन वृत्त, (गुलाबचन्द जैन) जैन कोकिला साध्वी श्री विचक्षणश्री जी म की जीवनी (भवरी देवी रामपुरिया), साधना पथ की अमर साधिका—महासती श्री पन्ना देवी जी म की जीवनी (साध्वी सरला, साध्वी चन्दना), महासती श्री जसकवर—एक विराट व्यक्तित्व (आर्या प्रेमकुवर), विश्व चेतना के मनस्वी सत मुनि श्री सुशील कुमार जी की जीवनी (मुनि श्री समन्त भद्र), उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी म का जीवन-चरित्र (रतनलाल सघवी)।

स्वतन्त्र जीवनी ग्रन्थो के अतिरिक्त सम्बद्ध महापुरुषो और साहित्यकारों के कृतित्व और व्यक्तित्व की विवेचना करने वाले समीक्षा ग्रन्थो में भी जीवनी अश दिया जाता रहा है। इसी तरह महापुरुषो की स्मृति या उनके अभिनन्दन मे प्रकाशित किये जाने वाले स्मृति ग्रन्थो व अभिनन्दन ग्रन्थो मे भी जीवनी का प्रामाणिक अश जुडा रहता है। ऐसे समीक्षा ग्रन्थ एवं अभिनन्दन ग्रन्थ भी कई प्रकाशित हुए है।

इन जीवनी ग्रन्थो मे जीवनी नायक के व्यक्तित्व के बहिरग पक्ष मे उस के जन्म, बाल्यकाल, वैराग्य, साधना, सयम, विहार, जन-सम्पर्क, धर्मप्रचार, धर्म परिवार आदि का तथा अन्तरग पक्ष मे उनके आतरिक गुणो और महत्त्वपूर्ण विचारो का सुन्दर विवेचन-सकलन किया जाता है।

(ङ) निबन्ध-प्रवचन :—गद्य विधाओं मे सर्वाधिक शक्तिपूर्ण और प्रसरणशील विधा निबन्ध है। साहित्य की अन्य विधाओं मे तो गद्य की भाषा एक माध्यम मात्र का काम करती है किन्तु निबन्ध मे वह अपनी पूर्ण शक्ति व सामर्थ्य के साथ प्रकट होती है, इसीलिये निबन्ध को गद्य की कसौटी कहा गया हैं। यो निबन्ध का निश्चित विषय नही होता। सभी प्रकार के विषय निबन्ध के लिये उपयोगी हो सकते है किन्तु शैली की रमणीयता और सरसता निबन्ध का अनिवार्य अग है।

विषय की दृष्टि से निबन्ध सामाजिक, सास्कृतिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि अनेक प्रकार के हो सकते हैं फिर भी विद्वानो ने स्थूल रूप से निबन्धों के पाच प्रकार बताये हैं—वर्णनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक, विचारात्मक और हास्य-व्यग्यात्मक/वर्णनात्मक निबन्धो मे दृश्य जगत की किसी वस्तु या स्थल का सजीव वर्णन किया जाता हैं। विवरणात्मक निबन्ध मे विचारो को प्रस्तुत करने का ढग सूक्ष्यात्मक होता है। इनमे इतिवृत्तात्मकता एव कथात्मकता के तत्व भी समाविष्ट रहते हैं। भावात्मक निबन्धो मे बौद्धिकता की अपेक्षा अनुभूति तत्व की प्रधानता रहती है। यहां लेखक के हृदय से निसृत भावधारा ही विचार सूत्र का नियन्त्रण करती है। विचारात्मक निबन्धो में हृदय के स्थान पर बुद्धि की प्रधानता होती है। इनमे अध्ययन की व्यापकता, गम्भीरता और भाषा की समाहार-शक्ति अपेक्षित होती हैं। हास्य-व्यग्यात्मक निबन्धो मे विषय हल्के और शैली सरस किन्तु तीखी होती है। ऐसे निबन्ध एक ओर जीवन की ऊब और थकान को दूर कर स्वस्थ मनोरजन की पूर्ति करते हैं तथा दूसरी ओर समाज, धर्म, प्रशासन आदि मे व्याप्त कुरीतियो, रूढियो और दुरवस्था पर तीव्र चोट करते है।

उपर्युक्त विवेचन के परिप्रेक्ष्य मे जब हम राजस्थान के जैन निबन्धकारो पर दृष्टिपात करते है तो निबन्ध कला पर खरे उतरने वाले निबन्धों की सख्या विरल है। यो जैन पत्र-पत्रिकाओ के माध्यम मे प्रति माह सपादकीय टिप्पणियो और धार्मिक, सामाजिक, दार्शनिक, सास्कृतिक निबन्धो के रूप मे काफी सामग्री छपती रहती है पर इनमे से अधिकाश सामान्य कोटि के लेख होते हैं। भावात्मक और हास्य- व्यग्यात्मक निबन्ध तो बहुत ही कम है। अधिकांश निबन्ध जैन तत्व ज्ञान से सम्बन्धित होते है। सामाजिक भावभूमि को लेकर लिखे जाने वाले निबन्धो को सख्या भी पर्याप्त है। निबन्ध-लेखन मे गृहस्थों का ही विशेष योगदान रहा है। जैन-संत अपनी मर्यादा मे बधे रहने के कारण सामान्यत सीधे निबन्ध नही लिखते।

निबन्ध साहित्य की इस कमी को पूरा किया है प्रवचन साहित्य ने। निबन्ध और प्रवचन का मूल अन्तर इसकी रचना प्रक्रिया मे है। निबन्ध सामान्यतः लेखक स्वयं लिखता है या बोलकर दूसरे से लिखवाता है पर प्रवचन—एक प्रकार का आध्यात्मिक भाषण है जो श्रोता मण्डलो मे दिया जाता है। यह सामान्य व्यक्ति द्वारा दिया गया सामान्य भाषण नही है। त्यागी ज्ञानी, साधक एव अन्तर्मुखी चिन्तनशील व्यक्ति की वाणी ही प्रवचन कहलाती है। इसमे अद्भुत बल, विशिष्ट प्रेरणा और आन्तरिक साधना का चमत्कार छिपा रहता है। श्रोता के हृदय को सीधा स्पर्श कर उसे आन्दोलित-विलोडित करने की क्षमता उसमे निहित रहती है। जैन सत-सतियां आध्यात्मिक-पथ पर बढ़ने वाली जागरूक आत्माए हैं। उनकी अनुभूत वाणी प्रवचन की सच्ची अधिकारिणी है।

जैन धर्म लोक-धर्म है व लोक—भूमि पर प्रतिष्ठित है। लोक—मानस तक अपनी बात पहुंचाने के लिये जैनाचार्य और जैन संत लोक भाषा मे ही अपना प्रवचन देते रहे हैं। स्वतन्त्रता के पूर्व तक राजस्थान के अधिकाश जैन साधु राजस्थानी मे ही प्रवचन दिया करते थे पर ज्यो ज्या हिन्दी का प्रचार—प्रसार बढ़ता गया, उन्होंने हिन्दी को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। चातुर्मास काल मे तो प्रतिदिन नियमित रूप से व्याख्यान होते ही हैं, उस के बाद भी शेषकाल

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए भी व्याख्यान देने का क्रम जारी रहता है। राजस्थान में सैकड़ों व्याख्यानी साधु हैं अत. यदि लिपिबद्ध किया जाए तो प्रवचन–साहित्य प्रति वर्ष विपुल परिमाण में सामने आ सकता है। पर वर्तमान में सर्वत्र ऐसी व्यवस्था नहीं है। जो प्रभावशाली आचार्य और सत हैं, उनके चातुर्मास कालीन प्रवचनो को लिपिबद्ध करने की कहीं–कहीं व्यवस्था है। परिणामस्वरूप सपादित होकर कई प्रवचन-संग्रह प्रकाशित हुए हैं, लेकिन अप्रकाशित प्रवचन–साहित्य बड़ी मात्रा मे सरक्षित है। जो प्रवचन-संकलन प्रकाशित हुए हैं उनमें प्रमुख हैं–जवाहर किरणावली भाग 1-35 (आचार्य श्री जवाहरलालजी), सस्कृति और धर्म मार्ग, आत्म दर्शन (आचार्य श्री गणेशीलालजी म.), दिवाकर दिव्य ज्योति भाग 1-21 (जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म.), हीरक प्रवचन भाग 1-10 (श्री हीरालालजी म.), प्रवचन डायरी भाग 1-4(आचार्य श्री तुलसी), आध्यात्मिक आलोक भाग 1-4, आध्यात्मिक-साधना भाग 1-2, प्रार्थना-प्रवचन, गजेन्द्र व्याख्यान माला भाग 1-3 (आचार्य श्री हस्तीमलजी म), साधना के मूल, अन्तर की ओर भाग-1-2 (श्री मधुकर मुनि) प्रवचन प्रभा, प्रवचन सुधा, धवल ज्ञान धारा, साधना के पथ पर, जीवन ज्योति (मरुधर केसरी श्री मिश्री मलजी म), पावस प्रवचन भाग 1-5, ताप और तप, ममता दर्शन और व्यवहार, शान्ति के सोपान (आचार्य श्री नानालालजी म), जिन्दगी की मुस्कान, साधना का राज मार्ग, (श्री पुष्कर मुनि) अर्चना और आलोक(साध्वी श्री उमराव कुवरजी) पर्युषण पर्वाराधना, शुभ भग चतुष्टय (साध्वी श्री मैनासुन्दरीजी) ।

संक्षेप मे प्रवचन साहित्य की विशेषताओ को इस प्रकार रेखा जा सकता है —

(1) इनमे किसी शास्त्रीय विषय को बडी गहराई के साथ उठाकर किसी प्रसिद्ध कथानक या प्रसंग के माध्यम से इस प्रकार आगे बढ़ाया जाता है कि वह कथा या प्रसग अपने मूल आगमिक भाव को स्पष्ट करता हुआ हमारे वर्तमान जीवन की समस्याओ एव उलझनो का भी समाधान देता चलता है।

(2) इनके विषय उन प्रवृत्तियो और विचारो से सम्बन्ध होते है जिनसे व्यक्ति का अपना आन्तरिक जीवन शुद्ध, समाज को स्वस्थ्य और प्रगतिशील तथा सर्वजाति समभाव, सर्व धर्म समभाव और विश्वमैत्री भाव जागृत करने की प्रेरणा मिलती है।

(3) ये प्रवचन मूलत. आध्यात्मिक होने पर भी समसामयिक जीवन सदर्भो और विश्व समस्याओ से जुड़े होते है। इनमे आत्मानुशासन, विश्वबन्धुत्व, एकता, पारस्परिक सहयोग, सहअस्तित्व जैसी जीवन निर्माणकारी और विश्व हितकारी भावनाओं पर विशेष बल होने से इनकी अपील सर्व जन–हितकारी और रुचियुक्त होती है।

(4) ये प्रवचन प्रवचनकार की पदयात्रा के अनुभवों की ताजगी, वातावरण की पवित्रता, प्रसगानुकूल असरकारक कथाओ, दृष्टान्तो और रूपको से युक्त होते है।

(5) ये प्रवचन आलकारिक अनावश्यक शृंगार से परे अनुभूति की गहराई, अन्तर्स्पर्शी मार्मिकता, ज्ञात-अज्ञात कवियों की पदावली, लोकधुनो, विविध-राग-रागिनियों, संस्कृत श्लोकों, प्राकृत गाथाओं और मर्मस्पर्शी सूक्तियों से युक्त होते है। साधारण कथा और घटना मे भी ये प्राण फूंक देते है जो जीवन मोड़ का कारण बनती है।

(ख) **शोध-समालोचना** :—यों तो जैन आगमों, दार्शनिक और तात्विक ग्रन्थों की व्याख्या–विवेचना (टीका-भाष्य) के रूप मे शोध की प्रवृत्ति प्राचीन काल से चली आरही है। पर उस प्रवृत्ति का क्षेत्र मुख्यतः धार्मिक और दार्शनिक जगत तक ही सीमित रहा है। लम्बे समय तक जैन साहित्य को केवल धार्मिक साहित्य कहकर उपेक्षा की जाती रही पर अब पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान आगम ग्रन्थो और उनके समीक्षात्मक अध्ययन तथा हस्तलिखित जैन ग्रन्थों के सूचीकरण की ओर गया तो जैन साहित्य का दायरा व्यापक हुआ और शोध की दिशाए विस्तृत हुई। इधर हिन्दी साहित्य के आदिकाल की अधिकांश आधारभूत सामग्री जैन साहित्यकारों द्वारा ही रचित मिली है। जैन अपभ्रंश साहित्य धारा के अध्ययन से यह स्पष्ट होने लगा कि हिन्दी के संत काव्य, प्रेमाख्यानक काव्य और भक्ति काव्य के रचना तन्त्र और शिल्पविधान पर जैन साहित्य का व्यापक प्रभाव है। प्राचीन इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व तथा भारतीय दर्शन के तुलनात्मक अध्ययन में भी जैन आगम और पुराण ग्रन्थों का उपयोग करने की प्रवृत्ति विशेष बढ़ी है। इन सब का परिणाम यह हुआ कि अब जैन वांङ्मय अन्तर अनुशासनीय शोध-क्षेत्र का मुख्य आधार बन गया है।

जैन साहित्य का अधिकाश भाग अब भी अज्ञात और अप्रकाशित है। राजस्थान में सैकड़ों मन्दिर, उपाश्रय और स्थानक है जहा हस्तलिखित पाडुलिपियो के रूप में यह मूल्यवान साहित्य संगृहीत-सरक्षित है। यह साहित्य केवल धार्मिक नहीं है और न केवल जैन धर्म से ही सम्बन्धित है। इनमें साहित्य के अतिरिक्त इतिहास, दर्शन, भूगोल, आयुर्वेद, ज्योतिष आदि की अलभ्य सामग्री छिपी पड़ी है। इनका समुद्धार किया जाना आवश्यक है।

विश्वविद्यालय स्तर पर अब तक जैन विद्या के अध्ययन-अध्यापन की स्वतन्त्र व्यवस्था न होने से जैन शोध की प्रवृत्ति वैज्ञानिक रूप धारण न कर सकी। प्रसन्नता का विषय है कि भगवान् महावीर के 2500 वें परिनिर्वाण वर्ष के उपलक्ष्य मे राजस्थान सरकार के सहयोग से राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर तथा उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर मे जैन अनुशीलन केन्द्र की स्थापना की गई है। इससे निश्चय ही जैन शोध की सम्भावनाओ के नये द्वार खुलेंगे।

जैन विद्या का व्यवस्थित अध्ययन-अध्यापन न होने पर भी शोध क्षेत्र मे राजस्थान अग्रणी है। इसका मुख्य कारण यहां पर्याप्त सख्या मे हस्तलिखित ग्रन्थ भडारो का होना है। कई सस्थाए और व्यक्ति शोध कार्य में मनोयोग पूर्वक लगे हुए है। शोधरत सस्थाओं मे प्रमुख हैं–श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी द्वारा सचालित साहित्य शोध विभाग, महावीर भवन, जयपुर; आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार शोध प्रतिष्ठान, लाल भवन जयपुर, जैन इतिहास समिति, जयपुर; जैन विश्व भारती लाडनू, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

शोधरत विद्वानो मे महत्वपूर्ण नाम है–मुनि श्री जिनविजयजी, मुनि श्री कल्याण विजयजी, मुनि श्री कान्ति सागरजी, प. घासीलालजी म, आचार्य श्री हस्तीमलजी म., आचार्य श्री तुलसी, मुनि श्री नथमलजी, मुनि श्री नगराजजी, मुनि श्री बुद्धमलजी, मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी म., श्री देवेन्द्र मुनि जी, श्री अगरचन्द नाहटा, श्री भवरलाल नाहटा, डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल, श्री श्रीचन्द रामपुरिया, डा. नरेन्द्र भानावत, महोपाध्याय विनयसागर, डा. प्रेम सुमन जैन आदि।

संक्षेप में जैन शोध-प्रवृत्तियों को इस प्रकार रखा जा सकता है—

(1) राजस्थान के ज्ञान भण्डारों में उपलब्ध हस्तलिखित पांडुलिपियों का विस्तृत सूचीकरण और प्रकाशन।

(2) हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर महत्वपूर्ण कवियो की रचनाओं का व्यवस्थित संकलन, सम्पादन और विस्तृत भूमिका के साथ कवि के कृतित्व का समीक्षात्मक मूल्यांकन।

(3) जैन आगमों का वैज्ञानिक पद्धति से प्रामाणिक सम्पादन, टिप्पण, समीक्षण और हिन्दी मे अनुवादन ।

(4) जैन धर्म का प्रामाणिक इतिहास लेखन और इतिहास की आधार भूत सामग्री के रूप में पट्टावलियो, अभिलेखों आदि का सकलन-सम्पादन ।

(5) जैन दर्शन, साहित्य, तत्वज्ञान आदि से सम्बद्ध समीक्षात्मक, तुलनात्मक और आधुनिक विज्ञान के परिपेक्ष्य मे पुस्तक-निबन्ध लेखन ।

(6) जैन पारिभाषिक शब्दो और तत्व विशेष को लेकर कोश-निर्माण ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि राजस्थान मे जैन साहित्य की पद्य और गद्य विषयक प्रवृत्तियां मात्रात्मक और गुणात्मक दोनो दृष्टियों से मानवतावादी साहित्य निर्माण की ओर सतत अग्रसर है। उनमे निरी धार्मिकता के स्थान पर उदात्त साहित्यिक तत्वो का समावेश हो रहा है और वे वैयक्तिकता के आत्मलक्षी दायरे मे निकल कर सामूहिकता के व्यापक क्षेत्र मे प्रवेश कर रही हैं ।

हिन्दी जैन साहित्य और साहित्यकार–2

अगरचन्द नाहटा
एवं
महोपाध्याय विनयसागर

राजस्थान प्रान्त जब कई विभागो मे विभक्त था तब जो प्रदेश ब्रज व पंजाब के आसपास का था उसमे हिन्दी का प्रभाव व प्रचार अधिक रहा, जो प्रदेश गुजरात से सलग्न था वहां पर गुजराती भाषा का प्रभाव अधिक रहा जो स्वाभाविक ही है। बाकी सारे प्रदेश की भाषा को राजस्थानी कहा जाता है, जिसकी कई शाखायें व बोलिया है। राजस्थानी भाषा का प्राचीन नाम मरु या मारवाड़ी भाषा था।

हिन्दी मूलत. जिसे खड़ी बोली कहा जाता है, वह तो मुसलमानी साम्राज्य के समय विकसित हुई। ब्रज हिन्दी का दूसरा साहित्यिक रूप है। प्राचीन हिन्दी साहित्य सर्वाधिक ब्रज भाषा का है जिसे कई ग्रन्थो मे "ग्वालेरी" नाम भी दिया गया है, क्योंकि ग्वालियर के आसपास के क्षेत्र मे इस भाषा का अधिक प्रचार व प्रसार रहा है। राजस्थान के भी कई साहित्यकारो ने "ग्वालेरी भाषा" का उल्लेख किया है। हिन्दी साहित्य वैसे अवधी आदि में भी मिलता है, पर राजस्थान मे ब्रज भाषा और खड़ी बोली, हिन्दी की इन दोनों उप-भाषाओं का ही अधिक प्रसार रहा है।

मुगल साम्राज्य के समय से राजस्थान मे हिन्दी का प्रचार बढ़ता रहा। इसलिये हिन्दी जैन कवि सं 1600 के बाद के ही अधिक मिलते है। इससे पहले की सारी रचनाये राजस्थानी मे हैं। अभी तक जो श्वेताम्बर हिन्दी कवियो के सम्बन्ध मे खोज हुई है, उनमे सर्वप्रथम कवि मालदेव हैं। ये अपने समय के बहुत समर्थ कवि थे। उनका और उनकी रचनाओ का समुचित विवरण नीचे दिया जा रहा है:—

1. कवि मालदेव

बड़गच्छ की भटनेर शाखा के प्रभावशाली आचार्य भावदेवसूरि के शिष्य थे। इन्होने अपनी रचनाओ मे अपना सक्षिप्त नाम "माल" का उपयोग किया है। भटनेर, सरसा के आसपास इस गच्छ का और इस कवि का अधिक विचरण तथा अधिक प्रभाव रहा है। यद्यपि सरसा अभी हरियाणा प्रदेश मे है किन्तु पहले राजस्थान विशेषतः बीकानेर के राजाओ से ही शासित था। कवि ने अपने गच्छ और गुरु के सिवाय अपना विशेष परिचय रचनाओं में नहीं दिया है। रचना काल का उल्लेख भी केवल दो रचनाओ मे किया है। सं. 1612-1668 अर्थात् 56 वर्ष तक कवि रचना करता रहा है। इस लम्बे काल को देखते हुए तो उनकी रचनायें बहुत अधिक मिलनी चाहिये, परन्तु भटनेरी बड़गच्छ शाखा का भण्डार सुरक्षित नही रहने से कवि की छोटी-बड़ी 30-40 रचनायें ही अब तक उपलब्ध हुई हैं। प्राकृत, सस्कृत और हिन्दी राजस्थानी मे गद्य और पद्य में कवि लिखता रहा है। यहां तो उनमे से हिन्दी रचनाओं का विवरण देना ही अभीष्ट है। यद्यपि कवि राजस्थान का होने के कारण इसकी हिन्दी राजस्थानी मिश्रित है, फिर भी अन्य राजस्थानी कवियो की अपेक्षा कवि की रचनाओं में हिन्दी की ही प्रधानता है। कवि की अधिकांश रचनायें अप्रकाशित हैं। उसकी

रचनाओं में सर्वाधिक प्रसिद्ध पुरंदर चौपई है। गुजरात के कवि ऋषभदास ने भी "सुकवि" के रूप में इसका उल्लेख किया है।

रचनाओं की सूची इस प्रकार है :—

(1) वीरांगद चौपई, पद्य सं. 758, र सं. 1612,

(2) भविष्य-भविष्या चौपई, पद्य सं. 647, सं. 1668 पचउर,

रचना काल के उल्लेख वाली पहली रचना वीरांगद चौपई और अंतिम रचना भविष्य-भविष्या चौपई है। इसकी उसी समय की लिखित प्रति अभय जैन ग्रन्थालय में है।

(3) विक्रम चौपई, 7 प्रस्तावों और 1725 पद्यों में है।

(4) भोज चौपई, यह भी चार खण्डों में एव 1700 पद्यो मे है और पचपुर मे रची गई है।

(5) अमरसेन वयरसेन चौपई, 410 पद्यो मे रचित है। यह रचना शीलदेवसूरि की आज्ञा से रची गई है अत स. 1624 के बाद की है।

(6) कीर्तिधर सुकौशल मुनि सम्बन्ध, पद्य 427 है।

(7) स्थूलभद्र धमाल, पद्य 101, यह प्राचीन फागु संग्रह में प्रकाशित हो चुकी है।

(8) राजुल नेमि धमाल, पद्य 63। (9) नेमिनाथ नवभव रास, पद्य 230।

(10) देवदत्त चौपई, पद्य 530। (11) धनदेव पद्मरथ चौपई।

(12) अंजनासुन्दरी चौपई, प 156। (13) नर्मदा सुन्दरी चौपई।

(14) पुरन्दर चौपई, पद्य 375। (15) पद्मावती पद्मश्री रास, पद्य 815।

(16) मृगाक-पद्मावती रास, पद्य 487। (17) मान शिक्षा चौपई, पद्य 67।

(18) शील बावनी। (19) सत्य की चौपई, पद्य 446।

(20) सुरसुन्दर राजर्षि चौपई, पद्य 669।

(21) महावीर पारणा और स्तवन सज्झाय-पद आदि आपके रचित प्राप्त हैं।

2. समयसुन्दर

राजस्थान के महाकवियों मे महोपाध्याय समयसुन्दर बहुत बडे ग्रन्थकार हुए है, जिनकी 563 लघु रचनाओं का संग्रह उनकी विस्तृत जीवनी और रचनाओं की सूची के साथ 'समय-सुन्दर कृति कुसुमाञ्जली' नामक पुस्तक मे प्रकाशित हो चुका है। स 1649 मे अपने प्रगुरु युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि जी के साथ लाहौर मे सम्राट अकबर से कवि का परिचय हुआ था और वहां सम्राट के काश्मीर प्रयाण के समय "राजानो ददते सौख्यम्" के 10 लाख अर्थ किये थे। तभी से कवि की रचनाओं में कई तो हिन्दी की ही है और कई राजस्थानी मे होने पर भी हिन्दी का प्रभाव पाया जाता है। जिनचन्द्रसूरि और अकबर के मिलन सम्बन्धी अष्टक मे सर्वप्रथम हिन्दी भाषा का प्रयोग हुआ है। अत एक पद्य नमूने के तौर पर नीचे दिया जा रहा है :—

ए जी सतन के मुख वाणी सुणी, जिणचन्द मुणिद महंत यति,
तप जाप करइ गुरु गुज्जर में, प्रतिबोधत है भविकुं सुमति।
तब ही चित चाहन चूप भई, समयसुन्दर के प्रभु गच्छपति,
पठइ पतिसाहि अजब्ब की छाप, बोलाए गुरु गजराज गति ॥1॥

सं. 1658 में अहमदाबाद में रचित होने पर भी कवि ने चौबीसी की रचना हिन्दी में की है। "ध्रुपद छत्तीसी" और कई भक्ति पद कवि के रचे हुए बहुत ही भव्य एवं आकर्षक हैं। उदाहरण के तौर पर एक पद यहां दिया जा रहा है:—

मेरी जीयु आरति कांइ घरइ ।
जइसा वखत मइं लिखति विधाता, तिण मइं कछु न टरई । मे 1 ।
कंई चक्रवर्ती सिर छत्र धरावत, केइ कण मागत फिरइ ।
केइ सुखिए केइ दुखिए देखत, तैं सब करम करइ ।मे. 2 ।
आरती अंदोह छोरि दे जीयुरा, रोवत न राज घरइ ।
समयसुन्दर कहइ जो सुख वंछत, तउ करि ध्रम चित खरइ । मे 3।

कवि समयसुन्दर का जन्म साचोर में हुआ था । राजस्थान मे विचरण करते हुए आपने बहुत सी महत्वपूर्ण रचनाये की हैं । इनका विशेष परिचय सस्कृत और राजस्थानी विभाग में दिया जा चुका है ।

3. जिनराजसूरि

अकबर प्रतिबोधक युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि के ये प्रशिष्य थे । स. 1647 में बीकानेर के बोथरा धर्मसी की पत्नी धारलदेवी की कुक्षि से आपका जन्म हुआ था । 10 वर्ष की अल्पायु में जैन मुनि दीक्षा ग्रहण की थी । इनका दीक्षानाम राजसमुद्र रखा गया था । ये अपने समय के बहुत बड़े विद्वान् और सुकवि थे । स. 1674 मे मेडता मे आपको आचार्य पद मिला था । इन्होने नैषधकाव्य पर 36000 श्लोक प्रमाण की संस्कृत टीका बनाई और गांगाणी के प्राचीन लेखो को पढा था । सं. 1686 आगरा मे ये सम्राट शाहजहा से मिले थे । इनकी "शालिभद्र चौपई" सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना है । उसके साथ बाकी रचनाओ का सग्रह भी "जिनराजसूरि कृति सग्रह" मे प्रकाशित किया जा चुका है । राजस्थानी के साथ-साथ आपने हिन्दी मे भी बहुत से सुन्दर पदो की रचना की है, उनमें से रामायण सबन्धी एक पद नीचे दिया जा रहा है —

मंदोदरी बार बार इम भाखइ ।
दस सिरि ग्रह गढ लका चाहइ, तउ पर स्त्री जन राखइ (म 1)
पल प्रउ दिवस विभीषण पलटयउ, पाज जलधि परि झाखइ ।
बोयइ पेड़ आक के आगण, अब किहा थइ चाखइ । मं 2।
जीती जाई सकइ नही रोऊ, वलि एहि जनि आखइ ।
'राज' वदत रावण क्यु समझइ, होणहार लकाखइ ।।मं 3।

4 कवि दामो

ये अंचलगच्छ के वाचक उदयसागर के शिष्य थे । इनका दीक्षा नाम दयासागर था । सं. 1669 जालौर में इन्होंने 'मदन नरिंद चौपई" की रचना की जिसके अन्त में इन्होंने अपने पूर्व रचित "मदन-शतक" का उल्लेख इस प्रकार किया है:—

"मदन शतक" ना दूहुडा, एकोत्तर सौ सार ।
मदन नरिंद तणु चरित, मंइं विरच्यु विस्तारि ।।65।।

मदनशतक हिन्दी भाषा का एक सुन्दर प्रेम काव्य है । यह बहुत लोकप्रिय रहा है । इसकी अनेकों हस्तलिखित प्रतियां बीकानेर की अनूप संस्कृत लायब्रेरी, अभयजैन ग्रंथालय आदि में प्राप्त हैं । जिनमें से एक प्रति में आठ चित्र भी हैं । जैसाकि उपरोक्त उद्धरण में लिखा गया है कि इसमें 101 दोहे थे, किन्तु आगे चलकर इसकी पद्य संख्या में भी वृद्धि हुई और गद्य वार्ता का भी इसमें समावेश हो गया। आगरा विश्वविद्यालय के "भारतीय साहित्य" जुलाई-अक्टूबर, 1962 के अंक मे मदनशतक प्रकाशित हो चुका है, जिसमें 132 पद्य और वार्ता भी हैं। इस रचना के बीच में गुप्तलेख जो रतिसुन्दरी ने अपने प्रियतम को भेजा था, वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इस शतक की हिन्दी भाषा के नमूने के रूप में एक पद्य और वार्ता उद्धृत की जा रही है:—

"विरह आगि उपजी अधिक, अहनिस दहै सरीर ।
साहिब देहुं पसाऊ करि, दरसन रूपी नीर ॥98॥

वार्ता--कागद बाच्या । राजा हर्षित भया । शुभ मुहूर्त पच कन्या सेती मदन को ब्याह किया । करमोचन अर्द्ध राज्य दिया । मदन पच स्त्री के संग सुख भोग ।"

5. कवि कुशललाभ

ये खरतरगच्छ के वाचक अभयधर्म के शिष्य थे । "ढोलामारू चौपई" आपकी बहुत ही प्रसिद्ध रचना है । राजस्थान मे तो ये उल्लेखनीय कवि थे ही , पर इनकी एक हिन्दी रचना "स्थूलिभद्र छत्तीसी" भी प्राप्त है जो अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर में सगृहीत है । उदाहरण के तौर पर प्रथम पद्य देखिये —

"सारद शरद चन्द्र करि निमल ताके चरण कमल चित लायकइं ।
गुणत सतोष हुइं श्रवण कु नागर चतुर सुनहु चित चायकइ ।
कुशललाभ बुल्लति आनन्द भरि सुगुरु पसादि परम सुख पायकइं ।
करिहु थूलभद्र छत्रीसी अति सुन्दर पद बध बनाय कइ ।1।

6 भद्रसेन

खरतरगच्छ के इस कवि का नामोल्लेख सं. 1675 के शत्रुजय शिलालेख मे पाया जाता है । इनकी प्रसिद्ध रचना "चन्दन मलयागिरि चौपई" बीकानेर में रची गई, क्योकि इसके प्रारम्भ में कवि ने विक्रमपुर का उल्लेख किया है । यह रचना बहुत लोकप्रिय रही है और इसकी कई सचित्र प्रतियां भी प्राप्त है । इसकी एक सचित्र प्रति अभय जैन ग्रंथालय मे भी प्राप्त है । श्री साराभाई नवाब ने इसका सचित्र सस्करण "आचार्य आनन्दशकर ध्रुव स्मारक ग्रन्थ" मे सन् 1944 में प्रकाशित किया था । रचना दोहा छन्द में है, बीच-बीच में कुछ गाथाये भी पाई जाती हैं । प्रारम्भ के 4 दोहे उद्धत किये जा रहे है —

स्वस्ति श्री विक्रमपुरं, प्रणमी श्री जगदीश ।
तन मन जीवन सुखकरण, पूरण जगत जगीस ।1।
वरदायक वर सरसती, मति विस्तारण मात ।
प्रणमी मनि धर मोद सुं, हरण विघन मधात ।2।
मम उपगारी परम गुरु, गुण अक्षर दातार ।
वादी ताके चरण युग, भद्रसेन मुनि सार ।3।
कहा चन्दन कहा मलयागिरि, कहा सायर कहा नीर ।
कहि हुइ ताकी वारता, सुणउ सबे वरवीर ।4।

7 मानसिंह 'मान'

ये खरतरगच्छ के उपाध्याय शिवनिधान के शिष्य और सुकवि थे । कवि का दीक्षानाम महिमासिंह था । सं. 1670 से 1693 तक की इनकी बहुत सी रचनायें प्राप्त है, जिनमें राजस्थानी काव्य ही अधिक है । हिन्दी की भी आपकी तीन रचनायें मिली हैं — 1. योग बावनी, 2. उत्पत्तिनामा, और 3 भाषा कवि रस मजरी । इनमे से 'भाषा कवि रस मजरी' की एक प्रति अभय जैन ग्रन्थालय में है । नायक-नायिका वर्णन सम्बन्धी इसमें 107 पद्य है । शृंगार रस वाली जैन कवियों की ऐसी रचनायें बहुत कम मिलती हैं । रचना के आद्यन्त के पद्य नीचे दिये जा रहे हैं:—

सकल कलानिधि वादि गज, पंचानन परधान ।
श्री सिवनिधान पाठक चरण, प्रणमी वदे मुनि मान ।1।
नव अंकुर जोवन भई, लाल मनोहर होइ ।
कोपि सरल भूषण ग्रहै, चेष्टा मुग्धा सोइ ।2।
× × × ×
नारि नारि सब को कहै, किऊं नाइकासु होइ ।
निज गुण मनि मति रीति धरी, मान ग्रन्थ अवलोइ । 10७।

8. उदयराज

खरतरगच्छीय भद्रसार के शिष्य उदयराज 17वीं के उत्तरार्ध के अच्छे कवि थे। इनकी राजस्थानी रचनायें सं. 1667 से 1676 तक की प्राप्त हैं। इस कवि ने करीब 500 दोहे भी बनाये हैं। हिन्दी रचनाओं में "वैद्य विरहिणी प्रबन्ध" 78 पद्यों में हैं। इसकी एकमात्र प्रति अभय जैन ग्रन्थालय में प्राप्त है।

9. कीसार

ये खरतरगच्छीय क्षेमकीर्तिशाखा के श्री रत्नहर्षजी के शिष्य थे। इनकी रचनाओं का रचनाकाल 17वी शताब्दी का अतिम चरण है। आप अच्छे कवि और गद्यकार थे। आपकी राजस्थानी में छोटी-मोटी तीसो कृतियां प्राप्त हैं। हिन्दी में आपका केवल "रघुनाथ विनोद" नामक ग्रन्थ, अपूर्ण ही प्राप्त है। उदाहरण के तौर पर एक पद्य देखिये:—

यां कू शिव शिव करि ध्यावत है शैवमती, ब्रह्म ब्रह्म नामकरि वेद माहि ध्याइये।
बुद्ध बुद्ध नाम लै लै ध्यावत है बौधमती, कृष्ण कृष्ण राम राम ऐसे लिव लाइये।
एकाएक वीतराग ध्यावे जिन सासनी, यु अल्ला अकब्बर कहि किसहि बताइये।
कहै कवि सार तीन लोक के हैं नाथ एकु, कथनी में भेद तातें नाम न्यारे पाइये। 5।

गोस्वामी तुलसीदास रचित कवितावली के पद्य के साथ सीतागमन वर्णनात्मक इस पद्य की तुलना कीजिये —

खेद भयौ परस्वेद चल्यो कहि सार कहावत अच्छी कहानी।
हाथ कटी डग ध्यारि चलै फिर बैठ रहे रघुनाथ की रानी।
पूछे अजूं आईवो कितनो अब दूरि रही अपनी रजधानी।
नैन सरोवर नीर भरे छिलके निकसै असुवां मिसी पानी॥ 19॥

10 कवि केशव

ये खरतरगच्छीय दयारत्न के शिष्य थे। इनका जन्म नाम केशव और दीक्षानाम कीर्तिवर्धन था। इन्होने "सदैवच्छ सावलिंगा चौपई" सं. 1697 में रची, जो "सदयवत्स प्रबन्ध" के परिशिष्ट में प्रकाशित हो चुकी है। इस कवि ने हिन्दी में भी कई उल्लेखनीय रचनायें की हैं जिनमें से "चतुरप्रिया" नायक-नायिका भेद सम्बन्धी रचना दो उल्लासों में प्राप्त है। इसकी पद्य संख्या 86 और 48 है। स. 1704 में इसकी रचना पूर्ण हुई है। इसी कवि ने "जन्म प्रकाशिका" नामक ज्योतिषग्रन्थ मेड़ता के संघपति राजसिंह, अमीपाल, वीरपाल के लिये 378 दोहों में रची है। इसी तरह कवि की तीन ग्रन्थ रचनायें दोहा छंद में रचित प्राप्त हैं.— 1. अमर बत्तीसी 2. दीपक बत्तीसी और 3. प्रीत छत्तीसी। इन तीनों रचनाओं में पीछे से स्वयं कवि ने कई दोहे बनाकर बढ़ा दिये हैं। इसीलिये अमरबत्तीसी में 48 और प्रीति छत्तीसी में 52 दोहे मिलते हैं।

11. कवि जसराज (जिनहर्ष)

ये खरतरगच्छीय शान्तिहर्ष के शिष्य थे। इनका प्रसिद्ध नाम जसराज और दीक्षा नाम जिनहर्ष था। प्रारम्भिक जीवन तो राजस्थान में घूमते ही बीता और पिछले कई वर्ष गुजरात-पाटन में रहे। राजस्थानी भाषा के तो ये बहुत बड़े कवि थे। इनकी रचनाओं का परिमाण लगभग एक लाख श्लोक का है। छोटी-मोटी करीब 500 रचनायें इनकी प्राप्त हैं। सं. 1704 से 1763 तक की इनकी रचनाये मिलती हैं, अर्थात् 60 वर्ष तक ये निरन्तर साहित्य सर्जन करते रहे है। इस महाकवि के सम्बन्ध मे डा. ईश्वरानन्द शर्मा ने शोध प्रबन्ध लिखकर पी-एच-डी प्राप्त की है। राजस्थानी के अतिरिक्त हिन्दी मे भी इन्होने कई उल्लेखनीय रचनायें की हैं। इनमें से "नन्द बहोत्तरी' सं. 1714 वीलहावास में रची गई है। इसमें नंदवश के महाराजा नन्द और उसके मन्त्री विरोचन की रोचक कथा 72 दोहो मे है। इनकी दूसरी रचना 'जसराज बावनी' 57 सवैया छदो में स. 1738 मे रची गई है। तीसरी रचना 'दोहा बावनी' सं. 1730 में रची गई है। चौथी रचना 'उपदेश छतीसी' 36 सवैया छंदो में स. 1713 में रची गई है। इनके अतिरिक्त चौवीस तीर्थंकरो के चौवीस पद, बारहमासा द्वय, पनरह तिथि का सवैया आदि कई हिन्दी रचनायें 'जिनहर्ष ग्रन्थावली' में प्रकाशित हो चुकी है। इनमें से उपदेश छत्तीसी का एक छद उदाहरण के तौर पर दिया जा रहा है—

जैसे अजुरी को नीर कोऊ गहे नरधीर,
छिन छिन जाइ वीर राख्यो न रहात है।
तैसे घटि जै हैं आऊ कोटिक करो उपाऊ,
थिर रहैं नही सही बातन की बात है।
ऐसे जीव जाणि के सुकृत करि धरि मन,
समता मे रमता रहै तो नीकि घात है।
अथिर देही सु उपगार यौ हो सार जिन-
हरख सुथिर जस मौन मे लहातु है ॥ 25 ॥

12. आनन्दघन

इनका मूलनाम लाभानन्द था। स. 1730 के आसपास मेड़ता में इनका स्वर्गवास हुआ था। बडे अध्यात्मयोगी पुरुष थे। इनकी चौवीसी और पद बहुतरी बहुत ही प्रसिद्ध हैं। वैसे पदो की सख्या करीबन 150 तक पहुच चुकी है। इनमें से कई पद अन्य कवियो के रचित होने पर भी इनके नाम से प्रसिद्ध हो गए हैं। इनके पदो में से एक प्रसिद्ध पद नीचे दिया जा रहा है—

राम कहौ रहिमान कहौ, कोउ कान्ह कहौ महादेव री।
पारसनाथ कहौ कोऊ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वमेव री ॥ राम . 1 ॥
भाजन भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री।
तैसे खण्ड कलपना रोपित, आप अखण्ड सरूप री ॥ राम. 2॥
निज पद रमै राम सो कहियें, रहम करै रहमान री।
करषै करम कान्ह सो कहियै, महादेव निरवाण री ॥राम. 3॥
परसं रूप सो पारस कहियै, ब्रह्म चिन्हे सो ब्रह्म री।
इहविध साध्यो आप आनन्दघन, चेतनमय निःकर्मरी ॥राम. 4॥

जैन दर्शन शास्त्र के महाविद्वान् उपाध्याय यशोविजयजी ने आनन्दघनजी की जो भावपूर्ण अष्टपदी की रचना की है, उससे आनन्दघनजी की महानता और विशिष्टता का सहज ही पता चल जाता है।

13. आनन्दवर्धन

ये खरतरगच्छीय महिमासागर के शिष्य थे। इनकी सं. 1702 से 1726 तक की रचनायें प्राप्त हैं। इनमें से कुछ हिन्दी रचनायें उल्लेखनीय हैं। जैन समाज में भक्तामर और कल्याणमन्दिर दो स्तोत्र अत्यन्त प्रसिद्ध हैं, इनका आपने हिन्दी पद्यानुवाद किया है। भक्तामर पद्य का एक उदाहरण प्रस्तुत है:—

प्रणमत भगत अमर वर सिर पुर, अमित मुकुट मनि ज्योति के जमावना,
हरत सकल पाप रूप अंधकार दल, करत उद्योत जगि त्रिभुवन पावनां।
इसे आदिनाथ जू के चरन कमल जुग, सुवधि प्रणमि करि कछु भावनां,
भवजल परत लरत जन उधरत, जुगादि आनन्द कर सुन्दर सुहावनां। 1।

14. महिमसमुद्र (जिन-समुद्रसूरि)

ये खरतरगच्छ की बेगड़ शाखा के आचार्य जिनचन्द्रसूरि के शिष्य थे। ये भी राजस्थानी के बहुत बड़े और अच्छे कवि थे। इनके सम्बन्ध में राजस्थानी (निबन्ध-माला) भाग 2 में लेख प्रकाशित हो चुका है। हिन्दी भाषा मे भी आपने कई उल्लेखनीय रचनायें की हैं जिनमें से भर्तृहरि "वैराग्य शतक" पर 'सर्वार्थसिद्धि मणिमाला' नामक विस्तृत टीका है। इसकी रचना सं. 1740 मे हुई है। स्वतन्त्र उल्लेखनीय कृतियों में 'तत्वप्रबोध नाटक सं. 1730 जैसलमेर में रचित है। इसकी तत्कालीन लिखित प्रति प्राप्त है। अन्य रचनाओ में "नेमिनाथ बारहमासा" "नारी गजल" "वैद्यचिन्तामणि" (समुद्रप्रकाश सिद्धान्त) आदि स्फुट कृतियें भी प्राप्त है। वैद्य चिन्तामणि की अभी तक पूर्ण प्रति प्राप्त नही हुई है। 18 वी शताब्दी के गद्य के नमूने के रूप में वैराग्य शतक टीका का अंश उद्धृत है:—

"अब श्री वैराग्यशतक कै विषै तृतीय प्रकाश बखान्यौ तो अब अनंतरि चौथा प्रकाश गुवालेरी भाषा करि बखानता हू। प्रथम शास्त्रोक्त षड्भाषा छोडि करि या अपभ्रंश भाषा बोचि ऐसा ग्रथ की टीका करणी परी सु कौन वास्ता ताका भेद बतावता हैं जु उर भाषा षट है ताका नाम कहता है।"

15. लक्ष्मीवल्लभ

ये खरतरगच्छीय क्षेमकीर्ति शाखा के लक्ष्मीकीर्ति के शिष्य थे। इनका मूल नाम "हेमराज" और उपनाम "राजकवि" था। सस्कृत, राजस्थानी और हिन्दी तीनो भाषाओं में इन्होने काफी रचनायें की हैं। हिन्दी रचनाओ मे वैद्यक सम्बन्धी दो रचनायें हैं—1. मूत्र परीक्षा, पद्य 36 और 2. काल ज्ञान, पद्य 178, सं. 1741 में रचित। इनकी दूहा बावनी, दूहा 58; हेमराज बावनी, सवैया 57; चौबीसी स्तवन; नवतत्व भाषा बन्ध, पद्य 82, स. 1747; भावना विलास, पद्य 52, स. 1727; नेमि राजुल बारहमासा आदि हिन्दी की अन्य रचनायें भी प्राप्त है। इनमें से भावना विलास का प्रथम पद्य उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत है:—

प्रणमी चरण युग पास जिनराज जू के,
विघ्न के चूरण है पूरण है आस के।
दृढ दिल माझि ध्यान धरि श्रुतदेवता को,
सेवत सपूरन हो मनोरथ दास के।
ज्ञान दृग दाता गुरु बड़ो उपगारी मेरे,
दिनकर जैसे दीपे ज्ञान प्रकाश के।
इनके प्रसाद कविराज सदा सुख काज,
सवैये बनावति भावना विलास के ।1।

16. धर्मसी (धर्मवर्द्धन)

ये खरतरगच्छ के उ. विजयहर्ष के शिष्य थे। संस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी तीनों भाषाओं में इन्होंने उत्कृष्ट रचनायें की हैं। ये बीकानेर के राजमान्य कवि थे। आपकी हिन्दी रचनाओं में "धर्मबावनी" सं. 1725 में रची गई है। इसमें औपदेशिक 57 सवैये हैं। दूसरी रचना दम्भक्रिया चौपई सं. 1740 की है। तथा चौवीस जिन पद, चौवीस जिन सवैया, नेमिराजुल बारहमासा और कुछ प्रबोधक पद भी प्राप्त हैं। इनमें से बारहमासा का एक पद्य नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

> अपने गुण दुग्ध दीये जल कु, तिनकी जल में पुनि रीति फैलाई।
> दूध के दाह कुं दूर कराइ, तहां जल आपनी देह जलाई।
> नीर बिछोह भी खीर सहै नहा, ऊफणि आवत है अकुलाई।
> नैन मिल्यैं फुनि चैन लह्यो तिण, ऐसी धर्म्मसी प्रीति भलाई ।6।

इनकी रचनाओं का संग्रह "धर्मवर्द्धन ग्रन्थावली" के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

17. विनयचन्द

ये खरतरगच्छीय उपाध्याय ज्ञानतिलक के शिष्य थे। राजस्थान के उत्तम कवियों में इनका स्थान है। इनकी प्राप्त रचनाओं का संग्रह 'विनयचन्द्र कृति कुसुमाञ्जली' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। नेमि राजीमती बारहमासा और रहनेमि राजुल सज्झाय' ये दोनो हिन्दी की बहुत सुन्दर रचनायें हैं। इन दोनों रचनाओं के एक एक उदाहरण प्रस्तुत हैं—

> दिहुं दिसइ जलधर धार दीसत हार के आकार।
> ता बीचि पहुंचै नही कबही सूई कौ संचार।
> सा लगत है झरराट करती मध्यवरती वान।
> भर मास भाद्रव द्रवत अबर सरस रस की खान ।3।

\+ \+ \+ \+ \+

> सजि बून्द सारी हर्षकारी भूमि नारी हेत।
> झरलाय निर्झर झरत झरझर सजन जलद असेत।
> घन घटा गजित घटा तर्जित भयै जजित गेह।
> टब टबकि टबकत झबकि झबकत विचि विचि बीज की रेह ।2।

कवि की रचनोल्लेख वाली रचनायें सं 1752 से 1755 तक की मिलती हैं। थोड़े ही वर्षों में कवि ने जो उत्कृष्ट रचनायें की हैं वे अनुपम और बेजोड हैं। काश ! कवि लम्बे समय तक रहता और रचनायें करता तो, राजस्थान के लिये बहुत ही गौरव की बात होती।

18. उदयचन्द मथेण

खरतरगच्छीय जो जैन यति साध्वाचार को पूर्णतया पालन न कर सके, उनकी एक अलग से मथेण जाति बन गई। इस जाति के राज्याश्रित सुकवियो मे उदयचन्द विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनका संस्कृत मे 'पाण्डित्य-दर्पण' ग्रन्थ प्राप्त है। बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह जी के लिये नायक-नायिका और अलकार वर्णन वाला 'अनूप रसाल" नामक काव्य सं. 1728 मे इन्होंने बनाया। इसकी एकमात्र प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी बीकानेर में प्राप्त है। वैसे तो इस पुस्तिका की पुष्पिका मे इसे महाराजा अनूपसिंह विरचित लिखा है किन्तु प्रति की प्रारम्भिक सूची में 'मथेण उदयचन्द कृत" लिखा है। कवि उदयचन्द ने "बीकानेर की गजल" सं. 1765 में महाराजा सुजानसिंह जी के समय में बनाई है। इसमें बीकानेर का बहुत सुन्दर वर्णन है। यह गजल "वैचारिकी" पत्रिका बीकानेर के विशेषांक में प्रकाशित हो चुकी है।

19. जिनरंगसूरि

ये खरतरगच्छीय जिनराजसूरि के पट्टधर थे। सं. 1700 में इनसे स्वतंत्र खरतरगच्छ की शाखा पृथक् हो गई। इन्होंने राजस्थानी रचनाओं के साथ-साथ हिन्दी में भी "जिनरंग बहोतरी" और "आत्म प्रबोध बावनी" (रचना सं. 1731) रची है। जिनरंग बहोतरी में 72 दोहे हैं और आत्म प्रबोध बावनी एक सुन्दर प्रबोधक रचना है। जिन रंग बहोतरी का एक दोहा प्रस्तुत है :—

> साख रह्यां लाखां गयां फिर कर लाखां होय।
> लाख रह्यां साखां गया लाख न लक्खै कोय। 40।

20. विनयलाभ

ये खरतरगच्छीय विनयप्रमोद के शिष्य थे। संस्कृत और राजस्थानी रचनाओं के अतिरिक्त इन्होंने भर्तृहरि शतकत्रय का पद्यानुवाद 'भाषाभूषण' के नाम से किया है। इसकी एक प्रति अभय जैन ग्रन्थालय में है। इसकी एक प्राचीन प्रति सं. 1727 की लिखित नागौर के भट्टारकीय भण्डार में है। उदाहरण के तौर पर प्रथम पद्य का अनुवाद प्रस्तुत है:—

> जाही कुं राखत हौं मन मैं तिनकौं तिय मोसौं रहे विरची,
> वा जिनकौं लित ध्यान धरे तिन तौ फुनि औरसौं रास रची।
> हमसौं नित चाह धरे काई औरसु तौ विरहानल मैं जु नची,
> धिग ताही कु ताकुं मदन्न कुं मोकुं इते पर बात कबू न बची।1।

इनकी हिन्दी में बावनी भी प्राप्त है। रचनाओं में 'बालचन्द' नाम भी प्राप्त होता है। इनका मूल नाम बालचन्द था और दीक्षा नाम विनयलाभ था।

21. केसवदास

ये खरतरगच्छीय कवि लावण्यरत्न के शिष्य थे। राजस्थानी रचनाओं के अतिरिक्त इन्होंने हिन्दी में केसव बावनी स 1736 में बनाई है और नेमि राजुल बारहमासा सं. 1734 में बनाया है। केसवदास का एक और भी बारहमासा मिलता है परन्तु इसमें गुरु का नाम प्राप्त नहीं है। केसव नाम के कई कवि होने से इसके कर्ता का निर्णय करना सभव नहीं है।

22 खेतल

ये खरतरगच्छीय दयावल्लभ के शिष्य थे। इनका दीक्षा नाम दयासुन्दर था। सं. 1743 से 1757 तक इनकी कई राजस्थानी रचनाये प्राप्त है। कवि की हिन्दी रचनाओं में "चित्तौड़ की गजल" सं. 1748 और "उदयपुर की गजल" सं. 1757 की प्राप्त है। ये गजलें प्रकाशित हो चुकी हैं। साहित्य और इतिहास की दृष्टि से ये दोनों रचनायें महत्वपूर्ण हैं।

23. मानकवि

विजयगच्छ के मान कवि ने उदयपुर के महाराणा राजसिंह सम्बन्धी "राजविलास" नामक ऐतिहासिक काव्य बनाया जो नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हो चुका है। 18 विलास में विभक्त यह ऐतिहासिक महाकाव्य है। सं. 1737 तक की ऐतिहासिक घटनाओं का इसमें वर्णन है। इसकी हस्तलिखित प्रति स. 1746 की उदयपुर मे प्राप्त है। कवि की अन्य रचनाओं मे "बिहारी सतसई" टीका उल्लेखनीय है। यद्यपि डा. मोतीलाल मेनारिया ने इन दोनों रचनाओं के कर्ता भिन्न-भिन्न बतलाये हैं, परन्तु विजयगच्छ में उस समय में इस नाम के एक ही विद्वान् हुए हैं।

24. [illegible] II

ये खरतरगच्छ के वाचक सुमतिमेरु के शिष्य थे। इन्होंने "संयोग द्वात्रिंशिका" नामक 72 पद्यों की शृंगारिक रचना अमरचन्द मुनि के लिये सं. 1773 में बनाई है। कवि की अन्य दो रचनायें वैद्यक सम्बन्धी हैं, पर हैं बड़े महत्व की। पहली रचना 'कवि विनोद' 7 खण्ड में सं. 1745 में लाहोर में रची गई, किन्तु इसमें कवि ने स्वयं को बीकानेर वासी स्पष्ट रूप से लिखा है। दूसरी रचना "कवि प्रमोद" 9 उल्लास में पूर्ण हुई है, पद्य संख्या 2944 है। सं. 1746 में इसकी रचना हुई है। कवि ने इसमें भी अपने को बीकानेर वासी बतलाया है।

> सुमतिमेरु वाचक प्रकट पाठक श्री विनैमेरु।
> ताको शिष्य मुनि मानजी, वासी बीकानेर ।11।
> संवत सतर छयाल सुभ, कातिक सुदि तिथि वोज।
> 'कवि-प्रमोद' रस नाम यह, सर्व ग्रंथनि को खोज ।12 ।

25. कवि लालचन्द

इनका दीक्षानाम लाभवर्द्धन था। इनके गुरु शान्तिहर्ष थे और जिनहर्ष गुरुभ्राता थे। ये अपने गुरुभाई जिनहर्ष की तरह राजस्थानी के सुकवियों में से हैं। इनकी हिन्दी रचनाओं में "लीलावती गणित" सं. 1736 बीकानेर मे, 'अंक प्रस्तार' स. 1761 मे रचित गणित विषयक रचनायें प्राप्त व प्रकाशित हो चुकी हैं। आपकी 'स्वरोदय भाषा' और 'शकुन दीपिका चौपाई' भी अपने विषय की अच्छी रचनायें हैं।

26. जोसीराय मथेन

ये बीकानेर के महाराजा अनूपसिंहजी से सम्मानित थे। जोसीराय ने राजस्थानी में बड़ी सुन्दर रचनायें की हैं। साथ ही इन्होंने हिन्दी में "महाराजा सुजाणसिंह सम्बन्धी वरसलपुर गढ़ विजय" इसका दूसरा नाम 'सुजाणसिंह रासो' सं 1767 और 1769 के मध्य में बनाया है। यह रचना स 1769 की लिखित प्रति से सपादित होकर 'वरदा' के जून 1973 के अंक में प्रकाशित हो चुकी है।

27. जोगीदास मथेन

ये जोशीराय मथेन के पुत्र थे। इन्होंने वैद्यकसार नामक हिन्दी पद्य ग्रन्थ सं 1792 में बीकानेर महाराजकुमार जोरावर सिंह के नाम से बनाया है। इसमे जोशीराय को सम्मानित करने का उल्लेख इस प्रकार है :—

> बीकानेर वासी विशद, धर्मकथा जिह धाम।
> स्वेताम्बर लेखक सरस, जोशी जिनको नाम ।72।
> अधिपति भूप अनूप जिहि, तिनसों करि सुभभाय।
> दीय दुसाली करि करै, कह्यौ जु जोसीराय ।73।
> जिनि वह जोसीराय सुत, जान हु जोगीदास।
> संस्कृत भाषा भनि सुनत, भौ भारती प्रकाश ।74।
> जहां महाराज सुजान जय, वरसलपुर लिय आंन।
> छंद प्रबन्ध कवित्त करि, रासो कह्यौ बखान ।75।

28. [illegible]सिंह

ये खरतरगच्छ के पाठक [illegible] के शिष्य थे। सं. 1786 में इन्होंने भर्तृहरि शतक-त्रय भाषा की रचना बीकानेर राजवंश के महाराज आनन्दसिंह के लिये की थी। इस-

लिये इस रचना का नाम 'आनन्दभूषण' या 'आनन्द-प्रमोद' रखा गया है। इस रचना के वच वार्ता का कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है:—

"उज्जैणी नगरी के विषै राजा भर्तृहरिजी राज करतु है, ताहि एक समै एक महापुरुष योगीश्वरैं एक महागुणवंत फल भेंट कीनी। फल की महिमा कही जो यह खाय सो अजर अमर होई। तब राजा यें स्वकीय राणी पिंगला कुं भेज्या। तब राणी अत्यन्त कामातुर अन्य पर-पुरुषतें रक्त है, ताहि पुरुष को, फल दे भेजो अरु महिमा कही।"

29. देवचन्द्र

ये खरतरगच्छीय दीपचन्दजी के शिष्य थे। बीकानेर के निकटवर्ती ग्राम मे ही आपका जन्म हुआ था। छोटी उम्र मे ही सं. 1759 में ये दीक्षित हुए थे। इनका दीक्षा नाम 'राजविमल' था। जैन तत्ववेत्ता के रूप में आप बहुत प्रसिद्ध हैं। प्राकृत, संस्कृत, राजस्थानी, गुजराती के अतिरिक्त हिन्दी मे आपने कुछ पद और "द्रव्यप्रकाश" नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ बनाया है। जैन धर्म मान्य जीव अजीवादि द्रव्यों के सम्बन्ध मे यह ग्रन्थ प्रकाश डालता है। सं. 1763 मे बीकानेर मे इसकी रचना हुई है। द्रव्यप्रकाश का एक पद्य प्रस्तुत है:—

सहज सुभाव अब गुरु के बचन सेती,
जान्यौ निज तत्व तब जाण्यो जीव राय है।
मैं तो परद्रव्य नांहि परद्रव्य मेरो नांहि,
ऐसी बुद्धि भासी तब बंध कैसे थाय है।
देखि जानि गहो तुम परम अनंत पद,
जाके पद आगै और पद न सुहाय है।
प्रमाण निखेप नय जाके तेज आगै अस्त,
ऐसी निज देव शुद्ध मोख को उपाय है।30।

30. रूपचन्द (रामविजय)

ये खरतरगच्छीय उपाध्याय दयासिंह के शिष्य थे। इनका दीक्षा नाम रामविजय था। उन्होने 101 वर्ष की दीर्घायु पाई और कई रचनायें की हैं। संवतोल्लेख वाली इनकी पहली रचना स. 1772 की 'जिनसुखसूरि मजलस' खड़ी बोली की है। दूसरी रचना लघुस्तव टब्बा स. 1798 की है। राजस्थानी की तो कई रचनाये हैं पर हिन्दी की दृष्टि से अन्य रचनाओ का अवलोकन आवश्यक है। जिनसुखसूरि मजलस बड़ी अनूठी एव मजेदार रचना है। उदाहरण प्रस्तुत है:—

"अहो आवो बे यार, बैठो दरबार, ए बादरणी रात, कहो मजलस की बात। कहो कुन कुन मुलक कुन कुन राजा देखै, कुन कुन बादसाह देखै, कुन कुन दीवान देखै, कुन कुन महिर्बान देखै? तो कहेक–दिल्ली दईवान फररक साह सुलतान देखै, चितोड़ संग्रामसिंह दीवान देखै, जोधाण राठोड़ राजा अजीतसिंह देखै, बीकाण राजा सुजाणसिंह देखै, आबेर कछवाहु राजा जैसिंघ देखै।"

31. दीपचन्द

ये खरतरगच्छीय थे। इनका प्रणीत "लंघनपथ्यनिर्णय" नामक संस्कृत वैद्यक ग्रन्थ सं. 1792 जयपुर में रचित प्राप्त है। हिन्दी भाषा में इन्होंने "बालतन्त्र की भाषा वचनिका" बनाई। इसका कुछ उद्धरण प्रस्तुत है:—

"तिसके पुत्र कल्याणदास नामा होत भये। महा पण्डित सर्वशास्त्र के वक्ता आयुणहार वैद्यक चिकित्सा विषै महाप्रवीण सर्वशास्त्र वैद्यक का देखकर परोपकार के निमित्त पंडितां का ग्यान के वासत यह बाल चिकित्सा ग्रन्थ आरम्भ वास्ते कल्याणदास नामा पंडित होत

बही। तिसमें करी सलोक बंध। तिसकी भाषा खरतरगच्छ मांही जनि वाचक पदवी धारक दीप इसे मार्ने ।

32. अमरविजय

ये खरतरगच्छीय उदयतिलक के शिष्य थे। इनकी 'अक्षर-बत्तीसी' हिन्दी रचना प्राप्त है। राजस्थानी में तो इनकी अनेकों रचनायें प्राप्त हैं।

33. रघुपति

ये खरतरगच्छीय विद्यानिधान के शिष्य थे। सुकवि थे। सं. 1787 से 1839 तक की इनकी रचनायें मिलती हैं। इनकी अधिकांश रचनायें राजस्थानी मे हैं। हिन्दी मे "जैनसार बावनी" और "भोजन विधि" नाम की रचनायें प्राप्त हैं। भोजन विधि मे तो भगवान् महावीर के जन्म समय के दशोटन का वर्णन है। जैनसार बावनी औपदेशिक मातृकाक्षरी पर रचित सुन्दर रचना है। इसमें 58 पद्य है। सं. 1802 नापासर में इसकी रचना हुई है। इसका प्रारम्भिक पद्य इस प्रकार है:—

> ऊंकार बडो सब अक्षर मे, इण अक्षर ओपम और नहीं।
> ऊंकारनि के गुण आदरि कै, दिल उज्ज्वल राखत जांण दही।
> ऊंकार उचार बड़े बड़े पंडित, होति है मानित लोक यही।
> ऊंकार सदामद ध्यावत है, सुख पावत है रघुनाथ सही।1।

34. विनयभक्ति

ये खरतर गच्छीय वाचक भक्तिभद्र के शिष्य थे। इनका प्रसिद्ध नाम वस्ता था। इनकी पहली हिन्दी रचना "जिनलाभसूरि दवावैत" है। जिनलाभसूरि का आचार्यकाल सं. 1804 से 1834 तक का है, अत. इसी बीच इसकी रचना हुई है। इसकी गद्य वचनिका का कुछ अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है:—

"ऐसी पद्मावती माई बडे बड़े सिद्ध साधकुं नै ध्याई। तारा कै रूप बौद्ध सासन समाई। गौरी के रूप सिव मत वाळु नै गाई। जगत मै कहानी हिमाचल की जाई। जाकी सगती काहू सो लखी न जाई। कौसिक मत मे वजा कहानी। सिवजू की पटरानी। सिव ही के देह में समानी। गाइत्री के रूप चतुरानन मुखपंकज वसी। अच्छर कै रूप चंद्र विद्या मे विकसी।"

इनकी दूसरी रचना 'अन्योक्ति-बावनी' महत्वपूर्ण है। इसमे 62 पद्य हैं। जैसलमेर के रावल मूलराज के कथन से स. 1822 मे इसका प्रारम्भ हुआ था। अभय जैन ग्रन्थालय मे इसकी प्रति सुरक्षित है।

35. क्षमाकल्याण

ये खरतरगच्छीय वाचक अमृतधर्म के शिष्य थे। अपने समय के बहुत बड़े विद्वान् और ग्रन्थकार थे। सं. 1826 से 1873 तक की इनकी अनेकों रचनायें प्राप्त हैं। इन्होंने सुदूर बंगाल मुर्शिदाबाद आदि मे भी विहार किया था। अत: इनकी कई रचनाओं मे हिन्दी का प्रभाव है ही। वैसे "हितशिक्षा द्वात्रिंशिका" आपकी सुन्दर व औपदेशिक रचना है। इसका प्रारंभिक पद्य इस प्रकार है —

> सकल विमल गुन कलित ललित मन, मदन महिम वन दहन दहन सम।
> अमित सुमति पति दलित दुरित मति, निखिल विरति रति रमन अमन सम।
> सघन विघन मन हरन मधुर धुनि, धरन धरनि नल अमल असम सम।
> अवधु अवधि पति अचल अचल गति, कनक बरन द्युति परम परम मम।1।

अपभ्रंश भाषा के सुप्रसिद्ध जयतिहुअण स्तोत्र का हिन्दी पद्यानुवाद मुर्शिदाबाद के कातेला गूजरमल और तनसुखराय के लिये बनाया था। इसकी प्रति अभय जैन ग्रन्थालय मे प्राप्त है। इनका 'अबड चरित्र' स. 1853 मे रचित महिमाभक्ति भण्डार मे प्राप्त है।]

36. शिवचन्द्र

इनका पूर्वनाम शंभुराम था। ये खरतरगच्छ के पुण्यशील के प्रशिष्य और समय-सुन्दर के शिष्य थे। सस्कृत और राजस्थानी रचनाओ के अतिरिक्त इन्होने हिन्दी म जैसलमेर के रावल मूलराज की प्रशसा मे "समुद्रबद्ध काव्य वचनिका' की सं. 1851 जैसलमेर मे रचना की है। इसके एक दोहा और वचनिका का उदाहरण प्रस्तुत है .—

"शुभाकार कौशिक त्रिदिव, अतरिच्छ दिनकार।
महाराज इन धरतपौ, मूलराज छत्रधार।

अरुण अर्थलेश—जैसे शुभाकार कहि है भलो है आकार जिनकौ ऐसे, कौशिक कहिये इन्द्र सो त्रिदिव कहिये स्वर्ग मे प्रतपै। पुन. दिनकार अतरिच्छ कहता जितने ताईं सूर्य आकाश मे तपै। महाराज कहता इन रीतै छत्र के धरनहार महाराज श्री मूलराज। धर तपौ कहिये पृथ्वी विषै प्रतापौ।"

शिवचन्द्रजी की हिन्दी कृतियो मे दो पूजाये भी प्राप्त हैं.—1. ऋषि मण्डल पूजा सं. 1879 और 2 नदीश्वर द्वीप पूजा।

37. कल्याण कवि

इन्होंने स 1822 मे "जैसलमेर गजल" स. 1838 मे "गिरनार गजल" और 1864 मे "सिद्धाचल गजल" ये तीनो नगर वर्णनात्मक गजले बनाई है। ये भी खरतरगच्छ के थे।

38. ज्ञानसार

ये खरतरगच्छीय रत्नराज गणि के शिष्य एव मस्तयोगी तथा राजमान्य विद्वान् थे। कवि होने के साथ-साथ ये सफल आलोचक भी थे। इनकी समस्त लघुकृतिया "ज्ञानसार ग्रन्थावली" के नाम से प्रकाशित हो चुकी है। राजस्थानी के अतिरिक्त इनकी निम्नांकित हिन्दी रचनायें प्राप्त है.—

1. पूर्वदेश वर्णन,
2. कामोद्दीपन, स. 1856 जयपुर के महाराजा प्रतापसिहजी की प्रशसा मे रचित
3. मालापिगल (छदशास्त्र) स. 1876,
4. चन्द चौपाई समालोचना दोहा,
5. प्रास्ताविक अष्टोत्तरी,
6. निहाल बावनी स. 1881,
7. भावछत्तीसी स. 1865,
8. चारित्र छत्तीसी,
9. आत्म प्रबोध छत्तीसी,
10. मति-प्रबोध छत्तीसी
11. बहुतरी आदि के पद।

इन्होने 98 वर्ष की दीर्घायु पाई और श्मशानो मे रहते हुए योग और अध्यात्म की साधना की। 'पूर्वदेश वर्णन' मे जब ये मुर्शिदाबाद चौमासा करने के लिये गये थे, तब वहां बगाल की उस समय जो स्थिति देखी थी उसका चित्रात्मक वर्णन किया है। पूर्वदेश से वापिस आने पर ये जयपुर मे कई वर्ष रहे और वहा के महाराजा प्रतापसिह की प्रशसा मे "कामोद्दीपन' ग्रन्थ बनाया। "माला पिंगल" इनकी छदशास्त्र की महत्वपूर्ण रचना है। श्रीमद् आनन्दघनजी की रचनाओ का इन्होने 30 वर्षों तक चिन्तन करके उनके चौबीसी और पदो पर विवेचन लिखा।

ये बहुत बड़े समालोचक भी थे। इन्होंने मोहनविजय की सुप्रसिद्ध "चन्द चौपाई" की समालोचना दोहो मे की है। उसमे छंद शास्त्रादि की दृष्टि से गम्भीर आलोचना की है। वस्तुतः अपने ढंग की यह एक ही रचना है। आनन्दघनजी के आध्यात्मिक पदों का अनुसरण करते हुए आपने बहुतरी पद भी बनाये हे जो बहुत ही प्रबोधक है। पद बहुतरी का एक पद उद्धृत दिया जाता है —

भोर भयो अब जाग बावरे।

कौन पुण्य तें नर भव पायो, क्यू सूता अब पाय दाव रे। मो. 1।
धन वनिता सुत भ्रात तात को, मोह मगन इह विकल भाव रे।
कोई न तेरो तू नही काकउ, इस सयोग अनादि सुभाव रे।मो. 2।
आरज देश उत्तम गुरु सगत, पाई पूरब पुण्य प्रभाव रे।
ज्ञानसार जिन मारग लाधो, क्यो डूबै अब पाव नाव रे। मो. 3।

चन्द चौपाई समालोचना का एक उदाहरण देखिये :—

ए निच्चै निच्चै करो, लखि रचना की भाझ।
छद अलकार निपुण, नहि मोहन कविराज।

× × × ×

ना कवि की निन्दा करी, ना कछु राखी कान।
कवि कृत कविता शास्त्र के, सम्मत लिखी सयान।2।
दोहा त्रिक उग च्यार सै, प्रास्ताविक नवीन।
खरतर भट्टारक गछै, ज्ञानसार लिख दीन।3।

39 उत्तमचन्द भण्डारी

ये जोधपुर के महाराजा मानसिंह जी के मन्त्री थे। अलकार और साहित्य के आप उच्च कोटि के विद्वान थे। "अलकार आशय" अपने विषय का बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसकी रचना स 1857 मे हुई है। आपकी अन्य रचनाओं मे "नाथ चन्द्रिका" स 1861 और तारक तत्व आदि प्राप्त है।

40. उदयचन्द भण्डारी

ये भी जोधपुर के महाराजा मानसिहजी के मन्त्री और उत्तमचन्द भण्डारी के भाई थे। आप काव्य, साहित्य, छद, अलकार और दर्शन के भी अच्छे विद्वान् थे। इनका रचना काल 1864 से 1900 तक का है। आपके सम्बन्ध मे डा कृष्णा मुहणात ने शोध प्रबन्ध लिखा है। प्राप्त रचनाओ की सूची इस प्रकार है —

1 छद प्रबन्ध
2 छन्द विभूषण
3 दूषण दर्पण
4 रस निवास
5 शब्दार्थ चन्द्रिका
6 ज्ञान प्रदीपिका
7. जलन्धरनाथ भक्ति प्रबोध
8 शनिश्चर की कथा
9 आनुपूर्वी प्रस्तारबन्ध भाषा
10 ज्ञान सत्तावनी
11. ब्रह्मविनोद
12. ब्रह्मविलास
13 विज्ञ विनोद
14 विज्ञ विलास
15 वीतराग वन्दना
16 करुणा बत्तीसो
17. साधु वन्दना
18 जुलप्रकाश
19 वीनती
20 प्रश्नोत्तर वार्त्ता
21 विवेक पच्चीसी
22. विचार चन्द्रोदय
23 आत्मरत्नमाला
24. ज्ञानप्रभाकर

25. आत्म ज्ञान पंचाशिका
26. विचारसार
27. षट्मतसार सिद्धात
28. आत्म प्रबोधभाषा
29. आत्मसार मनोपदेश भाषा
30. बृहच्चाणक्य भाषा
31. लघु चाणक्य भाषा
32. समासार
33. सिखनख
34. कोकपद्य
35 स्वरोदय
36. शृगारकवित्त
37. सौभाग्यलक्ष्मी स्तोत्र

इनकी समस्त रचनाये महो. श्री विनयसागरजी के संग्रह मे उपलब्ध है।

41. गजल साहित्य

हिन्दी साहित्य मे नगर वर्णनात्मक गजलों की एक लम्बी परम्परा जैन कवियों की रचनाओ के रूप मे प्राप्त है। राजस्थान के श्वेताम्बर जैन कवियो ने राजस्थान के अनेक ग्राम, नगरो और बाहर के भी स्थानों-तीर्थों आदि की अनेक गजले बनाई है। उनमे से कुछ गजलो की सूची इस प्रकार है —

जोधपुर वर्णन गजल	हेम कवि	स 1866
जोधपुर वर्णन गजल	मुनि गुलाबविजय	स 1901
जोधपुर वर्णन गजल		महाराजा मानसिंह के समय मे
नागर वर्णन गजल	मनरूप, पद्य 83	सं. 1862
मेडता वर्णन गजल	मनरूप, पद्य 48	स 1865
सोजत वर्णन गजल	मनरूप, पद्य 67	स. 1863
बीकानेर वर्णन गजल	लालचन्द (लावण्य कमल)	स. 1838

सचित्र विज्ञप्ति पत्र जो जैनाचार्यों को अपने नगर मे पधारने व चातुर्मास करने के लिये लिखकर और चित्रित करके भिजवाये जाते थे, उनमे जिस नगर मे और जिस स्थान को वह पत्र भेजा जाता था, उनमे उन नगरो का वर्णन गजल के रूप मे प्राय पाया जाता है। इनमे राजस्थान के अनेक नगरो का वर्णन तत्कालीन इतिहास और संस्कृति की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण पाया जाता है। 17वी शताब्दी से ऐसे नगर वर्णनो की परम्परा खडी बोली मे 'गजल' के नाम से प्रारम्भ हुई, जो 20वी शताब्दी के प्रारम्भ तक चलती रही।

20 वीं शताब्दी

राजस्थान मे हिन्दी का प्रभाव अंग्रेजो के शासन और मुद्रण युग में अधिक बढा। राज दरबार मे और शिक्षा-प्रचार मे हिन्दी को प्रमुख स्थान मिलने से जिन्होंने राजस्थानी में रचना की है, उनकी भाषा मे भी हिन्दी का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जैन लेखक सदा से जनभाषा का आदर करते रहे, इसलिए 20 वी शताब्दी मे अनेक विषयो के ग्रथ हिन्दी मे लिखे गये। जैन मन्दिरो मे 'पूजा' गाने का प्रचार 19वी शताब्दी के उतरार्द्ध या अंतिमकाल से राजस्थान मे अधिक बढा। अतएव खरतरगच्छ, तपागच्छ के आचार्यों, मुनियो और यतियो ने पूजा साहित्य काफी मात्रा मे लिखा। उनमे से बहुत सा साहित्य प्रकाशित भी हो चुका है और आज भी उसका अच्छा प्रचार है। गेय होने से सगीतात्मकता ने भी इसके प्रचार को विशेष प्रोत्साहन दिया। खरतरगच्छ के यतियों मे सुगनजी (सुमति मण्डन) आदि ने काफी पूजाए बनाई। इनमे पहिले यति बालचन्द जी ने 1913 बीकानेर मे 'पचकल्याणक पूजा' बनाई। इससे पहले उन्होने 1909 मे मुर्शिदाबाद में रहते हुए 'सम्मेतशिखर पूजा' की रचना की थी। पूजाये सुगन जी रचित अधिक प्राप्त होती हैं, अतः सुगनजी का परिचय यहां दिया जा रहा है.—

42. सुगनजी (सुमतिमण्डन)

ये खरतरगच्छीय महोपाध्याय क्षमाकल्याण की परम्परा में धर्मविशाल के शिष्य थे। इनका दीक्षानाम सुमतिमण्डन था परन्तु जन्म नाम ही अधिक प्रसिद्ध रहा है। इनका उपाश्रय आज भी रांगडी चौक बीकानेर मे मौजूद है। स 1930 से 1961 तक आप पूजायें बनाते रहे। संवतानुसार पूजा सूची निम्न प्रकार है—

1. सिद्धाचल पूजा, सं. 1930 बीकानेर
2. अष्ट प्रवचन माता पूजा, स. 1940 बीकानेर
3. पच ज्ञान पूजा, स. 1940 बीकानेर
4. सहस्रकूट पूजा, स. 1940 बीकानेर
5. आबू पूजा, सं. 1940 बीकानेर
6. चौदह राजलोक पूजा, स. 1953 बीकानेर
7. पच परमेष्टि पूजा, स. 1953 बीकानेर
8. एकादश गणधर पूजा, स 1955 बीकानेर
9. जम्बूद्वीप पूजा, स. 1958 बीकानेर
10. सघ पूजा, स 1961 बीकानेर

इनके अतिरिक्त इनकी चौबीसी और मूर्तिमण्डन प्रकाश नामक रचनायें भी प्राप्त है।

43. वैद्य शिरोमणि रामलालजी (राम ऋद्धिसार)

आप खरतरगच्छीय क्षेमकीर्ति शाखा के कुशलनिधान के शिष्य थे। अपने समय के आप बहुत प्रसिद्ध वैद्य थे। आपकी रचित 'दादाजी की पूजा' अत्यधिक प्रसिद्ध है। आपने दीर्घायु पाई और अनेक विषयो मे बहुत से ग्र थ बनाये। ग्रथो का प्रकाशन भी स्वय ने ही किया। ज्ञात ग्रन्थो की नामावली इस प्रकार है—

1. पैंतालीस आगम पूजा, स. 1930 बीकानेर,
2. बीस विहरमान पूजा, स. 1944 भागनगर,
3. दादाजी की पूजा, स 1953 बीकानेर,
4. अष्टापद पूजा
5. अट्ठाई व्याख्यान भाषा, स. 1949
6. श्रीपाल चरित्र भाषा, स. 1957
7. सघपट्टक बालावबोध, स. 1967
8. वैद्यदीपक
9. महाजन वश मुक्तावली
10. जैन दिग्विजय पताका
11. सन्तान चिन्तामणि
12. गुण विलास
13. सिद्धमूर्ति विवेक विलास
14. असत्याक्षेप निराकरण
15. सिद्ध प्रतिमा मुक्तावली
16. स्वप्न सामुद्रिक शास्त्र
17. शकुन शास्त्र
18. श्रावक व्यवहारालकार
19. कल्पसूत्र बालावबोध

44 कपूरचन्द (कुशलसार)

ये खरतरगच्छीय रूपचन्द गणि के शिष्य थे। इनकी बारहव्रत पूजा स. 1936 बीकानेर में रचित, प्रकाशित है।

45. यति श्रीपालचन्द्र

ये खरतरगच्छीय श्री विवेकलब्धि के शिष्य थे। इनका दीक्षानाम शीलसौभाग्य था। ये विविध विषयों के अच्छे विद्वान् थे। इनका एक मात्र हिन्दी का ग्रंथ "जैन सम्प्रदाय शिक्षा" अथवा 'गृहस्थाश्रम शील सौभाग्य भूषण माला' नामक संवत् 1967 मे आपका अकस्मात् निधन

हो जाने से निर्णयसागर प्रेस बम्बई द्वारा प्रकाशित हुई थी। इस विशालकाय पुस्तक में लेखक ने वर्ण विचार, व्याकरण, नीति, गृहस्थ धर्म, वैद्यकशास्त्र, रोग परीक्षा, ओसवंश और गोत्रों की उत्पत्ति, सामान्य ज्योतिष, स्वरोदय, शकुन विचार आदि अनेक विषयों का विस्तार से आलेखन किया है। गृहोपयोगी इतने विषयों का एक ही ग्रंथ में समावेश अन्यत्र दुर्लभ है।

46. आत्मारामजी (विजयानन्दसूरि)

ये तपागच्छीय श्री बूटेराय जी के शिष्य थे। इनका जन्म तो पजाब में स. 1893 में हुआ था। मूलत स्थानकवासी सम्प्रदाय मे दीक्षित हुए थे। बाद मे मूर्तिपूजक सम्प्रदाय में पुन: दीक्षा ग्रहण करली थी। इन्होने पजाब, राजस्थान और गुजरात में अधिक विचरते हुए जैन धर्म का अच्छा प्रचार किया था। इनके रचित "जैन तत्वादर्श, अज्ञान तिमिर भास्कर, तत्व निर्णय प्रसाद, सम्यक्त्व शल्योद्धार" आदि बड़े-बड़े ग्रंथ है। स. 1940 बीकानर में रचित इनकी केवल 'बीस स्थानक पूजा' ही प्राप्त है।

इन्ही के पट्टधर आचार्य विजयवल्लभसूरि प्रसिद्ध आचार्य हुए। इन्होने राजस्थान में रहते हुए चौदह राजलोक पूजा 1977 खुडाला, पंच ज्ञान पूजा 1978 बीकानेर और सम्यग् दर्शन पूजा स. 1978 बीकानेर, रचनायें की है।

47. विजयराजेन्द्रसूरि

इनका जन्म सं. 1833 में भरतपुर मे हुआ था। पहले आप यति थे, बाद मे स. 1925 मे क्रियोद्धार करके सविग्न साधु बने। आपसे त्रि-स्तुतिक सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। इनका सब से बड़ा काम "अभिधान राजेन्द्र कोष" प्राकृतशब्दो का कोष सात भागो में है। राजस्थान और मालवा मे आप अधिक विचरे। आपकी हिन्दी रचनायें निम्न हैं —

1. कल्पसूत्र बालावबोध, सं. 1940,
2. पर्युषणाष्टाह्निका व्याख्यान, सं. 1927,
3. धनसार अघट कुमार चौपाई, सं. 1932,
4. तत्व विवेक सं 1945,
5. पंच सप्तति शतस्थान चतुष्पदी, स. 1946,
6. जिनोपदेश मजरी,
7. प्रश्नोत्तर पुष्पवाटिका, सं. 1936,
8. प्रभु स्तवन सुधाकर,
9. महावीर पच कल्याणक पूजा,
10. कमलप्रभा,
11. देववदन माला,
12. सिद्धचक्र पूजा
13. 108 बोल का थोकडा,
14. शुद्धरहस्य, आदि।

48. चिदानन्दजी

ये खरतरगच्छ में श्री शिवजीराम जी और सुखसागर जी से प्रभावित होकर दीक्षित हुए और गहन अध्ययन कर इन्होंने कई ग्रन्थों की रचनायें कीं। इनकी दीक्षा सं. 1935 में हुई थी

और स्वर्गवास सं. 1965 में हुआ था। इनकी निम्नलिखित रचनायें प्राप्त है :—

स्याद्वादानुभव रत्नाकर, सं. 1950 अजमेर,
दयानन्द मत निर्णय (नवीन आर्य समाज भ्रमोच्छेदन कुठार),
द्रव्यानुभवरत्नाकर, सं. 1952 मेडतारोड,
अध्यात्म अनुभव योग प्रकाश, सं. 1955,
शुद्ध देव अनुभव विचार, स. 1952,
कुमत कुलिगोच्छेदन भास्कर, स. 1955,
शुद्ध समाचारी मण्डन।
आत्म भ्रमोच्छेदन भानु,
श्रुत अनुभव विचार, स. 1952,
जिनाज्ञा विधि प्रकाश,
आगमसार अनुवाद,

उस समय का युग खण्डन-मण्डन का था। अतएव आपको कई ग्रन्थ खण्डन-मण्डनात्मक लिखने पडे। वैसे आप अष्टाग योग के बडे जानकार व अनुभवी थे। 'अध्यात्म अनुभव योग प्रकाश' मे इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है। द्रव्यानुभव रत्नाकर, शुद्धदेव अनुभव विचार आदि दार्शनिक व आध्यात्मिक ग्रन्थ है।

49. जिनकृपाचन्द्रसूरि

स. 1913 मे जोधपुर राज्य के चामू गाव मे आपका जन्म हुआ था। खरतरगच्छीय जिनकीर्तिरत्नसूरि शाखा के युक्तिअमृत मुनि के शिष्य आप स 1936 मे बने। पश्चात् क्रियोद्धार किया। स. 1973 मे आपको आचार्य पद प्राप्त हुआ और स्वर्गवास स. 1994 मे हुआ। आप आगम साहित्य के विशिष्ट विद्वान् थे। बीकानेर मे श्री जिन कृपाचन्द्रसूरि उपाश्रय आज भी रागडी चौक मे विद्यमान है। आपके विद्वान् शिष्य सुखसागर जी ने पचासो ग्रन्थो का सम्पादन व प्रकाशन किया था। आपके पट्टधर श्री जयसागर सूरि बहुत अच्छे विद्वान् थे। उ. सुखसागर जी के शिष्य मुनि कान्तिसागर जी बडे प्रतिभाशाली विद्वान् और प्रसिद्ध वक्ता थे।

श्री जिनकृपाचन्द्रसूरि जी ने साधारण जनोपयोगी स्तवन, स्तुतिया आदि बनाकर एक बहुत बडे अभाव की पूर्ति की। इनकी पद्यात्मक कृतियो का सकलन "कृपाविनोद" के नाम से प्रकाशित हो चुका है। आपने कल्पसूत्र की टीका का भावानुवाद, श्रीपाल चरित्र प्राकृत काव्य का हिन्दी अनुवाद, द्वादशपर्व व्याख्यान अनुवाद, जीव विचारादि प्रकरण सग्रह अनुवाद और गिरनार पूजा की रचनाये की है। ये सब ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है।

इनके प्रशिष्य मुनि कान्तिसागर जी की निम्नोक्त रचनाये प्रकाशित है —

1 खण्डहरो का वैभव,
2. खोज की पगडडिया,
3 जैन धातु प्रतिमा लेख,
4 श्रमण सस्कृति और कला,
5 नगर वर्णनात्मक हिन्दी पद्य सग्रह,
6. सईकी,
7. जिनदत्तसूरि चरित्र आदि।

आपके अनेक शोधपूर्ण लेख कई पत्र-पत्रिकाओ में प्रकाशित हो चुके है। उदयपुर महाराणा की प्रेरणा से आपने "एकलिंग जी का इतिहास" वर्षों तक परिश्रम करके तैयार किया था किन्तु वह अभी तक प्रकाशित नही हुआ है।

50. ज्ञानसुन्दर (देवगुप्तसूरि)

इनका जन्म 1937 वीसलपुर (मारवाड़) मे हुआ था। इन्होने सं. 1963 में स्थानकवासी दीक्षा ग्रहण की और सं. 1972 मे स्थानकवासी संप्रदाय छोड़ कर तपागच्छीय

श्री रत्नविजय जी के पास पुन: दीक्षा ग्रहण की तथा रत्नविजय जी की सूचनानुसार उपकेशगच्छ के अनुयायी बने। आचार्य पद के समय इनका नाम देवगुप्तसूरि रखा गया। आपकी छोटी-मोटी शताधिक रचनाये रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला से प्रकाशित हुई है। जैनागमो का संक्षिप्त सार 'शीघ्र बोध' के नाम से कई भागो मे प्रकाशित हुआ है। छोटी-छोटी कथाओ के 51 भाग भी उल्लेखनीय हैं। आपका सब से बड़ा ग्रन्थ "पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास" है। वैसे मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास, श्रीमान् लोकाशाह, जैन जाति महोदय प्रमुख रचनाये है। प्रकाशित विशिष्ट कृतिया निम्नलिखित है.—

भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास	पार्श्व पट्टावली,
मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास	श्रीमान् लोकाशाह
जैन जातियो का प्राचीन इतिहास	प्राचीन जैन इतिहास संग्रह भा. 1-16
कापरडा तीर्थ का इतिहास	जैन जाति महोदय
ओसवाल जाति का इतिहास	जैन जाति निर्णय
ओसवाल जाति का समय निर्णय	आगम निर्णय
बत्तीस सूत्र दर्पण	मुखपट्टी मीमासा
शीघ्रबोध	कथा सग्रह भा. 1-51 आदि।

51. जिनमणिसागरसूरि

आप खरतरगच्छ के महोपाध्याय सुमतिसागर जी के शिष्य थे। आपका जन्म स 1944 बार्काडिया बडगाम और दीक्षा स. 1960 मे, आचार्य पद स. 2000 और स्वर्गवास 2008 मालवाडा मे हुआ था। जैनागमादि ग्रन्थो का आपने विशिष्ट अध्ययन किया और उस समय के विवादास्पद प्रश्नो पर विस्तार से प्रकाश डाला। वैसे आप सरल प्रकृति और मध्यस्थ प्रकृति के थे। आपकी बहुत बड़ी भावना रही थी कि समस्त जैनागम हिन्दी मे मानुवाद प्रकाशित करवाये जावे, किन्तु आपके गुरु श्री के नाम से स्थापित सुमति सदन, कोटा से कुछ ही ग्रन्थ प्रकाशित किये जा सके। कोटा जैन प्रिन्टिंग प्रेस की स्थापना भी इसी उद्देश्य से की गई थी। आपकी निम्नलिखित रचनाये प्रकाशित है :—

बृहत्पर्युषणा निर्णय,	षट् कल्याणक निर्णय
देव द्रव्य निर्णय,	आगमानुसार मुंहपति का निर्णय,
साध्वी व्याख्यान निर्णय,	देवार्चन एक दृष्टि,
क्या पृथ्वी स्थिर है ?,	कल्पसूत्र अनुवाद,
दशवैकालिक सूत्र अनुवाद,	अन्तकृद्दशा सूत्र अनुवाद
अनुत्तरोपपातिकदशा सूत्र भावानुवाद,	साधु पंचप्रतिकमण सूत्र अनुवाद।

52. जिनहरिसागरसूरि

आप खरतरगच्छीय श्री भगवानसागर जी के शिष्य थे। आपका जन्म सं. 1949 रोहिणा ग्राम, दीक्षा 1957, आचार्य पद स. 1992 और स्वर्गवास स. 2006 मेड़ता रोड़ में हुआ था। आप बहुत सरल प्रकृति के थे और अच्छे कवि थे। इनकी स्तवनादि की रचनायें "हरिविलास' 'जिन स्तुति चौबीसी' में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके अतिरिक्त 'दादा गुरुदेवो की 4 पूजायें' और "महातपस्वी चरित्र' भी प्रकाशित हो चुके हैं।

सुदूर कलकत्ते तक विचरते हुए इन्होने अच्छा धर्म प्रचार किया था। जैसलमेर ज्ञान भण्डार के जीर्णोद्धार और सुव्यवस्था मे भी आपका योग रहा है। बहुत सी हस्तलिखित प्रतियो की भी आपने नकलें करवाई और स्वर्णाक्षरी कल्पसूत्रादि खरीद कर अपने ज्ञान भण्डार लोहावट में स्थापित करवायी। मेडता रोड (फलोदी) में आपके नाम से एक विद्यालय भी चालू हुआ था। अनेको स्थानो मे विचरते हुए आपने सैकड़ो प्रतिमाओ के लेखो का सग्रह भी किया था जो अभी तक अप्रकाशित है। आपके सुयोग्य शिष्य कविवर कवीन्द्रसागर जी का आपकी साहित्य सेवा और धर्म प्रचार कार्य में बड़ा सहयोग रहा।

53. वीरपुत्र आनन्दसागरसूरि

ये खरतरगच्छीय श्री त्रैलोक्यसागर जी के शिष्य थे। इनका जन्म 1946, दीक्षा स. 1968, आचार्य पद 2006 प्रतापगढ (राजस्थान) और स्वर्गवास 2016 मे हुआ था। इनका ज्ञान भण्डार सैलाना मे सुरक्षित है। इनकी निम्नोक्त रचनाये प्रकाशित हो चुकी हैं --

विपाक सूत्र अनुवाद	कल्पसूत्र अनुवाद,
श्रीपाल चरित्र अनुवाद	द्वादश पर्व व्याख्यान अनुवाद
सुख चरित्र	त्रैलोक्य चरित्र
महावीर जीवन प्रभा	सप्तव्यसन परिहार
आनन्द विनोद	आगमसार
स्वरोदय सार	गहूली सरिता

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि कई छोटी-छोटी पुस्तिकाये। ये बहुत अच्छे वक्ता भी थे।

54. जिन कवीन्द्रसागरसूरि

ये खरतरगच्छीय श्री जिनहरिसागरसूरि जी के शिष्य थे। इनका जन्म स 1964, दीक्षा स. 1976 जयपुर, आचार्य पद स. 2017 और स्वर्गवास स 2018 मे हुआ। आप प्रतिभाशाली विद्वान् एव आशुकवि थे। आपका असामयिक स्वर्गवास हो गया अन्यथा साहित्य जगत को आपसे बहुत कुछ आशाये थी। आपकी निम्नोक्त रचनाये प्राप्त हैं --

कवीन्द्र केलि	प्रोत्साहन पच्चीसी
जिन स्तवन सदोह	चैत्री पूर्णिमा देववन्दन विधि
नवपद आराधन विधि	तपोविधि सग्रह
आवश्यक विधि सग्रह	उपधान तप देववन्दन
रत्नत्रय आराधन पूजा, स. 2012 बीकानेर,	
पार्श्वनाथ पूजा, स 2013,	चौसठ प्रकारी पूजा, सं. 2013
महावीर स्वामी पूजा, स. 2012 बीकानेर,	मेड़ता रोड।

55. यतीन्द्रसूरि

ये त्रिस्तुतिक प्रसिद्ध आचार्य श्री विजय-राजेन्द्रसूरि के शिष्य थे। इनका जन्म सं. 1940 और दीक्षा स. 1954, आचार्य पद स 1995 आहोर में हुआ था। विजय राजेन्द्रसूरि के कोष को अन्तिम रूप देने और प्रकाशित करने में इनका बड़ा योग रहा है। राजस्थान, गुजरात, मालवा आदि मे विहार करते हुए आपने उन स्थानो और विहार के सम्बन्ध में कई पुस्तकें लिखी हैं जिनमें 'यतीन्द्र विहार दिग्दर्शन भाग 1–4,' "मेरी गोडवाल यात्रा", 'मेरी मेवाड़ यात्रा', और 'कोरटाजी का इतिहास' उल्लेखनीय हैं। आपने राजेन्द्रसूरि और मोहनविजय जी के जीवन चरित्र और पौराणिक अघटकुमार, कयवन्ना, चम्पक माला, रत्नसार, जगडूशाह, हरिबल आदि के जीवन चरित्र लिखे हैं। आपके व्याख्यानों के भी कई संग्रह निकले हैं और प्रकरणो आदि के अनुवाद भी आपने किये है। आपके सम्बन्ध मे "यतीन्द्रसूरि अभिनन्दन ग्रन्थ" द्रष्टव्य है।

आपके सुशिष्य व पट्टधर विद्याचन्द्रसूरि अच्छे कवि व लेखक हैं। आपने भगवान् नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर पर हिन्दी में महाकाव्य लिखे है।

56. जीतमुनि

ये तपागच्छीय थे और स्वय को आनन्दघन जी का चरणोपासक मानते थे। योग में आपकी बड़ी रुचि थी। आपने कई प्राचीन ग्रन्थो का अनुवाद व संग्रह किया तथा कई स्वतन्त्र रचनायें भी बनाई। प्रकाशित साहित्य इस प्रकार है.—

योगसार हिन्दी अनुवाद सह, लघु प्रकरण माला हिन्दी अनुवाद सह, अध्यात्म विचार जीत संग्रह, स्तवनादि सग्रह, भोले मूल अर्थ सहित, अनुभव पच्चीसी आदि। आपकी रचनाओं का काल 1970 से 1994 के आसपास का है।

57. मुनि जयन्तविजय

ये तपागच्छीय श्री विजयधर्मसूरि के शिष्य थे। इनका जन्म स 1940, दीक्षा सं. 1971 है। इन्होने आबू और उसके निकटवर्ती जैन तीर्थों के प्रतिमा लेख संग्रह का काम कई वर्षों तक बडे परिश्रम से किया। वैसे 'अर्बुद प्राचीन जैन लेख सदोह', 'अर्बुदाचल प्रदक्षिणा' ऐतिहासिक दृष्टि से बडे महत्वपूर्ण है। गुजराती में तो 'शंखेश्वर महातीर्थ, ब्राह्मणवाडा' आदि अनेकों ग्रन्थ भी लिखे हैं। हिन्दी मे तो केवल एक ग्रन्थ "आबू" सचित्र प्रथम भाग प्रकाशित है। इसमें आबू के विश्व प्रसिद्ध मंदिरो का ऐतिहासिक परिचय व वैशिष्ट्य का चित्रो के साथ आलेखन किया है।

58. मुनि मगनसागर

ये उणियारा (टोंक) निवासी थे। इन्होंने खरतरगच्छ में मुनि दीक्षा ग्रहण की थी। इनके समय मे खण्डन-मण्डन का प्राबल्य था, अत: कई पुस्तकें 'मुनि मगनसागर के प्रश्न और शास्त्रार्थ' आदि आपने लिखी। इनके अतिरिक्त 'मीन पुराण भूमिका और सिद्धान्त सागर प्राथमिक शिक्षा तथा हमीररासो सार' ग्रन्थ प्रकाशित हैं।

59. पंन्यास कल्याणविजय गणि

इनका जन्म वि. सं. 1944 में लास ग्राम (सिरोही) में ब्राह्मणकिशन के राम-कदीबाई घर में हुआ था। इनका जन्म नाम तोलाराम था। वि. सं. 1964 में जालो रतपागच्छीय

मुनि श्री केसरविजय जी के पास इन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी। दीक्षा के समय इनका नाम कल्याण-विजय रखा गया था। इन्हें सं. 1944 में पंन्यास पद प्राप्त हुआ था और सं. 2032 में जालोर में इनका स्वर्गवास हुआ।

कल्याणविजय जी जैन साहित्य, इतिहास, विधिशास्त्र (प्रतिष्ठा) आदि के प्रकाण्ड पण्डित थे। इनकी लिखित निम्न पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं:—

वीर निर्वाण संवत् और जैन काल गणना
श्रमण भगवान् महावीर
कल्याण कलिका
पट्टावली प्रबन्ध
प्रबन्ध पराग

तित्थोगालियपइण्णा (श्री गजसिंह राठोड़ के साथ सम्पादन एवं अनुवाद) आदि।

60. पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजय

पद्मश्री मुनि जिनविजय रूपाहेली (मेवाड़) निवासी परमारवंशी वृद्धिसिंह के पुत्र थे। इनकी माता का नाम राजकुमारी था। इनका जन्म सन् 1888 में हुआ था। इनका जन्म नाम किशनसिंह था। बाल्यावस्था में ही ये यति देवीसिंह के शिष्य बने। यतिजी के देहावसान के पश्चात् स्थानकवासी सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। 6 वर्ष पश्चात् इस सम्प्रदाय को त्याग कर मूर्तिपूजक समुदाय में तपागच्छ में दीक्षा ग्रहण की, जहां इनका नाम मुनि जिनविजय रखा गया। रूढ़िवादी परम्परा के प्रति आक्रोश एवं वैचारिक क्रांति के कारण इन्होंने इस वेष को भी त्याग दिया। कुछ वर्षों तक महात्मा गांधी के निर्देश पर इन्होंने गुजरात विद्यापीठ के आचार्य पद का भार वहन किया। संशोधन-सम्पादन शैली का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए जर्मनी आदि यूरोपीय देशों में इन्होंने भ्रमण किया। भारत स्वतन्त्रता आन्दोलन में ये जेल भी गये। शान्ति निकेतन में रहते हुए इन्होंने श्री बहादुरसिंह जी सिंघी को प्रेरित कर 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' की स्थापना की, जो आज भी भारतीय विद्या भवन, बम्बई के अन्तर्गत प्रकाशन कार्य कर रही है। मुनि जी भारतीय विद्या भवन, बम्बई तथा राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के संस्थापक और वर्षों तक निदेशक भी रहे।

सिंघी जैन ग्रन्थमाला और राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला के प्रधान संपादक पद पर रहते हुए इनके कार्यकाल में क्रमश. विविध विषयात्मक प्राचीन एवं दुर्लभ 55 तथा 83 ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। मुनिजी भारतीय संविधान के संस्कृत भाषा के अनुवादकर्ताओं में भी थे। भाण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना तथा जर्मन ओरियन्टल सोसायटी के सम्मान्य सदस्य भी रहे। भारत सरकार ने पद्मश्री अलंकरण प्रदान कर और राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर ने मनीषी उपाधि प्रदान कर मुनिजी को सम्मानित किया था। मुनिजी ने हरिभद्रसूरि स्मारक चित्तौड़, भामाशाह बाल विद्यालय चित्तौड़, सर्वोदय साधना आश्रम चंदेरिया तथा कई बाल विद्यालय आदि अनेक स्मारक अपने निजी द्रव्य से स्थापित किये। इसी वर्ष 3 जून, 1976 में मुनिजी का अहमदाबाद में स्वर्गवास हुआ और दाह संस्कार सर्वदेवायतन चंदेरिया में हुआ।

मुनि जिनविजय जी न केवल संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी तथा गुजराती भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान् ही थे, अपितु प्राचीन लिपि, पुरातत्व और इतिहास के भी धुरंधर विद्वान् थे। जैन साहित्य के तो मूर्धन्य विद्वान् थे ही। 'हरिभद्राचार्यस्य समयनिर्णयः' (संस्कृत) और आत्मकथा के अतिरिक्त इनकी स्वतन्त्र रूप से लिखित पुस्तकें प्राप्त नहीं हैं किन्तु इनके प्रधान-सम्पादकत्व में और सम्पादकत्व में प्रकाशित पुस्तकों के प्रधान संपादकीय प्राक्कथनों में तथा विश्लेषणात्मक एवं शोधपूर्ण विस्तृत भूमिकाओं में इन्होंने इतना अधिक लिखा है कि इन समस्त

प्रस्तावनाओं का संकलन कर अलग से प्रकाशित किया जाय तो उसके कई खण्ड निकल सकते हैं।

जिनविजय जी द्वारा सम्पादित साहित्य की तालिका निम्नांकित है—

विज्ञप्ति त्रिवेणी
खरतरगच्छ पट्टावली संग्रह
जैन लेख सग्रह भाग 1 व 2
गुजराती गद्य सन्दर्भ
पुरातन प्रबन्ध संग्रह
प्रबन्ध कोष
कथाकोष प्रकरण
जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह
संदेश रासक
कुमारपाल चरित्र सग्रह
जय पायड निमित्त शास्त्र
विज्ञप्ति लेख संग्रह
कर्णामृत प्रपा
प्राकृतानन्द
पदार्थ रत्न मंजूषा
कृपारस कोष
आचारांग सूत्र
प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह
प्रबन्ध चिन्तामणि
सुकृत कीर्ति कल्लोलिनी
विविध तीर्थ कल्प
प्रभावक चरित्र
धूर्ताख्यान
कीर्तिकौमुदी महाकाव्य
खरतरगच्छ बृहद् गुर्वावली
जम्बू चरियं,
त्रिपुरा भारती लघु-स्तव
बाल शिक्षा व्याकरण
उक्ति रत्नाकर
गोरा बादल चरित्र

हम्मीर महाकाव्य
ए केटलाग आफ सस्कृत एण्ड प्राकृत मैन्युस्कृप्ट्स—पार्ट—1; पार्ट-2 ए, बी, सी; पार्ट—3 ए, बी, इत्यादि।

मुनि जी ने भारतीय विद्या, जैन संशोधक, आदि कई शोधपूर्ण त्रैमासिक पत्रिकाओं का संपादन किया था और अनेकों पत्रिकाओं में आपके गवेषणा पूर्ण लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

61. यति नेमिचन्द्र

खरतरगच्छीय यति बख्तावर चन्द जी के शिष्य थे। इनका जन्म 1948 कुकणिया बेणासर (बीकानेर) रियासत और स्वर्गकाल स. 2009 बाडमेर में हुआ था। ये विधि-विधान के अच्छे जानकार थे। आपकी निम्न रचनायें प्रकाशित हैं:—

नेमिविनोद स्तवन माला
जिनदत्तसूरि चरित्र
गुरुदेव गुण छंदावली
जैन शकुनावली
हरिश्चन्द्र नाटक
लेखा लीलावती
पत्र पद्धति आदि।
कुलपाक मंडल पूजा
स्तवन रत्न मंजूषा
अयवंती सुकुमार
हंसवच्छ नाटक
स्थूलिभद्र नाटक
जैन ज्योतिष दिवाकर

62. माणिक्यरुचि

ये तपागच्छीय यति थे। भींडर (मेवाड़) इनका निवास स्थान था। इनकी दो पुस्तकें माणिक्य मंजरी और माणिक्य मनन प्रकाशित हैं। ये अच्छे कवि व उपदेशक थे। मेवाड़ के भीलों में भी उपदेश देकर मांस-मदिरा छुड़ाने का विशेष प्रयास किया था।

63. साध्वीवर्ग

जैन परम्परा में प्रारम्भ से ही स्त्रियों को समान धार्मिक अधिकार दिये गये और चतुर्विध सघ में साधु के साथ साध्वी और श्रावक के साथ श्राविका भी सम्मिलित है। राजस्थान में खरतरगच्छ का अधिक प्रभाव व प्रसार रहा और इस गच्छ की अधिकांश साध्वियाँ राजस्थान में ही जन्मी हुई हैं। वैसे इनका विहार बहुत दूर-दूर तक भी होता रहा, परन्तु राजस्थान में इन्होंने सर्वाधिक धर्म प्रचार किया। इनमें से कुछ साध्वियां बहुत अच्छी लेखिकायें और कवयित्री भी रही है। कइयों ने प्राचीन प्रकरणादि ग्रन्थो का अनुवाद किया और कइयों ने मौलिक रचनायें भी की हैं। ज्ञात रचनाओ की सूची इस प्रकार है.–

प्रेमश्रीजी—जैन प्रेम स्तवन माला, गहूंली संग्रह
बल्लभश्रीजी—पेंतीस बोल का थोकड़ा, वैराग्य शतक अनुवाद, संबोध सत्तरी अनुवाद
प्रमोदश्रीजी—प्रमोद विलास, रत्नत्रय
विनयश्रीजी—युगादिदेशना, उपासक-दशा सूत्र अनुवाद
बुद्धिश्रीजी—चैत्यवन्दन चतुर्विंशतिका सानुवाद, श्रीचन्द्र चरित्र
हीराश्रीजी—जैन कथा सग्रह

64. पं. काशीनाथ जैन

श्वेताम्बर समुदाय मे साधु-साध्वियो के अधिक होने से श्रावक समाज में विद्वान् और लेखक कम हुए हैं। इनमें से काशीनाथ जैन महापुरुषो के सचित्र जीवन-चरित्र प्रकाशित करने में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये वैसे तो यति शिष्य रहे हैं परन्तु इन्होने स्वय को यति शिष्य न लिख कर पंडित रूप में प्रसिद्ध किया। इनकी पुस्तको का प्रचार भी बहुत अच्छा रहा। वर्षों तक यह एक ही कांम मे जुटे रहे और इसे अपनी आजीविका का साधन बना लेने के कारण ही इतना साहित्य लिख सके। इनका मूल निवास स्थान बमोरा (मेवाड़) था। इनकी प्रकाशित पुस्तको की सूची इस प्रकार है–

अभय कुमार
आनन्द श्रावक
उत्तम कुमार
कामदेव श्रावक
चन्दन बाला
चन्दराजा
जय विजय
नल दमयन्ती
पार्श्वनाथ चरित्र
महाशतक श्रावक
रत्नसार कुमार
राजीमती
राजा हरिश्चन्द्र
ललितांग कुमार
शीलवती
सुर सुन्दरी
सती सीता
हरिबल मच्छी आदि
अरणिक मुनि
आदिनाथ चरित्र
कयवन्ना सेठ
काम कुम्भ माहात्म्य
जम्बूस्वामी
चम्पक सेठ
तेरह काठिये
नेमिनाथ चरित्र
ब्राहमी सुन्दरी
मृगावती
रत्न शेखर
राजा यशोधर
लकड़हारा
विजय सेठ विजया सेठानी
शुकराज कुमार
सुदर्शन सेठ
सुरादेव श्रावक

65. सुख संपतराय भंडारी

ये अजमेर निवासी हैं। इनका जन्म सं. 1895 में हुआ था। आपकी 'हिन्दी इंगलिश डिक्सनेरी भाग-7, भारत दर्शन, तिलक दर्शन, भारत के देशी राज्य, राजनीति विज्ञान' आदि

पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आप 'वेंकटेश्वर समाचार' आदि कई पत्रों के संपादक भी रह चुके हैं। इस प्रकार आपने अपना अधिकांश जीवन साहित्य निर्माण में ही लगाया था।

66. कस्तूरमल बांठिया

श्री बांठिया जी अजमेर मे रहते थे। 'हिन्दी बहीखाता, इन्कम टैक्स के हिसाब, रूई और उसका मिश्रण' आदि पुस्तकें लिखी। प्रौढावस्था में आपने जैन साहित्य का विशेष अध्ययन किया और हेमचन्द्राचार्य जीवन चरित्र का अंग्रेजी से अनुवाद किया। समय-समय पर आपके अनेकों लेख भी सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुये हैं। आपने कई जैनागमो के गुजराती और अंग्रेजी ग्रन्थों के हिन्दी में अनुवाद किये हैं। इनमें से 'जैनिज्म इन विहार' का जैन-भारती मे अनुवाद प्रकाशित हुआ। 'जैनिज्म इन गुजरात' और 'जैन आर्ट' का भी आपने अनुवाद किया था। गोपालदास पटेल आदि के गुजराती भाषा मे लिखित कई आगमो के अनुवाद भी आपने हिन्दी मे किये थे, किन्तु वे अभी तक अप्रकाशित हैं। श्री भोगीलाल साडेसरा की गुजराती पुस्तक 'वस्तु-पालनु विद्यामण्डल' का हिन्दी में 'वस्तुपाल महामात्य का साहित्य-मण्डल और उसकी संस्कृत साहित्य को देन' नाम से अनुवाद भी किया था जो प्रकाशित हो चुका है।

67. दौलतसिंह लोढा 'अरविन्द'

स. 1914 धामणिया ग्राम (मेवाड़) में इनका जन्म हुआ था। बी.ए. तक अध्ययन करके राजेन्द्र गुरुकुल बागरा में प्रधानाध्यापक का कार्य किया। श्री विजय यतीन्द्रसूरि की प्रेरणा से काव्य और गद्य रचनाये लिखनी प्रारम्भ करदी। इनका उपनाम 'अरविन्द' था। सर्व प्रथम, 'श्री मनोहर विजय', तदनन्तर 'जैन-जगती' हरिगीतिका छदों में बनाई। जैन-जगती जैन समाज का सचित्र चित्रण करने वाला अच्छा काव्य है। इसके बाद वे भोपाल-गढ, सुमेरपुर आदि में बोर्डिंग सुपरिन्टेन्डेन्ट के रूप मे रहे। अन्त में भीलवाडा में रहने लगे। छोटी-मोटी 33 पुस्तकें आपकी प्रकाशित हो चुकी हैं। जिसमें इतिहास सम्बन्धी 'प्राग्वाट इतिहास, पल्लीवाल जैन इतिहास, राणकपुर जैन इतिहास, श्री प्रतिमा लेख सग्रह' आदि उल्लेखनीय हैं। काव्यो मे जैन-जगती के अतिरिक्त 'राजीमति, दस निकुज, छत्र प्रताप, रसलता और वसुमती' आदि उल्लेखनीय हैं। आपके सपादित 'राजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रन्थ' और 'यतीन्द्रसूरि अभिनन्दन ग्रन्थ' महत्वपूर्ण हैं। आप बहुत कर्मठ एवं सुकवि थे। आपसे समाज को बहुत कुछ आशायें थी किन्तु आपका असमय मे 49 वर्ष मे ही निधन हो गया।

68. उमरावचन्द्र जरगड

इनका जन्म वि. स. 1959 में जयपुर में हुआ। इनके पिता का नाम श्री मालवशी नेमिचन्दजी जरगड था। इनका जैन-दर्शन और अध्यात्म की तरफ विशेष आकर्षण था। जवाहरात का व्यापार था। वि. सं. 2028 में इनका स्वर्गवास हुआ। इनकी लिखित एवं सम्पादित पुस्तकें निम्न प्रकार हैं:—

देवचन्द्र जी कृत चतुर्विंशति जिन स्तवन (सानुवाद) — प्रार्थना और तत्वज्ञान
देव चन्द्र जी कृत स्नानपूजा (सानुवाद) — आनन्दघन ग्रन्थावली (सानुवाद)

69. पं. भगवानदास जैन

इनका जन्म सं. 1945 में पालीताणा मे हुआ। इनके माता-पिता का नाम कल्याण-चन्द्र भाई और गंगाबाई हैं। आचार्य विजय धर्मसूरि स्थापित यशोविजय जैन पाठशाला,

बनारस में इन्होंने शिक्षा प्राप्त की। लगभग 45 वर्षों से इनका कार्य क्षेत्र जयपुर ही है। पंडित जी वास्तुशास्त्र, मूर्तिशास्त्र और ज्योतिष शास्त्र के अद्वितीय विद्वान् हैं। इनके द्वारा अनुदित निम्न पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं :–

वास्तुसार प्रकरण
मेघ महोदय वर्ष प्रबोध
प्रसादमण्डन
ज्योतिषसार
बेडाजातक

पंडितजी द्वारा कई अनुदित ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित पड़े हुए हैं, यथा—

रूपमण्डन
हीरकलश
देवतामूर्ति प्रकरण
भुवनदीपक
त्रैलोक्य प्रकाश, आदि।

70. अम्बालाल नागौरी

नागौरी जी छोटी सादडी (मेवाड़) के निवासी श्री मोतीराम जी के पुत्र हैं। छोटी सादडी में ही रहते हैं। इनकी अभी उम्र 91 वर्ष की है। ये प्रतिष्ठा विधि और मन्त्र साहित्य के विशिष्ट विद्वान् हैं। इन्होने अभी तक विभिन्न स्थानों पर 135 मन्दिरों की प्रतिष्ठायें करवाई हैं। इनका निजी पुस्तकालय भी है जिसमे 5000 से अधिक पुस्तकें संग्रहीत हैं। इनके द्वारा लिखित 75 के लगभग पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है जिसमें से कुछ पुस्तको के नाम इस प्रकार हैं :–

नमस्कार महामन्त्र कल्प
नमस्कार महात्म्य
ऋषिमण्डल स्तोत्र विधि विधान सह,
ह्रींकार कल्प
घण्टाकर्ण कल्प
यन्त्र मन्त्र संग्रह
केसरियाजी का इतिहास
जाति गंगा
महाराणा प्रताप, आदि।

71. अगरचन्द नाहटा

श्री शंकरदानजी नाहटा के यहा वि. स. 1967 में बीकानेर में इनका जन्म हुआ। पाठशाला की शिक्षा ये पाचवी कक्षा तक ही प्राप्त कर सके। आचार्य श्री जिन कृपाचन्द्रसूरि जी की प्रेरणा से सं. 1984 से इनकी और इनके भतीजे श्री भवरलाल नाहटा की साहित्य की ओर रुचि जागृत हुई। सं. 1984 से लेकर आज तक निरन्तर अध्ययनशीलता और कर्मशीलता के कारण इन नाहटा-बन्धुओ (चाचा-भतीजों ने) सामान्य शिक्षा प्राप्त होते हुए भी साहित्य जगत में जो कार्य किया है वह वस्तुत: अद्वितीय ही कहा जा सकता है। इन दोनों के प्रयत्नों से संस्थापित अभय जैन ग्रन्थालय में लगभग 60 हजार हस्तलिखित ग्रन्थो और 15 हजार के लगभग मुद्रित पुस्तकों का सग्रह, कलाभवन में मूर्तियां, सिक्के, चित्र, चित्रपट्ट, सचित्र प्रतियां, आदि हजारों की सख्या मे सग्रहीत है। यह ग्रन्थालय शोध-छात्रों के लिये शोध-केन्द्र बना हुआ है।

दृढ अध्यवसाय और अजस्र स्वाध्याय परायणता के कारण श्री अगरचन्द जी आज जैन साहित्य के ही नहीं, अपितु राजस्थानी भाषा के भी श्रेष्ठ विद्वान् माने जाते हैं। यही नहीं, ग्रन्थों, ग्रन्थकारों, संग्रहालयो के सम्बन्ध में तो इन्हें साहित्य का कोष भी कह सकते हैं। इनके सहयोग से पचासों छात्र शोध-प्रबन्ध पूर्ण कर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। पचासों

पत्र-पत्रिकाओं में इनके 3,500 के लगभग लेख प्रकाशित हो चुके हैं। पच्चीसों पुस्तकों की इन्होंने भूमिकायें लिखी हैं और शोधपूर्ण अनेकों पत्रिकाओं के संपादक एवं परामर्शदाता-मण्डल में रह चुके हैं। अर्थाभिलाषी होते हुए भी साहित्य की प्रेरणा और सहयोग देने में सर्वदा अग्रसर रहते हैं।

अगरचन्द्र जी द्वारा लिखित एवं संपादित पुस्तकें निम्नांकित हैं :–

विधवा कर्त्तव्य	जसवंत उद्योत
दानवीर सेठ श्री भैरूदान जी कोठारी का संक्षिप्त जीवन चरित्र	
राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, द्वितीय भाग,	
बीकानेर के दर्शनीय जैन मन्दिर	श्रीमद् देवचन्द्र स्तवनावली
छिताई चरित्र	पीरदान लालस ग्रन्थावली
जिनहर्ष ग्रन्थावली	जिनराजसूरि कृति कुसुमांजली
धर्मवर्द्धन ग्रन्थावली	प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा
सभा शृंगार	भक्तमाल सटीक
राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा	अष्ट प्रवचनमाता सज्झाय सार्थ
ऐतिहासिक काव्य संग्रह	शिक्षा सागर
बी बी बांदी का झगडा	रुकमणी मगल, इत्यादि

श्री अगरचन्द जी और श्री भवरलाल जी इन दोनो बन्धुओं द्वारा सयुक्त रूप में लिखित और सपादित पुस्तकें निम्नलिखित हैं :–

युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि	ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह
समयसुन्दर कृति कुसुमांजली	युगप्रधान जिनदत्त सूरि
बीकानेर जैन लेख सग्रह	क्याम खां रासा
ज्ञानसार ग्रन्थावली	पंच भावनादि सज्झाय सार्थ
सीताराम चोपाई	मणिधारी जिनचन्द्र सूरि
दादा जिनकुशल सूरि	रत्नपरीक्षा
बम्बई चिन्तामणि पार्श्वनाथादि स्तवन पद संग्रह	

श्री नाहटाजी कई सस्थाओ से सम्मानित हो चुके हैं और इसी वर्ष 11 अप्रेल, 1976 को इन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ भी भेंट किया जा चुका है।

72. भंवरलाल नाहटा

श्री अगरचन्द जी नाहटा के भतीजे हैं। श्री भैरोदान जी नाहटा के पुत्र हैं किन्तु श्री भैरोदानजी के अनुज श्री अभयराज जी के दत्तक पुत्र हैं। वि. सं. 1968 में इनका जन्म हुआ। इनकी भी स्कूली शिक्षा कक्षा 5 तक की है। श्री अगरचन्द जी और भंवरलाल जी दोनों न केवल सहपाठी मात्र ही रहे अपितु साहित्य के क्षेत्र में भी सर्वदा से एक–एक के पूरक रहे हैं। संग्रह, संपादन और लेखन आदि समस्त कार्यों में दोनों संयुक्त एवं सहयोगी के रूप में कार्य करते रहे हैं।

श्री भंवरलाल जी संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, अवधि, बंगला, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषाओं में पारंगत, प्राचीन ब्राह्मी, कुटिल आदि युग की भाषाओं की सतत परिवर्तित लिपियों की वैज्ञानिक वर्णमाला के अभ्यासी, मूर्तिकला, चित्रकला एवं ललित कलाओं के पारखी हैं। इनकी अभिरुचि प्रायः भाषा-शास्त्र और लिपि-विज्ञान में है। प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में पद्यात्मक स्फुट रचनायें भी करते हैं।

इनके द्वारा स्वतन्त्र रूप से संपादित व विरचित पुस्तकों की तालिका इस प्रकार है :—

सती मृगावती	राजगृह
समयसुन्दर रास पंचक	हम्मीरायण,
उदारता अपनाइये	पद्मिनी चरित्र चौपई
सीताराम चरित्र	विनयचन्द्र कृति कुसुमांजली
जीवदया प्रकरण काव्यत्रयी	सहजानन्द सकीर्तन
बानगी	पावापुरी

श्री जैन श्वेताम्बर पंचायती मन्दिर, कलकत्ता का सार्द्ध शताब्दी स्मृति ग्रन्थ,
नाहटावंश प्रशस्ति (संस्कृत)

अप्रकाशित साहित्य निम्नलिखित है :—

चन्द्रदूत	कीर्तिकला (अनुवाद)
द्रव्य परीक्षा (अनुवाद)	नगरकोट प्रशस्ति (अनुवाद)
अलंकार दप्पण (अनुवाद)	सागरसेठ चौपई ।

इनके अतिरिक्त इनकी शताधिक कहानिया, सस्मरण तथा फुटकर आलोचनात्मक लेख अनेकों पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हो चुके है। आजकल आप 'कुशल निर्देश' मासिक पत्रिका का संपादन कर रहे है।

73. महोपाध्याय विनयसागर

फलौदी (जोधपुर) निवासी श्री सुखलाल जी श्रावक के घर सन् 1929 में इनका जन्म हुआ। बाल्यावस्था में ही इन्होने खरतरगच्छीय श्री जिनमणिसागरसूरि जी के पास दीक्षा ग्रहण की। वैचारिक क्रांति के कारण सन् 1956 में साधुवेष का त्याग कर गृहस्थ बने। शिक्षा के क्षेत्र मे इन्होंने साहित्य महोपाध्याय, साहित्याचार्य, जैन दर्शन-शास्त्री, साहित्यरत्न (सस्कृत) और शास्त्र विशारद आदि उपाधिया प्राप्त की हैं। ये प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी और गुजराती भाषा के विद्वान्, प्राचीन लिपि पढने मे निपुण, जन साहित्य के अच्छे निष्णात और पत्रकार है। इनके गवेषणा पूर्ण अनेको लेख पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इनके द्वारा सम्पादित व लिखित निम्न पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है—

सनत्कुमारचक्रि चरित्र महाकाव्य	वृत्तमौक्तिक,
सघपति रूपजी वश प्रशस्ति	अर्रजिनस्तव,
नेमिदूत	प्रतिष्ठा लेख सग्रह प्रथम भाग,
खरतरगच्छ का इतिहास	महोपाध्याय समयसुन्दर,
हैमनाममालाशिलोंछ सटीक	चतुर्विंशति, जिनस्तुतय-
चतुर्विंशति जिन स्तवनानि	भावारिवारण पादपूर्त्यादि स्तोत्र संग्रह
महावीर षट् कल्याणक पूजा	खड प्रशस्ति टीका द्वय सहित,
शासन प्रभावक आचार्य जिनप्रभ और उनका साहित्य	खरतरगच्छ साहित्य सूची
वल्लभ भारती	सौभाग्य पंचम्यादि संस्कृत पर्वकथा संग्रह

74. महताब चन्द खारेड

इनका जन्म वि. सं. 1960 मे जयपुर में हुआ। इनके पिता का नाम जौहरी सुजानमल जी खारेड श्रीमाल था। ये सस्कृत, हिन्दी और डिंगली (राजस्थानी)

भाषा के अच्छे जानकार हैं। इनका 'जयपुर राज्य के हिन्दी कवि और लेखक,' नामक वृहत निबन्ध 'हिंदी साहित्यकार परिचय' में प्रकाशित हुआ था। स्वर्गीय कविया बारहठ श्री मुरारिदान जी के साथ इन्होंने 'बांकीदास ग्रन्थावली भाग 2-3, रघुनाथ रूपक गीतां रो' और श्री उमरावचन्द जी जरगड के साथ 'आनन्दघन ग्रन्थावली' का सम्पादन किया है। स्वतन्त्र रूप से इन्होंने 'लावा रासा' का सम्पादन किया है। इस ग्रन्थ पर इन्हें नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा 'रत्नाकर पुरस्कार, एव 'बलदेवदास पदक' प्रदान किया गया। इन्होंने स्फुट पद्य भी प्रचुर परिमाण मे बनाये है। आजकल आप श्रीमाल सघ, जयपुर से सम्बन्धित इतिवृत्त के संग्रह मे लगे हुए है।

इनके अतिरिक्त वर्तमान समय में अनेको विद्वान् व लेखक हुए है तथा विद्यमान है जिन्होंने बहुत कुछ लिखा है किन्तु उनका साहित्य सन्मुख न होने के कारण लिखने में असमर्थता है फिर भी कतिपय विद्वानो के नामोल्लेख किये जा रहे हैं।

साधु वर्ग मे विजय ललितसूरि, विजय सुशीलसूरि, विजय दक्षसूरि, विजय कलापूर्ण सूरि, माणकमुनि (कल्पसूत्र), मुनि महेन्द्रसागर (महेन्द्र विलास), मुनि कान्तिसागर (कान्ति विनोद) आदि की कई पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है।

साध्वी वर्ग मे विचक्षणश्री अच्छी विदुषी साध्वी है। इनके गुणकीर्त्तनात्मक स्तवनादि प्राप्त ह। इसी प्रकार साध्वी सज्जनश्री ने कतिपय स्तवनादि तथा कल्पसूत्र आदि 3-4 ग्रन्थो के अनुवाद किये हैं।

इसी प्रकार उपासक वर्ग मे जवाहरलाल नाहटा (भरतपुर) के कई समाज सुधार सम्बन्धी लेख, शुभकरर्णासह बोथरा (जयपुर) के दार्शनिक लेख, जीतमल लूणिया (अजमेर), सिद्धराज ढड्ढा (जयपुर), पूर्णचन्द्र जन (जयपुर), भूरेलाल वया (उदयपुर), फूलचन्द बाफना (फालना) आदि के मानवता और गाधीवाद से प्रभावित लेख, केसरीचन्द भाण्डावत (अजमेर) के जीव-हिंसा विरोधी लेख, बलवन्तसिंह मेहता (उदयपुर) के खोजपूर्ण लेख, ताजमल बोथरा (बीकानेर), पानमल कोठारी (नागौर), पारसमल कटारिया (जयपुर), हीराचन्द वैद (जयपुर), गोपीचन्द धाडीवाल (अजमेर), हस्तिमल धाडीवाल (अजमेर), चादमल सीपाणी (अजमेर) के धर्मसम्बन्धी लेख एव पुस्तके, गजरूप टाक (जयपुर), के जवाहरात पर लेख, देवीलाल माभर (उदयपुर) और श्री कोमल कोठारी के राजस्थानी लोक कला और साहित्य सम्बन्धी लेख प्रकाशित हो चुके हैं। बुद्धसिंह बाफना (कोटा) ने अग्रेजी भाषा मे अनेको दार्शनिक कविताओं की रचना की है।

प्रसिद्ध इतिहासविद् डा दशरथ शर्मा ने अनेको जैन पुस्तको की भूमिकाये लिखी है तथा जैन साहित्य एव शिलालेखो पर कई शोधपूर्ण लेख लिखे हैं। जैन शिलालेख और मूर्तिलेखों पर श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल और श्री रामवल्लभ सोमानी ने भी अनेको खोजपूर्ण लेख लिखे है। स्वर्गीय प श्री जयदयालजी शर्मा (बीकानेर) ने 'मन्त्रराज गुण कल्प महोदधि' आदि पुस्तको का हिन्दी मे अनुवाद किया था।

उपसंहार

17 वी शताब्दी से 20 वी शताब्दी तक जिन श्वेताम्बर लेखको द्वारा हिन्दी साहित्य लिखा गया वह हिन्दी के बढते हुए विस्तार का सूचक है, क्योकि उस समय तक राजस्थान के कुछ हिस्से को छोड कर अधिकांश भाग मे बोलचाल की भाषा राजस्थानी ही थी। वैसे जैन कवियो ने प्राय. सभी भाषाओ और विषयों पर सर्व-जनोपयोगी साहित्य विपुल परिमाण मे लिखा है और जहा तक श्वेताम्बर हिन्दी साहित्य का प्रश्न है उसमें भी काफी विविधता पाई जाती है। कुछ हिन्दी रचनाओं में रचना-स्थान का उल्लेख न होने से वे राजस्थान में ही रची गई हैं ऐसा निर्णय नही हो सका, अत उन रचनाओ को इसमें सम्मिलित नही किया जा सका है।

कई जैन लेखकों की रचनाओं में खड़ी बोली की प्रधानता है तो कइयों में ब्रजभाषा की। कुछ रचनाओं की भाषा ऐसी भी है जिसे राजस्थानी प्रभावित हिन्दी या हिन्दी प्रभावित राजस्थानी कह सकते है। बहुत से जैन लेखको ने प्राकृत, सस्कृत और राजस्थानी मे रचना करने के साथ-साथ थोड़ी बहुत रचनाए हिन्दी में भी की हैं। भक्ति और अध्यात्म के पद अधिकांशत: हिन्दी में रचे गये, क्योकि ध्रुपद शैली का काफी प्रभाव व प्रचार बढ़ चुका था। इसी तरह नगर वर्णनात्मक गजले प्राय: सभी एक ही शैली मे खडी बोली में रची गई है। बावनी, बारहमासा आदि भी एक ही कवि ने राजस्थानी मे बनाये हैं तो साथ-साथ हिन्दी मे भी बनाये है।

जैन साहित्य रचना का प्रधान लक्ष्य जनता के नैतिक स्तर को ऊचा उठाने का रहा है इसलिये काव्यात्मकता को प्रधानता न देकर सहज और सरल शैली में अधिक लिखा गया है।

जैन साहित्य के निर्माताओ मे सब से बड़ा योग जैनाचार्यों और मुनियों का रहा है। वे अपने मुनिधर्म के नियमानुसार एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश मे विचरते रहते हैं। इसलिए बहुत से आचार्य और मुनि राजस्थान प्रदेश मे जन्मे अवश्य किन्तु गुजरात मे अधिक विचरे।

इस प्रदेश की जनभाषा राजस्थानी रही। पहिले राजस्थानी और गुजराती दोनो एक ही भाषाये थी। जब हिन्दी भाषा का प्रचार राजस्थान मे अधिक होने लगा तब मे प्राकृत, सस्कृत और गुजराती ग्रन्थो का अनुवाद हिन्दी मे होना प्रारम्भ हुआ किन्तु जितना श्वेताम्बर साहित्य गुजराती में लिखा गया, उतना हिन्दी मे नही लिखा गया। कुछ हिन्दी रचनाये अन्य प्रान्तो मे विचरते हुए रची गई हैं और उधर से ही प्रकाशित हुई है, इसलिये ऐसी बहुत सी हिन्दी रचनाये इस निबन्ध मे सम्मिलित नही की जा सकी।

हिन्दी जैन कवि--3

—डा. इन्दरराज बैद

काव्य की रमणीयता का आधार पाकर अध्यात्म सहज ग्राह्य हो जाता है। चिंतन और प्रवचन साहित्य की ललित शैलियो में प्रवाहित होकर अपनी प्रेषणीयता को कई गुना बढ़ा देते हैं। यही कारण है कि भारतवर्ष के मनीषी संत-महात्माओं ने जन-जन तक अपना संदेश पहुंचाने के लिए काव्य का सहारा लिया। भक्ति काल का साहित्य अपने अमूल्य संदेश और अप्रतिम प्रभाव के कारण ही आज तक स्वर्णिम साहित्य कहलाता है। संत और भक्त कवियों ने कविता के माध्यम से आत्मा-परमात्मा की और लोक-परलोक की गभीर से गंभीर गुत्थियो को सुलझाने मे ही अद्भुत सफलता प्राप्त नही की, सुललित सूक्तियो और मनोरम शब्द-चित्रों से नैतिकता और मानवीयता की महत् प्रतिष्ठा भी की हैं। यही नही, अपने काव्य के सुरम्य प्रसूनो को वाग्देवी के चरणो मे समर्पित करके अपने सृजन-धर्म की मर्यादा का पालन भी किया है।

साहित्य की आराधना आदिकाल से ही जैन सतों और विचारको के साधक जीवन का अटूट अग रही है। जैन अनुशासन की स्थानकवासी परपरा ने भी अन्य परंपराओ की तरह सदेश-प्रेषण के लिए काव्य की शैली का समुचित उपयोग किया है। मूर्ति-पूजा और धार्मिक क्रिया-काडों के विरोध मे उत्पन्न हुई स्थानकवासी परपरा ने अनेक कवि-रत्नो को जन्म दिया है। स्थानकवासी मान्यता के सत कवि और श्रावक-साहित्यकार भक्तिकाल की उस सत-परपरा के अधिक निकट पडते हैं जिसने साकार ब्रह्म की अपेक्षा निराकार ब्रह्म का, भक्ति की अपेक्षा ज्ञान का और प्रतिमा-पूजार्चना की अपेक्षा मानवीय नैतिकता की प्रतिष्ठा का अधिक समर्थन और प्रतिपादन किया है। स्थानकवासी सम्प्रदाय के मूल प्रेरक थे श्री लोकाशाह, जिन्होने 1451 ई. मे मूर्ति पूजा और अन्य बाह्य आडबरो के विरोध मे आवाज उठाई थी। राजस्थान मे इस परपरा को सुदृढ किया श्री जीवराज जी, हरजी, धन्नाजी, पृथ्वीचन्द जी, और मनोहरजी जैसे धर्मनिष्ठ आचार्यों ने। आज भी इन आचार्यों की अनुयायी शिष्य-परपरा उन्ही के पद-चिह्नों पर चलती हुई स्वर और लेखनी से मानवता के उद्धार का महामन्त्र फूंकती जा रही है। जैन शासन की इस अद्भुत क्रान्तिकारी मानवतावादी परम्परा ने विपुल मात्रा में साहित्य का निर्माण करके अध्यात्म की सारस्वत सेवा की है।

राजस्थान के आधुनिक स्थानकवासी जैन कवियो की पक्ति मे गौरवपूर्ण स्थान है जैन दिवाकर मुनि श्री चौथमलजी का, जिन्होने जैन धर्म के सिद्धातो का प्रचार अपने ओजस्वी व्याख्यानों द्वारा तो किया ही, सुरम्य काव्य-रचना द्वारा भी उसे सभव कर दिखाया। अपने समय के इन तेजस्वी सन्त ने अपने समस्त ओज और माधुर्य के साथ धर्म की साधु व्याख्या की। धर्म, ईश्वर, कर्म, मन, आत्मा, ज्ञान, प्रार्थना, सद्गुरु, सत्सग, पुनर्जन्म, भक्ति, दान, शील, तप, भाव आदि तत्त्वों का सुन्दर और तात्त्विक विश्लेषण उनके 'मुक्ति-पथ' नामक काव्य-रचना मे मिलता है। 'धर्म' और 'तीर्थ' के सम्बन्ध में ये काव्योक्तिया कितनी सही हैं:—

"(अ) खा-पीकर के हम पड़े रहें, यह जीवन का है सार नही,
बस जीवदया के तुल्य जगत में, अन्य धर्म व्यापार नही।

(आ) है माता पिता तीर्थ उत्तम, और तीर्थ ज्येष्ठ जो भ्राता है,
सद्गुरु तीर्थ है पदे-पदे, बस यही तीर्थ सुखदाता है।"

—(मुक्ति पथ, पृ. 8-9)

धर्म की यह वास्तविक परिभाषा कवि गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी की थी। उन्होंने भी कहा था-"परहित सरिस धर्म नहिं भाई, पर पीडा सम नहिं अधमाई।" 'गजल गुल चमन बहार' और 'जैन सुबोध गुटका' जैसे रमणीय मुक्तक ग्रथों से लेकर तीर्थंकर चरितो तक का प्रणयन दिवाकर मुनि की मर्मस्पर्शी लेखनी ने किया है। क्षेत्रीय भाषा राजस्थानी का स्पष्ट प्रभाव इनकी रचनाओं की भाषा और शैली पर दिखाई पडता है। 'गजल गुल चमन बहार' मे छोटी-छोटी गजलों के द्वारा उन्होंने जैन युवा समाज का उद्बोधन किया और शास्त्रो के सदेश को सरल और मधुर भाषा में उन तक पहुँचाया। विभिन्न सामाजिक कुरीतियो और पतन की भूमिका तैयार करने वाली व्यक्तिगत कुप्रवृत्तियो पर भी उन्होंने भीषण प्रहार किया। अपने आह्वान पूर्ण शब्दों में उन्होने समाज को कहा—

"संतान का जो चाहो भला रंडी नचाना छोड दो,
वृद्ध-बाल विवाह बन्द करो, करके कुछ दिखलाइयो।
फिजूलखर्ची दो मिटा, मुह फूट का काला करो,
धर्म जाति की उन्नति करके कुछ दिखलाइयो।"

—(गजल गुल चमन बहार- पृ 14)

आचार्य श्री हस्तीमल जी म जैन संस्कृति, साहित्य और इतिहास के प्रकाड पडित, अनुसधायक और विश्लेषक के साथ-साथ मधुर कवि भी है, जिनकी कविता मे आत्म जागृति का सदेश है, मार्मिक-स्वाध्याय की प्रेरणा है और जीवन-सुधार का निर्देश है। राजस्थानी मिश्रित हिन्दी मे की गई उनकी काव्य सर्जना उद्बोधन के अनेक जीवन प्रकरणो से समृद्ध है।

"जग प्रसिद्ध भामाशाह हो गये लोक चन्द इस वार,
देश धर्म अरु आत्म धर्म के हुए कई आधार।
तुम भी हो उनके ही वशज कैसे भूले भान ?
कहा गया वह शौर्य तुम्हारा, रक्खो अपनी शान।

—(गजेंद्र पद मुक्तावली, पृ 4)

गभीर एव उच्च कोटि के धर्म ग्रथो के प्रणेता आचार्य हस्तीमलजी ने जैन समाज मे स्वाध्याय का विलक्षण मंत्र फूका है जो घर-घर में घट-घट के लौकिक अधकार को ध्वस्त करके अध्यात्म का अलौकिक आलोक बिखेर रहा है। 'स्वाध्याय सद्गुरु की वाणी है, स्वाध्याय ही आत्म कहानी है, स्वाध्याय मे दूर प्रमाद करो स्वाध्याय करो, स्वाध्याय करो' जैसे सीधी सरल और प्रभावी वाणी से ओत प्रोत गीत आज उनके सहस्रो अनुयायियो के अधरो पर ही नही थिरक रहे है, बल्कि स्वाध्याय की कर्म प्रेरणा देकर उनके उद्धार का मार्ग भी प्रशस्त कर रहे है। आपने "जैन आचार्य चरितावली" मे ढाई हजार वर्ष की जैन आचार्य परम्परा के संक्षिप्त इतिहास को राग-रागिनियो मे बाँधकर, उसे सरल बनाकर प्रस्तुत किया है।

स्थानकवासी समाज मे 'कविजी' के नाम से विख्यात उपाध्याय श्री अमर मुनि का राजस्थान से काफी पुराना और निकट का सबध रहा है। यहा के संत और श्रावक समाज को आप सदैव प्रिय रहे है। अपनी वाणी के जादू और लेखन की चातुरी से कवि-कुल में श्री अमर मुनि ने अमिट यश अर्जित किया है। वे एक सहृदय सरस गीतकार, भावुक मुक्तककार और सिद्ध-हस्त प्रबन्धकार के रूप में हमारे सामने आते है। उनकी प्रमुख काव्य-कृतिया है—अमर पद्य मुक्तावली, अमर पुष्पाजलि, 'अमर कुसुमाजलि, अमर गीतांजलि, सगीतिका, कविता-कुज, अमर-माधुरी, श्रद्धांजलि, धर्मवीर सुदर्शन और सत्य हरिश्चन्द्र। अंतिम दो प्रबन्धात्मक रचनाए है।

कविजी ने अपने काव्य की अभिधा में ओज, माधुर्य और प्रसाद का अद्भुत मिश्रण घोलकर उसे इतना सरस और रमणीय बना दिया है कि आज वह हजारों श्रोताओं और पाठकों के मानस में घुल चुका है। इनकी कविता मुक्ति-पथ की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा तो देती ही है, जीवन जगत के वैविध्यपूर्ण वातावरण को उसकी सपूर्णता के साथ चित्रित कर मनुष्य को उसमें जीने की कला भी सिखाती है। कविजी मूलत. मानववादी चेतना के कवि हैं। आत्म विश्वास, आत्माभिमान, पुरुषार्थ और मानवीय गरिमा का स्वर उनकी कविताओं में अनेक स्थलो पर मुखरित हुआ है। यथा--

आत्म लक्ष्य से मुझे डिगाते हो अरबों आघात,
बज्र-प्रकृति का बना हुआ हू क्या डिगने की बात ?
स्वप्न में भी न बनूगा हीन।
—(सगीतिका , पृ. 168)

अपनी प्रबन्धात्मक कृतियों मे वे एक कुशल कथाकार और नाटककार के रूप में भी सामने आते है। उनके वर्णन की शैली इतनी विलक्षण है कि पाठक को यह पता नही चलता कि वह काव्य पढ रहा है या देख रहा है। यही कारण है कि आज उनका 'सत्य-हरिश्चन्द्र' काव्य व्याख्यानो का गौरवमय विषय बना हुआ है। यों यह काव्य सत्य की महिमा-प्रतिपादन हेतु राजा हरिश्चन्द्र के चरित्र पर लिखा गया है, पर कवि ने इसमें तारा के चरित्र को उजागर करने मे जो प्रयास किया है वह अद्भुत और स्तुत्य है। राज्य-त्याग के बाद अपने पति हरिश्चन्द्र के साथ चलने का आग्रह करती हुई तारा का भव्य चरित्र श्रद्धापूर्वक द्रष्टव्य है —

कष्ट आपके सग जो होगा, कष्ट नही वह सुख होगा,
ओर आपके पृथक् रहे पर सुख भी मुझ को दुख होगा।
बिना आपके स्वर्ग लोक को नरक लोक ही जानूगी,
किंतु आपके साथ नरक को स्वर्ग बराबर मानूगी।
सौ बातो की एक बात, चरणो के साथ चलूंगी मै,
आप नही टलते निज प्रण से कैसे नाथ टलूगी मै ?
—(सत्य हरिश्चन्द्र, पृ. 89)

भारतीय सहधर्मिणी अर्धांगिनी नारी का कितना तेजस्वी और पावन रूप उभरकर आया है इन सीधी सरल पक्तियो मे। ऐसे भव्य, प्रेरक और पूज्य स्वरूपो को उभारने में सिद्धहस्त हैं कवि अमर मुनि।

पूज्य धन्नाजी की परम्परा को गौरवान्वित करने वाले संत मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी ने काव्य को मानो अपना अन्तरंग मित्र ही बना लिया है। वे जितने प्रखर सत हैं उतने ही प्रखर कवि भी हैं। जैन दर्शन के सिद्धातो की सरल से सरल शब्दावली में उदाहरणपरक व्याख्या इनके काव्य की विशेषता है। जीवन की क्षणभंगुरता को कितने सहज ढग से विश्लेषित करते है मरुधर केसरी ! यथा —

तन धन परिजन मस्त जवानी
बिजुरी के झबकार समानी
मिट जासी मझधार, करै क्यों तौफानी ?
ओस बिंदु सम काया माया
मान मान रे बादल छाया
ज्यों पप्पल का पान, नमक जैसे पानी।
—(मधुर स्तवन बत्तीसी, पृ. 4)

मरुधर केसरी ने विविध छंदों मे अनेक काव्य रचनाएं की हैं। उनकी प्रमुख कृतियां हैं—बुध विलास, यशवन्त चरित्र, साध्वी रत्नकुंवर, कविता-कुंज, मधुर स्तवन-बत्तीसी, मनोहर मंगल प्रार्थना, भक्ति के पुष्प, मनोहर फूल, मधुर शिक्षा, संकल्प विजय, मधुर दृष्टान्त मंजूषा आदि। 'संकल्प विजय' मे उनके पाच स्फुट काव्य संगृहीत हैं, जिनमे चेलना, समरसिंह, मंदशाह, स्थूलिभद्र और शीलसिंह के चरित्रों को उजागर किया गया है। काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से 'स्थूलिभद्र' काफी सशक्त और रमणीय रचना है जिसमे स्थान-स्थान पर उनका कला-प्रिय, कवि-रूप उभर कर आया है। अनुप्रास मरुधर-केसरी का प्रिय अलंकार है। इसकी एक छटा देखिए—

भव जल तरणी करणी वरणी शांत सुधा रस झरनी है।
वैतरणी हरणी अग जरनी गुरु भक्ति चित्त भरनी है।।

—(वही, पृ. 8)

मरुधर केसरी जी ने अनेक छंदों का प्रयोग किया है—जैसे दोहा, चौपाई, छप्पय, कुडलिया आदि। मुख्य रूप से इनकी भाषा राजस्थानी है। बिहारी के दोहों की भांति इनके दोहे भी गभीर भावों से भरे हैं। दृष्टान्त' उनके 'वचन महिमा' मे सबधित दोहे देखे जा सकते है। एक दोहे मे वे वचन की तुलना सधवा के सिन्दूर से करते हैं। जिस प्रकार सिंदूर सधवा के ललाट की अक्षर शाभा है, उसी प्रकार वचन दृढ़-प्रतिज्ञ लोगों की अक्षर शोभा है। सधवा सिंदूर नही त्यागती, उसी प्रकार वचन का परित्याग भी सत्पुरुष नही करते। यथा—

गुनिजन, मुनिजन, वीरजन, वचन विसारे नाय।
जिमि सधवा सिंदूर की, टीकी भाल सुहाय॥

—(मधुर शिक्षा, पृ 16)

श्री गणेश मुनि शास्त्री स्थानकवासी कवि-समाज के एक सम्माननीय हस्ताक्षर है जिन्होंने प्राचीन और अधुनातन काव्य-शैलियों का सफल प्रयोग करके अपने कौशल का सुन्दर परिचय दिया है। जैन-जगत् मे वे एक गूढ चिन्तक, मधुर व्याख्यानी और सहृदय कवि के रूप मे विख्यात है। वे सन्त पहले है, कवि बाद मे। उनका सत-रूप जितना दिव्य है, कवि रूप भी उतना ही भव्य है। उनकी अपनी मान्यता है कि सत हुए बिना कोई कवि नहीं हो सकता। सत हृदय अर्थात् सदाशयता, शालीनता, सच्चरित्रता और मानवता से युक्त हृदय। सत्साहित्य का सृजन सत-कवि ही कर सकते हैं। अभद्र साहित्य का निर्माण करने वाले सत हो ही नही सकते। (दे. डा रामप्रसाद द्विवेदी कृत श्री गणेश मुनि शास्त्री साधक और सर्जक, पृ 111)

इनकी प्रमुख काव्य रचनाए हे—गणेश गीताजलि, सगीत-रश्मि, गीत-झकार, गीतो का मधुवन, महक उठा कवि-सम्मेलन, वाणी-वीणा, सुबह के भूले और विश्व ज्योति महावीर (प्रबध)। सीधी और सरल भाषा का उन्होंने सदैव प्रयोग किया है, क्योकि उनकी मान्यता है कि इससे जन-मानस भाषा के जटिल शब्द-जाल मे न उलझ कर कविता की आत्मा से सीधा सबंध स्थापित कर सकेगा। जीवन और जगत् की निस्सारता के बारे मे उनके ये सूक्त्यात्मक विचार कितने जीवन्त है—

(अ) "भाग्यवान इतरा मत इतना, नही समय रहता इक सा।
देख सूर्य के तेजस्वी की होती दिन मे तीन दशा॥"

—(वाणी-वीणा, पृ. 43)

(आ) "पल-पल में यहां मधुर मिलन, पल-पल मे यहां बिछुड़ना है।
जग आंख मिचौनी की क्रीड़ा, खिलना और सिकुड़ना है।"
—(वही, पृ. 46)

ससार को असार मानने वाले जैन कवियो की रचनाओ में स्वाभाविक रूप से ऐसे स्थल कम मिलेगे, जिसमे कल्पना और रमणीयता अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती हो। धर्म की मर्यादा में बधा जैन कवि मुक्तक रचनाओ मे हरी भरी प्रकृति की रमणीयता का वर्णन यदा-कदा ही कर पाता है। श्री गणेश मुनि इसके अपवाद है। कवि की लेखनी ने प्रकृति के मनोहारी बिंब उभारे हैं। एक छटा द्रष्टव्य है:—

"चाद सितारे नभ प्रागण में पुलक पुलक रस नाच रहे,
फलित पादपो की डाली पर लचक लचक खग नाच रहे।
सागर के वक्षस्थल पर यह मादक लहरों का अभिनर्तन,
किस अप्रत्याशित अतिथि के आने का है मौन निमंत्रण।"
—(वही, पृ. 165)

गणेश मुनि ने नयी शैली मे भी रचनाएं की हैं। नयी कथात्मक शैली में लिखी गई इनकी रचनाए 'सुबह के भूले' नामक सग्रह मे सकलित है। इन कविताओ मे उन्होंने अरणक, रथनेमि, आषाढ़भूति, बाहुबलि, गोतम, कपिल, त्याग-भद्र, अर्जुनमाली, चन्दनबाला, आदि के उदात्तजीवन-प्रसगो को प्रभावकारी ढग से उजागर किया है। सम्राट दशार्णभद्र को श्रमण के वेश मे देख कर दर्पोद्धत देवराज इन्द्र भी पानी-पानी हो गए और कहने लगे—

"ससार के वैभव को
दे सकता है चुनौती इद्र
पर त्याग के ऐश्वर्य से टकराने का
नहीं है सामर्थ्य उसमे,
आध्यात्मिक बल समक्ष
टिक नही सकती
देव शक्ति एक पल भी,......" —(सुबह के भूले, पृ. 62–63)

राजस्थान की स्थानकवासी जैन परम्परा के पोषक आधुनिक हिन्दी कवियो में मुनि श्री महेन्द्रकुमार 'कमल' का नाम बडे आदर और गौरव के साथ लिया, जाता है। 'बिधि के खल, भगवान् महावीर के प्रेरक सस्मरण, मन की वीणा, मन के मोती, प्यासे स्वर, आदर्श महासती राजुल, फूल और अगारे, प्रकाश के पथ पर' आदि अनेक काव्य-कृतियो के माध्यम से आध्यात्मिकता, नैतिकता और मानवीयता की त्रिवेणी प्रवाहित करने वाले इस ओजस्वी सत कवि ने हिन्दी का अलख जगाने का साधु प्रयास भी किया है। इनकी कविताओ मे जहां एक ओर अध्यात्म-सुरभि से परिपूर्ण सुमनावलियों के दर्शन होते हैं वहा उद्बोधन के ओज से ओतप्रोत शब्दो के अगारे भी दमकते हुए दिखाई पड़ते है। यह है चुनौतीपूर्ण शब्दो मे उनका आह्वान —

जड सिद्धांतो की लाशो का कब तक भार उठाओगे,
परित्याग ही श्रेष्ठ अन्यथा मिट्टी में मिल जाओगे।
ओ अतीत में रमने वालो, वर्तमान भी पहचानो,
सोचो, समझो, आखें खोलो, केवल अपनी मत तानो।

उठो साथियों, गलत रूढ़िया कब तक कहो, करोगे सहन,
एक नया परिवर्तन ला दो या फिर लो चूड़ियां पहन।"
—(मन के मोती, पृ. 96)

सामाजिक कुरीतियों और शोषण के आधारभूत कारणों पर इस संत-कवि की लेखनी ने कठोर प्रहार किए हैं। दहेज, बाल-विवाह, छुआछूत, जाति-भेद, शोषण, काला-व्यवसाय, परिग्रह जैसी रूढ़ियों और प्रवृत्तियों पर कवि ने सैकड़ों रचनाएं की हैं। इन रचनाओं ने समाज की विचारधारा को ही प्रभावित नही किया, उसे बहुत कुछ मोड़ा भी है। 'जीवन मे यदि आचार न हो तो विचार किस काम का ? कर्म की प्रवृत्ति न हो तो ज्ञान के संग्रह का क्या लाभ ?' (मन के मोती, पृ. 93) कर्त्तव्यो के प्रति जागरूक रहने का भाव तो उनकी रचनाओ में सर्वत्र ही देखा जा सकता है।

आधुनिक युग विज्ञान का युग है, भौतिक उन्नति और उपलब्धियो का युग है। इसे नकारा नहीं जा सकता। जैन साधु भी वर्तमान जीवन की इस वस्तुस्थिति की उपेक्षा नही करते, परन्तु वे ऐसे विज्ञान का कभी समादर या समर्थन नही कर सकते, जिसमें धर्म की प्रेरणा के लिए किंचित् भी अवकाश न हो। ऐसे विज्ञान से मनुष्यता के कल्याण की कामना नही की जा सकती। कवि ने कितने प्रभावी ढग से अपने इस दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया है —

"धर्म शून्य विज्ञान प्रेम के पुष्प न कभी खिला सकता,
विद्युत दे सकता किन्तु मैत्री के दीप न कभी जला सकता।"
—(मन के मोती, पृ. 66)

कर्मवाद जैन दर्शन का एक महत्वपूर्ण अध्याय है। मानव-जीवन की नियति कर्माधीन है। कर्म ही सुख के आधार हैं और कर्म ही दुख के कारण होते है। शुभ और अशुभ कर्म ही जीवन मे उजियाली और कालिमा लाते रहते हैं। मानव का उद्धार या जीवात्मा की मुक्ति तब तक संभव नही होती जब तक कि उसके सब कर्म, शुभ-अशुभ, क्षय नही हो जाते। जिस क्षण ऐसा होता है, व्यक्ति व्यक्तित्व बन जाता है व आत्मा परमात्मा मे बदल जाती है। परन्तु जब तक ऐसा नही होता, तब तक तो मनुष्यो को अपने कर्मानुसार सुख-दुख के साथ आखमिचौनी करनी ही होती है। मानव जीवन के इस सत्य को व्यक्त करते है मुनि महेन्द्र 'कमल' इन शब्दो मे —

"पूर्व जन्म के शुभ कर्मों से कोई मार नही सकता,
अशुभ कर्म हो यदि प्राणी के, कोई तार नहीं सकता।
भोग बिना कर्म फल, सुनिए होता नही भव-भ्रमण विनाश,
यहा कर्म ही सुख पहुचाते और कर्म देते सत्रास।"
—(भगवान महावीर के प्रेरक सस्मरण, पृ. 14)

समाजोद्धारक जै. रत्न दिवाकर मुनि श्री चौथमलजी की शिष्य-परम्परा मे अनेक कवि-रत्न है। उनमे उल्लेखनीय हैं श्री केवल मुनि। अपने गुरु की भाति ही इन्होने भी समाज के हर अग के सपूर्ण विकास के लिए उद्बोधन दिया है, साहित्य-सृजन किया है। इनके कवि-रूप मे इनका गायक-रूप पूरी तरह घुला हुआ है। इनकी माधुर्य-युक्त वाणी समाज के लोगो पर जादू सा असर डालती रही है। इनकी रचनाए गेय होने के कारण अधिक लोकप्रिय और ग्राह्य सिद्ध हुई है। इनकी मुख्य रचनाए है—मेरे गीत, कुछ गीत, मधुरगीत, सुन्दरगीत, सरस गीत, गीत लहरिया, गीत सौरभ, महकते फूल, मेरी बगिया के फूल, वीरागद सुमित्र-चरित्र, गीत-गुजार आदि। इनकी कविताओ की भाषा सीधी सरल हिन्दी है। जैन धर्म के सिद्धान्तों के प्रचार के साथ-साथ इनकी रचनाओं में समाजोद्धार और राष्ट्रोत्थान का स्वर भी मुखरित हुआ है। राष्ट्र की महत्ता स्वीकारते हुए वे कहते है—

"कुटुम्ब व्यक्ति से ऊंचा है और जाति कुटुम्ब से बढ़ कर।
प्रान्त जाति से ऊपर लेकिन राष्ट्र पर सब न्योछावर।"
—(गीत-गुजार, पृ. 212)

केवल मुनि की सीधात्मक पंक्तियों में पर्याप्त भाव निहित रहता है। अपनी बात को समझाने का उनका अपना विशिष्ट ढंग है। वे ऐसे दृष्टान्त या उपमान चुनते हैं जिनका प्रभाव सीधा और गहरा पड़ता है। प्रस्तुत उद्धरणों मे से एक में उन्होंने चिन्ता को ऐसा बोझा माना है, जिसे ढोने पर कोई मजदूरी मिलने की सभावना नही है और दूसरे मे वे काले धन को ऐसी कागज की नाव मानते है, जिसके गलने में कोई आशंका नहीं की जा सकती। कितने स्पष्ट पर गहन अर्थ से पूर्ण हैं ये काव्यांश :—

(अ) सिर पै लगालो आनन्द की रोली, फेंक दो साथी चिन्ता की झोली,
जिसकी मजदूरी भी मिले नही, ऐसे भार को ढोना क्या ?
—(कुछ गीत, पृ 15)

(आ) पापो की पूजी प्यारे, पचती नहीं कभी भी,
कागज की नाव पल मे डूबेगी, जब गलेगा।''
—(गीत-गुजार, पृ. 56)

स्थानकवासी जैन परम्परा के कवियो की पंक्ति मे कुछ और भी उल्लेखनीय हस्ताक्षर हैं, जैसे रमेश मुनि, सुभाष मुनि, अशोक मुनि और मूल मुनि। मेवाड़ भूषण श्री प्रतापमलजी के शिष्य रत्न श्री रमेश मुनि एक उदीयमान कवि है। "बिखरे मोती, निखरे हीरे" उनकी महत्वपूर्ण काव्य कृति है, जिसमें उनकी काव्य सृजन प्रतिभा के सकेत मिलते हैं। उन्होने अपने ढग से अत्यन्त सरल भाषा मे वैराग्य शतक, सतयुग शतक, और कलयुग शतक की रचना की है। सौ-सौ छदो मे उन्होंने सतयुग और कलयुग की प्रवृत्तियों का सुन्दर चित्र समुपस्थित किया है। इसी प्रकार वीर-गुण इक्कीसी, पर्व इक्कीसी और प्रार्थना पच्चीसी उनके आध्यात्मिक भावो से ओत-प्रोत सुन्दर रचनाएं हैं। जैन दिवाकर मुनि श्री चौथमलजी की शिष्य परम्परा मे श्री सुभाष मुनि और श्री अशोक मुनि ने भी अनेक रचनाएं लिखी हैं। इन कवि-द्वय ने सगीत का अधिक सहारा लिया है। इनके गीतो मे जहा आध्यात्मिक प्रकाश की झलक है, वही सामाजिक उद्धार के स्वर भी विद्यमान हैं। नवकार चालीसा, जिन-स्तुति और सगीत सचय के रचयिता श्री अशोक मुनि की ये मानवतावादी पक्तिया द्रष्टव्य हैं :—

"सूरज सब के घर जाता, पानी सब की प्यास बुझाता,
पवन जगत के प्राण बचाता, धरती तो है सबकी माता,
इसपै कोई अधिकार जताए कैसा है अज्ञान !
मानव मानव एक समान।
(—सगीत सचय, पृ. 15)

श्री मूल मुनि ने "समरादित्य चरित्र, कुवलयमाला-चरित्र, अजापुत्र चरित्र, अम्बड चरित्र' आदि प्राचीन कथाओ को लेकर लघु चरित काव्य लिखे हैं। "अपना खेल : अपनी मुक्ति" गौतम पृच्छा के ढंग पर लिखी गई कृति है जिसमें अच्छे-बुरे कर्म के पुण्यफल-पापफल की प्रश्नोत्तर शैली मे विवेचना की गई है।

श्रमणो की भांति काव्य के क्षेत्र मे जैन श्रावक कवियो का भी अमूल्य योगदान रहा है। वर्तमान काल मे सैकड़ो ऐसे काव्यधर्मी साहित्यिक हैं जिन्होने अपनी शब्द साधना से धर्म और समाज की महनीय सेवा की है। ऐसे श्रमणेतर श्रावक कवियों में श्री नैनमल जैन का नाम आदर के साथ लिया जा सकता है। जालोर जिले मे साहित्य की दिव्य ज्योति को अपनी मूक गम्भीर साधना से प्रदीप्त रखने वाले नैनमल जैन ने करुणा सिंधु नेमिनाथ और

पुलिकता खजुल, पत्रवर्णा, पवनाजना, विधुवन और नैन-काव्य-संग्रह जैसी अभिराम काव्य कृतियों के माध्यम से स्वधर्म और स्वभाषा के प्रति जो श्रद्धा-सेवा अर्पित की है, वह स्तुत्य है। कवि ने द्विवेदीकालीन इतिवृत्तात्मकता को उसकी समस्त सरसता और रोचकता के साथ जीवित रक्खा है। इस सदर्भ मे उनका खण्ड-काव्य 'पवनाजना' विशेष रूप से उल्लेख्य है। सती अंजना के महिमामय चरित्र को उजागर करने वाली यह छोटी सी प्रबंधात्मक काव्य रचना हिन्दी साहित्य की एक सरस और प्रभावी कविता है। यद्यपि कवि ने यत्र-तत्र वर्णनो में पारम्परिक प्रतीको और शैली को अपनाया है, पर प्रस्तुति इतनी सुगठित और ललित है कि वह नवता का रमणीय आनन्द भी प्रदान करती चलती है। काव्य में अजना का सौदर्य-वर्णन हो अथवा विरह-वर्णन, दोनो ही स्थितियो मे कवि ने पारम्परिक शैली का निर्वाह किया है। प्रकृति के वे सारे उपादान जो सयोग मे सुख कर लगते हैं, विरह काल मे असीम दुःख के कारण बन जाते हैं। विरहिणी अजना की दशा भी वैसी ही है जैसी सूर, जायसी और बिहारी की नायिकाओं की रही है। यथा—

"कोकिल का स्वर कटु लगता था जला रहे थे पुष्प पलाश,
मुकुलित आम्र टीसता मन को, विष-सा दाहक था मधुमास।
ज्येष्ठ मास की लू सम उसको तपा रही थी शीत बयार,
कर्णपुटो को कटु लगती थी मधुर मधुकरो की गुजार।"

—(पवनाजना, पृ. 57)

'पवनांजना' कर्मवाद पर आधारित काव्य-रचना है। प्रथम रात्रि को पति की स्नेहानुकम्पा से वंचित रह जाना, बारह वर्षों तक वियोग की अग्नि मे जलते रहना, फिर प्रिय-समागम का सुख उपलब्ध होना, गर्भवती होने के पश्चात् सास-ससुर और माता-पिता के घर से लांछित होकर निकाला जाना, अन्त म प्रियतम का स्थायी रूप से मिल जाना—ये सब अंजना के लिए कर्म के ही खेल थे। यथा—

कर्म सूत्र से बधे हुए सब कठपुतली से करते खेल,
किसके लिए रुदन व्याकुलता किसके लिए शत्रुता मेल ?
रे मन निस्पृह होकर झेलो, जो कुछ है कर्मों का खेल,
है प्रतिरोध अशक्त, अत. मन कैसा मीन और क्या मेष।"

—(वही, पृ. 51)

डा. नरेन्द्र भानावत मानवतावादी विचारधारा के कवि हैं, जिनकी रचनाओ मे आशा, विश्वास, कर्म, पुरुषार्थ और मानवादर्श के तत्वों का जीवन्त समुच्य मिलता है। अनेक साहित्यिक और धार्मिक ग्रथो के लेखक-सपादक डा. भानावत की दो काव्य पुस्तके उल्लेखनीय है —"एक-आदमी, मोहर और कुर्सी" तथा दूसरी "माटी-कुकुम"। "आदमी, मोहर-और कुर्सी", मे उनकी नयी काव्य शैली मे लिखी गई यथार्थपरक रचनाए सगृहीत हैं और "माटी कुकुम" मे उनकी मानवतावादी रस-प्रधान रचनाए सकलित है। प्रस्तुत पक्तियों मे कवि न करुणा, प्रेम, श्रम, मानवीय गरिमा और धार्मिक रूढ़ियो की निरर्थकता को सुन्दर ढंग से रूपायित किया है.—

यदि नही पाव की धूलि भाल पर चढ़ा सके,
यदि नहीं किसी की पीड़ा को उर बसा सके,
श्मशानों मे जलने वाली चीत्कारों को,

यदि नहीं प्रेमकी जलधारा में बहा सके,
तो गंगा मे डुबकी लेने से क्या होगा ?
तुम श्रम की पावन बून्दो मे गोते खाओ।
क्या होगा पाषाणों के पूजन-अर्चन से,
मानव मूरत जब तक मन में नहीं बसाओ।

—(माटी कुंकुम, पृ. 17)

श्री शोभाचन्द्र भारिल्ल का भी कविता के क्षेत्र मे प्रशसनीय योगदान है। अपने "भावना" नामक काव्य संग्रह मे वे एक सशक्त और प्रभावशील कवि के रूप मे समक्ष आते हैं। आस्रव, सवर, निर्जरा, लोक आदि तत्वों का उन्होने सुन्दर ढग से काव्यात्मक विश्लेषण किया है। इनकी कविताओं मे कर्मचालित नियति की चर्चा अनेक स्थानो पर देखी जा सकती है। अपने एक छन्द मे उन्होने कर्म को मदारी और जीवो को बन्दरों का प्रतीक बना कर कर्मवाद की स्थापना को रूपकात्मक ढग से चित्रित किया है—

"कर्म और कषायों के वश होकर प्राणी नाना,
कायो को धारण करता है तजता है जग नाना,
है ससार यही, अनादि से जीव यही दुख पाते,
कर्म मदारी जीव वानरो को हा, नाच नचाते।"

—(भावना, पृ. 7)

उपर्युक्त कवियो के अतिरिक्त श्रमणवर्ग और गृहस्थवर्ग मे अनेक कवि है जो समय-समय पर अपनी काव्याराधना से मा भारती का भण्डार समृद्ध कर रहे है। श्रमण वर्ग के कवियो मे सर्वश्री सूर्य मुनि, मधुकर मुनि सौभाग्य मुनि 'कुमुद', उमेश मुनि 'अणु', सुमेर मुनि, मदन मुनि 'पथिक', भगवती मुनि 'निर्मल', मगन मुनि 'रसिक', रजत मुनि, मुकन मुनि, रमेश मुनि, अजित मुनि 'निर्मल', रग मुनि, अभय मुनि, विनोद मुनि, जिनेन्द्र मुनि, हीरा मुनि 'हिमकर', वीरेन्द्र मुनि, राजेन्द्र मुनि, शाति मुनि, पारस मुनि आदि तथा गृहस्थ वर्ग के कवियो मे सर्व श्री डा. इन्दरराज बैद'[1], सूरजचन्द सत्यप्रेमी (डागीजी), प उदय जैन, रत्नकुमार जैन 'रत्नेश,' दौलतरूपचन्द भण्डारी, जीतमल चौपड़ा, ताराचन्द मेहता, डा. महेन्द्र भानावत, चम्पालाल चौरड़िया, विपिन जारोली, हनुमानमल बोथरा, मदनमोहन जैन 'पवि', जितेन्द्र धीग आदि के नाम उल्लेखनीय है।

इस प्रकार हम देखते है कि राजस्थान की स्थानकवासी जैन परम्परा ने हिन्दी साहित्य के क्षितिज पर ऐसे अनेक नक्षत्रो को प्रस्तुत किया है जिन्होने अपनी शब्द-साधना के आलोक से धर्म और समाज के अभ्युदय का मार्ग प्रशस्त किया है। इन कवियों की काव्य-साधना के मुख्यत दो लक्ष्य रहे है—एक, अपनी विचारधारा का पोषण और दूसरा हिन्दी की सेवा। प्रस्तुत लेख मे विवेचित कवि इन दोनों ही लक्ष्यो की पूर्ति मे लगे हुए शताधिक कवियो का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये केवल स्थानकवासी चिन्तन को ही व्याख्यायित-प्रतिपादित नहीं करते, हिन्दी कविता की विविध शैलियो, प्रयोगो और आयामो का भी स्वरूप दर्शन कराते हैं।

---

1 इस लेख के लेखक डा. इन्दरराज बैद ओजस्वी कवि होने के साथ-साथ सुधी समीक्षक और प्रबुद्ध विचारक भी हैं। "राष्ट्र मगल" नाम से इनका एक कविता सग्रह प्रकाशित हुआ है। इसमे कवि की मानवतावादी राष्ट्रीय भावना की सपोषक, लोकमंगलवाही 41 कविताए संगृहीत हैं। आवेगमयी भाषा और उद्बोधनभरा जागृति स्वर इन कविताओं की मुख्य विशेषता है। —संपादक।

हिन्दी जैन काव्य–4

—डॉ. मूलचन्द सेठिया

आचार्य भीखणजी द्वारा प्रवर्तित तेरापथ की साहित्य साधना के अनेक आयाम है, जिनमें हिन्दी काव्य-रचना नवीनतम और अन्यतम है। प्रथमाचार्य भीखणजी और चतुर्थ आचार्य जीतमलजी राजस्थानी भाषा के महान् कवि थे, जिन्होने दर्शन और अध्यात्म के निगूढ तत्वो को काव्य के कलात्मक परिधान में जन-मन के सम्मुख उपस्थित किया था। उनके काव्य मे प्रबोधन के स्वर है, जो व्यक्ति को प्रमाद से मुक्त कर आध्यात्मिक जागरण के नव-प्रभात मे आखे खोलने के लिए प्रेरित करते हैं। सस्कृत काव्य-रचना का श्रीगणेश जयाचार्य के युग मे हो गया था, यद्यपि इस धारा का वेगमय प्रवाह अष्टमाचार्य कालू गणी के युग में दृष्टिगोचर होता है। परन्तु, हिन्दी काव्य-रचना का आरम्भ तो वर्तमान आचार्य तुलसी गणी की प्रेरणा से विक्रम की इक्कीसवी शताब्दी के साथ ही हुआ है। आचार्य श्री तुलसी की प्रेरणा और प्रोत्साहन से ही तेरापथ के साधु और साध्वी या समाज मे अनेकानेक लब्धप्रतिष्ठ कवियो का साहित्य सृजन उपलब्ध होता है। आचार्यप्रवर ने हिन्दी को कई महत्वपूर्ण काव्य ही नही दिए है, अनेक प्रतिभाशाली कवि भी प्रदान किए है।

आचार्य श्री तुलसी के काव्य-सृजन को दो वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है। प्रथम प्रबन्ध-काव्य (जिनमें 'भरतमुक्ति' और 'आषाढभूति' प्रधान है) और द्वितीय मुक्तक रचनाए जो अणुव्रत गीत' में सकलित है। 'भरत मुक्ति' आचार्य श्री तुलसी का प्रथम प्रबन्ध काव्य है। आपके ही शब्दो में 'प्रस्तुत काव्य-निमाण के मुख्यतया दो उद्देश्य थे-1 साधु-सघ मे हिन्दी काव्य की धारा को प्रवाहित करना, 2. ऋषभपुत्र भरत चक्रवर्ति को काव्य-शैली मे प्रस्तुत करना।' भरत और बाहुबली का युद्ध एक ऐसा कथावृत्त है, जो पूर्णतया इतिहाससिद्ध नही होते हुए भी अपने आप में भारतीय समाज-विकास के अनेक सूत्रो को समेटे हुए है। यह प्रबन्ध-काव्य तेरह सर्गों में विभक्त है और इसमें शान्त, वीर, रौद्र और बीभत्स आदि अनेक रसों का पुष्ट परिपाक हुआ है। इसमे जहा एक ओर राजप्रासादों में चलने वाले छल-छन्दों का चित्रण किया गया है, वहा दूसरी ओर वन्य जीवन की शान्त मधुरिमा भी शब्दो में साकार हो गई है। तेरहवें सर्ग मे भरत का चरित्र शरदाकाश की भाति नितान्त निर्मल होकर निखर उठा है, परन्तु पूर्ववर्ती सर्गों मे जीवन के अनेक आरोहो और अवरोहो का सविस्तार वर्णन किया गया है। इस काव्य मे जीवन की विविधता, विपुलता और विराट्ता का अद्भुत सगम हुआ है। युद्ध-वर्णन मे कवि की लेखनी ने कही-कही काव्योत्कर्ष के उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित किये हैं। क्रोधोद्धत बाहुबली का यह चित्र अपने आप में अपूर्व है—

> मदराद्रि विचलित हुआ अविचल धृति को छोड
> मानो अम्बुधि अवनि पर झपटा सीमा ताड़।
> महा भयकर रूप से प्रकुपित हुआ कृतान्त
> लगता ऐसा सन्निकट है अब तो कल्पान्त।

'आषाढभूति' एक चरितात्मक प्रबन्ध-काव्य है। आचार्य आषाढभूति, जिनकी वक्तृता के प्रभाव से उज्जयनी नगरी झूम उठी थी, परिस्थितियो की विडम्बनावश छह सुकुमार बालको का वध कर डालते हैं। अन्तत उनका प्रिय शिष्य विनोद देवयोनि से आकर अपने पथभ्रष्ट गुरु को

प्रबोधित करता है और उनकी विचलित आस्तिकता को पुनः प्रतिष्ठित करता है। 'आषाढभूति' के सम्पादकों ने इसे 'नास्तिकता पर आस्तिकता की विजय का अभिव्यंजक प्रबन्ध काव्य' कहा है, जो उचित ही है। तात्विक विषयों के प्रतिपादन में कवि ने कहीं-कहीं दार्शनिक की मुद्रा धारण कर ली है।

आचार्य श्री तुलसी के ये दोनों प्रबन्ध-काव्य सामान्य प्रबन्ध काव्यों से भिन्न कोटि के हैं। इनमें साहित्यिकता की अपेक्षा लोकतात्त्विकता का प्राधान्य है। इनकी रचना नाना रागोपेत गीतिकाओं के संकलन के रूप में की गई है। ये काव्य पाठ्य से अधिक गेय है और इनमें वैयक्तिकता की अपेक्षा सामूहिकता का स्वर अधिक प्रबल है।

'अणुव्रत गीत' में अनेक शैलियों और रागिनियों में लिखी हुई बहुविध गीतिकाएं संकलित है। केवल साहित्यिक दृष्टि से इनका मूल्यांकन करना असमीचीन होगा क्योंकि ये स्पष्टतः जन-जागरण एवं नैतिक प्रबोधन के प्रचारात्मक उद्देश्य से लिखी गई है। फिर भी, कतिपय गीतिकाओं में भावना और अभिव्यंजना का स्वाभाविक सौन्दर्य दृष्टिगत होता है। यथा :—

छोटी-सी भी बात डाल देती है बड़ी दरारें,
गलतफहमियों से खिंच जाती आंगन में दीवारें।
इसका हो समुचित समाधान तो मिट जाए व्यवधान रे।
बड़े प्रेम से मिल जुल सीखें मैत्री मंत्र महान् रे॥

आचार्य प्रवर ने अनेक गीतिकाओं में अपने आराध्य देवों के प्रति भावभरी श्रद्धांजलियां अर्पित की हैं। वस्तुतः आचार्य श्री तुलसी कवि होने के पूर्व एवं युगप्रधान धर्माचार्य, महान् अध्यात्म-साधक और नैतिक जागरण के अग्रदूत है। भरतमुक्ति की भूमिका में आपने लिखा भी है 'कविता की प्रसन्नता का प्रसाद पाने के लिए मैंने कभी प्रयत्न नहीं किया, उसका सहवर्तित्व ही मुझे हितकर लगा।'

'आर पार' में संकलित सेवाभावी मुनि श्री चम्पालालजी की अधिकांश रचनाएं राजस्थानी भाषा में हैं। परन्तु, इस संकलन में कतिपय हिन्दी रचनाएं भी हैं। चम्पक मुनि की रचनाओं में उनका सरल-निश्छल व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित हुआ है। अभिव्यक्ति की सरलता में भी एक स्वाभाविक सुन्दरता है—

उच्च शिखर से गल-गल कर, कल-कल कर निर्झर बहता
बुरा-भला यश-अपयश सुनता, विविध ठोकरें सहता।
तुम करो न मन को म्लान, मिलेंगे प्यासों को प्रिय प्राण
नीर! तुम ढलते ही जाओ॥

मुनि श्री नथमलजी जैन दर्शन के एक दिग्गज विद्वान् और महान् अध्यात्म-साधक हैं। उन्होंने धर्म, दर्शन, अध्यात्म और न्याय विषयक अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है। परन्तु, वे जीवन के अन्तगंभीर क्षणों में अपनी मर्मानुभूतियों को काव्य के माध्यम से भी अभिव्यक्त करते रहे हैं। उन्होंने स्वयं लिखा है "कविता मेरे जीवन का प्रधान विषय नहीं है। मैंने इसे सहचरी का गौरव नहीं दिया। मुझे इसका अनुचरी का-सा समर्पण मिला है।" 'फूल और अंगारे' तथा 'गूंजते स्वर बहरे कान' में मुनि श्री की कविताएं संकलित हैं। मुनिश्री ने अपने काव्य के द्वारा उस सहजानन्द को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है, जो मानस की परतों के नीचे सोया हुआ रहता है। इस सहजानन्द के मूल में जीवन के प्रति समता का दृष्टिकोण है। इस समत्व बुद्धि से प्रेरित होकर ही आप यह कह सके है.—

कोंपल और कुल्हाड़ी को भी
साथ लिए तुम चल सकते हो।

जो कोंपल और कुल्हाड़ी को साथ लेकर चल सकता है, उसे ही रत्नकण और हीरकहार तुल्य मूल्य के प्रतीत हो सकते है। मनीषी कवि की दृष्टि 'मैं' और 'तुम' की संकीर्ण सीमाओं का अतिक्रमण कर मानवीय अस्तित्व की चरम सार्थकता पर केन्द्रित है। परन्तु, इस चरमानुभूति के अन्तराल से यदा-कदा विचार के अनेक छोटे-बड़े कण झाकते हुए प्रतीत होते है, जो जीवन की एक नई मूल्य-मीमासा प्रस्तुत करते हैं—

फूल को चाहिए कि
वह कली को
स्थान दे
कली को चाहिए कि
वह फूल को सम्मान दे
पतझड को रोका नही जा सकता
कोपल को टोका नही जा सकता।

मुनिश्री बुद्धमलजी दीर्घकाल से काव्य की सफल साधना करते रहे हैं। वे भावुक हैं, परन्तु उनकी भावुकता में भी चिंतन का उन्मेष हैं। उनके स्वर की कोमलता जीवन की कठोरता के 'चैलेन्ज' को स्वीकार करने मे नही हिचकिचाती। भावाभिव्यक्त की चारुता के लिए उन्होंने सजग प्रयास नही किया है, परन्तु उनकी कविताओ का कला-पक्ष भी पर्याप्त परिपुष्ट है। मुनिश्री की कविताओ का प्रथम सकलन 'मन्थन' नाम से प्रकाशित हुआ था, जिसकी भूमिका यशस्वी कवि स्व. रामधारीसिह 'दिनकर' ने लिखी थी। द्वितीय सकलन 'आवर्त' है, जिसमें आपके भावचक्र की अनेक गति-भगिमाओ को लक्षित किया जा सकता है। आपकी जीवन-दृष्टि व्यष्टि और समष्टि के समन्वय पर आधारित है। अपनी काव्य-साधना के सम्बन्ध मे आपने लिखा है 'मुझे न केवल अपना ही सुख-दुख इस ओर प्रेरित करता रहा है, अपितु, दूसरो का सुख-दुख भी मेरी अनुभूति के क्षेत्र मे आता रहा है, आपकी रचनाओ मे अद्वैतमूलक दार्शनिक चिन्तन भी है, परन्तु मूलत आप पौरुष के कवि हैं। सकल्प का सबल स्वर आपकी कविताओ को विशिष्टता प्रदान करता है—

मैं रुकू प्रतीक्षा को, इससे तो अच्छा है
तुम अपनी ही गति के क्रम में त्वरता भरलो।
मैं तो बीहड में भी एकाकी चल लूंगा
तुम साथ चलो, न चलो, अपना निर्णय करलो।।

मुनिश्री नगराजजी का योगदान गद्य साहित्य को अधिक है। परन्तु आपने कतिपय मार्मिक कविताओ का भी सर्जन किया है। आपकी कविताओ मे साधक के लिए उद्बोधन है, प्रतिकूलताओं के साथ सघर्ष करते हुए निरतर आगे बढते रहने की प्रबल प्रेरणा है। परन्तु, मुनिश्री की कुछ ऐसी भी रचनाए है, जिनमे युग-भावना के अनुरूप न्याय की पुकार को प्रतिध्वनित किया गया है। इन पक्तियो मे युग-मानव का आहत अभिमान ही नही, उसकी न्याय की माग भी गूजती हुई सुनाई पडती है

रहने दो बस दान तुम्हारा
रहने दो सम्मान तुम्हारा।
आज मुझे तो न्याय चाहिए
अपने श्रम की आय चाहिए।

मुनिश्री चन्दनमलजी एक प्रभावशाली व्याख्याता हैं। उनकी वाणी का वैभव उनकी वक्तृता में ही प्रगट होता है। उनके द्वारा रचित 'शतदल की पखुड़िया' में पाच चरित्र हैं, जो व्याख्यान मे उपयोग करने के उद्देश्य से छन्दोबद्ध किए गए हैं। आपने अनेक लोकधुनों का प्रयोग करते हुए कविता में विभिन्न रागिनियों का समावेश किया है। ये कविताए प्रबन्धात्मक होते हुए भी इनमें प्रबन्ध काव्य का वैविध्य और विस्तार नही है। घटना-प्रसार को सूक्त सांकेतिकता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

'कुछ कलिया कुछ फूल' में मुनिश्री सागरमलजी 'श्रमण' की कविताए संकलित की गई हैं। 'श्रमण' में महज काव्य-प्रतिमा है और उन्होंने अपनी काव्यानुभूतियो को रसमय अभिव्यक्ति प्रदान की है, जो अनायाम ही हृदय को स्पर्श करती है। आपके काव्य में जहा समर्पण के स्वरों का गुजार है, वहां जीवन के सघर्षों की चुनौती का सहज स्वीकार भी है। यह सघर्ष किसी बाह्य शक्ति के साथ नही, अपने ही मन के आवर्त-विवर्त के साथ है। कवि ने अपनी अन्तर्दृष्टि के द्वारा जीवन का एक समन्वित चित्र अकित किया है:—

> किन्तु, अभी तक जितना भी पढ सुन पाया हूं,
> मित्र, मिलन से घाव हृदय का खुलता भी है, मिलता भी है।
> तेज पवन से रग मेघ का उड़ता भी है, घुलता भी है
> आड बडे की लेकर छोटा पलता भी है, गलता भी है।

मुनि रूपचन्द्रजी एक लब्धप्रतिष्ठ कवि है, जिनके प्रथम काव्य-सकलन 'अन्धा चाद' ने ही उन्हें एक नए कवि के रूप मे मान्यता प्रदान कर दी थी। 'अन्धा चाद' और 'कला अकला' की रचनाए अपने भाव-बोध और भाव-सप्रेषण की उभय दृष्टियो मे नई कविता की समीपवर्तिनी हैं। परन्तु, मुनिश्री कविता के किसी वर्ग विशेष से परिबद्ध नही रहे हैं। उन्होने नई कविताओ के साथ ही रुबाइया भी लिखी हैं, जो 'खुले आकाश'' 'इन्द्र धनुष' और 'गुलदस्ता' मे सकलित हैं। मुनिश्री रूपचन्द्रजी काव्य मे सहज के उपासक हैं। उन्होंने स्वय लिखा है—'लय-गीत, तुकान्त-अतुकान्त आदि को समान रूप मैंने सम्मान दिया है।' उनकी अनुभूतियो की सहजता उनकी अभिव्यक्ति मे भी प्रतिबिम्बित हुई है:

> आस्था की इन गायों को
> जड़ता के खूटे से मत बाधो तुम
> किन्तु भटकने दो इन्हे
> बीहड़ की इन टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों में
> और चरने दो इन्हें खुले आकाश मे
> साझ होते-होते
> ये स्वय घर का रास्ता ले लेंगी।

आपकी रुबाइयो मे रागात्मक सवेदन विशेष रूप से पाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने लोक-जीवन के जिस कटु यथार्थ का साक्षात्कार किया है, उसने उसे काफी झकझोरा है। कही-कही कवि की अभिव्यक्ति काफी तीखी हो गई है:

> अब जरूरत नहीं सलीब पर लटकने की
> खुद क्रॉस बन कर रह गई यह जिन्दगी।

मुनिश्री मोहनलालजी 'शार्दूल' के कई कविता-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'पथ के गीत,' 'बहता निर्झर', 'मुक्त मुक्ता' और 'मुक्तधारा' में भी 'शार्दूल' की रचनाएं संग्रहीत हैं। आपके

मुक्तक अपने रागात्मक संवेदन और सहजभाव-सम्प्रेषण के कारण हृदय को स्पर्श करते हैं। उनके व्यष्टि जीवन के सत्य के साथ ही समष्टि जीवन का यथार्थ भी अभिव्यंजित हुआ है:

आदमी अभाव से ही नही, भाव से भी आक्रान्त हो जाता है
और कोरे दुःख से ही नही, सुख से भी आक्लान्त हो जाता है।
दुनिया का अजीब रहस्य बिल्कुल ही समझ नही आता,
आदमी तम से ही नही, उजालों से भी उद्भ्रान्त हो जाता है।

'अनायास' मुनिश्री सुखलालजी की कविताओ का संग्रह है। मुनि रूपचन्द्रजी ने इस संग्रह की रचनाओ का परिचय देते हुए जो कुछ लिखा है, वह सत्य के बहुत निकट है। 'अनायास की कविताए अनायास ही लिखी हुई हैं। अत्यन्त सहज और अत्यन्त सादगीपूर्ण सज्जा अपने में लिए हुए है। स्पष्ट भाव और स्पष्ट भाषा, कही कोई घुमाव और उतार-चढ़ाव नही। जैसा सामने आया, उसे अत्यन्त अकृत्रिम भाव से शब्दो का परिधान दे दिया।' इस वक्तव्य की सार्थकता प्रमाणित करने का यह एक उद्धरण पर्याप्त होगा —

मील के पत्थर
नही करते मजिल की दूरी को कम।
पर एक भ्रम
बनाए रखता है अपना क्रम।

मुनिश्री दुलहराजजी काव्य के मूक साधक है। उनकी कविताओ मे अन्तर्वृत्तियो की सूक्ष्म गतिविधियो का आलेखन हुआ है। भाषा पर भी उनका अबाध अधिकार है, परन्तु न जाने क्यो उन्होने अपनी रचनाओं को अद्यावधि अप्रकाशित ही रखा है।

'कालजयी' और 'परतों का दर्द' मुनिश्री विनयकुमारजी 'आलोक' की दो कृतिया हैं, जिनमें कुछ कविताए और कुछ क्षणिकाए सकलित की गई हैं। इन रचनाओ के सम्बन्ध में प्रख्यात आलोचक डा विजयेन्द्र स्नातक का मत उल्लेख्य है 'अनुभव और चितन से सग्रथित होकर जो विचार-कण मुनिश्री के मन में उभरा है, वही कविता बना है। मुनिश्री अन्त स्फूर्त कवि है।' 'परतो का दर्द' मे कवि अभिव्यक्ति की नई भगिमा को ग्रहण करता प्रतीत होता है —

जीवन बज-बज कर
घिस जाने वाला रिकार्ड
खरखराता स्वर ही
इसकी नियति है।

मुनिश्री मणिलालजी ने कुछ क्षणिकाए लिखी है जो अपनी सूक्त साकेतिक अभिव्यक्ति के कारण काफी प्रभावशाली बन पड़ी है —

महानता
समुद्र के रूप में
बूंद का अस्तित्व
हीनता
बीज के बदले में
वृक्ष का अहम्।

मुनिश्री वत्सराजजी की कविताओं के दो संग्रह 'उजली आंखें' और 'आंख और पांख' के नाम से प्रकाशित हुए हैं। आपकी दृष्टि में 'सहज अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति ही काव्य की परिभाषा है।' वत्स मुनि की कविताएं अपनी इस कसौटी पर खरी उतरती हैं, परन्तु उनकी अनुभूति में जिज्ञासामूलक चिंतन भी सम्मिलित है। जीवन के प्रति एक उद्दाम आस्था ने आपको प्रतिकूलताओं के साथ संघर्ष करने की शक्ति प्रदान की है :—

गरल की प्यालिया
कितनी ही विकराल क्यों न हों ?
मधुरता की मीरा
जब उन्हें पीएगी
मधुधार बना लेगी ।

मुनिश्री मानमलजी चिरकाल से कविताएं और चतुष्पदियां लिखते रहे हैं। उनकी रचनाए विषय-वैविध्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। राजस्थानी के कई सिद्धहस्त कवि भी हिन्दी में यदा-कदा लिखते रहते हैं। मुनि मधुकरजी ने मधुरस्वर ही नहीं पाया है, उनके 'गुंजन' के गीत भाव और भाषा के माधुर्य से ओत-प्रोत है।

तेरापंथ के साधु-समाज में ही नहीं, साध्वी-समाज में भी काव्य-साधना का क्रम वर्षों से चल रहा है। 'सरगम' की भूमिका में स्वयं आचार्यश्री तुलसी ने लिखा है, 'भावना नारी का सहज धर्म है। अतः नारी ही वास्तविक कवि हो सकती है।' तेरापथ के साध्वी समाज ने आचार्य प्रवर इस उक्ति को अपनी प्रखर साहित्य-साधना के द्वारा सत्य सिद्ध कर दिया है। अनेकानेक साध्वियां काव्य-क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय दे रहीं है। साध्वी प्रमुखा श्री कनकप्रभाजी स्वय एक रससिद्ध कवयित्री है, जिनकी कविताओं का प्रथम सकलन 'सरगम' के नाम से प्रकाशित हुआ है। वस्तुतः कनकप्रभाजी की कविताएं उनके 'भावों का इतिहास' हैं। उन्होंने भाषा की सप्रेषण-शक्ति पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए लिखा है :—

आज स्वयं में भावो का लिखने बैठी इतिहास,
पर भाषा पहुंचाएगी क्या उन भावों के पास ?

परन्तु, भाषा ने बहुत दूर तक साध्वीप्रमुखाश्री का साथ निभाया है। उनकी भाषा प्रासादिक होते हुए भी सूक्ष्म भाव-छायाओं को ग्रहण करने में सर्वथा समर्थ है। सहज सरल शब्दावली में उन्होंने जीवन के गहरे रहस्यो को उद्घाटित करने में सफलता पाई है:—

सत्य एक है लेकिन कितनी हुई आज व्याख्याएं
मूल एक पादप की फिर भी है अनगिन शाखाएं।

साध्वीश्री मंजुलाजी के तीन कविता सग्रह प्रकाशित हुए है—'अधखुली पलकें', 'जलती मशाल' और 'चहुरा एक हजारो दर्पण'। मजुलाजी ने अपने काव्यदर्पण में मानव-मन की अनेक स्थितियो को प्रतिबिम्बित किया है। कवयित्री में अपने आप के प्रति अटूट विश्वास है, जो उसे संघर्षों में शक्ति और सम्बल प्रदान करता है:—

जानते हो स्वय का विश्वास ही जब तब जिलाता मारता है।
समझ लो विष को सुधा फिर तो वही जब एक बार उबारता है॥

मंजुलाजी के काव्य में कहीं-कहीं वे रहस्यात्मक सकेत भी प्राप्त होते है जिनके मूल मे मानव की अपने आपको जानने की जिज्ञासा होती है। आत्मोपलब्धि के चरणो मे कवयित्री ने इस चिर पुरातन सत्य का नवान्वेष किया है –

हम भी भोले हिरणो की ज्यो बहुत बार धोखा खाते है
जिनको पाना बहुत सरल है उनके लिए उलझ जाते है।
सूई जो खो गई सदन मे बाहर कैसे मिल पाएगी ?
जिसको हम ढूढते युगो से वह अपने मे ही अन्तर्हित।।

'साक्षी है शब्दो की' साध्वी राजीमतीजी की कविताओ का सकलन है। कवयित्री के ही शब्दो मे 'अपने भावो और कल्पनाओ को शब्दो के साचे में ढाल कर कविताओं की काया को गढा गया है। इसमे कुछ गीतिकाएं है और कुछ मुक्त छन्द में लिखी हुई कविताए। साध्वी राजीमतीजी न किसी वाद से प्रतिबद्ध है और न उनका कोई वैचारिक आग्रह है। साधना-पथ की अनुभूतियो को अकृत्रिम अभिव्यक्ति प्रदान करने के अतिरिक्त कवयित्री ने युग-जीवन की यथार्थता को भी चित्रित करने का प्रयास किया है। निकट के यथार्थ को छोडकर आज का मानव सुदूर स्वप्नो के पीछे दौड रहा है –

वसुधा का विस्तार बहुत कोई बसना भी जान
लगा रहा इन्सान किन्तु चन्दा पर नए निशान
और पपीहे आकाशी बूदो पर प्राण गवाते।

साध्वी सुमनश्रीजी के 'सासो का अनुवाद' मे जीवन और जगत के रहस्यो का अनुभूति के धरातल पर लिपिबद्ध किया गया है। आपकी काव्य दृष्टि अन्तर्मुखी है और आप बाह्य-जीवन का चित्राकन भी अपने अन्तर की ही रेखाओ मे करती है। इस सग्रह की सभी कविताओ का एक ही रूपाकरण है और अपनी भाषा को एक परिष्कृत सौन्दर्य प्रदान करने की दिशा मे सुमनश्रीजी विशेष सक्रिय रही है –

धूल भरा आकाश
हो जाता है धूप गेह का धूमी-धूमी आभास
दिन घटना नक्षत्रो के रथ है
थामे हाथ क्षणो का श्लथ है
दौड रहा है अश्व समय का
न जीवन का श्वास।

आचार्य श्री तुलसी के धवल समारोह के अवसर पर सोलह साध्वियो की कविताओ का एक प्रतिनिधि सकलन 'सीप और मोती' के नाम से प्रकाशित हुआ था। इस सग्रह की रचनाओ को पढकर यह प्रतीति होती है कि ये कवयित्रिया अगर वाग्देवता की आराधना करती रही तो एक दिन साहित्य-जगत् को अपनी अमूल्य भेट अर्पित कर सकेंगी। इन कविताओ मे सुख-दुख के प्रति समभावना, लक्ष्य के प्रति अटूट विश्वास, साधना-मार्ग की प्रतिकूलताओं को हसते हसते सहन करने का सकल्प और जीवन के प्रति एक उदात्त दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति हुई है। कुछ कविताओ के उद्धरण अप्रासगिक नहीं होगे –

मेरा प्रिय मिले मुझको यह जब जब सोचा
तब तब बाधाओ ने आकर उसको रोका

किन्तु प्राण का मोह त्याग जो निकल पड़ा है
उस जन को बाधाओं ने है कब कब रोका ?
—साध्वी श्री जयश्री

मुझे न जाने सहजतया क्यों प्रिय लगता संघर्ष ?
और उसी में आंका करती मैं अपना चिरहर्ष।
—साध्वीश्री कमलश्री

युग-युग चलती रहूं इसी पथ, ले संयम का भार।
थकने का क्या प्रश्न ? अगर कुछ है चलने में सार।।
—साध्वीश्री राजीमती

हिन्दी कविता को तेरापथ की देन व्यापक और बहुमुखी है। तेरापथी साधु और साध्वियों के काव्य का अध्ययन किया जाए तो हिन्दी कविता की प्राय सभी शैलियों और प्रवृत्तियो को इसम खोजा और पाया जा सकता है। एक ओर आचार्यश्री तुलसी के प्रबन्ध काव्य हैं तो दूसरी ओर मुनिश्री नथमलजी, मुनिश्री रूपचन्द्रजी की नई कविताए हैं, जो अपनी भावाभिव्यक्ति की नई भगिमा के कारण ही नही, अपने नए भावबोध के कारण भी अधुनातन कविताओं में सम्मिलित की जा सकती हैं। गीत और मुक्तक लिखने वाले कवियों की सख्या सबसे अधिक है। परन्तु मुनि विनयकुमार 'आलोक' और मुनि मणिलाल ने लघु कविताओं के क्षेत्र मे भी नए प्रयोग किए हैं। सभवत कुछ कवि अकविता के आन्दोलन से भी प्रभावित हुए हो। परन्तु इस सम्पूर्ण वैविध्य मे एक समानमूलता भी पाई जाती है। कथ्य की दृष्टि से इस सपूर्ण काव्य-साहित्य में नैतिक सत्यो की प्रतिष्ठा है और व्यक्ति का 'असयम' से सयम' की ओर ले जाने की प्रवृत्ति का प्राधान्य है। किसी भी कवि ने मानव की क्षुद्र कामनाओं और वासनाओं का नही उभारा है और नही जीवन के प्रति कोई अनुदात्त दृष्टिकोण ही उपस्थित किया है। इस काव्य-सृजन का लक्ष्य मन-रजन नही, मनुष्य का नैतिक उन्नयन और आध्यात्मिक उन्मेष है। इस काव्य का महत्व इस बात मे है कि इस महत् उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उपदेश और प्रवचन की मुद्रा को अपना कर केवल जीवन की सतह पर उतारने का प्रयास नही किया गया है। कवियों ने जीवन के अन्तस्तल मे अवगाहन कर गहन भावानुभूतियो का स्वय साक्षात्कार ही नही किया है, उन्हें सहृदयो के लिए शब्द के माध्यम से संप्रेषित भी किया है। अनेक कवियों और कवयित्रियों का उल्लेख नही किया जा सका है, क्योंकि लेखक के परिचय की अपनी सीमाए हैं। इसे किसी के प्रति उपेक्षा और अवज्ञा का सूचक नही माना जाना चाहिए।

डा मूलचन्द सेठिया
के 7, मालवीया मार्ग
सी–स्कीम,
जयपुर (राजस्थान)

हिन्दी पद्य साहित्य एवं साहित्यकार–5

पं. भंवरलाल न्यायतीर्थ

राजस्थान में हिन्दी पद्य साहित्य का निर्माणकाल 100-150 वर्ष पूर्व से प्रारम्भ होता है। इसके पूर्व राजस्थानी की विभिन्न शाखाओं में जैसे राजस्थानी, ढूंढारी, मेवाती आदि भाषाओं में लिखा जाता रहा था। यद्यपि संवत् 1900 के पूर्व निबद्ध कृतियों, काव्यों एवं मुक्तक रचनाओं में हिन्दी का पुट मिलता है लेकिन हम उन्हें पूर्ण हिन्दी की कृतियां नहीं कह सकते। ज्यों-ज्यों खड़ी बोली का प्रचार-प्रसार होता गया और गद्य-पद्य में रचनाएं होने लगी तो जैन कवियों ने भी विभिन्न विषयों में लिखना प्रारम्भ कर दिया। दिगम्बर जैन कवियों ने आत्मा-परमात्मा के अतिरिक्त सामाजिक, राष्ट्रीय एव साहित्य के अन्य ग्रंथो पर भी बहुत लिखा है। हिन्दी पद्य साहित्य के विकास में उन्होंने अपना अच्छा योगदान दिया है। सारे राजस्थान में विशेषत. जयपुर, कोटा, बूंदी, अलवर, भरतपुर, सीकर व उदयपुर जैसे प्रदेशों में अनेक कवि हुए जिन्होंने हिन्दी भाषा में छोटी-बड़ी अनेक रचनाएं की। लेकिन साहित्य निर्माण के इस काल का इतिहास में कोई उल्लेख न होने के कारण अभी तक न किसी कवि का और न उसकी कृति का कोई मूल्यांकन हो सका है। इसलिये ऐसे कवियों का आज भी पूरा परिचय उपलब्ध नहीं हो सका है। प्रस्तुत लेख में ऐसे ही कुछ कवियों का परिचय प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है

1. पं. महाचन्द

सीकर निवासी पं. महाचन्दजी हिन्दी गद्य व पद्य के अच्छे लेखक थे। सम्वत् 1915 में इन्होंने त्रिलोकसार पूजा लिखी जो अत्यधिक लोकप्रिय है। तत्वार्थ सूत्र की हिन्दी टीका इन्होने की तथा अनेक भक्ति परक पद लिखे। आपके पदो की भाषा हिन्दी है परन्तु इस पर राजस्थानी का भी प्रभाव है। इन्होने प्रत्येक पद में नाम के साथ "बुध" शब्द का प्रयोग किया है।

ईश्वर के दर्शन बिना कवि का एक क्षण भी कटना कठिन लगता है.—

कैसे कटे दिन रैन, दरश बिन······ ··
जो पल घटिका तुम बिन बीतत
सो ही लगे दुख देन· ·· दरश बिन

कवि मुक्ति जाना चाहता है, पर कैसे जाय-मार्ग तो भूल रहा है —
मैं कैसे शिव जाऊ रे डगर भुलावनी,
बालपने लरकन संग खोयौ, तिया संग जवानी।
वृद्ध भयो सब सुधि गयी भजी जिनवर नाम न जानी
अत· जिनवाणी का अध्ययन करो—

जिनवाणी सदा सुखकारी जानि तुम सेवो भविक जिनवानी।

2. थानसिंह अजमेरा

अजमेरा जयपुर में 20 सदी के पूर्वार्द्ध में हुए थे। थानविलास इनकी प्रमुख कृति है जिसमे इनकी विविध रचनाओं का संग्रह है। कवि की भाषा और शैली दोनों ही अच्छे स्तर की है।

संवत् 1934 में इन्होंने बीस तीर्थंकर पूजा लिखी। चेतन आत्मा को भ्रमर की उपमा देते हुये कवि ने एक भावपूर्ण पद लिखा है—

चेतन भौंरा पर में उलझि रहा रे
छक मद मोह में अयानो भयो डोले।

3. जवाहरलाल शाह

ये भी जयपुर के निवासी थे तथा 20वीं सदी में हुए थे। वि. सं. 1952 में इनका स्वर्गवास हुआ। इनके द्वारा रचित चेतनविलास, आलोचना पाठ, बीस तीर्थंकर पूजा, समुच्चय पूजा आदि पद्यमय रचनाएं मिलती हैं। हिन्दी मे अनेक पद भी लिखे हुये मिलते हैं :—

ऐसा जग मोहि नजर नहिं आवे, पर तज अपनी अपनावे।
जड पुद्गल से आप भिन्न लखि, चेतन गुण कर भावे॥

4. चैनसुख लुहाडिया

इनका जन्म जयपुर में सवत् 1887 मे और स्वर्गवास स. 1949 में हुआ था। ये हिन्दी के अच्छे कवि थे। आत्मबोध में दर्शन दशक, श्रीपति स्तोत्र, कई पूजाएं तथा फुटकर रचनाएं पर्याप्त सख्या मे उपलब्ध होती है। लुहाडिया जी को समस्या पूर्ति का शौक था।

संगमरदाने की शीर्षक समस्या पूर्ति देखिये —
राची जिनवच प्रतीत वाची सब तत्वरीत
स्वातम अभीत जिन चाहे चिद बाने की,
चाह पाकशासन, सुरासम की रही नांहि,
कौन गिनती है मुकरैण राव राने की।
उखरि गये मदन कुभाव के झाडा सब
फहरे है जिनन्द की पताका जीत पाने की,
ठोंकि भुजदण्ड रण भूमि मे पछारयो मोह
शुक्ल ध्यान चण्डा ये तंग मरदाने की।

5. पं. चिमनलाल

ये बीसवी शती के प्रारम्भ के कवि थे। स. 1969 तक मौजूद रहने की बात कई लोगों से सुनी है। अर्हन्नीति और प्रायश्चित ग्रन्थो का इन्होने हिन्दी अनुवाद किया है। इनके अनेक फुटकर पद्य भी मिलते हैं। संसार की दशा का वर्णन करते हुए कवि कहता है :—

जगत मे कोई न दम की बात।
मूंठी बांधे आया बन्दे, हाथ झुलाये जात।
धन यौवन का गर्व न करना, यह नहिं जावत साथ।
देख संभल प्रबल रिपु सिर पर काल लगावे घात।
कोई बचाय सके नहिं उसमें पिता मित्र अरु भ्रात।
छोड़ असत्य ओट पर - वनिता ये नित ठग ठग खात।

6. आनन्दोपाध्याय

पूरा नाम श्री आनन्दीलाल जैन है। जन्म जयपुर में वि. सं. 1970 तथा स्वर्गवास वि. सं. 2000 में हुआ था। यद्यपि इन्होंने शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की थी लेकिन उपाध्याय

परीक्षा पास करने के बाद ही ये कविताएं करने लग गये थे और अन्त तक अपना नाम आनन्दी-लाल उपाध्याय ही लिखते रहे। अनेक पत्रों मे आपकी कविताएं छपी हैं।

विपदाओं से सदा क्रान्त हो, लगतो जीवन भार भयो।
कभी रहसि मैं रो लेता हूं, मन भावन को मार दियो।
नाथ! उबारो द्रुततर मुझको, देख रहा सुख का सपना।
अन्तस्तल में शान्ति प्राप्तकर आखिर विश्व समझे अपना।

7. पार्श्वदास निगोत्या

20वी शती के पूर्वार्द्ध के इस कवि ने अनेक पद लिखे हैं। जो हाल ही मे पार्श्वदास पदावलि के नाम से प्रकाशित हुए है। इसमे विभिन्न रागो मे 423 पद है हिन्दी के भी और ढूंढारी के भी।

मन प्राणिधि की वा सगुण तुम दृष्टि हो
हो द्रवित आंसू बहाते तुरन्त ही, दूसरो के दर्द दुख को देखकर,
पर रहा तुमसे जाता नही, घोर अन्याचार को अवलोक कर।

8. श्री अर्जुनलाल सेठी

जन्म जयपुर मे 9 सितम्बर 1888। स्वर्गवास 22 सितम्बर 1941। शिक्षा बी.ए. 1902 में। होश सभालने के साथ ही देश प्रेम के दीवाने हो गये। राजनैतिक अपराध मे जेल के सीकचो मे बहुत समय गुजरा। आप एक समाज सुधारक, अद्भुत विद्वान् तथा प्रसिद्ध क्रांतिकारी थे। राजस्थान मे कांग्रेस के चोटी के नेता बने। उन्होने वर्द्धमान विद्यालय की स्थापना की। ये पूज्य गांधी जी के सहयोगी रहे। हिन्दी के अनन्य भक्त थे। आपने महेन्द्रकुमार नाटक, मदन पराजय नाटक और पारसयज्ञ पूजा लिखी तथा इनके अतिरिक्त और भी कितना ही रचनाए लिखीं। देश की दुर्दशा पर दो आंसू बहाते हुए कवि ने अपने निम्न विचार व्यक्त किये —

पड़े है घोर दुखा मे सभी क्या रक और राजा,
हुई भारत की यह हालत नहीं हे आब अरु दाना।
धर्म के नाम पर झगडे यहा पर खूब होते है,
बढाके फूट आपस मे दुखो का बीज बोते है।
निरुद्यमी आलसी हो, द्रव्य अपने आप खोते हे,
हुआ है घोर उन्नति का यह भारतवासी सोते है।

और फिर देशवासियो मे जोश भरते हुए कवि प्रेरणा देता है :—

सभालो अपने घर को अब जगादो बूढे भारत को,
यह गुरु है सर्व देशों का, उठो प्यारो उठो प्यारो।
जहा के अन्न पानी से बनी यह देह हमारी है,
करो सब उसपै न्यौछावर, उठो प्यारो उठो प्यारो।

9. पं. चैनसुखदास न्यायतीर्थ

प्राकृत एवं संस्कृत साहित्य के प्रमाण पंडित जी हिन्दी के भी उच्च कोटि के विद्वान् थे। पंडित जी कवि हृदय थे। दार्शनिक, भक्तिपरक व आध्यात्मिक कवितायें लिखने में आपकी

विशेष रुचि थी। आपकी सैकड़ों कवितायें जैन पत्रों के अतिरिक्त सुधा, माधुरी, अर्जुन, विश्ववाणी, कल्याण, विश्वामित्र, रत्नाकर जैसे अनेक हिन्दी के चोटी के पत्रों में प्रकाशित हुई। पंडित जी की कविताओं का सग्रह 'दार्शनिक के गीत' नाम से प्रकाशित हो चुका है। कवि की भक्ति में भी दार्शनिकता है। एक कविता में उनसे सनातन सत्य से मिलाने की प्रार्थना निम्न शब्दों में की है:—

ज्ञान के आलोक में जहां वासनाए भाग जाती,
जो निरापद चिन्तनाएं जहां सदा विश्राम पाती।
वह निरामय धाम भगवान् है कहा मुझको बतादो,
उस सनातन सत्य में हे नाथ तू मुझको मिलादो।

एक अन्य कविता मे कवि ने दार्शनिकता के द्वार की ओर सकेत करते हुए लिखा है कि–

दु खमय क्षण भगुर ससार, कौन साधन से होगा पार,
प्रतिक्षण जीवन का यह लक्ष्य, दार्शनिकता का उत्तम द्वार।

कवि एक ओर अध्यात्म और दर्शन की चर्चा करता है तो दूसरी ओर ससार की वस्तुस्थिति को ओझल नही करता। सारा ससार पैसे के पीछे क्यो दौडता है? इसका उत्तर कवि ने निम्न शब्दों में दिया है.—

नर से नर के पेट पुजाता, विपुल राशि में जब तू आता।
नाम धाम सब काम बदल जाते, तेरे आ जाने से, होती क्षमता ओ पैसे।

कवि ने किसी एक विषय पर बृहत काव्य ग्रन्थ लिखने के स्थान पर छोटी-छोटी कविताओं के माध्यम से बहुत उत्तम विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

10. चांदमल जैन 'शशि'

जन्म बगवाडा ग्राम (जयपुर) मे 13-6-1910 को, स्वर्गवास 7-2-74 को, शिक्षा साहित्यरत्न, एम.ए.हिन्दी व सस्कृत, बी.टी.। इनकी बचपन से ही कविता करने में रुचि थी, शशि जी का पूरा जीवन अध्यापन के रूप मे बीता था। आपकी कवितायें जैन बन्धु, जैन दर्शन आदि अनेक पत्रों मे प्रकाशित हुई है। इन कविताओं मे प्रकृति वर्णन के साथ ही उद्बोधक तत्व अच्छी संख्या मे मिलते हैं। निर्धन की यातना बताते हुए कवि लिखता है —

अहह ! निर्धनते ! तव पाश मे, फस न पा सकता नर शान्ति है।
मलिन है, रहता मन सर्व का, विकलता बढती दिन रात है।

11, मास्टर नानूलाल भांवसा

जयपुर मे जन्म, चैत्र कृष्णा 4 विक्रम सवत् 1950, स्वर्गवास पौष कृष्णा 11 सं. 2002 अध्ययन इंटर तक। गणित के विशेषज्ञ। बडे सौम्य और शान्त प्रकृति के थे। खरताल हाथ में लेकर भजन गाते तो आत्मविभोर हो जाते। भक्तिपरक आध्यात्मिक कई पद आपने लिखे हैं। आपके छोटे भ्राता भाई छोटेलाल जी पहले क्रांतिकारी थे जो लार्ड हार्डिंग पर बम फेंकने के सिलसिले में गिरफ्तार हुए। पीछे गाधीजी के अनन्य भक्त बने और आजीवन गांधीजी के साथ रहे। मास्टर साहब के भजनों की एक पुस्तक 'नानू भजन संग्रह' प्रकाशित हो चुका है। इस संग्रह में सभी भजन आध्यात्मिक और भक्तिपरक हैं।

है यह संसार असारा, भवसागर ऊंडी धारा,
इस भंवर में जो कोई रमता, वह लहे न क्षण भर क्षमता।

12. पं. चौथमल शर्मा

जयपुर के रहने वाले थे। विक्रम की बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में इनका जन्म हुआ। दिगम्बर जैन पाठशाला जयपुर (वर्तमान कालेज) में अध्यापक होने से ये जैनों के सम्पर्क में काफी आये। विभिन्न राग-रागिनियों में आपने कई जैन कथानकों को गूथा। चारुदत्त, महीपाल, सुखानन्द, मनोरमा, अजवन्त, नीली, धन्यकुमार, विष्णु कुमार, यमपाल चाण्डाल आदि कितने ही वर्णन इनके लिखे हैं। शांतिनाथ भगवान की स्तुति करता हुआ कवि लिखता है—

श्री शातिनाथ त्रिभुवन आधार, गुण गुण अपार, सोहे निर्विकार,
कल्याणकार जग अति उदार, म्हे उन्ही को शिर नावो नावों नावा।

13. पं. इन्द्रलालजी शास्त्री

जयपुर मे जन्म 21-9-1897। स्वर्गवास सन् 1970। शिक्षा साहित्य शास्त्री तक। शास्त्री जी सस्कृत व हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे साथ ही अच्छे वक्ता, लेखक व कवि। धर्म सोपान, आत्म वैभव, तत्वालोक, 'पशुवध सबसे बडा देशद्रोह' आदि स्वतन्त्र पद्यमय रचनाएं तथा भक्तामर स्तोत्र, एकीभाव स्तोत्र, कल्याण मन्दिर, विषापहार, भूपाल चतुर्विंशति, आत्मानुशासन, स्वयभू स्तोत्र, सामायिक पाठ आदि का हिन्दी अनुवाद किया। अनेक फुटकर कवितायें भी लिखी। कवि की कविता का एक उदाहरण इस प्रकार है—

जा आशा के दास हैं वे सब जग के दास हैं,
आशा जिनकी किंकरी उनके पग जगवास।
जो चाहो जिस देश का कल्याण अरु उत्थान,
करो धर्म का अनुसरण, समझो धर्म प्रधान।

14. जवाहिरलाल जैन

इनका जन्म जयपुर में दिसम्बर 1909 में हुआ। इनके पिता श्री जीवनलाल थे। शिक्षा एम. ए. इतिहास व राजनीति शास्त्र में, हिन्दी में विशारद। श्री जैन गद्य और पद्य के अच्छे लेखक हैं। गद्य की अनेक रचनायें छप चुकी है। पद्य की देखने मे नहीं आयी। किन्तु फिर भी समय समय पर कई पत्रों में इनकी कवितायें प्रकाशित हुई हैं। ससार को छलिया बताते हुए कवि लिखता है:—

कैसा है छलिया ससार, किसने पाया इसका पार,
फूल फूल कर बल खाते हैं, हंसते है वे प्यारे फूल,
मधुप गान करते आते हैं, जाते है मधु प्यालों में झूल
वायु का झोंका आता है, भ्रमर झटपट उड जाता है,
फूल सोता मिट्टी की गोद टूट जाता सपनों का तार।

15. श्री अनूपचन्द न्यायतीर्थ

इनका जन्म जयपुर में दिनांक 10-9-1922 को हुआ। ये पं. चैनसुखदास जी के प्रमुख शिष्यों में गिने जाते हैं। अनेक ग्रन्थों के सम्पादन में डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल के

सहयोगी हैं। आप एक आशु कवि भी हैं। आपकी कविताओं की भाषा सरल व माधुर्य लिए हुए है। यद्यपि इनकी कविताओं का संग्रह रूप में तो अभी तक प्रकाशन नहीं हुआ किन्तु 300 से अधिक कविताएं आजतक जैन संदेश, अनेकान्त, वीरवाणी आदि पत्रों में छप चुकी हैं। भारत बाहुबलि संवाद, बाहुबलि वैराग्य, (खण्डकाव्य) इनकी सुन्दर कृतियां हैं। रवीन्द्र नाथ टैगोर द्वारा लिखित गीतांजली के करीब 60 गद्यांशों का आपने पद्य में सुन्दर अनुवाद किया है। इसके अतिरिक्त काजीवारस, चन्दन एवं रोहिणी व्रत की पूजा लिखी है जो प्रकाशित हो चुकी है। गीतांजली के एक गद्यांश का एक अनुवादित पद्य इस प्रकार है—

दूर कर यह धूप खेना, और फूलों को चढाना,
तोड़ व्यर्थ समाधियों को क्योंकि वह उनमें मिले ना।
क्या बिगड़ता ! अगर तेरे वस्त्र मैले औ फटे है,
वह मिलेगा पूर्व श्रम के स्वेद कण में चमचमाता।
वह नही यों नजर आती।

अकेले भगवान् महावीर और इनके सिद्धान्तों पर कवि ने 60 से भी अधिक कविताओं में बड़ा सुन्दर भावार्थ डाला है। भगवान् महावीर के संदेश का निचोड़ कवि के शब्दों में पढ़िये—

ये सत्य अहिंसा ब्रह्मचर्य जीवन को उच्च बनाते हैं,
इच्छा निरोध ही उत्तम लय भावों में जाग्रति लाते है।
बन राग द्वेश का भाव हटे कर्मों का बन्धन कटता है,
भगवान् बनाये न बनता भगवान् स्वयं ही बनता है।

कवि के साथ ही पं. अनूप चन्द अच्छे लेखक, अन्वेषक तथा पुरातत्व विशेषज्ञ हैं। आपने राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची सम्पादन का अच्छा कार्य किया है।

16. प्रसन्न कुमार सेठी

कवि का जन्म 14 जुलाई 1935 में जयपुर में हुआ। शिक्षा एम. काम व विशारद। ये युवा कवि, लगन शील सेवाभावी व्यक्ति हैं। इनका रहन-सहन सादा व शरीर पतला दुबला है। अध्यात्म में डूबा हुआ इनका व्यक्तित्व सहज में ही देखा जा सकता है। संसार की असारता का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

किसका घोड़ा, किसका हाथी, किसकी मोटर रैल है,
वही निराकुल है जिसने समझा हो, जीवन खेल है।

कवि की हर रचना आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत है। कवि ने सैंकड़ों कविताये लिखी है। प्रेरणा नामक प्रथम व द्वितीय पुष्प, सोलह कारण भावना, व दश लक्षण नामक पद्य रचनायें प्रकाशित हो चुकी है। कवि अलौकिक प्रतिभा का धनी है तथा ये अपनी कविताओं का सस्वर पाठ करते हैं।

17. डा. हुकमचन्द भारिल्ल

आप मध्यप्रदेश के रहने वाले है। कई वर्षों से आप जयपुर में रह रहे है। आप आध्यात्मिक प्रवक्ता के रूप में जाने जाते हैं। पंडित टोडरमल व्यक्तित्व और कृतित्व पर आपको डाक्टरेट की उपाधि मिली। आप कवि भी है। वैराग्य महाकाव्य, पश्चाताप खण्ड काव्य,

कई पूजायें व कविताएं आपने लिखी हैं। कवि ने एक कविता में अपनी चाह निम्न प्रकार व्यक्त की है:—

मै हूं स्वभाव से समय-सार, परणति हो जावे समयसार,
है यही चाह, है यही राह, जीवन हो जावे समय-सार।

18. राजमल जैन बेगस्या

जन्म 17 मार्च, 1937 जयपुर मे। शिक्षा एम ए इतिहास व समाज शास्त्र। यह युवा कवि हिन्दी व राजस्थानी मे पर्याप्त कविताए लिखता है। अच्छे गायक है। आप व्यायात्मक तथा उपदेशात्मक पद्य बहुत लिखते है। इनकी कविता का एक उदाहरण निम्न है —

सुख ढूढ रहा बाहर मानव, वह अन्तर मे बसता,
जो स्व मे लीन सतोषी है, सुख का झरना वही बहता।
बाल्यकाल, यौवन आये और अन्त बुढापा है आता,
पर तृष्णा रहे सदैव षोडशी इसका नही यौवन जाता।

कवि राजस्थानी भाषा में भी काव्य रचना करते रहते है। आप जब गाकर अपनी कविताओ को सुनाते है तो उपस्थित जन समुदाय को भाव विभोर कर देते है।

19. मुशी हीरालाल छाबडा

जन्म सवत् 1920। उर्दू व फारसी के अच्छे विद्वान् थे। आपने चौबीम तीर्थंकर पूजा की सरल पद्यों मे रचना की है जो वीर नि स 2446 मे छपी थी। पूजन की भाषा सरल और माधुर्य युक्त है। ढूढारी शब्दो का भी इसमे प्रयोग है। दश धर्म के सम्बन्ध में कवि कहता है—

क्षमा आदि है धर्म जीव के, योगी इनमे रमते है,
ये ही है शिव मारग जग मे, भव्य इन्ही मे तिरते है।

पूजा में कवि ने अपनी अन्तिम भावना निम्न प्रकार व्यक्त की है —

सुख पावे सब जीव रोग शोक सब दूर हो।
मगल होय सदीव, यह मेरी है भावना।

20. पं. गुलाबचन्द जैन दर्शनाचार्य

9 नवम्बर 1921 का जन्म। शिक्षा आचार्य जैन दर्शन तथा एम ए हिन्दी व सस्कृत मे। साहित्यरत्न व प्रभाकर। अच्छे विद्वान् है। हिन्दी मे सुगन्ध दशमी आदि पूजाए लिखी है। प्रिय प्रवास की शैली मे इन्होने अजना काव्य लिखा है जिसका कुछ अश वीरवाणी में प्रकाशित हो चुका है। इसी काव्य का एक अश निम्न प्रकार है —

अमित कोमल केश कलाप था, फणि सलज्जित का उपमान मे।
विधुसमान प्रफुल्लित कजसा, सुमुख था जिसका अति शोभना।
शुक समान समुन्नत नासिका, अधर रक्त पीयूष भरे लसै।
वर कपोल सुडौल ललाम थे, चिबुक की क्षमता कवि खोजते।

21. पं. गिरधर शर्मा (झालरापाटन)

इन्होने कुछ स्तोत्रों के अनुवाद एव कुछ स्वतन्त्र रचनायें भी लिखी है। जैन समाज मे सर्वाधिक प्रचलित भक्तामर काव्य का इन्होने सरल सुबोध पद्यों में बड़ा सुन्दर अनुवाद किया। हिन्दी भाषी जैन इनके पद्यानुवाद को बडे चाव से पढ़ते हैं। आपके पद भाव-परक है।

22. डा. सोभागमल दोसी (अजमेर)

गत 45 वर्षो से दोसी जी साहित्यिक क्षेत्र मे बराबर कार्य कर रहे हैं। जैन समाज की प्रत्येक गतिविधियो में आपका योगदान रहता है। सगीत मण्डली के साथ आप विशेष धार्मिक उत्सवो मे भाग लेकर अपनी कविताओ व भजनो को सुनाते रहते है। इस असार ससार में छोटे से जीवन पर क्या इतराना इसी को लक्ष्य कर कवि कहता है —

नव विकसित कलियो से सचित करके अभय मधुकर मकरंद,
फूल फूल को गूज रहे हो, लघु से जीवन पर मति मन्द।
पतझड के दिन भूल, फूल तो फूल रहा है अज्ञान,
तुम किस मद मे गूज रहे हो, भूला आत्म का समकित ज्ञान।

23 युगलकिशोर (कोटा)

आध्यात्मिक प्रवक्ता, लेखक व कवि युगल जी के नाम से प्रख्यात है। आपने अनेक पद्य व कवितायें लिखी है। सर्वाधिक प्रसिद्ध पुस्तक देवशास्त्र गुरु पूजा है। पूजा समूचे भारत में बड़ी भक्ति स पढी जाती है। प्रत्येक मन्दिर मे प्रतिदिन पूजा करने वाला भक्त पुजारी अपनी पूजा मे युगल जी के साथ-साथ अपने मनोगत भावो को व्यक्त करता है–

इन्द्रिय के भोग मधुर विष सम, लावण्यमयी कचन काया,
यह सब कुछ जड़ की क्रीड़ा है मैं अबतक जान नही पाया।
मैं भूल स्वय के वैभव को पर ममता मे अटकाया हू,
अब सम्यक् निर्मल नीर लिए, मिथ्या मन धोने आया हू।

कवि आध्यात्म रस से ओत-प्रोत कविता करने मे दक्ष है तथा अपने काव्य पाठों से जन-जन के हृदय मे सहज ही समा जाते है।

24. अनूपचन्द जैन (कोटा)

आपके कृतित्व की समुचित जानकारी जिन लोगो को है वे जानते है कि श्री जैन अत्यन्त भावुक तथा कल्पनाशील व्यक्ति है। कविता करने मे आपको प्रारम्भ से ही रुचि है। तथा आपकी कवितायें लोकप्रिय रही है। 'वीरवाणी' शीर्षक कविता का एक अंश देखिये—

मुखरित हुई किसकी गिरा वह शून्य के सकेत पट पर,
कौन जीवन मे जगा यह विवशता के मृत्यु घर पर।
किन्तु जिसने भी सुनी समझी भ्रमर यह वीरवाणी
हो गया गधा वही उन्मुक्त वसुधा के डगर पर।

उक्त कवियो के अतिरिक्त और भी कवि है जो समय-समय पर कविताए लिखते रहते है। श्रीमती सुशीला कासलीवाल गद्य गीत लिखती है। श्री नाथूलाल जैन लेखक एव कवि के रूप मे राजस्थान में सुपरिचित व्यक्ति है। शरद जैन कोटा के उदीयमान कवि हैं।

हिन्दी जैन गद्य साहित्य-6

डॉ. शान्ता भानावत

राजस्थान में स्थानकवासी परम्परा की बडी समृद्ध परम्परा रही है। उसके उन्नयन-संगठन और अभिवर्धन के लिए यहां अनवरत प्रयत्न होते रहे हैं। आत्मोद्धार, लोक-शिक्षण और जन-कल्याणकारी प्रवृत्तियों में यह परम्परा और इसके अनुयायी सदैव उत्साही और अग्रणी रहे हैं। भारतीय राष्ट्रीयता और समाज सुधारात्मक आन्दोलनों के साथ-साथ इस परम्परा में संस्कृत और हिन्दी के अध्ययन की प्रवृत्ति पर विशेष बल दिया जाने लगा। फलस्वरूप समाज में नई चेतना और नव समाज निर्माण का वातावरण मुखरित हुआ।

स्थानकवासी परम्परा धार्मिक क्षेत्र में क्रान्तिवाही परम्परा रही है। समय समय पर कुरूढियों, बाह्य पूजा-विधानों और आडम्बरपूर्ण क्रियाकाण्डों की धूल को झाडकर धर्म के दर्पण को यह साफ-सुथरा करती रही है, उसकी आन्तरिक तेजस्विता को चमकाती-दमकाती रही है। आत्मपरकता के साथ धर्म की समाजपरकता को यहां बराबर महत्त्व दिया जाता रहा है। यही कारण है कि इस परम्परा के साधु, साध्वी और श्रावक-श्राविका निरन्तर समाज सेवा में सक्रिय रहे हैं।

साहित्य के क्षेत्र में पद्य की तरह गद्य में भी इस परम्परा की महत्त्वपूर्ण देन रही है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार के बढने के साथ-साथ जैन सन्त-सतियों ने अपने व्याख्यान खडी बोली हिन्दी में देने प्रारम्भ किये। प्रारम्भिक अवस्था में यह हिन्दी राजस्थानी बोलियों के स्थानीय प्रभाव से युक्त थी। पर धीरे धीरे यह प्रभाव कम होता गया और परिष्कृत हिन्दी का शिष्ट सामान्य रूप प्रतिष्ठित हुआ।

गद्य की लगभग सभी विधाओं में यथेष्ट साहित्य रचना की गई है। इस क्षेत्र में सत-सतियों के साथ-साथ गृहस्थ लेखक भी बराबर सक्रिय रहे हैं। इस दृष्टि से इन गद्य लेखकों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है--(क) संतवर्ग (ख) साध्वी वर्ग और (ग) गृहस्थ वर्ग।

[क] संतवर्ग

यहां प्रमुख गद्य संत साहित्यकारों का परिचय देने का प्रयत्न किया जा रहा है।

1. आचार्य श्री जवाहरलालजी म. —

आप युग प्रवर्तक महान् क्रान्तिकारी आचार्य थे। आपने परम्परागत प्रवचन शैली और अध्ययन क्रम को नया मोड दिया। उसमें समसामयिकता और राष्ट्रीय भावधारा का रंग भरा। संकीर्ण अर्थों में कैद प्राचीन धर्म-ग्रन्थों को नया अर्थ-बोध देकर उनकी रूढि-उच्छेद-मूलक समाजोद्धार और राष्ट्रोद्धार की प्रवृत्तियों को उजागर किया। आपकी वाणी वाग्विलास न होकर अन्तस्तल से निकली सच्ची युगवाणी थी। तत्कालीन राष्ट्रनायकों से आपका संपर्क था। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, सरदार पटेल आदि के साथ आपका विचार-विमर्श और संपर्क-सूत्र बना रहा। स्वाधीनता आन्दोलन के अहिंसात्मक प्रतिरोध, सत्याग्रह, खादी

धारण, विदेशी वस्त्रो का बहिष्कार, हरिजनोद्धार, नारी जागरण, व्यसनमुक्ति, संतति नियमन, दहेज निवारण जैसे सभी रचनात्मक कार्यक्रमो के आप समर्थक थे। आपके उपदेशो से प्रभावित होकर तत्कालीन कई श्रीमतो ने खादी धारण का व्रत लिया और राष्ट्रीय आन्दोलन मे सहयोगी बने।

आपके प्रवचनो की यह विशेषता थी कि वे युग की धड़कन को संभाले हुए शाश्वत सत्यो के व्यजक, और उदात्त जीवनादर्शों के उद्घाटक होते थे। उनमे विचार शक्ति और व्याख्या शक्ति की अद्भुत क्षमता थी। उत्तराध्ययन सूत्र के 29 वें अध्ययन सम्यक्त्व पराक्रम, गृहस्थ धर्म, भक्तामर स्तोत्र आदि पर दिये गये आपके प्रवचनो मे एक प्रबुद्ध विचारक और शास्त्र-दोहक व्याख्याता के दर्शन होते है। प्रवचनो के बीच-बीच पौराणिक, ऐतिहासिक और लोक जीवन से सम्बद्ध छोटे-छोटे कथानक, दृष्टान्त और रूपक न केवल सरसता का सचार करते हैं वरन श्रोता समुदाय के हृदय पर गहरा प्रभाव भी डालते है। आपकी आवेगमयी भाषा और चेतावनी परक उद्बोधन का एक नमूना देखिये—

"मित्रो ! आप लोगो के पास जो द्रव्य है उसे अगर परोपकार मे, सार्वजनिक हित मे और दीन-दुखियो की सहायता पहुचाने मे न लगाया तो याद रखना, इसका ब्याज चुकाना भी तुम्हे कठिन हो जायेगा। ऐसे द्रव्य के स्वामी बनकर आप फूले न समाते होगे कि चलो हमारा द्रव्य बढ़ा है, मगर शास्त्र कहता है और अनुभव उसका समर्थन करता है कि द्रव्य के साथ क्लेश बढा है। जब आप बैंक से ऋण रूप मे रुपया लेते है तो उसे चुकाने की कितनी चिन्ता रहती है। उतनी ही चिन्ता पुण्य रूपी बैंक मे प्राप्त द्रव्य को चुकाने की क्यो नही करते ? समझ रखो, यह सपत्ति तुम्हारी नही है। इसे परोपकार के अर्थ अर्पण करदो। याद रखो, यह जोखिम दूसरे की मेरे पास धरोहर है। अगर इसे अपने पास रख छोडूँगा तो यह यहीं रह जायेगी, लेकिन इसका बदला चुकाना मेरे लिये भारी पड़ जायेगा"।

(दिनाक 30-9-31 को दिया गया व्याख्यान, दिव्य जीवन से उद्धृत)

आपका विशाल गद्य साहित्य 'जवाहर किरणावली' के 35 भागो मे प्रकाशित हुआ है, जिनके नाम क्रमश इस प्रकार है —दिव्य दान, दिव्य जीवन, दिव्य सदेश, जीवन धर्म, सुबाहु कुमार, रुक्मणी विवाह, जवाहर स्मारक प्रथम पुष्प, सम्यक्त्व पराक्रम भाग 1 से 5, धर्म और धर्मनायक, रामवनगमन भाग 1 व 2, अजना, पाण्डव चरित्र भाग 1 व 2, बीकानेर के व्याख्यान, शालिभद्र चरित्र, मारवी के व्याख्यान, सवत्सरी, जामनगर के व्याख्यान, प्रार्थना प्रबोध, उदाहरण माला भाग 1 से 3, नारी जीवन, अनाथ भगवान भाग 1 व 2, गृहस्थ धर्म भाग 1 से 3, सती राजमती और सती मदनरेखा। इसके अतिरिक्त तीन भागो मे राजकोट के व्याख्यान, छह भागो मे भगवती सूत्र पर व्याख्या और कथा साहित्य मे हरिश्चन्द्र तारा, सुदर्शन चरित्र, सेठ धन्ना चरित्र, शकडाल पुत्र व तीर्थंकर चरित्र दो भागो मे प्रकाशित हुए हैं।

2. जैन दिवाकर श्री चौथमल जी म.—

आप प्रभावशाली वक्ता होने के साथ-साथ सफल कवि भी थे। आपका शास्त्रीय ज्ञान गहरा था, पर व्याख्यान शैली इतनी सहज, सरल और सुबोध थी कि श्रोता आत्मविभोर हो जाते थे। सीधी सादी भाषा मे साधारण सी छोटी लगने वाली बात आप इस ढग से कह जाते थे कि उसका प्रभाव देर तक गूजता रहता था। आपके व्याख्यानो का मूल स्वर जीवन को शुद्ध, वातावरण को पवित्र और समाज को व्यसन-विकार मुक्त बनाना था। आपका राजस्थान के राजा-महाराजाओ, जमीदारो, जागीरदारों और रईसो पर बडा प्रभाव था। आपके उपदेशो से प्रभावित होकर कईयो ने मासाहार, मदिरापान, आखेट और जीवहिंसा का त्याग किया था।

आपके व्याख्यानो में सभी धर्मों के प्रति आदरभाव रहता था। जैन कथाओं के अतिरिक्त रामायण और महाभारत पर भी आपके आत्मस्पर्शी व्याख्यान होते थे। राजा से लेकर रक तक आपके उपदेशों की पहुच थी। आपके व्याख्यानो मे बड़े-बड़े सेठ साहूकारो से लेकर धाबी, कुम्हार, नाई, तेली, मोची, रँगर आदि सभी वर्गों के लोग सम्मान पूर्वक सम्मिलित होते थे। मुसलमान श्रोता भी आपके विचारों से प्रभावित थे। सस्कृत, प्राकृत, अरबी, फारसी, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषाओ के आप विद्वान् थे। आपके व्याख्यानो मे भाषागत पाण्डित्य का प्रदर्शन न होकर तद्भव शब्दावली का विशेष प्रयोग होता था। प्राकृत गाथाओ, सस्कृत श्लोको, हिन्दी दोहो, पदो और उर्दू शेर-शायरी का आप नि सकोच प्रयोग करते थे। अधिकाश उद्धृत कविताए स्वरचित होती थी। आपका जीवन कल्पना-विहार मे विचरण करने वाले साहित्यिक कवि का जीवन न होकर कर्त्तव्य क्षेत्र मे दृढ़ता से बढने की प्रेरणा देने वाले एक कर्मठ कवि का जीवन था। धर्म के नाम पर दी जाने वाली बलि की निस्सारता और भक्तो की अज्ञानता पर जो प्रहार आपने किया, उसका एक नमूना देखिये :—

'माताजी के स्थान पर बकरो और भैंसो का वध किया जाता है। लोग अज्ञानवश होकर समझते हैं कि ऐसा करके वे माताजी को प्रसन्न कर रहे हैं और उनको प्रसन्न करेंगे तो हमें भी प्रसन्नता प्राप्त होगी। ऐसा सोचना मूर्खता है। लोग माताजी का स्वरूप भूल गये है और उनको प्रसन्न करने का तरीका भी भूल गये है। इसी कारण वे नृशस और अनर्थ तरीके आज भी काम मे लाते है—सर्व मनारथों को पूरा करने वाली और सब सुख देने वाली उन माता का नाम है दया माता। दया माता की चार भुजाए है। दोनो तरफ़ दो-दो हाथ है। पहला दान का, दूसरा शील का, तीसरा तपस्या का और चौथा भावना का। जो आदमी दान नही देता, समझलो कि उसने दया माता का पहला हाथ ताड दिया है। जो ब्रह्मचर्य नही पालता उसने दूसरा हाथ ताड दिया है। तपस्या नही की तो तीसरा हाथ खण्डित कर दिया है और जो भावना नहीं भाता उसने चौथा हाथ काट डाला है। ऐसा जीव मरकर वनस्पतिकाय आदि मे जन्म लेगा। जहा उसे हाथ पैर नहीं मिलेंगे"।

(दिवाकर दिव्य ज्योति भाग-7 मे से उद्धृत, पृष्ठ 75 व 82)

आपका विशाल प्रवचन साहित्य 'दिवाकर दिव्य ज्योति' नाम मे 21 भागो मे प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त जम्बू कुमार, पार्श्वनाथ, रामायण, आदि कथा ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए है।

3. आचार्य श्री गणेशीलालजी म.—

आप आचार्य श्री जवाहरलालजी म के पट्टधर शिष्य थे। आपके प्रवचनो के तीन संग्रह प्रकाशित हुए है—जैन सस्कृति का राजमार्ग, आत्म-दर्शन और नवीनता के अनुगामी। इनमें जैन सस्कृति के प्रमुख सिद्धान्त और जीवात्मा की परिणति का सरल सुबोध भाषा शैली मे विशद विवेचन किया गया है। आपकी व्याख्यान शैली तीर्थकर स्तुति से आरम्भ होकर शास्त्रीय विषय को पकड़ती है और नानाविध कथा-प्रसगो का स्पर्श करती हुई आगे बढ़ती है। उसमे स्वानुभूत वाणी का तेजोदीप्त स्वर प्रमुख रहता है। एक उदाहरण देखिये—

"जैन दर्शन मे न तो व्यक्ति पूजा को महत्त्व दिया गया है न ही सकुचित घेरो मे सिद्धान्तो को कसने की कोशिश की गई है। आत्म विकास के सदेश को न सिर्फ समूचे विश्व को बल्कि समूचे जीव-जगत को सुनाया गया है। जैन शब्द का मूल भी इसी भावना की नींव पर अकुरित हुआ है। मूल सस्कृत धातु है 'जि' जिसका अर्थ होता है जीतना। जीतने का अभिप्राय कोई क्षेत्र या प्रदेश जीतना नही बल्कि आत्मा को जीतना, आत्मा की बुराइयो और कमजोरियो का जीतना है"।

(जैन सस्कृति के राजमार्ग से उद्धृत, पृष्ठ-9)

4. आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी—

आप प्रखर चिन्तक, मधुर व्याख्याता और विशिष्ट साधनाशील संत हैं। अपने सुदीर्घ साधनामय जीवन मे जहा आप आत्म-कल्याण की ओर प्रवृत्त रहे वही जनकल्याण की ओर भी सदैव सचेष्ट रहे। सरलता के साथ भव्यता, विनम्रता के साथ दृढ़ता और ज्ञान-ध्यान के साथ सघ-सचालन की क्षमता आपके व्यक्तित्व की विशेषताए है।

यो आपकी जन्मभूमि और कर्मभूमि महाराष्ट्र है पर सन्त किसी प्रदेश विशेष से बन्धे हुए नही रहते। देश के कई भू भाग आपकी देशना से लाभान्वित हुए है। राजस्थान भी उनमे से एक है। ब्यावर, उदयपुर, भीलवाडा, नाथद्वारा, जोधपुर, बडी सादडी, बदनौर, प्रतापगढ़, जयपुर, कुशलपुरा आदि स्थानो पर चातुर्मास कर आपने राजस्थान-वासियो को आध्यात्मिक प्रेरणा और सामाजिक नव-चेतना प्रदान की है। श्री वर्धमान स्थानकवासी श्रमण सघ के आचार्य के रूप मे आपका व्यक्तित्व बहुमुखी एव महान् है।

आपकी प्रेरणा से देश के विभिन्न भागो मे कई सस्थाओ का जन्म हुआ। जिनमे मुख्य हैं—श्री त्रिलोकरत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी जैन धर्म प्रचारक सस्था, नागपुर, श्री प्राकृत भाषा प्रचार समिति आदि।

आचार्य श्री का प्राकृत, सस्कृत, मराठी, हिन्दी आदि भाषाओ पर पूर्ण अधिकार है। आपने कई ग्रन्थो का मराठी मे अनुवाद किया है जिनमे मुख्य हैं —आत्मोन्नति चा सरल उपाय, जैन धर्मा विषयी अजैन विद्वाना चे अभिप्राय (दो भाग), जैन धर्मा चे अहिसा तत्त्व, वैराग्य शतक, उपदेश रत्नकोष आदि। हिन्दी भाषा म भी आपकी कई पुस्तके है। ऋषि सम्प्रदाय का इतिहास म आपका इतिहासज्ञ और गवेषक का रूप सामने आया है। ज्ञान-कुजर दीपिका और अध्यात्म दशहरा (श्री त्रिलोक ऋषि प्रणीत) मे आपका विवेचक और व्याख्याकार का रूप प्रकट हुआ है। त्रिलोक ऋषि, रत्न ऋषि, देवजी ऋषि आदि के आपने जीवन चरित्र भी लिखे है। आप धीर, गम्भीर और मधुर व्याख्याता है। आपकी वाणी मे विचारो की स्थिरता, निर्मलता और भद्रता का रस है। आगम और आगमेतर साहित्य का आपका गूढ और व्यापक अध्ययन है। इसकी झाकी आपके प्रवचनो मे सर्वत्र देखी जाती है। आपके प्रवचनो के 'आनन्द-प्रवचन' नाम से छह भाग प्रकाशित हुए है। जीवन का सदाचारनिष्ठ बनाने मे ये प्रवचन बड़े सहायक है। इनमे प्रयुक्त सूक्तिया हृदयस्पर्शी है तथा स्थान-स्थान पर आये हुए प्रासगिक दृष्टान्त और कथा-प्रसग प्रभावकारी हैं। एक उदाहरण देखिये —

"बीज छोटा सा होता है किन्तु उसी के द्वारा एक बडा भारी वृक्ष निर्मित हो जाता है। कहा बड़ का छोटा सा बीज केवल राई के समान और कहा विशालकाय तरुवर, जिस पर सैकड़ो पक्षी बसेरा लेते है तथा सैकडो थके हुए मुसाफिर जिसकी शीतल छाया मे रुक विश्राम लेकर अपने को तरोताजा बना जाते है। छोटे से बीज का महत्त्व बडा भारी होता है क्योंकि उसके अन्दर महान् फल छिपा हुआ होता है। एक सुन्दर पद्य मे कहा भी है—

बीज बीज ही नही, बोज मे तरुवर भी है।
मनुज मनुज ही नही, मनुज मे ईश्वर भी है।

कितनी यथार्थ बात है। एक बीज केवल बीज ही नही है, वह अपने मे एक विशाल वृक्ष-समाये हुए है, जो सीचा जाने पर ससार के समक्ष आ जाता है। इसी प्रकार मनुष्य केवल नामधारी मनुष्य ही नही है, उसमे ईश्वर भी है जो आत्मा को उन्नति की ओर ले जाता हुआ अपने सदृश बना लेता है"।

(आनन्द-प्रवचन, भाग-2, पृष्ठ-371 से उद्धृत)

5. आचार्य श्री हस्तीमल जी म.—

आप जैन समाज के क्रियाशील संत, उत्कृष्ट साधक, प्रखर व्याख्याता और गंभीर गवेषक विद्वान् हैं। आपकी वाणी में परम्परा और प्रगतिशीलता का हितवाही सामंजस्य है। गजेन्द्र मुक्तावली, आध्यात्मिक साधना, आध्यात्मिक आलोक, प्रार्थना प्रवचन, गजेन्द्र व्याख्यान माला भाग 1 से 3 में आपके कतिपय चार्तुमास-कालीन प्रवचन संकलित किये गये हैं। आपके प्रवचन में कथा भाग कम, स्वानुभूत साधना से प्रसूत वाणी का अंश अधिक रहता है। शास्त्र-सम्मत यह वाणी समाज और राष्ट्र की व्यापक समस्याओं का समाधानात्मक स्वरूप प्रकट करती हुई जब श्रोताओं के हृदय को स्पर्श करती है तो वे आध्यात्मिक रस में डूबने-तैरने लगते हैं। प्राकृत, संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होने के कारण आपकी भाषा परिष्कृत और प्राजल होती है। वाणी से सहज ही सूक्तियां प्रस्फुटित होती रहती हैं। शास्त्र की किसी घटना या चरित्र को आधुनिक संदर्भ में आप इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि वह हमारे लिए अत्यन्त प्रेरणादायी और मार्गदर्शक बन जाता है।

आपके प्रवचन मूलतः आध्यात्मिक होते हुए भी सामाजिक चेतना और राष्ट्रीय एकता के भाव व्यंजित करने में विशेष सहायक रहते हैं। 'आध्यात्मिक साधना' और 'आध्यात्मिक आलोक' में संग्रहीत प्रवचनों में आत्म-जाग्रति का स्वर प्रमुख है। श्रमणोपासक आनन्द के जीवन का चित्रण करते हुए एक आदर्श सद्गृहस्थ के जीवन की भव्य झांकी प्रस्तुत की हुई है। आपकी ये पंक्तियां कितनी प्रेरणा दायक हैं—

'जिस प्रकार एक चतुर किसान पाक के समय विशाल धान्य राशि पाकर खूब खाता, देता और ऐच्छिक खर्च करते हुए भी बीज को बचाना नहीं भूलता वैसे ही सम्यक् दृष्टि गृहस्थ भी पुण्य का फल भोग करते हुए सत् कर्म साधना रूप धर्म बीज को नहीं भूलता।'

(आध्यात्मिक साधना से उद्धृत, पृष्ठ-3)

'प्रार्थना प्रवचन' में प्रार्थना के स्वरूप, प्रार्थना के प्रकार, उसके प्रयोजन और उसकी सिद्धि पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विवेचन उपलब्ध होता है। इसका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है। 'गजेन्द्र व्याख्यानमाला' के पहले भाग में पर्वाधिराज पर्युषण के आठ दिनों में दिये गये आठ प्रवचन संकलित हैं। आचार्य श्री ने पर्युषण के आठ दिनों को क्रमशः दर्शन दिवस, ज्ञान दिवस, चारित्र दिवस, तप दिवस, भक्ति दिवस, स्वाध्याय दिवस, दान दिवस और अहिंसा-प्रतिष्ठा दिवस नाम से सम्बोधित कर तत्-सम्बन्धी विषयों पर मार्मिक उद्बोधन दिया है।

आचार्य श्री प्रखर व्याख्याता होने के साथ-साथ इतिहासज्ञ और शोधकर्मी विद्वान् भी हैं। आप ही की प्रेरणा से जयपुर में आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार व जैन इतिहास समिति की स्थापना हुई है। इनके माध्यम से लगभग 30,000 हस्तलिखित प्रतियों का विशाल संग्रह अस्तित्व में आया और 'पट्टावली प्रबन्ध संग्रह' तथा 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' के दो भाग प्रकाशित हुए। इन ग्रन्थों में आचार्य श्री की श्रमशीलता, अध्ययन की व्यापकता, प्रमाण-पुरस्सरता, तथ्य भेदिनी सूक्ष्म दृष्टि और तुलनात्मक विवेचना पद्धति का परिचय मिलता है।

6. आचार्य श्री नानालाल जी म.—

आप आचार्य श्री गणेशीलाल जी म. के पट्टधर शिष्य हैं। आपका व्यक्तित्व भव्य और प्रभावक है। वाणी में ओज और आधुनिक जीवन संवेदन है। आपके उपदेश सर्वजनहितकारी और समता दर्शन पर आधारित समाज के नव निर्माण के लिए प्रेरक और मार्गदर्शक होते हैं।

आपके प्रवचनों में आत्म साधना, सेवा, व्यसन मुक्ति और विकार-विजय पर विशेष बल रहता है। आपसे उद्बोधित होकर समाज मे अस्पृश्य समझे जाने वाले बलाई जाति के हजारों परिवारों ने व्यसनमुक्त, शुद्ध सात्विक संस्कारी जीवन जीने का व्रत लिया और ये 'धर्मपाल' नाम से सम्बोधित किए जाने लगे।

आपकी व्याख्यान शैली रोचक और बुद्धिजीवियों को प्रभावित करने वाली होती है। अपने व्याख्यान का प्रारम्भ आप भी तीर्थ करों की स्तुति से करते हैं और उसी को माध्यम बनाकर आत्मतत्त्व को छूते हुए परमात्म दर्शन की गहराइयों मे उतरते चलते हैं। व्याख्यान के अन्त मे कोई न कोई चरिताख्यान धारावाही रूप से अवश्य चलता है। ये चरिताख्यान घटनाओ की मात्र विवृत्ति न होकर आधुनिक जीवन समस्याओ के समाधान कारक आख्यान होते हैं। भाषा की प्राजलता, भावों की तीव्रता और शैली की प्रवाहमयता आपके व्याख्यानों की मुख्य विशेषता है।

आपके व्याख्यानो के अब तक कई सग्रह प्रकाशित हो चुके है। 'पावस-प्रवचन' नाम से पाच भागो मे आपके जयपुर के चातुर्मास-कालीन व्याख्यान सग्रहीत हैं। 'ताप और तप' मे मंदसौर के 'शान्ति के सोपान' मे ब्यावर के तथा 'आध्यात्मिक वैभव', 'आध्यात्मिक आलोक' मे बीकानेर के व्याख्यान संग्रहीत है। 'समता दर्शन और व्यवहार' आपकी अन्य उल्लेखनीय कृति है जिसमे समता सिद्धान्त का दर्शन और व्यवहार के धरातल पर विवेचन प्रस्तुत करते हुए समतामय आचरण के 21 सूत्रों और साधक के तीन चरणो समतावादी, समताधारी और समतादर्शी का स्वरूप निरूपित किया गया है। अन्त मे समता समाज की रूपरेखा और उसके निर्माणो के लिए सक्रिय होने की प्रेरणा दी गई है। आपको व्याख्यान-विवेचन शैली का एक उदाहरण इस प्रकार है :—

'ताप से अगर मुक्ति पानी है तो उसका उपाय है तप। तप करोगे तो ताप से छुटकारा मिल जायेगा। पर-पदार्थों का मोह और विकारो की आग अन्तर्चेतना को ताप से जलाती है क्योकि उनमे फसे रहने के कारण आत्मा की दशा लकड़े की सी बनी रहती है, किन्तु तप उस दशा को बदलता है, उसमे फौलादी शक्ति भर कर उसे सोने को सी उज्ज्वल बनाता है। तप मे आत्मा जब तपती है तो उसका सोना तप कर अपना चरम रूप प्रकट करता है। ताप से आत्मा काली होती है और तप से वह निखरती है।'

(ताप और तप से उद्धृत, पृष्ठ–10)

7. उपाध्याय श्री अमर मुनि—

आपका व्यक्तित्व सर्वतामुखी प्रतिभा का धनी है। आप ओजस्वी वक्ता, ख्याति प्राप्त लेखक, सफल कवि, गूढ़ विवेचक और विद्वान् सत हैं। आपका अध्ययन और अनुभव का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। जैन, बौद्ध और वैदिक तीनों परम्पराओं का आपने गम्भीर अध्ययन किया है। आप व्यवहार में जितने विनम्र और मधुर हैं विचारों में भी उतने ही उदार और सहिष्णु हैं।

कविजी का मुख्य कार्य क्षेत्र आगरा रहा है। सन्मति ज्ञान पीठ के माध्यम से आपने साहित्य की अमूल्य सेवा की है। अब वीरायतन योजना का साकार रूप देने के लिए आपने अपना क्षेत्र राजगृही बनाया है। राजस्थान से भी आपका निकट का सपर्क रहा है और आपने कई चातुर्मास इस क्षेत्र मे किये हैं।

कवि श्री मूलत: साहित्यकार हैं। पद्य और गद्य दोनो क्षेत्रो मे आपकी लेखनी अविराम चलती रही है। कविरूप में तो आप इतने प्रसिद्ध हैं कि कवि जी महाराज के रूप में ही

प्रकाश डाले जाते हैं। प्रबन्ध काव्य के रूप में 'धर्मवीर सुदर्शन' और 'सत्य हरिश्चन्द्र' आपकी लोकप्रिय कृतियां हैं। मुक्तक काव्य के क्षेत्र में कविता-कुंज, अमर माधुरी, अमर गीतांजली, अमर पद्य मुक्तावली, संगीतिका आदि आपकी कई कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं। आपका गद्य साहित्य भी विपुल और वैविध्यपूर्ण हैं। आपने गद्य की सभी विधाओं में लिखा है—क्या कहानी, क्या निबन्ध, क्या संस्मरण, क्या यात्रावृत्त, क्या गद्य काव्य। सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा से आपके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं।

कविजी शास्त्रज्ञ, होते हुए भी प्राचीन शास्त्रीय परम्परा से बन्धे हुए नहीं है। आप युग चेतना और आधुनिक जीवन संवेदना के क्रान्तदर्शी कवि और व्याख्याता हैं। इस कारण आपके विचारों में नया चिन्तन और विषय को नवीन परिप्रेक्ष्य में प्रतिपादित और पुनर्व्याख्यायित करने की क्षमता है। आपकी भाषा में प्रवाह और माधुर्य देखते ही बनता है। आपके विचारों में स्पष्टता, निर्भीकता और समन्वयशीलता का गहरा पुट है। हृदय और बुद्धि, भावना और तर्क, नम्रता और दृढ़ता के मेल से निसृत आपके विचार सबको प्रेरित-प्रभावित करते हैं। एक उदाहरण देखिए—

"सह अस्तित्व का नारा है—आओ हम सब मिलकर चलें, मिलकर बैठें, मिलकर जीवित रहें और मिलकर मरें भी। परस्पर विचारों में भेद है, कोई भय नहीं। कार्य करने की पद्धति विभिन्न है, कोई खतरा नहीं। व्यक्तिगत तन भले ही भिन्न हों, पर मन हमारा एक है। जीना साथ है, मरना साथ है, क्योंकि हम सब मानव हैं और मानव एक साथ ही रह सकते हैं, बिखर कर नहीं, बिगड़ कर नहीं"।

(उपाध्याय अमरमुनि—एक अध्ययन, पृष्ठ 301 से उद्धृत)

8. मरुधर केसरी मुनि श्री मिश्रीमल जी म.—

आप राजस्थानी और हिन्दी के यशस्वी कवि होने के साथ-साथ प्रखर व्याख्याता और सबल संगठक भी हैं। अपने सुदीर्घकालीन संयम निष्ठ साधनामय जीवन में आपने लोकमानस को आत्मार्थी बनाने और प्रोत्साहित करते हुए समाज को संस्कारनिष्ठ और आत्म निर्भर बनाने की दृष्टि से विभिन्न जनकल्याणकारी संस्थाओं, शिक्षणालयों और छात्रावासों को स्थापित करने की प्रेरणा दी है।

आपकी प्रवचन शैली में मिश्री सी मधुरता और समाज में व्याप्त कुरीतियों पर प्रहार करने की कठोरता एक साथ देखी जाती है। किसी गंभीर विषय को उठाकर भी आप छोटे-छोटे पौराणिक प्रसंगों, प्रेरणादायी ऐतिहासिक घटनाओं और अपनी पदयात्रा तथा चातुर्मास काल में सम्बद्ध विविध संस्मरणों और संपर्क में आये हुए विभिन्न व्यक्तियों की जीवन स्थितियों का पुट देकर उसे सहज, सरल और रोचक बना देते हैं। कवि होने के कारण आपके व्याख्यानों में काव्यात्मक अंश का विशेष पुट रहता है। आप अपनी स्वरचित राजस्थानी, हिन्दी कविताओं के अतिरिक्त अन्य साहित्यिक कवियों और उर्दू शायरों के उदाहरण भी देते चलते हैं।

आपका प्रवचन साहित्य विविध और विशाल है। अब तक जो प्रवचन संग्रह प्रकाशित हुए हैं, उनमें मुख्य हैं- जीवन ज्योति, साधना के पथ पर, प्रवचन प्रभा, धवल ज्ञान धारा और प्रवचन सुधा। 'जैन धर्म में तप, स्वरूप और विश्लेषण' आपकी अन्य महत्वपूर्ण कृति है जिसमें तप का सांगोपांग समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। आपके द्वारा श्रीमद् देवेन्द्र सूरि विरचित 'कर्म ग्रन्थ' की छह भागों में विस्तृत व्याख्या, विवेचन और समीक्षा की गई है। 'श्री मरुधर केसरी सुधर्म प्रवचन माला' के अन्तर्गत आपकी क्षमा, मुक्ति, आर्जव, मार्दव, लाघव,

सत्य, संयम, तप, त्याग और ब्रह्मचर्य, इन दस धर्मों पर दस लघु पुस्तिकायें प्रकाशित की गई हैं। आपकी प्रवचन शैली का एक उदाहरण देखिए—

'अब कचरे का ढेर कौनसा है? हमारे भीतर जो ये क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय हैं ये ही सारे कचरे के ढेर है। इसी कचरे के ढेर में अपनी आत्मा के गुणरूपी अमूल्य रत्न दबे हुए हैं। इस ढेर में से जो आत्मार्थी पुरुष अन्वेपक बनकर, पक्का ढूंढिया बनकर अपने आपको उसमें आत्मसात करके खोजता है तो वे अमूल्य रत्न उसे मिल जाते है। भाई, ढूंढिया (अन्वेषक) बने बिना वे रत्न नही मिल सकते। ढूंढिया बने बिना न आज तक किसी को मिले हैं और न आगे मिलेंगे इसीलिए कहा है 'जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ।'

(प्रवचन प्रभा से उद्धृत, पृष्ठ—254)

9. श्री मधुकर मुनि—

सौम्य और मधुर व्यक्तित्व के धनी मुनि श्री मिश्रीमल जी 'मधुकर', मधुकर की तरह ही गुणग्राही और आध्यात्मिक भावो की गुंजार करने वाले हैं। मुनिश्री मधुर व्याख्याता होने के साथ-साथ सरस कथाकार भी है। जीवन के नैतिक और धार्मिक अभ्युत्थान मे आपकी रचनाये बडी प्रेरक और सहायक है। गहन विषयो को भी सरल ढग से समझाने की आपकी अनूठी कला है। व्याख्यानो के पीछे आपका गहन चिन्तन और आत्म साधना का तेजोदीप्त अनुभव है। आपके प्रकाशित प्रवचन सग्रहो मे 'अन्तर की ओर' दो भागो मे तथा 'साधना के सूत्र' मुख्य हैं। 'अन्तर की ओर' मे हृदय को शुद्ध, पवित्र और उज्ज्वल बनाने वाले प्रेरक तत्त्वो को लेकर दिये गये प्रवचन सकलित हैं। 'साधना के सूत्र' में आत्मा को साधुत्व के मार्ग पर बढाने वाले मार्गानुसारी 35 दिव्य गुणो का पौराणिक एव नवीन उदाहरण देकर इस ढग से विवेचन किया गया है कि उनका कथन बड़ा ही स्पष्ट, रोचक, प्रभावक और मौलिक बन पडा है। साधना के ये सूत्र एक प्रकार से जीवन निर्माण के सूत्र कहे जा सकते है। एक नमूना देखिए—

"सद्गृहस्थ के जीवन को एक महावृक्ष की तरह माना गया है, जिसकी डालियों पर हजारो प्राणी अपना घोंसला बनाए जीवन गुजारते है। सैकडो हजारो प्राणो का आधार होना है और उसकी छाया में प्राणियो को जीवन मिलता है। वह वृक्ष यदि यह सोचे कि ये डालिया, शाखाये, पत्तियां और फूल निरे भार है, इनसे मुझे क्या करना है, मै तो अकेला नगा खडा रहूंगा तब भी अपना जीवन गुजार लूंगा तो इससे न उन प्राणियो को आश्रय मिलेगा और न वृक्ष की शोभा बढेगी। वृक्ष का वृक्षत्व इसी में है कि वह अपने फल, फूल, शाखा, प्रशाखाओं का विस्तार करके हजारो जीवो को आश्रय देता रहे। इसी प्रकार हमारा जीवन है, जो स्वयं का विकास करता हुआ दूसरों के विकास मे सहायक बने। निराश्रितों को आश्रय दे, शक्तिहीनो को शक्ति दे और जिन्हे पोषण की आवश्यकता है, दया की आवश्यकता है उन्हे सपोषण एव शीतल छाया मे रक्षित करे।

(साधना के सूत्र से उद्धृत, पृष्ठ 337)।

सुगम साहित्यमाला के अन्तर्गत अनेकान्त, कर्म, अहिंसा, गृहस्थ धर्म, अपरिग्रह, तप, गुणस्थान, जैनतत्त्व, जैन संस्कृति, भगवान महावीर और उनकी शिक्षाओं पर आपकी 12 लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित हुई है।

मुनि श्री का कथाकार रूप 'जैन कथामाला' के अद्यावधि प्रकाशित 12 भागों में प्रकट हुआ है। जैन आगमों और उनसे सम्बद्ध टीका ग्रन्थो मे हजारों कथाए बिखरी पडी हैं। उनका चयन कर आधुनिक शैली में उन्हें लिखने की महती आवश्यकता थी। यह ऐतिहासिक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य इस शृंखला द्वारा पूरा हो रहा है। प्रारम्भ के छ भागो में सोलह सतियों और चौबीस तीर्थंकरों की पावन जीवन कथायें दी गई है। सातवें और आठवें भाग में मगध के

राजा श्रेणिक, नौवें भाग में महायशस्वी अभय कुमार, दसवें भाग में महावीर के सुप्रसिद्ध दस श्रावकों, ग्यारहवें भाग में अन्य प्रसिद्ध श्रमणोपासकों तथा बारहवें भाग में जम्बू कुमार की कथायें हैं। सभी कथाओं की शैली रोचक, प्रवाहपूर्ण और आकर्षक है।

10. पं. मुनि श्री हीरालाल जी म.—

आप समाज के ओजस्वी व्याख्याता और शास्त्र मर्मज्ञ विद्वान् संत हैं। आपके व्याख्यान अत्यन्त मनोहारी, सारगर्भित और हृदय को पिघला देने वाले होते हैं। आत्मोत्थान के साथ समाज में नव चेतना जाग्रत करना आपका मुख्य उद्देश्य रहता है। शास्त्रीय दुरुह विषय को भी आप लोक कथाओ, लोक गीतो, महापुरुषो की घटनाओं, चुटकलो आदि का पुट देकर लोकभोग्य बना देते हैं। 'हीरक प्रवचन' नाम से दस भागो मे आपके प्रवचन प्रकाशित हुए हैं। आपकी भाषा शैली देहाती सस्कार लिए हुए हैं। घरेलू वातावरण से युक्त होने के कारण वह अत्यन्त सरल और सहज बन गई है। एक उदाहरण देखिए—

'देखो! इस ससार मे ऐसे तो अनेक माताए हैं जो अनेकों पुत्रो को जन्म देती हैं परन्तु उसी माता का पुत्र को जन्म देना सार्थक है और वही माता इस ससार मे धन्यवाद की पात्र है जिसका बेटा दूसरों की रक्षा के लिए अपने प्राणो की भी आहुति दे डालता है। परन्तु वही वीर पुत्र दूसरो की रक्षा के लिए अपने प्राणो की बाजी लगाता है जिसके हृदय मे कोमलता और सहृदयता होती है। एक कठोर हृदय मे दया का निवास नही रहता। ज्ञानी पुरुषों ने बताया है कि मानव वही है जिसके हृदय मे निम्न चार बाते पाई जाती हैं अर्थात् मानवता प्राप्त करने के लिए एक मानव के हृदय में भद्रिकता, विनय सपन्नता, दयालुता और अमत्सरता का होना परमावश्यक है।'

(हीरक प्रवचन भाग 1, से उद्धृत, पृष्ठ–161)

11. श्री पुष्कर मुनि—

आप समाज के चिन्तनशील मनीषी सन्त है। साहित्य और शिक्षण के प्रचार-प्रसार में आपका विशेष योगदान रहा है। आपके प्रवचनो के प्रमुख सकलन हैं 'साधना का राजमार्ग और जिन्दगी की मुसकान'/ 'साधना का राजमार्ग', मे सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, और सम्यक् चारित्र तथा उसके प्रमुख तत्त्वो का सरल ढग मे शास्त्रसम्मत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। 'जिन्दगी की मुस्कान' में जीवन की जीवन्तता बनाये रखने वाले मूल तत्त्वों को लेकर भावात्मक शैली में बहुत ही मर्मस्पर्शी विचार प्रकट किए गये हैं। भावों की गम्भीरता के साथ भाषा की सजीवता देखते ही बनती है। एक उदाहरण देखिए—

'हा, तो जीवन का सही विकास करना हो तो गति-प्रगति करिये। 'चर' धातु से ही आचार, विचार, सचार, प्रचार, उच्चार आदि शब्द बनते है। इन सबके मूल में चलना है, 'चर' क्रिया है। आप भी अपने जीवन मे 'चर' को स्थान दीजिए, घबराइये नही, आपका व्यक्तित्व चमक उठेगा, आपका विकास सर्वतोमुखी हो सकेगा, आपकी प्रतिभा बहुमुखी खिल उठेगी, आपके मनमस्तिष्क का प्रवाह इसी ओर मोडिये। श्रमण सस्कृति का आकर्षण इसी ओर रहा है। चरैवेति, चरैवेति, चले चलो बढे चलो।

(जिन्दगी की मुस्कान से उद्धृत, पृष्ठ–149)

12. श्री देवेन्द्र मुनि—

आप सरस व्याख्याता, सफल लेखक और गूढ गवेषक विद्वान् संत हैं। आपने विद्वानों और सामान्य पाठकों दोनों के लिए विपुल साहित्य का निर्माण किया है। भगवान् महावीर एक

अनुशीलन, भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण एक अनुशीलन, भगवान् पार्श्व एक समीक्षात्मक अध्ययन, ऋषभदेव एक परिशीलन, जैन दर्शन, स्वरूप और विश्लेषण आदि आपकी समीक्षात्मक ढंग से लिखी गयी शोध कृतियां हैं। इनसे आपके गहन अध्येता, प्रबुद्ध चिन्तक, और सुधी समीक्षक रूप का पता चलता है। इन कृतियों में आपकी शैली ऐतिहासिक और तुलनात्मक रही हैं।

आपका अन्य रूप सरस कथाकार और मधुर चिन्तक का है। आपकी हृदयहारिणी भावुकता, कल्पनाशीलता और साधना का स्वानुभव जिन कृतियो में प्रतिफलित हुआ है, उनमें प्रमुख है—चिन्तन की चांदनि, अनुभूति के आलोक में, विचार रश्मियां, विचार और अनुभूतियां, बिन्दु में सिन्धु, प्रतिध्वनि, खिलती कलियां मुस्कराते फूल आदि। ये कृतियां जीवन पथ पर बढ़ने वाले लोगो के लिए दीप स्तम्भ के समान हैं। इनमें मुनि श्री ने अपने व्यापक ज्ञान और अनुभव से समय-समय पर जो कुछ चिन्तन किया, उसे विभिन्न दृष्टान्तों, कथाओं, रूपकों और प्रसंगों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इनमें प्रकट किए गये विचार मात्र अध्ययन के लिए न होकर मनन और आचरण की प्रेरणा देने वाले हैं।

मुनि श्री का प्रवचन और निबन्ध साहित्य भी विशाल है। सस्कृति के अचल में, साहित्य और सस्कृति, धर्म और दर्शन आदि कृतियो मे यह सगृहीत हैं। आपकी शैली सहज, सरल और प्रभावपूर्ण है। कही भी वह दुर्बोध नही बनती। एक विशेष प्रकार के आन्तरिक अनुशासन से वह अनुगुजित रहती है। एक उदाहरण देखिए—

"संस्कृतनिष्ठ व्यक्ति का जीवन कलात्मक होता है। वह जीवन अगरबत्ती की तरह सुगन्धित, गुलाब की तरह खिला हुआ, मिश्री की तरह मीठा, मखमल की तरह मुलायम, सूर्य की तरह तेजस्वी, दीपक की तरह निर्भीक और कमल की तरह निर्लिप्त होता है। उसके जीवन में आचार की निर्मल गगा के साथ विचार की सरस्वती और कला की कालिन्दी का सुन्दर संगम होता है।"

(सस्कृति के अचल में से उद्धृत, पृष्ठ-4)

13. श्री गणेश मुनि—

आप सरस कवि और ओजस्वी व्याख्याता होने के साथ-साथ प्रबद्ध चिन्तक और शोध-कर्मी विद्वान सत हैं। गद्य और पद्य दोनो पर आपका समान अधिकार है। पद्य के क्षेत्र में जहां आपने कई नये प्रयोग किए वहा अनुसन्धान के क्षेत्र को भी आपने नई दिशा दी। 'इन्द्र भूति गौतम एक अनुशीलन' आपकी एक ऐसी ही कृति है। आगम साहित्य का अधिकांश भाग इन्द्रभूति गौतम और भगवान महावीर के सवाद-रूप मे है। ऐसे महिमामय, असाधारण व्यक्तित्व पर जैन, बौद्ध और वैदिक साहित्य के परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर पहली बार विशद विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अहिंसा जैन धर्म का ही नही भारतीय सस्कृति का प्राण तत्त्व है। इस पर विपुल परिमाण में तात्त्विक और सैद्धान्तिक निरूपण किया गया है। पर मुनि श्री ने वर्तमान युग की समस्याओं के समाधान के रूप में अहिंसा के रचनात्मक उपयोग का व्यावहारिक रूप प्रस्तुत कर उसे एक बहु-आयामी धरातल प्रदान किया है। 'आधुनिक विज्ञान और अहिंसा' तथा 'अहिंसा की बोलती मीनारें' पुस्तकों में मुनि श्री का धर्म और विज्ञान को एक दूसरे के पूरक के रूप में प्रस्तुत करने का चिन्तन अभिनन्दनीय है।

"हवाई जहाज के अन्दर दो यन्त्र होते हैं। एक यन्त्र हवाई जहाज की रफ्तार को घटाता-बढ़ाता है और दूसरा यन्त्र दिशा का बोधक होता है जिससे चालक हवाई जहाज की गति विधि को ठीक से संभाले रहता है। इसी प्रकार विश्व में दो शक्तिरूप यन्त्र अविराम गति से

काम कर रहे हैं। एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। भौतिक यन्त्र विविध सुख सुविधा व कार्यों की रफ्तार बढ़ाता है, और उसके वेग को कम ज्यादा करता है, तो अध्यात्म यन्त्र दिशा दर्शन देता है, हानि-लाभ का परिज्ञान करवाता है और मंजिले मकसद तक पहुंचाने का प्रयास करता है। इसी अध्यात्म शक्ति (अहिंसा) के द्वारा हम विश्वविनाशक तत्त्व के निर्माताओं का मन, मस्तिष्क बदल सकते हैं और उनके प्रयासों की अनुपयुक्तता को समझा सकते है।"

('अहिंसा की बोलती मीनारें' से उद्धृत, पृष्ठ--161)

'प्रेरणा के बिन्दु' में मुनि श्री ने छोटे-छोटे रूपकों के माध्यम से जीवन यात्रा पर बढने वाले पथिकों को आस्था, विश्वास और साहस का सम्बल लुटाया है।

14. श्री भगवती मुनि 'निर्मल'—

आप समाज के युवा साहित्यकार और प्रबुद्ध तत्त्व चिन्तक हैं। कवि, कथाकार और आगम व्याख्याता के रूप मे आपका व्यक्तित्व उभर कर सामने आ रहा है। 'लो कहानी सुनो', 'लो कथा कह दू' पुस्तको मे धर्म-ग्रन्थो, इतिहास, पुराण, प्रकृति आदि विविध क्षेत्रो तथा जीवन की साधारण घटनाओ से प्रसग जुटाकर छोटी-छोटी कहानिया लिखी गयी हैं जो बड़ी प्रेरणादायी और जीवन के उत्थान में सहायक है। आपकी भाषा प्रभावमयी और शैली रोचक हैं। 'आगम युग की कहानिया' भाग-1, 2 मे आगमिक धरातल से प्रेरित होकर कहानिया लिखी गई है। इनके पठन से तत्कालीन युग की सामाजिक और सास्कृतिक झाकी भी मिलती चलती है। 'प्रेरणा के प्रकाश स्तम्भ', 'जीवन के पराग कण', बिखरे पुष्प, 'अनुभूति के शब्द शिल्प' आदि आपकी अन्य कृतिया हैं जिनमें अध्यात्म जगत से निसृत अनुभूत विचारो को कथात्मक और गद्य काव्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। एक उदाहरण देखिए—

'कटोरा पास मे रखने से प्यास नही बुझेगी, उसमें रखे हुए पानी को अपने गले मे उतारना होगा। शरीर की पूजा छोडकर आत्मा के सहज स्वाभाविक गुणो को अपनाना ही सच्चे साधक का लक्ष्य होना चाहिए। शरीर की पूजा तो अनन्त काल मे होती ही रही है, उसमे आत्मा भटकी है, किनारे पर नही आयी। बहुधा साधक ने आत्मा के गुणो के गीत तो गाये, परन्तु उनमे आत्मा को भिगो कर उसे तृप्त नही किया।'

(अनुभूति के शब्द शिल्प से उद्धृत, पृष्ठ-108)

15. श्री रमेश मुनि—

आप मेवाड भूषण श्री प्रतापमलजी म. के विद्वान् शिष्य हैं। तत्त्व चिन्तक और सफल कवि होने के साथ साथ आप सरस कथाकार भी हैं। 'प्रताप कथा कौमुदी' के पाच भागों में जैन आगमो और जैन चरित्रों मे आये हुए विविध प्रसगों को लेकर आपने जो कथाये लिखी हैं वे बड़ी प्रेरणादायी हैं। आपमे वर्णन की क्षमता, चित्रोपमता तथा भाषा का अच्छा प्रवाह है। 'भगवान् महावीर के पावन प्रसग' मे आपने भगवान् महावीर के 65 घटनात्मक और 22 सवादात्मक प्रसगो को बडे ही रोचक कथात्मक ढग से प्रस्तुत किया है। 'चिन्तन के आलोक में' सामाजिक तथा दार्शनिक चिन्तन के धरातल से लिखे गये आपके छोटे-छोटे सुभाषित सगृहीत है। इनका अध्ययन करते समय शास्त्र और लोकजीवन की अनुभूति साथ-साथ होती चलती है। एक उदाहरण देखिए—

'कीमती जवाहरात जैसे सोना, मणि-माणिक्य, हीरे, पन्ने, रत्न आदि को मेधावी मानव तिजोरी में छिपा कर रखता है। कारण कि बहुमूल्य वस्तु बराबर नही मिला करती है। उन्हें पाने के लिए उन पर बहुतो की आंखें ताका करती हैं। थोड़ी सी असावधानी हुई कि माल, माल

के ठिकाने पहुंच जाता है। उसी प्रकार अध्यात्माओं के लिये मूल्यवान आभूषण माने हैं उनके द्वारा गृहीत व्रत। व्रत देही के अलंकार हैं जो उत्तरोत्तर आत्म ज्योति को तेजस्वी एवं ऊर्ध्व मुखता की ओर प्रेरित करते हैं। कहा भी है—'देहस्य सारं व्रतधारणम्' मानव देह की सार्थकता इसी में है कि वह यथाशक्ति सुव्रतो को अपनाकर असयमी वृत्तियों को नियन्त्रित करे।'

(चिन्तन के आलोक में से उद्धृत, पृष्ठ-37)

उपर्युक्त संत लेखकों के अतिरिक्त कई युवा संत कथा और निबन्ध क्षेत्र मे बराबर अपना योगदान दे रहे हैं। विस्तार भय से यहां प्रत्येक के सम्बन्ध में लिखना शक्य नहीं है। इन सत लेखकों में श्री अजितमुनि 'निर्मल', श्री सौभाग्य मुनि 'कुमुद', श्री उदय मुनि, श्री महेन्द्र मुनि 'कमल', श्री राजेन्द्र मुनि, श्री रमेश मुनि (पुष्कर मुनिजी के शिष्य) श्री मदन मुनि, मुनि श्री नेमिचन्दजी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

[ख] साध्वी वर्ग.—

जैन सतो की तरह जैन साध्वियो की भी साहित्य सर्जना और सरक्षणा में विशेष भूमिका रही है। स्थानकवासी परम्परा मे कई ऐसी साध्विया हुई हैं जिन्होने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो का प्रतिलेखन कर उन्हे सुरक्षित रखा है। ऐसी साध्वियो में आर्या उमा, केसर, गगा, गुलाबा, चन्दणा, छगना, जेता, ज्ञानां, पन्ना, पदमा, प्रेमा, फूला, मगना, रुकमा, लाछा, सतोखा, सरसा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। महासती भूर सुन्दरी और जड़ावजी ने काव्य क्षेत्र मे सुन्दर आध्यात्मिक गीत प्रस्तुत किए हैं। गद्य क्षेत्र मे भी ये पीछे न रही। आधुनिक युग मे शास्त्रीय अध्ययन के साथ-साथ सस्कृत और हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की प्रवृत्ति साध्वी समुदाय मे भी विशेष रूप से बढ़ी। कई साध्विया अच्छी व्याख्याता होने के साथ-साथ सफल लेखिकाएं भी हैं। इनमें साध्वी उमराव कुवर जी 'अर्चना' और मैना सुन्दरी जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

1. साध्वी उमराव कुंवर जी 'अर्चना'—

आप स्थानकवासी समाज की विदुषी विचारक साध्वी हैं। जैन दर्शन व अन्य भारतीय दर्शन का आपका गहन अध्ययन है। सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, उर्दू, अग्रेजी आदि भाषाओ का आपको अच्छा ज्ञान है। अपने पाद विहार से आपने राजस्थान के अतिरिक्त पजाब, कश्मीर, हिमाचल प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश की भूमि को भी पावन किया है। आपके व्यक्तित्व मे ओज और माधुर्य का सामजस्य है। आपकी प्रवचन शैली स्पष्ट व निर्भीक है।

आपकी कई साहित्यिक कृतिया प्रकाशित हो चुकी हैं। उनमे मुख्य हैं—हिम और आतप, आम्रमंजरी, समाधि मरण भावना, उपासक और उपासना तथा अर्चना और आलोक। 'अर्चना और आलोक' में शास्त्रीय और लौकिक विषयो से सम्बद्ध 21 प्रवचन सकलित है। पौराणिक और आधुनिक जीवन से प्रेरक कथाओ और मार्मिक प्रसगो का उल्लेख करते हुए आपने प्रवाहमयी भाषा और ओजस्वी शैली में अपने विषय का प्रतिपादन किया है। आपके विचारो मे उदारता और चिन्तन मे नवीन दृष्टि का उन्मेष है। धर्म की विवेचना करते हुए आपने लिखा है—

'धर्म के दो रूप हैं—पहला मनः शुद्धि और दूसरा बाह्य व्यवहार। मन की शुद्धि से तात्पर्य है—मन में अवतरित होने वाले क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मोह आदि मनोविकारो को क्षमा, नम्रता, निष्कपटता, सतोष, सयम आदि आत्मगुणों में परिणत कर लेना तथा बाह्य व्यवहार का अर्थ है—आत्म गुणों को जीवन-व्यापार में क्रियान्वित करने के लिए सामायिक, संवर, प्रतिक्रमण तथा व्रत-उपवास आदि क्रियाएं करना। मन को विकारों से मुक्त करना विचार

धर्म है और उन निर्विकारी भावों को विवेकपूर्वक जीवन व्यवहार में उतारना आचार धर्म है। यदि विचारों में राग, द्वेष आदि विकारों का विष नहीं है, तो आचार में भी उनका कुप्रभाव प्रतिलक्षित नहीं होगा।'

(अर्चना और आलोक से उद्धृत, पृष्ठ-303)

2. साध्वी मैना सुन्दरी जी—

सौम्य स्वभाव और मधुर व्यक्तित्व की धनी साध्वी श्री मैनासुन्दरी जी अपनी ओजस्वी प्रवचन शैली और स्पष्ट विचार धारा के लिए प्रसिद्ध हैं। आपके विषय-प्रतिपादन मे शास्त्रीय आधार तो होता ही है, वह नानाविध जीवन प्रसगो, ऐतिहासिक घटनाओ और काव्यात्मक उदाहरणो से सरस और रोचक बनकर श्रोता समुदाय को आत्म विभोर करता चलता है। विशेष पर्व तिथियो और पर्युषण पर्वाराधन के 8 दिनो मे दिये गये आपके प्रवचन विशेष प्रभावशाली और प्रेरक सिद्ध हुए है।

आपके प्रवचनो के दो सग्रह, प्रकाशित हो चुके हैं— दुर्लभ अग चतुष्टय और पर्युषण पर्वाराधन। पहली कृति में मनुष्यत्व, श्रुतवाणी श्रवण, श्रद्धा और सयम मे पुरुषार्थ इन चार दुर्लभ अंगो पर मार्मिक प्रवचन और परिशिष्ट मे इन पर दो-दो कथाए संकलित हैं। दूसरी कृति मे सम्यग्ज्ञान, सम्यक्दर्शन, सम्यक् चारित्र, तप, दान, सयम, आत्म शुद्धि और क्रोधविजय पर जीवन निर्माणकारी सामग्री प्रस्तुत की गई है। आपकी शैली सरस एव सुबोध है, भाषा में प्रवाह है, माधुर्य है और विषय को आगे बढ़ाने की अपूर्व क्षमता है। एक उदाहरण देखिए—

'किसी भयानक वन मे बहुत जोरों से आग लगी हो और उसमे एक अन्धा और दूसरी तरफ एक लूला व्यक्ति झुलस रहा हो, ऐसी विषम बेला मे दोनो आपस में प्रेम करले और कहदे कोई बात नही यदि हम अग अपूर्ण मिले हैं, परन्तु हम एक दूसरे के सहायक बनकर इस बीहड भूमि से पार हो जायेंगे। अन्धा अपने कन्धे पर लूले को चढाले और लूला उन्हे मार्ग-दर्शन करता रहे तो वे दोनो सरलता से पार होगे या नही? उत्तर स्पष्ट है कि अवश्य ही होंगे। तो आइये, हम अपने जीवन को ज्ञान और क्रिया के समन्वय से सुन्दर, समुज्ज्वल स्वरूप प्रदान करे ताकि हमारे लड़खड़ाते कदम अन्धकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर और मृत्यु से अमरत्व की ओर बढ़ सके।

(पर्युषण पर्वाराधन से उद्धृत, पृष्ठ 66)

उक्त साध्वी द्वय के अतिरिक्त अन्य साध्वी लेखिकाओ मे साध्वी श्री रतनकवर जी और निर्मल कवरजी के नाम उल्लेख योग्य है। इन उदीयमान लेखिकाओ के निबन्ध 'जिनवाणी' मासिक पत्रिका, मे समय-समय पर प्रकाशित होते रहते है। इनके अतिरिक्त महासती जसकवरजी, छगन कवरजी, कुसुमवती जी आदि प्रभावशाली व्याख्यानकर्त्री साध्वियां हैं।

[ग] गृहस्थ वर्ग :—

जैन सत-सतियो के समानान्तर ही जैन गृहस्थ वर्ग का भी साहित्य सर्जना मे योग रहा है। यो जैन समाज मुख्यत. व्यावसायिक समाज है पर राष्ट्रीय जीवन के सभी पक्षो को पुष्ट करने में उसकी सबल भूमिका रही है। साहित्य का क्षेत्र भी उससे अछूता नहीं रहा। समाज में व्याप्त कुरीतियो के खिलाफ आवाज बुलन्द करने, नैतिक शिक्षण को बढ़ावा देने, स्वाधीनता आन्दोलन को गतिशील बनाने, धर्म और दर्शन को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने तथा समाज मे ऐक्य और सेवा भावना का प्रसार करने जैसे विविध लक्ष्यों को ध्यान मे रख कर गद्य

साहित्य का निर्माण होता रहा है। कुछ प्रमुख गद्य लेखकों का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है—

1. पं. उदय जैन —

श्री जवाहर विद्यापीठ, कानोड़ के संस्थापक, संचालक, पं. उदय जैन प्रारम्भ से ही ओजस्वी वक्ता और मौलिक चिन्तक रहे हैं। आपकी यह प्रखरता और मौलिक चिन्तना आपके लेखन में भी प्रतिफलित हुई है। स्वतन्त्र विचारक होने के नाते आप निर्भीक होकर स्पष्ट बेलाग भाषा में अपनी बात कहते हैं। भगवान् महावीर के जीवन और सिद्धान्तों से सम्बन्धित 'वीर विभूति' नामक आपका एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है जिसके वर्धमान महावीर, तीर्थंकर महावीर और सर्वज्ञ महावीर तीन खण्ड है। आपकी दूसरी पुस्तक है 'साम्प्रदायिकता से ऊपर उठो'। इसमें 30-35 वर्षों के मध्य समय-समय पर लिखे गए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित जैन धर्म, धार्मिक शिक्षा, जैन सिद्धान्त, समाज संगठन, संघ सेवा आदि से सम्बद्ध विचारोत्तेजक, प्रेरणादायी लेख संकलित हैं। नवयुवकों को प्रेरणा देते हुए आप कहते हैं—

> "वीर नवयुवकों! अपना समाज धनलोलुप बना हुआ है। वीर के तप और त्याग को भूल गया है। गौतम जैसे शिष्य ने निर्वाणोत्सव मनाया था। आज हमें उसी तरह सद्ज्ञान का प्रदीप जला कर मनाना है। संसार को शांति, अहिंसा का पाठ पढ़ा कर मनाना है। संसार में प्रज्वलित हिंसा की आग अब शांत करना है। यह कार्य वीर के अनुयायी ज्ञान और क्रिया की दो पाखों वाले जैन युवक ही कर सकते हैं। अतः हे नवयुवाओ आप उठो, निर्भय होकर अपने पुरुषार्थ को बताओ और अपनी सारी प्रवृत्तियां समाजोत्थान के कार्य में समर्पण कर दो।"

(24-4-45 के जैन प्रकाश में प्रकाशित लेख से उद्धृत)

2. डा. मोहनलाल मेहता—

कानोड़ (उदयपुर) के ही डॉ. मेहता जो वर्तमान में पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी के अध्यक्ष और बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में जैन दर्शन के सम्मान्य प्राध्यापक हैं, सफल लेखक और विचारक विद्वान् हैं। आपका संस्कृत और प्राकृत के साथ हिन्दी, अंग्रेजी और गुजराती भाषाओं पर अच्छा अधिकार है। जैन दर्शन और जैन संस्कृति पर आपने हिन्दी और अंग्रेजी में कई पुस्तकें लिखी हैं जिनमें मुख्य हैं—जैन धर्म दर्शन, जैन आचार, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, प्राकृत और उसका साहित्य, गणितानुयोग। जैन दर्शन, जैन मनोविज्ञान, जैन संस्कृति और जैन कर्म सिद्धान्त पर लिखी हुई आपकी अंग्रेजी पुस्तकें बुद्धिजीवियों के लिए विशेष उपयोगी रही हैं। आपकी लेखन शैली स्पष्ट और सटीक है। सहज, सरल भाषा में आप सीधे ढंग से प्रमाण पुरस्सर बात कह जाते हैं। एक उदाहरण देखिए—

> "मरण दो प्रकार का होता है—बाल मरण और पंडित मरण। अज्ञानियों का मरण बाल मरण एवं ज्ञानियों का पंडित मरण कहा जाता है। जो विषयों में आसक्त होते हैं एवं मृत्यु से भयभीत रहते हैं वे अज्ञानी बाल मरण से मरते हैं। जो विषयों में अनासक्त होते हैं तथा मृत्यु से निर्भय रहते हैं, वे ज्ञानी पंडित मरण से मरते हैं। चूंकि पंडित मरण में संयमी का चित्त समाधियुक्त होता है अर्थात् संयमी के चित्त में स्थिरता एवं समभाव की विद्यमानता होती है, अतः पंडित मरण को समाधि मरण भी कहते हैं।"

(जैन धर्म दर्शन से उद्धृत, पृ. 531)

3. डा. नरेन्द्र भानावत—

राजस्थान विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के प्राध्यापक डा. नरेन्द्र भानावत ओजस्वी वक्ता होने के साथ-साथ सफल साहित्यकार भी हैं। पद्य और गद्य दोनों क्षेत्रों में आपने समान रूप से लिखा है। आप प्रगतिशील चेतना और जीवन आस्था के कवि हैं। आपका इन्सान की कर्मठता, अदम्य जिजीविषा और यातनाओं के खिलाफ अस्तित्व रक्षा के लिए निरन्तर संघर्ष करते रहने का साहसिक स्वर 'माटी कुंकुम' तथा 'आदमी, मोहर और कुर्सी' पुस्तकों में संकलित कविताओं में मुखरित हुआ है। मानवीय संवेदना और प्रगतिशील उदार सांस्कृतिक चेतना के धरातल से लिखी गई आपकी कहानियां 'कुछ मणियां कुछ पत्थर' में तथा एकांकी 'विष से अमृत की ओर' में संगृहीत हैं।

कवि, कहानीकार और एकांकीकार होने के साथ-साथ आप मौलिक चिन्तक और प्रौढ़ निबन्धकार भी हैं। आपने साहित्यिक और सामाजिक संवेदना के धरातल से जैन धर्म और दर्शन को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। 'साहित्य के त्रिकोण' में आपके जैन साहित्य सम्बन्धी 9 समीक्षात्मक निबन्ध संगृहीत हैं। 'राजस्थानी वेलि साहित्य' में जैन वेलि परम्परा का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। 'जिनवाणी' के संपादक के रूप में समय-समय पर लिखी गई आपकी विशिष्ट संपादकीय टिप्पणियां धर्म की तेजस्विता और उसके सामाजिक दाय को उभारने में विशेष सहायक हुई हैं। आपके निबन्धों में आलोचना और गवेषणा के सम्यग् योग से एक विशेष चमत्कृति आ जाती है। आपकी भाषा प्रांजल, शैली रोचक और विचार परिष्कृत होते हैं। एक उदाहरण देखिए—

"किसी को यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि आधुनिकता और वैज्ञानिक युग धर्म के लिए अनुकूल नहीं है या वे धर्म के शत्रु हैं। सही बात तो यह है कि आधुनिकता ही धर्म की कसौटी है। धर्म सहज अंधविश्वास या अवसरवादिता नहीं है। कई लोकसम्मत जीवनादर्श मिल कर ही धर्म का रूप खड़ा करते हैं। उसमें जो अवांछनीय रूढ़ि तत्त्व प्रवेश कर जाते हैं, आधुनिकता उनका विरोध करती है। आधुनिकता का परम्परा या धर्म के केन्द्रीय जीवन तत्त्वों से कोई विरोध नहीं है। उदाहरण के लिए परम्परागत मानवीय आदर्श-प्रेम, सुरक्षा, सहयोग, ममता, करुणा, सेवा आदि गुण लिए जा सकते हैं। हमारी दृष्टि से आधुनिकता इन गुणों से रहित नहीं हो सकती। यह अवश्य है कि ज्यों-ज्यों सामाजिक सुरक्षा के विविध साधन अधिकाधिक प्रस्तुत होते जा रहे हैं त्यों त्यों इन मानवीय गुणों का स्थानान्तरण होता जा रहा है। पेन्शन, प्रॉविडेण्ट फण्ड, जीवन बीमा आदि एजेन्सियों में वे सरकारी संस्थानों में। पर यह स्मरणीय है कि धर्म की भावना ही एक ऐसा रस तत्त्व-संजीवन तत्त्व है जो आधुनिकता के परिपक्व फल को सड़ने से बचायेगा, अन्यथा उसमें कीड़े पड़ जायेंगे और वह खाने के योग्य नहीं रहेगा।

('जिनवाणी' के श्रावक धर्म विशेषांक से उद्धृत, पृष्ठ 4)

उपर्युक्त लेखकों के अतिरिक्त ऐसे लेखकों की संख्या पर्याप्त है जिनके स्फुट लेख समय-समय पर विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। श्री कन्हैयालाल लोढा और श्री हिम्मतसिंह सरुपरया ने आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में जैन धर्म और दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने में अच्छी पहल की है। डा. महेन्द्र भानावत ने जैन साहित्य की लोकधर्मी परम्पराओं को उजागर करने का प्रयास किया है। श्री शान्तिचन्द्र मेहता, श्री मिट्ठालाल मुरड़िया, श्री रिखबराज कर्णावट, डा. इन्द्रराज बैद, श्री रत्नकुमार जैन 'रत्नेश', श्री चांदमल कर्णावट, श्री रतनलाल संघवी, श्री सूरजचन्द डांगी, श्री सपतराज डोसी, श्री जवाहरलाल डागा, श्री प्रतापचन्द भूरा, श्री उदय नागौरी आदि लेखकों ने धार्मिक-सामाजिक संवेदना से प्रेरित होकर कई लेख लिखे हैं।

महिला लेखिकाओं में शान्ता भानावत (लेखिका) ने जीवन की सामान्य घटनाओं को लेकर नैतिक प्रेरणा देने वाली धार्मिक-सामाजिक कहानियां और दैनन्दिन जीवन में घटने वाली बातों को लेकर कई जीवनोपयोगी प्रेरक लेख लिखे हैं। श्रीमती सुशीला बोहरा और रतन चौरड़िया के भी कुछ लेख प्रकाशित हुए हैं।

जैन संत सामान्यतः सीधे लेख नहीं लिखते। उनका अधिकांश साहित्य संपादित होकर प्रकाश में आया है। सपादकों की इस पंक्ति मे यशस्वी नाम हैं पं. शोभाचन्द भारिल्ल और श्री श्रीचन्द सुराणा 'सरस'। भारिल्ल जी ने अपने जीवन का अधिकांश भाग संपादन-सेवा मे ही समर्पित किया है। जवाहर किरणावली, दिवाकर दिव्य ज्योति, हीरक प्रवचन आदि के रूप में जो प्रवचन साहित्य प्रकाशित हुआ है उसका श्रेय आप ही को है। इधर सरसजी के संपादन मे अधिकांश साहित्य प्रकाशित हो रहा है।

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी गद्य साहित्य के क्षेत्र में जैन संतों, साध्वियों और गृहस्थों की महत्त्वपूर्ण देन रही है। इस साहित्य में उत्तेजना का स्वर न होकर प्रेरणा का स्वर है। यह हमारी बाह्य वृत्तियों को उभाडता नही वरन् उन्हें अनुशासित कर अन्तर्मुखी बनाता है। जीवन को पवित्र, समाज को प्रगतिगामी और विश्व को शांतिपूर्ण सह अस्तित्व की ओर उन्मुख करने मे यह साहित्य बड़ा उपयोगी है।

हिन्दी जैन गद्य साहित्य–7.

मुनि श्रीचन्द 'कमल'

तेरापंथ तीसरे शतक के दूसरे दशक में चल रहा है। इस कालावधि में अनेक साधु-साध्वियां साहित्यकार हुए हैं। जैन परम्परा के अनुसार वे पाद-विहार व्रती है। 'तिन्नाणं तारयाणं' सूत्र के अनुसार वे आत्म-साधना के साथ-साथ जन कल्याण की भावना लेकर चलते हैं। इसलिये वे सदा लोक भाषा को महत्व देते रहे हैं। तेरापंथ के नवमाचार्य श्री तुलसी गणी के आचार्यकाल में साधु-साध्वियों का विहार क्षेत्र व्यापक हुआ है। जन सम्पर्क और आवश्यकता वश तेरापंथ के साधु-साध्वियों ने हिन्दी साहित्य में प्रवेश किया। हिन्दी की सर्वप्रथम पुस्तक जीव-अजीव वि स. 2000 में प्रकाश में आई जो मुनिश्री नथमलजी की प्रथम कृति थी। आपकी दूसरी पुस्तक थी अहिंसा। फिर धीरे-धीरे साहित्य सर्जन में गति होती गई। इन तीस वर्षों में साधु-साध्वियों की छोटी-मोटी लगभग तीन-चार सौ कृतियां प्रकाशित हो चुकी है। गद्य साहित्य अनेक विषयों को लक्ष्यकर लिखा गया मुख्य विषय है— विचार प्रधान निबन्ध, योग, जैन दर्शन, यात्रा, संस्मरण, इतिहास, आगमों की व्याख्या, जीवनी, अणुव्रत, उपन्यास-कथा, प्रवचन, काव्य, विविध विषय आदि- आदि।

विचार प्रधान निबन्ध साहित्य :

1 मेरा धर्म केन्द्र और परिधि—लेखक आचार्य तुलसी —पच्चीस निबन्धात्मक इस कृति में धर्म के तेजस्वी रूप को केन्द्र में प्रतिष्ठित करके विविध सम्प्रदायों को परिधि माना गया है। धर्म बुद्धि की दौड़ से दूर अनुभूतिगम्य है। वह व्यक्ति को बाधता नहीं, मुक्त करता है। धर्म की रूढ धारणाओं के प्रति इसमें एक क्रान्तिकारी स्वर मुखरित किया गया है। आज वही धर्म जीवित रह सकता है जिसमे बौद्धिक चुनौतियों को झेलने की क्षमता हो, मन को स्थिरता, बुद्धि को समाधान और हृदय को श्रद्धा का सबल प्रदान करने वाले ये लघु निबन्ध धर्मानुभूति की दिशा में प्रेरणा देने वाले है।

2 क्या धर्म बुद्धि गम्य है —आचार्य तुलसी —प्रस्तुत पुस्तक में धर्म का जो स्वरूप उपस्थित किया गया है उससे धर्म का द्वार उन लोगों के लिए भी खुल जाएगा जो बुद्धिवाद के रंग में रंगकर उसे कपोल-कल्पित मात्र समझते है। वे भी लाभान्वित होंगे जो धर्म को केवल परलोक की छाया में ही देखते हैं। वे भी उपकृत होंगे जो धर्म को आत्मानुभूति का तत्त्व मानते हैं।

3 धर्म एक कसौटी एक रेखा—आचार्य तुलसी .—भारत में धर्म शब्द बहुत प्रिय रहा है। उसकी अत्यन्त प्रियता के कारण उसकी मर्यादा में कुछ उन वस्तुओं का भी समावेश हो गया है, जो इष्ट नहीं है। अनिष्ट का प्रवेश होने पर उसकी परीक्षा का प्रश्न उपस्थित हुआ। परीक्षा का पहला प्रकार कसौटी है। उस पर रेखा खीचते ही स्वर्ण परीक्षित हो जाता है। धर्म की कसौटी है मानवीय एकता की अनुभूति। हृदय और मस्तिष्क पर अभेद की रेखा खचित होते ही धर्म परीक्षित हो जाता है। प्रस्तुत पुस्तक में धर्म को इसी कसौटी पर रखा गया है।

4. तट दो प्रवाह एक—मुनि नथमल :—प्रस्तुत कृति दार्शनिक परिवेश में दर्शन, जीवन, समाज-व्यवस्था के साथ अनिवार्यतः सम्बद्ध जीवन धर्म, राष्ट्र धर्म, एकता, अभय, अहिंसा, सह अस्तित्व आदि प्रश्नों की बुद्धिगम्य और तर्क संगत व्याख्या देती है।

5. समस्या का पत्थर अध्यात्म की छेनी—मुनि नथमल—जहां अध्यात्म है वहां व्यावहारिकता का सामंजस्य नहीं है, यह एकांगीपन समस्या है। दूसरी ओर व्यवहार को पकड़ने वाले व्यक्ति सभी समस्याओं को सुलझाने में केवल व्यवहार को ही उपयोगी मानते हैं। हमारी समस्याएं बाहर के विस्तार से आ रही हैं किन्तु उनका मूल हमारे मन में है। 95 प्रतिशत समस्यायें हमारे मन से उत्पन्न होती हैं। अध्यात्म एक छेनी है, उससे समस्या के पत्थर को तराशा जा सकता है। मन की गहराई में पनपने वाली समस्याओं की गांठ खुलने पर मुक्ति की अनुभूति सहज हो जाती है। प्रस्तुत पुस्तक इसी सत्य की परिक्रमा किए चलती है।

6. महावीर क्या थे ?—मुनि नथमल.—महावीर क्या थे यह प्रश्न पहले भी पूछा जाता रहा है और आज भी पूछा जाता है। इसका उत्तर एक-सा नहीं दिया जा सकता। महावीर के जीवन के अनेक आयाम हैं। सभी आयाम यशस्वी और उज्ज्वल है। उन्होंने सत्य-संधित्सा की भावना से अभिनिष्क्रमण किया, सत्य की साधना की ओर एक दिन स्वयं सत्य हो गए। इस पुस्तक में उनके व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों की स्फुट व्याख्या है और सत्य बनने का प्रशस्त मार्ग निर्दिष्ट है।

योग साहित्य :

1. तुम अनन्त शक्ति के स्रोत हो—मुनि नथमल.—प्रस्तुत पुस्तक अपनी अनन्त शक्तियों के प्रकटन का मार्ग दिखाती है। जैन योग और आसन, कायोत्सर्ग, भाव-क्रिया, मोह व्यूह, सवेग निर्वेद आदि 24 योग विषयो पर जैन साधना की दृष्टि स्पष्ट की गई है।

2 मै मेरा मन मेरी शान्ति—मुनि नथमल:—प्रस्तुत ग्रंथ में मन की एकाग्रता, अमनावस्था की उपलब्धि, धर्मतत्व का चिन्तन, व्यष्टि और समष्टि में अविरोध की साधना पर आधृत शास्वत प्रश्नों को विवेचित किया गया है। इसके तीन खण्ड है—मैं और मेरा मन, धर्म क्रान्ति और मानसिक शाति के 16 सूत्र।

3. चेतना का ऊर्ध्वारोहण—मुनि नथमल.—अनेक लोगो की यह धारणा है कि जैनों की साधना-पद्धति व्यवस्थित नही है, या जैन योग नहीं है। यह पुस्तक इस धारणा को निराधार सिद्ध करती है। इस कृति में जैन योग पर दिए गए प्रवचनों तथा प्रश्नोत्तरो का संकलन है। इसमें अनुपलब्ध जैन साधना-पद्धति को अपने अनुभवो तथा साधना के प्रकाश में खोजने का प्रयत्न किया गया है।

4. भगवान महावीर की साधना का रहस्य भाग, 1-2—मुनि नथमल:—भगवान् महावीर के युग में जो साधना सूत्र ज्ञात थे, आज वे समग्रतया ज्ञात नहीं है। इसमें उन साधना सूत्रों के स्पर्श का प्रयत्न किया है, जो अज्ञात से ज्ञात बने हैं। साधना के क्षेत्र में शरीर, श्वास, वाणी और मन को साधना आवश्यक होता है। इन पुस्तको में इनकी साधना का मर्म उद्घाटित किया गया है। शरीर का संवर, श्वांस संवर, इन्द्रिय सवर, वाक् संवर, प्राण आदि योग विषयों पर वर्तमान में प्रचलित साधना-पद्धतियों के परिप्रेक्ष्य में जैन दृष्टिकोण उपस्थित किया गया है। इसमें चार अध्याय हैं—आत्मा का जागरण, आत्मा का साक्षात्कार, समाधि और इतिहास के संदर्भ में। तीसरे अध्याय में समाधि को जैन परिप्रेक्ष्य में उपस्थित करते हुए सामायिक समाधि, ज्ञान समाधि

दर्शन समाधि, चारित्र समाधि आदि की विस्तृत व्याख्या की है। अन्तिम अध्याय में जैन परम्परा में ध्यान का ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत है। इस लम्बी कालावधि में इतर साधना पद्धतियों से जो आदान-प्रदान हुआ है उसका सुन्दर विश्लेषण इस पुस्तक में है। इसे जैन योग का प्रतिनिधि ग्रन्थ माना जा सकता है।

5. योग की प्रथम किरण—साध्वी राजीमती:—प्रस्तुत पुस्तक में योग साधना के प्रारंभिक अंश आहार शुद्धि, शरीर शुद्धि, इन्द्रिय शुद्धि, श्वासोच्छ्वास शुद्धि आदि विषयों पर चिन्तन किया गया है। आसन प्रयोगो से होने वाले हानि-लाभ के विवरण के साथ-साथ स्वयं की अनुभूतियों का भी उल्लेख किया है।

6. अस्तित्व का बोध—मुनि नथमल—प्रस्तुत पुस्तक में योग सम्बन्धी विचार अभिव्यक्त हुए हैं।

7 जागरिका—सं. मुनि श्रीचन्द्र, मुनि किशनलाल—इस पुस्तक में लाडनू में आयोजित एक मासीय साधना-सत्र में विभिन्न प्रवक्ताओं द्वारा प्रदत्त योग विषयक पचास प्रवचनों का संकलन है। इनमें जैन साधना पद्धति या जैन योग के मूलभूत तथ्यों का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत है। प्रश्नोत्तरो के कारण विषय बहुत स्पष्ट होता गया है। कुछ क्रियात्मक प्रयोग भी विनिर्दिष्ट हैं।

8 मनोनिग्रह के दो मार्ग—मुनि धनराज (सरसा)—प्रस्तुत पुस्तक में स्वाध्याय और ध्यान को मनोनिग्रह के दो मार्ग बताकर जैनागमो मे वर्णित ध्यान के चार प्रकारों का विवेचन किया गया है।

अनूदित

9 मनोनुशासनम्—आचार्य श्री तुलसी, व्याख्याकार मुनि नथमल—प्रस्तुत ग्रन्थ में मन के अनुशासन की प्रक्रिया निरूपित की गई है। यह ग्रन्थ जैन योग में पातजल योग सूत्र के समान सूत्रबद्ध तथा व्याख्या सहित है।

10. ध्यान शतक-जिनभद्रगणि, अनु. मुनि दुलहराज—इसमे ध्यान के भेद-प्रभेद, ध्यान का स्वरूप आलम्बन, प्रक्रिया और फल आदि का विवेचन है। सौ श्लोको का यह लघुकाय ग्रन्थ जैन ध्यान पद्धति को समझाने मे बहुत सहायक हो सकता है।

जैन दर्शन साहित्य ·

1 जैन दर्शन: मनन और मीमासा—मुनि नथमल—यह ग्रन्थ जैन दर्शन को समग्रता से प्रस्तुत करता है। इसके पाच खण्ड है। ग्रन्थ का पहला खण्ड भगवान् ऋषभदेव से लेकर महावीर की परम्परा और कालचक्र का बोध देता है। दूसरे खण्ड में पुद्गल परमाणु, जीवन, प्राण, आत्मवाद, कर्मवाद, स्याद्वाद के गहन-गम्भीर विषय पाठक के लिए सुगम्य बन गए हैं। तीसरे खण्ड मे आचार मीमांसा है। इसमें मोक्ष प्राप्ति के लिए साधक को जीवन साधना का पथ दर्शन मिलता है। चौथे खण्ड में ज्ञान मीमासा है। इसमें ज्ञान, इन्द्रिय, मन, मनोविज्ञान, चेतना का विकास, कषाय, भावना, ध्यान आदि विषयों पर विस्तृत चर्चा है। पांचवें खण्ड में प्रमाण मीमांसा है। ये पांचों खण्ड अपने आप में स्वतन्त्र ग्रन्थ रूप लिये हुए हैं। इनका एकत्र समाकलन जैन दर्शन को समग्रता से प्रस्तुत करने में सक्षम है। समीक्षकों ने इसे जैन दर्शन का प्रतिनिधि ग्रन्थ मानते हुए इस विधा का अलभ्य ग्रन्थ माना है।

2. जैन दर्शन और आधुनिक विज्ञान—मुनि नगराज:—बुद्धिजीवी स्वीकार करते हैं कि जैन दर्शन वैज्ञानिक दर्शन है। प्रस्तुत पुस्तक दर्शन और विज्ञान की समीक्षात्मक सामग्री प्रस्तुत करती है। इसमें परमाणु, भू-भ्रमण, स्याद्वाद आदि की जैन दर्शन सम्मत विवेचना प्रस्तुत करते हुए आधुनिक विज्ञान की मान्यताओं के साथ उसकी तुलना प्रस्तुत की गई है। लेखक जैन दर्शन के मूलभूत कतिपय तथ्यों को वैज्ञानिक कसौटी पर कसकर उनकी सारगर्भिता प्रतिपादित कर पाठक के मन पर जैन दर्शन की वैज्ञानिकता की अमिट छाप छोड़ जाता है।

3 अतीत का अनावरण—मुनि नथमल.—प्रस्तुत कृति शोधपूर्ण ग्रन्थ है। श्रमण सस्कृति का प्राग्वैदिक अस्तित्व, श्रमण सस्कृति आत्म विद्या के संधानी क्षत्रियों की उपलब्धि, आर्य-अनार्य, बुद्ध और महावीर, आगम ग्रन्थों का विचार और व्यवहार तत्व, बृहत्तर भारत के दक्षिणार्ध और उत्तरार्ध की विभाजन रेखा वैताढ्य पर्वत आदि विषयों पर 25 निबंधात्मक इस कृति में अनेक तथ्य उद्घाटित हुए है जो धर्म और दर्शन जगत में पहेली बने हुए थे।

4. अहिंसा तत्व दर्शन—मुनि नथमल:—प्रस्तुत कृति अहिंसा विश्वकोश है। इसमें अहिंसा पर समग्र दृष्टिकोण से विचार प्रस्तुत करते हुए आगम तथा उत्तरवर्ती आचार्यों के दृष्टिकोण प्रतिपादित किए गए है। अहिंसा के क्रमिक विकास पर एतिहासिक विश्लेषण भी इसमें विस्तार से हुआ है।

5. अहिंसा और विवेक—मुनि नगराज.—प्रस्तुत पुस्तक में अहिंसा का विकास अहिंसा का स्वरूप तथा उसकी अवस्थाओं का चित्रण बहुत सहज ढग से किया गया है। आचार्य भिक्षु की अहिंसा दृष्टि को महात्मा गाधी की अहिंसा दृष्टि के साथ तोलते हुए दोनो में कहा भेद अभेद है उसका सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

6 विश्व प्रहलिका—मुनि महेन्द्र कुमार:—इस कृति में वैज्ञानिक सिद्धान्तो और उनसे सम्बद्ध दार्शनिक प्रतिपादनो का आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ विश्व सम्बन्धी जैन सिद्धान्तों का विशद निरूपण भी हुआ है। प्रस्तुत कृति मे विज्ञान, पाश्चात्य दर्शन और जैन दर्शन के आलोक मे विश्व की वास्तविकता, स्वरूप और उसकी स्थिति की गणित के माध्यम से मीमासा की गई है।

7 सत्य की खोज अनेकान्त के आलोक मे—मुनि नथमल —यह 13 शीर्षको मे विभक्त जैन दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तो को आधुनिक परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत करने वाली मौलिक कृति है। इसमे भगवान महावीर की अर्थ नीति, समाज शास्त्र, कर्मवाद, परिणामि नित्यवाद आदि विषयक मान्यताओं को आधुनिक सदर्भ में प्रस्तुत किया गया है।

8 अहिसा पर्यवेक्षण—मुनि नगराज —समाज मे अहिसा का विकास क्यो, कब और कैसे हुआ इसका क्रमिक ब्योरा प्रस्तुत पुस्तक मे उपस्थित किया गया है। कालक्रम के साथ अहिसा के उन्मेष और निमेष देखे गए है।

9 शब्दों की वेदी अनुभव का दीप—मुनि दुलहराज:—प्रस्तुत पुस्तक भगवान् महावीर के जीवन प्रसग, प्रेरक कथाएं, आगम-सपादन सम्बन्धी विशेष जानकारी, सप्रदायों का इतिहास, ग्रन्थो का समीक्षात्मक अध्ययन, आगम वाक्यों की व्याख्या आदि 119 लेखों में वह विविध सामग्री प्रस्तुत करती है।

10. अहिंसा के अंचल में—मुनि नगराज.—प्रस्तुत पुस्तक में समय-समय पर लिखे गए अहिंसा विषय के लेखों का संग्रह है। इसमें अहिंसा के विभिन्न पहलुओ पर चिन्तन किया गया है।

11. अहिंसा की सही समझ—मुनि नथमल:—प्रस्तुत पुस्तक अहिंसा की अधूरी समझ के प्रत्युत्तर में लिखा गया वृहत्तर निबन्ध है। इसमें अहिंसा के विषय में उठने वाले प्रश्नों का आगम व तर्क के आधार पर समाधान दिया गया है।

12. जैन तत्व चिन्तन—मुनि नथमल:—प्रस्तुत पुस्तक में जैन दर्शन के विभिन्न पहलुओं वर्तमान के सन्दर्भ मे विचार किया गया है।

13. जैन धर्म बीज और बरगद—मुनि नथमल.—बीजावस्था मे जैन धर्म एक ओर अविभक्त था। विस्तारावस्था मे वह अनेक शाखाओं और प्रशाखाओं में विभक्त हो गया है। तेरापन्थ जैन धर्म की एक शाखा है। शाखा मूल से भिन्न नहीं होती, इसमें जैन धर्म और तेरापन्थ सम्बन्धी बहुविध सामग्री का सकलन है।

14. ज्ञान प्रकाश—मुनि धनराज (सरसा).—इस कृति मे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि ज्ञान, मन:पर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान के भेद-प्रभेद तथा तत्सम्बन्धी सामग्री सकलित है। विषय की प्रमाणिक जानकारी के लिए आगमो के प्रमाण प्रस्तुत किए गए हैं अतः यह ग्रन्थ अनुसंधित्सुओं के लिए बहुत उपयोगी है।

15 चारित्र प्रकाश— मुनि धनराज (सरसा)—इस कृति में 9 प्रकाश पुंज है। महाव्रत, समिति, गुप्ति आदि मुनि धर्मों का विस्तृत विवेचन है।

16 मोक्ष प्रकाश—मुनि धनराज (सरसा).—इस कृति में बारह पुंज है। इसमें मोक्ष के स्वरूप पर विशद प्रकाश डाला गया है। मोक्ष के साधक (निर्जरा) और बाधक (आश्रव) आदि तत्वो का सुन्दर विवेचन हुआ है। प्रस्तुत ग्रन्थ में सर्व साधारण के उपयोगी कर्म सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त है।

17. जीवन-अजीव—मुनि नथमल—इस कृति मे पच्चीस बोल पर विस्तृत चर्चा की गई है। जैन दर्शन सम्मत गति, पर्याप्ति, प्राण, नौ तत्व, चारित्र आदि-आदि विषयों की प्रारंभिक जानकारी देने वाला यह ग्रन्थ जैन दर्शन का प्रवेश द्वार है।

18 लोक प्रकाश—मुनि धनराज (सरसा)—इस कृति मे लोक की आकृति, स्वरूप तथा उसके आधार का विवेचन हुआ है। नरक, तिर्यन्च, मनुष्य और देवता के भेद-प्रभेद स्वरूप, आवागमन, जीवन विधि आदि प्रश्नो का जैन मान्यता के अनुसार समाधान दिया गया है।

19 ज्ञान वाटिका—मुनि छत्रमल—प्रस्तुत पुस्तक मे 21 कलिका (प्रकरण) हैं। इसमें ज्ञान, दर्शन, स्याद्वाद, सप्तभगी, आचार और इतिहास आदि जैन दर्शन सम्बन्धी सामग्री प्रश्नोत्तर के रूप मे प्रस्तुत की गई है। बालकों को तत्व ज्ञान में प्रवेश कराने के लिए यह पुस्तक उपयोगी है।

20. श्रावक धर्म प्रकाश—मुनि धनराज—प्रश्नोत्तरात्मक प्रस्तुत कृति श्रावक धर्म के 12 व्रतों का सरल भाषा में विवेचन देती है। श्रावक की पडिमाए, संलेखना करने की विधि, श्रावक की दिनचर्या व तीन मनोरथ तथा चार विश्रामों पर भी पुस्तक प्रकाश डालती है।

21. नई समाज व्यवस्था में दान—दया—मुनि नगराज:—प्रस्तुत पुस्तक मे दान-दया का तार्किक और बौद्धिक स्तर से वर्णन किया गया है।

22. तत्व प्रवेशिका—सं. मुनि मधुकर:—जैन तत्वो में प्रवेश करने वाले विद्यार्थियों के लिए कन्ठस्थ करने योग्य सामग्री संकलित है।

अनुदित:—

23. संबोधि—व्याख्याकार मुनि शुभकरण:—प्रस्तुत ग्रन्थ मुनि श्री नथमल जी कृत संबोधि की विस्तृत व्याख्या है। इसे जैन गीता भी कहते हैं। गीता का अर्जुन कुरुक्षेत्र के समरांगण में क्लीव होता है तो संबोधि का मेघकुमार साधना की समर भूमि में क्लीव बनता है। गीता के गायक योगिराज कृष्ण हैं और संबोधि के गायक भगवान् महावीर। अर्जुन का पौरुष जाग उठा कृष्ण का उपदेश सुनकर और महावीर की वाणी सुन मेघकुमार की आत्मा चैतन्य से जगमगा उठी। मेघकुमार ने जो प्रकाश पाया वही प्रकाश प्रस्तुत ग्रन्थ में व्यापक बना है। संवाद शैली में लिखा गया यह ग्रन्थ समग्र जैन दर्शन का प्रतिनिधित्व करता है।

24. अध्यात्म धर्म जैन धर्म—अनु. मुनि शुभकरण:—उड़ीसा के ख्याति प्राप्त विद्वान पंडित नीलकण्ठ दास ने गीता पर उड़िया भाषा में टीका लिखी थी। उसकी भूमिका में जैन धर्म सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण अध्याय लिखा था। प्रस्तुत पुस्तक उसी का हिन्दी अनुवाद है। इसमें ऐतिहासिक दृष्टि से जैन धर्म की प्राचीनता अनेक उद्धरणों से सिद्ध की गई है तथा समस्त भोगवादी या आत्मवादी धर्मों पर जैन धर्म दर्शन का प्रतिबिम्ब माना गया है।

25. उड़ीसा में जैन धर्म—मुनि अनु. शुभकरण—सम्राट खारवेल ने कलिंग में जैन धर्म को बहुत प्रभावी बनाया। उस समय उड़ीसा जैन धर्म और जैन श्रमणों के परिव्रजन का महान केन्द्र था। खारवेल ने आगम वाचना की आयोजना की थी। जैन परम्परा में सम्राट खारवेल का वही स्थल है जो बौद्ध परम्परा में सम्राट अशोक का है। प्रस्तुत पुस्तक मे इतिहास के संदर्भ में कलिंग में जैन धर्म के प्रभाव की परिस्थितियो का विशद विवेचन किया गया है। जैन इतिहास का विस्तृत अध्याय इस पुस्तक से पुन प्रकाश में आएगा। प्रस्तुत पुस्तक उड़िया भाषा में डा. लक्ष्मीनारायण साहू द्वारा लिखित ओडिसा रे जैन धर्म का हिन्दी अनुवाद है।

यात्रा साहित्य.—

1. नव निर्माण की पुकार—सं. सत्यदेव विद्यालंकार:—प्रस्तुत पुस्तक में अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी की दिसम्बर 1956 की 39 दिन की दिल्ली यात्रा का वर्णन है। इसमें प्रेरणाप्रद संदेशों, दार्शनिक प्रवचनों, देश-विदेश के लब्ध-प्रतिष्ठित विचारकों, पत्रकारों, धार्मिक नेताओं, राजनीतिज्ञों तथा कूटनीतिज्ञों के साथ जीवन निर्माण सम्बन्धी चर्चा, विचार-विनिमय का दिन क्रम से विवरण प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में 23 आयोजनों, 19 प्रवचनों तथा 32 चर्चा-वार्ताओं की सामग्री है।

2. कुछ देखा कुछ सुना कुछ समझा—मुनि नथमल.—प्रस्तुत पुस्तक आचार्य तुलसी की राजस्थान (लाडनूं) से कलकत्ता और वहां से वापस राजस्थान (सरदारशहर) आने तक की यात्रा का इतिहास है। उपन्यास की शैली से लिखा गया यह यात्रा विवरण बहुत ही रोचक और तत्कालीन घटनाओं का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत करता है।

इसके परिशिष्ट में तारीख क्रम से दो वर्षों की विशेष घटनाओं की संकलना प्रस्तुत की गई है।

3. पदचिन्ह—मुनि श्री चन्द्र:—इस कृति में 27-3-62 से 3-2-63 तक आचार्य श्री तुलसी के परिव्रजन का इतिहास बोलता है। यात्रा के साथ घटने वाले संस्मरण, प्रश्नोत्तर, प्रवचन, ओत्रामों आदि का सजीव वर्णन है। इस कृति में न केवल यात्रा का वर्णन ही दिया गया है अपितु प्रसंगोपात विचार भी दिए गए हैं जिससे इसकी रोचकता और ग्राह्यता अधिक बढ़ गई है।

4. जन जन के बीच-भाग-1—मुनि सुखलाल:—प्रस्तुत पुस्तक में आचार्य श्री तुलसी की यात्रा का वर्णन सकलित है।

5. जन जन के बीच-भाग-2—मुनि सुखलाल.—इस पुस्तक में आचार्य श्री की विद्युत्वेग यात्रा में बंगाल बिहार से वापस आते उत्तर प्रदेश, पजाब तथा राजस्थान की यात्रा का वर्णन है। आचार्य श्री के जीवन प्रसग, स्थानीय लोगो की मनोवृत्ति, प्राकृतिक चित्रण, इतिहास और यात्रा में घटने वाली घटनाओं का सूक्ष्म दृष्टि से विश्लेषण किया गया है।

6. बढते चरण—मुनि श्री चन्द्र—बगाल से राजस्थान की ओर आते हुए आचार्य श्री तुलसी की विद्युत्वेग यात्रा के 40 दिन (बंगाल और बिहार प्रदेश की यात्रा) का विवरण इस कृति में दिया गया है। इसमें यात्रा के बीच आने वाले गाव या शहरो का इतिहास भी संकलित है। सस्मरण और इतिहास प्रधानात्मक इस कृति मे प्रवचनो का स्पर्श नही के बराबर हुआ है।

संस्मरण साहित्य—

1. रश्मियां-मुनि श्रीचन्द्र—इस कृति मे आचार्य श्री तुलसी के ऐसे क्षणो को सूक्ष्मता से पकड़ा गया है जो जीवन की पगडडी पर दिशा-सकेत बनकर मार्ग दर्शन करते हैं और व्यवहार में सरस जीवन जीने की कला सिखाते है। आचार्य श्री तुलसी की पैनी दृष्टि ने हर वस्तु में गुणो को ग्रहण किया है।

2. आचार्य श्री तुलसी अपनी छाया में—मुनि सुखलाल—इस कृति मे आचार्य श्री तुलसी के ऐसे सस्मरण सकलित है जो शिक्षाप्रद होने के साथ-साथ जीवन को समरस बनाने में उपयोगी है। इन सस्मरणो मे आचार्य श्री तुलसी के विचार, स्वभाव और प्रकृति का प्रतिबिम्ब बहुत सुन्दर ढंग हुआ है।

3. जय सौरभ—मुनि छत्रमल—एक पद्य पर एक सस्मरण को कहने वाली यह कृति जयाचार्य के जीवन के सौ सस्मरणों का सग्रह है।

4 महावीर की सूक्तियां—मेरी अनुभूतिया—मुनि छत्रमल—प्रस्तुत पुस्तक में भगवान् महावीर की वाणी के संदर्भ में अपनी विभिन्न घटनाओ को देखा गया है।

5. बुद्ध की सूक्तिया मेरी अनुभूतिया—मुनि छत्रमल.—प्रस्तुत पुस्तक में अपनी अनुभूतियों और सस्मरणों के आलोक में भगवान बुद्ध की वाणी की तुलनात्मक स्मृति की गई है।

इतिहास साहित्य—

1. तेरापन्थ का इतिहास भाग 1—मुनि बुद्धमल.—इस ग्रन्थ में दस परिच्छेद तथा दस परिशिष्ट हैं। प्रथम परिच्छेद में प्राग ऐतिहासिक काल और ऐतिहासिक काल में होने वाली जैन धर्म की स्थितियो का सक्षिप्त विवरण है। दूसरे परिच्छेद से लेकर दसवे परिच्छेद तक तेरापन्थ के नौ आचार्यों का क्रमश एक-एक परिच्छेद में वर्णन है। प्रत्येक आचार्य का जीवन तथा उसका व्यक्तित्व और कृतित्व, सत सतियो की ख्याति, सम्प्रदाय की परम्परा, आन्तरिक व्यवस्था, अनुशासन, मर्यादा, विकास क्रम, युगानुकूल परिवर्तन आदि विविध सामग्री इस ग्रन्थ में सग्रहीत की गई हैं। इसमें उन घटनाओं का भी उल्लेख है जो संघ में श्रुतानु [illegible]तिक ढंग से प्रचलित थी।

2. इतिहास के बोलते पृष्ठ—मुनि छत्रमल—प्रस्तुत पुस्तक में आचार्य भिक्षु के उत्क्रान्तिमय जीवन से जुड़ी घटनावलियों को शब्दों का आकार दिया गया है। घटनाओं की प्रामाणिकता के लिए संदर्भ ग्रन्थो का भी उल्लेख किया गया है।

3. चमकते चांद—मुनि धनराज:—इस लघु कृति में तेरापन्थ के नव आचार्यों का अति संक्षिप्त जीवन इतिहास है।

आगम साहित्य:—

आगम संपादन का कार्य 25 वर्षों से चल रहा है। आगमों की भाषा प्राकृत है। मूल पाठ का संशोधन, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, तुलनात्मक टिप्पणियां, शब्दानुक्रम, नामानुक्रम और समीक्षात्मक अध्ययन ये आगम संपादन के प्रमुख अंग है। इस शोध कार्य के वाचना प्रमुख हैं–आचार्य श्री तुलसी और प्रधान संपादक तथा विवेचक है-मुनि श्री नथमल जी। इस गुरुतर कार्य को सम्पन्न करने के लिए लगभग 20-25 साधु-साध्वियां जुटे हुए है। काल की इस लम्बी, अवधि मे जितना कार्य हुआ है उसका कुछ भाग प्रकाशित हुआ है। हिन्दी में अनूदित और विवेचित आठ ग्रन्थ इस प्रकार है—

1. आयारो (आचारांग) .– यह भगवान् महावीर की वाणी का सबसे प्राचीन संकलन है। इसकी भाषा अन्यान्य आगमों से पृथक् पड़ती है। यह सूत्रात्मक है किन्तु यत्र तत्र विभिन्न छन्दों के एक-एक दो-दो तीन-तीन चरण भी उपलब्ध होते हैं। भगवान् महावीर के जोवन और दर्शन का यह प्राचीनतम श्रोत है। इसका आधुनिक शैली में हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पणी बहुत अपेक्षित थे। यह ग्रन्थ इसकी पूर्ति करता है। टिप्पणों तथा मूल के अनुवाद मे जैन साधना पद्धति का सुन्दर चित्र प्रस्तुत होता है।

2 ठाण (स्थानांग):– यह तीसरा अंग आगम है। इसमें एक से दस तक की संख्या के आधार पर हजारों विषयों की सूचना दी गई है। यह ग्रन्थ आध्यात्मिक तथ्यों तथा जैन परम्परा के मूलभूत सिद्धान्तों और परम्परा का आकर ग्रन्थ है। इसके विस्तृत टिप्पण जैन, बौद्ध और वैदिक परम्परागत अनेक नई सूचनाए प्रस्तुत करता है। इस रूप में ग्रन्थ का प्रस्तुतीकरण अपने आप मे एक अनोखा अनुष्ठान है।

3. समवाओ (समवायांग) – यह चौथा अंग आगम है। यह भी सांख्यिक विधि से संकलित ग्रन्थ है। इसमें विविध प्रकार की सूचनाएं संकलित हैं।

4. उत्तरज्झयणाणि (उत्तराध्ययन) – यह संकलन सूत्र है। इसके छत्तीस अध्ययन है। इसमें अनेक ऐतिहासिक कथाओं के माध्यम से जैन परम्परा के अनेक तथ्यों को उजागर किया गया है। इसमें जैन योग तथा जैन तत्ववाद और परम्परा के अनेक अध्ययन है।

5. दसवेआलियं (दसवैकालिक)—यह आचार्य शय्यंभव की रचना है। इसका रचना-काल वीर निर्वाण की पहली शताब्दी है। इसमें लगभग 750 श्लोक है। साधारणतया यह माना जाता है कि यह बहुत सरल सूत्र है। किन्तु संक्षिप्त शैली में लिखा गया यह सूत्र बहुत गूढ है। प्रस्तुत संस्करण में इसके एक एक शब्द की मीमासा प्रस्तुत की गई है। यह संस्करण इस ग्रन्थ गत विशेषताओ की अभिव्यक्ति करने में पूर्ण सक्षम है।

6. उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन:— प्रस्तुत ग्रन्थ श्रमण परम्परा का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। यह दो खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में श्रमण और वैदिक परम्परायें,

श्रमण संस्कृति का प्रागैतिहासिक अस्तित्व, श्रमण संस्कृति के मतवाद, आत्मविद्या, तत्वविद्या, जैन धर्म का प्रचार-प्रसार, साधना पद्धति, योग आदि अतीव महत्वपूर्ण और गम्भीर विषयों पर प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध की गई है। द्वितीय खड मे उत्तराध्ययन सूत्र से सबधित विषयों पर विस्तार से चर्चा की गई है। उसमे व्याकरण विमर्श, छन्दो विमर्श, चूर्णिकृत परिभाषायें, कथानक सक्रमण, भौगोलिक व व्यक्ति परिचय, तत्कालीन सस्कृति और सभ्यता आदि की चर्चा है।

7. दशवैकालिक-एक समीक्षात्मक अध्ययन –प्रस्तुत ग्रन्थ मे दशवैकालिक सूत्र का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह पाच अध्यायो मे विभक्त है—प्रथम अध्याय में दशवैकालिक का महत्व, उपयोगिता, रचनाकाल, रचनाकार का जीवन परिचय, रचना शैली, व्याकरण विमर्श, छन्द विमर्श तथा भाषा दृष्टि से चिन्तन किया गया है।

द्वितीय अध्याय मे साधना तथा साधना के अग पर विचार हुआ है। तृतीय अध्याय में महाव्रत और चतुर्थ अध्याय मे चर्या और बिहार, ईर्यापथ, वाकशुद्धि, एषणा, इन्द्रिय और मनोनिग्रह आदि विषयो को विस्तार से विवेचित किया गया है। पाचवें अध्याय मे आहार चर्या, निक्षेप पद्धति, निरुक्त, तत्कालीन सभ्यता और सस्कृति पर प्रकाश डाला गया है।

8. दशवैकालिक उत्तराध्ययन (अनुवाद) – ये दोनो आगम जैन आचार-गोचर और दार्शनिक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते है। दशवैकालिक मे अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि धर्म तत्वो का, साधुओ की भिक्षाचर्याविधि, भाषा विवेक, विनय तथा व्यावहारिक शिक्षाओ का विस्तृत और सूक्ष्म विवेचन हे। उत्तराध्ययन मे वैराग्यपूर्ण कथा प्रसगो द्वारा धार्मिक जीवन का अति प्रभावशाली चित्राकन तथा तात्विक विचारो का हृदयग्राही संग्रह है।

9 आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन—मुनि नगराज – श्रमण परम्परा की दो मुख्य धाराये है—जैन और बौद्ध। जैन परम्परा का नेतृत्व भगवान् महावीर ने किया और बौद्ध परम्परा का नेतृत्व महात्मा बुद्ध ने। दोनो सम-सामयिक थे। दोनों का कर्मक्षेत्र लगभग एक ही रहा। दोनो अहिंसा, सयम और करुणा को लेकर बढे। अत. दोनो मे अभिन्नता के अंश अधिक थे, भिन्नता के कम। प्रस्तुत ग्रन्थ मे दोनो श्रामणिक परम्पराओ के कतिपय विषयो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसके एक अध्याय में महावीर और बुद्ध मे ज्येष्ठ कौन? इस प्रश्न को विभिन्न प्रमाणो से समाहित किया है। महावीर और बुद्ध के समकालीन राजा श्रेणिक, बिम्बिसार, कूणिक, चण्डप्रद्योत, प्रसेनजित्, चेटक आदि पर आगमो तथा त्रिपिटको के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। भगवान महावीर और जैन धर्म विषय के जितने भी समुल्लेख त्रिपिटक साहित्य मे है वे सब प्रस्तुत ग्रन्थ के एक अध्याय मे सकलित कर दिए गए है। शोधनकर्त्ताओ के लिये इनका बहुत महत्व है।

10. महावीर और बुद्ध की समसामयिकता—मुनि नगराज.–प्रस्तुत पुस्तक मे महावीर और बुद्ध की काल गणना पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया गया है। इतिहास के विद्वानों ने प्रस्तुत पुस्तक को मान्यता दी है।

जीवनी साहित्य :—

1. भगवान महावीर—आचार्य तुलसी:— प्रस्तुत पुस्तक में भगवान महावीर को सरल सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया गया है। बडे बूढे, स्त्री, पुरुष, सभी के लिये सुपाच्य है। इसमें न सैद्धान्तिक जटिलतायें हैं और न दार्शनिक गुत्थियां ही। सब कुछ सरल भाषा में

समझाया गया है। इसके अन्त में महावीर वाणी के रूप में लगभग सौ श्लोकों का संग्रह श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराओं के मान्य ग्रन्थो से किया गया है।

2. श्रमण महावीर—मुनि नथमल :–इस कृति में भगवान महावीर के जीवन का ऐसा चित्र है जिसमें श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा की भेद रेखायें अव्यक्त रही हैं और उनका साधनामय जीवन का विराट व्यक्तित्व पक्ष उभर कर आया है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि भगवान महावीर को दैवीकरण से दूर रखकर मानव की भूमिका से देखा गया है। ध्यान साधना आदि की प्रतिक्रियाओ से उनका व्यक्तित्व क्रमश. आरोहण होता हुआ अत में अपने लक्ष्य तक पहुच गया है।

यह ग्रन्थ काल्पनिक नही है लेकिन दिगम्बर और श्वेताम्बर के आधार ग्रन्थ, सूत्र और आलेखन आदि 250 प्रामाणिक स्रोतो के अध्ययन के बाद लिखा गया है। इसकी प्रामाणिकता इससे और बढ जाती है कि सारे प्रयुक्त ग्रन्थों के सदर्भ परिशिष्ट में दिए गए है। महावीर का जीवन इतिहास, महावीर की आध्यात्मिक साधना और महावीर की खोज का एक ऐसा सुस्वादु मिश्रण इस ग्रन्थ मे है कि आप इसे पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो पढ़कर ही उठेंगे और अनुभव करेंगे कि आपने महावीर की हजार-हजार भव्य प्रस्तर मूर्तियों के अन्तराल को झाक लिया है और महावीर आपके सामने एक दम निकट खडे हैं।

3. भिक्षु विचार दर्शन—मुनि नथमल.–प्रस्तुत कृति में 7 अध्याय हैं। उनमें आचार्य भिक्षु के सिद्धान्तो, मन्तव्यो, विचारो एव निष्कर्षों का गहराई से प्रतिपादन हुआ है। आचार्य भिक्षु क्रान्तद्रष्टा थे। प्रस्तुत कृति मे उनके क्रान्ति बीज तथा साध्य-साधन शुद्धि की सूक्ष्म मीमासा की गई है। रोचक शैली मे लिखा गया यह ग्रन्थ आचार्य भिक्षु के जीवन और दर्शन को समग्रता से प्रस्तुत करने के साथ-साथ जैन दर्शन की कई उलझी गुत्थियो को सुलझाता है। आचार्य भिक्षु धार्मिक सघ के नेता ही नहीं, राजस्थानी साहित्य के सफल स्रष्टा भी थे। अनेक रूपो मे उनका व्यक्तित्व उभरा है। प्रस्तुत कृति मे उनके दो रूप बहुत ही स्पष्ट और प्रभावशाली हैं –

1. विचार और चारित्र शुद्धि के प्रवर्तक
2. सघ व्यवस्थापक

कुल मिलाकर आचार्य भिक्षु के विचार बिन्दुओ का एक समाकलन है।

4. आचार्य श्री तुलसी-जीवन दर्शन—मुनि नथमल –आचार्य श्री तुलसी ने बहुत किया, बहुत संघर्ष झेले, चरित्र विकास के लिए बहुत यत्न किया, बहुत परिव्रजन किया, बहुत चिन्तन किया और बहुत कार्य किया। इन सारे बहुत्वो का विस्तार भी बहुत हो सकता है। प्रस्तुत पुस्तक में इस विस्तार को भी शाब्दिक अल्पत्व में कुशलता से संजोया गया है। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि यह जीवनी गुणात्मक न होकर समीक्षात्मक है। इसमें आचार्य श्री की व्यक्तिगत डायरी के अंश भी यत्र-तत्र उद्धृत हैं।

5. आचार्य श्री तुलसी जीवन पर एक दृष्टि—मुनि नथमल.–प्रस्तुत कृति आचार्य श्री तुलसी के 37 वर्षीय जीवन पर प्रकाश डालने वाली प्रथम कृति है। इसमें आचार्य श्री के बहुमुखी व्यक्तित्व, कृतित्व, विचार और जीवन प्रसंगों का हृदयग्राही विवेचन है।

6. आचार्यश्री तुलसी जीवन और दर्शन—मुनि बुद्धमल:–प्रस्तुत कृति आचार्य श्री तुलसी के जन्म से लेकर धवल समारोह तक उनकी बहुमुखी प्रवृत्तियां तथा उनके कर्तृत्व और व्यक्तित्व पर पूर्ण प्रकाश डालती है।

7. बूंद बूंद बन गई गंगा—साध्वी संघमित्रा—प्रस्तुत कृति में साध्वी प्रमुखा लाडांजी के जीवन-प्रसंग, व्यक्तित्व-दर्शन और उनका कर्तत्व बोलता है। साथ मे साध्वी प्रमुखा के प्रति साधु-साध्वियों तथा श्रावक-श्राविकाओ की श्रद्धान्जली भी सकलित है।

अणुव्रत साहित्य:—

1. अणुव्रत के सदर्भ मे—आचार्य तुलसी—प्रस्तुत पुस्तक प्रश्नोत्तरात्मक है। इसमें धर्म, नैतिकता, आर्थिक विषमता, राष्ट्र की प्रवृत्ति, चन्द्रलोक, शोषण विहीन समाज, साधु सस्था आदि सम सामयिक अनेक प्रश्नो को उपस्थित किया गया है और उनका अणुव्रत के सदर्भ में आचार्यश्री तुलसी से समाधान लिया गया है।

2. नैतिकता का गुरुत्वाकर्षण—मुनि नथमल—प्रस्तुत कृति मे नैतिकता के मूलभूत प्रश्नों को उपस्थित कर वर्तमान के सदर्भ मे नैतिकता की मान्यताओ पर अणुव्रत के माध्यम से चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। इसमे अणुव्रत को वैचारिक धरातल पर उपस्थित कर वर्तमान के वादों में अणुव्रत की उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है।

3 प्रश्न और समाधान—मुनि सुखलाल—विश्व सघ और अणुव्रत, युवक समाज और अणुव्रत, अस्पृश्यता और अणुव्रत, अणुव्रतो का रचनात्मक पक्ष, राजनीति और अणुव्रत आदि वर्तमान के सदर्भ मे उपस्थित होने वाले प्रश्नो को उपस्थित कर अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी से समाधान लिए गए है।

4 अणुव्रत दर्शन—मुनि नथमल—आज का युग नैतिक समस्या का युग है। कुछ विकासमान गरीब देशों मे अर्थ विषयक अनैतिकता चल रही है। मानवीय घणा के रूप मे समाज विषयक अनैतिकता विकसित और अविकसित दानो प्रकार के देशो मे चलती है। राजनीति विषयक अनैतिकता की भी यही स्थिति है। यह बहुरूपी अनैतिकता मानवीय दृष्टिकोण आध्यात्मिक समानता की अनुभूति होने पर ही मिट सकती है। प्रस्तुत पुस्तक में इन दोनो दृष्टिकोणो से अनैतिकता की चर्चा की गई है।

5 अणुव्रत विचार दर्शन—मुनि बुद्धमल—प्रस्तुत पुस्तक में अणुव्रत आन्दोलन के विचार पक्ष के परिप्रेक्ष्य में लिखे गए 16 निबन्धो का सकलन है।

6 अणुव्रत जीवन दर्शन—मुनि नगराज—प्रस्तुत पुस्तक मे अणुव्रत आन्दोलन के प्रत्येक नियम में अन्तर्हित सूक्ष्मतम भावनाओं का विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है। अन्त में अणुव्रतियो के जीवन सस्मरण भी प्रस्तुत किए गए हैं।

7. अणुव्रत दृष्टि—मुनि नगराज—अणुव्रत के नियमो की विस्तृत व्याख्या के रूप में प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है।

8 अणु से पूर्ण की ओर—मुनि नगराज—प्रस्तुत पुस्तक रोटरी क्लबो आदि विभिन्न स्थलों पर दिए गए अणुव्रत सम्बन्धी भाषणो का सकलन है।

9 अणुव्रत विचार—मुनि नगराज—दैनिक पत्रो में प्रकाशित अणुव्रत सम्बन्धी भाषणो का सकलन है।

10 अणुव्रत क्रान्ति के बढते चरण—मुनि नगराज—इसमे अणुव्रत के उद्गम और उसके क्रमिक विकास का ब्यौरा प्रस्तुत है।

11. अणुव्रत आन्दोलन और विद्यार्थी वर्ग—मुनि नगराज:–विद्यार्थियों में चल रही अणुव्रत गतिविधियों का लेखा जोखा इसमें प्रस्तुत किया गया है।

12. प्रेरणा दीप—मुनि नगराज–अणुव्रतियों के रोचक और प्रेरक संस्मरणों का संकलन है।

13. अणुव्रत—आचार्य तुलसी–प्रस्तुत पुस्तक में अणुव्रतो के नियम-उपनियम तथा लक्ष्य-साधना और श्रेणियों की परिचर्या की गई है। साथ में वर्गीय अणुव्रतों के भी नियम संकलित हैं। एक प्रकार से यह पुस्तक नैतिक विकास की आचार संहिता है।

उपन्यास कथा साहित्य–

1 निर्णात—मुनि नथमल–यह विचार प्रधान लघु उपन्यास है। हिंसा की प्रतिहिंसा की प्रतिक्रिया हिंसा को जन्म देती है, हिंसा से कभी हिंसा नहीं मिटती, इसी तथ्य के परिप्रेक्ष्य में इस निर्णात्ति की निष्पत्ति हुई है।

2. बधन टूटे–भाग 1, 2, 3—अनु.मुनि दुलहराज–यह कृति जैन कथानक महासती चन्दनबाला पर आधारित गुजराती उपन्यास का हिन्दी अनुवाद है। कथा प्रसग में अनेक मोड़ हैं। तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्थितियों का तथा तन्त्र-मन्त्र-वादियों की प्रवृत्तियों का सुन्दर समावेश इसमें है।

3 गागर में सागर—मुनि नथमल–प्रस्तुत कृति में 47 लघु कथाए है। प्रत्येक कथा हृदय को स्पर्श करती हुई आगे बढ़ती है और दिशा बोध में उसकी परिसमाप्ति होती है। शब्द थोड़े भाव गहरे की उक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत पुस्तक है।

4 जैन जीवन—मुनि धनराज (सरसा) –प्रस्तुत पुस्तक मे जैन जगत के ऐसे 24 कथानक व प्रसग हैं जो प्राचीन परम्परा से सम्बन्धित हैं।

5 विजास—मुनि राकेश कुमार:–इस पुस्तक मे भारत तथा विश्व के 118 जीवनप्रसग तथा लघु कहानिया ह।

6. प्रकास—मुनि राकेशकुमार.–प्रस्तुत पुस्तक में कालिदास, स्वामी विवेकानन्द, आचार्य बहुश्रुति महात्मा गाधी, तिलक, जार्ज वाशिंगटन, अब्राहमलिंकन, आइंस्टीन आदि अनेक भारत, ग्रीक एव पर्शियन चिन्तकों के 112 जीवन प्रसंग व सवाद हैं।

7. विश्वास—मुनि मोहन शार्दूल–प्रस्तुत पुस्तक मे 84 लघु कथानक संग्रहीत हैं जो नैतिकता और सदाचार का पाठ पढ़ाते हैं।

8 अगडाई—मुनि मोहन शार्दूल.–प्रस्तुत पुस्तक अणुव्रत भावना के प्रकाश में लिखी गई 15 काल्पनिक कहानियो का सग्रह है।

9. आदमी की राह–मुनि मोहनलाल शार्दूल.–प्रस्तुत पुस्तक में 15 नई कहानियां हैं। इन काल्पनिक कहानियों मे मनुष्य को अपने मानवता के पथ पर आने के लिये प्रेरणा दी गई है।

10. बाल कहानियां भाग 1, 2, 3—मुनि कन्हैयालाल:–प्रस्तुत तीन पुस्तकों में बच्चों के लिए शिक्षाप्रद कहानियां सकलित है।

11. आदर्श पोथी—मुनि छत्रमल.–प्रस्तुत पुस्तक में अ से लेकर ज्ञ तक के वर्णों पर 50 कथानक है। प्रत्येक वर्ण का अर्थ वही किया गया है जो कथानक का सार है। प्रत्येक वर्ण पर होने वाली कथा अन्त्याक्षरी के लिए उपयोगी है।

पाठ्यक्रम साहित्यः—

1. नैतिक पाठमाला—मुनि नथमल:—प्रस्तुत कृति स्कूलों में नैतिक शिक्षा के अन्तर्गत 11 वीं कक्षा के लिए लिखी गई पाठ्य पुस्तक है। इसमें नैतिकता के मूलभूत तथ्यो को रोचक कथानकों, सस्मरणों तथा संवादो से प्रस्तुत किया गया है, जिससे विद्यार्थी उन्हे सहजतया अपना सके।

2. नैतिक पाठमाला—मुनि सुखलाल.—प्रस्तुत कृति स्कूलो मे नैतिक शिक्षा के अन्तर्गत 7 वी कक्षा के लिए लिखी गई पाठ्यपुस्तक है।

3. नया युग नया दर्शन—मुनि नगराज —प्रस्तुत पुस्तक अणुव्रत विशारद द्वितीय वर्ष के पाठ्यक्रम में निर्धारित थी। इसमे धर्म, सस्कृति, विज्ञान, शिक्षा आदि जीवन के मूलभूत विषयों को वर्तमान के सदर्भ में सजगता से खोला गया है।

4. नैतिक विज्ञान—मुनि नगराज —प्रस्तुत पुस्तक नैतिक प्रशिक्षण की दृष्टि से लिखी गई है। इसमे हृदय स्पर्शी उदाहरणो के द्वारा नैतिकता का विश्लेषण किया गया है। अणुव्रत परीक्षा के प्रथम वर्ष की यह पाठ्यपुस्तक है।

5 धर्मबोध भाग-1, 2, 3—मुनि नथमल —प्रस्तुत तीनो कृतिया जैन धर्म के पाठ्यक्रम की पाठ्य पुस्तकें हैं। इनमे जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति, सभ्यता परम्परा, तत्व विद्या आदि का ज्ञान क्रमश कराने का प्रयत्न किया गया है। इनमें जैन कथानक, जैन साहित्य आदि के भी पाठ हैं। धार्मिक क्रियाओ के प्रति बच्चों का सहज आकर्षण हो, इसको ध्यान में रखते हुए मनोवैज्ञानिक ढंग से तत्वो का प्रतिपादन किया गया है।

6. आत्मबोध भाग-1 व 2—मुनि किशनलाल, आत्मबोध भाग-3, 4—मुनि सुदर्शन—प्रस्तुत चार पुस्तकें महासभा धार्मिक पाठ्यक्रम मे पाठ्यपुस्तक के रूप मे निर्धारित थी। इसमें विविध लेखको की जैन दर्शन और तेरापन्थ सप्रदाय सम्बन्धी सामग्री सकलित है।

प्रवचन साहित्य —

1 प्रवचन डायरी भाग-1—आचार्य तुलसी —प्रस्तुत ग्रन्थ आचार्य तुलसी के ई. सन् 1953 के प्रवचनों का सग्रह है। प्रवचनो में विविध विषय हैं, उन विविधताओं का लक्ष्य एक ही है जीवन निर्माण। जीवन निर्माण की दिशा में दिए गए ये प्रवचन मानव समाज को एक नया दिशा सकेत देते हैं।

2. प्रवचन डायरी भाग-2—आचार्य तुलसी —इसमे आचार्य तुलसी ई. सन् 1954 के 163 और ई. सन् 1955 के 158 प्रवचनो का सग्रह है। प्रवचनो के नीचे दिनाक और स्थान का उल्लेख किया गया है।

3. आचार्य श्री तुलसी के अमर सदेश.—प्रस्तुत पुस्तक मे आचार्य तुलसी के विभिन्न अवसरो पर दिए गए प्रवचनों का सग्रह है। प्रस्तुत पुस्तक स्वतन्त्रता, शान्ति और मानवता के नव निर्माण मे एक मूल्यवान विचार निधि है।

4. पथ पाथेय—सं. मुनि श्रीचन्द्र.—प्रस्तुत कृति आचार्य तुलसी के प्रवचनों के विचार बिन्दुओं का संकलन है। गद्य काव्य के रूप मे चुने गए ये विचार विषय क्रम से हैं तथा इनमें

मार्मिक वेधकता है। संक्षेप में आचार्यश्री के विचारों का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रथम पुस्तक है।

5. शाति के पथ पर भाग-1, 2—आचार्य तुलसी:—प्रस्तुत दोनो पुस्तको में आचार्य श्री तुलसी के प्रवचनो का संग्रह है। सास्कृतिक सम्मेलन, दर्शन काम्फेन्स, युवक सम्मेलन, विचार परिषद, साहित्य परिषद, सस्कृत साहित्य सम्मेलन, महावीर जयन्ती, दीक्षा समारोह, स्वतन्त्रता दिवस, पर्युषण पर्व, अहिंसा दिवस आदि विशेष अवसरो पर दिए गए प्रवचन तथा सदेश सकलित है।

6 तुलसी वाणी—मुनि दिनकर—प्रस्तुत पुस्तक में आचार्य श्री तुलसी के प्रेरणाप्रद छोटे-छोटे प्रवचनों का सकलन है।

काव्यसाहित्य —

1. भाव और अनुभाव—मुनि नथमल:—प्रस्तुत कृति सूक्तियो और नीति-प्रवचनों का भण्डार है। भाषा की सरसता और सौम्यता के कारण सूक्तियो में निखार आ गया है। प्रस्तुत कृति मे अनुभूतियो का तीखापन है और व्यापक दर्शन है।

2 अनुभव चिन्तन मनन—मुनि नथमल—प्रस्तुत कृति मे दार्शनिक चिन्तनशीलता और अनुभूतियों को प्रखरता मुखरित हुई है।

3. आखो ने कहा—मुनि बुद्धमल—प्रस्तुत कृति मे परिस्थितियो का ऊबड-खाबड तथा अज्ञात पगडण्डी पर बढने वाले मानव सकल्प को विभिन्न प्रतीको के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

4 पथ और पथिक—साध्वी राजीमती—इस लघु कृति मे निराश व्यक्ति को उसके कर्तव्य-बोध के प्रति जागरुक किया गया है। पथिक सबोधन से लिखे गए य गद्य प्रकृति की मूक भाषा मे प्रेरणा के स्वर निकालते है।

5 रेखाचित्र—मुनि श्रीचन्द्र—51 गद्यात्मक प्रस्तुत कृति में आचार्यश्री तुलसी के जीवन का ऐसा शब्द चित्र खींचा गया है जिसकी प्रत्येक रेखा जीवन की विशेष घटना या विचारो का प्रतिनिधित्व करती है।

6. प्रकृति के चौराहे पर—साध्वी मजुला:—प्रस्तुत कृति मे सवेदनशील मानस का शब्द-मय प्रतिबिम्ब है। प्रकृति की विचित्रता मे 88 जिज्ञासाओ को उपस्थित करके उनका समाधान भी प्रश्नो के माध्यम से दिया गया है।

7. वर्तमान भारत का नक्शा—

8 मौन वाणी—मुनि चन्दन (सरसा):—प्रस्तुत कृति में सरल व सीधी भाषा में व्यावहारिक तथ्यो से प्रेरणा का स्वर मुखरित किया गया है।

9. अन्तर्ध्वनी—मुनि चन्दन (सरसा):—इस लघु कृति में अनुभूतियो और कल्पनाओं का संगम हुआ है।

10. राजहंस के पखो पर—मुनि चन्दन—प्रस्तुत कृति मे विविध रूपको द्वारा धार्मिक, राजनैतिक एव सांस्कृतिक विधा पर प्रतीकात्मक गद्य लिखे हुए हैं।

11. प्रकृति और प्रेरणा—मुनि कन्हैयालाल—प्रस्तुत कृति मे प्रकृति के माध्यम से अनेक प्रेरणाए दी गई हैं। कुछ गद्य उपदेशात्मक भी हैं।

12 विजय यात्रा—मुनि नथमल—आत्मा की साक्षात् अनुभूति ही विजय है। तप, सयम, स्वाध्याय, ध्यान, जप, कायोत्सर्ग आदि योगो मे जागरुकता यात्रा है। प्रस्तुत कृति मे भगवान महावीर की विजय यात्रा को काव्य मे प्रस्तुत किया गया है।

13 विचार विकास—मुनि धनराज (लाडनू)—प्रस्तुत कृति मे 71 विषयो पर लघु निबन्धात्मक गद्य है। इसमे सामान्य जीवन-व्यवहार मे उपयोगी विषयो पर अपने अनुभवो तथा विचारो को शब्दो का आकार दिया गया है।

14. नास्ति का अस्तित्व—[illegible]—प्रस्तुत कृति मे जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य मे आत्मा का अस्तित्व जैसे गम्भीर विषय को काव्य का परिधान देकर सरस व सुगम बनाया गया है। दर्शन के क्षेत्र मे यह नया उपक्रम है।

15. उठो जागो—मुनि बुद्धमल—प्रस्तुत पुस्तक सस्कृत के गद्यो का हिन्दी अनुवाद है। इसमे 54 गद्य युवक को सबोधित कर लिखे गए है, ये गद्य निराश युवक के मानस को झकझोर कर उसमे कर्तव्य बोध को जागृत करते है।

विविध साहित्य—

1 सास और बहू—मुनि श्रीचन्द्र—प्रस्तुत पुस्तक पारिवारिक जीवन के परिप्रेक्ष्य मे परिवार के सदस्यो—सास, बहू, पति-पत्नी, नौकर आदि के सम्बन्धो पर पूर्ण प्रकाश डालती है। सरल भाषा मे सत्य घटनाओ पर आधारित यह पुस्तक हर परिवार के लिए उपयोगी है।

2. स्मृति विज्ञान—मुनि श्रीचन्द्र—प्रस्तुत पुस्तक मे स्मरण शक्ति के विकास के साधनो पर प्रकाश डाला गया है और प्रयोग भी प्रस्तुत किए गए हैं।

3 विसर्जन—मुनि नथमल—प्रस्तुत पुस्तक मे वर्तमान के सदर्भ मे विसर्जन के विभिन्न पहलुओ पर समग्रता से विचार किया गया है।

4 बाल दीक्षा एक विवेचन—मुनि नगराज—प्रस्तुत पुस्तक मे जैन दीक्षा पर सर्वांगीण विवेचन और बाल दीक्षा की उपादेयता पर बौद्धिक तथा तार्किक रूप से विवेचन किया गया है। भारतीय सस्कृति के तथ्य रूप अनेको उदाहरणो से पूर्ण है।

5. मर्यादा महोत्सव इतिहास और परिचय—मुनि नगराज—मर्यादा शताब्दि समारोह के अवसर पर प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है। इसमे तेरापन्थ के मर्यादा महोत्सव का आदि से अन्त तक का वर्णन प्रामाणिकता से प्रस्तुत किया गया है।

6 जयाचार्य की कृतिया—मुनि मधुकर—प्रस्तुत पुस्तक मे महामनीषी जयाचार्य के सम्पूर्ण साहित्य (हस्तलिखित पुस्तको) का विस्तृत परिचय दिया गया है।

लघु पुस्तिका (ट्रेक्ट) साहित्य.—

1. विजय के आलोक में—मुनि नथमल—प्रस्तुत कृति भगवान महावीर के वाङ्मय पर आधारित चिन्तन प्रधान लेख है।

2. श्रमण सस्कृति की दो धाराए जैन और बौद्ध—मुनि नथमल—श्रमण संस्कृति पर एक निबन्धात्मक लघु कृति है।

3. विश्व स्थिति—मुनि नथमल—विश्व स्थिति के परिप्रेक्ष्य म लिखे गए 11 लघु निबन्धात्मक प्रस्तुत कृति है।

4 शान्ति और समन्वय का पथ-नयवाद—इसमे नयवाद के दार्शनिक पहलुओ के साथ आज की राजनैतिक गुत्थियो का तुलनात्मक विवेचन देते हुए शान्ति और समन्वय का एक व्यावहारिक हल प्रस्तुत किया गया है।

5 भारतीय भाषाओ को जैन साहित्यकारो की देन—मुनि बुद्धमल—प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रंश हिन्दी, गुजराती, मराठी, राजस्थानी, कन्नड, तमिल आदि भाषाओ मे योग, दर्शन, तत्व-निरूपण, इतिहास, पुराण, नीति, राजनीति, अर्थशास्त्र, व्याकरण, कोष, छन्द, अलंकार, भूगोल, गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, मन्त्र तन्त्र, सगीत, रत्न परीक्षा आदि विषयो पर जो साहित्य लिखा गया है उसका सक्षेप मे ब्योरा दिया गया है।

6 तेरापन्थ की विचारधारा और वर्तमान लोक चिन्तन—मुनि बुद्धमल—इसमे तेरापन्थ की विचार धारा को वर्तमान के चिन्तको विचारको के परिप्रेक्ष्य मे देखा गया है।

7 तेरापन्थ शासन प्रणाली—मुनि नगराज—तेरापन्थ की शासन व्यवस्था को वर्तमान समाजवादी आदि शासन प्रणालियो के साथ तोला गया है।

8 युग प्रवर्तक भगवान महावीर—मुनि नगराज—भगवान महावीर के जीवन पर और उनके अहिंसा अनेकान्त के सिद्धान्तो पर प्रकाश डाला गया है।

9 सर्वधर्म सदभाव—मुनि नगराज—सब धर्मों मे नवीनता होते हुए भी हम एकता कैसे खोज सकते है। यह इस ट्रेक्ट का विषय है।

10 अणुव्रत आन्दोलन—मुनि नगराज—अणुव्रतो के आदर्शो को सक्षेप मे विवेचित किया गया है।

11 आचार्य श्री तुलसी एक अध्ययन—मुनि नगराज—आचार्यश्री के व्यक्तित्व और कृतित्व पर एक परिचय पुस्तिका है।

12 तेरापन्थ दिग्दर्शन—मुनि नगराज—तेरापन्थ की संक्षिप्त परिचयात्मक पुस्तिका है।

13 मानवता का मार्ग अणुव्रत आन्दोलन—मुनि बुद्धमल—मानवता की भूमिका पर अणुव्रत आन्दोलन को प्रस्तुत किया गया है।

14. जैन धर्म एक परिचय—मुनि दुलहराज—जैन धर्म की प्रारम्भिक जानकारी के लिए यह उपयोगी पुस्तिका है ।

15. एक आदर्श आत्मा—मुनि धनराज (सरसा) —मुनि श्री केवलचन्द जी स्वामी का संक्षिप्त जीवन परिचय है ।

16. अणुव्रत आन्दोलन एक परिचय—मुनि रूपचन्द्र —उस समय तक अणुव्रत आन्दोलन की गति विधि तथा प्रमुख प्रवृत्तियो का दिशा बोध इसमे है ।

17 आचार्यश्री तुलसी एक परिचय—मुनि रूपचन्द्र.—आचार्य श्री तुलसी के जीवन का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत पुस्तिका में है ।

18 तेरापन्थ एक परिचय—मुनि रूपचन्द्र —तेरापन्थ की आज तक की प्रगति का अति संक्षेप में दिग्दर्शन किया गया है ।

19 तेरापन्थ-मुनि बुद्धमल —तेरापन्थ का सक्षिप्त परिचय इसमें प्रस्तुत किया गया है ।

20 हिन्दी जन-जन की भाषा—मुनि नथमल —हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान करने के लिए कई तर्क इसमें प्रस्तुत किए गए है ।

धर्म रहस्य, दर्शन प्रकाश, वर्तमान भारत का नक्शा, आदि बीस-तीस पुस्तके वर्तमान की स्थिति में उपलब्ध न होने के कारण इनसे मै आपका परिचय नही करा सकता ।

हिन्दी जैन गद्य साहित्य—8..

—पं. अनूपचन्द न्यायतीर्थ

राजस्थान प्राचीन काल से ही साहित्य व संस्कृति का केन्द्र रहा है। यहा की भूमि मे जिस प्रकार अनेक रण-बाकुरो ने जन्म लेकर इसके कण-कण को पवित्र किया है उसी प्रकार अनेक साहित्यकारों व कलाकारो ने साहित्य की सर्जना कर तथा कला द्वारा इसका सम्मान बढाया है। अनेक शास्त्र भण्डार और विशाल कलापूर्ण मन्दिर इसके ज्वलन्त प्रमाण है। साहित्य समाज का दर्पण है। समाज की उन्नति, अवनति, अधोपतन, विनाश व पुनरुत्थान आदि सभी उसके साहित्य मे सम्मिलित हैं। यदि किसी समाज का साहित्य सम्पन्न, उच्च कोटि का व लोकोपकारी भावनाओ से ओत-प्रोत है, आत्मा के उद्धार मे सहयोग देने वाला है, उसी समाज की स्थिति अक्षुण्ण बनी रहती है अन्यथा बनती व बिगडती रहती है और कभी-कभी तो समूल नष्ट हो जाती है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि राजस्थान मे अनेक शास्त्र भण्डार है जिनमे सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, राजस्थानी व हिन्दी आदि अनेक भाषाओ मे लिपि-बद्ध आगम-सिद्धान्त, ज्योतिष, व्याकरण, आयुर्वेद, इतिहास, चरित्र पुराण, काव्य, कथा, रस, पिंगल कोश आदि अनेक विषयो के ग्रन्थ उपलब्ध है। इन भण्डारो के सूचीपत्र भी छपे है। वैसे सभी भाषाओं का साहित्य पद्य व गद्य मे मिलता है किन्तु पद्य मे प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। इसका कारण यह है कि गेय होने के कारण स्वात सुखाय और मनोरजक होने के कारण साहित्यकारो की रुचि पद्य-रचना की ओर अधिक रही है। राजस्थान मे आज भी बडे-बडे आख्यान गीत रूप मे गा कर सुनाए जाते हे। वक्ता और श्रोता को जितना आनन्द गेय पद्यों मे आता हैं और किसी मे भी नही। पद्यो की गेयात्मकता से मनुष्य ही नही पशु-पक्षी भी झूम उठते है और आनन्द-विभोर हो जाते हैं। गद्य का विकास बहुत पीछे का है। डा रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार तो हिन्दी साहित्य के सर्वप्रथम गद्यकार लल्लूलाल तथा सदल मिश्र माने जाते है किन्तु यह धारणा अब गलत सिद्ध हो चुकी है क्योकि हिन्दी गद्य साहित्य का विकास 18वी शताब्दी से पूर्व हो चुका था।

पं दौलतराम कासलीवाल, महापण्डित टोडरमल, प जयचन्द छाबडा आदि दिगम्बर जैन गद्य साहित्यकार हुए है किन्तु इनकी रचनाए अधिकतर राजस्थानी, ढूढारी तथा ब्रज मिश्रित है। कही-कही गुजराती व पजाबी का भी पुट है। यद्यपि डा रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में प दौलतराम के गद्य को खडी बोली का गद्य स्वीकारा है (पत्र 411), किन्तु इनकी भाषा ढूढारी तथा ब्रज होने के कारण पूरी तरह से खडी बोली की गणना मे नही आती। खडी बोली का गद्य साहित्य गत 100 वर्षों से ही मिलता है। खड़ी बोली का तात्पर्य जनसाधारण की सीधी सादी बोली है। इस भाषा मे रचना करने वाले राजस्थान के दिगम्बर जैन साहित्यकारो मे से कुछ प्रमुख साहित्यकारो का परिचय इस प्रकार है।

1. पं. चैनसुखदास न्यायतीर्थ.—पडितजी प्राकृत, सस्कृत के समान हिन्दी भाषा के भी प्रमुख विद्वान् थे। प्रारम्भ से ही इन्हें लिखने मे रुचि थी तथा आपके लेख विश्वामित्र, कल्याण, अनेकान्त, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि पत्रो मे प्रकाशित होते रहते थे। आप वर्षों तक विभिन्न पत्रो के सम्पादक रहे। वीरवाणी की सम्पादकीय टिप्पणिया आपकी विद्वत्ता एव सूझबूझ के अतिरिक्त आपको हिन्दी गद्य के प्रमुख लेखकों मे प्रस्तुत करने वाली है। आप कभी

कभी कहानियां भी लिखते थे। पंडितजी के गद्य का एक नमूना इस प्रकार है:—

"क्षमा हमें विवेक देती है और प्रत्येक विषय पर गहराई से विचार करने का अवकाश प्रदान करती है। क्षमा को ठीक समझने के लिए हमें उसके दो भेद करने होंगे। एक साधु की तथा दूसरी गृहस्थ की। साधु की क्षमा प्रतिकार रहित होती है जब कि गृहस्थ की क्षमा आततायियों का प्रतिकार करती है। क्षमा मनुष्य को अकर्मण्यता का पाठ नहीं पढाती, वह तो मनुष्य को काम करना सिखाती है और आध्यात्मिक योगी को आत्म-समर्पण की शिक्षा देकर मुक्ति की राह बतलाती है।"

पंडितजी इस शताब्दि के अच्छे हिन्दी गद्य लेखक माने जाते हैं।

2. श्री श्रीप्रकाश शास्त्री —आपका जन्म सं. 1972 में जयपुर में हुआ। आपके पिता श्री बालचन्द जी सोनी थे। आपने सन् 1934 में न्यायतीर्थ, 1935 में शास्त्री व 1936 में काव्यतीर्थ की परीक्षा पास की। सन् 1933 से ही आपके लेख जैन पत्र-पत्रिकाओं में छपने लग गए थे। आप दर्शन व आध्यात्मिक परक लेख लिखने में विशेष रुचि लेते थे। पंडितजी प्राचीन साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान थे और हिन्दी जैन साहित्य पर आपके कितने ही लेख वीरवाणी में प्रकाशित होते रहते थे। आपने पं. चैनसुखदास जी के संस्कृत ग्रन्थ 'निक्षेपचक्र' का हिन्दी अनुवाद किया था। वीरवाणी में आपने 'जयपुर राज्य के दिगम्बर जैन साहित्यकार' लेख माला के माध्यम से सारे साहित्यकारों का पूर्ण परिचय प्रस्तुत किया। आपने सूर्यसागर ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित तथा आचार्य सूर्यसागर जी द्वारा लिखित 'संयम प्रकाश' ग्रन्थ का संपादन किया था। आप महान् साहित्यसेवी थे। आपका असमय में निधन होने से साहित्य जगत का गहरी क्षति पहुंची है।

3. पण्डित इन्द्रलाल शास्त्री —आपका जन्म 21-9-1897 को जयपुर में हुआ। आप मुंशी मोतीलाल जी बादगढ के पुत्र थे। आपने सं. 1972 में शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। आपका अध्ययन गहन एवं विद्वत्ता अगाध थी। हिन्दी पद्य के समान हिन्दी गद्य के भी शास्त्री जी अच्छे लेखक थे। खण्डेलवाल जैन हितेच्छु, अहिंसा जैसे पत्रों के सम्पादक रह कर हिन्दी गद्य साहित्य की अच्छी सेवा की थी। आपकी निम्न रचनायें इस प्रकार हैं—धर्म सोपान, तत्त्वालोक, आत्म वैभव, पशुवध सबसे बडा देशद्रोह, शांति पीयूषधारा, अहिंसा तत्त्व, विवेक मंजूषा, दिगम्बर जैन साधु की चर्या, जैन धर्म और जाति भेद, महावीर देशना, भारतीय संस्कृति का महारूप आदि।

आप अपने समय के अच्छे वक्ता, लेखक, कवि तथा अनेक पत्रों के सम्पादक रहे हैं।

4 पं. मिलापचन्द शास्त्री:—आपका जन्म जयपुर राज्य के प्रतापपुरा ग्राम में वि सं 1971 में हुआ था किन्तु कुछ समय बाद आप जयपुर में श्री मगनलाल जी पहाडिया के यहां गोद आ गए। यहां आने के पश्चात आपने शास्त्री व न्यायतीर्थ की परीक्षाएं उत्तीर्ण की। आपकी प्रवचन शैली और लेखन शैली दोनों ही मजी हुई हैं। आपने 'पावन-प्रवाह' एवं 'जैन दर्शनसार' पर सुन्दर हिन्दी गद्य टीकाएं लिखी हैं। समय-समय पर आपके लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहते हैं।

5 डा कस्तूरचन्द कासलीवाल —डा कासलीवाल का जन्म दिनांक 8 अगस्त, 1920 को जयपुर जिलान्तर्गत सैथल ग्राम में हुआ। आपके पिताजी श्री गैंदीलालजी ग्राम के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में से थे। ग्राम में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद आप अपने छोटे भाई के साथ जयपुर में पं. चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ के संरक्षण में आए और यहीं एम. ए. तथा

शास्त्री की परीक्षा पास की। आप पंडितजी के प्रमुख शिष्यों में है। सन् 1961 मे राजस्थान विश्वविद्यालय ने 'आपको राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारो' पर शोधकार्य करने पर पी. एच. डी. की उपाधि से सम्मानित किया। गत 25 वर्षों से डा. कासलीवाल प्राचीन साहित्य की खोज एव प्रकाशन मे लगे हुए है। अब तक आपकी 20 से भी अधिक पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारो की ग्रन्थ सूची पाच भाग, प्रशस्ति सग्रह, प्रद्युम्न चरित, जिणदत्त चरित, राजस्थान के जैन सन्त, हिन्दी पद सग्रह, महाकवि दौलतराम कासलीवाल व्यक्तित्व और कृतित्व, शाकम्भरी प्रदेश के सास्कृतिक विकास मे जैन धर्म का योगदान और वीर शासन के प्रभावक आचार्य आदि हैं। राजस्थान के जैन सन्त विद्वत् परिषद् 'तथा महाकवि दौलतराम कासलीवाल व्यक्तित्व और कृतित्व साहित्य परिषद् द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है। राजस्थान मे जैन साहित्य को प्रकाश मे लाने का प्रमुख श्रेय आपको ही है। आपके 350 से भी अधिक खोजपूर्ण लेख देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी भाषा व शैली दोनों ही सरल किन्तु भावपूर्ण है। आपकी भाषा शैली का नमूना इस प्रकार है—

> "राजस्थान के मध्य मे स्थित होने तथा प्राकृतिक साधनो से रक्षित होने के कारण अजमेर अपने जन्म से ही देश के सर्वोच्च शासको के आकर्षण का केन्द्र रहा है। यह नगर पृथ्वीपुर, अजयमेरु, अजयदुर्ग, अजयगढ, अजयनगर, अजीर्णगढ जैसे विभिन्न नामों से प्रसिद्ध रहा है। सर्व प्रथम यह प्रदेश शाकम्भरी प्रदेश के अधीन रहा है लेकिन कुछ ही समय पश्चात् इसे इसकी राजधानी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।"
>
> (शाकम्भरी प्रदेश पृष्ठ 15)

अपनी विद्वता एव महती साहित्य सेवा के कारण आप अब तक कितनी ही सामाजिक व साहित्यिक सस्थाओ से सम्मानित हो चुके हैं। डा कासलीवाल को राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो मे से कितनी ही रचनाओं को प्रकाश मे लाने का श्रेय है। साहित्यान्वेषण उनके जीवन का स्वभाव बन गया है। इनकी लेखन शैली मे माधुर्य है तथा अपनी बात को अत्यधिक स्वाभाविकता से रखते है।

6 <u>पण्डित गुलाबचन्द जैन दर्शनाचार्य</u>—प. गुलाबचन्द का जन्म जयपुर जिले के गोनेर ग्राम मे दिनाक 9-11-21 को हुआ। आपके पिता का नाम भूरामल जी छाबडा है। पडित जी जैन दर्शन के अच्छे विद्वान् हैं। सन् 1969 से आप दिगम्बर जैन सस्कृत कालेज, जयपुर के प्राचार्य हैं। पडित जी हिन्दी गद्य के अच्छे लेखक है। अब तक आपके एकाकी, नेमिराजुल सवाद आदि प्रकाशित हो चुके है।

7. <u>प. भवरलाल न्यायतीर्थ</u>—आपका जन्म जयपुर मे संवत् 1972 मे हुआ था। आपके पिता श्री गेंदीलाल जी भावसा जयपुर के प्रसिद्ध सगीतज्ञो मे से थे। आप जयपुर नगर के प्रसिद्ध विद्वान्, पत्रकार, लेखक एव कुशल वक्ता माने जाते है। गत 30 वर्षो से आप वीरवाणी का सम्पादन कर रहें हैं तथा इसके पूर्व जैन बन्धु तथा जैन हितेच्छु के सम्पादक रह चुके है। जयपुर के जैन दीवानो पर लेखमाला के रूप में आपके द्वारा लिखित खोज पूर्ण सामग्री प्रकाशित हो चुकी है। सयम-प्रकाश एव बनारसी-विलास ग्रन्थो का आपने सम्पादन किया है। आपकी गद्य शैली सुन्दर है।

पडित जी साहित्यसेवी के साथ ही समाज सेवी भी हैं तथा वीर निर्वाण भारती मेरठ द्वारा आप समाजरत्न की उपाधि से सम्मानित हो चुके है।

8. प्रो. प्रवीणचन्द जैन —प्रो. प्रवीणचन्द जी जैन का जन्म सन् 1909 जयपुर मे श्री लक्ष्मणलाल जी पाटनी के यहा हुआ। आपकी प्रारम्भ से ही अध्ययन की ओर विशेष रुचि रही। आपने एम ए. हिन्दी व सस्कृत, शास्त्री व साहित्यरत्न की परीक्षा उत्तीर्ण की। शिक्षा जगत मे आपका विशेष योगदान रहा तथा भरतपुर, डूगरपुर, बीकानेर, बनस्थली महाविद्यालयो के वर्षो तक आचार्य रहे। आज कल आप उच्चस्तरीय अनुसधान केन्द्र, जयपुर के सचालक है तथा पौराणिक साहित्य पर विशेष अनुसन्धान मे लगे हुए हैं।

9 डा हुकुमचन्द भारिल्ल —आप हंसराज भारिल्ल के पुत्र है। आप शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्य रत्न तथा एम ए., पी. एच डी. है। आप हिन्दी के अच्छे विद्वान् हैं। आप उच्च कोटि के निबन्धकार तथा आध्यात्मिक वक्ता हैं। गत 10 वर्षो से आप जयपुर मे प टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के सयुक्त मत्री है। आपको कितनी ही रचनाये प्रकाशित हो चुकी हैं—बालबोध पाठमाला भाग 1 से 3, वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग 1 से 3, तीर्थंकर महावीर, भगवान महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ तथा पडित टोडरमल व्यक्तित्व और कृतित्व आदि। आपकी भाषा सरस व प्राजल है। आपकी भाषा का नमूना इस प्रकार है —

> "भोले भक्तो ने अपनी कल्पना के अनुसार तीर्थंकर भगवन्तो मे भी भेदभाव कर डाला है। उनके अनुसार पार्श्वनाथ रक्षा करते है तो शान्तिनाथ शान्ति। इसी प्रकार शीतलनाथ शीतला (चेचक) को ठीक करने वाले है और सिद्ध भगवान् को कुष्ठ रोग निवारण करने वाला कहा जाता है। भगवान तो सभी वीतरागी, सर्वज्ञ, एक सी शक्ति, अनन्तवीर्य के धनी है। उनके कार्यो मे यह भेद कैसे सम्भव है? एक तो भगवान कुछ करते ही नही है, यदि करे तो क्या शान्तिनाथ पार्श्वनाथ के समान रक्षा नही कर सकते? ऐसा कोई भेद तो अरहन्त सिद्ध भगवन्तो मे है नही।"

(सर्वोदय तीर्थ पृष्ठ 115)

10. डा. कमलचन्द सौगानी —डा सौगानी का जन्म 25 अगस्त 1928 को जयपुर म हुआ। आप उदयपुर विश्वविद्यालय मे दर्शन विभाग के प्रोफेसर एव अपने विषय के अधिकारी विद्वान् है। आप 'एथिकल डाक्ट्रिन्स इन जैनिज्म' शोध प्रबन्ध पर राजस्थान विश्वविद्यालय से पी-एच डी की उपाधि से सम्मानित हो चुके हैं। मुनि श्री मिश्रीलाल जी महाराज तथा प चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ द्वारा सकलित 'अर्हत् प्रवचन' तथा 'प्रवचन प्रकाश' के हिन्दी रूपान्तर मे आपका बहुत बडा हाथ रहा है।

11. प. मूलचन्द शास्त्री —श्री शास्त्री जी वर्षों से श्री महावीर जी (राज) मे रह कर मा सरस्वती की सेवा कर रहे है। आप हिन्दी व संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् है। आपने जैन दर्शन के उच्च ग्रन्थ आप्त-मीमासा तथा युक्त्यनुशासन का विस्तृत अनुवाद किया है। स्वतन्त्र ग्रन्थ "जैन दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन" अभी अप्रकाशित है। आपने महाकवि कालिदास के मेघदूत के अन्तिम चरण की समस्या पूर्ति करते हुए राजुल की विरह वेदना को व्यक्त करने वाले 'वचन-दूतम्' सस्कृत काव्य की रचना की है। साथ ही उसका पद्यानुवाद तथा

गद्यानुवाद भी आपने ही किया है। आपकी भाषा बहुत ही सम्पन्न तथा प्रांजल है। पंडितजी के दार्शनिक विचारों का दिग्दर्शन कराने वाला गद्य का एक नमूना इस प्रकार है—

"आत्मा मे अल्पज्ञता एव सदोषता ज्ञानावरणादिक पौद्गलिक कर्मों के सम्बन्ध से आती है। जब उनका अपने विरोधी कारणों के उत्कर्ष से अभाव- सर्वथा क्षय होता है तब आत्मा निर्दोष होकर सर्वज्ञ हो जाता है।"

12. प. मिलापचन्द रतनलाल कटारिया.—आप केकडी के रहने वाले दिगम्बर जैन कटारिया गोत्रीय श्रावक है। केकडी जैन विद्वानो का केन्द्र रहा है और आपने उसमे चार चाद ही लगाए है। जैन साहित्य सेवियो मे इन पिता-पुत्र के जैसे कम ही देखने को मिलेगे। दोनो ही सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश तथा हिन्दी के अच्छे विद्वान्, सिद्धान्त, पुराण, कथा-चरित्र, व्याकरण, दर्शन, पूजा विधान आदि सभी विषयो के ज्ञाता, सफल समालोचक एव अधिकारी लेखक हैं। आप दोनो के अच्छे लेखे अनेक पत्र-पत्रिकाओ मे निकलते है। आपके अनेक शोधपूर्ण निबन्धो का सकलन "जैन निबन्ध रत्नावली" मे निकल चुका है। इसे वीर शासन सघ, कलकत्ता ने अप्रेल 1966 मे प्रकाशित कराया है।

13 श्री भवरलाल पोल्याका —पोल्याका जी का जन्म जयपुर मे सन् 1918 मे श्री पारसमलजी पोल्याका के यहा हुआ। आपकी शिक्षा जैन सस्कृत कालेज मे हुई जहा से आपने जैन दर्शनाचार्य तथा साहित्य शास्त्री की परीक्षाए उत्तीर्ण की। आप कुशल वक्ता, लेखक और समालोचक है। जयपुर से प्रकाशित होने वाली 'महावीर जयन्ती स्मारिका" के आप कई वर्षों से प्रधान सम्पादक है। आपकी भाषा लालित्य व प्रसादगुण युक्त होती है। 'तमिल भाषा का जैन साहित्य" पुस्तक जो आपके द्वारा लिखित है, प्रकाशित हो चुकी है।

14 प वशीधर शास्त्री —आपका जन्म आज से करीब 40 वर्ष पूर्व चौमू मे हुआ। आपका अध्ययन पडित चैनसुखदासजी के सानिध्य मे हुआ। शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद आपने एम. ए तथा साहित्यरत्न की परीक्षा उत्तीर्ण की। आपके खोजपूर्ण लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे छपते रहते हैं। आप अधिकतर समालोचनात्मक लेख लिखते है। आप आजकल बारह भावना तथा बारह मासा साहित्य पर कार्य कर रहे है।

15 प. श्री हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री —प हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री मध्य-प्रदेश के निवासी है लेकिन गत 15-20 वर्षो से वे राजस्थान मे रहते हुए जैन साहित्य की अपूर्व सेवा कर रहे है। सर्व प्रथम 'जयधवला' की हिन्दी टीका मे उन्होने प्रमुख योग दिया।

16 श्री नाथूलाल जैन.—श्री नाथूलाल जैन कोटा निवासी है तथा हिन्दी के अच्छे लेखक एव कवि हैं। आप भाषा आयोग के सदस्य भी रह चुके हैं।

उक्त जैन हिन्दी विद्वानो एव लेखको के अतिरिक्त डा लालचन्द जैन बनस्थली, डा गगाराम गर्ग भरतपुर, महावीर कोटिया जयपुर, श्रीमती सुशीला देवी बाकलीवाल, श्रीमती सुदर्शन छाबड़ा जयपुर, श्रीमती सुशीला कासलीवाल, प सत्यन्धरकुमार सेठी, श्रीमती

स्नेहलता जैन, सुश्री सुशीला बैद, प्रेमचन्द रावका, भवरलाल सेठी, माणिक्यचन्द्र जैन आदि के नाम विशेषत उल्लेखनीय हैं। इनमें से श्री डा लालचन्द जैन नाट्यकार है और अब तक आपके दो तीन लघु नाटक प्रकाशित हो चुके है। डा गगाराम गर्ग ढूढारी भाषा के कवियो पर लेख प्रकाशित करते रहते है। श्रीमती सुशीला देवी बाकलीवाल उदीयमान लेखिका है और आप समालोचनात्मक लेख लिखने मे विशेष रुचि लेती है। श्रीमती सुदर्शन छाबडा जैन तत्वज्ञान पर लेख लिखती रहती है। श्री प्रेमचन्द रावका भी युवा लेखक हैं और ब्रह्म. जिनदास पर खोज कार्य कर रहे है।

जैन साहित्य पर कार्य करने वाले विद्वानो मे प्रमुख रूप मे साहित्य, दर्शन एव सिद्धान्त पर लिखने वाले लेखको की सबसे अधिक सख्या है। प्राचीन जैन साहित्य को प्रकाश मे लाने का सर्वाधिक श्रेय डा कस्तूरचन्द कासलीवाल को है जिन्होने सैकडो सस्कृत, अपभ्रश एव राजस्थान के कवियो पर अपनी कृतियो एव लेखो मे प्रकाश डाला है तथा जो सदा लेखकों एव विद्वानो को आगे बढाने मे सतत प्रयत्नशील रहते है।

जैन कथा साहित्य की प्रवृत्तियां—9

—श्री महावीर कोटिया

धर्म और कथाए

कथाए जन-मानस के लिए सदा ही प्रिय और आह्लादकारी रही है। धर्म-प्रवर्तकों, धर्माचार्यों तथा प्रचारकों ने मानव-मन के इस मूलभूत मनोविज्ञान को बडी सावधानी से पहचाना और धार्मिक भावना के प्रचार मे इसका भरपूर उपयोग किया। यही कारण है कि संसार के धार्मिक साहित्य का अधिकांश कथा-कहानियो मे है। कथाओ के द्वारा धार्मिक सिद्धान्तो को जन-मन के लिए सुगमतापूर्वक ग्राह्य बनाया जा सका। इस तरह धर्म लोकप्रिय बन सका, परलोक सुधार के साथ-साथ लोकरंजन का भी साधन बन सका। बडी ही रोचक और प्रेरणास्पद कथा-कहानियो का अक्षय भण्डार विविध धर्मो मे उपलब्ध है।

जैन कथा साहित्य

साहित्य का उत्स धर्म रहा है। धार्मिक कथाये साहित्य का मूलाधार रही है। तदनुसार जैन साहित्य भी मूलत धार्मिकता-परक है। अनेकानेक कथाओं, उपकथाओं, प्रसंग आदि के द्वारा जैन दार्शनिक सिद्धान्तो, जैन आचार तथा विचार को लोकमानस के लिए सुलभ कराया गया ताकि जन-मन अधिकाधिक धर्म के प्रति आकृष्ट हो सके। यही कारण है कि जैन परम्परा का कथात्मक साहित्य विशाल परिमाण मे उपलब्ध है।

समग्र जैन साहित्य को चार अनुयोगो मे विभाजित किया गया है—(1) चरण-करणानुयोग (2) धर्मकथानुयोग (3) द्रव्यानुयोग और (4) गणितानुयोग। इस विभाजन मे धर्मकथानुयोग का एक स्वतन्त्र वर्ग रखा जाना जैन साहित्य मे कथाओ के माहात्म्य का प्रमाण है। वस्तुत कथाओ के माध्यम से उपदेश ज्ञान प्रतिबोध देने की जैन परम्परा की प्राचीनतम शैली है। प्राप्त आगम ग्रन्थो जिनमे भगवान महावीर की वाणी का सकलन है, मे ही हजारो कथाए तथा प्रसग मिलते है। ज्ञाता धर्म कथा, उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, विपाकश्रुत, निरयावलिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वह्निदशा, आदि आगम ग्रन्थ इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। प्राचीन जैन साहित्यकारो मे आचार्य भद्रबाहु जिनदास गणि व सघदास गणि, विमलसूरि, अभयदेव शीलाक आचार्य जिनसेन, आचार्य गुणभद्र, आचार्य हरिभद्र, आचार्य हेमचन्द्र प्रभृति ने अनेक जैन कथाओ को साहित्यिक रूप देकर सदा-सर्वदा के लिए सुरक्षित व अमर बना दिया है। इन द्वारा प्रणीत चरित ग्रन्थो, पुराणो तथा आधुनिक भारतीय भाषाओ विशेष कर राजस्थानी व गुजराती के अनेक साहित्य-कारो ने अपने रास ग्रन्थो, फागु, चर्चरी, वेलि सज्ञक कृतियो मे जैन कथाओ को सुन्दर साहित्यिक रूप मे प्रस्तुत कर जैन साहित्य की महान सेवा की है।

हिन्दी में जैन कथा साहित्य

हिन्दी मे प्रारम्भिक जैन कथा ग्रन्थ संस्कृत पुराणो व चरितादि ग्रन्थो के अनुवाद-अनुकरण के रूप मे प्रणीत हुए। परन्तु यह प्रवृत्ति प्रारम्भिक ही रही। कालान्तर मे जैन

आगमिक व पौराणिक साहित्य मे बिखरी कथाओ को हिन्दी गद्य मे स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत किया जाने लगा । आज स्थिति यह है कि जैन कथाए विविध साहित्यिक विधाओ के स्वरूप में मण्डित होकर समकालीन हिन्दी साहित्य कृतियो के समानान्तर लिखी जा रही हैं। उपन्यास, लघु उपन्यास, कहानी, लघु कथाए, नाटक-एकाकी आदि विधाओ मे आज जैन कथा साहित्य उपलब्ध है ।

राजस्थान का जैन कथा साहित्य

जैन साहित्य के उन्नयन मे राजस्थान का सदा ही अग्रणी स्थान रहा है। इस तथ्य का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इस प्रदेश मे लगभग तीन हजार ग्रन्थागार है जिनमे लगभग तीन लाख पाण्डुलिपिया एकत्रित हैं। यह अधिकाश साहित्य अप्रकाशित है क्योकि इस युग मे साहित्य प्रकाशन की आज की जैसी सुविधाएं उपलब्ध नही थी। आज का जैन साहित्यलेखन इस दृष्टि से भाग्यवान है कि उसका अधिकाश भाग प्रकाशित है, प्रकाशित होता रहता है। अनेक जैन पत्र-पत्रिकाओ ने साहित्य-प्रकाशन की स्थिति को अधिक सुविधाजनक बना दिया है। पुन साधु-साध्वियो के प्रभाव व जैन धनिको की उदार सहायता के कारण भी आधुनिक जैन साहित्य के प्रकाशन का क्षेत्र उज्ज्वल रहा है।

हिन्दी जैन साहित्य की अधुनातन प्रवृत्तियो मे निबन्ध, समालोचना, शोध-प्रबन्ध तथा प्रवचन-साहित्य का प्रणयन व प्रकाशन अधिक हुआ है, अपेक्षाकृत विविध विषापरक स्वतन्त्र कथा साहित्य का प्रणयन व प्रकाशन स्वल्प है। यहा हम राजस्थान के उपलब्ध जैन कथा साहित्य का विधापरक व प्रवृत्तिमूलक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहे है। इस अध्ययन से आधुनिक जैन कथा साहित्य लेखन की विशिष्टता तथा दिशा का प्रकटीकरण हो सकेगा, ऐसा विश्वास है ।

उपन्यास-लघु उपन्यास

प्रकाशित उपन्यासो की सख्या बहुत सीमित ही है। जिन उपन्यासो की जानकारी मिल सकी है, वे ह, चितेरो के महावीर—डा. प्रेम सुमन जैन, अग्निपथ—कमला जैन 'जीजी', कपिल—आचार्य अमृत कुमार, तरगवती, शूली और सिहासन, भटकते भटकते—तीनो कृतियों के लेखक है ज्ञान भारिल्ल । लघु उपन्यासो मे प्रस्तुत लेखक के दो उपन्यास 'जिनवाणी' (मासिक पत्रिका जयपुर) मे धारावाहिक प्रकाशित हुए है, वे है आत्मजयी और कूणिकः ।

'चितेरो के महावीर' उपन्यास मे महावीर के परम्परा मे मान्य जीवन प्रसगो को नवीन शैली मे प्रस्तुत किया गया है। मध्यप्रदेश मे विदिशा के पास अवस्थित उदयगिरि की गुफाओ को पृष्ठभूमि के रूप मे लेकर और आचार्य कश्यप तथा उनके कलाकार शिष्यो की कल्पना कर लेखक ने उपन्यास मे धाराप्रवाहिकता, रोचकता व महावीर सिद्धान्तो के प्रस्तुतिकरण मे सहजता का समावेश किया है। उपन्यास की यह नवीन शैली एक उपलब्धि है। 'कपिल' नामक उपन्यास मे लेखक आचार्य अमृतकुमार ने 'उत्तराध्ययन सूत्र' के आठवें अध्ययन मे उपलब्ध कथासूत्र को आधुनिक उपन्यास को शैली मे प्रस्तुत कर, सार्वजनिक बना दिया है। उपन्यास का कथानक सार्वकालिक और सार्वभौमिक है। शकुनीदत्त के चरित्र द्वारा मनुष्य का स्वार्थ और उसकी प्रेरणा से किए जाने वाले मानवीय दुष्कर्म प्रकट हो चुके हैं, वही व्यक्ति की अपराध प्रवृत्ति का मनोवैज्ञानिक स्वरूप स्पष्ट हो सका है। 'कपिल' के पात्र हमारे ही समय के, हमारे गली-मुहल्ले के ही पात्र है और इसमें उठाई गई समस्या भी पूर्णत मानवीय है, अत सबकी है। आधुनिक जैन साहित्यकार प्राचीन कथासूत्रो को किस सफलता से आधुनिकता

का जामा पहना रहा है और उन कथाओं में निहित शाश्वत मानवीय आदर्शों को प्रस्तुत कर नैतिक जागरण का जो प्रयत्न कर रहा है, उसका इस उपन्यास से आभास किया जा सकता है।

कमला जैन 'जीजी' का उपन्यास 'अग्निपथ' जैन साध्वी श्री उमरावकुंवर जी 'अर्चना' की जीवन कथा पर आधारित है। इस महिमावान, परम विदुषी, महान तपस्विनी साध्वी का आदर्श जीवन प्रस्तुत कर लेखिका ने सामाजिक नैतिक जागरण को ही दिशा दी है। पवित्र आत्माओं के चरित्र हमारे लिए दीप-स्तम्भ है, जो अज्ञान की अंधियारी में भटकती मानवता को प्रकाश देते हैं। इस कृति की यह विशिष्टता है कि प्रत्यक्ष मे जीए गए जीवन को सहज, सरल और रोचक औपन्यासिक शैली मे सफलता पूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

श्री ज्ञान भारिल्ल का उपन्यास 'तरगवती' एक प्राचीन जैन कथा का आत्म कथात्मक उपन्यास के रूप मे किया गया रूपान्तर है। आचार्य पादलिप्त द्वारा मूल प्राकृत मे लिखी गई इस कथा मे पुनर्जन्म के सिद्धान्त की रोचक पुष्टि हुई है।

लघु उपन्यास की दृष्टि से प्रस्तुत लेखक के दो उपन्यास 'आत्मजयी' और 'कूणिक' प्रकाश में आए हैं। 'आत्मजयी' में तीर्थंकर महावीर की जीवन घटनाओं को बौद्धिक व मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। । उपन्यास द्वारा महावीर स्वामी के महामानव रूप और उन द्वारा प्रचारित धर्म का लोक कल्याणकारी स्वरूप प्रकट हुआ है। 'कूणिक' मे जैन परम्परा में उपलब्ध अजात शत्रु के राज्य ग्रहण की घटना को आधार बनाकर पिता-पुत्र सम्बन्धो के भावनात्मक स्वरूप व आदर्श को वाणी दी गई है जिसकी आज के घोर व्यक्तिगत स्वार्थो से परिचालित जीवन मे नितात आवश्यकता है।

ऊपर जिन कतिपय कृतियो का परिचय दिया गया है, उसके आधार पर हम जैन उपन्यासो की प्रवृत्तियो का निम्न प्रकार उल्लेख कर सकते है --

1 आधुनिक जैन उपन्यास का कथासूत्र परम्परागत स्रोतो से प्राप्त किया जाता है। यही एक बडा आधार है जिस कारण हम इस प्रकार की कृतियो को जैन उपन्यास कह सकते है।

2. परम्परागत कथा सूत्र को कथाकारो ने नया रूप, नई शैली व नवीन विचारो से अनुप्राणित किया है।

3 उपन्यासो मे आधुनिक सदर्भ तथा आज के युग की समस्याओ को भी प्रस्तुत किया गया है।

4 इन उपन्यासो का उद्देश्य नैतिक आदर्श प्रस्तुत कर पाठक को चरित्र-निर्माण की दिशा सकेत करना है।

5. ये उपन्यास सुन्दर साहित्यिक कृतिया है जिनमें आधुनिक औपन्यासिक शैली का सफल निर्वाह हुआ है।

कहानी-लघु कथाएं

कहानी सकलन अपेक्षाकृत अधिक परिमाण मे प्रकाशित हुए है। कतिपय सकलन है--कुछ मणिया कुछ पत्थर--डा. नरेन्द्र भानावत, बदलते क्षण--महावीर कोटिया, धार्मिक कहानिया

आचार्य श्री हस्तीमल जी, जैन कथामाला भाग 1 से 12–श्री मधुकर मुनि, जैन कहानियो भाग-1 से 25,–मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी 'प्रथम', प्रताप कथा कौमुदी भाग-1 से 5–श्री रमेश मुनि, सौन्दर्य दर्शन–श्री शान्ति चन्द्र मेहता, कथा कल्पतरु–मुनि श्री छगनमल, लो कहानी सुनो, लो कथा कहदू –श्री भगवती मुनि 'निर्मल', श्री देवेन्द्र मुनि के सकलन–खिलती कलियां मुस्कराते फूल, प्रतिध्वनि, श्री गणेश मुनि शास्त्री के सकलन–प्रेरणा के बिन्दु श्री विजय मुनि शास्त्री का 'पीयूष घट तथा' श्री केसरीचन्द्र सेठिया का सग्रह 'मुक्ति के पथ पर' आदि।

उक्त कहानी व लघुकथा सकलनो को देखकर हमे हिन्दी जैन कथा साहित्य की निम्न तीन प्रवृत्तिया परिलक्षित होती है।

(क) जैनागमो, पुराणो तथा अन्य धार्मिक साहित्य मे उपलब्ध कथासूत्रो को आधार रूप मे लेकर अपने वर्णन कौशल व कल्पना से उसे आधुनिक हिन्दी कहानी के साहित्यिक रूप मे प्रस्तुत करना।

(ख) धार्मिक साहित्य मे उपलब्ध कथा-कहानियो का ज्यो की त्यो हिन्दी मे प्रस्तुत करना।

(ग) जैन धार्मिक तथा इतर ग्रन्थो मे उपलब्ध प्रेरणात्मक चरित्र-निर्माण सम्बन्धी व जीवनोपयोगी प्रसगो को अपनी टिप्पणियो के साथ सुन्दर साहित्यक भाषा मे प्रस्तुत करना।

उक्त तीन प्रवृत्तियो के आधार पर जैन कहानी साहित्य तीन रूपो मे उपलब्ध है (क) साहित्यिक कहानिया–यथा डा नरेन्द्र भानावत के सकलन कुछ मणिया कुछ पत्थर तथा प्रस्तुत लेखक के सकलन 'बदलते क्षण' मे उपलब्ध। (ख) धार्मिक कहानिया–यथा 'मुक्ति के पथ पर' (केसरी चन्द सेठिया) 'जैन कथामाला' (मधुकर मुनि) आदि। (ग) प्रेरक-प्रसग वर्णन यथा प्रतिध्वनि (देवेन्द्र मुनि शास्त्री) प्रेरणा के बिन्दु (गणेश मुनि शास्त्री) आदि मे सकलित है।

तीनो शैलियो मे उपलब्ध समग्र जैन कहानी साहित्य का एक समान उद्देश्य है–मानव जीवन का उत्थान, चरित्र का निर्माण। इसलिए भेद शैली मात्र का है बाह्य है अन्तर सबका एक है, भाव भूमि समान है।

नाटक–एकांकी

यह विधा जैन साहित्यकारो से अछूती ही रही है। कहने मात्र का एक एकाकी सकलन 'विष से अमृत की ओर' डा नरेन्द्र भानावत का है, जिसमे नौ एकाकी सकलित है। विष से अमृत की ओर, शरणागत की रक्षा, आत्मा का पर्व, एटम अहिसा और शान्ति, इन्सान की पूजा का दिन, सच्चा यज्ञ, अनाथी मुनि, तीर्थंकर नमिराज और इन्द्र। इनमे तीन एकाकी–आत्मा का पर्व एटम अहिसा और शान्ति तथा इन्सान की पूजा का दिन आगम सम्मत विचारधारा पर आधारित काल्पनिक एकाकी है शेष छह एकाकी प्रसिद्ध जैन कथानको पर आधारित है। सभी एकाकियो मे जैन सास्कृतिक परम्परा और जैन दर्शन की आत्मा का सफल प्रस्तुतिकरण है। डा रामचरण महेन्द्र के शब्दो मे–"लेखक ने इन एकाकियो के माध्यम से धर्मसूचक सस्कृति की प्रतिष्ठा, पुरुषार्थवाद की मान्यता और कर्तव्य की भावना को जाग्रत करने का प्रयत्न किया है। यद्यपि इन एकाकियो की कथावस्तु और सास्कृतिक पृष्ठभूमि जैन कथाओ से सम्बन्धित है–तथापि भानावत जी देश की आधुनिक सामाजिक, सास्कृतिक एव

राजनैतिक परिस्थितियों मे भी अपना मुख नही मोड सके हैं। देश की वर्तमान परिस्थितिया उनमे से झलकी है।"

सम्पूर्ण नाटक की दृष्टि मे श्री महेन्द्र जैन का 'महासती चन्दनबाला' नाटक अभी प्रकाश मे आया है। यह तीन अंको मे समाप्त सुन्दर, प्रभावोत्पादक नाटक है जिसको जयपुर व दिल्ली में सफलतापूर्वक रगमच पर खेला जा चुका है और सराहा गया है। भगवान महावीर के साध्वी सघ की प्रमुख चन्दनबाला का कथानक अत्यन्त कारुणिक है जो मानव मन की गहराई मे सुषुप्त कोमल व मानवीय अनुभूतियो की जाग्रति मे परम सहायक है। रगमचीय नाट्य-रचना की दृष्टि मे लेखक ने इस प्रसिद्ध कथानक का सहज निर्वाह किया है, दृश्य परिवर्तन यथासभव कम हैं तथा पात्र सख्या सीमित है। चन्दनबाला और साथ ही रानी धारिणी का चरित्राकन अत्यन्त गरिमामय ढग से हो सका है जो नारी की चारित्रिक दृढता, आत्म सयम, कष्ट सहिष्णुता, धैर्यशीलता और कोमल मानवीय भावनाओ का सुन्दर निदर्शन है। जैन दर्शन के कर्मवाद की पुष्टि इस प्रसिद्ध कथानक मे होती है। लेखक ने भी चन्दनबाला के मुख मे इसका समर्थन स्थान-स्थान पर कराया है यथा--कारा के कष्टों से मुक्ति मिली पर भाग्य के खेल का अन्त कहा? स्थितिया बदली है, बदलती चली गई, मानव अपनी सत्ता, सम्पन्नता और सुन्दरता पर इतराता है, वह भूल जाता है— कर्मो मे भी अपना विधान है, इसके आगे किसी की नहीं चलती। कर्मों ने मुझे यहा नहीं छला देव! आज वे फिर छल रहे हैं।' अस्तु, जैन साहित्य मे अद्यतन नाट्य विधा की दृष्टि मे कोई रचना नहीं थी यह कृति उस अभाव की पूर्ति है।

1—सकलन के प्राक्कथन पृ.7-8 से उद्धृत।

प्रथम परिशिष्ट

1. राजस्थान का जैन लोक साहित्य
   —डॉ. महेन्द्र भानावत

2. राजस्थान के जैन ग्रन्थ संग्रहालय
   —डॉ. कस्तूरचन्द्र कासलीवाल

3. राजस्थान के जैन शिलालेख
   —रामवल्लभ सोमानी

4. जैन लेखन कला
   —भंवरलाल नाहटा

मामों पाव पूगण दोनी मुख देखण दोनी
म्हैं दूरां सू आया जी ।

ये सपने बड़े मगल और कल्याण सूचक है । इनका गाना बैंकुठ पाना और नही गाना अजगर का अवतार होना है, तो फिर कौन सपने गाना नही चाहेंगी ? गाने वाली को चूडा-चूदडी यानी सुहाग-सौभाग्य की प्राप्ति और जोडने वाली को झूलता हुआ पुत्र, रोग-शोक से मुक्ति और ज्ञानावरणीय से लेकर अन्तराय तक के आठो कर्मों से छुटकारा ।

कर्म को लेकर हमारे यहा जीवन की जडे बहुत खखेरी गई हैं । मनुष्य जैसा कर्म करता है वैसा ही फल भोगता है । अच्छे काम का अच्छा फल और बुरे काम का बुरा फल । इस धारणा से हर व्यक्ति अपनी जिन्दगानी को बुरे फलो से बिगाडना नहीं चाहता । प्रति दिन उसके हाथो अच्छा काम हो, वह यही आशा लिए उठता है और इसी आशा में बिस्तरा पकडता है । इसलिए वह अपना आत्मचिन्तन करता है । गलत किये हुए पर प्रायश्चित्त करता है और आगे के जीवन का सुधारने का प्रण दोहराता है । आत्मा सो परमात्मा । इसलिए वह अपनी आत्मा को अपवित्र होने से बचाता है । आत्मा को लेकर ऐसे कई एक चौक प्रचलित हैं जिनमे अच्छी करणी के रूप में आत्मा का निर्मल, निरोग और निष्पाप रहने को सचेत, सजग किया गया है ।

इन चौको के अतिरिक्त थोकडों मे भी इसी प्रकार की, जीवन को धिक्कारने और आत्माओ को फटकारने की भावना भरी मिलती है । आत्मनिन्दा एव भर्त्सना के साथ-साथ सासारिक मोहमाया, रागद्वेष एव कषाय आदि मे निर्लिप्त जीवन को झकझोरते हुए उसे सद्वृत्ति की ओर प्रेरित किया जाता है । इसीलिए मरणासन्न व्यक्ति को मृत्यु से पूर्व भी ये थोकडे सुनाये जाते है ताकि वह अपने जीवन का तोलता हुआ पापो का प्रायश्चित्त करे । ये थोकडे मुख्यत जीवन के कृष्णपक्ष को उद्घाटित कर उसे शुक्लजीवी बनाते हैं । एक उदाहरण देखिये—

ज्यू समदर मे हिलोरा उछरे छै ज्यू थारे तिरसणा रूपी हिलोरा उछरे छै । अरे जीव थू करणी तो करे छै पर सूना मन सू करे छै । धीरप मन सू करसी तो थारे लखे लागसी । देखो देखो भरत महाराज की राज, रीति रमणीक, रमणीक सोभाडमान बेहरी छै । जणा कई जाण्यो छै के धरकारपणो अणीराज ने, धरकारपणो अणी पाटने, धरकारपणो अणी चकरवती पदवी ने । असी चिन्तावणा करता करता भरत म्हाराज केवल ग्यान दरसन पाया । अस्यो थारे पण उदे आवसी ? थारे कणस् उदे आसी रे वापडा ? कराध मान माया लोभ री चकरी ने पटरी पार । अकुल विकुल पणो थारे मरे न थी । करोध मान, माया, लोभ राग दवेस जगजगारमान हो रयो छै । थारी समाई तो या छै ने या छै ।

अर्थात् ज्यो समुद्र की लहरे उछाल खाती है उसी तरह तुम्हारे तृष्णारूपी हिलोरे उछाल खा रही है । अरे जीव तू कर्म तो करता है पर खाली मन से करता है । धैर्य से करेगा तो तुझे अपना लक्ष्य हाथ लगेगा । देखो महाराज भरत की राजरीति शोभित हो रही है जिन्होने जाना कि धिक्कार है इस राजपाट को, धिक्कार है चक्रवर्ती पदवी को । ऐसी चिन्तना करते भरत महाराज केवल ज्ञान केवल दर्शन को प्राप्त हो गये । ऐसा भाग्य तुम्हारे भी उदित होगा ? तुम्हारे कैसे उदित होगा ! क्रोध, मान, माया, लोभ की चकरी को जीवन पटरी से पार लगा । आकुल-व्याकुलता तुमसे नही छूटती । क्रोध, मान, माया, लोभ राग, द्वेष की जगमगाहट हो रही है । तेरी सामयिक कमाई तो यह है, यही है ।

ये थोकडे हमारे इस भव के ही नही अपितु परभव, भव-भव के चिकित्सक हैं । इनसे काया कचन बनती है । हमारा मन यदि अचगा है तो काया चंगी कैसे होगी ? मन की उद्दाम

राजस्थान का जैन लोक साहित्य

—डा० महेन्द्र भानावत

राजस्थान के लोकसाहित्य की बड़ी विविध एव व्यापक पृष्ठभूमि रही है। विविध धर्मो, विविध जातियो, विविध सम्प्रदायो तथा विविध सस्कारो, त्योहारो और तौर तरीको की जीवनानुभूतियो से जुड़ा यहा का लोकमत अपनी विराट सस्कृति की जड़ो को गहरी किये पल्लवित पुष्पित है। इस सस्कृति में जैन लोकसाहित्य की अपनी विशिष्ट भूमिका रही है। यह साहित्य मूलत. धार्मिक, आध्यात्मिक एव नैतिक मूल्यो का एक ऐसा पनघट है जिसका पानी पीकर व्यक्ति अपने घर-मरघट तक को परिष्कृत, सात्विक और सासारिक उलझनो से मुक्त बनाये रखता है। इस साहित्य के सहारे कितनी ही विधवाए अपने वैधव्य को अभिशाप होने से बचाती हैं। कितने ही बेसहारा मन इसकी शरण को जिन्दगी का सबसे बड़ा सहारा मान अपनी नैया पार लगाते है। पापी मन प्रायश्चित करते है। अपनी ग्रन्थियो को खोलते हैं। कुण्ठाओ को कालिख देते हैं। चित का चचलपन दूर करते हैं। अपने हाथी मन को अकुश देते हैं। घोड़े मन को लगाम लगाते है और अत में सुखपूर्वक अमरापुर का आसन ग्रहण करते हैं। इच्छाओ को मारना और जीवन को सयमित करना इस साहित्य का मूल दर्शन है। यह दर्शन सपनो, बधावो, स्तवनो, भजनो, ढालो, व्यावलो, थोकडो, सिलोको, कथाओ, गर्भ-चिन्तारणियो तथा तीर्थकरो, गणधरो, साधुमतियो सम्बन्धी गीतो से सपूरित है।

तीर्थकर सम्बन्धी गीत मुख्यत सपनो के रूप मे प्रचलित है। इन सपनो मे उनके गर्भधारण से लेकर उनके जन्म, उनके विविध सस्कार तथा उनके जीवन की मुख्य प्रमुख घटनाओ का उल्लेख किया होता है। धर्म-स्थानो के अलावा विवाह शादियो मे चाक नूतने से लेकर शादी के दिन तक प्रति प्रात भी ये सपने गाये जाते है। पर्युषण के दिनो मे भी इन्हे विशेष रूप से गाया जाता है। गर्भावास मे तीर्थकरो की माताओ को आने वाले स्वपनो के कई गीत इस साहित्य के प्रमुख विषय बने हुए हैं। एक सपने मे बाल जन्म का हरख किस खूबी से उमड पडा है—आगण ओवरिया चुणावः। नारियलो से नीव भरावो। दाई बुलाओ जो तीर्थ कर को झेले। सोने की छुरी से उसका नारा माराओ। रूपा की कुण्डियो मे स्नान कराओ। रानी के आगन सास बुलाओ जो बालक का पटरी झेले। जोशी बुलाओ जो नाम निकाले। ढोली बुलाओ जो दस दिन ढोल बजावे। सेवक को बुलाओ जो दस दिन झालर बजाये। भुआ बुलाओ जो मगल गाये। चौक पुराओ। सुहागिन से सूरज पुजाओ। कुम्हार बुलाओ जो कुभ कलश लाये। देराणिया-जेठानिया बुलाओ जो आरती उतारे। हौज खुदाओ, झलमा पूजो। ढोलिया ढराओ। सुहागिन पोढेगी। हिंगलू ढोराओ, पगल्या माडेगी। केल रूपाओ उनके पास हाथी घोडे मडेंगे। सबके मन मे कितना उल्लास और उछाह है।

तीर्थंकरों की पूजा के लिए दूर-दूर से यात्री उमड़ पड़ते हैं। गीतो की गगाये छलक पड़ती है। पूजा के विविध थाल और पूजापा सजाया जा रहा है। रिखबदेव के लिये केसर नेमिनाथ के लिए फूल, पारसनाथ के लिए केवड़ा, महावीर स्वामी के लिए नारियल तथा शातिनाथ के लिए खारकों के थाल भरे जा रहे हैं। कब दरवाजा खुले, पट खुले और दर्शन हो। भगवान के पाव पूजने और मुंह देखने के लिए प्रतीक्षा पक्ति लगी हुई है—

सामी कदकी ऊबी ने कदकी खरी रे दरवाजे,
तोई नी खोल्या दरवाजा रे।

वासनाए, अनन्त लालसाए और अखूट तृष्णाए जब तक काबू मे नही आयेगी तब तक आत्मा का मैल कैसे कटेगा ? विविध कथा-आख्यानों और दृष्टान्तो के आधार पर इन थोकडो को बणगट मानव जीवन के शैक्षिक सास्कृतिक पक्ष को मजबूती से पाटती है।

गर्भ चिन्तारणियो मे गर्भस्थ शिशु की चिन्तना के साथ-साथ मानव जीवन को ममतावान बनाने का सोच भी रहती है। ये गर्भवती महिलाओ को सुनाई जाती हैं ताकि गर्भ मे ही गर्भस्थ शिशु जीव योनि के स्वरूप, कर्मफल, सासारिक मोहजाल, रोग-भोग तथा सुख-दुख का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर जीव धारण करे और मानव जीवन का सार्थक करता हुआ मरण को ममताविहीन रूप मे वरण करे। इस दृष्टि से ये चिन्तारणिया जीव योनि का गूढ दर्शन लिए होती है। मरणासन्न व्यक्ति को भी ये चिन्तारणिया सुनाई जाती हैं ताकि वह अपने को सासारिकताओ से मुक्त समझता हुआ देह त्यागे और आगे कोई अच्छा जन्म प्राप्त करे। इसके अनुसार जीव जन्म धारण करता है, मरता है, पुन-पुन जीता है और इस प्रकार चौरासी लाख योनियो मे भटकता रहता है।

मनुष्य अकेला आता है और अकेला जाता है। साथ न कुछ लाता है और न ले जाता है अत बार-बार उसे अच्छे कर्म करने के लिए सचेत किया जाता है। एक पगल्या देखिए—

रतना रा प्याला ने सोना री थाल।
मूग मिठाई ने चावल दाल, भोजन भल भल भातरा ॥
गगा जल पाणी दीधा रे ढार, वस्तु मगावो ने तुरत त्यार, कमी ए नही किण बात री ॥
बडा बडा होता जी राणा ने राव, सेठ सेनापति ने उमराव, खाता मे नही राखता ॥
जी नर भोगता सुख भरपूर, देखता देखता होयग्या धूर, देखो रे गत ससार री ॥
करे गरब जसी होसी जी बास, देखता देखता गया रे विनास, थू चेते उचेते तो मानवी ॥

किसी स्थान पर साधु सतो का आगमन बडा आह्लादकारी होता है, तब पूरा श्रावक-श्राविका समुदाय उमड पडता है। इस दिन की खुशी का पार नही, जसे सोने और रत्नो का सूरज उदित हो आया हो—

आज सोना रो सूरज उगियो,
आज रत्ना रो सूरज उगियो,
आज रो गोइरो लागे हगेमगे,
म्हारामा ओ लागे दीपता ॥

कुकुम और केसर के पगल्ये महाराज श्री का पदार्पण। सारा गाव लुल-लुल पाव लगने के लिए उमड पडा है। इनके दर्शनो से सारे पाप धुल गए है। बधावे पर बधावे गाए जा रहे हैं।

भगवान महावीर के बाल जीवन के गीतो मे उन्हे नहाने, कपडे पहनाने तथा पालने मे झुलाने के बडे रोचक वर्णन मिलते है। महावीर के जरी का रुमाल, मखमल का आगा और हीरे-मोती से जडी टोपी शोभित है। उनका पालना सोने की साकल कडियो वाला, रत्नो से जडा, रेशम की डोर। उनके पावो मे झाझरिये रुन-झुनाते हुए, ठुमक ठुमक ठुमकती उनकी चाल और माता त्रिशला के उनके साथ बुने नाना स्वप्न, कितनी रगीन छटा और दृश्यावली आखो के सामने थिरक उठती है। माता त्रिशला तो भाग्यशाली है ही पर इन गीतों को गाने- सुनाने वाले भी अपने को कितना भाग्यवान समझते है, यह कल्पना सहज ही की जा सकती है।

तीर्थ करो से सम्बन्धित शिलोको का भी इधर विशेष प्रचलन रहा है। इनमे मुख्यत देव, वासुपूज्य, नेमिनाथ पार्श्वनाथ, शातिनाथ के शिलोकों की सख्या अधिक है।

तीर्थंकरों के अतिरिक्त रामलखन, कृष्ण, बालाजी, गणपति एव मुख्य प्रमुख सतियो के शिल्पोके भी मिलते है। पर्युषण के दिनो मे कई तरह के गीत गाये जाते हैं। औरतें तीर्थंकरों से सम्बन्धित गीत गाती हुई मन्दिर जाती है, पूजा करती है और हरख मनाती हैं। किसी के बच्चा नही होने पर पत्नि-पति सजोडे उपवास करते हैं। धर्म के प्रताप से उनके कूख चलने लगती है। तब हाथ पावो मे मेहदी दी जाती है। नारियल या खडिया बाटी जाती है। पारणे के दिन सपने गवाये जाते है। सवत्सरी को प्रत्येक व्यक्ति उपवास करता है। कहावत भी है कि 'बालक ने नह थान ने बूडा ने नही धान" छोटे-छोटे बच्चे तक इस दिन स्तन्यपान नही करते हैं और बूढे भी भूखे रहते हैं।

लोकसाहित्य के इन विविध रूपो मे कथा-कहानियो की सख्या सर्वाधिक है। इनकी आत्मा धार्मिक ताने-बाने से गुथी हुई होती है। ये कहानिया सुखात होती है। अधिकतर कहानियो की समाप्ति सयम मार्ग धारण कर दीक्षित होने मे होती है। ये कहानिया गद्य, पद्य अथवा दोनो का सयुक्त रूप लिये होती है। इनमे शिक्षात्मक अश भी खासा रहता है। जीवन निर्माण की दिशा मे ये कहानिया बडी प्रेरक, शिक्षात्मक तथा बडी उपयोगी सिद्ध हुई है। गावो मे जहा मनोरजन के कोई साधन नही होते वहा इन कहानियो का वाचन-कथन कइयो को सद्आचरण की ओर प्रेरित करता है।

ढालो मे भगु, भरत, मेघकुमार, पवनकुमार, रावण, विजयासेठ, जम्बूस्वामी की ढालो का विशेष प्रचलन है। ये ढालें गद्य-पद्य मिश्रित सुन्दर सवाद लिए होती है। यहा रावण की ढाल का सीता मन्दोधर सवाद द्रष्टव्य है—

सीता जी सू मिलवा मदोधर राणी आई,
सग मे महेल्या लाई।
राजा की राणी आई ॥टेर॥

मदो— किणरे घर थू जाई उपणी किणरे घर परणाई ?
ओ सीता किण रे घर परणाई ?
कई थारो प्रीतम हुवो बावलो मोरे पिया सग चली आई
अरे सीता राणा की राणी आई ॥

सीता— जनकराय घर जाय उपणी दसरथ घर परणाई
ओ मदोधर दसरथ घर परणाई।
नही म्हारो प्रीतम हुवो बावलो, मरन सोना री लका देखण आई,
ओ मदोधर राजा की राणी आई ॥

मदो— तू तो कहीजै सत की सीता या कैसे चली आई,
कई थनै प्रीतम वन मे छोडी मोरे पिया सग चली आई,
ओ सीता राजा की राणी आई ॥

सीता— म्हे तो कही जू सत की सीता ऐसे ही चली आई,
नही म्हारा प्रीतम वन मे छोडी थने रडापो देवण आई,
ओ मदोधर राजा की राणी आई ॥

इन ढालो की रागे बडी मीठी तथा मोहक होती है। इनके आधार पर नृत्य नाट्य भी सचित किए जा सकते है।

इस प्रकार हम देखते है कि यह साहित्य न केवल जैनो के लिए अपितु ग्राम लोगो के लिए भी उतना ही उपयोगी और आत्मशुद्धि मूलक है। जैन सप्रदाय और जैन वर्ग विशेष का साहित्य होते हुए भी यह ग्राम जनजीवन के सुख और कल्याण का वाहक है।

राजस्थान के जैन ग्रन्थ संग्रहालय

—डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल

राजस्थान रजपूती आन बान का प्रदेश है। यह वीर भूमि है जहा देश पर अथवा मातृभूमि पर बलिदान होने मे यहा के निवासियो ने सदा ही गौरव माना है। मुस्लिम शासन मे मुसलमानो से जितना यहा के वीरो ने लोहा लिया था, उतना किसी प्रदेश वाले नही ले सके। यहा की धरती महाराणा प्रताप की गौरव गाथा से अलकृत है। महाराजा हम्मीर के शौर्य, पराक्रम एव बहादुरी से कृतकृत्य है और यहा के असख्य वीर योद्धाओ के खून से इस प्रदेश का चप्पा-चप्पा अभिसिक्त है लेकिन वीर भूमि के साथ-साथ राजस्थान कर्मभूमि भी रहा है। एक ओर यहा के वीर पुत्रो ने यदि मातृभूमि के लिए अपने जीवन की आहुति दी तो दूसरी ओर यहा के वणिक् समाज ने देश की साहित्यिक एव सास्कृतिक सपत्ति को भी सुरक्षित ही नही रखा किन्तु उसके प्रचार प्रसार मे भी अपना अपूर्व योगदान दिया और इस दृष्टि से भी राजस्थान का महत्व कम नही है। जैसे चित्तौड, रणथम्भौर अजमेर जैसे दुर्गों के दर्शन करते ही हमारी भुजाए फड़कने लगती है उसी तरह जैसलमेर, नागौर, अजमेर एव बीकानेर, जयपुर के ग्रन्थ सग्रहालयो मे सुरक्षित साहित्यिक धरोहर के दर्शन करके हम अपने भाग्य की सराहना करने लगते है। आज अकेले राजस्थान मे जितनी हस्तलिखित पाण्डुलिपिया मिलती है उतनी देश के किसी अन्य प्रदेश म नही मिलती। यह सब राजस्थानवासियो के युगो की साधना का फल है। राजस्थान मे जैन एव जैनेतर शास्त्र सग्रहालयो मे पाच लाख से भी अधिक पाण्डुलिपिया है। जिनके केन्द्र है जैसलमेर, जयपुर, बीकानेर, जोधपुर, उदयपुर, अजमेर, भरतपुर, बून्दी के ग्रन्थागार जिनमे पाण्डुलिपियो के रूप मे साक्षात् सरस्वती एव जिनवाणी के दर्शन होते हैं। अनूप सस्कृत लायब्रेरी बीकानेर, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर जोधपुर, जयपुर महाराजा का पोथीखाना एव उदयपुरादि के महाराजाओ के निजी सग्रह मे 1½-2 लाख से कम ग्रन्थ नही होगे, जिनमे सारी भारतीय विद्या छिपी पडी है और वह हमारे आचार्यो के असीम ज्ञान का एक जीता जागता उदाहरण है।

राजस्थान मे जैन ग्रन्थ सग्रहालयो की जितनी अधिक सख्या है उतनी गुजरात को छोड़ कर देश के किसी अन्य प्रदेश मे नही है। लेखक द्वारा अब तक किए गए सर्वे के अनुसार राजस्थान मे दिगम्बर एव श्वेताम्बर दोनो ही सम्प्रदायो के सग्रहालयो मे ढाई-तीन लाख पाण्डुलिपियो से कम सख्या नही होगी। इनमे से 1-1½ लाख पाण्डुलिपिया दिगम्बर भण्डारो मे एव इतनी ही पाण्डुलिपिया श्वेताम्बर भण्डारो मे मिलेगी। ये पाण्डुलिपिया मुख्यत सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, हिन्दी एव राजस्थानी भाषा के ग्रन्थो की है और 10 वी शताब्दी से लेकर 20 वी शताब्दी तक की है। जैनाचार्यों, साधुओ, भट्टारको एव पडितो ने अपने ग्रन्थ सग्रहालयो को साहित्य सग्रह की दृष्टि से सर्वाधिक उपयोगी बनाने का सदैव प्रयास किया है। जहा कही से भी कोई हस्तलिखित ग्रन्थ मिल गया चाहे वह फिर किसी धर्म का हो अथवा विषय का उसे भण्डार में सुरक्षित रूप से विराजमान कर दिया गया या फिर उसकी प्रतिलिपि करवा कर संग्रहीत करने का प्रयास किया गया। इसलिए राजस्थान के ये जैन ग्रन्थ भण्डार साहित्यिक उपयोगिता की दृष्टि से देश के महत्वपूर्ण सग्रहालय है। जैनो ने इन भण्डारो की रक्षा करने मे भी कोई कसर नही छोड़ी और मुगलो एव शत्रुओ के आक्रमण के समय मे अपने जीवन की आहुति देकर भी इन भण्डारों की सुरक्षा की थी। यही कारण है राज्याश्रय विहीन होने पर भी ये अब तक सुरक्षित रह सके और देश की महत्वपूर्ण सामग्री नष्ट होने से बचायी जा सकी।

श्री महावीर क्षेत्र के साहित्य शोध विभाग की ओर से राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूचियों के पांच भाग प्रकाशित हो चुके है। जिनमे करीब पचास हजार प्रतियों का परिचय दिया हुआ है। इन ग्रन्थ सूचियो से सैंकडो अज्ञात ग्रन्थो का परिचय विद्वानों को प्रथम बार प्राप्त हुआ है। स्व डा. वासुदेवशरण अग्रवाल ने ग्रन्थ सूची चतुर्थ भाग की भूमिका में लिखा है कि"—विकास की उन पिछली शतियो मे हिन्दी साहित्य के कितने विविध साहित्य रूप थे, यह भी अनुसधान के लिए महत्वपूर्ण विषय है। इस सूची को देखते हुए उनमे से अनेक नाम सामने आते है जैसे, स्तोत्र, पाठ, सग्रह, कथा, रासो, रास, पूजा, मगल, जयमाल, प्रश्नोत्तरी, मन्त्र, अष्टक, सार, समुच्चय, वर्णन, सुभाषित, चौपई, शुभमालिका, निशाणी, जकड़ी, व्याहलो, बधावा, विनती, पत्री, आरती, बोल, चरचा, विचार, बात, गीत, लीला, चरित्र, छन्द, छहप्पय, भावना, विनोद, कल्प, नाटक, प्रशस्ति, धमाल, चोढालिया, चौमासिया, बारामासा, बटोई, वेलि, हिंडोलणा, चूनड़ी, सज्झाय, बाराखडी, भक्ति, वन्दना, पच्चीसी, बत्तीसी, पचासा, बावनी, सतसई, सामायिक, सहस्त्रनाम, नामावली, गुरुवावली, स्तवन, सम्बोधन, मोडलो आदि। इन विविध साहित्य रूपो मे से किसका कब आरम्भ हुआ और किस प्रकार विकास और विस्तार हुआ यह शोध के लिए रोचक विषय है। उसकी बहुमूल्य सामग्री इन भण्डारो मे सुरक्षित है।"

इसी तरह जयपुर के आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, लाल भवन की ओर से ग्रन्थ सूची का एक भाग डा नरेन्द्र भानावत के सम्पादन मे अभी कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका है। इन ग्रन्थ सूचियो ने देश के प्राच्यविद्या पर कार्य करने वाले विद्वानो का ध्यान आकृष्ट किया है और देश के विभिन्न विश्वविद्यालयो मे अब कितने ही रिसर्च विद्यार्थियों द्वारा शोध कार्य किया जा रहा है जो एक शुभ सूचना है और जिसमे इन भण्डारो में सैकडो वर्षो से सग्रहीत ग्रन्थो का उपयोग होना प्रारम्भ हो गया है।

राजस्थान के सभी शास्त्र भण्डारो का परिचय देना सम्भव नही है इसलिए प्रदश के कुछ प्रमुख शास्त्र भण्डारो का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

(1) बृहद ज्ञान भण्डार, जैसलमेर

विश्व के ग्रन्थ भण्डारो मे जैसलमेर के इस ज्ञान भण्डार का सर्वाधिक प्रसिद्धि प्राप्त है। आचार्य जिनभद्रसूरि ने इसे सवत् 1497 (1440 ए डी) मे सभवनाथ मन्दिर मे स्थापित किया था। यह ज्ञान भण्डार कितने ही आचार्यों एव विद्वानो की साहित्यिक गति-विधियो का केन्द्र रहा। इनमे कमलसयम उपाध्याय (1487 ए डी) एव समयसुन्दर (17 वी शताब्दि) के नाम उल्लेखनीय है। कर्नल जेम्सटाड, डा ब्हूलर, डा जेकोबी जैसे पाश्चात्य विद्वानो ने तथा मुनि हसविजयजी, सी डी दलाल, मुनि पुण्यविजय जैसे भारतीय विद्वानों ने इस शास्त्र भण्डार का अवलोकन किया था। श्री सी डी दलाल, प लालचन्द्र, म गाधी एव मुनि पुण्यविजयजी ने तो अपने इस भण्डार की ग्रन्थ सूची तैयार की जो प्रकाशित भी की जा चुकी है। इस भण्डार में ताड-पत्रो पर लिखे हुए ग्रन्थो की सख्या 804 है जिनमे सर्वतोलेख वाली औघनियुक्ति वृत्ति की पाण्डुलिपि सबसे प्राचीन है जो सन् 1060 की लिखी हुई है। वैसे विशेषावष्यक भाष्य की प्रति 10 वी शताब्दी की है।

इसके अतिरिक्त 12 वी और 13 वी शताब्दी मे लिखे हुए ग्रन्थो की सख्या काफी अच्छी है। जैनाचार्यों द्वारा निबद्ध ग्रन्थो के अतिरिक्त यहा जैनेतर विद्वानों की कृतियों की भी प्राचीनतम पाण्डुलिपिया सग्रहीत है। ऐसी पाण्डुलिपियो मे कुवलयमाला, काव्य मीमासा (राज शेखर) काव्यादर्श (सोमेश्वर भट्ट) काव्य प्रकाश (मम्मट) एव श्री हर्ष का नैषधचरित के नाम उल्लेखनीय है। इसी भण्डार मे विमलसूरि के पउमचरिय (1141),

हितोपदेशामृत (1253) वसुदेवहिण्डो, शान्तिनाथ चरित (देवचन्द्रसूरि), नैषधटीका (विद्याधर) मुद्राराक्षस नाटक (विशाखदत्त), की कुछ ऐसी महत्वपूर्ण पाण्डुलिपिया है जो अन्यत्र नही मिलती ।

उक्त भण्डार के अतिरिक्त जैसलमेर में (पचानो शास्त्र भण्डार, बड़ा उपाश्रय ज्ञान भण्डार), तपागच्छीय ज्ञान भण्डार, लोकागच्छीय ज्ञान भण्डार, थारूसाह ज्ञान भण्डार और हैं जिनमे भी हस्तलिखित पाण्डुलिपियो का अच्छा सग्रह है ।

(2) भट्टारकीय ग्रन्थ भण्डार, नागौर (राजस्थान)

नागौर राजस्थान के प्राचीन नगरो मे से है । प्राचीन लखो मे इसका दूसरा नाम नागपुर एव अहिपुर भी मिलता है । नागपुर (नागौर) का सर्व प्रथम उल्लेख जयसिह सूरि की धर्मोपदेशमाला (9 वी शताब्दी) मे मिलता है । 11 वी शताब्दी मे जिनवल्लभ सूरि एव जिनदत्तसूरि ने यहा विहार किया था । 15 वी शताब्दी मे होने वाले प मेधावी ने अपने धर्मोपदेश श्रावकाचार (1484) मे इसे सपादलक्ष प्रदेश का सर्वाधिक सुन्दर नगर माना है । सन् 1524 मे भट्टारक रत्नकीर्ति ने यहा भट्टारकीय गादी के साथ ही एक वृहद् ज्ञान भण्डार की स्थापना की थी । शताब्दियो से नागौर जैनो के दोनो ही सम्प्रदायो का प्रधान केन्द्र बना रहा है ।

शास्त्र भण्डार एव भट्टारक गादी की स्थापना के पश्चात् यहा कितने ही भट्टारक हुए जिनमे भुवनकीर्ति (सन् 1529) धर्मकीर्ति (सन् 1533) विशालकीर्ति (सन् 1544) लक्ष्मीचन्द्र (सन् 1554) यशकीर्ति (सन् 1615) भानुकीर्ति (सन् 1633) के नाम उल्लेखनीय है । यहा के अन्तिम भट्टारक भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति थे जिनका कुछ ही वर्ष पहिले स्वर्गवास हुआ था ।

हस्तलिखित ग्रन्थो के सग्रह की दृष्टि से यह भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं । यहा करीब 14 हजार पाण्डुलिपियो का सग्रह है जिनमे एक हजार से अधिक गुटके है । जिनमे एक एक मे ही बीसो पच्चीसो लघु ग्रन्थो का सग्रह होता है । भण्डार मे प्राकृत, अपभ्रश, सस्कृत, हिन्दी एव राजस्थानी भाषा मे निबद्ध कृतियों का उत्तम सग्रह है, जो सभी विषयो से सम्बन्धित हैं । अधिकाश पाण्डुलिपियां 14 वी शताब्दी से लेकर 19 वी शताब्दी तक की है जिनमे पता चलता है कि गत 100 वर्षों मे यहा बहुत कम सख्या मे ग्रन्थ लिखे गये । प्राकृत भाषा के ग्रन्थो मे आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार की यहा सन् 1303 की पाण्डुलिपि है इसी तरह मूलाचार की सन् 1338 की पाण्डुलिपि है । इसी तरह अपभ्रश का यहा विशाल साहित्य सग्रहीत है । कुछ अन्यत्र अनुपलब्ध ग्रन्थो मे वराग चरिउ (तेजपाल) वसुधीर चरिउ (श्री भूषण) सम्यकत्व कौमुदी (हरिसिह) णेमिणाह चरिउ (दामोदर) के नाम उल्लेखनीय है । सस्कृत एव हिन्दी भाषा की भी इसी तरह सैकडो पाण्डुलिपिया यहा सग्रहीत है जिनका अन्यत्र मिलना दुर्लभ सा है । ऐसी रचनाओ मे भाउकवि का नेमिनाथरास (16 वी शताब्दी) जगरूप कवि का जगरूपविलास, कल्ह की कृपणपच्चीसी, मण्डलाचार्य श्री भूषण का सरस्वती लक्ष्मी संवाद, सुखदेव का क्रियाकोश भाषा, मानसागर की विक्रमसेन चौपाई के नाम उल्लेखनीय है । 17 वी एव 18 वी शताब्दी मे निबद्ध लोकप्रिय हिन्दी काव्यो का यहां अच्छा सग्रह है ।

जयपुर नगर के शास्त्र भण्डार .

जयपुर नगर यद्यपि प्राचीनता की दृष्टि से 250 वर्ष से ही कम प्राचीन है लेकिन उत्तरी भारत मे देहली के अतिरिक्त जयपुर ही दिगम्बर जैन समाज का प्रमुख केन्द्र रहा है और

इसीलिए 200 वर्ष पूर्व भाई रायमल्ल ने इसे जैनपुरी लिखा था। यह नगर सन् 1727 मे महाराजा सवाई जयसिंह द्वारा बसाया गया था। इससे पूर्व आमेर यहा की राजधानी थी। महाराजा साहित्य एव कला के अत्यधिक प्रेमी थे। उन्होने एक राज्यकीय पोथीखाना की स्थापना की। जयपुर नगर बसने के साथ ही यहा सागानेर, आमेर एव अन्य स्थानों मे हजारो की सख्या मे जैन बन्धु आकर बस गए थे। नगर निर्माण के साथ ही यहा बड़े-बड़े मन्दिरो का निर्माण हुआ और उनमें शास्त्रो को विराजमान किया गया। यह नगर 150 वर्षों तक विद्वानो का सारे देश मे प्रमुख केन्द्र के रूप मे माना जाता है। यहा एक के पीछे एक विद्वान् हुए गए।

आज कल जयपुर नगर मे करीब 170 मन्दिर व चैत्यालय है। यद्यपि सभी मन्दिरो म स्वाध्याय निमित हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह मिलता है लेकिन फिर भी 25 मन्दिरो में तो अत्यधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थो का सग्रह है। इसमे महावीर भवन स्थित आमेर शास्त्र भण्डार, तेरह पन्थी बडा मन्दिर का शास्त्र भण्डार, पाटोदी के मन्दिर का शास्त्र भण्डार, पाण्डे लूणकरण जी का मन्दिर का शास्त्र भण्डार, बधीचन्द जी के मन्दिर का शास्त्र भण्डार, ठोलिया के मन्दिर का शास्त्र भण्डार, चन्द्रप्रभ सरस्वती भण्डार, लाल भवन स्थित विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, खरतरगच्छ ज्ञान भडार, सघीजी के मन्दिर का शास्त्र भण्डार, लश्कर के मन्दिर का शास्त्र भण्डार आदि के नाम विशेषत उल्लेखनीय है।

आमेर का शास्त्र भण्डार, पहिले आमेर नगर के सावला के मन्दिर मे सग्रहीत था लेकिन गत 25 वर्षों से उसे महावीर भवन जयपुर मे स्थानान्तरित कर दिया गया है। इसमे तीन हजार से भी अधिक पाण्डुलिपिया हैं। अपभ्रश के ग्रन्थो के सग्रह की दृष्टि से आमेर शास्त्र भण्डार अत्यधिक महत्वपूर्ण भण्डार है। पाटोदी के मन्दिर के शास्त्र भण्डारो मे ग्रन्थो की सख्या 2257 एव 308 गुटके है। इस भण्डार मे वैदिक साहित्य का भी अच्छा सग्रह है। सवत् 1354 मे निबद्ध हिन्दी की आदिकालीन कृति जिणदत्तचरित की एक मात्र पाण्डुलिपि इसी भण्डार मे सग्रहीत है। जयपुर के तेरह पथी बडा मन्दिर मे भी पाण्डुलिपियो का महत्वपूर्ण सग्रह मिलता है। जिनकी सख्या तीन हजार से भी अधिक है। यहा पर पचास्तिकाय का पाण्डुलिपि सबसे प्राचीन है जो सन् 1272 की लिखी हुई है। यह देहली मे बादशाह गयासुद्दीन बलबन के शासन काल मे लिखी गयी थी। इसी शास्त्र भण्डार मे आदि पुराण की दो सचित्र पाण्डुलिपिया है। सवत् 1597 (सन् 1540) की है जो कला की दृष्टि म अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस अकेली पाण्डुलिपि मे सैकडो चित्र हैं। बडे मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे प्राकृत, अपभ्रश, सस्कृत, हिन्दी एव राजस्थानी सभी भाषाओ की पाण्डुलिपि का अच्छा सग्रह है। गोरखनाथ, कबीर, बिहारी, केशव, वृन्द जैसे जैनेतर कवियो की हिन्दी रचनाओ का अपभ्रश भाषा के कवि अब्दुल रहमान के सन्देश रासक एव महाकवि भारवि के 'किरातार्जुनीय' पर प्रकाश-वर्ष की सस्कृत टीका की पाण्डुलिपियो का इस भण्डार मे उल्लेखनीय सग्रह है।

पाडया लूणकरणजी का शास्त्र भण्डार 18 वी शताब्दि के अन्त मे पंडित लूणकरण जी द्वारा स्थापित किया गया था। इस भण्डार मे उन्ही के द्वारा लिखी हुई यशोधरचरित की एक पाण्डुलिपि है जिसका लेखन काल सवत् 1788 है। पाडेजी ज्योतिष, आयुर्वेद, मत्रशास्त्र के अच्छे विद्वान् थे। उन्होने अपना पूरा जीवन स्वाध्याय एव ज्ञानाराधना मे समर्पित कर दिया था। इस भण्डार मे 807 हस्तलिखित पत्राकार ग्रन्थ एव 225 गुटके है जिनमे महत्वपूर्ण साहित्य सकलित है। सवत् 1407 मे लिपिबद्ध प्रवचन सार की यहा प्राचीनतम पाण्डुलिपि है। इसी तरह भट्टारक सकलकीर्ति के यशोधर चरित की जो सचित्र पाण्डुलिपि है वह कला की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। प्रारम्भ में इसमे पाडे लूणकरण जी का भी चित्र है। भण्डार का पूरा सग्रह अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

बाबा दुलीचन्द का शास्त्र भण्डार भी एक ही व्यक्ति द्वारा स्थापित एवं सकलित शास्त्र भण्डार है, जिसकी स्थापना सन् 1854 में बाबा दुलीचन्द ने की थी। वे पूना जिले के निवासी थे लेकिन बाद में जयपुर आकर रहने लगे थे। भण्डार में 850 हस्तलिखित प्रतियों का सग्रह है। कुछ पाण्डुलिपिया स्वय बाबा दुलीचन्द ने लिखी थी तथा शेष ग्रन्थ उन्होंने विभिन्न स्थानो मे सग्रहीत किये थे।

बधीचन्द जी के मन्दिर का शास्त्र भण्डार पाण्डुलिपियो की सख्या की दृष्टि में ही नही किन्तु उनकी प्राचीनता एव अज्ञात ग्रन्थो की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। इसमे 1278 प्रतियों का संग्रह है। जिनमें महाकवि स्वयम्भू रचित रिट्ठणेमि चरिउ, सधारु कवि कृत प्रद्युम्न चरित के नाम विशेषत उल्लेखनीय है। भण्डार में सकलकीर्ति छीहल ठवकुरसी, जिनदास, पूनो एव बनारसी दास की हिन्दी रचनाओ का अच्छा सग्रह है।

ठोलियो के मन्दिर के शास्त्र भण्डार में भी 628 पाण्डुलिपिया एव 125 गुटके है। इस भण्डार मे हिन्दी कृतियो का अच्छा सकलन है जिनमे भट्टारक शुभचन्द (16वी शताब्दी), इसराज (7वी शताब्दी) रघुनाथ (17 वी शताब्दी), ब्रह्म जिनदास (15वी शताब्दी), ब्रह्म ज्ञान सागर (17वी शताब्दी), पद्मनाभ (16वी शताब्दी) की रचनाये विशेषत उल्लेखनीय है।

उक्त शास्त्र भण्डारो के अतिरिक्त नगर मे और भी शास्त्र भण्डार है जिनमे पाण्डुलिपियो का निम्न प्रकार सग्रह है —

	भण्डार का नाम	पाण्डुलिपियों की सख्या
(1)	श्री चन्द्रप्रभ सरस्वती भण्डार	830
(2)	जोबनेर के मन्दिर का शास्त्र भण्डार . .	340
(3)	पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन सरस्वती भवन .	558
(4)	गोधो के मन्दिर का शास्त्र भण्डार	718
(5)	सघीजी के मन्दिर का शास्त्र भण्डार .	979
(6)	दि जैन मन्दिर लश्कर के मन्दिर का शास्त्र भण्डार	828
(7)	नया मन्दिर का शास्त्र भण्डार ..	150
(8)	चौधरियो के मन्दिर का शास्त्र भण्डार .	108
(9)	काला छाबडो के मन्दिर का शास्त्र भण्डार .	410
(10)	मेघराज जी के मन्दिर का शास्त्र भण्डार ..	249
(11)	यशोदानन्द जी के मन्दिर का शास्त्र भण्डार ..	398

दिगम्बर जैन मन्दिरो एव महावीर भवन के सग्रह के अतिरिक्त यहा लाल भवन में भी हस्तलिखित ग्रन्थो का महत्वपूर्ण सग्रह है। आचार्य श्री विनय चन्द्र ज्ञान भण्डार की ग्रन्थ सूची

भाग-1, कुछ समय पूर्व प्रकाशित हुई है जिनमे 3710 हस्तलिखित ग्रन्थो प्रतियों का परिचय दिया गया है। ग्रभी भडार में विशाल सग्रह है जिसके सूचीकरण का कार्य हो रहा है और इस प्रकार की और भी दस ग्रथ सूचिया प्रकाशित की जा सकती है। उक्त भण्डार के अतिरिक्त और भी खरतरगछ ज्ञान भण्डारादि, श्वेताम्बर जैन मन्दिरो, उपासरों मे ग्रन्थो का सग्रह है। अभी कुछ समय पूर्व स्व मुनि श्री कान्तिसागर जी का सग्रह यहा आया है जिसका अभी तक पूरा सूचीकरण नही हो सका है।

भट्टारकीय शास्त्र भण्डार, अजमेर

अजमेर राजस्थान के प्राचीनतम नगरो मे से है। इसका पुराना नाम अजय-मेरु दुर्ग था। इसको स्थापना सादलक्ष के राजा अजयपाल चौहान ने छठी शताब्दी मे की थी। जैसलमेर के शास्त्र भण्डार मे एक सवत् 1212 की प्रशस्ति है जिसमे इस नगर को अजय मेरु दुर्ग लिखा हुआ है। यह नगर भी प्रारम्भ से ही देश को राजनैतिक, साहित्यिक एव सास्कृतिक गतिविधियो का केन्द्र रहा। जैन धर्म एव साहित्य तथा सस्कृति के प्रचार प्रसार मे इस नगर का महत्वपूर्ण योगदान रहा। एक पट्टावली के अनुसार सर्वप्रथम सवत् 1168 मे भट्टारक विशाल कीर्ति ने इस नगर मे भट्टारक गादी की स्थापना की थी। इससे पता चलता है कि इसके पूर्व यहा जैन साहित्य एव सस्कृति की पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त हो चुकी थी। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो मे इस नगर मे लिपिबद्ध की गयी अनेको पाण्डुलिपिया उपलब्ध होती है।

यहा का भट्टारकीय शास्त्र भण्डार राजस्थान के प्रसिद्ध एव महत्वपूर्ण शास्त्र भण्डारो मे से है। बडे धडे के मन्दिर में स्थापित होने के कारण इस दिगम्बर जैन मन्दिर बडा धडा का शास्त्र भण्डार भी कहा जाता है। यह मन्दिर एक दीर्घकाल तक भट्टारको का केन्द्र रहा। सवत् 1770 (1713) में यहा पुन विधिवत भट्टारक गादी की स्थापना की गई, जिसका वर्णन कविवर बखतराम साह ने अपने बुद्धिविलास मे किया है। भट्टारक विजय-कीर्ति तक यह भण्डार साहित्यिक गतिविधियो का केन्द्र बना रहा क्योकि भट्टारक विजय-कीर्ति स्वय विद्वान् ही नही कितने ही ग्रन्थो के रचयिता भी थे। स्वय लेखक ने दिसम्बर 1958 मे 2015 ग्रन्थो का सूची-पत्र बनाया तथा उन्हे पूर्ण व्यवस्थित करके रखा था।

भण्डार मे महापण्डित आशाधर (13 वी शताब्दी) के अध्यात्म-रहस्य की एक मात्र पाण्डुलिपि सग्रहीत है इस खोज निकालने का श्रेय स्व श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार को है। इसी तरह जीनसार समुच्चय (वृषभनन्दि), समाधिमरण महास्तव दापिका (भट्टारक सकलकीर्ति), चित बन्धन स्तोत्र (मेधावी) जैसी सस्कृत कृतियो के नाम उल्लेखनीय हैं। भण्डार मे प्राकृत भाषा की प्रसिद्ध कृति गोमट्टसार पर एक प्राकृत भाषा की टीका उपलब्ध हुई है। तेजपाल का पासणाह चरित (अपभ्रंश) की पाण्डुलिपि भी इसी भण्डार में सुरक्षित है।

इसी तरह कुछ अन्य महत्वपूर्ण एव प्राचीन पाण्डुलिपियों मे प्रभाचन्द्र की आत्मानुशासन टीका (सवत् 1580), मल्लिषेण का नागकुमार चरित (सवत् 1675), वीरनन्दि का चन्द्रप्रभकाव्य (सवत् 1678), सकलकीर्ति का प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (सवत् 1553), अमितगति की धर्मपरीक्षा (सवत् 1537) आदि भी उल्लेखनीय प्रतिया है।

भरतपुर प्रदेश (राजस्थान) के शास्त्र भण्डार

भरतपुर प्रदेश ही पहिले भरतपुर राज्य कहलाता था। इस प्रदेश की भूमि ब्रज भूमि कहलाती है तथा डीग, कामा आदि नगर राजस्थान मे होने पर भी ब्रज प्रदेश में गिने जाते है।

राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची पंचम भाग मे—इस भण्डार की विस्तृत सूची प्रकाशित हो चुकी है।

यह प्रदेश प्राचीन काल मे ही जैन साहित्य एव संस्कृति का केन्द्र रहा। 18वी शताब्दी से यहा कितने ही साहित्यकार हुए जिन्होने हिन्दी में काव्य रचना करके अपने पाडित्य का परिचय दिया। इस प्रदेश मे मुख्य रूप से भरतपुर, डीग, कामा, कुम्हेर, वैर, बयाना आदि स्थानों मे शास्त्र भण्डार मिलते हैं। पचायती मन्दिर भरतपुर मे सबसे बडा सग्रह है जिसकी सख्या 800 से अधिक है।[1] इसमे बृहद् तपागच्छ पट्टावली की प्रति सबसे प्राचीन है जो सवत् 1490 (सन् 1433) की लिखी हुई है। इसी तरह अपभ्रन्श की कृति सप्तव्यसन कथा महत्वपूर्ण कृति है जो इस भण्डार में सग्रहीत है। यह माणिकचन्द्र की रचना है तथा सवत् 1634 इसका रचनाकाल है। प्राकृत, सस्कृत एव हिन्दी ग्रन्थो की भी यहा अच्छी सख्या है। भक्तामर स्तोत्र की एक सचित्र प्रति है जिसमे 51 चित्र हैं तथा जो अत्यधिक कलापूर्ण है। यह पाण्डुलिपि सन् 1769 की है। भरतपुर के ही एक अन्य मन्दिर मे हस्तलिखित ग्रन्थो का एक छोटा सा सग्रह और है।

डीग नगर के तीन मन्दिरो मे ग्रन्थों का सग्रह है, इससे पता चलता है कि प्राचीन काल मे ग्रन्थो को लिखने-लिखाने के प्रति जनता की काफी अच्छी रुचि थी। सेवाराम पाटनी जो हिन्दी के अच्छे कवि माने जाते हैं, इसी नगर के थे। उनके द्वारा रचित मल्लिनाथ चरित (सन् 1793) की मूल पाण्डुलिपि नयी डीग के पचायती मन्दिर में सग्रहीत है। रामचन्द्रसूरि द्वारा विरचित विक्रमचरित की एक महत्वपूर्ण प्रति भी यहा उपलब्ध होती है। जिन गुण विलास (रचना सवत् 1822) पुरानी डीग के मन्दिर में सवत् 1823 की पाण्डुलिपि मिलती है।

भरतपुर मे कामा कोई 40 मील दूरी पर स्थित है जो राजस्थान के प्राचीनतम नगरो मे गिना जाता है। इस नगर का खण्डेलवाल दिगम्बर जैन मन्दिर का शास्त्र भण्डार प्राचीन एव महत्वपूर्ण पाण्डुलिपियो की दृष्टि से सारे प्रदेश के भण्डारो मे उल्लेखनीय है। दौलतराम के पुत्र जोधराज कासलीवाल यही के रहने वाले थे। प्रवचनसार एव पचास्तिकाय पर प्रसिद्ध हिन्दी विद्वान हेमराज द्वारा सवत् 1719 व 1737 में इसी नगर में पाण्डुलिपिया लिखी गई थी। इसी तरह देवप्रभसूरि का पाडव चरित्र (सवत् 1454), प्रभाचन्द्र कृत आत्मानुशासन की टीका (सवत 1548) का शुद्ध पाण्डुलिपियो का सग्रह भी इसी भण्डार में मिलता है। यहा भट्टारक शुभचन्द्र कृत समयसार की टीका की एक पाण्डुलिपि है जो अन्यत्र नही मिलती। इस शास्त्र भण्डार मे 578 प्रतियों का सग्रह है। नगर के दूसरे अग्रवाल मन्दिर मे 105 हस्तलिखित प्रतियो का सग्रह मिलता है।

बयाना भी राजस्थान का प्राचीन नगर है एव भरतपुर जिले के प्रमुख नगरो मे से है। दो दशक पूर्व ही वहा गुप्त काल के सिक्के मिले थे जिनके आधार पर इस नगर की प्राचीनता सिद्ध होती है। यहा पचायती मन्दिर एव तेरहपथी मन्दिर दोनो मे ही शास्त्र भण्डार हैं। दोनो ही मन्दिरो मे 150-150 से भी अधिक पाण्डुलिपियो का सग्रह है। वैर, जो बयाना से 15 मील पूर्व की ओर है वहा भी एक दिगम्बर जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे 120 हस्तलिखित प्रतियो का सग्रह मिलता है।

श्री महावीरजी राजस्थान का सर्वाधिक लोकप्रिय दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र है। गत 300 वर्षों से यह क्षेत्र जैन साहित्य सस्कृति का केन्द्र रहा है और यहा पर दिगम्बर भट्टारकों की गादी भी है। इस गादी के भट्टारक चन्द्रकीर्ति का अभी कुछ ही वर्ष पहिले स्वर्गवास हुआ था। यहा के शास्त्र भण्डार मे 400 से अधिक प्रतिया हैं जिनमे प्राकृत, अपभ्रंश, सस्कृत एव हिन्दी ग्रन्थो का अच्छा सग्रह है। इन ग्रन्थो की सूची राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची (प्रथम भाग) मे प्रकाशित हो चुकी है। प्राचीन पाण्डुलिपियो का यहा अच्छा सग्रह है जिनके आधार पर इतिहास के कितने ही नवीन तथ्यो की जानकारी मिलती है।

1. विस्तृत सूची राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थसूची पंचम भाग में देखिये।

बीकानेर के शास्त्र भण्डार

बीकानेर नगर की स्थापना सन् 1488 मे बीकाजी द्वारा की गई थी। इस नगर का प्रारम्भ से ही राजनैतिक महत्व रहा है। साहित्य की दृष्टि से भी बीकानेर की लोक-प्रियता रही है। अकेले बीकानेर शहर मे 1 लाख से भी अधिक ग्रन्थो का सग्रह मिलता है। इनमें से 15 हजार पाण्डुलिपियां तो अनूप संस्कृत लायब्रेरी में है और शेष 85 हजार पाण्डुलिपियां नगर के जैन शास्त्र भण्डारो मे सग्रहीत हैं। हस्तलिखित ग्रन्थो का इतना भारी भण्डार जयपुर के अतिरिक्त राजस्थान के अन्यत्र किसी नगर मे नही मिलता। इन भण्डारो में प्राचीन तथा स्वर्ण एव रजत की स्याही द्वारा लिखे हुए ग्रन्थ भी अच्छी सख्या मे मिलते हैं। बीकानेर नगर के अतिरिक्त चूरू एव सरदारशहर मे भी शास्त्र भण्डार है। बीकानेर मे सबसे बडा सग्रह अभय जैन ग्रन्थालय, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान एव बडे उपासरे मे स्थित वृहत् ज्ञान भण्डार मे है। इनमे दानसागर भण्डार, महिमा-भक्ति भण्डार, वर्द्धमान भण्डार, अभयसिह भण्डार, जिनहर्षसूरि भण्डार, भुवन भक्ति भण्डार, रामचन्द्र भण्डार और महरचन्द्र भण्डार के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त श्री पूज्य जी का भण्डार, जैन लक्ष्मी मोहन शाला ज्ञान भण्डार, मोतीचन्द जी खजान्ची सग्रह, क्षमाकल्याणजी का ज्ञान भण्डार, छती बाई के उपासरे का भण्डार आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं। इनमे सबसे प्रसिद्ध एव महत्वपूर्ण अभय जैन ग्रन्थालय है जिसमे अकेले मे करीब 60 हजार प्रतियां सग्रहीत हैं। यह सग्रह सभी दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। इस भण्डार की स्थापना करीब 40 वर्ष पूर्व हुई थी। यहा कागज के अतिरिक्त ताडपत्र पर भी ग्रन्थ मिलते हैं। इतिहास से सम्बन्धित ग्रन्थो का भण्डार मे उत्तम सग्रह है। जैनाचार्यो एव यतियो द्वारा लिखे हुए सैकडो पत्र भी यहा सग्रहीत हैं। भण्डार मे पुराने चित्र, सचित्र विज्ञप्तियां, कपडे के पट्ट, सिक्कों एव दावात पर लिखे हुए पत्र सग्रहीत हैं। यह भण्डार पूर्णत व्यवस्थित है तथा सभी ग्रन्थ वर्णक्रमानुसार रखे हुए हैं। इस ग्रन्थागार के प्रबन्धक एव स्वामी श्री अगरचन्द नाहटा हैं जो स्वय भी महान् साहित्य सेवी हैं।

उक्त सग्रहो के अतिरिक्त सेठिया पुस्तकालय, गोविन्द पुस्तकालय, रायचन्द गच्छ उपासरा का सग्रह भी उल्लेखनीय है। इन सभी में पाण्डुलिपियो का उत्तम सग्रह मिलता है। नगर मे कुछ और भी हस्तलिखित भण्डार हैं। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान को श्री पूज्य जी का, उ जयचन्दजी का, उ समीरमलजी का मोतीचन्दजी खजान्ची आदि का 22000 प्रतियो का सग्रह भेट स्वरूप दिया गया है। वास्तव मे इन भण्डारो की दृष्टि मे बीकानेर का अत्यधिक महत्व है और इसे हम पाण्डुलिपियो का नगर ही कह सकते हैं।

चूरू मे यति ऋद्धिकरणजी का शास्त्र भण्डार है जिसमे करीब 3800 पाण्डुलिपियों का सग्रह है। यहा पृथ्वीराज रास, काव्य कौतुभ (वैद्य भूषण), अलकार शेखर (केशव मिश्र) जैसी महत्वपूर्ण प्रतियो का सग्रह मिलता है। इसी तरह सरदारशहर की तेरापन्थी सभा मे करीब 1500 प्रतियां का सग्रह है। जिनमे अमरसेन रास, नैषधीय टीका का उत्तम सग्रह है। बीकानेर प्रदेश के अन्य नगरो मे शास्त्र भण्डारो की उपलब्धि निम्न प्रकार होती है —

1 यति सुमेर मल सग्रह, भीनासर (रा प्रा वि प्र. को प्रदान)।
2 बहादुरसिंह बांठिया सग्रह, भीनासर।
3 श्वेताम्बर तेरहपथी पुस्तकालय, गगाशहर।
4 यति किशनलाल का सग्रह, कालू।
5 खरतरगच्छ के यति दुलीचन्द, सुजानगढ का शास्त्र भण्डार।
6 सुराना पुस्तकालय, चूरू।
7 श्रीचन्द गदहिया सग्रह, सरदारशहर।

8. ताराचन्द नातेड सग्रह, हनुमानगढ (वीरायतन को प्रदत्त)।
9 बैदो का पुस्तकालय, रतनगढ।

उक्त शास्त्र भण्डारो मे भारतीय साहित्य एव संस्कृति का अमूल्य संग्रह बिखरा हुआ पड़ा है।

2 जोधपुर सभाग के ज्ञान भण्डार

जोधपुर राजस्थान की ऐतिहासिक नगरी है। इसकी स्थापना राठौड़ जोधाजी ने की थी। इसकी पुरानी राजधानी मण्डौर थी। यहा श्वेताम्बर जैनियों की अधिकता है। वर्तमान मे कई मन्दिर, दादावाडिया, उपासरे और स्थानक है। कई मन्दिरो व उपासरो मे ज्ञानभण्डार विद्यमान है जिनमे महत्वो की सख्या मे हस्तलिखित पाण्डुलिपिया उपलब्ध है। केसरियानाथजी मन्दिर मे स्थित ज्ञानभण्डार मे लगभग 2000 पाण्डुलिपिया सग्रहीत है। इनमे सूरचन्द्र उपाध्याय रचित स्थूलिभद्र गुणमाला काव्य आदि की दुर्लभ पाण्डुलिपिया प्राप्त है। कोटडी के ज्ञानभण्डार मे लगभग एक हजार प्रतिया और जिनयशस्सूरि ज्ञानभण्डार मे अच्छा साहित्य सग्रहीत है। जयमल ज्ञानभण्डार जैनरत्न पुस्तकालय, मगनचन्द्रजी ज्ञानभण्डार आदि मे भी अच्छा सग्रह है।

राजस्थान राज्य सरकार द्वारा स्थापित राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान का मुख्य कार्यालय यहा है। इस प्रतिष्ठान का विशाल हस्तलिखित ग्रन्थागार है। जिसमे लगभग 45,000 हस्तलिखित प्रतिया सुरक्षित है। इनमे से लगभग 30,000 जैन पाण्डुलिपिया है। इस प्रतिष्ठान मे अनेक दुर्लभ प्रतिया हैं जिनका ऐतिहासिक, सास्कृतिक एव भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से विशेष महत्व है। इस प्रतिष्ठान की अन्य शाखाए बीकानेर, उदयपुर, चित्तौडगढ कोटा टोक, जयपुर और अलवर मे स्थित है जिनमे लगभग 65,000 हस्तलिखित ग्रथ सग्रहीत है। राजस्थानी शोध सस्थान चौपासनी मे भी 17 हजार हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह है।

जोधपुर के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी हस्तलिखित ग्रथो का सग्रह करने का कार्य हुआ है। इनमे पीपाड सिटी का जयमल ज्ञान भण्डार, यति चतुरविजयजी का सग्रह, सोजत-सिटी का रघुनाथ ज्ञान भण्डार पाली स्थित श्री पूज्यजी का सग्रह, जैन स्थानक, खरतरगच्छ व तपागच्छ मन्दिर, उपासरे के भण्डार, बालोतरा का यति माणकचन्दजी का सग्रह, बाडमेर का यति नेमिचन्द्रजी का सग्रह, घाणेराव का हिमाचलसूरि का ज्ञान भण्डार, ओसिया के जैन विद्यालय मे स्थित भण्डार, फलोदी के तीन छोटे ज्ञानभण्डार, मेडता का पचायती ज्ञान भण्डार, सिरोही का तपागच्छीय भण्डार, जालौर का मुनि कल्याणविजयजी का सग्रह, आहोर का राजेन्द्र सूरि का ज्ञान भण्डार आदि उल्लेखनीय है।

उदयपुर के शास्त्र भण्डार

राजस्थान के पश्चिमी भाग मे उदयपुर, डूगरपुर, बासवाडा, प्रतापगढ आदि प्रदेशो का भाग जैन सस्कृति, साहित्य एव पुरातत्त्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रदेश माना जाता है। चित्तौड़, सागवाडा, डूगरपुर, ऋषभदेव जैसे नगर जैन सन्तो के केन्द्र रहे है। इन नगरो मे

प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश एव हिन्दी की कितनी ही रचनायें रची गयी, लिपिबद्ध की गयी एव स्वाध्यायार्थ जन-जन मे वितरित की गयी। उदयपुर मे 9 जैन मन्दिर है जिनमे सभी मे हस्त-लिखित पाण्डुलिपियों का सग्रह मिलता है लेकिन सबसे अधिक एव महत्वपूर्ण ग्रन्थ दिगम्बर जैन मन्दिर संभवनाथ, खण्डेलवाल जैन मन्दिर, अग्रवाल जैन मन्दिर एव गोडीजी का उपासरा मे संग्रहीत हैं। सभवनाथ मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे 517 हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। सबसे प्राचीन पाण्डुलिपि सन् 1408 की है जो भट्टोत्पल की "लघु जातक" टीका की है। यहा सकलकीर्ति रास की भी पाण्डुलिपि है जिसमे भट्टारक सकलकीर्ति का जीवन वृत्त दिया हुआ है। अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर मे यद्यपि करीब 400 ग्रन्थ है लेकिन अधिकाश पाण्डु-लिपिया प्राचीन है। सबसे प्राचीन पूज्यपाद कृत सर्वार्थसिद्धि की पाण्डुलिपि है जिस पर सवत् 1370 का लेखन काल दिया हुआ है। इसकी प्रतिलिपि योगिनीपुर मे की गयी थी। इस भण्डार मे सबमे अधिक सख्या हिन्दी ग्रन्थो की है। जिनमे कल्याणकीर्ति कृत चारुदत्त प्रबन्ध (1635 ए. डी.), अकलक यति रास (जयकीर्ति सन् 1710), दौलतराम कासलीवाल कृत जीवन्धर चरित (सवत् 1805), अम्बिका रास (ब्र जिनदास) आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दौलतराम कासलीवाल ने इसी मन्दिर मे बैठ कर जीवन्धर चरित की रचना की थी। इस भण्डार मे उसकी एक मात्र पाण्डुलिपि सग्रहीत है।[1]

खण्डेलवाल जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे करीब 200 प्रतिया है और सवत् 1363 की भूपाल स्तवन की पाण्डुलिपि है। इसी तरह गोडीजी के मन्दिर, उपासरे मे करीब 625 पाण्डुलिपिया है। इस भण्डार मे आगम शास्त्र, आयुर्वेद एव ज्योतिष आदि विषयो के ग्रन्थो का अच्छा सग्रह है।

डूगरपुर राजस्थान प्रान्त का जिला मुख्यालय है। यह पहिले बागड प्रदेश का सर्वा-धिक प्रसिद्ध राज्य था। जैन सस्कृति की दृष्टि से यह प्रदेश का एक सपन्न क्षेत्र रहा है। 15वी शताब्दी मे भट्टारक सकलकीर्ति एव उसके पश्चात् होने वाले भट्टारको का यह नगर प्रमुख केन्द्र था। सकलकीर्ति ने सवत् 1483 मे यही पर भट्टारक गादी की स्थापना की थी। सकलकीर्ति के पश्चात् होने वाले सभी भट्टारको ने अपने ग्रन्थो मे डूगरपुर, गिरिपुर के नाम का बहुत उल्लेख किया है। इन भट्टारको मे भुवनकीर्ति, ज्ञानभूषण, विजयकीर्ति, शुभचन्द्र आदि के नाम उल्लेखनीय है। ब्र जिनदास ने अपने प्रसिद्ध रास ग्रन्थ रामसीता रास की समाप्ति यही पर सवत् 1508 मे की थी। यहा के मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे 553 प्रतिया है जिनमे अधिकाश ग्रन्थ अत्यधिक महत्वपूर्ण है। भण्डार मे चन्दनमलयागिरि चौपई, आदित्यवार कथा एव राग रागिनियो की सचित्र पाण्डुलिपिया है जो चित्रकला एव शैली की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

केसरियानाथ के नाम स प्रसिद्ध 'ऋषभदेव' जैनो का अत्यधिक प्राचीन एव लोकप्रिय तीर्थ माना जाता है जहा जैन एव अजैन बन्धु प्रति वर्ष लाखो की सख्या मे आते है। जैन जाति के भट्टारको का यह प्रमुख स्थान माना जाता है। यहा उनकी गादी भी स्थापित है यहा का शास्त्र भण्डार भट्टारक यशकीर्ति जैन सरस्वती भवन के नाम से प्रसिद्ध है जिसमे हस्तलिखित ग्रन्थो की सख्या करीब 1100 से भी अधिक है। 15वी, 16वी एव 17वी शताब्दी मे लिखे हुए ग्रन्थो की सख्या सबसे अधिक है जो भण्डार की प्राचीनता की ओर एक स्पष्ट सकेत है। शास्त्र भण्डार मे राजस्थानी, हिन्दी एव मेवाडी भाषा मे लिखे हुए ग्रन्थ सर्वाधिक है जिससे ज्ञात होता है कि इन ग्रन्थो के सग्रहकर्ता इन भाषाओ के प्रेमी रहे थे। ऐसे ग्रन्थो मे पद्मा कवि का महावीर रास (सवत् 1609), नरसिहपुरा जाति रास, भ रतनचन्द्र का शान्ति नाथ पुराण (सवत् 1783), भट्टारक महीचन्द्र का लवकुश आख्यान आदि के नाम उल्लेखनीय है।

1 ग्रन्थो का विशेष विवरण देखिये—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची पचम भाग।

सागवाड़ा बागड प्रदेश का प्रमुख नगर है जो सैकडो वर्षों तक भट्टारकों का प्रभाव केन्द्र रहा। यहा के मन्दिरो मे विशाल एव कलापूर्ण मूर्तियां विराजमान है जो इन भट्टारको द्वारा प्रतिष्ठापित की गयी थी। सागवाड़ा को हम विशाल जैन मन्दिरो का नगर भी कह सकते हैं। यहा की प्राचीनता एव भट्टारको के केन्द्र स्थान की दृष्टि से शास्त्र भण्डार उतना महत्वपूर्ण नही है। फिर भी यहा अधिकाश भट्टारको की कृतिया उपलब्ध है।

कोटा-बून्दी के ग्रन्थ भण्डार :

कोटा, बून्दी, झालावाड हाड़ौती प्रदेश के नाम से विख्यात हैं। राजस्थान मे इस प्रदेश की सस्कृति एव सभ्यता का इतिहास काफी पुराना है। जैन धर्म एव सस्कृति ने इस प्रदेश को कब से गौरवान्वित किया यह अभी तक खोज का विषय बना हुआ है। लेकिन बून्दी, नैणवा, झालरापाटन का जैन ग्रन्थो मे काफी वर्णन मिलता है क्योंकि इन नगरो ने जैन सस्कृति के विकास मे खूब योग दिया था।

खरतरगच्छीय शास्त्र भण्डार, कोटा मे 1177 हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह है जो प्रमुखत 15वी, 16वी एव 17वी शताब्दी मे लिखे हुए है। सबसे प्राचीन पाण्डुलिपि रामलक्ष्मण रास की है जो सवत् 1415 की लिखी हुई है। इसी भण्डार मे हिन्दी की प्रसिद्ध कृति बीसलदेव चौहान रास की पाण्डुलिपि भी उपलब्ध है। इसी प्रकार महोपाध्याय विनयसागरजी का सग्रह भी उल्लेखनीय है जिसमे लगभग 1500 पाण्डुलिपिया प्राप्त है। दिगम्बर जैन मन्दिर बोरसली के शास्त्र भण्डार मे करीब 735 हस्तप्रतियो का भी सग्रह है। इस भण्डार के सग्रह से पता चलता है कि यहा 18वी शताब्दी मे हस्तलिखित ग्रन्थो का सबसे अधिक सग्रह हुआ था। सबसे प्राचीन पाण्डुलिपि भट्टारक शुभचन्द्र कृत पाण्डवपुराण की है जो सवत् 1548 मे प्रतिलिपि की गयी थी। शुभचन्द्र का पल्य विधान रास, भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति का चन्द्रप्रभ स्वामी विवाहला (सवत् 1702) एव मुनि सकलकीर्ति की रविव्रत कथा का नाम उल्लेखनीय है।

बून्दी नगर मे दिगम्बर जैन मन्दिर पार्श्वनाथ, आदिनाथ, अभिनन्दनस्वामी, महावीर एव नेमिनाथ इन सभी मन्दिरो मे हस्तलिखित भण्डार उपलब्ध है। यद्यपि इनमे किसी मे भी 500 से अधिक प्रतिया नही है। लेकिन फिर भी यहा के शास्त्र भण्डार पूर्ण रूप से व्यवस्थित है। पार्श्वनाथ मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे ब्रह्म जिनदास के रामसीतारास की अब तक उपलब्ध पाण्डुलिपियो मे सबसे पुरानी पाण्डुलिपि है जो सवत 1518 की लिखी हुई है। इसी तरह नेमिनाथ (नागदी) के मन्दिर मे रचित माधवानल प्रबन्ध की सवत् 1594 की प्रति है। यहा कवि बूचराज की कृतियो का अच्छा सग्रह है जो अन्यत्र नही मिलती।

झालरापाटन मे ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन है जिसमे 1436 पाण्डुलिपिया सग्रहीत है। हस्तलिखित ग्रन्थ सस्कृत, प्राकृत एव हिन्दी भाषा मे उपलब्ध है तथा सिद्धान्त, अध्यात्म, पुराण, काव्य, कथा, न्याय एव स्तोत्र आदि विषयो से सम्बन्धित है। यह भण्डार पूर्णत व्यवस्थित है।

बून्दी के समान नैणवा मे भी प्राय प्रत्येक मन्दिर मे शास्त्र भण्डार है जो दिगम्बर जैन मन्दिर, बघेरवाल तेरापन्थी मन्दिर एव अग्रवाल जैन मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। इन भण्डारो मे पचासो ऐसी पाण्डुलिपिया है जो नैणवा मे ही लिखी गयी थी। सबसे अधिक पाण्डुलिपि 18वी एव 19वी शताब्दी मे लिखी गयी है। सबसे अच्छा सग्रह बघेरवाल मन्दिर का है जिसमे सार सिखामण रास (भट्टारक सकलकीर्ति), ब्रह्म यशोधर का नेमिनाथ गीत (16वी शताब्दी), जिनसेन का पन्चेन्द्रियगीत (16वी शताब्दी) आदि के नाम उल्लेखनीय है।

दबलाना एक छोटा सा गाव है, यह बून्दी से पश्चिम की ओर दस मील सडक पर स्थित है यहा के मन्दिर मे भी ग्रन्थो का अच्छा सग्रह है जिनकी सख्या 416 है। शास्त्र भण्डार से ऐसा मालूम पडता है कि यह भण्डार किसी दिगम्बर साधु (पाण्डे) का था जो उसकी मृत्यु के पश्चात् यही के मन्दिर मे स्थापित कर दिया गया। इसमे सबसे प्राचीन षडावश्यक बालावबोध का है जिसका लेखन काल सन् 1464 का है। भण्डार से राजस्थान के विभिन्न नगरो मे लिपि किए हुए ग्रन्थ है जिनमे बून्दी, नैणवा, गोठडा, इन्दरगढ, जयपुर, जोधपुर, सागवाड़ा एव मौसवाली के नाम उल्लेखनीय है।

इन्दरगढ सवाई माधोपुर से कोटा जाने वाले रेल्वे लाइन पर स्थित है। यहा के पार्श्वनाथ मन्दिर मे हस्तलिखित पाण्डुलिपियो का भण्डार है जिसमे 289 हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह है। इनमे से अधिकाश ग्रन्थ स्वाध्याय मे काम मे आने वाले है।

राजस्थान के जैन शिलालेख

—रामवल्लभ सोमाना

राजस्थान से प्राप्त शिलालेखों मे जैन शिलालेखों की सख्या अधिक है । ये लेख प्राय मन्दिरो, मूर्तियो, स्तम्भो, निषेधिकाओ और कीर्तिस्तम्भो पर विशेष रूप से उत्कीर्ण मिलते हैं । इनके अतिरिक्त सुरह लेख एव चट्टानो पर खुदे लेख भी कुछ मिले है । मोटे तौर पर जैन लेखो को निम्नाकित पाच भागो मे बाट सकते है—

(1) ऐतिहासिक लेख,
(2) मन्दिरो की प्रतिष्ठा एव व्यवस्था सम्बन्धी लेख,
(3) यात्रा सम्बन्धी विवरण,
(4) मूर्तियो के लेख,
(5) निषेधिकाओ और कीर्तिस्तम्भो के लेख ।

राजस्थान से प्राप्त लेखो मे बडली का बहुचर्चित लेख प्राचीनतम माना जाता है, किन्तु इस लेख के सम्बन्ध मे विभिन्न विद्वानो मे मतभेद रहा है । मध्यमिका से एक खण्डित लेख मिला है जिसमे 'सब जीवो की दया के निमित्त' भावना युक्त कुछ खण्डित अश है । इसे जैन अथवा बौद्ध लेख मान सकते हैं । इसके अतिरिक्त राजस्थान से प्राचीनतम जैन लेख अपेक्षाकृत कम मिले है, यद्यपि यहा ख्याति प्राप्त आचार्य सिद्धसेन दिवाकर, हरिभद्रसूरि, उद्योतनसूरि, एलाचार्य जैसे विद्वान हुए हैं । साहित्यिक आधारो मे यहा कई प्राचीन मन्दिरों की स्थिति का पता चलता है किन्तु प्राचीनतम शिलालेखो का नही मिलना उल्लेखनीय है । मथुरा प्राचीन काल से जैन धर्म का केन्द्र स्थल रहा है । यहा से जैन साधुओ को दक्षिणी भारत अथवा गुजरात मे जाने के लिए, निःसदेह राजस्थान से होकर यात्राए करनी पड़ती थी किन्तु इनके कोई शिलालेख नही मिले हैं । राजस्थान से प्राप्त जैन लेखो का विवेचन इस प्रकार है:—

1. ऐतिहासिक लेख

जैन शिलालेखों का ऐतिहासिक महत्व अत्यधिक है । प्राचीन काल से ही जैनियों में इतिहास लिखने की सुदृढ परम्परा रही है । कालगणना सम्बन्धी जैनियों का ज्ञान उल्लेखनीय रहा है । जैन विद्वानों द्वारा किंचित् प्रशस्तियो में ऐतिहासिक महत्व की सामग्री अत्यधिक पाई गई हैं । इस सम्बन्ध मे एक रोचक वृत्तान्त प्रस्तुत किया जा सकता है । वि. सं. 1330 की चीरवा की प्रशस्ति एव वि स. 1324 की घाघसा की अजैन प्रशस्तियो की रचना जैन विद्वान् चैत्रगच्छाचार्य रत्नप्रभसूरि ने की थी । दोनो प्रशस्तियों मे मेवाड़ के महाराणाओं के सम्बन्ध मे कई महत्वपूर्ण सूचनायें दी गई है । लगभग इसी समय वेदशर्मा नामक चित्तौड़ निवासी ब्राह्मण ने दो प्रशस्तिया वि स. 1331 की चित्तौड की और वि. स 1342 की अचलेश्वर मन्दिर आबू की प्रशस्तियां बनाईं । दोनो मे भी मेवाड के राजाओं का वर्णन है । इन दोनों की तुलना करने पर पता चलता है कि वेद शर्मा द्वारा विरचित प्रशस्तियां ऐतिहासिक तथ्यों से परे अलंकारिक एव परम्परागत वर्णन लिए हुए ही है ।

राजस्थान से ऐतिहासिक महत्व की कई जैन प्रशस्तियां मिली हैं। घटियाला का वि. सं. 918 का लेख पूरा प्राकृत भाषा मे निबद्ध है एव इसका भारत के जैन लेखो मे बड़ा महत्व है। इस लेख मे प्रतिहार राजवश का वर्णन है। इसमे दी गई बशावली वि. स. 894 के जोधपुर अभिलेख से भी मिलती है। लेख कीर्तिस्तम्भ पर उत्कीर्ण है। ओसिया के जैन मन्दिर के वि. स. 1013 के शिलालेख के सातवें श्लोक मे प्रतिहार राजा वत्सराज (8वी शताब्दी) द्वारा बड़ा जैन प्रतिमा स्थापित करने का उल्लेख है। आहड के जैन मन्दिर के 10वी शताब्दी के एक शिलालेख मे (जिसे मैने अनेकान्त पत्र (दिल्ली से प्रकाशित) मे सम्पादित करके प्रकाशित कराया है) मेवाड़ के शासक अल्लट द्वारा प्रतिहार राजा देवपाल के मारने का उल्लेख मिलता है। लकुलीश मन्दिर एकलिंगजी के राजा नरवाहन के समय के शिलालेख वि स 1028 मे शैवो, बौद्धो और जैनो के मध्य वाद-विवाद करन का उल्लेख किया गया है। दिगम्बर जैन परम्पराओ से भी इसकी पुष्टि होती है। काष्ठासघ की लाट बागड़ की गुर्वावली के अनुसार प्रभाचन्द्र नामक साधु को "विकटशैवादिवृन्दवनदहनदावानल" कहा गया है। इनके उक्त राजा नरवाहन की सभा मे शास्त्रार्थ करने का भी उल्लेख किया गया है। इस प्रकार यह एक महत्वपूर्ण सूचना है। वस्तुत. एकलिंगजी से 2 मील दूर "अालाक पार्श्वनाथ का मन्दिर" नागदा म स्थित है। यह दिगम्बर सम्प्रदाय का 10वी शताब्दी का बना हुआ है। इसमे 11वी शताब्दी का एक शिलालेख भी मुनि कान्तिसागरजी ने देखा था जिस उन्हाने प्रकाशित भी कराया है, लेकिन इस समय अब केवल 13वी शताब्दी के शिलालेख ही उपलब्ध ह। वि. स. 1226 क बिजोलिया के शिलालेख मे इस मन्दिर का विशिष्ट रूप से उल्लेख होन से यह माना जा सकता है कि उस समय नागदा एक दिगम्बर तीर्थ के रूप मे प्रसिद्धि पा चुका था। समस्त तीर्थ नमस्कार, चैत्यवन्दना आदि ग्रन्थो मे भी इसका इसी रूप मे उल्लख किया गया है। अतएव प्रतीत होता है कि मेवाड़ मे कई साधु रहते होगे और उनसे ही शैवों का शास्त्रार्थ हुआ हागा। प्रभाचन्द्र साधु भी मेवाड़ मे दीघकाल तक रहे हो तो कोई आश्चर्य नही।

11वी शताब्दी के आसपास जैन धर्म को राज्याश्रय मिलना शुरू हो गया था। दिगम्बरो के चित्तौड़, नागदा, केसरियाजी, बागडक्षेत्र, हाड़ौती, लाडनू, आमर, चाटसू आदि मुख्य केन्द्र थे। श्वेताम्बरो के केन्द्रस्थल ओसिया, किराडवाली, आबू, जालोर आदि मुख्य रूप से थे। मेवाड़ मे श्वेताम्बर साधु भी प्रभाव बढ़ाते जा रहे थे। पश्चिमी राजस्थान मे बड़ी सख्या में जैन शिलालेख मिले ह। राठोड़ो क राज्याश्रय मे हस्तीकुण्डा का वि. स. 1053 का महत्वपूर्ण जैन लेख खुदवाया गया था। इसमे कई महत्वपूण ऐतिहासिक सूचनाये दी गई है। इसमे परमार राजा मुज के मेवाड़ पर आक्रमण करने और आघाट को खण्डित करने का उल्लेख है। इसी लेख मे गुजरात के राजा द्वारा धरणीबराह परमार पर आक्रमण करने और उसके हठूडी मे शरण लेने का उल्लेख है। हठूडी और सेवाड़ी गोडवाड़ मे है और जैनियो के तीर्थस्थलो मे से एक है। सेवाड़ी से वि. स. 1172 और 1176 के प्रसिद्ध जैन लेख मिले है। इन लेखो के अवलोकन से पता चलता है कि राठाड़ो के अतिरिक्त गुहिलोत और चौहान भी व्यापक रूप से जैन मन्दिरो के लिए दान देते आ रह थ। इनके दानपत्रो मे जो वंश वर्णन दिया गया है वह ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। नाडाल के वि. स 1218 और नाडलाई के भी वि. स. 1218 के ताम्रपत्र इसी कारण बहुत ही प्रसिद्ध है।

2. मन्दिरों की प्रतिष्ठा एवं व्यवस्था सम्बन्धी लेख

प्राय. मन्दिरो की व्यवस्था गोष्ठिकों द्वारा की जाती थी। इन गोष्ठिकों का चुनाव समाज के प्रतिनिधि व्यक्ति अथवा मन्दिर बनाने वाले या उसके निकट परिवार के सदस्य करते थे। इन्हे मन्दिर की आय, व्यवस्था, व्यय, पूजा-प्रतिष्ठा, स्थायी सम्पत्ति की प्राप्ति

और बिक्री, ब्याज पर पूंजी नियोजन आदि का पूर्ण अधिकार रहता था। वि. सं. 1287 के आबू के लूणिग वसही के लेख से पता चलता है कि मंत्री वस्तुपाल तेजपाल ने अपने सभी निकट सम्बन्धियों को पूजा सम्बन्धी विस्तृत अधिकार दिए थे। रत्नपुर के शिलालेख से पता चलता है कि गोष्ठिकों की संस्था को "भाटक" संस्था भी कहते थे। वि. सं. 1235 के सच्चिका देवी के मन्दिर के शिलालेख में "सच्चिकादेवी गोष्ठिकान् भमित्वा तत्समक्षत इयं व्यवस्था लिखापितं" एवं सेवाड़ी के वि. सं. 1192 के लेख में "गोष्ठया मिलित्वा निषेधीकृत" कहकर व्यवस्था की गई है। ऐसे ही वर्णन वि. सं. 1236 के साडेराव के लेख में है।

मन्दिरों की व्यवस्था के लिए कई दान देने का भी उल्लेख है। इनमें पूजा के अतिरिक्त वार्षिक उत्सव, रथयात्रा आदि के लिए भी व्यवस्था कराने का उल्लेख है। इनके अतिरिक्त कई बार कर लगाने के भी उल्लेख मिलते हैं जिनकी आय सीधी मन्दिर को मिलती थी। इनमे से कुछ का वर्णन इस प्रकार है:—

वि. सं 1167 के सेवाड़ी के शिलालेख में महाराज अश्वराज द्वारा धर्मनाथ देव की पूजा के निमित्त ग्राम पदराडा, मेदरचा, छोछडिया और मादडी से प्रति रहट जव देने का उल्लेख किया गया है। वि. सं 1172 के इसी स्थान के लेख में जैन मन्दिर के निमित्त प्रति वर्ष 8 द्रम्म देने का उल्लेख है। वि. सं. 1198 के नाडलाई के लेख मे महाराज रायपाल के दो पुत्रों और उसकी पत्नी द्वारा जैन यतियों के लिये प्रति घाणी दो पल्लिका तेल देने की व्यवस्था की सूचना मिलती है। वि सं. 1187 के संडेरगच्छ के महावीर देशी चैत्य के निमित्त मोरकरा गाम में प्रति घाणी तेल देने का इसी प्रकार उल्लेख मिलता है। वि सं. 1195 के नाडलाई के लेख मे गुहिल वंशीय राऊल उद्धरण के पुत्र ठक्कुर राजदेव द्वारा नेमिनाथ की पूजा के निमित्त नाडलाई में आने-जाने वाले समस्त भारवाहक वृषभों से होने वाली आय का 1'10 भाग देने का उल्लेख है। वि सं. 1200 के नाडलाई के लेख में रथ यात्रा के निमित्त उक्त राजदेव द्वारा 1 विशोपक और 2 तेल पल्लिका देने का उल्लेख है। वि सं. 1200 के बाली के शिलालेख में इसी प्रकार रथ यात्रोत्सव के लिए 4 द्रम्म देने की सूचना दी गई है। वि सं 1202 के नाडलाई के लेख के अनुसार उक्त राजदेव गुहिलोत द्वारा महावीर चैत्य के साधुओं के लिए दान दिया गया था। वि. सं 1218 के ताम्रपत्र में संडेरगच्छ के महावीर चैत्य के लिए प्रतिमास 5 द्रम्म दान में देने का उल्लेख किया गया है। वि. सं 1218 के नाडलाई के ताम्रपत्रों मे कीतु चौहान द्वारा 12 ग्रामों में प्रत्येक से 2 द्रम्म महावीर मन्दिर के निमित्त दान मे देने का उल्लेख है। वि. सं. 1221 के केल्हण के सांडेराव के लेख से ज्ञात होता है कि चैत्र बदि 13 को होने वाले भगवान् महावीर के कल्याणक महोत्सव के निमित्त राजकीय आय में से दान देने का उल्लेख है। इसी प्रकार के उल्लेख दंताणी के वि. सं 1345, हट्टंडी के पास स्थित राता महावीर मन्दिर के सं 1335, 1336 और वि. सं 1345 के लेखों में है। चाचिगदेव सोनगरा ने मेवाड़ के करेडा मन्दिर के निमित्त नाडोल की मंडपिका से दान दिया था। इसका उल्लेख उसने वि. सं 1326 के शिलालेख मे किया है। यह मन्दिर उसकी राज्य के सीमाओं मे नही था फिर भी दान देना विचारणीय है।

जालौर क्षेत्र से भी इस प्रकार के कई लेख मिल चुके हैं। वहा से प्राप्त वि. सं. 1320 के एक शिलालेख के अनुसार नानकीयगच्छ के चन्दन-विहार नामक मन्दिर के निमित्त लक्ष्मीधर श्रेष्ठि ने 100 द्रम्म दान में दिए थे। जिसकी आय में से नियमित रूप से आसोज मास के अष्टान्हिक महोत्सव कराए जाने की व्यवस्था कराने का उल्लेख है। वि सं. 1323 के इसी मन्दिर के लेख के अनुसार महं. नरपति ने 50 द्रम्म दान में दिए थे। जिसके ब्याज की आय से मन्दिर के लिए नेवक (माला) की व्यवस्था कराने का उल्लेख है।

चित्तौड़ से वि. सं. 1335 का एक शिलालेख मिला है। इसमें भर्तृपुरीय गच्छीय आचार्य प्रद्युम्नसूरि के उपदेश से महारावल समरसिंह ने अपनी माता जयतल्लदेवी की इच्छानुसार श्याम पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया एवं मठ की व्यवस्था के लिए पर्याप्त राशि दान में दी। चित्तौड़, सज्जनपुर, खोहर, आघाट आदि की मडपिकाओं से होने वाली आय में से पर्याप्त राशि देने का उल्लेख मिलता है।

बिजोलिया क्षेत्र मे दिगम्बर जैनों का अधिक प्रभाव रहा था। वहा से दो प्रसिद्ध लेख मिले हैं। पहला लेख वि सं. 1226 का है। इसमे चौहानो की विस्तृत वशावली दी हुई है। यह वंशावली हर्षनाथ के वि स 1030 के शिलालेख और पृथ्वीराज विजय काव्य से मिलती है और प्रामाणिक है। इसी सामग्री से पृथ्वीराज रासो नामक ग्रन्थ को जाली सिद्ध करने में सहायता मिली है। दूसरा लेख "उन्नत शिखर पुराण" का अंश है। इसे मैंने अनेकान्त मे सपादित करके प्रकाशित कराया है। चित्तौड से परमार राजा नरवर्मा के समय का लेख मिला है। इस लेख के प्रारम्भ मे मालवे के परमार राजाओ की वशावली दी हुई है। इसमें चित्तौड मे स्थापित विधिचैत्य के लिए दान देने की व्यवस्था भी की गई है। चित्तौड से ही वि सं 1207 की कुमारपाल की शिवमन्दिर की प्रशस्ति मिली है। इसकी रचना दिगम्बर जैन विद्वान रामकीर्ति ने की थी जो जयकीर्ति के शिष्य थे। इस लेख में कुमारपाल के शाकम्भरी जीतने की महत्वपूर्ण सूचना है।

13वीं शताब्दी मे राजस्थान मे आबू, चित्तौड, जालौर, गोड़वाड आदि क्षेत्रो मे महत्वपूर्ण निर्माण कार्य हुआ था। आबू मे प्रसिद्ध 'लूणिग वसही' नामक जैन मन्दिर बना था। इसके वि. स. 1287 के शिलालेख मे कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सूचनाए हैं। इसमे गुजरात के शासको और आबू के परमारो की विस्तृत वशावली दी हुई है एव कई राजाओ का विस्तृत वंशवृक्ष भी दिया हुआ है। यह मन्दिर परमार राजा सोमसिंह के समय बना था। इसकी मा शृंगारदेवी भी जैन धर्म से प्रभावित थी। झाडोली के वि स 1255 के जैन मन्दिर के लेख में इसका उल्लेख भी किया हुआ है। वि. स 1350 का परमार राजा वीसलदेव का आबू से प्राप्त महत्वपूर्ण लेख है। इस राजा के 4 अन्य जैन लेख वि स 1345 से 1351 तक के भी मिले हैं। आबू के अन्तिम परमार शासको के सम्बन्ध मे जानकारी देने वाले ये लेख महत्वपूर्ण हैं। वस्तुत वि स. 1344 के पाटनारायण के लेख के बाद आबू मे परमारो के सम्बन्ध मे क्रमबद्ध सूचना नही मिलती है। अतएव यह लेख भी महत्वपूर्ण है। नाडोल के चौहानों और जालोर के सोनगरो के सम्बन्ध मे सूधा पहाड का महत्वपूर्ण शिलालेख मिला है। इस लेख के माध्यम से इनकी विस्तृत वशावली तैयार की गई है। सोनगरों के बचे हुए राजाओं के नामों की विस्तृत सूची वि. स 1378 के देलवाड़ा के विमल वसही के लेख मे है।

अल्लाउद्दीन खिलजी ने आबू के जैन मन्दिरों का विध्वंस किया था और उनका जीर्णोद्धार वि. स 1378 के आसपास मण्डोर के जैन श्रेष्ठि परिवारो ने कराया था। सैणवा (जिला चित्तौड) और गंगरार (जिला चित्तौड) से भी वि. सं 1372 और वि. सं 1389 तक के कई दिगम्बर जैन लेख मिले है। ये लेख प्राय निषेधिकाओ के हैं। इन लेखो से पता लगता है कि अल्लाउद्दीन के आक्रमण के बाद कुछ दिनो में वहा स्थिति मे परिवर्तन आ गया था और जैन साधु वापस वहा आकर रहने लग गए थे। जैसलमेर मे भी अल्लाउद्दीन का आक्रमण हुआ था। इस आक्रमण के सम्बन्ध मे फारसी तवारीखें प्रायः मौन है और एक मात्र सूचना वहा के जैन मन्दिरों की प्रशस्तियों से ही मिलती है।

अल्लाउद्दीन के आक्रमण के बाद राजस्थान में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। मेवाड़ के सिसोदियो का उदय एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। इनके राज्य मे श्वेताम्बर जैनियों

का बडा अभ्युदय हुआ। देवकुलपाटक (देलवाडा), चित्तौड और करेडा में कई मन्दिर बने। यहा से कई शिलालेख, ग्रन्थ, प्रशस्तिया आदि मिली हैं। इन लेखों मे वि. स 1495 का चित्तौड़ का लेख और वि स. 1496 का राणकपुर का शिलालेख मुख्य है। राणकपुर का शिलालेख मेवाड़ इतिहास के लिए बहुत ही उपयोगी है। मैंने "महाराणा कुम्भा" पुस्तक में इस पर विस्तार से लिखा है। शत्रुञ्जय का जीर्णोद्धार चित्तौड के जैन श्रेष्ठि तोलाशाह ने कराया था। इसका एक शिलालेख वि सं 1587 का मिला है। इसमें प्रारम्भ में मेवाड़ के राजवंश का वर्णन आदि का उल्लेख है। बागड प्रदेश भी मेवाड की तरह जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र रहा था। यहां से ऊपर गाव की वि स 1461 की एक महत्वपूर्ण प्रशस्ति मिली है जिसे मैंने "अनेकान्त" मे प्रकाशित भी कराई है। इसमें प्रथम वार बागड के शासकों पर प्रामाणिक सामग्री प्रकाशित हुई है।

इस प्रकार मध्यकाल मे और भी कई लेख मिले है। मुंहता नैनसी और उसके पिता जयमल के जालोर, फलोदी और नाडोल के लेख, थाहरूशाह भणशाली के जैसलमेर एव लोद्रवा के लेख, मोहनदास मत्री परिवार के आमेट आदि के लेख हैं। इस प्रकार कई महत्वपूर्ण सामग्री जैन लेखो मे प्राप्त हुई है।

इन शिलालेखों का क्रम इस प्रकार से मिलता है। प्रारम्भ में जैन तीर्थंकरों की स्तुति, और बाद मे सरस्वती आदि की वन्दना भी दी गई है। इसके बाद राजवश वर्णन रहता है। आबू की लूणिग वसही की प्रशस्ति मे पहले श्रेष्ठि परिवार का वर्णन है और राजवश वर्णन बाद मे दिया गया है. किन्तु अधिकाश लेखो मे राजवश वर्णन के बाद ही श्रेष्ठि वश वर्णन रहता है। श्रेष्ठि वश के बाद साधुओं के गच्छ, परम्परा आदि का वर्णन रहता है, किन्तु कही-कही श्रेष्ठि वश के पूर्व भी साधुओं का वर्णन दिया गया है। अत मे प्रशस्तिकार का वर्णन, खोदने वाले, लिखने वाले आदि का उल्लेख रहता है।

गृह लेखों मे परम्परा इससे कुछ भिन्न होती है। ये दानपत्र के रूप मे होते है। इसमें प्राय न तो राजा का वश वर्णन रहता है और न जैन साधुओं का। इसमे केवल राजा विशेष द्वारा दिये गये दान आदि का उल्लेख रहता है। अगर भूमि दान मे दे तो भूमि की सीमाये भी अकित रहती है। अन्य दान पत्र होगा तो उसमे विशेष प्रयोजन का भी उल्लेख होगा।

3. यात्रा सम्बन्धी विवरण

यात्रा सम्बन्धी विवरण प्राय दो प्रकार के मिलते है। कुछ विवरण सघ यात्राओं के है जो मुख्य-मुख्य तीर्थो, जैसे आबू, राणकपुर, गिरनार, केसरियाजी आदि स्थानो पर यात्रार्थ जाने के है। ये यात्री भारत के अन्य जैन-तीर्थों की यात्रा करते-करते राजस्थान मे भी आये प्रतीत होते हैं। दूसरे विवरण उन यात्रियों से सम्बन्धित है जो अकेले ही यात्रा करते थे। सघ यात्राओं के विशद वर्णन मिलते है। वस्तुपाल तेजपाल द्वारा सघ निकालकर यात्रा पर जाने का वर्णन बहुत ही विस्तार से मिलता है। चित्तौड़ के वि स 1495 के शिलालेख मे श्रेष्ठि गुणराज द्वारा सघ यात्रा निकालने आदि के वर्णन है। इस यात्रा मे राणकपुर मदिर के निर्माता श्रेष्ठि धरणा भी सम्मिलित हुआ था। नागदे मे आये सघयात्री जसवीर को महाराणा कुम्भा ने तिलक लगाया और सम्मानित किया था। आबू मे सघ यात्राओं के कई शिलालेख लगे है। वि. स. 1358 जेठ सुदि 5 के लेख मे लखावी के सघ की यात्रा की सूचना दी गई है। वि स. 1378 मे रणस्तम्भपुर के विस्तृत सघ के वहा आने का उल्लेख भी शिलालेख से ज्ञात होता है। इसी प्रकार वि. स 1503 में चन्देरी से सघ के आने की सूचना मिलती है। राजस्थान में ऐसे सघ यात्रा सम्बन्धी कई और लेख मिले है। इनसे ज्ञात होता है कि राजस्थान में श्रेष्ठिगण

अपने धर्म स्थानों की यात्राओं पर प्राय: जाया करते थे। उनके साथ जैन साधु भी होते थे। आचार्य सोमसुन्दरसूरि, हीरविजयसूरि आदि ने कई उल्लेखनीय संघ यात्रायें कराई थीं।

4. मूर्तिलेख

राजस्थान से श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो ही सम्प्रदायों की असंख्य मूर्तियां लेखयुक्त मिलती हैं। ये लेख प्राय. तीर्थंकरों की प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण मिलते हैं किन्तु, कहीं-कहीं आचार्यों की प्रतिमाओ, जीवन्तस्वामी की प्रतिमाओं, जैन सरस्वती, अम्बिकादेवी, सच्चिका देवी आदि की प्रतिमाओ पर भी लेख मिलते हैं। 10वी शताब्दी के पूर्व की लेख युक्त प्रतिमायें अत्यल्प हैं। 10वी शताब्दी से बड़ी सख्या में मूर्तियां मिलती हैं। ओसियां के मंदिर में वि. सं. 1040 में प्रतिष्ठापित प्रतिमा विराजमान है। अमरसर से खुदाई में प्रतिमाओं में संवत् 1063, 1104, 1112, 1129, 1136 और 1160 की प्रतिमायें मिली हैं। इसी प्रकार बघेरा से खुदाई में प्राप्त प्रतिमायें भी 11वी और 12वी शताब्दी की हैं। रूपनगढ मे प्राप्त प्रतिमायें भी इसी काल की है। साचोर में विशालकाय पीतलमय मूर्ति वि स 1134 मे प्रतिष्ठित की गई थी जो वि सं 1562 मे आबू मे लाई गई थी। वि.सं 1102 मे आबू में सलावटों ने अपनी ओर से जिन प्रतिमा निर्मित कराके प्रतिष्ठित कराई थी। इन मूर्तियों की प्रतिष्ठायें विशेष आचार्यों द्वारा कराई जाती थी। दिगम्बरों द्वारा मूर्ति प्रतिष्ठाओ मे मोजमाबाद मे वि स.1664 में, चाद खेडी खानपुर में वि सं. 1746 मे, वासखो मे वि म 1783 में, सवाई माधोपुर में वि मं 1826 में हुई प्रतिष्ठाओ के समय बड़ी सख्या मे मूर्तिया और यंत्र प्रतिष्ठापित हुये थे। वि मं 1508 में नाडोल मे महाराणा कुभा के समय जब प्रतिष्ठा हुई थी तब भी कई प्रतिमाओ की प्रतिष्ठा कराई गई थी, जो बाद में कुभलगढ, देवकुल पाटन आदि स्थानों को भेजी गई थी। इन मूर्ति लेखों से कई रोचक वृत्तान्त भी मिलते हैं। जैसे वि म 1483 के जीरापल्ली के लेखो से ज्ञात होता है कि इस वर्ष वहा 4 गच्छो के बडे-बडे आचार्यों ने एक साथ चौमासा किया था। वि. सं 1592 के बीकानेर के शिलालेख से वहा कामरा के आक्रमण की सूचना दी गई है जो महत्वपूर्ण है।

कई बार जैन प्रतिमाये एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाई गई थी। वि म 1408 में मूडस्थला मे प्रतिष्ठित प्रतिमाये आबू ले जायी गई जो आजकल विमल वसही मे मुख्य मन्दिर के बाहर लग रही है। इसी प्रकार वि म 1518 मे कुम्भलगढ मे महाराणा कुम्भा के राज्य में प्रतिष्ठित प्रतिमा वि म 1566 मे अचलगढ ले आई गई थी। मत्री कर्मचन्द्र अकबर से स्वीकृति लेकर सिरोही और आबू क्षेत्र की कई प्रतिमाये देहली से बीकानेर ले गया था।

तीर्थंकरो की प्रतिमाओ के अतिरिक्त जीवन्त स्वामी की पीतलमयी प्रतिमाये बहुत ही प्रकाश में आई हैं। 10वी शताब्दी की लेखयुक्त एक सुन्दर पत्थर की प्रतिमा सरदार म्युजियम जोधपुर में भी है। आचार्यो की प्रतिमाये 10 वी शताब्दी से ही मिलनी शुरू हो जाती हैं। लेख-युक्त प्रतिमाये साडेराव, देवकुल पाटक आदि कई स्थानो पर उपलब्ध हैं। आचार्यों की प्रतिमाओं के स्थान पर चारण पादुकायें भी बनाई जाती थी। जयपुर से 2 मील दूर पुराने घाट पर दिगम्बर आचार्यों से सम्बन्धित वि मं 1217 का शिलालेख हाल ही में मैंने प्रकाशित कराया है। इसमे भी लेख के एक और चरण पादुका बनी हैं। इस लेख से आमर और जयपुर क्षेत्र में दिगम्बर जैनों के 10 वी शताब्दी में अस्तित्व होने की सूचना मिलती है। इन मूर्तियों के अतिरिक्त कई पट्ट, यन्त्र आदि भी लेखयुक्त मिलते हैं।

अन्य देवियों के साथ सरस्वती देवी की उपासना जैनियो में विशेष रही प्रतीत होती हैं। चित्र कला मे इसका अंकन बहुत ही अधिक है। मूर्तियो में पल्लु की जैन सरस्वती प्रतिमायें बड़ी प्रसिद्ध है। वि स. 1202 की लेखयुक्त सरस्वती प्रतिमा नरेणा के जैन

मन्दिर में है। इसी प्रकार वि. सं. 1219 की लेख युक्त प्रतिमा लाडनू के दिगम्बर जैन मन्दिर में है। इसी प्रकार जैन श्रेष्ठियों या उपासको की मूर्तिया भी मिलती हैं। आबू के विमल-वसही के सभा मण्डप मे वि. स. 1378 मे जीर्णोद्धार कराने वाले परिवार की प्रतिमायें बनी हुई हैं। इसी मन्दिर में कुमारपाल के मंत्री कपर्दि के मा की प्रतिमा वि. स. 1226 के लेख युक्त वहां लग रही है।

मूर्ति लेख समसामयिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक स्थिति के अध्ययन के लिये बहुत ही उपयोगी है। इनमें श्रेष्ठियो के वशो का विस्तृत वर्णन, उनके पूर्वजों द्वारा समय-समय पर कराये गये धार्मिक कार्यों का विवरण आदि रहता है। श्रेष्ठियो के आगे भंडारी, व्यवहारी, महत्तर, मंत्री, श्रेष्ठि, शाह, ठक्कुर, गोष्ठिक, सघपति आदि कई शब्द भी मिलते है। आबू के पित्तलहर मन्दिर में वि स. 1225 के लेख मे श्रेष्ठि रामदास को राजाधिराज उपाधि युक्त लिखा है। यह पदवी उसे गुजरात के सुल्तान द्वारा दी गई थी। गुजरात के सुल्तान ने चित्तौड़ के जैन श्रेष्ठि गुणराज को सम्मानित किया था। इन लेखो में खडेलवाल, अग्रवाल, धक्कँट, पोरवाल, पल्लीवाल, श्रीमाल, ओसवाल, बघेरवाल आदि के उल्लेख विशेष रूप से मिलते हैं। कुछ ब्राह्मणों द्वारा जैन प्रतिमाये बनाने के भी रोचक वृतान्त मिलते है। डूगरपुर से 15वी शताब्दी के कई श्रेष्ठियो ने विष्णु की प्रतिमाये बनाई थी। मूर्तियो के लेखो से ही चन्द्रावती के व मंडोर के जैन श्रेष्ठियो आदि के बारे मे जानकारी मिली है। ये लेख नही होते तो कवीन्द्र बन्धु यशोवीर, नागपुरिया, बाहड़िया परिवार तथा देवकुल पाटक के जैन परिवारों के बारे में हमारे पास सूचना नही के बराबर होती।

5. निषेधिकाओं और कीर्तिस्तम्भों के लेख

निषेधिकाओ और कीर्तिस्तम्भो के लेख अपेक्षाकृत कम मिलते है। निषेधिकाओ के प्राचीनतम लेख राजस्थान से सम्भवत. रूपनगढ में 10वी शताब्दी के मिले हैं। 14वी शताब्दी के बाद से ऐसे लेख अधिक सख्या मे मिलते हैं। चित्तौड के पास गगरार, सैणवा और बिजौलिया से जो लेख मिले है वे उल्लेखनीय हैं। इनमे आचार्य या आर्यिका जो मरण-समाधि लेती है उसका नाम और उसके पूर्व-आचार्यो की परम्परा का उल्लेख रहता है। कीर्तिस्तम्भो के लेखो मे वि स 918 का घटियाला लेख और चित्तौड़ के जैन कीर्तिस्तम्भ सम्बन्धी शिलालेख उल्लेखनीय हैं। घटियाला का पूरा लेख प्राकृत मे है और बहुत ही महत्वपूर्ण है। चित्तौड़ के कीर्तिस्तम्भ से सम्बन्धित 3 शिलालेख हाल ही में मैंने अनेकान्त म प्रकाशित कराये है। यह कीर्तिस्तम्भ 13 वी शताब्दी में बघेरवाल श्रेष्ठि जीजा ने शुरु कराया था जिसकी प्रतिष्ठा उसके पुत्र पूर्णसिह ने की थी। इसे माणस्तम्भ कहा गया है। इसी प्रकार पट्टावली स्तम्भ भी बनते हैं। वि. स. 1706 का पट्टावली स्तम्भ लेखयुक्त चाकसू के जैन मन्दिर का आमेर में लग रहा है।

शिलालेखों की विशेषताएं

जैन लेखो की शैली भी उल्लेखनीय है। मन्दिर की प्रतिष्ठा में प्रायः प्रारम्भ में तीर्थंकरो की स्तुति, राजवंश वर्णन, वश वर्णन आदि रहता है। मूर्ति लेख इससे कुछ भिन्न होते हैं। इनमे संवत् और उसके बाद श्रेष्ठि वर्ग का नाम और उसके वश का वर्णन, उसके बाद बिम्ब का उल्लेख और प्रतिष्ठा करने वाले साधु का प्राय. वर्णन रहता है। इन लेखो से जैन धर्म को जो राज्याश्रय मिला उसकी पूर्ण सूचना मिलती है। वि स. 1372 और 1373 के महारावल लूणा के और वि.सं. 1506 के महाराणा कुम्भा के लेखो से सूचित होता है कि आबू पर आने वाले यात्रियो से लिये जाने वाले करो की छूट थी। बरकाणा के जैन मन्दिर में महाराजा जगतसिंह प्रथम और जगतसिह द्वितीय के शिलालेख मे इसी प्रकार वहा लगने वाले मेले के लिये कुछ विशेष रियायतें देने के उल्लेख है। केसरियाजी के मन्दिर के बाहर भी कई सुस्पष्ट लेख लग रहे है जिनमे 2 भीलों और मेवाड़ के महाराणा के मध्य समझौते की प्रतिलिपि खुदी हुई है।

जैन लेखन कला

—भंवरलाल नाहटा

गुजरात की यह कहावत सर्वथा सत्य है कि सरस्वती का पीहर जैनों के यहा है। भगवान् ऋषभदेव ही मानव सस्कृति के जनक थे, उन्होंने ही परम्परागत युगलिक धर्म का हटाकर कर्मभूमि के असि, मसि और कृषि लक्षण को सार्थक किया। समस्त ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के वे प्रथम शिक्षक आदि पुरुष होने से उन्हें आदिनाथ कहा जाता है। सर्व प्रथम भगवान ऋषभदेव ने अपनी पुत्री ब्राह्मी को लेखन-कला लिपिविज्ञान सिखाया, इसी से उसका नाम ब्राह्मी लिपि पडा। आवश्यक निर्युक्ति भाष्य गाथा 13 मे "लेह लिवी विहाणं जिणेण बभीइ दाहिण करेण" लिखा है एव पचमाग भगवती सूत्र मे भी सर्वप्रथम 'नमो बभीए लिवीए' लिखकर अठारह लिपियो मे प्रधान ब्राह्मी लिपि को नमस्कार किया है। बौद्ध ग्रन्थ ललितविस्तरा मे 64 लिपियो के नाम है जिनमे भी प्रथम ब्राह्मी और खरोष्टी का उल्लेख है। बायी ओर से दाहिनी ओर लिखी जाने वाली समस्त लिपियो का विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ है। दाहिनी ओर से बायी ओर लिखी जाने वाली लिपि खरोष्टी है और उसी से अरबी, फारसी, उर्दू आदि भाषाए निकली है। चीनी भाषा के बौद्ध विश्वकोश के अनुसार ब्रह्म और खरोष्ट भारत मे हुए है और उन्होंने देवलोक से लिपिया प्राप्त की तथा ऊपर से नीचे खडी लिखी जाने वाली लिपि त्सकी है जो चीन के अधिवासी त्सकी ने पक्षियो आदि के चरण चिन्हों से निर्माण की थी।

यद्यपि भगवान ऋषभदेव को असख्य वर्ष हो गए और लिपियो का उसी रूप मे रहना असभव है और न हमारे पास उस विकास क्रम को यावावधि मे आबद्ध करने वाले साधन ही उपलब्ध है। वर्तमान लिपियो का सम्बन्ध ढाई हजार वर्ष की प्राचीन लिपियो से जुडता है। यो मोहन-जोदडो और हडप्पा आदि की सस्कृति मे पाच हजार वर्ष की लिपिया प्राप्त हुई है तथा राजगृह एव वाराणसी के अभिलेख जिसे विद्वानो ने "शख लिपि" का नाम दिया है, पर अद्यावधि उन लिपियो को पढने मे पुरातत्वविद् और लिपि विज्ञान के पण्डित भी अपने को अक्षम पाते है। ब्राह्मी लिपि नाम से प्रसिद्ध लिपि का क्रमिक विकास होता रहा और उसी विकास का वर्तमान रूप अपने-अपने देशो व प्रान्तो की जलवायु के अनुसार विकसित वर्तमान भाषा-लिपिया है। खरोष्टी लिपि 'सैमेटिक वर्ग' की है और उसका प्रचार [illegible] री शती पर्यन्त पजाब मे था और उसके बाद वह लुप्त हो गई। पन्नवणा सूत्र मे कुल लिपियो के नामोल्लेख के अतिरिक्त समवायाग सूत्र के 18वे समवाय मे अठारह लिपियो के नाम एव विशेषावश्यक टीका के अठारह लिपि नामो मे कुछ अन्तर पाया जाता है। जो भी हो हमे यहा जैन लेखन कला और उसके विकास पर प्रकाश डालना अभीष्ट है।

भगवान् महावीर की वाणी को गणधरो ने ग्रथित की तथा भगवान् पार्श्वनाथ के शासन का वाङ्मय जो मिल-जुलकर एक हो गया था विशेषत मौखिक रूप मे ही निर्ग्रंथ परम्परा मे चला आता रहा। आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने वीर निर्वाण सवत् 980 मे वलभी मे आगमो को ग्रन्थारूढ लिपिबद्ध किया तब से लेखन-कला का अधिकाधिक विकास हुआ। अत. पूर्व कथचित् आगम लिखाने का उल्लेख सम्राट खारवेल के अभिलेख मे पाया जाता है एव अनुयोगद्वार सूत्र मे पुस्तक पत्रारूढ श्रुत को द्रव्य-श्रुत माना है पर अधिकाश आगम मौखिक ही रहते थे, लिखित

आगमो का प्रचलन नही था, क्योंकि श्रमण वर्ग अधिकतर जगल, उद्यान और गिरिकन्दराओं मे निवास करते और पुस्तकों को परिग्रह के रूप मे मानते थे। इतना ही नही, वे उनका संग्रह करना असभव और प्रायश्चित योग्य मानते थे, निशीथ भाष्य, कल्प भाष्य, दशवैकालिक चूर्णि में इसका स्पष्ट उल्लेख है। परन्तु पचम काल के प्रभाव स क्रमश: स्मरण शक्ति का ह्रास हो जाने से श्रुत साहित्य को ग्रन्थारूढ करना अनिवार्य हो गया था। अत. श्रुतधर आचार्य ने समस्त सघ समवाय मे श्रुतज्ञान की वृद्धि के लिए ग्रन्थारूढ करने की स्वीकृति को सयम वृद्धि का कारण मान्य किया और उसी सन्दर्भ मे ग्रन्थ व लेखन सामग्री का संग्रह व विकास होने लगा।

लिपि और लेखन उपादान .

श्रुत लेखन में लिपि का प्राधान्य है। जैनाचार्यों ने भगवती सूत्र के प्रारम्भ में 'नमो बभीए लिवीए' द्वारा भारत की प्रधान ब्राह्मी लिपि को स्वीकार किया। इसी से नागरी शारदा, ठाकरी, गुरुमुखी, नेवारी, बगला, उडिया, तेलगु, तामिल, कन्नडी, राजस्थानी, गुप्त, कुटिल, गुजराती, महाजनी और तिब्बती आदि का क्रमिक विकास हुआ। उत्तर भारत के ग्रन्थों में देवनागरी लिपि का सार्वभौम प्रचार हुआ। स्थापत्य लेखो के लिए अधिकतर पाषाण शिला-फलको का उपयोग हुआ। कही-कही काष्ठ-पट्टिका और भित्ति लेख भी लिखे गये पर उनका स्थायित्व अल्प होने से उल्लेख योग्य नही रहा। दान-पत्रादि के लिये ताम्र धातु का उपयोग प्रचुरता से होता था, पर ग्रन्थों के लिए ताडपत्र, भोजपत्र और कागज का उपयोग अधिक हुआ। यो काष्ठ के पतले फलक एव लाक्षा के लेप द्वारा निर्मित फलको पर लिखे ग्रन्थ भी मिलते हैं जिनका सम्बन्ध ब्रह्म देश से था। जैन ग्रन्थ लिखने मे पहले ताडपत्र और बाद मे कागज का उपयोग प्रचुरता स होने लगा। ग्रन्थ लेखन मे वस्त्र का उपयोग भी कभी-कभी होता था, परन्तु पत्राकार तो पाटण भण्डारस्थ म 1410 की धर्म विधि आदि की प्रति के अलावा टिप्पणाकार एव चित्रपट आदि मे प्रचुर परिमाण मे उसका उपयोग होना पाया जाता है। हमारे सग्रह मे ऐसे कई ग्रन्थादि हैं। ताडपत्र और वस्त्र पर ग्रन्थ लेखन का उल्लेख अनुयोग चूर्णि तथा टीका में है।

पुस्तक लेखन के साधन .

जैनागम यद्यपि गणधर व पूर्वधर आचार्यों द्वारा रचित हैं। इनका लेखनकाल विक्रम स. 500 निर्णीत है। उपाग सूत्र राजप्रश्नीय मे देवताओं के पढने के सूत्र का जो वर्णन आता है वह समृद्धि पूर्ण होते हुए भी तत्कालीन लेखन सामग्री और ग्रन्थ के प्रारूप का सुन्दर प्रतिनिधित्व करता है। इस सूत्र मे लिखा है कि पुस्तक-रत्न के सभी साधन स्वर्ण और रत्नमय होते है। यत:-

'तस्स णं पोत्थ रयणस्स इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, त जहा रयणमयाइ पत्तगाइ, रिट्ठामई कंबियाओ, तवणिज्जमए दोरे, नाणामणिमए गठी, वेरुलिय-मणिमए लिप्पासणं, रिट्ठामए छदणे, तवणिज्जमई सकला, रिट्ठामई मसी, वइरामई लेहणी, रिट्ठामयाई अक्खराइ, धम्मिए सत्थे।' (पृष्ठ 96)

प्रस्तुत उल्लेख में लेखन कला से सम्बन्धित पत्र, कांबिका, डोरा, ग्रन्थि-गाठ, लिप्यासन-दवात, छदणय(ढक्कन), सांकल, मषी-स्याही और लेखनी साधन है। ये-1-जिस रूप मे ग्रन्थ लिखे जाते थे, 2-लिखने के लिए जो उपादान होता, 3-जिस स्याही का उपयोग होता और, 4-लिखित ग्रन्थों को कैसे रखा जाता था, इन बातो का विवरण है।

पत्र--जिस पर ग्रन्थ लिखे जावें उसे पत्र या पन्ना कहते हैं । पत्र-वृक्ष के पत्ते ताडपत्र, भोज पत्रादि का और बाद मे कागज का उपयोग होता था, पर बाधने आदि के साधन से विदित होता है कि वे पत्ते अलग अलग खुले होते थे ।

कबिका--ताडपत्रीय ग्रन्थ के सरक्षण के लिए रखी जाने वाली काष्ठपट्टिका को आगे काबी कहा जाता था । आजकल जो बाद की बनी हुई कबिका प्रयोग मे आती है वह बास, लकडी, हाथीदांत आदि की चीप होती है, जिस पर हाथ रखने से पन्नो पर पसीने के दाग आदि न लगें । रेखा खीचने के लिए भी उसका उपयोग होता व कुछ चौड़ी पट्टियो पर पत्र रखकर पढने के उपयोग में भी आती थीं ।

डोरा--ताडपत्रीय ग्रन्थो के पन्ने चौड़ाई मे सकडे और लम्बाई में अधिक होने से वे एक दूसरे से सलग्न न रहकर अस्त-व्यस्त हो जाते है , इसलिए उन्हे व्यवस्थित रखने के लिए बीच में छेदकर बाध देना अनिवार्य था । बाधने के लिए डोरे का प्रयोग होता और उस लबे डोरे को फिर कसकर बाध देते जिसमे वह दोनो पुट्ठो-काष्ठफलको के बीच कसा हुआ सुरक्षित रहता । ताडपत्रीय ग्रन्थो के पश्चात् जब कागजो पर लिखने की प्रथा हो गई तो भी उसके मध्य में छेद करके डोरा पिरोया जाता । वह अनावश्यक होने पर भी ताडपत्रीय पद्धति कायम रही और मध्य भाग मे चौरस या वृत्ताकार रिक्त स्थान छांड दिया जाता था । यह प्रथा उन्नीसवी शती तक चलती रही । फिर भले ही उसमे अलकरण का रूप ताडपत्रीय ग्रन्थो की स्मृति रूढिमात्र रही हो ।

ग्रन्थि--ताडपत्रीय पुस्तक मे डोरा पिरोने के बाद वे निकल न जाए तथा ग्रन्थ नष्ट न हो जाए इसलिए हाथीदात, सीप, काष्ठ आदि के चपटे वाशर लगाए जाते थे जिसे ग्रथी कहते थे ।

लिप्यासन--शब्दार्थ के अनुसार तो इसका अर्थ लेखन के उपादान कागज, ताडपत्रादि होता है परन्तु आचार्य मलयगिरि ने इसका अर्थ मषि-भाजन अर्थात् दवात किया है। गुजरात में खडिया कहते हैं, राजस्थान मे विज्जासणा कहते थे । कविवर समयसुन्दरजी ने मजीसणा शब्द का प्रयोग किया है, पर सबका आशय इकपाट (Ink-pot) से है । विज्जासणा-विद्यासन और मजीसणा-मषीआसन, मषीभाजन मे बना प्रतीत होता है ।

छदण और साकल--दवात के ऊपर ढक्कन जो लगाया जाता है उसे छंदण (आच्छादन) कहते हैं तथा उसे सम्बन्धित रखने वाली साकल होती है जो दवात से ढक्कन को सलग्न रखती है पुरानी पीतल आदि की भारी भरकम शिखरबद्ध ढक्कनवाली दवाते आज भी कही-कही देखने को मिलती है ।

मषी--अक्षरो को साकार रूप देने वाली मषी-स्याही है। मषी शब्द कज्जल का द्योतक है जो काली स्याही का उपयोग सूचित करता है । रायपसेणी सूत्र का 'रिट्ठामई मसी' और अक्षर रिष्ट रत्न के श्याम वर्ण होने से उसी का समर्थन करते हैं । आजकल दूसरे सभी रगो के साथ काली स्याही शब्द प्रयोग में आता है ।

लेखनी--जिसके द्वारा शास्त्र लिखे जाए उसे लेखनी कहते है। साधारणतया कलम ही लिखने के काम में आती थी पर दक्षिण भारत, उडीसा और बर्मा की लिपियो को ताडपत्र पर लिखने के लिए लोह लेखनी का आज भी उपयोग होता है पर कागज और उत्तर भारत के ताडपत्रादि पर लिखने वाली कलम का ही यहा आशय समझना चाहिए । यो बगाल आदि मे पक्षियो की पाख से भी लिखा जाता है ।

लेखन उपादान के प्रकारान्तर :

जैसे आजकल छोटी-बड़ी विविध आकार की पुस्तकें होती हैं उसी प्रकार प्राचीन काल में विविध आकार-प्रकार की पुस्तकें होने के उल्लेख दशवैकालिक सूत्र की हरिभद्रीय टीका, निशीथ-चूर्णि, बृहत्कल्पसूत्र वृत्ति आदि में पाये जाते हैं। यहां उनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है:—

गडी पुस्तक —चौड़ाई और मोटाई में समान किन्तु विविध लंबाई वाली ताडपत्रीय पुस्तक को गडी कहते हैं। इस पद्धति के कागज के ग्रन्थो का भी इसी में समावेश होता है।

कच्छपी पुस्तक —जिस पुस्तक के दोनो किनारे संकडे तथा मध्य में कछुए की भांति मोटाई हो उसे कच्छपी पुस्तक कहते हैं। यह आकार कागज के गुटको मे तो देखा जाता है पर ताडपत्रीय ग्रन्थों में नही देखा जाता।

मुष्टि पुस्तक —जो पुस्तक चार अंगुल लम्बी और गोल हो, मुट्ठी मे रख सकने योग्य पुस्तक को मुष्टि पुस्तक कहते है। छोटी-मोटी टिप्पणकाकार पुस्तके व आज की डायरी का इसी में समावेश हो जाता है।

संपुट फलक —व्यवहार पीठिका गा 6 की टीका व निशीथ चूर्णि के अनुसार काष्ठफलक पर लिखे जाने वाले पुस्तक को कहते है। विविध यंत्र, नक्शे, समवसरणादि चित्रो को जो काष्ठ संपुट मे लिखे जाए वे इसी प्रकार मे समाविष्ट होते है।

छेद पाटी.—थोड़े पन्नो वाली पुस्तक को कहते थे, जिस प्रकार आज कागजों पर लिखी पुस्तकें मिलती हैं। उनकी लम्बाई का कोई प्रतिबन्ध नही, पर मोटाई कम हुआ करती थी।

उपर्युक्त सभी प्रकार विक्रम की सातवी शताब्दी तक के लिखित प्रमाण मे बतलाए हैं जब कि उस काल की लिखी हुई एक भी पुस्तक आज उपलब्ध नही है। वर्तमान मे जितने भी ग्रन्थ उपलब्ध है, पिछले एक हजार वर्षो तक के प्राचीन हैं। अत इस काल की लेखन सामग्री पर प्रकाश डाला जा रहा है।

लिप्यासन.—लेखन उपादान, लेखनपात्र-ताडपत्र, वस्त्र, कागज इत्यादि। जैसा कि ऊपर बतलाया है राजप्रश्नीय सूत्र मे इसका अर्थ मषीभाजन रूप मे लिया पर यहा ताडपत्र, वस्त्र, कागज, काष्ठपट्टिका, भोजपत्र, ताम्रपत्र, रौप्यपत्र, सुवर्णपत्र, पत्थर आदि का समावेश करते है। गुजरात, राजस्थान, कच्छ और दक्षिण में स्थित ज्ञान भण्डारो में जो भी ताडपत्रीय ग्रन्थ उपलब्ध है, तेरहवी शती से पूर्व ताडपत्र पर ही लिखे मिलते हैं। बाद मे कागज का प्रचार अधिक हो जाने से उसे भी अपनाया गया। मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी के समय विक्रम स. 1204 का 'ध्वन्यालोकलोचन' ग्रन्थ उपलब्ध है पर टिकाऊ होने के नाते ताडपत्र ही अधिक प्रयुक्त होते थे। महाराजा कुमारपाल और वस्तुपाल तेजपाल के समय में भी कुछ ग्रन्थ कागज पर लिखे गए थे, फिर भी भारत की जलवायु में अधिक प्राचीन ग्रन्थ टिक न रह सकते थे, जबकि जापान मे तथा यारकन्द नगर के दक्षिण 60 मील पर स्थित कुगियर स्थान से भारतीय लिपि के चार ग्रन्थ वेबर साहब को मिले, जिन्हे ईसा की पाचवी शती का माना जाता है। ताडपत्रीय ग्रन्थों मे सबसे प्राचीन एक त्रुटित नाटक की प्रति का 'भारतीय प्राचीन लिपि माला' में उल्लेख किया है जो दूसरी शताब्दी के आसपास की मानी गई है। ताडपत्रों मे खास करके श्रीताल के पत्र का उपयोग किया जाता था। कुमारपाल प्रबन्ध के अनुसार श्रीताल दुर्लभ हो जाने से कागज का प्रचार हो गया। पाटण भण्डार के एक विकीर्ण ताडपत्र के उल्लेखानुसार एक पत्र का मूल्य छ. आना पड़ता था।

वस्त्र पर लिखे ग्रन्थों में धर्मविधि प्रकरण वृत्ति, कच्छूली रास और त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र (अष्टम पर्व) की प्रति पत्राकार पायी जाती है जो 25×5 इंच की लम्बी चौड़ी है परन्तु लोकनालिका, अढ़ाई द्वीप, जम्बूद्वीप, नवपद, ह्रींकार, घण्टाकर्ण, पंचतीर्थीपट आदि के वस्त्रपट चित्र प्रचुर परिमाण में पाये जाते हैं। सिद्धाचलजी के पट तो आज भी बनते हैं और प्राचीन भी ज्ञान भण्डारो मे बहुत से है। जम्बूद्वीप आदि के पटो मे सबसे बड़ा पट कलकत्ता जैन मन्दिर मे है जो 16×16 फुट माप का है। टिप्पणकाकार मे बने कर्मप्रकृति, बारह व्रत टीप, अनानुपूर्वी, शत्रुंजय यात्रापट आदि एक दो फुट से लेकर 30-30 फुट जितने लम्बे पाए जाते है। पाटण भण्डार का संग्रहणी टिप्पणक स 1453 का लिखा हुआ 166X11½ इंच का है। पन्द्रहवी शताब्दी तक के प्राचीन कई पत्रतीर्थी पट भी पाए गए है।

भोजपत्र पर बौद्ध और वैदिक लोग अधिकाश लिखा करते थे, जैन ग्रन्थ अद्यावधि एक भी भोजपत्र पर लिखा नही मिलता। हा, यति लोगों ने पिछले दो-तीन सौ वर्षों मे यत्र-तत्र-यन्त्रो मे उसका उपयोग भले किया हो। बौद्ध ग्रन्थ धम्मपद व सयुक्तागम अवश्य ही भोजपत्र पर लिखे दूसरी से चौथी शताब्दी के माने गए है।

शिलापट्ट पर लिखे जैनेतर नाटकादि अनेक ग्रन्थ पाए जाते हैं पर जैन ग्रन्थों मे उन्नति-शिखर पुराण स 1226 का लिखा हुआ बीजोल्या मे है। श्री जिनवल्लभसूरिजी ने चित्रकूटीय प्रशस्ति आदि ग्रन्थ खुदवा कर मन्दिरों में लगवाये थे। इसके सिवा मन्दिरो के प्रतिष्ठा लेख, विस्तृत श्लोकबद्ध प्रशस्ति काव्य, कल्याणक पट, तप पट्टिका, स्थविरावली पट्टक, लोकनाल, ढाई द्वीप, शतदलपद्म यत्र पट्टक, समवशरण पट्ट, नंदीश्वर पट्ट, शत्रुंजय गिरनारादि पट्ट प्रचुर परिमाण मे बने पाए जाते हैं। बीसवी शताब्दी मे सागरानन्दसूरिजी ने पालीताना एव सूरत के आगम मन्दिरों मे सभी आगम मार्बल एव ताम्रपट्टो पर लिखवा दिए है तथा वर्तमान मे समयसारादि दिगम्बर ग्रन्थ भी लिखवाए जा रहे है।

ताम्रपत्र, रौप्यपत्र, स्वर्णपत्र, कास्यपत्र, पचधातु पत्रादि का प्रयोग अधिकाश मंत्र और यन्त्र लेखन मे हुआ है। राजाओ के दानपत्र ताम्रपत्रो पर लिखे जाते थे। जैन शैली मे नवपद यत्र, विशतिस्थानक यत्र, घण्टाकर्ण, ऋषिमण्डल आदि विविध प्रकार के यन्त्र आज भी लिखे जाते है और मन्दिरो मे पाए जाते है। ताम्रपत्र पर ग्रन्थ लेखन का उल्लेख वसुदेवहिण्डी जैसे प्राचीन ग्रन्थ मे पाया जाता है। सूरत के आगम-मन्दिर मे ताम्र पर शास्त्र लिखाए गए हैं।

बौद्धो ने हाथी दात आदि का उपयोग ग्रन्थ लेखन मे किया है, पर जैनो मे उसके काबी, ग्रन्थी, दाबडा एव स्थापनाचार्य (ठवणी) रूप मे किया है, पर ग्रन्थ लेखन मे नही। इसी प्रकार से चमडे के सम्बन्ध मे समझना चाहिए। ग्रन्थो के पूठे, पटडी, दाबड़े आदि मे उसका उपयोग हुआ है पर ग्रन्थ-लेखन मे नही।

वृक्ष की छाल का उपयोग जैनेतर ग्रन्थों में प्राप्त हुआ है। अगुरु छाल पर सं 1770 मे लिखी हुई ब्रह्मवैवर्त पुराण की प्रति बडौदा के ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट मे है। हमारे सग्रह मे कुछ बगला लिपि के ऐसे ग्रन्थ है जिनमे लकडी के फलक का उपयोग हुआ है तथा उनके पूठे वृक्ष की छाल व बास पट्टी के बने हुए है। जैन ग्रन्थो में ऐसे उपादानों का उपयोग नही हुआ है।

ताड़पत्र.—ये ताल या ताड़ वृक्ष के पत्ते है। ताड़ वृक्ष दो प्रकार के होते है (1) खरताड़ और (2) श्रीताड़। खरताड़ के पत्ते लम्बाई और चौड़ाई मे छोटे और चटक जाने वाले अल्पायु के होते हैं अत. इनका उपयोग ग्रन्थ लेखन मे नही होता। श्रीताड़ के वृक्ष मद्रास,

ब्रह्मदेश आदि में होते हैं जिसके पत्ते बडे चिकने, लचीले और टिकाऊ होते हैं। ये ताड़पत्र ग्रन्थ-लेखन मे काम आते है। इन्हें प्रौढ हो जाने पर सीधे करके एक साथ जमीन में डाल कर सुखाए जाते हैं जिससे इनका रस धूप के साथ न उड़ कर उसी मे रहता है और कोमलता आ जाती है। ये पत्ते लम्बाई में 37 इंच तक के मिलते है। पाटण के भण्डार की प्रमेयकमल-मार्त्तण्ड की प्रति 37 इच लम्बी है।

कागज ––इसे संस्कृत मे कागद या कद्गल नाम से और गुजराती मे कागल नाम से सम्बोधित किया है। जैसे आजकल विविध प्रकार के कागज आते है, प्राचीन काल मे भी भिन्न-भिन्न देशो मे बने विविध प्रकार के मोटे पतले कागज होते थे। काश्मीर, दिल्ली, बिहार, मेवाड़, उत्तर प्रदेश (कानपुर), गुजरात (अहमदाबाद), खंभात, देवगिरि (कागजीपुरा), उड़ीसा (बालासोर) आदि के विविध जाति के कागजो मे विशेषत काश्मीरी, कानपुरी, अहमदाबादी व्यवहार मे आते है। काश्मीरी कागज सर्वोत्तम होते हैं। प्राचीन ज्ञान भण्डारों मे प्राप्त 14वी, 15वी शताब्दी के कागज आज के से बने हुए लगते हैं पर 18वी, 19वीं शताब्दी के कागजो मे टिकाऊपन कम है। मिल के कागज तो बहुत कम वर्ष टिक पाते हैं।

कागज काटना ––आजकल की भांति इच्छित माप के कागज न बनकर प्राचीन काल मे बने छोटे-मोटे कागजों को पेपर कटिंग मशीनों के अभाव में अपनी आवश्यकतानुसार काटना होता था और उन्हे बास या लोहे की चीपो मे देकर हाथ से काटा जाता था।

घोटाई ––ग्रन्थ लेखन योग्य देशी कागजो को घोटाई करके काम में लेते थे जिससे उनके अक्षर फूटते नही थे। यदि बरसात की सील से पॉलिश उतर जाती तो उन्हे फिर से घोटाई करनी होती थी। कागजो को फिटकडी के जल मे डुबो कर अधसूखा होने पर अकीक, कसौटी आदि के घूटे-ओपणी से घोट कर लिखने के उपयुक्त कर लिए जाते थे। आजकल के मिल कारखानों के निर्मित कागज लिखने के काम नही आते। वे दीखने मे सुन्दर और चमकदार होने पर भी शीघ्र गल जाते है।

वस्त्रपट ––कपड़े पर यन्त्र, टिप्पण आदि लिखने के लिए उसे गेहूं या चावल की लेई द्वारा छिद्र बन्द होने पर, सुखाकर के घोटाई कर लेते। जिस पर चित्र, यंत्र, ग्रन्थादि सुगमता से लिखे जा सकते थे। पाटण भण्डार के वस्त्र पर लिखित ग्रन्थ खादी को दुहरा चिपका कर लिखा हुआ है।

टिप्पणक ––जन्म कुण्डली, अणुपुर्वी, विज्ञप्ति-पत्र, बारहव्रतटीप आदि Serole कागज के लीरों को चिपका करके तैयार करते तथा कपडे के लम्बे थान मे वे आवश्यकतानुसार बना कर उसके साथ चिपका कर या खाली कागज पर लिखे जाते थे, जिन पर किए हुए चित्रादि सौ-सौ फीट लम्बे तक के पाए जाते हे।

काष्ठ पट्टिका.––काष्ठ की पट्टिया कई प्रकार की होती थी। काष्ठ की पट्टियों को रंग कर उस पर वर्णमाला आदि लिखी हुई 'बोरखा पाटी' पर अक्षर सीखने-जमाने मे काम लेते थे। खड़ी मिट्टी के घोल से उस पर लिखा जाता था तथा ग्रन्थ निर्माण के कच्चे खरड़े भी पाटियो पर लिखे जाते थे। उत्तराध्ययन वृत्ति (स 1129) को नेमिचन्द्राचार्य ने पट्टिका पर लिखा था जिसे सर्वदेव गणि ने पुस्तकारूढ़ किया था। खोतान प्रदेश मे खरोष्टी लिपि मे लिखित कई प्राचीन काष्ठ पट्टिकाए प्राप्त हुई हैं।

लेखनी:—आजकल लेखन कार्य फाउण्टेनपैन, डॉटपेन आदि द्वारा होने लगा है पर पहले होल्डर, पैन्सिल आदि का अधिक प्रचार था। इससे पूर्व बास, बेंत, दालचीनी के अष्ट इत्यादि से लिखा जाता था। आजकल उसकी प्रथा अल्प रह गई है, पर हस्तलिखित ग्रन्थों को लिखने में आज भी कलम का उपयोग होता है। कागज, ताड़पत्र पर लिखने के उपयुक्त ये लेखनियां थी, पर कर्नाटक, सिंहल, उत्कल, ब्रह्मदेशादि मे जहां उत्कीर्णित करके लिखा जाता है वहां लोहे की लेखनी प्रयुक्त होती थी। कागजो पर यत्र व लाइनें बनाने के लिए जुजवल का प्रयोग किया जाता था जो लोहे के चिमटे के आकार की होती थी। लोह लेखनी में दोनों तरफ ये भी लगे रहते थे। आजकल के होल्डर की निबें इसी का विकसित रूप कहा जा सकता है। कलमो के घिस जाने पर उसे चाकू से पतला कर लिया जाता था तथा बीच मे खड़ा चीरा देने से स्याही उसमे से उतर आने मे सुविधा होती है। निबो मे यह प्रथा कलम के चीरे का ही रूप है। लेखनियो के शुभाशुभ कई प्रकार के गुण दोषो को बताने वाले श्लोक पाए जाते हैं जिनमे उनकी लम्बाई, रग, गाठ आदि से ब्राह्मणादि वर्ण, आयु, धन, संतानादि हानि वृद्धि आदि के फलाफल लिखे है। उनकी परीक्षा पद्धति, ताड़पत्रीय युग की पुस्तकों से चली आ रही है। रत्न-परीक्षा मे रत्नो के श्वेत, पीत, लाल और काले रग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की भाति लेखनी के भी वर्ण समझना चाहिए। इसका कैसे उपयोग व किस प्रकार करना, इसका पुराना विधान तत्कालीन विश्वास व प्रथाओं पर प्रकाश डालता है।

वतरणा—लेखनी-कलम की भाति यह शब्द भी लिखने के साधन का द्योतक है। लिपि को लिप्यासन पर 'अवतरण' करने के संस्कृत शब्द से यह शब्द बनना संभव है। काठ की पाटी जिसे तेलिया पाटी कहते थे, धूल डाल कर लिखने का साधन वतरणा था। फिर स्लेट की पाटी पर व टीन व गत्ते की पाटी पर लिखने की स्लेट पैसिल को भी भाषा मे वतरणा कहते हैं। ललितविस्तर के लिपिशाला सदर्शन परिवर्त मे 'वर्णातिरक' शब्द से वतरणा बनने का कुछ लोग अनुमान करते हैं।

जुजबल—इस विषय मे ऊपर लेखनी के सदर्भ मे लिखा जा चुका है। इसका स्वतत्र अस्तित्व था और संस्कृत 'युगबल' शब्द से इसकी व्युत्पत्ति सभव है। यह चिमटे के आकार की दोनों ओर लगी लेखनी वाली लोह लेखनी थी। पुराने लहिये इसका प्रयोग लेखन समय मे हांसिया आदि की लाल लकीरे खीचने मे किया करते थे।

प्राकार:—चित्रपट, यत्र आदि लेखन मे गोल आकृति बनाने मे आजकल के कम्पास की भांति प्रयोग मे आता था। विविध शिल्पी लोग भी इसका उपयोग करते है।

ओलिया फांटिया.—कागज की प्रतिया लिखते समय सीधी लकीरे जिसके प्रयोग में आती है वह गुजरात मे ओलिया व राजस्थान मे फाटिया कहलाता है। लकड़ी के फलक या गत्ते के मजबूत पूठे पर छेद कर मजबूत सीधी डोरी छोटे-बडे अक्षरो के चौड़े-सकडे अन्तरानुसार उभय पक्ष में कसकर बाध दी जाती है और उस पर इमली, चावल या रग-रोगन लगाकर तैयार किये फाटिये पर कागज को रख कर अंगुलियो द्वारा टान कर लकीर चिन्हित कर ली जाती है। ताडपत्रीय प्रतियो पर फाटिये का उपयोग न होकर छोटी-सी बिन्दु सीधी लकीर आने के लिए कर दी जाती थी। श्रावकातिचार मे लेखन-ज्ञानोपकरण मे इसे ओलिया लिखा है। राजस्थान मे आजकल कागज के लम्बे टुकड़ो को ओलिया कहते हैं जिस पर चिट्ठी लिखी जाती है।

कबिका—ताडपत्रीय लेखनोपकरण के प्रसंग में ऊपर कांबी के विषय मे बतलाया जा चुका है। आजकल फुट की भांति चपटी होने से माप करके हांसिये की लकीर खीचने व ऊपर अंगुलियां रख कर लिखने के प्रयोग मे आने वाला यह उपकरण है। यह बांस, हाथीदांत या चन्दन काष्ठादिक की होती है।

लिपि की स्वरूप दर्शिका—स्याही या रंग :—पुस्तक लिखने के अनेक प्रकार के रंग या स्याही मे काला रग प्रधान है। सोना, चांदी और लाल स्याही से भी ग्रन्थ लिखे जाते हैं पर सोना, चांदी की महर्घ्यता के कारण उसका प्रयोग अत्यल्प परिमाण मे ही विशिष्ट शास्त्र लेखन मे श्रीमन्तो द्वारा होता था। लाल रंग का प्रयोग बीच-बीच मे प्रकरण समाप्ति व हासिए की रेखा मे तथा चित्रादि आलेखन में सभी रंगो का प्रयोग होता था। एक दूसरे रग के मिश्रण द्वारा कई रग तैयार हो जाते हैं। पूर्व काल मे ताड़पत्र, कागज आदि पर लेखन हेतु किस प्रकार स्याही बनती थी ? इस पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जाता है। ताड़-पत्र काष्ठ की जाति है, जब कि कागज व वस्त्र उससे भिन्न है। अत. प्रकृति भिन्नता के कारण तदनुकूल स्याही की रासायनिक विधि भिन्न होना स्वाभाविक है। आजकल ताड़-पत्र लेखन प्रचलित न होने से उसकी स्याही का स्वरूप प्राचीन उल्लेखो पर आधारित है।

प्रथम प्रकार:—काटोसेरिया (धमासा), जल भागरा का रस, त्रिफला, कसीस, लोहचूर्ण को उकाल कर, क्वाथ बना कर, गली के रस को बराबर परिमाण मे मिला कर, काजल व बीजा-बोल मिलाने से ताड़-पत्र लेखन-योग्य स्याही बनती है। इन्हे ताबे की कढाई मे घोट कर एक रस कर लेना चाहिए।

द्वितीय प्रकार:—काजल, पोयण, बीजाबोल, भूमितला, जलभागरा और पारे को उबलते हुए पानी में मिला कर, ताबे की कढ़ाई मे सात दिन तक घोट कर एक रस कर लेना। फिर उसकी बड़िया बना लेना। उन्हे कूट कर रखें। फिर जब आवश्यक हो उन्हे गरम पानी मे खूब मसल कर स्याही कर लेना।

तृतीय प्रकार—कोरे काजल को मिट्टी के कोरे सिकोरे मे अंगुली से मसल कर उसकी चिकनाई मिटा देना। थोडे से गोमूत्र मे भिगो देने से भी चिकनास मिट जाती है। फिर उसे निब या खैर के गूद के साथ बीआरम मे भिगो कर खूब घोटना। फिर बड़ी सुखा कर ऊपर की भाति करना।

चतुर्थ प्रकार—गूद, नीब के गूद से दुगुना बीजाबोल, उससे दुगुना काजल (तिल के तेल से पाड़ा हुआ) को घोट कर गोमूत्र के साथ आच देना, पात्र ताम्र का होना चाहिए। सूखने पर थोड़ा-थोड़ा पानी देते रहे व पाच तोला एक दिन परिमाण से घोट कर लोद, साजीखार युक्त लाक्षारस मिलाना। गोमूत्र मे धोये भीलामा घूटा के नीचे लगाना। फिर काले भागरा के रस के साथ मर्दन करने से उत्तम स्याही बनती है।

पचम प्रकार—ब्रह्मदेश, कर्णाटक, उल्कलादि देशो में ताडपत्र लोहे की सूई से कोर कर लिखे जाते है। उनमे अक्षरो में काला रग लाने के लिए नारियल की टोपसी या बादाम के छिलकों को जला कर, तेल मे मिला कर लगा देना। पोछने से ताड़-पत्र साफ हो जाएगा। अक्षरों मे कालापन आ जायेगा।

कागज और कपड़ो पर लिखने योग्य काली स्याही

(१) जितना काजल उतना बोल, तेथी दूणा गूद झकोल।
जो रस भांगरा नो पड़े, तो अक्षरे अक्षरे दीवा बले॥

(२) काजल से आधा गूंद, गूंद से आधा बीजाबोल, लाक्षारस, बीयारस के साथ तांबे के भाजन में मर्दन करने से काली स्याही होती है।

(3) बीजाबोल ग्रनइ लक्खारस, कज्जल वज्जल नइ ग्रंबारस ॥
भोजराज मिसी निपाई । पानउ फाटइ मिसी नवि जाई ॥

(4) लाख टाक बीस मेल, स्वाग टांक पांच मेल,
नीर टाक दो सौ लेई हांडी मे चढ़ाइये।
जो लौं ग्राग दीजें तो लौ ग्रौर खार सब लीजे,
लोद खार बाल वाल पीस के रखाइये।
मीठा तेल दीप जार काजल सोले उतार,
नीकी विधि पिछानी के ऐसे ही बनाइये।
चाहक चतुर नर लिख के ग्रनूप ग्रन्थ,
बाच बाच बांच रिझरिझ मौज पाइये।

(5) स्याही पक्की करने की विधिः—लाख चोखी या चीपड़ी पैसा 6, तीन सेर पानी मे डालना, सुहागा पैसा 2 डालना, लोद पैसा 3, पानी तीन पाव, फिर काजल पैसा 1 घोट के सुखा देना। फिर शीतल जल मे भिगो कर स्याही पक्की कर लेना।

(6) काजल 6 टाक, बीजाबोल 12 टाक, खेर का गूद 36 टाक, ग्रफीम ग्राधा टाक, ग्रलता पोथी 3 टाक, फिटकड़ी कच्ची 0॥ टाक, नीम के घोटे से 7 दिन ताम्रपात्र मे घोटना।

इन सभी प्रकारो मे प्रथम प्रकार उपयोगी ग्रौर सुसाध्य है। कपडे के टिप्पणक के लिए बीजाबोल से दुगुना गूद, गूद से दुगुनो काजल मिली स्याही दो प्रहर मर्दन करने से वज्रवत् हो जाती है।

सुन्दर ग्रौर टिकाऊ पुस्तक लेखन के लिए कागज की श्रेष्ठता जितनी ग्रावश्यक है उतनी ही स्याही की भी है। ग्रन्यथा प्रमाणोपेत विधिवत् न बनी हुई स्याही के पदार्थ रसायनिक विकृति द्वारा कागज को गला देती है, चिपका देती है, जर्जर कर देती है। एक ही प्रति के कई पन्ने ग्रच्छी स्थिति मे होते है ग्रौर कुछ पन्ने जर्जरित हो जाते है, इसमे लहिया लोगो की ग्रज्ञानता से या ग्रादतन गाढी स्याही करने के लिए लोह चूर्ण, बीयारस ग्रादि डाल देते हैं जिससे पुस्तक काली पड़ जाती है, विकृत हो जाती है।

सुनहरी रूपहली स्याही.

सोना ग्रौर चादी की स्याही बनाने के लिए वर्क को खरल मे डाल कर धव के गूद के स्वच्छ जल के साथ खूब घोटते जाना चाहिए। बारीक चूर्ण हो जाने पर मिश्री का पानी डाल कर खूब हिलाना चाहिए। स्वर्ण चूर्ण नीचे बैठ जाने से पानी को धीरे-धीरे निकाल देना चाहिए। तीन चार बार धुलाई पर गूद निकल जाएगा ग्रौर सुनहरी या रूपहली स्याही तैयार हो जाएगी।

लाल स्याही

हिंगुल को खरल में मिश्री के पानी के साथ खूब घोट कर ऊपर ग्राते हुए पीलास लिए हुए पानी को निकाल देना। इस तरह दस पन्द्रह बार करने से पीलास निकल कर शुद्ध लाल रग हो जाएगा। फिर उसे मिश्री ग्रौर गूद के पानी के साथ घोट कर एकरस कर लेना। फिर सुखा कर टिकड़ी की हुई स्याही को ग्रावश्यकतानुसार पानी मे घोल कर काम मे लेना चाहिए। मिश्री के पानी की ग्रपेक्षा नीबू का रस प्रयुक्त करना ग्रधिक उपयोगी है।

ग्रष्टगन्ध :

ग्रगर, तगर, गोरोचन, कस्तूरी, रक्त चन्दन, चन्दन, सिंदूर ग्रौर केशर के मिश्रण से ग्रष्ट-

गन्ध बनता है। कपूर, कस्तूरी, गोरोचन, सिगरफ, केशर, चन्दन, अगर, गेहूला से भी अष्टगन्ध बनाया जाता है।

यक्षकर्दम :

चन्दन, केशर, अगर, बरास, कस्तूरी, मरचककोल, गोरोचन, हिंगुल, रतजन, सुनहरे वर्क और अबर के मिश्रण से यक्षकर्दम बनता है।

अष्टगन्ध और यक्षकर्दम गुलाब जल के साथ घोटते है और इनका उपयोग मत्र, यत्र, तत्रादि लिखने मे, पूजा प्रतिष्ठादि मे काम आता है।

मषी-स्याही शब्द काले रग की स्याही का द्योतक होने पर भी हर रग के साथ इसका वचन प्रयोग-रूढ हो गया। लाल स्याही, सुनहरी स्याही, हरी स्याही आदि इसी प्रकार बगाल मे लाल काली, ब्लूकाली आदि कहते है। स्याही और काली शब्द ये हरेक रग वाली लिपि की स्वरूप दर्शिका के लिए प्रयुक्त होते है।

चित्रकला के रग

सचित्र पुस्तक लेखन मे चित्र बनाने के लिए ऊपर लिखित काले, लाल, सुनहरे, रुपहले रगो के अतिरिक्त हरताल और सफेदा का भी उपयोग होता था। दूसरे रगो के लिए भी विधि है। हरताल और हिंगुल मिलाने पर नारगी रग, हिंगुल और सफेदा मिलाने से गुलाबी रग, हरताल और काली स्याही मिल कर नीला रग बनता था।

(1) सफेदा 4 टाक व पेवडी 1 टाक व सिंदूर 1॥ टाक से गौर वर्ण।
(2) सिंदूर 4 टाक व पोथी गली 1 टाक से खारिक रग।
(3) हरताल 1 टाक व गली आधा टाक से नीला रग।
(4) सफेदा 1 टाक व अलता आधा टाक से गुलाबी रग।
(5) सफेदा 1 टाक व गली 1 टाक से आसमानी रग।
(6) सिंदूर 1 टाक व पेवडी आधा टाक से नारगी रग होता है।

हस्तलिखित ग्रन्थ पर चित्र बनाने के लिए इन रगो के साथ गोंद का स्वच्छ जल मिलाया जाता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न चित्रकला के योग्य रगो के निर्माण की विधि के पचासों प्रयोग पुराने पत्रो मे लिखे पाये जाते है।

जैन लिपि की परम्परा

भगवान् महावीर का विहार अधिकाश बिहार प्रान्त (अग-मगध-विदेह आदि), बगाल और उत्तर प्रदेश मे हुआ था। अत वे अर्द्धमागधी भाषा मे उपदेश देते थे। जैनो का सम्बन्ध मगध से अधिक था। जैनागमो की भाषा प्राकृत है, दिगम्बर साहित्य सौरसेनी प्राकृत मे और श्वेताम्बर आगम महाराष्ट्री प्राकृत मे है। जिस प्रकार अन्य भाषाए प्राकृत से अपभ्रश के माध्यम से हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती आदि हुई, इसी प्रकार बगला भाषा और लिपि का उद्गम प्राकृत से हुआ है। मगध से पड़ी मात्रा का प्रयोग बगला मे गया। जब बारह वर्षी दुष्काल पडे तो जैन श्रमण सघ दक्षिण और पश्चिम देशो मे चला गया, परन्तु अपनी लिपि ब्राह्मी से गुप्त, कुटिल और देवनागरी के विकास में ब्राह्मी-देवनागरी मे ब्राह्मी-बगला का प्रभाव लेता गया। यही कारण है कि सैकडो वर्षो तक पडी मात्रा का जैनो मे प्रचलन रहा। बंगला

लिपी में आज भी पड़ी मात्रा है । अत. प्राचीन जैन लिपि के अभ्यासी के लिए बंगला लिपि का ज्ञान बड़ा सहायक है ।

जिस प्रकार ब्राह्मी-देवनागरी लिपि मे जलवायु-देशपद्धति और शिक्षक द्वारा प्रस्तुत अक्षर जमाने के उपकरणो की लिपि विविधता, रुचि-भिन्नता के अन्यान्य मरोड के कारण अनेक रूपो मे प्रान्तीय लिपिया विभक्त हो गई, उसी प्रकार जैन लिपि मे भी यतियो की लिपि, खरतर-गच्छीय लिपि, मारवाड़ी लहियो की लिपि, गुजराती लहियो की लिपि-परम्परा पायी जाती है। कोई गोल अक्षर, कोई खडे अक्षर, कोई बैठे अक्षर, कोई हलन्त की भांति पूछ वाले अक्षर, तो कोई कलात्मक अलकृताक्षर, कोई टुकडे-टुकड़े रूप मे लिखे व कोई घसीटवे अक्षर लिखने के अभ्यस्त थे। एक ही, शताब्दी के लिए ब्राह्मण, कायस्थादि की लिपि मे तो जैन लिपि से महद् अन्तर है ही परन्तु जैन लिपि मे भी लेखनकाल निर्णय करने मे बहुत सावधानी और सतर्कता आवश्यक है ।

लेखन सौष्ठव

सीधी लकीर मे सघन गोल, एक दूसरे मे अलग्न, शीर्ष-मात्रादि अखण्ड एक जैसे, न खाली, न भीड-भाड वाले अक्षर लिखने वाले लेखक भी आदर्श और उनकी लिपि भी आदर्श कहलाती है। जैन शैली मे इस ओर विशेष ध्यान दिया है जिससे पिछली शताब्दियो मे क्रमश लेखनकला विकसित होती गई थी ।

लिपि का माप.——फाटियें द्वारा यथेच्छ एक माप की पक्तियो मे लगभग तृतीयाश या इससे कम-बेश अन्तर रख कर एक समान सुन्दर अक्षरो से प्रतिया लिखी जाती थी जिससे अक्षर गणना करने वाले को सुविधा रहती और अक्षर भी सरल, सुवाच्य और नयनाभिराम लगते थे ।

पडी मात्रा ——ब्राह्मी लिपि से जब वर्तमान लिपिया का विकास हुआ, मात्राए सूक्ष्म रूप मे अथवा स्वर सलग्न सकेत से लिखी जाती थी। वे अपना बडा रूप धारण करने लगी और वर्तमान मे अक्षर व्यजन के चतुर्दिक् लिखी जाने लगी। पृष्ठि मात्रा, अग्रमात्रा उर्ध्व-मात्रा मे 'उ,ऊ' की अग्रमात्रा 'रु,रू' के अतिरिक्त अधोमात्रा का रूप धारण कर लिया। पृष्ठि मात्रा मे ह्रस्व इकारान्त सकेत के अतिरिक्त उर्ध्व और अग्रमात्रा बन गई है, जैसे के,कै,को,कौ। जब कि प्राचीन काल मे बंगला लिपि को भाति के,कै,का,को लिखे जाते थे, दीर्घ ईकार का सकेत अपरिवर्तित ही रहा। सयुक्ताक्षर एव मात्राओ के प्रयोग के कारण अक्षरो के माप मे अन्तर आ जाना स्वाभाविक था, अस्तु। पडी मात्रा लिखने की पद्धति प्राय सतरहवी शताब्दी के पश्चात् लुप्त हो गई ।

जैन लेखक

जैन साहित्य के परिशीलन म विदित होता है कि जैन विद्वानो-श्रुतधरो ने जो विशाल साहित्य रचना की उन्हे वे पहल काष्ठपट्टिका पर लिख कर फिर ताडपत्र, कागज आदि पर उतारते थे। श्री देवभद्राचार्य ने जिस काष्ठोत्कीर्ण पट्टिका पर महावीर चरित्र, पार्श्व-नाथ चरित्रादि लिखे थे वे उन्होने सोमचन्द्र मुनि (श्री जिनदत्तसूरिजी) को भेट किए थे। अत इन वस्तुओ का बडा महत्व था। ग्रन्थकार अपने महान् ग्रन्थो को स्वय लिखते या अपने आज्ञाकित शिष्य वर्ग से प्रथमादर्श पुस्तिका लिखवाते, जिनका उल्लेख कितने ही ग्रन्थो की प्रशस्तियो मे पाया जाता है। मणिधारी जिनचन्द्रसूरि, स्थिरचन्द्र, ब्रह्मदत्त आदि की लिखित प्रतिया आज भी उपलब्ध है। श्री जिनभद्रसूरि, कमलसयमोपाध्याय, युगप्रधान श्री

जिनचन्द्रसूरि, समयसुन्दरोपाध्याय, गुणविनयोपाध्याय, यशोविजय उपाध्याय, विनयविजय, नयविजय, कीर्तिविजय, जिनहर्षगणि, क्षमाकल्याणोपाध्याय, ज्ञानसार गणि आदि बहुसंख्यक विद्वानों के स्वयं हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं। जैन यति-मुनियों, साध्वियों आदि के अतिरिक्त श्रीमन्त श्रावकों द्वारा लहिया लोगों से लिखवाई हुई बहुत सी प्रतियां हैं। इस प्रकार जैन ज्ञान भण्डारों में लाखों प्राचीन ग्रन्थ आज भी विद्यमान हैं। पुस्तकों के लिपिक लहिए कायस्थ, ब्राह्मण, नागर, महात्मा, भोजक आदि जाति के होते थे, जिनका पेशा ही लिखने का था और उन सैंकडों परिवारों की आजीविका जैनाचार्यों व जैन श्रीमन्तों के आश्रय से चलती थी। वे जैन लिपि व लेखन पद्धति के परम्परागत अभिज्ञ थे और जैन लहिया-जैन लेखक कहलाने में अपना गौरव समझते थे। महाराजा श्रीहर्ष, सिद्धराज जयसिंह, राजा भोज, महाराणा कुम्भा आदि विद्याविलासी नरेश्वरों को छोड कर एक जैन जाति ही ऐसी थी जिसके एक-एक व्यक्ति ने ज्ञान भण्डारो के लिए लाखों रुपये लगा कर अद्वितीय ज्ञानोपासना-श्रुतभक्ति की है। लाखों ग्रन्थो के नष्ट हो जाने व विदेश चले जाने पर भी आज जो ग्रन्थ भण्डार जैनों के पास हैं वे बड़े गौरव की वस्तु हैं। ज्ञान पचमी का आराधन एवं सात क्षेत्रों में तथा स्वतन्त्र ज्ञान द्रव्य की मान्यता से इस ओर पर्याप्त ज्ञान सेवा समृद्ध हुई। साधु- यतिजनो को स्वाध्याय करना अनिवार्य है। श्रुत-लेखन स्वाध्याय है और इसीलिए इतने ग्रन्थ मिलते हैं। आज मुद्रण युग मे भी सुन्दर लिपि मे ग्रन्थ लिखवा कर रखने की परिपाटी कितने ही जैनाचार्य मुनि-गण निभाने जा रहे हैं। तेरापन्थी श्रमणो में आज भी लेखन कला उन्नत देखी जाती है क्योंकि उनमे हस्तलिखित ग्रन्थ लिखने और वर्ष मे अमुक परिमाण मे लेखन-स्वाध्याय की पूर्ति करना अनिवार्य है।

लेखक के गुण-दोष

लेख पद्धति के अनुसार लेखक सुन्दर अक्षर लिखने वाला, अनेक लिपियो का अभिज्ञ, शास्त्रज्ञ और सर्वभाषा विशारद होना चाहिए, ताकि वह ग्रन्थ को शुद्ध अविकल लिख सके। मेधावी, वाक्पटु, धैर्यवान्, जितेन्द्रिय, अव्यसनी, स्वपरशास्त्रज्ञ और हलके हाथ से लिखने वाला सुलेखक है। जो लेखक स्याही गिरा देता हो, लेखनी तोड देता हो, आसपास की जमीन बिगाडता हो दवात मे कलम डुबोते समय उसकी नोक तोड देता हो वह अपलक्षणी और कूट लेखक बतलाया गया है।

लेखक की साधन सामग्री

ग्रन्थ लेखन के हेतु पीतल के कलमदान और एक विशिष्ट प्रकार के लकड़ी या कूटे के कलमदानों मे लेखन सामग्री का सग्रह रहता था। हमारे सग्रह मे ऐसा एक सचित्र कूटे का कलमदान है जिस पर दक्षिणी शैली से सुन्दर कृष्णलीला का चित्रांकन किया हुआ है। एक सादे कलमदान मे पुरानी लेखन सामग्री का भी सग्रह है। यह लेखन सामग्री विविध प्रकार की होती थी जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। एक श्लोक मे 'क' अक्षर वाली 17 वस्तुओ की सूची उल्लिखित है—

(1) कुपी (दवात), (2) काजल (स्याही), (3) केश (सिर के बाल या रेशम), (4) कुश-दर्भ, (5) कम्बल, (6) काबी, (7) कलम, (8) कृपाणिका, (छुरी), (9) कतरनी (कैंची), (10) काष्ठपट्टिका, (11) कागज, (12) कीकी-आंखे, (13) कोटडी (कमरा), (14) कलमदान, (15) क्रमण-पैर, (16) कटि-कमर, और (17) कंकड़।

इनमें आंख, पैर और कमर की मजबूती आवश्यक है। बैठने के लिए कंबल-दर्भासन व कोठरी-कमरा के अतिरिक्त अवशिष्ट स्टेशनरी-लेखन सामग्री है।

लहिये लोग विविध प्रकार के आसनों में व विविध प्रकार से कलम पकड़ कर या प्रतिया रख कर लिखने के अभ्यस्त होने से अपने लेखनानुकूल कलम का पपर व्यक्ति को देने में हानि समझते थे। अतः पुस्तको की पुष्पिका के साथ निम्न सुभाषित लिख दिया करते थे —

लेखिनी पुस्तिका रामा परहस्ते गता गता ।
कदाचित् पुनरायाता नष्टा भ्रष्टा च घर्षिता (वा चुम्बिता) ॥

लेखन विराम

लिखते समय यदि छोड कर उठना पडे तो वे अपने विश्वास के अनुसार 'घ झ ट ड त प ब ल व ण' अक्षर लिखने छोड कर या अलग कागज पर लिख के उठते है। अवशिष्ट अक्षर लिखते उठ जाने पर उन्हें पुस्तक के कट जाने, जन्तु खा जाने तथा नष्ट हो जाने के विविध संदेह रहते थे। इन विश्वासों का वास्तविकता से क्या सम्बन्ध है ? कहा नही जा सकता।

लेखक की निर्दोषता

जिस प्रकार ग्रन्थकार अपनी रचना में हुई स्खलना के लिए क्षमा प्रार्थी बनता है वैसे ही लेखक अपनी परिस्थिति और निर्दोषता प्रकट करने वाले श्लोक लिखता है —

यादृशं पुस्तके दृष्टं तादृशं लिखितं मया ।
यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते ॥
भग्नपृष्ठ-कटिग्रीवा—वक्रदृष्टिरधोमुखम् ।
कष्टेन लिखितं शास्त्रं यत्नेन परिपालयेत् ॥
बद्धमुष्टि-कटिग्रीवा—वक्रदृष्टिरधोमुखम् ।
कष्टेन लिखितं शास्त्रं यत्नेन प्रतिपालयेत् ॥ इत्यादि ।

भ्रान्तिमूलक अशुद्धियां

प्राचीन प्रतियो की नकल करते समय लिपि अनभिज्ञता से या भ्रान्त पठन से, अक्षराकृति साम्य या संयुक्ताक्षरो की दुरूहता से अनेक अशुद्ध परम्परा चल पड़ती थी। एक शब्द के अनेक अर्थ होते है, मिलते-जुलते अशुद्ध वाक्यों को शुद्ध करते जाते नवीन पाठान्तरों की सृष्टि हो जाती, जिसका समाधान किसी मनस्वी विद्वान संशोधक के हाथों में पड़ने पर ही संभव होता। 'च्छ' को 'त्थ' और 'त्थ' को 'च्छ' हो जाना तो मामूली बात थी।

ग्रन्थ लेखनारम्भ

भारतीय संस्कृति में न केवल ग्रन्थ रचना में ही किन्तु ग्रन्थ लेखन के समय लहिया लोग सर्वप्रथम मंगलाचरण करते थे, यह चिरपरिपाटी है। जैन लेखक "ॐ नमः, ऐं नमः, नमो

जिनाय, नमः श्री गुरुभ्यः, नमो वीतरागाय, जयत्यनेकान्तकण्ठीरवः, ॐ नमः सरस्वत्यै, ॐ नमः सर्वज्ञाय, नमः श्रीसिद्धार्थसुताय" इत्यादि अपने देव, गुरु, धर्म, इष्टदेव के नाम मंगल के निमित्त लिखते थे। जैन मंगलाचरण का सार्वत्रिक प्रचार न केवल भारत में ही, चीन, तिब्बत तक में लिखे ग्रन्थों में कातन्त्र व्याकरण का 'ॐनमः सिद्धं' प्रचुरता से प्रचलित हुआ था। प्राचीन लिपियों के प्रारम्भिक मंगल-चिन्ह शिलालेखों मे, ताडपत्रीय ग्रन्थों में व परम्परा से चलते हुए अर्थ न समझने पर भी रूढ हो गए थे। ब्राह्मी लिपि के ॐकार, ऐंकार महत्त्वाब्दी पर्यन्त चलते रहे और आज भी ग्रन्थ लेखन के प्रारम्भ में उन्ही विविध रूपों को लिखने की परम्परा चल रही है। भारतीय प्राचीन लिपि माला एवं प्राचीन शिलालेखों व ग्रन्थों से उन मंगल-चिन्हों का विकास चारुतया परिलक्षित होता है। राजस्थान मे सर्वत्र कातन्त्र व्याकरण का प्रथम अपभ्रष्ट पाठ बडे ही मनोरंजक रूप में बच्चो को रटाया जाता था।

लेखकों की ग्रन्थ लेखन समाप्ति

ग्रन्थ लेखन समाप्त होने पर ग्रन्थ की परिसमाप्ति सूचन करने के पश्चात् लेखन संवत् पुष्पिका लिख कर "शुभंभवतु, कल्याणमस्तु, मंगल महा श्री., लेखक-पाठकयाः शुभंभवतु, शुभं भवतु संघस्य, आदि वाक्य लिख कर ॥छ॥ बा॥ आकृतियां लिखा करते थे जो पूर्णकुम्भ जैसे संकेत होने का मुनि श्री पुण्यविजयजी ने अनुमान किया है। और भी प्राचीन ग्रन्थों मे विभिन्न चिन्ह और अक्षरों पर गेरु आदि लाल रंग मे रंजित ग्रन्थो के अन्तिम पत्र पाये जाते है। ग्रन्थ के अध्ययन, खण्ड, उद्देश्य, सर्ग, परिच्छेद, उच्छ्वास, लंभक, काण्ड आदि की परिसमाप्ति पर सहज ध्यान आकृष्ट करने के हेतु भी इन चिन्हो का उपयोग किया जाता था।

लेखकों द्वारा अंक प्रयोग

यद्यपि ग्रन्थ की पत्र संख्या आदि लिखने के लिए अंको का प्रयोग प्राचीन काल मे होता आया है, पर साथ-साथ रोमन लिपि की भांति , I., II, IV, V आदि सांकेतिक अंक प्रणाली भी नागरी लिपि मे प्रचलित थी, जिसके संकेत अपने ढंग के अलग थे। ताडपत्रीय ग्रन्थो मे और उसके पश्चात् कागज के ग्रन्थो में भी इसका उपयोग किये जाने की प्रथा थी। पत्र के दाहिनी ओर अक्षरात्मक अंक संकेत व बायी तरफ अंक लिखे रहते थे। यह पद्धति जैन छेद आगमो, चूर्णियों मे एक जैसे पाठो मे प्रायश्चित्त व भांगो के लिए भी प्रयुक्त हुई है। जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण कृत जीतकल्पसूत्र के भाष्य मे सूत्र की मूल गाथाओं के अंक अक्षरात्मक अंको मे दिए है। इस पद्धति के ज्ञान बिना मूल प्रति की नकल करने वालो द्वारा भयंकर भूल हो जाने की संभावना है। इस प्रथा का एक दूसरा रूप नेवारी ग्रन्थो मे देखा गया है। बात यह है कि श्री मोतीचन्दजी खजान्ची के संग्रह की एक प्रति का जब 1900 वर्ष प्राचीन बताया गया तो असंभव होते हुए भी मैने स्वयं उसे देखना चाहा। प्रति देखने पर राज खुला कि संवत् वाला अंक 1 बंगला लिपि का 7 था जो कि पत्रांकों पर दी हुई उभयपक्ष की संख्या से समर्थित हो गया। इस प्रकार 600 वर्ष का अन्तर निकल गया और नेवारी संवत् व विक्रम संवत् का अंक निकालने पर उसकी यथार्थ मिती बतला कर भ्रांति मिटा दी गई। अस्तु। हमें जैन लेखको द्वारा अक्षरात्मक अंक संकेतो का समीचीन ज्ञान प्राप्त करने के हेतु उसकी तालिका जान लेना आवश्यक समझ कर यहां दी जा रही है।

એકમ અંકો

१ = १, ॐ, स्व, स्व्, श्री, श्रीँ

२ = २, न, स्ति, स्त्रि, श्री, श्रीँ

३ = ३, मः, श्री, श्रीँ, श्रीँ,

४ = क, क्क, फ्क, फ्का, फ्कँ, फ्काँ, क, का, क्क, क्का, क्व,

५ = तृ, र्तृ, ढ, र्ढ, तृ, र्तृ, तृ, र्तृ, न, ना, ता, र्ता, ह्ना, र्ह्ना.

६ = फ, र्फ, फा, र्फा, म्क, र्म्क, म्का, र्म्का, फ्रु, र्फ्रु, फ्रु, र्फ्रु, अ.

७ = ग्र, र्ग्र, ग्रा, र्ग्रा.

८ = ह्र, र्ह्र, ह्रा, र्ह्रा, ह्व.

९ = र्नु, र्उं, र्नृ.

દશક અંકો

१ = लृ, र्लृ.

२ = थ, था.

३ = ल, ला.

४ = त, र्त, ता, र्ता.

५ = ८, ६, ८, ८, ७.

६ = थु, र्थु

७ = थू, र्थू, थु, र्थु.

८ = ७, ७.

९ = ८, ८, ८, ८.

० = ०.

શતક અંકો

१ = सु, र्सु.

२ = सू, सू, स्र.

३ = स्ता, स्ना, स्रा.

४ = स्ता, स्त्रा, स्त्रा.

५ = स्तो, स्तो, स्त्रो.

६ = स्तं, स्तं, स्तं.

७ = स्तः, स्तः, स्तः.

यहा इकाई, दहाई और सैकडो की सख्या लिखने के समय पृथक्-पृथक् अक दिए गए है। पत्राक लिखने मे उनका उसी प्रकार उपयोग होता है ताकि सख्या का सही आकलन किया जा सके। चालू अक सीधी लाइन मे लिखे जाते है, परन्तु ताडपत्रीय व उसी शैली के कागज के ग्रन्थों का पत्राक देते समय ऊपर नीचे लिखने की प्रथा थी। जैन छेद सूत्र आदि मे व भाष्य, चूर्णि, विशेष चूर्णि, टीका आदि मे अक्षराक सीधी पक्ति मे ही लिखे गए हैं।

उपर्युक्त तालिका के अनुसार इकाई, दहाई और सैकड़ों के अक का उपयोग इस प्रकार किया जाता था:—

लृं/० १०, नृं/१ ११, नृं/२ १२, लृं/३ १३, लृं/र्क १४, लृं/लृ १५, लृं/फ्र १६, लृं/ग्रा १७, लृं/ह्रा १८, लृं/ओ १९;

थ/० २०, थ/१ २१, थ/र्क २४, था/फ्रा २६, थ/ह्रा २८; ला/० ३०, ला/३ ३३, ला/फ्र ३६, ला/ग्रा ३७, ला/ओ ३९;

प्त/० ४०, प्ता/ह्र ४४, प्त/लृ ४५, प्त/ह्रा ४८; 6/० ५०, 6/र्का ५४, 6/फ्र ५६, 6/ओ ५९; र्घु/० ६०, र्घु/ग्रा ६७,

र्घु/० ७०, र्घु/२ ७२, र्घु/लृ ७५, र्घु/प्र ७७; ⊙/० ८०, ⊙/ह्र ८८, ॐ/● ९०, ॐ/गज ९७, ॐ/ओ ९९;

सु/०/● १००, सु/र्घु/लृं १४५, सु/र्घु/र्का १७४; सू/०/० २००, सू/घ/ग्र २२७, सू/र्घु/फ्र २६६, सू/०/० ३००, स्त/प्त/ग्जा ३४७;

स्ता/०/० ४००, स्तो/लृ/लृ ४१५, स्ता/र्घु/एकै ४७४; स्ते/०/० ५००, स्तो/०/ओ ५०९, स्ते/ला/फ्र ५३६, स्तो/⊙/० ५८०; स्तं/०/● ६००,

स्तं/ल/ग्रा ६३७, स्तं/प्त/ग्र ६४७, स्तं/र्घु/लृं ६६५; स्तः/०/० ७००, स्तः/थ/२ ७२२, स्तः/ला/३ ७४३, स्तः/र्घु/ग्रा ७७७, स्तः/ॐ/ह्र ७९८,

यह ताडपत्रीय पत्राक लेखन पद्धति कागज पर लिखे ग्रन्थो पर चली आती थी किन्तु कई कागज की प्रतियो मे इकाई, दहाई, सैकडो के सकेत न व्यवहृत कर केवल इकाई अक्षराको का भी व्यवहार हुआ है। यत —

स्व/0 10, स्ति/0 20, एक/0 40, स्व/0 100, स्व/स्व/नृ 115, एक/0 400, स्व/स्ति/एक 1240 इत्यादि

त्रिणती नामक गणित विषयक सग्रह ग्रन्थ मे जैन "अके" रूप मे एक से दस हजार तक के अक्षराक लिखे है। उपर्युक्त तालिका मे आये हुए एक से तीन सौ तक के अको के पश्चात् अधिक की तालिका यहा दी जाती है —

"स्तु 400, स्ते 500, स्ते 600, स्ता 700, स्तो 800, स्त 900, स्त 1000, क्षु 2000, क्षू 3000, क्षा 4000, क्ष 5000, क्षे 6000, क्षा 7000, क्षो 8000, क्ष 9000, क्ष 10000

इति गणितसंख्या जैनाङ्कानां समाप्ता।

इन अक्षरात्मक अंकों की उत्पत्ति की आदि कैसे हुई ? यह बता सकना कठिन है, पर प्रारम्भ के दो तीन अक्षरों के लिए लिखे जाते स्व, स्वि, स्ति, श्री अथवा ऊ नम या श्री श्री श्री ये मंगलीक के लिए प्रयुक्त अक्षरों से प्रारम्भ हुआ विदित होता है। आगे के संकेतों का वास्तविक बीज क्या है ? शोधकर वास्तविक निर्णय में अब तक विद्वानों की कल्पना सफल नहीं हो सकी है।

शून्यांक :

जैन छेद आगमों की चूर्णि में जहा मास, लघु मास, गुरु, चतुर्लघु, चतुर्गुरु, षड्लघु, षड्गुरु प्रायश्चित के संकेत लिखे है वहा उस संख्या का निर्देश एक, चार, छ शून्य के द्वारा किया गया है। यत –

0	.,	00	..	000	...
		00	..,	000,	...,

इस प्रकार खाली शून्य लघुता सूचक और काले भरे शून्य गुरुत्व सूचक है।

शब्दात्मक अंक

जैनागम सूत्रकृताग, उत्तराध्ययनादि में वैदिक ग्रन्थों एवं ज्योतिष छन्दादि विविध विषयक ग्रन्थों में, शिलालेखों, ग्रन्थ प्रशस्तियों व पुष्पिकाओं में शब्दाकों का प्रयोग प्राचीन काल से चला आता है। कुछ सार्वजनिक और कुछ साम्प्रदायिक, पारिभाषिक, धार्मिक, व्यावहारिक वस्तुओं के भेद की संख्या के आधार पर रूढ शब्दाकों का बिना भेद भाव से ग्रन्थकारों, कवियों और लेखकों ने उन्मुक्त प्रयोग किया है, जिसकी तालिका बहुत बड़ी तैयार हो सकती है। यहा जिस-जिस अंक के लिए जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है उसे दिया जा रहा है –

0 शून्य, बिन्दु, रन्ध्र, ख, छिद्र, पूर्ण, गगन, आकाश, वियत्, व्योम, नभ, अभ्र, अन्तरिक्ष, अम्बरादि।

1 कलि, रूप, आदि, पितामह, नायक, तनु, शशि, विधु, इन्दु, चन्द्र, शीतांशु, शीतरश्मि, सितरुच, हिमकर, सोम, शशांक, सुधांशु, निशेश, निशाकर, क्षपाकर, औषधीश, दाक्षायणी प्राणेश, अब्ज (चन्द्रवाचक अन्य शब्द भी), भू, भूमि, क्षिति, क्षमा, धरा, वसुधा, वसुन्धरा उर्वरा, गो, पृथ्वी, धरणी, इला, कु, मही (पृथ्वी वाचक अन्य शब्द भी) जैवातृक इत्यादि।

2 यम, यमल, युगल, द्वंद्व, युग्म, द्वय, पक्ष, अश्विन, नासत्य, दस्र, लोचन, नेत्र, नयन ईक्षण, अक्षि, दृष्टि, चक्षु, (नेत्र वाचक अन्य शब्द भी); कर्ण, श्रुति, श्रोत्र, कान वाचक शब्द, बाहु, कर, हस्त, पाणी, दोष, भुज, (हाथ वाचक शब्द समूह), कर्ण, कुच, ओष्ठ गुल्फ, जानु, जंघा, (शरीर के युग्म अवयव वाचक अन्य शब्द), अयन, कुटुम्ब, रविचन्द्रौ इत्यादि।

3 राम, त्रिपदी, त्रिकाल, त्रिगत, त्रिनेत्र, लोक, जगत, भुवन, (विश्व वाचक शब्द समूह), गुण, काल, सहोदरा, अनल, अग्नि, वह्नि, ज्वलन, पावक, वैश्वानर, दहन, तपन, हुताशन, शिखिन, कृशानु, (अग्नि वाचक अन्य शब्द समूह), तत्व, त्रैत, होतृ, शक्ति, पुष्कर, सध्या, ब्रह्मा, वर्ण, स्वर, पुरुष, वचन, अर्थ, गुप्ति इत्यादि।

4. वेद, श्रुति, समुद्र, सागर, अब्धि, जलधि, जलनिधि, वार्धि, नीरधि, नीर, निधि, वारिधि, वारिनिधि, उदधि, अम्बुधि, अम्बुनिधि, अभोधि, अर्णव (समुद्रवाचक अन्य शब्द भी), केन्द्र, वर्ण, आश्रम, युग, तुर्य, कृत, अय, आय, दिश (दिशा), बन्धु, कोष्ठ, ध्यान, गति, संज्ञा, कषाय इत्यादि।

5. बाण, शर, सायक, इषु, (बाण वाचक शब्द), भूत, महाभूत, प्राण, इन्द्रिय, अक्ष, विषय, तत्व, पर्व, पाण्डव, अर्थ, वर्ष्म, व्रत, समिति, कामगुण, शरीर, अनुत्तर, महाव्रत, इत्यादि।

6 रस, अंग, काय, ऋतु, मासार्ध, दर्शन, राग, अरि, शास्त्र, तर्क, कारक, समास, लेश्या, क्षमाखण्ड, गुण, गुहक, गुहवक्त्र इत्यादि।

7. नग, अग, भूभृत, पर्वत, शैल, अद्रि, गिरि, (पर्वत वाचक शब्दावली), ऋषि, मुनि, अत्रि, वार, स्वर, धातु, अश्व, तुरग, वाह, हय, वाजिन् (अश्व वाचक शब्द), छंद, धी, कलत्र, भय, सागर, जलधि (समुद्र वाचक शब्द समूह) लोक इत्यादि।

8 वसु, अहि, सर्प, (सर्प वाचक अन्य शब्द भी), नागेन्द्र, नाग, गज, दन्तिन्, दिग्गज, हस्तिन्, मातग, करि, कुजर, द्विप, करटिन्, (हस्ति वाचक शब्द), तक्ष, सिद्धि, भूति, अनुष्टुभ्, मगल, मद, प्रभावक, कर्मन्, धी गुण, वुद्धि गुण, सिद्ध गुण इत्यादि।

9 अक, नन्द, निधि, ग्रह, खग, हरि, नारद, रन्ध्र, ख, छिद्र, गो, पवन, तत्व, ब्रह्मगुप्ति, ब्रह्मवृत्ति, ग्रैवेयक इत्यादि।

10. दिश, (दिशा, आशा, ककुभ, दिशा, वाचक शब्द), अगुली, पक्ति, रावणशिरस्, अवतार, कर्मन्, यतिधर्म, श्रमणधर्म, प्राण इत्यादि।

11 रुद्र, ईश्वर, हर, ईश, भव, भर्ग, शूलिन्, महादेव, पशुपति, शिव, (महादेव वाचक शब्द), अक्षौहणी इत्यादि।

12 रवि, सूर्य, अर्क, मार्त्तण्ड, द्युमणि, भानु, आदित्य, दिवाकर, दिनकर, उष्णाशु, इन, (सूर्य वाचक शब्दावली), मास, राशि, व्यय, चक्रिन्, भावना, भिक्षु, प्रतिमा, यति प्रतिमा इत्यादि।

13 विश्व, विश्वदेवा, वाम, अतिजगती, अघोष, क्रियास्थान, यक्ष इत्यादि।

14. मनु, विद्या, इन्द्र, शक्र, वासव, (इन्द्र वाचक शब्द) लोक, भुवन, विश्व, रत्न, गुणस्थान, पूर्व, भूतग्राम, रज्जु इत्यादि।

15. तिथि, घस्र, दिन, अहन्, दिवस, (दिवस वाचक शब्द) पक्ष, परमाधार्मिक इत्यादि।

16. नृप, भूप, भूपति, अष्टि, कला, इन्दुकला, शशिकला इत्यादि।

17. अत्यष्ठि। 18. धृति, अब्रह्म, पापस्थानक इत्यादि। 19. अतिधृति। 20. नख, कृति इत्यादि। 21. उत्कृति, प्रकृति, स्वर्ग। 22. कृति, जाति, परीषह इत्यादि। 23. विकृति। 24. गायत्री, जिन, अर्हन् इत्यादि। 25. तत्व। 27. नक्षत्र, उडु, भ। 32. दंत, रद, इत्यादि।

33. देव, अमर, त्रिदश, सुर इत्यादि। 40. नरक। 48. जगती। 49. तान। 64. स्त्री कला। 72. पुरुष कला।

यहां दी गई शब्द सूची में कितनी ही वैकल्पिक हैं, अत किस प्रसंग प्रयोग में कौन सा चालू अंक लेना है यह विचारणीय रहता है।

रंध्र, ख और छिद्र का उपयोग शून्य के लिए हुआ है और नौ के लिए भी हुआ है। गो एक के लिए व नौ के लिए भी व्यवहृत हुआ है। पक्ष दो के लिए व पन्द्रह के लिये भी व्यवहृत हुआ है। इसी प्रकार श्रुति दो के लिये व चार के लिये, लोक और भुवन तीन, सात और चौदह के लिए, गुण शब्द तीन और छः के लिए, तत्व तीन, पाच, नौ और पच्चीस के लिए, समुद्र वाचक शब्द चार और सात के लिए तथा विश्व तीन, तेरह और चौहद के लिए व्यवहृत देखने में आते हैं।

पुस्तक लेखन

ताडपत्रीय ग्रन्थ.—छोटे साइज के ताडपत्रीय ग्रन्थ को दो विभाग (कॉलम) मे एव लम्बे पत्रा पर तीन कालम मे लिखा जाता था। विभाग के उभय पक्ष मे एक डेढ इन्च का हासिया (मार्जिन) रखा जाता था। बीच के हासिया में छिद्र करके डोरा पिरोया जाता था ताकि पत्र अस्त व्यस्त न हो। पत्र के दाहिना ओर अक्षरात्मक पत्राक एव बायी तरफ अकात्मक पत्राक लिखे जाते थे। कितनी ही प्रतियो मे उभय पक्ष मे एक ही प्रकार के अक लिखे मिलते है। बीच मे छिद्र करने के स्थान मे तथा कई प्रतियो में किनारे के हासिये मे भी हिंगुली का बड़ा टीका (अगूठे) से किया जाता था। विभागीय लेख के उभय पक्ष मे सुन्दरता के लिए बोर्डर या दो तीन खड़ो लकीरे खीच दी जाती थी। ताडपत्र के पत्ते चौडे-सकड़े होते थे, अत. कही अधिक व कही कम पंक्तिया सम विषम रूप मे हो जाती थी। लिखते-लिखते जहा पत्र सकडा हो जाता था, पक्ति को शेष करके ,, ,, चन्द्र (स्टार) आदि आकृति चिन्हित कर दी जाती थी। अन्त और प्रारम्भ जहा से होता वैसा ही चिन्ह सकेत सम्बन्ध मिलाने मे सहायक होता था।

पुस्तक लेखन प्रारम्भ मे 'दो पाई, भले मीडा' के बाद जिन, गणधर, गुरु, इष्टदेव, सरस्वती आदि के सूचक नमस्कार लिखा जाता और जहा श्रुतस्कन्ध, सर्ग, खण्ड, लभक, उच्छ्वास आदि की पूर्णाहुति होती वहा ।।छ।। एव समाप्ति सूचक ग्रन्थ चिन्ह लिखकर कुछ खाली जगह छोड़ कर उसी प्रकार नमस्कारादि सह आगे का विभाग चालू हो जाता। कहीं-कही ग्रन्थ के विभाग के शेष मे या ग्रन्थ पूर्णाहूति मे चक्र, कमल, कलशादि का आकृति बनाई जाती थी। बीच-बीच मे जहा कहीं गाथा का टोका, भाष्य, चूर्णि शेष होने के अन्त में भी ।।छ।। लिख दिया जाता था। किन्तु रिक्त स्थान नही छोड़ा जाता था।

कागज के ग्रन्थ.—प्रारम्भ मे कागज के ग्रन्थ भी ताडपत्रीय ग्रन्थो की तरह लम्बाई चौड़ाई मे छोटे मुष्टि-पुस्तक के आकार में लिखते, किन्तु दो-तीन विभाग करने आवश्यक नहीं थे। कितने ही ग्रन्थो की लम्बाई ताडपत्रीय ग्रन्थो की भांति करके चौड़ाई भी उनसे डबल अर्थात् 4।। इन्च की रखा जाता। किन्तु बाद में तेरहवी शताब्दी के पश्चात् सुविधा के लिए 12 × 5 या इससे कमबेश साइज कर दिया गया। प्रारम्भ मे कागज के ग्रन्थो पर बोर्डर की लकीरें काली होती थी, पर सोलहवी शताब्दी से लाल स्याही के बोर्डर बनने लगे। ताडपत्रीय ग्रन्थो मे पत्रो के न सरकने के लिए खाली जगह में छिद्र करके डोरी पिराई जाती थी। उसी प्रकार कागज के ग्रन्थो में भी उसी पद्धति का अनुकरण कर, खाली जगह रखी जाती; पर डोरी के लिए छिद्र किए ग्रन्थ क्वचित ही पाये जाते है, क्योकि कागज के पत्रो के सरकने का भय नही था। खाली जगह मे लाल रग आदि के टीके या फूल आदि विविध अलकार किये हुए ग्रन्थ भी पाये जाते हैं। उभय पक्ष में ताडपत्रीय पत्राक लेखन पद्धति उभय प्रकार पहले पहले-पाई जाती है, बाद मे केवल अकों मे पत्राक एव एक ओर ग्रन्थ के नाम की हुण्डी (Heading) लिख दी जाती थी। कितने ही सग्रह ग्रन्थो मे सीरियल क्रमिक अक चालू रखने पर भी विभागीय सूक्ष्म कोर अक कोने मे लिखे जाते थे।

कागज का साइज एक होने से सभी पत्रों में एक जैसी लकीरें पक्तियां आती थीं। जहां विभागीय परिसमाप्ति होती वहा लाल स्याही से विराम चिन्ह एव प्रारम्भ में ॥60॥ आदि तथा अंत में ॥छ॥ की पद्धति ताडपत्रीय लेखन के अनुसार ही प्रचलित थी। पुष्पिका संवत आदि पर ध्यान आकर्षण करने के लिये लाल स्याही से अथवा जैसे लाल पैंसिल फिरा दी जाती है वैसे गेरु आदि से रंग दिया जाता था।

प्राचीन लेखन वैशिष्ट्य –

ग्रथ-लेखन में जहां वाक्यार्थ या सम्बन्ध पूर्ण होता था वहा पूर्ण विराम, दोहरा पूर्ण विराम एवं अवातर विषय अवतरण आदि की परिसमाप्ति पर ॥छ॥ लिखा जाता था एव श्लोकांक भी इसी प्रकार लिखा जाता था। विशिष्ट ग्रन्थों मे मूलग्रन्थ के विषय को स्पष्ट करने वाले यन्त्र, चिन्ह, लिखने के साथ-साथ श्लोक सख्या, गाथा सख्या, ग्रथाग्रथ, प्रशस्ति आदि लिखी जाती थी। कुछ अविवेकी लेखक इन्हें न लिखकर ग्रन्थ के महत्व और वैशिष्ट्य को कम कर देते थे।

ताडपत्रीय ग्रन्थो के चित्र व टीके आदि के अतिरिक्त केवल काली स्याही ही व्यवहृत होती थी। जबकि कागज के ग्रन्थों के लेखन में काली के अतिरिक्त सुनहरी, रूपहली और लाल स्याही का प्रयोग छूट से हुआ है। सुनहरी, रूपहली स्याही मे समग्र ग्रन्थ लिखे गए है, वैसे लाल रंग का प्रयोग पूरे ग्रन्थ मे न होकर विशिष्ट स्थान, पुष्पिका, ग्रन्थाग्र, उक्त च, तथाहि, पूर्ण विराम आदि मे हुआ है। पर पत्रो की पृष्ठभमि में लाल, नीला, हरा आदि सभी रगों से रंग कर उस पर अन्य रगो का प्रयोग हुआ है।

पुस्तक लेखन के प्रकार –

पुस्तको के बाह्य आकार को लक्षित करके आगे गंडी, कच्छपी, मुष्टि आदि पुस्तको के प्रकार बतलाए गए है पर जब कागज के ग्रन्थ लिखे जाने लगे तो उनकी लेखन पद्धति व आभ्यन्तरिक स्वरूप मे पर्याप्त विविधता आ गई थी। कागज पर लिखे ग्रन्थ, त्रिपाठ, पचपाठ, टब्बा, बालावबोध शैली, दो विभागी (कालम), सूड (Running) लेखन, चित्रपुस्तक, स्वर्णाक्षरी, रौप्याक्षरी, सूक्ष्माक्षरी, स्थूलाक्षरी, मिश्रिताक्षरी, पोथियाकार, गुटकाकार आदि अनेक विधाओ के सप्राप्त है।

त्रिपाठ या त्रिपाट –

ग्रन्थ के मध्य में बड़े अक्षर व ऊपर नीचे उसके विवेचन में टीका टबा आदि सूक्ष्माक्षरों की पक्तिया लिखी गई हो वह त्रिपाठ या त्रिपाट ग्रन्थ कहलाता है।

पचपाठ या पंचपाट – जिस ग्रन्थ के बीच में मूलपाठ व चारों ओर के बड़े बोर्डर हासिया में विवेचन, टीका, टबादि लिखा हो, अर्थात्, लेखन पाच विभागो मे हुआ हो वह पंचपाठ या पचपाट ग्रन्थ कहलाता है।

सूड या सूढ – जो ग्रन्थ मूल टीका आदि के विभाग बिना सीधा लिखा जाता हो वह सूड़ या सूढ (Running) लेखन कहलाता है।

प्राचीन ग्रन्थ मूल, टीका आदि अलग-अलग लिखे जाते थे तब ताडपत्रीय ग्रन्थों में ऐसे कोई विभाग नहीं थे, जब मूल के साथ टीका, चूर्णि, निर्युक्ति, भाष्य, बालावबोध आदि साथ में लिखे

जाने लगे तो त्रिपाठ या पंचपाठादि विभागीय लेखन प्रारम्भ हुआ। इससे एक ही प्रति में टीका आदि पढ़ने की सुगमता हो गई।

टबा या बालावबोध शैली.--त्रिपाठ, पंचपाठ से भिन्न टबा लिखने की शैली में एक-एक पंक्ति के मूल बड़े अक्षरों के ऊपर छोटे अक्षरों में विवेचन, टबा व थोड़े से बड़े अक्षरों के ऊपर नीचे विशद विवेचन छोटे अक्षरों में लिखा जाता था। आनन्दघन चौबीसी बालावबोधादि की कई प्रतिया इसी शैली की उपलब्ध है। विभागीय (कालम) पुस्तक, कुछ सूक्ष्माक्षरी आदि दो विभाग में लिखी हुई पुस्तकें मिलती हैं तथा कई प्रतियों में नामावली सूची, बालावबोध आदि लिखने में सुविधानुसार कालम बनाकर के लिखे हुए कागज के ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

चित्र पुस्तक --यहा चित्र पुस्तक का आशय सचित्र पुस्तक से नही पर यह वह विद्या है जिससे लेखनकला की खूबी से इस प्रकार जगह छोडकर अक्षर लेखन होता है जिससे चौपट, वृक्ष, स्वस्तिक, छत्र, फूल आदि विविध आकृतिया उभर आती हैं और व्यक्ति का नाम भी चित्र रूप में परिलक्षित हो जाता है। कभी-कभी यह लेखन लाल स्याही से लिखा होने से लेखन कला स्वय बोल उठती है। हासिया और मध्य भाग में जहां छिद्र की जगह रखने की ताड़पत्रीय प्रथा थी वहां विविध फूल आदि चित्रित होते।

स्वर्णाक्षरी--रौप्याक्षरी ग्रन्थ--आगे बतायी हुई विधि के अनुसार स्वर्णाक्षरी, रौप्याक्षरी और गगा-जमनी ग्रन्थ लेखन के लिये इस स्याही का प्रयोग होता। ग्रन्थो को विशेष चमकदार दिखाने के लिए कागज के पत्रो की पृष्ठ भूमि (बैकग्राउण्ड) लाल, काला आसमानी, जामुनी आदि गहरे रंग से रंग कर अकीक, कसौटी, कोडा आदि से घोटकर मुलायम, पालिसदार बना लिया जाता था। फिर पूर्वोल्लिखित सोने चादी के वर्क चूर्ण को धव के गोंद के पानी के साथ तैयार की हुई स्याही से ग्रन्थ लिखा जाता था। लिखावट सूख जाने पर अकीक आदि की ओपणी से घोटकर ओपदार बना लिए जाते थे। इन पत्रों के बीच मे व हासिये मे विविध मनोरम चित्र हसपंक्ति, गज पंक्ति आदि से अलंकृत करके अद्वितीय नयनाभिराम बना दिया जाता था।

स्वर्णाक्षरी, रौप्याक्षरी स्याही की लिखी हुई ताडपत्रीय पुस्तके अब एक भी प्राप्त नही हैं पर महाराजा कुमारपाल और वस्तुपाल महामात्य ने अनेक स्वर्णाक्षरी ग्रन्थ लिखाए थे जिसका उल्लेख कुमारपाल प्रबन्ध व उपदेशतरगिणी मे पाया जाता है। वर्तमान में प्राप्त स्वर्णाक्षरी ग्रन्थ पन्द्रहवी शती से मिलते हैं। रौप्याक्षरी उसके परवर्ती काल से मिलते हैं। स्वर्णाक्षरी प्रतिया कल्पसूत्र और कालकाचार्य कथा की प्रचुर परिमाण में प्राप्त हैं और क्वचित् भगवती सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, नवस्मरण, अध्यात्मगीता, शालिभद्ररास एव स्तोत्रादि भी पाये जाते है।

सूक्ष्माक्षरी ग्रन्थ --ताडपत्रीय युग मे सूक्ष्माक्षरी प्रतिया नही मिलती, पर कागज के ग्रन्थ लेखन में सूक्ष्म अक्षरों का त्रिपाठ, पचपाठ आदि लेखन में पर्याप्त प्रयोग हुआ। साधुओं को विहार में अधिक भार उठाना न पड़े इस दृष्टिकोण से भी उसका प्रचलन उपयोगी था। ज्ञान भण्डारों में कई एक सूक्ष्माक्षरी ग्रन्थ पाये जाते हैं। यों केवल एक पत्र मे दशवैकालिकादि आगम लिखे मिलते हैं। तेरापंथी साधुओं ने तथा कुछ कलाकारो ने सूक्ष्माक्षर में उल्लेखनीय कीर्तिमान कायम किया है, पर वे पठन-पाठन में उपयोगी न होकर प्रदर्शनी योग्य मात्र हैं।

स्थूलाक्षरी ग्रन्थ:--पठन-पाठन के सुविधार्थ विशेष कर सम्वत्सरी के दिन कल्पसूत्र मूल का पाठ संघ के समक्ष बांचने के लिये स्थूलाक्षरी ग्रन्थ लिखे जाते थे। कागज युग में इसका पर्याप्त विकास दृष्टिगोचर होता है।

कर्तरित ग्रन्थ:--कागज को केवल अक्षराकृति में काटकर बिना स्याही के आलेखित ग्रन्थों में मात्र एक 'गीतगोविन्द' की प्रति बडौदा के गायकवाड ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट में है। बाकी फुटकर पत्र एवं चित्रादि पर्याप्त पाये जाते हैं।

मिश्रिताक्षरी:--छोटे-बड़े मिश्रित अक्षरों की प्रतियों का परिचय अर्णन टबा, बालावबोध की एवं सपर्याय प्रतियों में चारुतया परिलक्षित होता है।

गुटकाकार ग्रन्थ:--इनका एक माप नही होता। ये छोटे-बड़े सभी आकार-प्रकार के पाये जाते हैं। पोथियें, गुटके आदि बीच मे सिलाई किए हुए, जुज सिलाई वाले भी मिलते हैं। बराबर पन्नों को काटकर सिलाई करने से आगे से तीखे और अवशिष्ट एक से होते हैं। उनकी जिल्दें भी कलापूर्ण, सुरक्षित और मखमल, छीट, किमख्वाप-जरी आदि की होती हैं। कुछ गुटके सिलाई करके काटे हुए आजकल के ग्रन्थों की भाति मिलते है। माप में वे दफ्तर की भांति बड़े-बड़े फुलस्केप साइज के, डिमाई साइज के व क्राउन व उससे छोटे लघु और लघुतर माप के गुटके प्रचुर परिमाण में उपलब्ध हैं। उनमें रास, भास, स्तवन, सज्झाय, प्रतिक्रमण, प्रकरण संग्रहादि अनेक प्रकार के सग्रह होते है। हमारे सग्रह मे ऐसे गुटके सैकड़ो की सख्या में हैं जो सोलहवी शताब्दी से बीसवी शती तक के लिखे हुए हैं।

पुस्तक संशोधन

हस्तलिखित ग्रन्थों मे प्रति से प्रति की नकल की जाती थी। ऊपर वाली प्रति यदि अशुद्ध होती तो उस बिना सशोधित प्रति से नकल करने वाला भाषा और लिपि का अनभिज्ञ लेखक भ्रान्त परम्परा और भूलो की अभिवृद्धि करने वाला ही होता। फलस्वरूप ग्रन्थ मे पाठान्तर, पाठभेद का प्राचुर्य होता जाता और कई पाठ तो अशुद्ध लेखको की कृपा से ग्रन्थकार के आशय से बहुत दूर चले जाते थे। एक जैसी प्राचीन लिपि और मोड के भेद से, भाषा व विषय की अनभिज्ञता मे जो भ्रान्तिया नजर आती है उनके कुछ कारण अक्षरों की मोड़ साम्य व अन्य भ्रान्तिया हैं यहा कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं'—

1 लिपिभ्रम —

क रु	म स रा ग	था थ्य
ख र व स्व	व ब त	पा प्य
ग रा	ह इ	सा स्य
घ प्प व थ प्य	त्त तू	षा ष्य
च व ठ ध	द्द द्ध द्व द्र	ड्ड ट्ट ट्ट
छ ब	ग्र ग्ग ग्ज	त्त म्र
ज ज्ञ	द्र ड	च्च थ
ञ ज	वु तु	इ ह द्र
ट ठ द	प्प प्य थ घ	ई हैं
ड र म	ज्ज व्व द्य	ए प य
त व	सू स्त स्व मू	ऐ पे ये
ध व	त्थ च्छ	क्व क्र क्रु क्ष
न त व	कु क्ष	प्त पू पृ
नु तु	त्व च न	सु मु
प य ए	प्रा था	ष्ठ ष्व ष्ट षृ ब्द
फ पु	टा य	त्म त्स ता त्य
भ स म	न थ	कू क्त क्र
य ध	एय एा एम	

इस प्रकार कितनी ही लम्बी सूची दी जा सकती है। अक्षरभ्रांति मे उत्पन्न पाठ-भेद में भिन्नार्थ, समानार्थ भी घटित हो सकता है और इस चक्कर मे बड़े-बड़े विद्वान् भी फंस जाते हैं। भ्रांत लेखन से उत्पन्न पाठ भेदों को देखिए —

(1) प्रभवः-प्रसव, स्तवन-सूचन, यच्चा-यथा, प्रत्यक्षतोवगम्या-प्रत्यक्षबोधगम्या, नवा-तथा, नच-तव, तद्वा-तथा, पवत्तस्म-पवन्नस्स, जीवसात्मीकृतं-जीवमात्मीकृतं, परिवुड्ढि-परितुट्ठि, नवैव-नदैव, अरिदारिणी-अग्विारिणी-अविदारिणी, दोहलक्खेविया-दोहलक्खेदिया, नंदीसरदीवगमणसंभवजणमंडियं-नदीसरदीवगमणसंभवजिणमंडियं,घाणामयपसादजणण-घणोगय पसादं जणण, गयकुलासण्ण-रायकुलासण्ण, सच्च-मत्वं सत्तं, विच्छूढदाणजलाविलकपोला विगजा-विच्छूढदाणजलवित्त घोलविवजा, इत्यादि ।

(2) पडी मात्रा विषयक भ्रम —कितने ही लेखक पडीमात्रा-पृष्ठमात्रा का रहस्य न समझ कर एक दूसरे अक्षर के साथ उसकी मात्रा को लगा कर भ्रान्तपाठ की सृष्टि कर डालते हैं जिससे संशोधन कार्य बडा दुरूह हो जाता है। यत—

किसलयकोमलपमत्थपाणी–किंमयलक्खामलपत्थपाणी; तारानिकर–तरोनिकर-तमोनिकर, आसरासीओ–असेरासीओ-असेमसीओ, इत्यादि ।

(3) पतितपाठ स्थान परिवर्तन —कितनी ही बार छूटे हुए पाठ को हासिए मे संशोधन द्वारा लिखा जाता है जिसे प्रतिलिपिकार संकेत न समझ कर अन्य स्थान मे उसे लिख देते हैं ऐसे गोलमाल प्रतिलिपि करते समय आए दिन देखने मे आते है।

(4) टिप्पण प्रवेश —संशोधक द्वारा हासिए पर किए गए टिप्पण पर्याय को प्रतिलिपि कार भ्रान्तिवश ग्रन्थ का छूटा हुआ पाठ समझ कर मूल पाठ मे दाखिल कर देते हैं।

(5) शब्द पण्डित लेखको के कारण —कितने ही लेखक अमुक शब्दो के विशेष परिचित होने से मिलते-जुलते स्थान मे अघटित फेरफार कर डालते हैं—भ्रान्तिवश हो जाता है जिससे संशोधक के लिए बडी कठिनाई हो जाती है।

(6) अक्षर या शब्दो की अस्तव्यस्तता —लेखक लिखते-लिखते अक्षरो को उलट-पुलट कर डालते हैं जिससे पाठान्तरों की अभिवृद्धि हो जाती है। यत दाएइ–दाइए।

(7) डबल पाठ —कितनी ही बार लेखक ग्रन्थ लिखते हुए पाठ को डबल लिख डालते है जिससे लिखित पुस्तक मे पाठ भेद की सृष्टि हो जाती है। जैसे-सव्व पासणिएहिं सव्व पासणिएहिं सव्वपासत्थपासणिएहिं, तस्सरूव–तस्सरू वस्सरूव इत्यादि ।

(8) पाठ स्खलन —ग्रन्थ के विषय और अर्थ मे अज्ञात लेखक कितनी ही बार भंगकादि विषयक सच्चे पाठ को डबल समझ कर छोड देते हैं जिसमे गम्भीर भूलें पैदा होकर विद्वानों को भी उलझन मे डाल देती है।

इस प्रकार अनेक कारणो मे लेखको द्वारा उत्पन्न भ्रान्ति और अर्ध-दग्ध-पण्डितो द्वारा भ्रान्ति-भिन्नार्थ को जन्म देकर उपरिनिर्दिष्ट उदाहरणो की भाति सही पाठ निर्णय मे विद्वानो को बड़ी असुविधा हो जाती है।

संशोधकों की निराधार कल्पना

प्रायोगिक ज्ञान मे अधूरे संशोधक शब्द व अर्थ ज्ञान मे अपरिचित होने से अपनी मति-कल्पना से संशोधन कर नए पाठ भेद पैदा कर देते हैं, तथा सच्चे पाठ के बदले अपरिचित प्रयोग

देकर अनर्थ कर डालते हैं। खण्डित पाठ की पूर्ति करने के बहाने संशोधकों की मति-कल्पना भी पाठभेदों मे अभिवृद्धि कर देती है क्योंकि पत्र चिपक जाने से, अक्षर उड़ जाने से, दीमक खा जाने से रिक्त स्थान की पूर्ति दूसरी प्रति से मिलाने पर ही शुद्ध होगी अन्यथा कल्पना प्रसूत पाठ भ्रान्त परम्परा को जन्म देने वाले होते है।

ग्रंथ संशोधन की प्राचीन अर्वाचीन प्रणाली :

ज्ञान भण्डारस्थ ग्रन्थो के विशद अवलोकन से विदित होता है कि लिखते समय ग्रन्थ मे भूल हो जाती तो ताड़पत्रीय लेखक अधिक पाठ को काट देते या पानी से पोछ कर नया पाठ लिख देते थे। छूटे हुए पाठ को देने के लिए "Λ" पक्षी के पजे की आकृति देकर किनारे X X के मध्य मे 'Λ' देकर लिखा जाने लगा था। अधिक पाठ को हटाए हुए रिक्त स्थान को लकीर तथा अन्याकृति से पूर्ण कर दिया जाता था। सोलहवी शताब्दी मे प्रति सशोधन मे आई हुई काटाकाटी की असुन्दरता को मिटाने के लिए सफेदा या हरताल का प्रयोग होने लगा। अशुद्धि पर हरताल लगा कर शुद्ध पाठ लिखा जाने लगा। अशुद्ध अक्षर को सुधारने के लिए जैसे 'च' का 'व' करना हो, 'ष' का 'प' करना हो 'थ' का 'य' करना हो तो अक्षर के अधिक भाग को हरताल आदि से ढक कर शुद्ध कर दिया जाता, यही प्रणाली आज तक चालू है। त्रूटक पाठ को लिखने के लिए तो उन्ही चिन्हो को देकर हासिये मे लिखना पड़ता व आज भी यही रीति प्रचलित है।

ग्रंथ संशोधन के साधन .

ग्रन्थ सशोधन करने के लिए पीछी, हरताल, सफेदा, घूटो (ओपणी), गेरू और डोरे का समावेश होता है। अत इन वस्तुओं के सम्बन्ध मे निर्देश किया जाता है।

पीछी —चित्रकला के उपयोगी पीछी-ब्रुश आदि हाथ से ही बनाने पड़ते और उस समय टालोरी-खिसकोली के बारीक बालों से वह बनती थी। ये बाल स्वाभाविक ग्रथित और टिकाऊ होते थे। कबूतर की पाख के पालार मे पिरा कर या मोटी बनाना हो तो मयूर के पाखो के ऊपरी भाग मे पिरोकर तैयार कर ली जाती थी। डोरे का गोद आदि से मजबूत कर लिया जाता और वह चित्रकला या ग्रन्थ सशोधन मे प्रयुक्त हरताल, सफेदा आदि मे प्रयुक्त होती थी।

हरताल —यह दगड़ी और वरगी दो तरह की होती है। ग्रन्थ सशोधन मे 'वरगी हरताल' का प्रयोग होता है। हरताल के बारीक छने हुए चूर्ण को बावल के गोद के पानी में मिला कर, घोटकर, आगे बताई हुई हिंगुल की विधि से तैयार कर सुखा कर रखना चाहिए।

सफेदा —सफेदा आज कल तैयार मिलता है। उसे गोद के पानी मे घोट कर तैयार करने से ग्रन्थ सशोधन मे काम आ सकता है। पर हरताल का सौन्दय और टिकाऊपन अधिक है।

घूटा या ओपणी —आगे लिखा जा चुका है कि अकीक, कसौटी या दरियाइ कोडो से कागज पर पालिम होती है। हरताल, सफेदा लगे कागजो पर ओपणी करके फिर नए अक्षर लिखने से वे फैलते नही—स्याही फूटती नही।

गेरू—जैसे आजकल विशिष्ट वाक्य, श्लोक, पुष्पिका आदि पर लाल पैन्सिल से अण्डर लाईन करते है वैसे हस्तलिखित ग्रन्थो मे भी आकर्षण के लिए पद, वाक्य, गाथा, परिच्छेद, परिसमाप्ति स्थान गेरू से रंग दिए जाते थे।

डोरा:—ताड़पत्रीय युग में स्मृति योग्य पंक्ति, पाठ, अधिकार, अध्ययन, उद्देश्य आदि की परिसमाप्ति स्थान मे बारीक डोरा पिरो कर बढ़ा हुआ बाहर छोड़ दिया जाता था। जैसे आजकल फ्लेग चिन्हित किया जाता है और उससे ग्रन्थादि का प्रसंग खोजने में सुविधा होती है, वैसे ही ताड़पत्रीय युग की यह पद्धति थी।

पुस्तक संशोधन के संकेत चिन्ह :

जिस प्रकार लेखन और सशोधन मे पूर्ण विराम, अर्द्ध विराम, अल्प विराम, प्रश्नविराम, आश्चर्यदर्शक चिन्ह, अर्थद्योतक चिन्ह, छन्द समास द्योतक चिन्ह, शकित पाठ द्योतक चिन्हादि प्रचलित है, पुराकालीन जैन विद्वानों ने भी लेखन सौष्ठव को ध्यान मे रख कर विविध चिन्हों का प्रयोग किया है। वे चिन्ह कब और किस स्थिति मे प्रयुक्त होते थे ? उसका यहां निर्देश किया जाता है।

संशोधन के संकेत चिन्ह:-

(१) ^, V, X, x, x/x, . (२) x. (३) ∽, ∽, ∽. (४) ω.

(५) २-१. (६) अ = ऽ, आ = ऽ' ऽऽ, इ = ९' ९' इ' इ, ई = ई' ः, उ = ७' ७, ऊ = ऊ, ऋ = ऋ, ए = ए, ऐ = ऐ, ओ = ओ, औ = औ, अं = ऽं
(७) प्र॰' पा॰, प्रत्यं॰' पाअं॰, प्रत्यंतरे' पाठंतरम्. (८) ठं॰' पं॰, ठं॰ठ॰' पंक्त॰, ठं॰नी॰' पं॰नी॰. (९) '. (१०) ". (११) ' '. (१२) ११, १२, १३, २३, ३२, ४१, ५३, ६२, ७३, ८१ इत्यादि (१३) १, २, ३, ४, ५, ६, इत्यादि
(१४) =, ॥. (१५) ७, ω. (१६) .., ..., ∴, ∷, o, oo, ooo, □, 6, ॥, 卐, ц, ∩, ..., इत्यादि.

इन चिन्हों की पहचान इन नामों से कीजिए—

(1) पतितपाठ दर्शक चिन्ह—लेखको की असावधानी से छूटे हुए स्थान पर यह चिन्ह करके हांसिये पर त्रुटक पाठ लिखा जाता है और दोनों स्थान मे चिन्ह कर दिए जाते हैं।

(2) पतित पाठ विभाग दर्शक चिन्ह—यह चिन्ह छूटे हुए पाठ को बाहर लिखने के उभय पक्ष में दिया जाता है जिससे अक्षर या पाठ का सेल-भेल न हो जाय। इसके पास 'ओ' या 'पं.' करके जिस पंक्ति का हो नम्बर दिया जाता है।

(3) आकारान्त—'काना' दर्शक चिन्ह—यह अक्षर के आगे की मात्रा 'ा' छूट गई हो वहा अक्षर के ऊपर दी जाती है।

(4) अन्याक्षर वाचन दर्शन चिन्ह—यह चिन्ह लिखे गए अक्षर के बदले दूसरा अक्षर लिखने की हालत मे लगाया जाता है। जैसे 'श' के बदले 'ष', 'स' के बदले 'श', 'ज' के बदले 'य', 'ष' के बदले 'क्ष' आदि। यत—सत्रु=शत्रु, खट्=षट्, जज्ञ=यज्ञ, जाता माता आदि।

(5) पाठ परावृत्ति दर्शक चिन्ह—अक्षर या वाक्य के उलट-पुलट लिखे जाने पर सही पाठ बताने के लिए अक्षर पर लिख दिया जाता है। यत—'वनचर' के बदले 'वचनर' खाल गया हो तो वचनर शब्द पर चिन्ह कर दिया जाता है।

(6) स्वर सन्ध्यश दर्शक चिन्ह—यह चिन्ह सन्धि हो जाने के पश्चात् लुप्तस्वर को बताने वाला है। इन चिन्हों को भी ऊपर और कभी नीचे व अनुस्वार युक्त होने पर नु स्वार सहित भी किया जाता है। यत—SSI SSS इत्यादि।

(7) पाठ भेद दर्शक चिन्ह—एक प्रति को दूसरी प्रति से मिलाने पर जो पाठान्तर, त्यिन्तर हो उसके लिए यह चिन्ह लिख कर पाठ दिया जाता है।

(8) पाठानुसधान दर्शक चिन्ह—छूटे हुए पाठ को हासिए मे लिखने के पश्चात् किस पक्ति का वह पाठ है यह अनुसधान बताने के लिए ओ प लिख कर ओली, पक्ति का नम्बर दे दिया जाता है।

(9) पदच्छेद दर्शक चिन्ह—आजकल की तरह वाक्य शब्द एक साथ न लिख कर आगे अलग-अलग अक्षर लिखे जाते थ। अत शुद्ध पाठ करने के लिए ऊपर खड़ी लाईन का चिन्ह करके शब्द अक्षर पार्थक्य बता दिया जाता था।

(10) विभाग दर्शक चिन्ह—ऊपर दिए गए सामान्य पदच्छेद चिन्ह से डबल लाइन दकर सम्बन्ध, विषय या श्लोकार्द्ध की परिसमाप्ति पर यह लगाया जाता है।

(11) एक पद दर्शक चिन्ह—एक पद होने पर भी भ्रान्ति न हो इसलिए दोनो ओर ऊपर खडी लाइन लगा देते थे। यत—'स्यात्पद' एक वाक्य को कोई स्यात् और पद अलग-अलग न समझ बैठे इसलिए वाक्य के दोनो ओर इसका प्रयोग होता था।

(12) विभक्ति वचन दर्शक चिन्ह—यह चिन्ह अक परक है। सात विभक्ति और सबोधन मिलाकर आठ विभक्तियों को तीन वचनो से सबध-सूचन करने के लिए प्रथमा का द्विवचन शब्द पर 12, अष्टमी के बहुवचन पर 83 आदि अक लिख कर निर्भ्रान्त बना दिया जाता था। संबोधन के लिए कही-कही 'हे' भी लिखा जाता था।

(13) अन्वय दर्शक चिन्ह—यह चिन्ह भी विभक्ति वचन को चिन्ह की भांति अक लिख कर प्रयुक्त किया जाता था। ताकि सशयात्मक वाक्यो मे अर्थ भ्रान्ति न हो, श्लोको मे पदों का अन्वय भी अंकों द्वारा बतला दिया जाता था।

(14) टिप्पणक दर्शक चिन्ह —यह चिन्ह मूलपाठ के भेद-पर्याय आदि दिखाने के लिए वाक्य पर चिन्ह करके हासिए में वही चिन्ह करके पर्यायार्थ या व्याख्या लिख दी जाती थी।

(15) विशेषण विशेष्य सम्बन्ध दर्शक चिन्ह —दूर-दूर रहे हुए शब्दों का विशेषण-विशेष्य आकलन करने के लिए ये चिन्ह कर देने से प्रबुद्ध वाचक तत्काल संबंध को पकड़ लेता-समझ सकता है।

(16) पूर्वपद परामर्शक चिन्ह —ये चिन्ह दुरुह है। तर्क शास्त्र के ग्रन्थ में बार-बार आने वाले तत् शब्द को अलग-अलग अर्थ-द्योतक बताने के लिए व्यर्थ के टिप्पण न देकर सकेत से अर्थ समझने के लिए इन चिन्हों का प्रयोग होता था। साधारण लेखकों की समझ से बाहर विचक्षण विद्वानों के ही काम में आने वाले ये चिन्ह है।

दार्शनिक विषय के ग्रन्थों के लम्बे सम्बन्धों पर भिन्न-भिन्न विकल्प चर्चा में उसका अनुसंधान प्राप्त करने के लिए इस प्रकार के चिन्ह बड़े सहायक होते है। विद्वान् जैन श्रमण वर्ग आज भी अपने गम्भीर संशोधन कार्य में इन शैलियों का अनुकरण करता है।

जैन लेखन कला, संशोधन कला के प्राचीन-अर्वाचीन साधनों पर यहा जो विवेचन हुआ है इससे विदित होता है कि जैन लेखन कला कितनी वैज्ञानिक विकसित और अनुकरणीय थी। भारतीय संस्कृति के इतिहास में जैनो का यह महान् अनुदान सर्वदा स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

जैन ज्ञान भंडारो का महत्त्व

प्रारम्भ में जो जैन श्रमण वर्ग श्रुतज्ञान को लिपिबद्ध करने के विपक्ष में था वह समय के अनुकूल उसे परम उपादेय मानने लगा और देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण के समय से ज्ञानोपकरण का सविशेष प्रयोग करने के लिए उपदेश देने लगा। आज हमारे समक्ष तत्कालीन लिखित वाङ्मय का एक पन्ना भी उपलब्ध नहीं है। अत वे कैसे लिखे जाते थे, कैसे संशोधन किया जाता था, कहा और किस प्रकार रखा जाता था, इस विषय में प्रकाश डालने का कोई साधन नहीं है। गत एक हजार वर्ष के ग्रन्थ व ज्ञान भण्डार विद्यमान है जिससे हमे मालूम होता है कि श्रुतज्ञान की अभिवृद्धि में जैन श्रमण और श्रावक वर्ग ने सविशेष योगदान किया था। श्री हरिभद्रसूरिजी ने योगदृष्टिसमुच्चय मे 'लेखना पूजना दान' द्वारा पुस्तक लेखन को योग भूमिका का अग बतलाया है। 'मण्ह जिणाण आण' सज्झाय में पुस्तक लेखन को निम्नोक्त गाथा में श्रावक का नित्य-कृत्य बतलाया है।

> सघोवरि बहुमाणो पुत्थयलिहण पभावणा तित्थे।
> सड्ढाणकिच्चमेय निच्च सुगुरूवएसेण ॥5॥

बारहवी शताब्दी मे सूराचार्य ने भी 'दानादिप्रकाश' के पाचवे अवसर मे पुस्तक लेखन की बडी महिमा गायी है। उस जमाने मे ग्रन्थो को ज्ञान भण्डारो मे रखा जाता था। एक हजार वर्ष पूर्व भी राजाओ के यहा पुस्तक संग्रह रखा जाता था, सरस्वती भण्डार होते थे। चैत्यवासियो से सम्बन्धित मठ-मन्दिरो मे भी ज्ञानकक्ष अवश्य रहता था। सुविहित शिरोमणि श्री वर्द्धमानसूरि–जिनेश्वरसूरि के पाटन की राजसभा मे चैत्यवासियो के साथ हुए शास्त्रार्थ मे पाटण के सरस्वती भण्डार से ही 'दशवैकालिक' ग्रन्थ लाकर प्रस्तुत किया गया था। मुसलमानी काल मे नालन्दा विश्वविद्यालय के ग्रन्थागार की भांति अगणित ज्ञान-

भण्डारो व ग्रन्थों को जला कर नष्ट कर डाला गया। यही कारण है कि प्राचीनतम लिखे ग्रन्थ आज उपलब्ध नही है। जिस प्रकार देवालयो और प्रतिमाओ के विनाश के साथ-साथ नव-निर्माण होता गया उसी प्रकार जैन शासन के कर्णधार जैनाचार्यों ने शास्त्र निर्माण व लेखन का कार्य चालू रखा। जिसके प्रताप से आज वह परम्परा बच पाई। भारतीय ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र मे जैन ज्ञान भण्डार एक अत्यन्त गौरव की वस्तु है।

ज्ञान भडारों की स्थापना व अभिवृद्धि

हस्तलिखित ग्रन्थो के पुष्पिका लेख तथा कुमारपाल प्रबन्ध, वस्तुपाल चरित्र, प्रभावक चरित्र, सुकृतसागर महाकाव्य, उपदेश तरगिणी, कर्मचन्द मत्रिवश-प्रबन्ध, अनेको रास एव ऐतिहासिक चरित्रों से समृद्ध श्रावको द्वारा लाखों-करोड़ो के सद्व्यय से ज्ञान कोश लिखवाने तथा प्रचारित करने के विशुद्ध उल्लेख पाए जाते हैं। शिलालेखो की भाति ही ग्रन्थ-लेखन-पुष्पिकाओ व प्रशस्तियो का बडा भारी ऐतिहासिक महत्व है। जैन राजाओ, मन्त्रियो एव धनाढ्य श्रावको के सत्कार्यो की विरुदावली मे लिखी हुई प्रशस्तिया किसी भी खण्ड काव्य से कम महत्वपूर्ण नही है। गूर्जरेश्वर सिद्धराज जयसिंह और कुमारपालदेव ने बहुत बडे परिमाण मे शास्त्रो को ताडपत्रीय प्रतिया स्वर्णाक्षरी व सचित्रादि तक लिखवायी थी। यह परम्परा न केवल जैन नरपति श्रावक वर्ग मे ही थी परन्तु श्री जिनचन्द्रसूरिजी को अकबर द्वारा 'युगप्रधान' पद देने पर बीकानेर महाराजा रायसिंह, कुमार दलपतसिंह आदि द्वारा भी सख्याबद्ध प्रतिया लिखवा कर भेट करने के उल्लेख मिलते हैं एव इन ग्रन्थो की प्रशस्तियो मे बीकानेर, खभात आदि के ज्ञान भण्डारो मे ग्रन्थ स्थापित करने के विशद वर्णन पाए जाते है। त्रिभुवनगिरि के यादव राजा कुमारपाल द्वारा प्रदत्त पुस्तिका के काष्ठफलक का चित्र, जिसमे जैनाचार्य श्री जिनदत्तसूरि और महाराजा कुमारपाल का चित्र है। इस पर "नृपतिकुमार-पाल भक्तिरस्तु' लिखा हुआ है। सम्राट अकबर अपनी सभा के पडित यति पद्मसुन्दर का ग्रन्थ भण्डार, हीर विजयसूरि को देना चाहता था, पर उन्होंने लिया नहीं, तब उनकी निस्पृहता से प्रभावित होकर आगरा मे ज्ञान भण्डार स्थापित किया गया था।

जैन श्रावको ने अपने गुरुओ के उपदेश से बडे-बडे ज्ञान भण्डार स्थापित किए थे। भगवती सूत्र श्रवण करते समय गौतम स्वामी के छत्तीस हजार प्रश्नो पर स्वर्ण मुद्राए चढाने का पेथडशाह, सोनी सग्रामसिंह आदि का एव छत्तीस हजार मोती चढाने का वर्णन मन्त्रीश्वर कर्मचन्द्र के चरित्र मे पाया जाता है। उन मोतियो के बने हुए चार-चार सौ वर्ष प्राचीन चन्द्रवा पूठिया आदि चालीस वर्ष पूर्व तक बीकानेर के बडे उपाश्रय मे विद्यमान थे। श्री जिनभद्रसूरि जी के उपदेश से जैसलमेर, पाटण, खभात, जालोर, देवगिरि, नागौर आदि स्थानो मे ज्ञान भण्डार स्थापित होने का वर्णन उपाध्याय समयसुन्दर गणि कृत 'कल्पलता' ग्रन्थ मे पाया जाता है। धरणाशाह, मण्डन, धनराज और पेथडशाह, पर्वत कान्हा एव भणशाली थाहरुशाह ने ज्ञान भण्डार स्थापित करने मे अपनी लक्ष्मी का मुक्त हस्त से व्यय किया था। थाहरुशाह का भण्डार आज भी जैसलमेर मे विद्यमान है। जैन ज्ञान भण्डारो मे बिना किसी धार्मिक भेद-भाव के जो ग्रन्थ सग्रहीत किए गए, आज भी भारतीय वाङ्मय के सरक्षण मे गौरवास्पद है। क्योकि अनेक जैनेतर ग्रन्थो को सरक्षित रखने का श्रेय केवल जैन ज्ञान भण्डारो को ही है।

वर्तमान मे जैन ज्ञान भण्डार सारे भारतवर्ष मे फैले हुए है। यद्यपि लाखो ग्रन्थ अयोग्य उत्तराधिकारियो द्वारा नष्ट हो गए, बिक गए, विदेश चले गए, फिर भी जैन ज्ञान भण्डारो मे स्थित अवशिष्ट लाखो ग्रन्थ शोधक विद्वानो को अपनी ओर आकृष्ट करते है। गुजरात मे पाटण, अहमदाबाद, पालनपुर, राधनपुर, खेडा, खभात, छाणी, बड़ौदा, पादरा, दरापरा, डभोई, सिनोर, भरोच, सूरत एव महाराष्ट्र मे बम्बई व पूना के ज्ञान भण्डार सुप्रसिद्ध है।

सौराष्ट्र में भावनगर, पालीताना, घोघा, लीबडी, बढवाण, जामनगर, मांगरौल आदि स्थानों में ज्ञान भण्डार हैं। कच्छ मे कोडाय और माण्डवी का ज्ञान भण्डार विख्यात है। राजस्थान मे जैसलमेर, बीकानेर, बाड़मेर, बालोतरा, जोधपुर, नागौर, जयपुर, पीपाड, पाली, लोहावट, फलौदी, उदयपुर गढ़सिवाना, आहौर, जालौर, मुंडारा, चूरू, सरदारशहर, फतेहपुर, किशनगढ, कोटा, झुंझुनूं आदि स्थानो मे नए-पुराने ग्रन्थ सग्रह ज्ञान भण्डार है। अकेले बीकानेर से हजारों प्रतियां बाहर चले जाने व कई तो समूचे ज्ञान भण्डार नष्ट हो जाने पर भी आज वहां लाखों की संख्या में हस्तलिखित प्रतिया विद्यमान है। राजकीय अनूप सस्कृत लायब्रेरी मे हजारो जैन ग्रन्थ हैं। पजाब मे अबाला, होशियारपुर, जडियाला, आदि मे ज्ञान भण्डार है तथा कतिपय ज्ञान भण्डार दिल्ली, रूपनगर मे आ गए है। आगरा, वाराणसी आदि उत्तर प्रदेश के स्थानों के अच्छे ज्ञान भण्डार हैं। उज्जैन, इन्दौर, शिवपुरी आदि मध्य प्रदेश मे भी कई ज्ञान भण्डार है। कलकत्ता, अजीमगज आदि बगाल देश के ज्ञान भण्डारो का अपना अनोखा महत्व है। आगमो को प्रारम्भिक मुद्रण युग मे सुव्यवस्थित और प्रचुर परिमाण मे प्रकाशित करने का श्रेय यहा के राय धनपतसिंह दूगड को है। श्री पूरणचन्द जी नाहर की 'गुलाबकुमारी लायब्रेरी' सारे देश मे प्रसिद्ध है। ताडपत्रीय प्राचीन ग्रन्थ सग्रह के लिए जिस प्रकार जैसलमेर, पाटण और खभात प्रसिद्ध है, उसी प्रकार कागज पर लिखे ग्रन्थ बीकानेर और अहमदाबाद मे सर्वाधिक है। दिगम्बर समाज के ताडपत्रीय ग्रन्थो मे मूडबिद्री विख्यात है तथा आरा का जैन सिद्धान्त भवन, अजमेर व नागौर के भट्टारकजी का भण्डार तथा जयपुर आदि स्थानों के दिगम्बर जैन ग्रन्थ भण्डार बडे ही महत्वपूर्ण है।

ज्ञान भण्डारों की व्यवस्था

प्राचीनकाल मे ज्ञान भण्डार बिलकुल बन्द कमरो मे रखे जाते थे। जैसलमेर का सुप्रसिद्ध श्री जिनभद्रसूरि ज्ञान भण्डार तो किले पर स्थित सभवनाथ जिनालय के नीचे तलघर में सुरक्षित कोठरी मे था। जिसमे प्रवेश पाने के लिए अन्तर्गत कोठरी के छोटे से दरवाजे मे से निकलना पड़ता था। अब भी है तो वही, पर आगे से कुछ सुधार हो गया है। आगे ग्रन्थो को पत्थर की पेटियो मे रखते थे जहा सर्दी व जीव जन्तुओ की बिल्कुल सभावना नही थी। ताड़पत्रीय ग्रन्थों को लकडी की पट्टिकाओ के बीच खादी के बीठागणो मे कस कर रखा जाता था। आजकल आधुनिक स्टील की अलमारियो मे अपने माप के अल्युमिनियम के डब्बो मे ताड़पत्रीय ग्रन्थों को सुरक्षित रखा गया है और उनकी विवरणात्मक सूची भी प्रकाश मे आ गई है। प्राचीनकाल मे केवल ग्रन्थ के नाम मात्र और पत्र सख्यात्मक सूची रहती थी। कही-कही ग्रन्थकर्ता का नाम भी अपवाद रूप मे लिखा रहता था। एक ही बण्डल या डाबडे मे कागज पर लिखे अनेक ग्रन्थ रखे जाते और उन्हें क्वचित् सूत के डोरे मे लपेट कर दूसरे ग्रन्थ के साथ पन्नो के सेलभेल होने से बचाया जाता था। कागज की कमी से आजकल की भाति पूरा कागज लपेटना महर्घ्य पड़ने से कही-कही कागज की चीपो मे ग्रन्थो को लपेट कर, चिपका कर रखे जाते थे। यही कारण है कि समुचित सार सभाल के अभाव मे ग्रन्थो के खुले पन्ने अस्तव्यस्त होकर अपूर्ण हो जाते थे। बिछुडे पन्नो को मिलाना और ग्रन्थो को पूर्ण करना एक बहुत ही दुष्कर कार्य है।

ताड़पत्रीय ग्रन्थों को उसी माप के काष्ठफलको के बीच कस कर बाधा जाता था। कतिपय काष्ठफलक विविध चित्र समृद्धि युक्त पाए जाते है। शिखरबद्ध जिनालय, तीर्थंकर प्रतिमा चित्र, उपाश्रय मे जैनाचार्यों की व्याख्यान सभा, चतुर्दश महास्वप्न, अष्टमगलीक, बेल बूटे, राजा और प्रधानादि राज्याधिकारी, श्रावक-श्राविकाए, वादि देवसूरि और दि कुमुद-चन्द्र के शास्त्रार्थ आदि के चित्राकन पाए जाते हैं।

कागज के ग्रन्थ जिन डाबड़े-डिब्बों में रखे जाते थे वे भी लकड़ी या कूटे के बने हुए होते थे। जिन पर विविध प्रकार के चित्र बना कर वार्निश कर दिया जाता था। उन डब्बो

पर नम्बर लगाने की पद्धति भी तीर्थकर नाम, गणधर, अष्ट मंगलीक आदि के अभिधान संकेत मय हुआ करते थे। हस्तलिखित कागज के ग्रन्थ पूठा, पटड़ी, पाटिया आदि के बीच रखे जाते थे। पूठो को विविध प्रकार से मखमल, कारचोबी, हाथीदात, कांच व कसीदे के काम से अलंकृत किया जाता था। कई पूठे चादी, सोने व चन्दनादि के निर्मित पाए जाते है, जिन पर अष्ट मगलीक, चतुदर्श महास्वप्नादि की मनोज्ञ, कलाकृतिया बनी हुई हैं। कूटे के पुठों पर समवशरण, नेमिनाथ बरात, दशार्णभद्र, इलापुत्र की नटविद्या आदि विषय विविध कथा-वस्तुओं से सम्बन्धित चित्राकृति पाई जाती है। कलमदान लकड़ी के अतिरिक्त कूटे के भी मजबूत हल्के और शताब्दियो तक न बिगड़ने वाले बनाए जाते थे। हमारे सग्रह मे एक कलमदान पर कृष्णलीला के विविध चित्र विद्यमान है। जैसलमेर की चित्र समृद्धि मे हसपंक्ति, बगपंक्ति, गजपक्ति और जिराफ जैसे जीव जन्तुओ के चित्र भी देखे गए है।

जैन ज्ञान भण्डारो की व्यवस्था सर्वत्र संघ के हस्तगत रहती आई है तथा उनकी चाबिया मनोनीत ट्रस्टियो के हाथ मे होते हुए भी श्रमण वर्ग और यतिजनो के कुशल सरक्षण मे रहने से ये सरक्षित रहे हैं। अयोग्य उत्तराधिकारियो के हाथ मे आने से अनेक ज्ञान भण्डार रद्दी के भाव बिक कर नष्ट हो गए।

पुस्तको को रखने के लिए जहा चन्दन और हाथीदात से निर्मित कलापूर्ण डिब्बे आदि हाते थे वहा छोटे-मोटे स्थानो मे मिट्टी के माटे, बेंत के पिटारे व लकड़ी की पेटिया व दीवालो मे बने आलो मे भी रखे जाते थे। इन ग्रन्थों को दीमक, चूहों व ठडक से बचाने के लिए यथासभव उपाय किए जाते थे। साप की कुंचली, घोड़ावज आदि औषधी की पोटली आदि रखी जाती तथा वर्षाती हवा से बचाने के लिए चौमासे मे यथासभव ज्ञान भण्डार कम ही खोले जाते थे। ग्रन्थो की प्रशस्ति मे लिखे श्लोकों मे जल, तैल, शिथिल बन्धन और अयोग्य व्यक्ति के हाथ से बचाने की हिदायत सतत दी जाती रही है।

ग्रन्थ रचना के अनन्तर ग्रन्थकार स्वय या अपने शिष्य वर्ग से अथवा विशुद्धाक्षर लेखी लहियो से ग्रन्थ लिखवाते थे और विद्वानो के द्वारा उनका सशोधन करा लिया जाता था। लहिया-लेखको को 32 अक्षर के अनुष्टुप छद की अक्षर गणना के हिसाब से लेखन शुल्क चुकाया जाता था। ग्रन्थ लिखवाने वालो के वश की विस्तृत प्रशस्तिया लिखी जाती और ज्ञान भण्डारों के सरक्षण की ओर सविशेष उपदेश दिया जाता था। ज्ञान पचमी पर्व और उनके उद्यापनादि के पीछे ज्ञानोपकरण वृद्धि और ज्ञान प्रचार की भावना विशेष कार्यकारी हुई। ज्ञान की आशातना टालने के लिए जैन सघ सविशेष जागरूक रहा है और यही कारण है कि जैन समाज के पास अन्य भारतीय प्रजा की अपेक्षा सरस्वती भण्डार का सम्बन्ध सर्वाधिक रहा है।

जैन समाज शास्त्रो को अत्यधिक सम्मान की दृष्टि से देखता है। ज्ञान का बहुमान, ज्ञानभक्ति आदि की विशद उपादेयता नित्यप्रति के व्यवहार मे परिलक्षित होती है। कल्पसूत्रादि आगमों की पर्युषण मे गजारूढ शोभायात्रा निकाली जाती है, ज्ञानभक्ति, जागरणादि किए जाते हैं। भगवती सूत्रादि आगम पाठ के समय धूप-दीप तथा शोभायात्रा आदि जैनों के ज्ञान-बहुमान के ही प्रतीक है। ज्ञान पूजा विधिवत् की जाती है और ज्ञान द्रव्य के सरक्षणसवर्धन का विशेष ध्यान रखा जाता है। पुस्तकों को धरती पर न रख कर उच्चासन पर रख कर पढ़ा जाता है। उसे सापड़ा-सापड़ी पर रखते है, जिसे रील भी कहते हैं। सापड़ा शब्द सम्पुट या सम्पुटिका संस्कृत से बना है। साधु-श्रावक के अतिचार मे ज्ञानोपकरण के पैर, थूक आदि लगने पर प्रायश्चित बताया है। इसलिए बैठने के आसन पर भी ग्रन्थों को नही रखा जाता।

कवली :

ग्रन्थ के पत्रों को अध्ययन के हेतु कवली-कपलिका मे लपेट कर रखा जाता था, जिसमे पत्रों के उड़ने का भय नही रहता। यह कवली बास की चीप आदि को गूथ कर ऊपर वस्त्रादि से मढी रहती थी। बारहवी शताब्दी मे युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरि जी की जीवनी मे कवली-कपलिका का प्रयोग होना पाया जाता है।

कांबी

बास, काष्ठ या हाथीदात की चीजो की होती थी। उसी कम्बिकावली शब्द से काबी शब्द बना प्रतीत होता है। चातुर्मास की वर्षाती हवा लग कर पत्रों को चिपक जाने से बचाने मे कांबी का प्रयोग उपयोगी था।

जैन समाज ज्ञान के उपकरण दवात, कलम, पाटी, पाठा, डोरा, कवली, सापडा-सापडी काबी, बन्धन, वीटागणा-वेष्टन, दाबडा, करण्डिया आदि को महर्घ्य द्रव्य मे निर्मित और कला-पूर्ण निर्मित कर काम मे लाया है। ग्रन्थों को जैसे ठण्ड से बचाते थे वैसे धूप से भी बचाया जाता था। स्याही मे गोद की अधिकता हो जाने से ग्रन्थ के पत्रे परस्पर चिपक कर थेपड़े हो जाते है जिन्हे खोलने के लिए प्रमाणोपेत साधारण ठडक पहुचा कर ठण्डे स्थान मे रख कर धीरे-धीरे खोला जाता है और अक्षरादि नष्ट हो जाने से भरसक बचाने का प्रयत्न किया जाता है। ग्रन्थ और ग्रन्थ भण्डार स सम्बन्धित व्यक्ति को इन बातो का अनुभव होना अनिवार्य है।

ग्रन्थो की रक्षा के लिए प्रशस्ति मे लिपिकर्ता निम्नोक श्लोक लिखा करते थे ––

जलाद्रक्षेत् स्थलाद् रक्षेत् रक्षेत् शिथिलबन्धनात्।
मूर्खहस्ते न दातव्या, एव वदति पुस्तिका ॥1॥
अग्ने रक्षेत् जलाद् रक्षेत् मूषकेभ्यो विशेषत।
कष्टेन लिखित शास्त्र, यत्नेन प्रतिपालयेत् ॥2॥
उदकानिलचौरेभ्य, मूषकेभ्यो हुताशनात्।
कष्टेन लिखित शास्त्र, यत्नेन प्रतिपालयेत् ॥3॥ इत्यादि।

ज्ञान पचमी पर्व

ज्ञान की रक्षा और सेवा के लिए ज्ञान पचमी पर्व का प्रचलन हुआ और इसके माध्यम से ज्ञानोपकरणो का प्रचुरता से निर्माण होकर ज्ञान भण्डारो की अभिवृद्धि की गई। ज्ञान पचमी पर्वाराधन के बहाने ज्ञान की पूरी सार सभाल होने लगी। उद्यापनादि मे आए हुए मूल्यवान चन्द्रवे, पुठिये, झिलमिल, वेष्टन आदि विविध वस्तुओ को आकर्षक और समृद्धिपूर्ण ढग से सजाये जाने लगे। ज्ञान की वास्तविक सार सभाल को भूल कर केवल बाह्य सजावट मे रचे-पचे समाज को देख कर एक बार महात्मा गाधी जैसे सात्विक वृत्ति वाले महापुरुष को कहना पड़ा कि "यदि चोरी का पाप न लगता हो तो मैं इस ज्ञान उपादानो को जैन समाज से छीन लू क्योकि वे केवल सजाना जानते है, ज्ञानोपासना नही"। अस्तु।

पारिभाषिक शब्द

प्रस्तुत निबन्ध म अनेक जैन पारिभाषिक शब्दों, उपकरणो आदि का परिचय कराया गया है फिर भी कुछ पारिभाषिक शब्दो का परिचय यहा उपयोगी समझकर कराया जाता है।

1. हस्तलिखित पुस्तक को प्रति कहते हैं जो प्रतिकृति का संक्षिप्त रूप प्रतीत होता है।

2. हस्तलिखित प्रति के उभयपक्ष में छोड़े हुए मार्जिन को हामिया कहते हैं और ऊपर नीचे छोड़े हुए खाली स्थान को जिव्हा या जिब्भा-जीभ कहते हैं।

3 हामिये के ऊपरिभाग में ग्रन्थ का नाम, पत्राक, अध्ययन, सर्ग, उच्छ्वास आदि लिखे जाते है जिसे हुण्डी कहते हैं।

4 ग्रन्थ की विषयानुक्रमणिका को बीजक नाम से सम्बोधित किया जाता है।

5 पुस्तको के लिखित अक्षरो की गणना करके उसे ग्रन्थाग्र तथा अत मे समस्त अध्यायादि के श्लोको को मिलाकर सर्व ग्रथ या सर्व ग्रन्थाग्र सख्या लिखा जाता है।

6 मूल जैनागमो पर रची हुई गाथाबद्ध टीकाओ को निर्युक्ति कहते है।

7 मूल आगम और निर्युक्ति पर रची हुई विस्तृत गाथाबद्ध व्याख्या को भाष्य या महाभाष्य कहते है। भाष्य और महाभाष्य सीधे मूलसूत्र पर भी हो सकते है, यो निर्युक्ति, भाष्य और महाभाष्य ये सब गाथाबद्ध टीका ग्रन्थ होते हैं।

8. मूल सूत्र, निर्युक्ति, भाष्य और महाभाष्य पर प्राकृत-सस्कृत मिश्रित गद्यबद्ध टीका को चूर्णि और विशेष चूर्णि नाम से पहिचाना जाता है।

9. जैनागमादि ग्रन्थो पर जो छोटी-मोटी सस्कृत व्याख्या होती है उसे वृत्ति, टीका, व्याख्या, वार्तिक, टिप्पणक, अवचूरि, अवचूर्णि, विषम पद व्याख्या, विषम पद पर्याय आदि विविध नामो से सबोधित किया जाता है।

10. जैनागमादि पर गुजराती, मारवाडी, हिन्दी आदि भाषाओ में जो अनुवाद किया जाता है, उसे स्तबक टबा या टबार्थ कहते है। विस्तृत विवेचन बालावबोध कहलाता है।

11 मूल जैनागमो की गाथाबद्ध विषयानुक्रमणिका व विषय वर्णानात्मक गाथाबद्ध प्रकरण को एव कितनी ही बार प्राकृत-सस्कृत मिश्रित सक्षिप्त व्याख्या का भी सग्रहणी नाम दिया जाता है।

इस निबन्ध मे श्वेताम्बर ज्ञान भण्डारो के अनुभव के आधार पर प्राप्त सामग्री पर प्रकाश डाला गया है। दिगम्बर समाज के ज्ञान भण्डार व लेखन सामग्री पर अध्ययन अपेक्षित है। श्वेताम्बर समाज मे विशेषकर मन्दिर आम्नाय के साहित्य पर विशेष परिशीलन हुआ है। आगमप्रभाकर परम पूज्य मुनिराज श्री पुण्यविजय जी महाराज की "भारतीय जैन श्रमण सस्कृति अने लेखनकला" निबन्ध पर आधारित यह सक्षिप्त अभिव्यक्ति है।

परिशिष्ट २

[1] ग्रन्थ-नामानुक्रमणी

ग्रन्थनाम पृष्ठांक

ऊ

ऋ

ए

ऐ

ओ

औ

क

ग्रन्थनाम	पृष्ठांक

ख

ग

ग्रन्थनाम	पृष्ठांक

ग्रन्थनाम पृष्ठांक

ज

ग्रन्थनाम पृष्ठांक

ग्रन्थनाम पृष्ठांक

ग्रन्थनाम पृष्ठांक

ग्रन्थनाम पृष्ठांक	ग्रन्थनाम पृष्ठांक

ग्रंथनाम पृष्ठांक

ग्रन्थनाम पृष्ठांक

थ

द

ग्रन्थनाम पृष्ठांक

ग्रन्थनाम पृष्ठांक

प

ग्रन्थनाम पृष्ठांक

ग्रन्थनाम पृष्ठांक

ग्रन्थनाम	पृष्ठांक	ग्रन्थनाम	पृष्ठांक

ग्रन्थनाम पृष्ठांक ग्रन्थनाम पृष्ठांक

ग्रन्थनाम | पृष्ठांक | ग्रन्थनाम | पृष्ठांक

म

ग्रन्थनाम पृष्ठांक ग्रन्थनाम पृष्ठांक

य

र

ग्रन्थनाम पृष्ठांक

ग्रन्थनाम पृष्ठांक

श

ग्रन्थनाम	पृष्ठांक

ग्रन्थनाम	पृष्ठांक

[2] विशिष्ट व्यक्ति एवं ग्रन्थकार नामानुक्रमणी

नाम पृष्ठांक

नाम पृष्ठांक

ख

ग

नाम	पृष्ठांक

घ

च

छ

नाम पृष्ठांक

नाम पृष्ठांक

नाम	पृष्ठांक

ध

नाम पृष्ठांक

नाम	पृष्ठांक	नाम	पृष्ठांक

नाम पृष्ठांक

ल

नाम पृष्ठांक

व

नाम पृष्ठांक

श

नाम पृष्ठांक

ह

(३) ग्राम-नगर-नामानुक्रमणी

नाम	पृष्ठांक	नाम	पृष्ठांक